भासनाटकचक्रम्

(महाकवि भास के सम्पूर्ण नाटकों का संकलन)

गङ्गासागर रायः

साहित्य

॥ श्री ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२९७

भासनाटकचक्रम्

महाकविभासप्रणीतनाटकानां संग्रहः

(संस्कृतटीका–हिन्दी अनुवाद-भूमिका परिशिष्टादिसंवलितम्)

संपादकोऽनुवादकः टीकाकारश्च

गङ्गासागर रायः

सर्वभारतयकाशीराजन्यासस्थ

द्वितीयो भागः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक

पो० बा० नं० ११३९

के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)

वाराणसी–२२१००१

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

मुद्रक : चारु प्रिंटर्स, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०५५

मूल्य : रू० [redacted] (१-२ भाग संपूर्ण)

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल-पाठ एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ३३४४५, ३३५९३०

प्रधान शाखा :

चौखम्भा संस्कृत भवन

पोस्ट बाक्स नं० ११६०

चौक (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)

वाराणसी-२२१००१

फोन : ३२०४१४

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
297

BHĀSANĀTAKACAKRAM

(Collectiones of all the Dramas of Bhasa)

(With Introduction, Sanskrit Commentaries, Hindi Translation and Appendices)

Edited and Commented
By
Dr. Ganga Sagar Rai, M. A., Ph. D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKIRT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar near Maidagin)
VARANASI-221001 (INDIA)

©Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi
First Edition : 1998
Phone : 333445, 335930

Main Branch—
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
Chowk (The Benaras State Bank Building)
VARANASI (INDIA)
Phone : 320414, 335929

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२६८

महाकविभासविरचितं

बालचरितम्

['गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्]

संपादको व्याख्याकारश्च
डा० गङ्गासागर रायः
सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान
भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक
पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ११३९
जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

मुद्रक : श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०४६

मूल्य : रु० १५-००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

इस ग्रन्थ के परिष्कृत मूल-पाठ एवं परिवर्धित

टीका परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार

प्रकाशक के अधीन है।

फोन : ६५८८९

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्भा विश्वभारती

पोस्ट बाक्स नं० १०८४

चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)

वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)

फोन : ५४७६६

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

268

*****

BĀLACARITAM

OF

BHĀSĀ

[with Gangā Sanskrit and Hindi Commentaries, Introduction and Appendices]

By

Dr. GANGASAGAR RAI, M. A., Ph. D.

All India Kashiraj Trust

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 1139

Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane

VARANASI (INDIA)

© *Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi*
Phone : 65889
First Edition 1989

Also can be had of
CHAUKHAMBHA VISVABHARATI
Post Box No. 1084
Chowk (Opposite Chitra Cinema)
VARANASI–221 001
Phone : 54766

Printers :—
SRIGOKUL MUDRANALAYA
Gopal Mandir Lane,
Varanasi–221 001

निवेदन

भास के बालचरित का हिन्दी-संस्कृत टीका, भूमिका तथा परिशिष्टों से समन्वित यह संस्करण अध्येताओं के समक्ष उपस्थित है। महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री द्वारा नाटकचक्र के प्रथम प्रकाशन के अनन्तर समस्त नाटकों के अनेक संस्करण तथा टीकायें प्रकाशित हुई। उसी क्रम में मेरा यह लघु प्रयास है। मेरा विचार है कि भास के समस्त नाटकों पर क्रमशः संस्कृत और हिन्दी टीकाओं को उपन्यस्त करूँ। आगे जैसी भगवदिच्छा। संस्कृत टीका इस नाटक की प्रधानतः श्लोकों की है। शेषांश को सरल समझ कर उस पर अधिक विचार नहीं किया गया। भूमिका और परिशिष्टों में अध्ययनोपयोगी सामग्री का संकलन किया गया है। प्रूफ संशोधन में मेरे सहकर्मी पं० कृपासिन्धु शर्मा ने मेरा सहयोग किया है। परिशिष्ट में मेरे ज्येष्ठ चिरंजीवि संजय कुमार राय का सहयोग रहा है। मेरे सतत प्रेरणादायक और हितैषी प्रो० देवेन्द्रकुमार राय का सतत सहयोग रहता है। इन सभी महानुभावों का मैं अधमर्ण हूँ। चौखम्बा संस्कृत संस्थान के अधिपति श्रीमोहनदास गुप्त और उनके चिरंजीवि राजेन्द्रजी का सहयोग तो आवश्यक ही था। आशा है व्रजनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण का संकीर्तक बालचरित का यह संस्करण अपने उद्देश्य में सफल होगा।

काशी
रथयात्रा, २०४६ वि०
१।७।८९

गंगासागर राय

भासप्रशस्तयः

१--सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—बाणभट्ट, हर्षचरित १।१५

२--भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—राजशेखरः

३--सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

--दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

४--भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

५--प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ॥

--कालिदास —विक्रम वंशीय

६—भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हरिचन्द्रे च आनन्दे ॥

--गउडवहो

भूमिका

भास : एक परिचय

संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास में नाटककार भास का महत्त्व सुतरां सर्वातिशायी है और संस्कृत के महनीय कवियों ने भास की महत्ता को प्रशस्त शब्दों में स्वीकार किया है। न केवल प्राचीनता अपितु लोकप्रियता की दृष्टि से भी भास के नाटक अपनी विशिष्टता से संस्कृत-साहित्य कोज ाज्वल्यमान बनाये हुए हैं। संस्कृत-काव्य के उस प्रारम्भिक युग में जब कि नाटक की विधा अपनी अवस्थिति को पुष्ट आधार पर अवस्थित न कर पायी थीं कि भास ने इतने प्रौढ़, सरस और सरल नाटकों का निर्माण कर उन्हें पञ्चम वेद के रूप में प्रतिष्ठापित किया। आसेतु हिमालय और पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक भास की मसृण कीर्तिकौमुदी काल की बाधा को बाधित करती हुई विगत प्राय: दो सहस्र वर्षों से निरन्तर सहृदयों का हृदयावर्जन करती आ रही है।

भास के नाटकों की प्रसिद्धि इतनी व्यापक थी और संस्कृत के सभी अध्येता इससे इतने अभिभूत थे कि उनका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते थे। उनकी महत्ता का परिचय कुछ महत्त्वशाली लेखकों के अधोनिर्दिष्ट उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा—

(१) संस्कृतसाहित्य के सर्वोत्कृष्ट महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में सूत्रधार से प्रश्न कराया है कि भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि भूतकाल के यशस्वी कवियों की कृतियों के रहते वर्तमानकाल के कालिदास की कृति में इतना आदर क्यों ?—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।—प्रस्तावना

(२) प्रख्यात गद्यकार बाणभट्ट ने हर्षचरित में बताया है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं, विस्तृत भूमिका वाले होते हैं तथा पताका से युक्त होते हैं। इसलिए ये देवकुल (देवालय) जैसे होते हैं—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित

यहाँ यह ध्यातव्य है कि सामान्यतया संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नान्दी से होता है, पर भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं--यह सूचना मात्र होती है कि नान्दी समाप्त हो चुकी है। भास की यह विशिष्टता बाणभट्ट के समीक्षक हृदय को आकृष्ट किये बिना नहो रही।

(३) प्राकृत के महाकवि वाक्पतिराज ने अपने महाकाव्य 'गउडवहो' में भास को 'ज्वलनमित्र' कहा है जिसका अर्थ है अग्नि का मित्र। विद्वानों की धारणा है कि स्वप्नवासवदत्ता में स्वप्नवासवदत्ता के जलकर मर जाने की मिथ्या वार्ता प्रसारित कर नाटच-वस्तु-विकास को जो उपयुक्त एवं हृदयग्राही अवसर प्रदान किया गया उसीसे अभिभूत होकर वाक्पतिराज ने भास को ज्वलनमित्र कहा--

मासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुचारे।
सौबन्धवे अ बन्धम्भि हारियन्दे अ आणन्दे ॥--गउडवहो ८००

(४) जयदेव ने भास की कविता का हास्य बताया है। भास के नाटकों में हास्य की योजना बड़ी ही कुशलता से की गई है। हास्य के उद्धत और सुकुमार दोनों प्रकारों की योजना भास ने बड़ी ही विशिष्टता के साथ विनिबद्ध की है। उद्धत हास्य के लिए प्रतिज्ञायौगन्धरायण के विदूषक की श्लिष्ट भाषा तथा सुकुमार हास्य के लिए अन्य नाटकों मे प्राप्त औदरिक विदूषकों के वचन उदाहरण में द्रष्टव्य हैं। जयदेव का अनर्घराघव मे प्राप्त वह पद्य इस प्रकार है-

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय ॥--अनर्घराघव

(५) दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी में बताया है कि भास के रूपकों में मुख और प्रतिमुख सन्धियाँ स्पष्टतः भासित होती है तथा भास ने अनेक वृत्तियों का आश्रय लेकर विविध भाव-दशाओं का सफल प्रदर्शन किया है।

(६) राजशेखर ने आख्यान के रूप में उपन्यस्त किया है कि विदग्धों ने भास की वासवदत्ता को अग्नि में प्रक्षिप्त कर दिया पर अग्नि भी वासवदत्ता को दग्ध नहीं कर सका--

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।--काव्यमीमांसा

(७) नाट्यदर्पणकर्ता रामचन्द्रगुणचन्द्र ने भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है--

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।

--नाट्यदर्पण

इससे यह स्पष्टतः अवभासित होता है कि रामचन्द्रगुणचन्द्र के समय (१२ वीं सदी) में भास के नाटक और विशेषतः स्वप्नवासवदत्ता प्रसिद्धि की चरम स्थिति में थे।

(८) इसी सदी के अन्य आचार्य शारदातनय ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रकरण में भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है ।

(९) आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर अपनी टीका में 'क्वचित् क्रीडा यथा वदत्तायाम्' कहकर भास को स्वप्नवासवदत्ता का निर्देश किया है ।

(१०) भोज ने शृङ्गारप्रकाश में--वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः--कहकर स्वप्नवासवदत्ता से अपना पूर्व परिचय बताया है ।

(११) अमरकोशटीकासर्वस्व में टीकाकार सर्वानन्द ने उदयन एवं वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है । यह भास के नाटक का ही निर्देश हो सकता है ।

(१२) जयानक ने पृथ्वीराजविजय में कहा है कि व्यास तथा भास के श्रेष्ठत्व के विवाद में दोनों की सर्वोत्तम कृतियाँ अग्नि को समर्पित कर दी गयी । भासकृत विष्णुधर्म अग्नि में नहीं जल सका । इस व्याख्या की यथार्थता के विषय में व्यास को महर्षि व्यास मानने पर सन्देह होना स्वाभाविक है । क्योंकि एक तो कालक्रम की दृष्टि से महान् अन्तर, दूसरे व्यास उपजीव्य हैं और तीसरे भासकृत विष्णुधर्म की अप्राप्ति है ।

राजशेखर का यह उल्लेख कि स्वप्नवासवदत्ता को अग्नि भी न जला सका; भी इसके विरोध में पड़ता है । अतः यही स्वीकार करना ज्यादा संगत

हैं कि राजशेखर के समय में यह जनश्रुति पर्याप्त प्रचलित थी और भास की स्वप्नवासवदत्ता अत्यन्त लोकप्रिय कृति थी और उसकी महत्ता लोक में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी।

इन उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि कालिदास के समय या उससे पूर्व से भास की प्रसिद्धि अत्यन्त व्यापक रूप से हो गयी थी और संस्कृत के कवि तथा नाटककार उनका अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख करते थे।

भास के नाटकों का प्रकाशन—संस्कृत के कवियों द्वारा इस प्रकार से सम्मानित और उद्धृत भास के नाटक कालचक्र से एकदम दुष्प्राप्य हो गये। उनका उल्लेख केवल कविवचनों और सूक्तियों तक ही सीमित हो गया था। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उठता है कि जब भास के नाटक इतने प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय थे तो सहसा प्रचार से क्यों दूर हो गये। इस प्रश्न का उचित समाधान तो नहीं हो सका है पर विद्वानों ने कुछ तर्क दिये हैं जिनका सारांश यह है कि उत्तर भारत में मुसलमानों के प्रसार एव शासन से वैदिक धर्म के प्रतिपादक तथा लोकप्रिय भास के नाटकों का उत्तरी भारत से उच्छेद हो गया। क्योंकि इन नाटकों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' का उपदेश है। अतः यवन ऐसे राजसिंह का शासन कब सहन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त विदेशियों से बार-बार आक्रान्त होने से उत्तर भारत के लोग नैराश्यमग्न होकर धर्म तथा दर्शन की ओर उन्मुख हो गये। फलतः उत्तरी भारत से भास के देवनागरी लेखों का अभाव हो गया।[1]

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने १९१२ ई० से भास के तेरह नाटकों का प्रकाशन किया। वे १३ नाटक इस प्रकार हैं--(१) दूतवाक्य (२) कर्णभार (३) दूतघटोत्कच (४) मध्यमव्यायोग (५) पञ्चरात्र (६) ऊरुभङ्ग (७) अभिषेक (८) बालचरित (९) अविमारक (१०) प्रतिमानाटक (११) प्रतिज्ञायोगन्धरायण (१२) स्वप्नवासवदत्तम् (१३) चारुदत्त--ये तेरह नाटक तो सर्वथा भासकृत माने जाते हैं।

इनके अतिरिक्त भास की चौदहवीं कृति 'यज्ञफल' नाम से प्रकाश में आयी है। इसे १९४१ ई० में राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने प्रकाशित किया और इसे

१, विशेष के लिए द्रष्टव्य ए, एस० पी० अय्यर कृत भास पृ० १३–१५

भासकृत बताया। यह नाटक देवनागरी-लिपि के दो हस्तलेखों पर आधृत था। किन्तु इसके प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही जयपुर के पण्डित गोपालदत्त ने इसे अपनी रचना बतायी। बाद में विद्वानों ने इसकी व्यापक खोजबीन की और पण्डित गोपाल दत्त शास्त्री के दावे को असत्य स्वीकार किया। डा० दाण्डेकर ने इस विषय पर विवेचन कर दर्शाया कि गोपाल दत्त का कथन तो मिथ्या है ही इस नाटक का प्रणयन संवत १६७० से पूर्व हो चुका था और किसी कवि ने भास के अनुकरण पर इसका प्रणयन किया। यह नाटक ७ अंकों में विभक्त है और रामजन्म से लेकर सीता-विवाह तक की कथा इसमें निबद्ध हैं। इस विषय का विस्तृत विवेचन डा० पुसालकर के ग्रन्थ 'भास : ए स्टडी' में निबद्ध है।

भास-नाटक-चक्र के सभी नाटक भासकृत हैं अथवा नहीं यह भी प्रश्न विवेचित हुआ है। प्रायः अधिकांश विद्वानों की सम्मति है कि ये सभी नाटक एक ही नाटककार द्वारा प्रणीत हैं। इसके विषय में तर्कों का सारांश इस प्रकार है—

(१) चारुदत्त को छोड़कर सभी नाटक 'नान्द्यन्ते' से प्रारम्भ होते हैं।

(२) अङ्कों के मध्य में छोटे-छोटे प्रवेशकों तथा विष्कम्भकों का प्रयोग हुआ है।

(३) प्रस्तावना के स्थान पर सर्वत्र 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त है।

(४) सभी नाटकों के भरतवाक्यों (चारुदत्त तथा दूतघटोत्कच में भरतवाक्य नहीं हैं) में मही को सागरपर्यन्ता तथा हिमवद् विन्ध्यकुण्डला कहकर राजसिंह से उसके शासन की कामना की गई है।

(५) सामान्यतः भरत-प्रतिपादित नाट्यसिद्धान्तों का यहाँ उल्लंघन दृष्टिगोचर होता है क्योंकि मृत्यु, युद्ध तथा दूर से पुकारने की प्रक्रिया इन नाटकों में रंगमञ्च पर प्रदर्शित की गई है।

(६) कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थों से भिन्न रूप में हुआ है जिनमें 'आर्यपुत्र' का प्रयोग ऐसा ही है।

(७) सभी नाटकों में आकाशभाषित का प्रयोग हुआ है। कञ्चुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटकों में पुनरावृत्ति हुई है।

(८) 'प्रतिज्ञा' और 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम बादरायण है और स्वप्न, प्रतिज्ञा; अभिषेक और प्रतिमा में प्रतिहारी का नाम विजया है।

(९) कर्णभार को छोड़कर प्रायः सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना का प्रयोग हुआ है।

(१०) नाट्यनिर्देशों का अभाव या त्रुटिपूर्ण होना सामान्यतः सभी नाटकों में प्राप्त होता है।

(११) नाटककार के नाम का उल्लेख किसी भी नाटक में नहीं है और नाटक का नामोल्लेख केवल नाटक के अन्त में ही प्राप्त होता है।

(१२) नाटक में प्रयुक्त विविध छन्दों में साम्य है।

(१३) कई नाटकों में नवागन्तुक के द्वारा प्रभावशाली पद्धति में अप्रत्याशित उत्तर की उपलब्धि होती है।

अभिषेक नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि 'इन्द्रजित् ने राम-लक्ष्मण का वध कर डाला अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ?' उसी समय राक्षस आकर कहता है कि 'लक्ष्मणेन...'

इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्ता में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कौन राजपुत्र वासवदत्ता के लिए उपयुक्त वर होगा तभी कञ्चुकी सहसा आकर कहता है वत्सराज। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की आवृत्ति है; वाक्यों की भी आवृत्ति हुई है। कई नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग हुआ है। एक ही पात्र द्वारा या अन्य पात्रों द्वारा वाक्यांशों की पुनरावृत्ति हुई है, पाणिनीय नियमों का स्खलन हुआ है, भाषा तथा शैली में व्यापक साम्य है और समान सामाजिक स्थिति की प्रतीति होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नाटक एक ही नाटककार की लेखनी से प्रसूत हैं।[1]

भास का समय—भास-नाटक-चक्र के प्रणेता, संस्कृतसाहित्य के मान्य एवं प्रशस्त रचनाकार महाकवि भास के समय के विषय में नाना प्रकार के विचार और मत-मतान्तर उपलब्ध होते हैं। कोई विद्वान् तो इन्हें ईसा पूर्व चतुर्थ

---

१. नाटकों की समानता के लिए द्रष्टव्य डा० ए० डी० पुसालकर का ग्रन्थ 'भास ए स्टडी' तथा ए० एस० पी० अय्यर का ग्रन्थ—भास।

शताब्दी का रचनाकार मानता है और कोई ईसा की दशम शताब्दी में इन्हें लाकर रख देता है और कोई-कोई विद्वान् तो इस भास-नाटक-चक्र को कालिदास तथा बाणभट्ट आदि द्वारा निर्दिष्ट एवं प्रशंसित भास की रचना ही नहीं मानते, अपितु इसे वे किसी केरलीय रचनाकार द्वारा भास के नाम से रचित मानते हैं। अतः इन कालक्रमों के मूल में यह प्रश्न प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहता है कि ये नाटक मूल भासरचित हैं या नहीं। कुछ लोग समग्र रूप से इन्हें भासकृत मानते हैं और कुछ लोग पूर्ण रूप से इन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं। कुछ विद्वान् मध्यमार्ग के अनुयायी हैं और कहते हैं कुछ नाटक तो मूल भासकृत हैं और कुछ उसकी अनुकृति पर रचे गये हैं। इन सब बातों पर विचार करने पर यही निश्चित होता है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं और उनका समय कालिदास के समय पर निर्भर करता है। कुछ भी हो भास निश्चित रूप से चौथी सदी ईसा से पूर्ववर्ती हैं।

●

कथासार

इस नाटक में श्रीकृष्णजन्म से लेकर कंस-वध-पर्यन्त श्रीकृष्णचरित क संग्रथित किया गया है। प्रथम अङ्क में मङ्गलाचरण के अनन्तर रङ्गमञ्च पर देवर्षि नारद आते हैं और सूचित करते हैं कि पृथ्वी पर भगवान् नारायण का अवतार हुआ है। तदनन्तर देवकी और वसुदेव उपस्थित होते हैं——देवकी के हाथ में नवजात शिशु है। नारायण कहकर देवर्षि नारद उसको वन्दना और परिक्रमा करते हैं। देवकी और वसुदेव में वार्तालाप होता है कि इस शिशु की कंस से किस प्रकार रक्षा करनी चाहिये। वसुदेव घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि में उस बालक को लेकर निकल पड़ते हैं और यमुना के पास पहुँच जाते हैं। वे वर्षाकालीन, यमुना नदी की भयंकरता को देखकर स्तब्ध होते हैं, पर भगवान् की शक्ति और भाग्य का सहारा लेकर आगे बढ़ते हैं। यमुना नदी का जल दो भागों में विभक्त हो जाता है और वे बालक को लेकर पार कर जाते हैं। वे एक न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रुकते हैं और सोचते हैं कि अपने मित्र नन्दगोप को बालक सौंप दूँ। इसी बीच नन्दगोप मृत बच्ची को लेकर विलाप करते हुए उसे फेंकने आते हैं। उनके विलाप से उनके स्वर को पहचान कर वसुदेव उन्हें बुलाते है। पहले तो नन्दगोप प्रेतादि की आशंका से डर जाते हैं पर वसुदेव के स्वर को पहचान कर पास आते हैं। वे वसुदेव को बताते हैं कि उनकी स्त्री ने बच्ची प्रसव किया। प्रसव-वेदना से माता यशोदा बेहोश हो गई और कल उत्सव होने वाला है अतः उसमें बाधा न पड़े इसलिये रात में ही इसे फेंकने के लिये वे चले आये। यशोदा को इसकी उत्पत्ति और मृत्यु का ज्ञान नहीं हैं। वसुदेव बच्चे को ले जाने का अनुरोध करते हैं जिससे कंस से उसकी रक्षा हो सके। पहले तो नन्द अत्यन्त भयभीत होते हैं क्योंकि कंस ने उन्हें पहले भी वसुदेव से मित्रता के कारण सताया था पर वसुदेव के शपथ दिलाने पर बालक को ले जाते हैं और सम्यक् रूप से पालन-पोषण करने का आश्वासन देते हैं। मृत बच्ची भी रोने लगती है और उसे लेकर दो भागों में विभक्त यमुना को पार कर वसुदेव उसे लाकर देवकी को सौंप देते हैं।

द्वितीय अङ्क में कंस के राजप्रासाद में चाण्डाल युवतियाँ दिखाई पड़ती हैं। कंस को उद्दिष्ट कर वे निर्भय भाव से बार-बार कहती हैं कि 'आइये! स्वामिन्! आइये। हमारी कन्याओं से आपकी शादी हो।' कंस उन्हें डाँटता है पर वे निर्भीक भाव से उससे यह दुहराती हैं। पुनः वे अदृश्य हो जाती हैं। तदनन्तर मधूक ऋषि का वज्रबाहु नामक शाप प्रवेश करता है। वह भयंकर चाण्डाल वेश में है। वह कहता है कि राजा में प्रवेश करूँगा। कंस उसे डाँटकर कहता है कि यह असंभव है। शाप कहता है कि यह तो समय ही बतायेगा। पुनः कंस सो जाता है। तब शाप उसके शरीर में प्रवेश करता है। राज्यश्री उसे ऐसा करने से रोकती है पर शाप बताता है कि ऐसी श्री विष्णु की आज्ञा है। श्री विष्णु की आज्ञा सुनकर राज्यश्री कंस का त्याग कर चली जाती है। राज्यश्री के त्याग करने पर अलक्ष्मी, खलति, कालरात्रि, महानिद्रा, पिङ्गलाक्षी कंस में प्रवेश करती हैं और मधूक ऋषि का शाप दृढ़ता से कंस को पकड़ता है। प्रातःकाल कंस रात्रि में हुए पृथ्वीकंप आदि भयंकर उत्पातों और अपशकुनों का फल ज्योतिषी और पुरोहित से पूछता है। वे दैवी विभूति के प्रादुर्भाव की घोषणा करते हैं। प्रातःकाल कंस पता लगाता है कि ऐसा किसके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है। कंचुकी वसुदेव की पुत्री के जन्म का समाचार बताता है। कंस को संदेह होता है कि पुत्री के जन्म पर ऐसा उत्पात कैसे? वह वसुदेव को बुलाकर पूछता है और वसुदेव भी संकल्प-विकल्प के बाद पुत्री—जन्म की ही बात बताते हैं। देवकी और वसुदेव उस बच्ची को न मारने का अनुरोध कंस से करते हैं पर कंस इस अनुरोध को अस्वीकार कर बच्ची को कंसशिला पर पटकता है। उसके हाथ से छूटते ही बच्ची का आधा अंश पृथ्वी पर और आधा आकाश में चला जाता है। आकाश में जाकर वह कात्यायनी बन जाती है और कहती है कि मैं शुम्भ-निशुम्भ, महिषासुर आदि राक्षसों का वध करनेवाली कात्यायनी हूँ। जो वसुदेव के वंश में उत्पन्न हुई हूँ। पुनः देवी कात्यायनी के परिवार कुण्डोदर, शङ्कुकर्ण, महानील और मनोजव प्रकट होकर अपना-अपना परिचय देते हैं। भगवती उनसे कहती हैं कि गोपालों के वेष में प्रच्छन्न भगवान् विष्णु के बाल-चरित का अनुभव करने के लिये घोष में अवतरित होवें। इस प्रातःकालिक घटना के बाद राजा कंस शान्तिकर्म संपन्न करने के लिये शान्तिगृह में जाने को कहता है।

तृतीय अङ्क में वृद्धगोपालक और दामक के संवाद से ज्ञात होता है कि जब से नन्दगोप को पुत्र उत्पन्न हुआ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है; मङ्गल की अभूतपूर्व वृद्धि हो गयी है। गोधन सुखी और नीरोग हो गये, वृक्ष फूल-फल से लद गये दुग्ध से घृत की मात्रा बढ़ गयी है। सर्वत्र मधु की वृद्धि हो गयी है। नन्दकुमार ने जन्म के दसवें दिन ही पूतना राक्षसी का वध कर दिया। एक मास की आयु, में शकट दानव का वध कर दिया। एक मास की अवस्था प्राप्तकर घर-घर दुध-दही खाना प्रारम्भ कर दिया जिससे गोपियों की शिकायत पर यशोदा ने पुत्र क ओखली में बाँध दिया। उससे उसने यमलार्जुल नामक दो दानवों का वध कर दिया। कुछ बड़े होने पर नन्दगोप का वेष बनाये हुए, प्रलम्ब नामक असुर का संकर्षण ने वध किया। तालवन में गदहे का वेष धारण किये हुए धेनुक नामक दानव का दामोदर ने वध किया। इसके बाद दामोदर ने केशी नामक दानव का वध किया जो अश्वरूप में आया था। इस प्रकार दामोदर ने वृन्दावन में अनेकों लीलायें कीं। उनके वार्तालाप से यह भी ज्ञात होता है कि आज हल्लीसक नृत्य होने वाला है जिसमें नाना प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र से विभूषित गोपियों कृष्ण के साथ नृत्य करेंगी। वे नृत्य के लिये प्रस्तुत होकर तन्मयता से हल्लीसक नृत्य करते हैं। इसी बीच अरिष्टर्षभ नामक एक असुर उपस्थित होता है। कृष्णा सभी को वहाँ से हटा कर युद्ध के लिये प्रस्तुत होते हैं। कृष्ण को निर्भीक देख-कर वह कृष्ण से उनकी दुर्बलता का निर्देश करता है। पर कृष्ण उससे कहते हैं कि वे एक पैर पर खड़े हो जाते हैं जिसको वह दानव हिला दे। अरिष्टर्षभ वैसा करता है, पर कृष्ण जरा भी कम्पित नहीं होते वह दानव वहीं मूछित होकर गिर जाता है। पुनः चेतन होकर वह निश्चय करता है कि निश्चय ही यह बालकरूप-धारी श्रीविष्णु हैं। अतः इनके साथ युद्ध में मृत्यु निश्चित है जो श्रेयस्कर है। अतः वह कृष्ण के साथ युद्ध करेगा। वह युद्ध कर कृष्ण के हाथों मारा जाता है। इसी अंक में यह निर्देश किया है कि दामक बताता है कि यमुना नदी में भयंकर कालिय नाग फन उठाये हैं। कृष्ण उसे निस्तेज करने का निर्णय करते हैं जिससे गौ-ब्राह्मण की रक्षा हो सके।

चतुर्थ अंक में ज्ञात होता है कि कृष्ण यमुना के कालिय ह्रद में प्रवेश करने जा रहे हैं। भयाक्रान्त गोपाङ्गनायें उन्हें ऐसा न करने के लिये आग्रह कर रही

हैं। संकर्षण उन्हें आश्वस्त करते हैं कि श्रीकृष्ण नाग का दमन कर सकुशल आयेंगे। श्रीकृष्ण कालिय नाग के फन पर आरुढ हो जाते हैं। पहले तो कालिय दर्पपूर्ण बातें करता है और श्रीकृष्ण को जला देवे की धमकी देता है पर श्रीकृष्ण के बल प्रभाव से वह अत्यन्त पराभूत होकर शरणागत होता है। उसकी दाहिका शक्ति श्रीकृष्ण के सामनें व्यर्थ हो जाती है। श्रीकृष्ण उससे उसके यमुना में विवास का कारण पूछते हैं जिस पर वह गरुड का भय बताता है। श्रीकृष्ण उसे आश्वस्त करते हैं कि उनके पद-चिह्नों को देखकर गरुड उसे नहीं सतायेंगे कालिय यमुना से निकलकर सपरिवार चला जाता हैं। श्रीकृष्ण ह्रद से लाये पुष्पों को गोप-गोपियों को देते हैं और व्रज को सदासर्वदा के लिये कालिय को विषज्वाला से मुक्त करते हैं। इसी अंक में कंस के द्वारा हो रहे धनुर्यज्ञ का भी संकेत मिलता है जिसमें श्रीकृष्ण आहूत हैं। श्रीकृष्ण मथुरा में होनेवाले इस उत्सव में सम्मिलित होने का निर्णय करते हैं और वहाँ कंस को गिराकर मारवे की प्रतिज्ञा करते थे।

पंचम अंक में कंस को अतीव प्रसन्नता है कि वह धनुर्महोत्सव के बहावे श्रीकृष्ण को मथुरा बुलाकर मल्लशाला के मल्लों से उन्हें मरवा डालेगा। वह ध्रुवसेन से पुनः पुनः श्रीकृष्ण के आने की सूचना चाहता है। ध्रुवसेन उसे बताता है कि श्रीकृष्ण ने मथुरा में प्रवेश करते ही धोबियों से वस्त्र छीन लिये जिसे जानकर महामंत्री वे कुवलयापीड नामक मत्त गजराज को उसे मारवे के लिये भेजा। श्रीकृष्ण ने उसके दाँत को उखाड़ कर उसे मार डाला। फिर आगे आने पर मदनिका नामक कुब्जा से गन्ध छीनकर अपवे शरीर में लगा लिया और उसके कुब्जत्व को ठीक कर दिया। फिर मालियों से मालायें छीनकर आगे बढ़-कर धनुःशाला में प्रवेश कर धनुःशाला रक्षक सिंहबल को मारकर धनुष को दो टुकड़े में तोंडकर फेंक दिया। पुनः कंस की सभा में वे प्रवेश करते हैं, इसी समय कंस चाणूर और मुष्टिक नामक दो पहलवानों को बुलाकर कृष्ण और सक-र्षण से युद्ध के लिये संनद्ध करता है। उन दोनों का कृष्ण और बलराम से मल्लयुद्ध होता है। कृष्ण चाणूर का और बलराम मुष्टिक का मल्लयुद्ध में वध कर डालते हैं। फिर प्रासाद पर आरूढ़ होकर कंस के केश को पकड़ कर नीचे पटक कर मार डालते हैं। इसी बीच वृष्णिवंश के योद्धा वहीं युद्ध के लिये संनद्ध होकर

आ जाते हैं। इसी समय वसुदेव भी वहाँ आ जाते हैं और योद्धाओं को बताते हैं कि वे राम और कृष्ण उन्ही के पुत्र हैं। सभी मृतकों के शरीर हटा दिये जाते हैं। महाराज उग्रसेन कारागार से मुक्त किये जाते हैं और उनका राज्याभिषेक होता है। नारद आकर श्रीकृष्ण की पूजा और स्तुति करते हैं। उनके साथ गन्धर्व और अप्सरायें भी हैं। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

चरित्र-चित्रण

श्रीकृष्ण—इस नाटक के नायक श्रीकृष्ण हैं जो प्रायः दामोदर नाम से अभिहित किये गये हैं। वे साक्षात् भगवान् विष्णु के अवतार हैं और रक्षोवधाय तथा भूभारहरणाय नररूप में अवतरित होते हैं। देवर्षि नारद के कथन से नाटक के आरम्भ में ही ज्ञात होता है कि लोकों के भय को दूर करनेवाले दैत्यों के, विनाशक चक्रपाणि देवगुरु नारायण देवकी के यहाँ प्रादुर्भूत हुए हैं। वे अन्तवीर्य कमलनेत्र इन्द्र के स्वामी, असुरों के पराक्रमहन्ता, संसार के निर्माता और लोगों के भरणकर्ता हैं (१।५-७)। उनका संपूर्ण जीवन अलौकिक घटनाओं का समवाय है। उनके जन्म के समय ही वसुदेव के हाथ में गिरिगुरु होते हुए भी हल्के होकर चले जाना, यमुना नदी का दो भागों में विभक्त हो जाना, नन्द-दारिका का पुनः जीवित हो जाना, असुरों का वध इत्यादि सर्वत्र उनकी अलौकिक शक्ति के परिचायक हैं। उनके संपूर्ण कृत्य लौकिक रूप में अलौकिक दैवीशक्ति से आपूर्ण हैं और नाटककार उनके दैवीरूप को सर्वत्र द्योतित करता रहता है। नाटक की समाप्ति में भी देवर्षि नारद देवसमूह के साथ उनके उस नारायणरूप की ही स्तुति करते हैं—

नारायण नमस्तेऽस्तु प्रणमन्ति च देवताः।
अनेनासुरनाशेन मही च परिरक्षिता॥ ५।१८

संक्षेप में दामोदर मानवशरीर में भी समस्त अलौकिक शक्तियों और दिव्य विभूतियों से मण्डित हैं और अपनी अलौकिक लीलाओं से लोकहितकारी कार्यों को संपन्न करते हैं।

संकर्षण—बलराम भी अलौकिक शक्तियों से मण्डित हैं। अपने अलौकिक रूप और बल से वे सभी को अभिभूत करते रहते हैं। इनका चरित्र दामोदर के सहायक के रूप में ही चित्रित हुआ है पर जब उनका रूप सामने आता है तो

भासनाटकचक्रे

बालचरितम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

शङ्खक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णुः सुवर्णप्रभः ।

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम् ।
गणेशं प्रथमं वन्दे सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥
प्रणम्य देवकीसूनुं गोपगोपीसमन्वितम् ।
भक्तार्तिशमनं कृष्णं कुर्वे टीकां यथामति ॥ २ ॥
एतत्तु बालचरितं कृष्णलीलासमन्वितम् ।
भासेन रचितं नाट्यं लोकानन्दकरं शुभम् ॥ ३ ॥
तस्य टीका मयेयं तु गङ्गासागरशर्मणा ।
रामवर्णात्मजेनाथ क्रियते स्वात्मतुष्टये ॥ ४ ॥

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—प्राचीनकाल में सत्ययुग में जो शङ्ख तथा क्षीर (के समान श्वेत) शरीरधारी नारायण, त्रेता में सुवर्ण के समान (पीत) शरीरधारी तीन पैरों से (वामन रूप में) नापने वाले विष्णु, द्वापर युग में दूर्वा (श्याम) के समान

दूर्वाश्यामनिभः स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
नित्यं योऽञ्जनसन्निभः कलियुगे वः पातु दामोदरः ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये, किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग ! पश्यामि।

यस्मै पत्रं च पुष्पं च भक्त्या दत्तं सुखावहम्।
अनेन बालचेष्टेन सोऽयं प्रीणातु माधवः ॥ ५ ॥

अन्वयः—पुरा कृतयुगे शङ्खक्षीरवपुः नाम्ना तु नारायणः त्रेतायां सुवर्णप्रभः विष्णुः त्रिपदार्पितत्रिभुवनः द्वापरे युगे रावणवधे दूर्वाश्यामनिभः स रामः कलियुगे यः नित्यम् अञ्जनसन्निभः स दामोदरः वः पातु ॥ १ ॥

व्याख्या—पुरेति। पुरा = प्राचीने काले, कृतयुगे = सत्ययुगे, शङ्खक्षीरवपुः शङ्खश्च क्षीरं च शङ्खक्षीरे तयोरिव धवलं वपुः=शरीरं यस्य सः नाम्नाऽभिधानेन तु नारायणः = क्षीरशायी जनार्दनः 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः'॥ इति वराहपुराणवचनम् (२।२४)। त्रेतायां = त्रेतायुगे, सुवर्णप्रभः = स्वर्णसदृशः विष्णुः=सर्वव्यापी त्रिपदार्पितत्रिभुवनः, त्रिपदैः = त्रिक्रमणैः अर्पितं=दत्तं देवराजायेत्यर्थः, त्रिभुवनं = त्रैलोक्यं येनासौ स वामनरूपधारी द्वापरे युगे = रावणवधे दूर्वाश्यामनिभः = दूर्वाश्यामसदृशः; स रामः = काकुत्स्थो दाशरथिः कलियुगे=तुरीये युगे यः नित्यम् अञ्जनसन्निभः = कज्जलवर्णः सः दामोदरः = दाम रज्जुरुदरे यस्य सः = श्रीकृष्णः वः = सामाजिकान् सर्वदा पातु = रक्षतु। सर्वव्यापी एक एव भगवान् विष्णुः कृतादिचतुर्युगेषु विविधनामभिः रूपैश्चावतीर्य जगतो रक्षणं जगद्विध्वंसिनां विनाशं च करोति। तस्य कृतादिषु चतुर्युगेषु क्रमशः श्वेतपीतश्यामकृष्णवर्णाश्च भवन्ति। अत्र दाशरथे रामस्य द्वापरेऽवस्थितिश्चिन्त्यम् ॥ १ ॥

शरीरवाले, रावणवध में राम एवं कलियुग में अञ्जन (कज्जल) के समान श्याम दामोदर आप (दर्शक) लोगों की नित्य रक्षा करें ॥ १ ॥

अच्छा तो मैं आर्य मित्रों में (सभ्यों) को सूचित करूँ। अरे, मेरे सूचना देने में व्यस्त होने पर शब्द जैसा सुनाई पड़ रहा है। अच्छा ! तो मैं देखूं।

(नेपथ्ये)

अहं गगनसञ्चारी ।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

पतत्यसौ पुष्पमयी च वृष्टिर्नदन्ति तूर्याणि च देवतानाम् ।
द्रष्टुं हरिं वृष्णिकुले प्रसूतमभ्यागतो नारद एष तूर्णम् ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(ततः प्रविशति नारदः ।)

नारदः—

अहं गगनसञ्चारी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।

अङ्गेति संबुद्धौ; गगनसञ्चारी = गगने आकाशे संचरितुं शीलमस्य ।

अन्वयः—असौ पुष्पमयी वृष्टिः पतति देवतानां तूर्याणि च नदन्ति । प्रसूतं हरिं द्रष्टुम् एष नारदः तूर्णमागतः ॥ २ ॥

व्याख्या—असौ = पुरो दृश्यमाना, पुष्पमयी वृष्टिः खात् पतति देवतानां तूर्याणि = वाद्यविशेषाणि नदन्ति = गर्जन्ति । वृष्णिकुले = वृष्णेर्वंशे प्रसूतं = जातमुत्पन्नं [हरिं = श्रीकृष्णं द्रष्टुं देवर्षिर्नारदस्तूर्णं = शीघ्रतया आगतः ॥ २ ॥

(नेपथ्य में)

मैं गगनसंचारी (आकाशचारी) हूं ।

सूत्रधार—ठीक है । ज्ञात हो गया ।

यह पुष्पों की वृष्टि गिर रही है । देवताओं का तूर्य (तुरही) जब रहा है । वृष्णिकुल में उत्पन्न भगवान् विष्णु को देखने के लिये शीघ्रता से नारद आये हैं ॥ २ ॥

(निकल जाता है)

स्थापना

(तदनन्तर नारद प्रवेश करते हैं)

नारद—कलहप्रिय, आकाशचारी त्रैलोक्य में विख्यात मैं नारद ब्रह्मलोक से यहां आया हूं ॥ ३ ॥

ब्रह्मलोकादिह प्राप्तो नारदः कलहप्रियः ॥ ३ ॥

भोः !

क्षीणेषु देवासुरविग्रहेषु नित्यप्रशान्ते न रमेऽन्तरिक्षे ।
अहं हि वेदाध्ययनान्तरेषु तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि ॥४॥

अपि च,

भक्तिः परा मम पितामहभाषितेषु
सर्वाणि मे बहुमतानि तपोवनानि ।

अन्वयः—त्रिषु लोकेषु विश्रुतः अहं गगनसञ्चारी कलहप्रियः नारदः ब्रह्मलोकात् इह प्राप्तः ॥ ३ ॥

व्याख्या—अहं त्रिषु = स्वर्गमर्त्यपातालेषु लोकेषु = भुवनेषु, विश्रुतः = प्रथितः गगनसंचारी—गगने = आकाशे चरितुं शीलमस्येति आकाशचारी, कलहप्रियः = कलहो विग्रहः प्रियो यस्य तथोक्तः नारदः = देवर्षिः ब्रह्मलोकात् = ब्रह्मणो भुवनात् इह = मर्त्यलोके अस्मिन् स्थाने प्राप्तः = आगत इत्यर्थः ॥ ३ ॥

अन्वयः—देवासुरविग्रहेषु क्षीणेषु नित्यप्रशान्ते अन्तरिक्षे न रमे । वेदाध्ययनान्तरेषु अहं तन्त्रीः च वैराणि च घट्टयामि ॥ ४ ॥

व्याख्या—देवासुरविग्रहेषु = देवासुरसंग्रामेषु क्षीणेषु = नष्टेषु नित्यप्रशान्ते = नित्यशान्तियुक्ते अन्तरिक्षे व्योम्नि न रमे = सुखानुभवं न करोमि । वेदाध्ययनान्तरेषु = वेदानामध्ययनानि तेषाम् अन्तरेषु = अवकाशेषु वेदाध्ययनविरामकालेषु अहं तन्त्री = वीणाया अयोमयानि सूत्राणि, वैराणि = कलहांश्च, संघट्टयामि = पेषयामि (तन्त्रीपक्षे), योजयामि (वैरपक्षे) ॥ ४ ॥

अन्वयः—मम पितामहभाषितेषु परा भक्तिः । मे सर्वाणि तपोवनानि बहुमतानि । सत्यं ब्रवीमि यत् करजाग्रहता वीणा, वैराणि भीमकठिनाः कलहाश्च मे प्रियाः ॥ ५ ॥

ऐ ! देवासुरयुद्ध के समाप्त होने पर मैं नित्य शान्त अन्तरिक्ष (आकाश) में रमण करता हूँ । वेदाध्ययन के अन्तराल में मैं (वीणा के) तारों और वैरों को रगड़ता हूँ ॥ ४ ॥

और भी—पितामह के वचनों (वेदों) में मेरी चरम कोटि की भक्ति है

सत्यं ब्रवीमि करजाग्रहता च वीणा
वैराणि भीमकठिनाः कलहाः प्रिया मे ॥ ५ ॥

तद् भगवन्तं लोकादिमनिधनमव्ययं लोकहितार्थे कंसवधार्थे वृष्णिकुले प्रसूतं नारायणं द्रष्टुमिहागतोऽस्मि। अये, इयमत्रभवती देवकी मायया शिशुत्वमुपागतं त्रिलोकेश्वरं प्रगृह्य वसुदेवेन सह शनैः स्वगृहान्निष्क्रामति। येषा,

लोकानामभयङ्करं गुरुं सुराणां
दैत्यानां निधनकरं रथाङ्गपाणिम्।

व्याख्या—मे = मम नारदस्य, पितामहभाषितेषु—पितामहस्य = ब्रह्मणो भाषितेषु = वचनेषु वेदेष्वित्यर्थः। परा भक्तिः = श्रेष्ठा भक्तिः। मे = मम सर्वाणि तपोवनानि=तपसः काननानि, तपःस्थानान्यरण्यानि, बहुमतानि = आदरपात्राणि प्रियाणीत्यर्थः। अहम् एतत् सत्यं ब्रवीमि = वदामि यत् करजाग्रहता वीणा = अङ्गुल्यग्रताडिता वीणा वैराणि = परस्परं मनोमालिन्यानि भीमकठिनाः = अत्यन्तभयंकराः कलहा विग्रहाश्च मे प्रियाः ॥ ५ ॥

भगवन्तं = षडैश्वर्यसमन्वितं भगवन्तं=जनार्दनम्। लोकादिम् = लोकानां मूलकारणम्। अनिधनं = विनाशरहितम्। अव्ययं = व्ययरहितम् अपरिवर्तनशीलं। नारायणं—नारेषु = जलेषु शयितारम्।

अन्वयः—लोकानामभयंकरं, सुराणां गुरुं दैत्यानां निधनकरं रथाङ्गपाणि शोकार्ता प्रशास्ता शशिवदना निशि बाहुभ्यां मन्दरं गिरिमिव वहन्ती या एषा (वर्तते) ॥ ६ ॥

व्याख्या—लोकानां = जगताम् अभयङ्करम् = अभयकर्तारं सुराणां = देवानां

और सभी तपोवन मेरे लिये प्रिय हैं। मैं सत्य कहता हूँ। उँगलियों से बजायी गयी वीणा, शत्रुताएँ एवं अत्यन्त भयंकर तथा कठिन कलह मुझे प्रिय हैं ॥५॥

तो मैं लोकहितार्थ कंसवध के लिये वृष्णिकुल में उत्पन्न, लोकों के आदि, अन्त तथा व्यय (विकाररहित) भगवान् नारायण को देखने यहाँ आया हूँ। अरे! अरे! ये भगवती देवकी माया से बालक बने त्रैलोक्यनाथ को लेकर वसुदेव के साथ धीरे-धीरे अपने घर से निकल रहीं हैं। ये—

लोकों को अभय करनेवाले, देवताओं के गुरु, दैत्यों के नाशक, चक्रधारी

शोकार्ता शशिवदना निशि प्रशान्ता
बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ती ॥ ६ ॥

एष भगवान् नारायणः,

अनन्तवीर्यः कमलायताक्षः सुरेन्द्रनाथोऽसुरवीर्यहन्ता ।
त्रिलोककेतुर्जगतश्च कर्ता भर्ता जनानां पुरुषः पुराणः ॥ ७ ॥

हन्तैतदुत्पन्नं कलहस्य मूलम् । यावदहमपि भगवन्तं नारायणं प्रद-

---

गुरुं = श्रेष्ठं पूज्यमादिमित्यर्थः, दैत्यानां = दितिवंश्यानां निधनकरं = नाशकं रथाङ्गपाणिं = चक्रहस्तं शोकार्ता = पूर्वपुत्राणां कंसकर्तृकवधेन सद्योजातस्य च वधाशङ्कया शोकाकुला, प्रशान्ता = खिन्ना शनैः शशिवदना = चन्द्रमुखी निशि = निशीथे बाहुभ्यां मन्दरं = गिरिमिव इमं = शिशुं धारयन्ती एषा देवकी वर्तते ॥ ६ ॥

अन्वयः—एषं भगवान् नारायणः अनन्तवीर्यः कमलायताक्षः सुरेन्द्रनाथः असुरवीर्यहन्ता त्रिलोककेतुः जगतः च कर्ता जनानां भर्ता पुराणः पुरुषः ॥ ७ ॥

व्याख्या—एष = देवकीवसुदेवयोः पुत्रभूतः = भगवान् नारायणः अनन्तवीर्यः—अनन्तं निःसीमं वीर्यं पराक्रमो यस्य सः = निस्सीमपराक्रमः, कमलायताक्षः—कमले इव आयते विस्तीर्णे अक्षिणी यस्य सः = कमलविशाललोचनः, सुरेन्द्रनाथः—सुरेन्द्रस्य देवेन्द्रस्य नाथः स्वामी, असुरवीर्यहन्ता—असुराणां राक्षसानां वीर्यस्य पराक्रमस्य हन्ता विनाशकः, त्रिलोककेतुः—त्रिलोकस्य केतुः = शीर्षभूतः, जगतः = संसारस्य च कर्ता = निर्माता, जनानां = लोकानां भर्ता = भरणकर्ता पुराणः = प्राचीनः ॥ ७ ॥

कलहस्य = विग्रहस्य । प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणां कृत्वा । त्रैलोक्यकारणाय = त्रैलोक्यस्य निर्माणकर्त्रे ।

(भगवान् विष्णु को) ये शोकार्त तथा शान्त चन्द्रमुखी (देवकी) दोनों बाहों से मन्दर के समान धारण कर रही हैं ॥ ६ ॥

ये भगवान् नारायण !

अनन्तवीर्य (अनन्तशक्ति), कमल के समान विस्तृत नेत्रवाले, देवराज के स्वामी, असुरों के वीर्य के नाशक, त्रैलोक्य में श्रेष्ठ, जगत् के कर्ता मनुष्यों [भक्तों] के भरणकर्ता तथा पुराणपुरुष हैं ॥ ७ ॥

अहा ! यह कलह का मूल उत्पन्न हो गया । तो मैं भी भगवान् नारायण

क्षिणीकृत्य ब्रह्मलोकमेव यास्यामि । नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय ।

नारायणाय नरलोकपरायणाय
लोकाननाय कमलामललोचनाय ।
रामाय रावणविरोचनपातनाय
वीराय वीर्यनिलयाय नमो वराय ॥ ८ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति बालहस्ता देवकी ।)

देवकी—हद्धि, पुत्तअस्स मे महाणुभावत्तणं सूअइस्सन्दाणि जम्मसम- असमुब्भूदाणि महाणिमित्ताणि पच्चक्खीकरअन्ती अवि कंसहदअणिसं- सत्तणं चिन्तअन्ती सुट्ठु ण पच्चआमि मन्दभाइणी । कहिं णु गदो अय्य- उत्तो । (परिक्रम्य अग्रतो विलोक्य) अम्मो, एसो अय्यउत्तो हरिसविम्ह- अफुल्लणअणो इदो एव्व आअच्छदि । [हा धिक्, पुत्रकस्य मे महानुभावत्वं

अन्वयः—नारायणाय, नरलोकपरायणाय, लोकाननाय, कमलामललोचनाय रामाय रावणविरोचनपातनाय वीराय वीर्यनिलयाय वराय नमः ॥ ८ ॥

व्याख्या—नारायणाय=जलशायिने विष्णवे, नरलोकपरायणाय नरलोकः= मनुष्यलोकः परम् अयनं = स्थानं यस्य तस्मै मनुष्यलोकरक्षकायेत्यर्थः, लोकाननाय लोको = भुवनम्, आननं=मुखं यस्य तस्मै लोकमुखाय, कमलामललोचनाय—कमले इव अमले = स्वच्छे लोचने – नेत्रे यस्य सः तस्मै = कमलस्वच्छनेत्राय रामाय= लोकरमणीयाय भगवते = दशरथसूनवे, रावणविरोचनपातनाय—रावणस्य=पौल- स्त्यस्य दशाननस्य, विरोचनस्य = प्रह्लादपुत्रस्य विरोचननामकासुरस्य पातनाय वीराय = पराक्रमशालिने वीर्यनिलयाय—वीर्यस्य = पराक्रमस्य निलयः=वासस्थानं तस्मै वराय = श्रेष्ठाय भगवते नमः ॥ ८ ॥

की प्रदक्षिणा कर ब्रह्मलोक चलूँ । त्रैलोक्य के कारण भगवान् को नमस्कार है ।

नारायण, नरलोक के आश्रय, लोकों के मुख (श्रेष्ठ), कमल के समान निर्मल नेत्रवाले, रावण तथा विरोचन को मारने वाले, वीर, वीर्य [पराक्रम] के आश्रय श्रेष्ठ राम (भगवान् विष्णु) को नमस्कार है ॥ ८ ॥

(निकल जाते हैं)

(तदनन्तर बालक को हाथ में लिये देवकी प्रवेश करती हैं)

सूचयिष्यन्ति जन्मसमयसमुद्भूतानि महानिमित्तानि प्रत्यक्षीकुर्वन्त्यपि कंसहतक-नृशंसत्वं चिन्तयन्ती सुष्ठु न प्रत्येमि मन्दभागिनी। क्व नु गत आर्यपुत्रः। अम्मो, एष आर्यपुत्रो हर्षविस्मयफुल्लनयन एवागच्छति।]

(ततः प्रविशति वसुदेवः)।

वसुदेवः—(सविमर्शम्) भोः! किं नु खल्विदम्,

भ्रमति नभसि विद्युच्चण्डवातानुविद्धै-
नंवजलदनिनादैर्मेदिनी सप्रकम्पा।
इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजाना-
मसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः ॥ ९ ॥

महानिमित्तानि = महान्ति शुभसूचकानि शकुनानि। हर्षविस्मयफुल्लनेत्रः—हर्षेण = आनन्देन विस्मयेन = आश्चर्येण च फुल्ले = विकसिते नेत्रे यस्यासौ।

अन्वयः—नभसि विद्युत् भ्रमति। चण्डवातानुविद्धैर्नवजलदनिनादैः मेदिनी सप्रकम्पा। इह जगति प्रजानां रक्षणार्थं नूनम् अद्य असुरनिहन्ता विष्णुः अवतीर्णः ॥ ९ ॥

व्याख्या—नभसि = आकाशे विद्युत् = चपला भ्रमति। चण्डवातानुविद्धैः—प्रचण्डवायुसंयुक्तैः नवजलदनिनादैः = नवीनमेघगर्जितैः मेदिनी = पृथ्वी सप्र-कम्पा = कम्पयुक्ता इह जगति = पृथिव्यामित्यर्थः अथवा अत्रास्मिन् नगरे प्रजानां विशां रक्षणार्थं नूनमद्य असुरनिहन्ता = दैत्यनाशकः विष्णुः = भगवान् नारायणः अवतीर्णः = अवतारं कृतवान् ॥ ९ ॥

देवकी—हाय! धिक्कार है। जन्म के समय में दिखायी पड़े मेरे बालक की महत्ता को सूचित करने वाले महान् शकुनों को देखकर भी दुष्ट कंस की नृशंसता को सोचकर मैं मन्दभागिनी अच्छी तरह विश्वस्त नहीं हो रही हूँ। आर्यपुत्र, कहाँ गये? [घूम (चल) आगे देखकर] अहा! ये आर्यपुत्र हर्ष और विस्मय प्रफुल्लनेत्र वाले इधर ही आ रहे हैं]।

(तदनन्तर वसुदेव प्रवेश करते हैं)

वसुदेव—(विचारकर) अरे! यह क्या है?

विद्युत् आकाश में भ्रमण कर रही है। प्रचण्ड वायुओं से युक्त नवीन मेघों

(विलोक्य) एषा देवकी,

अगणितपरिखेदा याति षण्णां सुताना-
मपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा ।
बहुगुणकृतलोभा जन्मकाले निमित्तैः
सुत इति कृतसंज्ञं कंसमृत्युं वहन्ती ॥ १० ॥

देवकी—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

वसुदेवः—देवकि ! अर्धरात्रः खलु वर्तते । प्रसुप्तो मधुरायां सर्वो जनः । तस्माद् यावन्न कश्चित् पश्यति, तावद् बालं गृहीत्वाऽपक्रामामि ।

देवकी—कहिं अय्यउत्तो इमं णइस्सदि । (क्वार्यपुत्र इमं नेष्यति ।)

अन्वयः—षण्णां सुतानाम् अपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा जन्मकाले निमित्तैः बहुगुणकृतलोभा सुत इति कृतसंज्ञं कंसमृत्युं वहन्ती अगणितपरिखेदा याति ॥ १० ॥

व्याख्या—षण्णां = षट्संख्यकानां, सुतानां = पुत्राणामपचयो – विनाशस्तस्य । गमनार्थं = शमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा जन्मकाले = जन्मसमये निमित्तैः = प्रादुर्भूतैः शुभशकुनैः बहुगुणकृतलोभा—बहुभिर्गुणैः कृतः सम्पादितः लोभः यस्याः सा गुणलुब्धा 'सुत, पुत्र' इति कृतसंज्ञं = कृतनामधेयं कंसमृत्युं—कंसस्य मृत्युं = कालरूपं वहन्ती धारयन्ती अगणितपरिखेदा—अगणिताः परिखेदाः दुःखानि यस्याः सा अथवा कष्टमविचार्यैव याति = गच्छति ॥ १० ॥

के गर्जन से पृथ्वी कम्पयुक्त है । प्रजाओं के रक्षण के लिये जगत् में असुर-समूहों के विनाशक विष्णु आज अवतीर्ण हुए हैं ॥ ९ ॥

(देखकर) छः पुत्रों के दुःख के शमन के लिये सातवें की रक्षा करती हुई अगणित दुःखवाली देवकी इसके जन्मकाल के शकुनों से बहुत से गुणों से लुब्ध हुई यह 'पुत्र' कहे जाने वाले इस कंस की मृत्यु के लिये है ॥ १० ॥

देवकी—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेव—देवकि ! आधी रात हो रही है । मथुरा में सभी लोग सो गये हैं । तो जब तक कोई नहीं देखता है मैं बालक को लेकर हट जाऊँ ।

देवकी—आर्यपुत्र, इसे कहाँ ले जायेंगे ?

वसुदेवः—देवकि ! सत्यं ब्रवीषि। अहमपि न जाने। किन्तु, एकच्छत्रच्छायां पृथिवीं समाज्ञापयति दुरात्मा कंसः। तत् क्व नु खल्वयमायुष्मान् नेतव्यो भविष्यति। अथवा यत्र दैवं विधास्यति, तत्र बालं गृहीत्वाऽपक्रामामि।

देवकी—अय्यउत्त। इच्छामि दाव णं सुदिट्ठं कत्तुं। [आर्यपुत्र ! इच्छामि तावदेनं सुदृष्टं कर्तुम्।]

वसुदेवः—अयि अतिपुत्रवत्सले।

किं द्रष्टव्यः शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले।
त्वयाऽप्यस्य सुदृष्टस्य कंसो मृत्युर्भविष्यति॥ ११॥

देवकी—सव्वहा ण भविस्सदि। [सर्वथा न भविष्यति।]

वसुदेवः—यद् भवत्याऽभिहितम्, तद् सर्वदैवतैरभिहितं भवतु। आनय।

देवकी—गह्णदु अय्यउत्तो। [गृह्णात्वार्यपुत्र।]

वसुदेवः—(गृहीत्वा) अहो गुरुत्वं बालस्य। साधु,

अन्वयः—राहोः वदनमण्डले अयं शशाङ्कः किं द्रष्टव्यः त्वया सुदृष्टस्य अस्य अपि कंसः मृत्युः भविष्यति॥ ११॥

व्याख्या—राहोः=सैंहिकेयस्य, वदनमण्डले = मुखे, अयं शशाङ्कः= चन्द्रः, किं द्रष्टव्यः। यथा राहुग्रस्तस्य चन्द्रस्य दर्शनं न शुभावहं तथा अस्यापि दर्शनं कंस द्वारा अस्य वधानन्तरं दुःखावहमेव भविष्यतीति। त्वया मात्रा सुदृष्टस्य साभिलाषं पुत्रवत्सलतया प्रेक्षितस्य अस्य अपि अस्मत्पूर्वपुत्राणामिव कंसः मृत्युर्नाशको भविष्यति॥ ११॥

वसुदेव—हे पुत्र के अत्यन्त प्रेमवाली !

राहु के मुखमण्डल में पड़े इस चन्द्र को क्या देखना चाहिये। तुम्हारे द्वारा दर्शनीय इस [बालक] की कंस मृत्यु होगा॥ ११॥

देवकी—निश्चित ही नहीं होगा।

वसुदेव—जो आपने कहा वह सभी देवताओं का कथन हो। ले आओ।

देवकी—आर्यपुत्र, ग्रहण करें।

वसुदेव—(लेकर) बालक की ऐसी गुरुता (भारीपन) है। ठीक है।

विन्ध्यमन्दरसारोऽयं बालः पद्मदलेक्षणः ।
गर्भे यया धृतः श्रीमानहो धैर्यं हि योषितः ॥ १२ ॥

देवकि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरम् ।

देवकी—एसा गच्छामि मन्दभाआ । (निष्क्रान्ता ।) [एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

वसुदेवः—एषा देवकी,

हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति ।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता ॥ १३ ॥

अन्वयः—अयं पद्मदलेक्षणः विन्ध्यमन्दरसारः, श्रीमान् बालः यया गर्भे धृतः (तस्याः) योषितः धैर्यम् अहो ॥ १२ ॥

व्याख्या—अयं मद्हस्तगृहीतः पद्मदलेक्षणः = कमलपत्रनेत्रः विन्ध्यमन्दर-सारः-विन्ध्यस्य मन्दरस्य च इव सारो भार इत्यर्थः, यस्य सः विन्ध्यमन्दरगुरुः श्रीमान्=श्रियान्वितः बालः = शिशुः यया स्त्रिया गर्भे धृतः अस्य मात्रा तस्याः योषितः = स्त्रियः धैर्यमहो = आश्चर्यकारकम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—एषा हृदयेन इह अङ्गैः तत्र द्विधाभूता इव गच्छति यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता (भवति) ॥ १३ ॥

एषा = अभ्यन्तरं प्रविश्यमाणा देवकीहृदयेन इह = मम पार्श्वे बालकेन सह अङ्गैः=शरीरावयवैः तत्राभ्यन्तरे । नभसि = खे, तोये = जले च, चन्द्रलेखा= चन्द्रकला यथा द्विधाकृता भवति ॥ १३ ॥

कमलपत्र के समान नेत्रवाला, विन्ध्य और मन्दर का सारभूत यह श्रीमान् बालक जिसके द्वारा गर्भ में धारण किया गया उस स्त्री का धैर्य महान् है ॥ १२ ॥

देवकि ! तुम भीतर जाओ ।

देवकी—यह अभागिनी जा रही हूँ [चली जाती है]

वसुदेव—यह देवकी भीतर प्रवेश कर रही है ।

दो भागों में बँटी हुई सी हृदय से तो यहाँ और शरीरावयवों से वहाँ । जैसे आकाश में और जल में चन्द्रकिरणें दो भागों में विभक्त होती हैं ॥ १३ ॥

हन्त प्रविष्टा देवकी। यावदहमपि नगरद्वारं संश्रयामि। एष भोः,
प्रथमसुतविनाशजातमन्युर्नृपतिभयाकुलितः प्रगृह्य बालम्।
त्वरिततरमिह प्रयामि मार्गे गिरिमिव मन्दरमुद्वहन्भुजाभ्याम् ॥१४॥
(परिक्रम्य) इदं नगरद्वारम्। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये प्रसुप्तो मथुरायां सर्वो जनः। यावदपक्रामामि। (परिक्रम्य) निष्क्रान्तोऽस्मि मथुरायाः। अहो बलवांश्चायमन्धकारः। सम्प्रति हि,

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ १५ ॥

अन्वयः—(अहं) प्रथमसुतविनाशजातमन्युः नृपतिभयाकुलितः बालं प्रगृह्य भुजाभ्यां मन्दरं गिरिम् उद्वहन् इव इह मार्गे त्वरिततरं प्रयामि ॥ १४ ॥

व्याख्या—अहं = वसुदेवः, प्रथमसुतविनाशजातमन्युः—प्रथमपुत्राणां विनाशेन =निधनेन जातः उद्भूतः मन्युः क्रोधः यस्य सः तथोक्तः, नृपतिभयाकुलितः—नृपतेः कंसस्य भयः भयेन आकुलितो=व्यग्रः बालं प्रगृह्य भुजाभ्यां = बाहुभ्यां मन्दरं गिरिं=पर्वतम् गृह्णन् इव इह = मार्गे त्वरिततरं प्रयामि = गच्छामि ।१४।

अन्वय—तमः अङ्गानि लिम्पति इव नभः अञ्जनं वर्षति इव। दृष्टिः असत्पुरुषसेवा इव निष्फलतां गता ॥ १५ ॥

व्याख्या—तमः=अन्धकारः अङ्गानि=शरीरं लिम्पति=आच्छादयति इव। नभः अञ्जनं = कज्जलं वर्षति = वर्षणं करोतीव। दृष्टिरवलोकनसामर्थ्यम् अस-

---

हाय ! देवकी प्रविष्ट हो गयी। तो मैं भी नगरद्वार का आश्रय लूं। प्रथम पुत्रों के विनाश से उत्पन्न शोकवाला तथा राजा के भय से उद्विग्न बाँहों से मन्दर पहाड़ को ढोते हुए के समान बालक को लेकर शीघ्रता से मार्ग में जा रहा हूं ॥ १४ ॥

(चलकर) यह नगर का द्वार है। तो प्रवेश करूँ (प्रवेश कर) अरे ! मथुरा में तो सभी लोग सो रहे हैं। तो भाग चलूं। (चलकर) मथुरा से निकल गया हूं। यह घना अन्धकार है। इस समय—

अन्धकार अङ्गों का लेप कर रहा है। आकाश अञ्जन की वृष्टि कर रहा है। असज्जन मनुष्य को सेवा के समान दृष्टि निष्फल हो गयी है ॥ १५ ॥

अभिभूत किये बिना नहीं रहता। मुष्टिक मल्ल को मारते समय उनका बल से उद्दीप्त तेजस्वीरूप सामने आता है और वे मुष्टिक से कहते हैं—

त्वामद्य मुष्टिक यमाय निवेदयामि ५।१०

और यह कहकर उसे मार डालते हैं।

जब वे कंस की सभा में प्रविष्ट होते हैं तो उनके रूप का बड़ा ही धीर-गम्भीर वर्णन प्राप्त होता हैं

अयं तु ललितगम्भीराकृतिः पूर्वजोऽस्य राम इति श्रूयते।
अभिनवकमलामलायताक्षः शशिनिभयमूर्तिरुदारनीलवासाः।
रजतपरिघवृत्तदीर्घबाहुश्चलदसितोत्पलपत्रचित्रमालः ॥ ५।९

वसुदेव—ये धर्मभीरु, परोपकारी, वीर और सुतवत्सल रूप में चित्रित किये गये हैं। श्रीकृष्ण के जन्म के समय वे कंस द्वारा उनके मारे जाने की आशंका से चिन्तित हैं। किन्तु दैव और पुरुषकार पर दृढ़ आस्था रखकर गिरि॰ गुरु उस बालक को उठाकर अँधेरे में बिना किसी लक्ष्य और स्थान के निकल पड़ते हैं। घोर अन्धकार में कहीं मार्ग नहीं सूझता। इसी बीच दीपक के प्रकाश की आभा उन्हें प्रतीत होती है और उन्हें भ्रम होता है कि कंस के सिपाही उनका पीछा तो नहीं कर रहे हैं। उनमें अपने पौरुष का विश्वास जगता है और वे सभी का सामना करने का निश्चय करते हैं। किन्तु बाद में उन्हें प्रतीत होता है कि बालक की दिव्य कान्ति से ही यह प्रकाश हो रहा है। वर्षाकालीन जलपूर्ण एवं उद्दाम प्रवाहवाली यमुना के किनारे वे पहुँचते हैं और बाहुओं से तैरकर पार जाने का निर्णय करते हे। इसी बीच यमुना का जल दो भागों में विभक्त हो जाता है और वे पार कर जाते हैं।

वे नन्दगोप के यहाँ बालक को ले जाते हैं। नन्दगोप कंस की भीति से बालक को लेने में घबड़ाते हैं पर वसुदेव अपने उपकारों और मैत्री का स्मरण कराकर उन्हें बालक सौंप देते हैं। इसके बाद वे नाटक के अन्त में उपस्थित होते हैं और प्रजा को आश्वस्त करते हैं कि दामोदर और संकर्षण उन्हीं के पुत्र हैं कोई बाहरी शत्रु नहीं है। कंस के पापपूर्ण राज्य का विनाश करने के लिये स्वयं विष्णु आये हैं। कंस-वध के अनन्तर वसुदेव कंस के पिता उग्रसेन को बन्दी गृह से छुड़ाकर पुनः उन्हीं को राजा बनाते हैं। इसमें उनका अनुपम त्याग प्रकट

होता है। जीते हुए राज्य को पुनः उसके वास्तविक अधिकारी को सौंपते हैं, स्वयं नहीं ग्रहण करते। इस प्रकार इस नाटक में संपन्न और त्यागी पुरुष के रूप में चित्रित किये गये हैं।

नन्दगोप—नन्दगोप का दर्शन तब होता है जब वह रात्रि के घोर अन्धकार में मृत कन्या को विसर्जित करने जा रहा है। उस समय उसका वात्सल्य-प्रेम प्रस्फुटित दिखाई पड़ता है। मृत कन्या के लिये जैसा वह विलाप करता है वह सभी गृहस्थों का स्वाभाविक रूप है। वहाँ वसुदेव से उसकी जब भेंट होती है तो वसुदेव अपने बच्चे (दामोदर) को वहाँ रखना चाहते हैं। उनके इस प्रस्ताव से नन्दगोप भयभीत हो जाता है। क्योंकि कंस के उग्र स्वभाव और अत्याचार का वह भुक्तभोगी है। पर, वसुदेव की मित्रता और पूर्वोपकार का ध्यान कराने पर वह उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है और कंस के भय की परवाह नहीं करता। अपने गाँव के कुशल-क्षेम की चिन्ता भी नन्दगोप में वर्तमान है। वह यह नहीं चाहता था, कि उसकी कन्या के निधन-समाचार से घोष में होवेवाला उत्सव बाधित हो। इसीलिये तो रात्रि के घोर अन्धकार में कन्या को लेकर बाहर निकल पड़ा था। संक्षेप में नन्दगोप को वात्सल्य-प्रेम युक्त, घोष के हितचिन्तक, धर्मभीरु एवं कृतज्ञ के रूप में चित्रित किया गया है।

देवकी—एक सुतवत्सला नारी के रूप में उनका चित्रण हुआ है। कंस ने उनके, पुत्रों का वध कर दिया है अतः वे उसकी क्रूरता और अत्याचार से भयाक्रान्त हैं। पुत्रप्रसव के बाद उन्हें यही चिन्ता होती है कि नवजात शिशु किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाय। शिशु को वसुदेव के साथ बिदा करते समय उनका मातृहृदय क्रन्दन करने लगता है और वे शिशु से अलग नहीं होना चाहतीं। बच्ची की रक्षा के लिये कंस से प्रार्थना करते समय भी उनका मातृ-हृदय प्रकट होकर बच्ची की रक्षा की प्रार्थना करता है।

कंस—एक अत्याचारी और क्रूरकर्मा नृशंस राजा के रूप में चित्रित किया गया है। उसकी क्रूरता और तीक्ष्ण दण्ड से राज्य की सभी प्रजा संत्रस्त है। मधूक ऋषि के शाप से वह विचलित नहीं प्रतीत होता। शाप अपने समय पर उपस्थित होता है पर वह निर्भयता से उसका तिरस्कार करता है। कृष्ण-बलराम के वध के निमित्त वह सदैव सचेष्ट है। यद्यपि उसे उसमें उसे सफलता नहीं

बालचरित के पात्र

पुरुष पात्र

नारद—देवर्षि ।

वसुदेव—कृष्ण के पिता ।

दामोदर—वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ।

संकर्षण—वसुदेवपुत्र बलराम ।

उग्रसेन—कंस के पिता—मथुराधिपति ।

नन्दगोप—वृन्दावन के घोष के अधिपति; कृष्ण-बलराम का पालन-पोषण करने वाले; वसुदेव के मित्र ।

गरुड—विष्णु के वाहन ।

सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष, नन्दक मुशल, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शङ्ख—भगवान् श्रीविष्णु के आयुध तथा वाद्य ।

राजा (कंस)—मथुराधिपति ।

चाणूर—कंस का मल्ल ।

मुष्टिक— „

भट (ध्रुवसेन)—कंस का परिचारक ।

कञ्चुकी (बालाकि)—कंस का सेवक ।

शाप—मधूक ऋषि द्वारा कंस को दिये गये शाप का अधिष्ठातृ ।

कुण्डोदर, शूल नील, मनोजव—कात्यायनी के गण ।

वृद्ध गोपालक—वृन्दावन का एक गोप ।

दामक—गोप ।

अरिष्टर्षभ—दानव ।

कालिय—नाग ।

स्त्रीपात्र

देवकी—वसुदेव की पत्नी, श्रीकृष्ण की माता ।

प्रतीहारी—देवकी की द्वारपालिका ।

धात्री—देवकी के बच्चों के धाय ।

कात्यायनी—देवी ।

राजश्री—राज्यलक्ष्मी की अधिष्ठातृ देवता ।

प्रतीहारी—कंस की द्वारपालिकायें-मधुकारिका तथा यशोधरा ।

बालचरितान्तर्गतसुभाषितानि

१—यत्र दैवं विधास्यति तत्र बालं गृहीत्वाऽपक्रामामि ॥ १।१०११ ।

२—किं द्रष्टव्यः शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले ॥ १।११ ।

३—यद् भवत्याभिहितं तत् सर्वदैवतैरभिहितं भवतु ॥ १।११–१२ ।

४—अहो धैर्यं हि योषितः ॥ १।१२ ।

५—लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ १।१५ ।

६—न शक्यं लोकस्याधिष्ठानभूतं वृत्तान्तं वञ्चयितुम् ॥ १।१९-२० ।

७—उत्कृज्ञाः खलु नृशंसाः ॥ १।१९-२० ।

८—घोषवासात् प्रकृत्या शुचिरेव भवान् ॥ १।२०२१ ।

९—ईश्वराः स्वस्ति कुर्वन्तु ॥ १।२९-३० ।

१०—सेव्यैः प्रधानगुणकर्मनिमित्तैः ।
किं वाग्रतो व्यसनमभ्युदयो नु तन्मे ॥ २।१ ।

११—स्मरताऽपि भयं राजा भयं न स्मरताऽपि च ।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयादप्यभयादपि ॥ २।१३ ।

१२—दैवं पुरुषकारेण वञ्चयिष्याम्यहं ध्रुवम् ॥ २।१४ ।

१३—दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति ॥ २।१४-१५ ।

१४—किं दष्टः कृष्णसर्पेण बालेन व निहन्यते ॥
बालेन हि पुरा क्रौञ्चः स्कन्देन निधनं गतः ॥३।९ ।

अहो तमसः प्रभुत्वम् ।

अप्रकाशा इव दिशो घनीभूता इव द्रुमाः ।
सुनिविष्टस्य लोकस्य कृतो रूपविपर्ययः ॥ १६ ॥

नाहं गन्तुं समर्थः । अये दीपिकालोकः । किन्तु खलु दुरात्मा कंसो ममापक्रमणं ज्ञात्वा दीपिकाभिः परिवृतो मां ग्रहीतुमागतो भवेत् । भवत्वहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि (खड्गमुत्कोशयति । निवृत्त्यावलोक्य) अये ! न कश्चिद् दृश्यते । आः,

तमसा संवृते लोके मम मार्गमपश्यतः ।
अपक्रमणहेतोस्तु कुमारेण प्रभा कृता ॥ १७ ॥

असत्पुरुषसेवा — दुष्टजनसेवा इव निष्फलतां - वैयर्थ्यं गता = प्राप्ता । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारस्यायं श्लोकः प्रथितमुदाहरणम् ।

अन्वयः—दिशः अप्रकाशाः इव । द्रुमाः घनीभूताः इव । सुनिविष्टस्य लोकस्य रूपविपर्ययः कृतः ॥ १६ ॥

व्याख्या—दिशः = दिग्भागाः अप्रकाशाः = प्रकाशरहिताः इव । द्रुमाः — वृक्षाः घनीभूता = सघना इव । सुनिविष्टस्य —सुष्ठु निवसितस्य लोकस्य = जगतः रूपविपर्ययः = स्वरूपविपर्यासः कृतः ॥ १६ ॥

अन्वयः—लोके तमसा संवृते मार्गम् अपश्यतः मम अपक्रमणहेतोः तु कुमारेण प्रभा कृता ॥ १७ ॥

व्याख्या—लोके = संसारे तमसा = अन्धकारेण संवृते = व्यापृते मम

अन्धकार का कैसा प्रभुत्व है ।

दिशाएँ प्रकाशविहीन-सी हैं । वृक्ष घनीभूत (सिमटे) हुए-से हैं । सुन्दर संसार का रूपविपर्यय हो गया है ॥ १६ ॥

मैं जाने में समर्थ नहीं हूँ । अरे ! यह दीपक का प्रकाश है । क्या दुरात्मा कंस मेरा भाग जाना जानकर दीपों से घेरकर मुझे पकड़ने के लिये तो नहीं आ रहा है ? ठीक है । मैं इसके गर्व को शान्त करूँगा । (खड्ग निकालता है । निकालकर देखकर) अरे ! कोई दिखाई तो नहीं पड़ रहा है । ठीक है—

संसार के अन्धकार में ढके होने पर मार्ग को न देखने वाले मेरे पलायन के लिये कुमार ने प्रकाश किया है ॥ १७ ॥

एष मार्गः । यावदपक्रामामि । अये इयं भगवती यमुना कालवर्ष-सम्पूर्णा स्थिता । अहो व्यर्थो मे परिश्रमः । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् ।

इमां नदीं ग्राहभुजङ्गसङ्कुलां
महोर्मिमालां मनसापि दुस्तराम् ।
भुजप्लवेनाशु गतार्थविक्लवो
वहामि सिद्धिं यदि दैवतं स्थितम् ॥ १८ ॥

[तथा कृत्वा सविस्मयम्] हन्त द्विधा छिन्नं जलम्, इतः स्थितम्, इतः प्रधावति । दत्तो मे भगवत्या मार्गः । यावदपक्रामामि । (अवतीर्य)

मार्गम् = अध्वानम् अपश्यतः=नावलोकयतः मम=वसुदेवस्य अपक्रमणहेतोः = निष्क्रमणार्थं कुमारेण = सद्योजातेन बालेन प्रभा=दीप्तिः प्रकाशः कृता ॥ १७ ॥

कालवर्षसंपूर्णा = काले वर्षाकाले वर्षेण संपूर्णा पूर्णा स्थिता जलपूर्णा इत्यर्थः ।

अन्वयः—यदि दैवतं स्थितं तर्हि ग्राहभुजङ्गसंकुलां महोर्मिमालां मनसा अपि दुस्तराम्, इमां नदीं गतार्थविक्लवो भुजप्लवेन सिद्धिं वहामि ।

व्याख्या—यदि दैवतं = प्रारब्धं स्थितं शुद्धमवशिष्टमित्यर्थः तर्हि ग्रहभुजङ्ग-संकुलां=नक्रसर्पव्याप्तां महोर्मिमालां = बृहत्तरङ्गयुक्तां मनसा अपि दुस्तरां= दुष्पारां इमां = नदीं गतार्थविक्लवः = भुजप्लवेन हस्तनौकया गतार्थविक्लवः= गतः समाप्तः अर्थस्य कार्यस्य विक्लवः वैफल्यं यस्य तथाभूतः पारं कृत्वेत्यर्थः, सिद्धिं वहामि = प्राप्नोमि ॥ १८ ॥

यह मार्ग है । तो मैं चल हट चलूँ । अरे यह भगवती यमुना इस समय भरी हुई हैं । हाय ! मेरा परिश्रम व्यर्थ गया । इस समय क्या करूँ ? ठीक है । समझ गया ।

मन से भी दुष्पार, ग्राह तथा सर्पों से भरी एवं उत्ताल तरंगोंवाली इस नदी को निश्चित बुद्धिवाला मैं भुजारूपी नौका से पार कर यदि भाग्य (शेष) होगा तो सिद्धि प्राप्त करूँगा ॥ १८ ॥

(वैसा करके विस्मयपूर्वक) अरे ! यह जल तो दो भागों में बँट गया । इधर

निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः। अये हुङ्कारशब्द इव श्रूयते। व्यक्तं घोषसमीपे वर्तते मन्दभाग्यः। आः, अत्र च समीपघोषे मम वयस्यो नन्दगोपः प्रतिवसति। स खलु मया कंसाज्ञया निगडितो न कशाभिर्हतश्च। यावत् प्रविशामि। अथवा रात्रौ वसुदेवः प्रविष्ट इति शङ्किता गोपालका भविष्यन्ति। तस्मादिह न्यग्रोधपादपस्याधस्तात् प्रभातवेलां रजन्याः प्रतिपालयामि। भो भो न्यग्रोधदेवताः! यद्ययं बालो लोकहितार्थं कंसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूतश्चेद्; घोषात् कश्चिदिहागच्छतु। न, न, मम वयस्यो नन्दगोप एवागच्छतु।

[ततः प्रविशति दारिकां गृहीत्वा नन्दगोपः।]

नन्दगोपः—[सशोकम्] दालिए! दालिए! किं दाणि णो गेहलच्छिं ण लमिअ तदो णो उज्झिअ णं गच्छषि। षम्पदि हि महिषषदसम्पादषदिषं अहो बलिअं अन्धआलं।

महिषशतसंपातसदृशः = महिषाणां शतं महिषशतं तस्य संपातः संघटनम् एकीकृतशतमहिषतुल्य इत्यर्थः।

स्थिर है। इधर भाग रहा (बह रहा) है। भगवती (यमुना) ने मुझे मार्ग दे दिया। तो निकल चलूं। (पार कर) यमुना से निकल गया हूं। अरे! हुंकार शब्द जैसा सुनायी पड़ रहा है। निश्चय ही मैं अभागा घोष (गायों का बाड़ा–निवास स्थान) के पास हूं। इस घोष के पास ही मेरा मित्र नन्द रहता है। कंस की आज्ञा से मैंने उसे बेड़ी तो लगायी थी पर कोड़े से मारा नहीं था। तो प्रवेश करूँ। अथवा रात्रि में वसुदेव ने प्रवेश किया है इससे गोपालक (चरवाहे) शङ्कित हो जायेंगे, अतः इस न्यग्रोध (वट) के नीचे रात्रि की प्रभात वेला की प्रतीक्षा करूँ। हे न्यग्रोधदेवता! यदि यह बालक लोकहित तथा कंसवध के लिये वृष्णिकुल में उत्पन्न हुआ है तो घोष से कोई आवे। नहीं, नहीं। मेरा मित्र नन्द घोष आवे।

[तदनन्तर बच्ची को लेकर नन्दगोप प्रवेश करते हैं]

नन्दगोप—(शोकपूर्वक) बालिके! बालिके! हमारी गृहलक्ष्मी में अनुरक्त न होकर हमें छोड़कर जा रही हो। इस समय तो सैकड़ों भैंसों के एकत्रित होने जैसा घना अन्धकार है।

दुद्दिणविणट्ठजोह्ला लत्ती बट्टइ णिमीलिआकाला ।
पम्पाउदप्पसुत्ता णीलणिवषणा जहा गोवी ॥ १९ ॥

अज्ज हि अड्ढलत्ते अम्हाणं कुडम्बिणीए जषोदाए पषूदा इअं च दाली तवष्षिणी जादमत्ता एव्व ओगदप्पाणा षंवुत्ता। षुवे अम्हाणां घोषष्ष उइदो इन्दयञ्ञो णाम उष्षुवो भविष्षदि । ता मा खु एवं दुक्खं गोवजणहि अणुहूअमाणं त्ति मए एक्काइणा णिगलगुलुचलणेण इमं दालिअं गह्लिअ णिग्गदो म्हि। जषोदा वि तवष्षिणी णेव जाणादि दालओ वा दालिआ वा पषूद त्ति मोहं गदा। दालिए ! दालिए ! [दारिके ! दारिके ! किमिदानीं नो गेहलक्ष्म्यां न रन्त्वा ततो न उज्झित्वा ननु गच्छसि । संप्रति हि महिषशतसंपातसदृशोऽहो बलवानन्धकारः ।]

दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा ।
संप्रावृतप्रसुप्ता नीलनिवसना यथा गोपी ॥ १९ ॥

अद्य ह्यर्वरात्रेऽस्माकं कुटुम्बिन्या यशोदया प्रसूतेयं च दारी तपस्विनी जातमात्रैवापगतप्राणा संवृत्ता। श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भवि-

---

अन्वयः—दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिनिमीलिताकारा वर्तते । यथा संप्रावृता प्रसुप्ता नीलनिवसना गोपी ॥ १९ ॥

व्याख्या—दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना दुर्दिनेन मेघाडम्बरेण 'मेघच्छन्नं हि दुर्दिनम्' इति कोषात् । विनष्टा – लुप्ता ज्योत्स्ना = चन्द्रिका यस्यां सा मेघाच्छन्नज्योत्स्ना, निमीलिताकारा—निमीलितः = विलुप्तः प्रच्छन्नः आकारो यस्या सा रात्रिः, संप्रावृतप्रसुप्ता = सुष्ठु प्रावृता आच्छादिता प्रसुप्ता च गोपी यथा इव प्रतीयते इति शेषः ॥ १९ ॥

मेघ से नष्ट प्रकाश वाली रात्रि अपने रूप को संवेष्टित कर स्थित है जैसे ढक कर सोयी हुई नील वस्त्रों वाली गोपी हो ॥ १९ ॥

आज अर्धरात्रि में मेरी गृहिणी यशोदा ने इस कन्या को जन्म दिया। यह बिचारी तपस्विनी उत्पन्न होते ही निष्प्राण हो गयी। कल हमारे घोष के उपयुक्त इन्द्रयज्ञ नामक उत्सव होगा। अतः यह दुःख गोपजन अनुभव न करें इसलिये अकेले भारी चरणों से इसे लेकर निकल पड़ा हूँ। यशोदा भी बेहोश होकर नहीं जानती कि बच्चा या बच्ची उत्पन्न हुई है। कन्ये ! कन्ये !

ष्यति । तद् मा खल्वेतद् दुःखं गोपजनैरनुभूयमानमिति मयैकाकिना निगडगुरुचरणेनेमां दारिकां गृहीत्वा निर्गतोऽस्मि । यशोदापि तपस्विनी नैव जानाति दारको वा दारिका वा प्रसूत इति मोहं गता । दारिके ! दारिके ! ।]

वसुदेवः—को नु खल्वयं रात्रौ परिदेवयति । अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी ।

नन्दगोपः—किं दाणिं णो गेहलच्छिं ण लमिअ तदो णो उज्झिअ णं गच्छसि । [किमिदानीं नो गेहलक्ष्म्यां न रन्त्वा ततो न उज्झित्वा ननु गच्छसि ।]

वसुदेवः—स्वरेण प्रत्यभिजानामि । मम वयस्येन नन्दगोपेन भवितव्यम् । यावच्छब्दापयामि । वयस्य ! नन्दगोप ! इतस्तावत् ।

नन्दगोपः—(सभयम्) अविहा को दाणिं मं षुदपुलुवेण विअ षलयोगेण णन्दगोव ! णन्दगोव ! त्ति मं षद्दावेदि । किण्णु लक्खशा वा, आदु पिषाषो वा । इदिषीए पदिभअलक्षणीए मदलिआ दालिआ मम हत्थे । किं णु हु कलिष्षं । [अविहा क इदानीं मां श्रुतपूर्वेणेव स्वरयोगेन नन्दगोप ! नन्दगोप ! इति मां शब्दयति । किं नु राक्षसो वा, उत पिशाचो वा । ईदृश्यां प्रतिभयरजन्यां मृता दारिका मम हस्ते । किं नु खलु करिष्यामि ।]

वसुदेवः—वयस्य नन्दगोप ! अलमन्यशङ्कया । इतस्तावत् ।

वसुदेव—रात्रि में कौन विलाप कर रहा है । यह तपस्वी मेरे तुल्य (मेरा मित्र) होगा ।

नन्दगोप—क्यों इस समय हमारी गृहलक्ष्मी में न रमण कर उससे हमें छोड़कर जा रही हो ?

वसुदेव—स्वर से पहचान रहा हूँ कि मेरा मित्र (सहपाठी) नन्दगोप होगा । मित्र नन्दगोप ! इधर आओ ।

नन्दगोप—(भयपूर्वक) अहा ! कौन इस समय मुझे पहले सुने हुए स्वर से 'नन्दगोप ! नन्दगोप !' ऐसा कहा रहा है । क्या कोई राक्षस है या पिशाच । इस भयंकर रात्रि में मरी बच्ची मेरे हाथ में है । तो क्या करूँ ?

वसुदेव— मित्र नन्दगोप ! दूसरे की शंका न करो । इधर आओ ।

नन्दगोपः—(कर्णं दत्वा । सावधानम्) अम्मो, षलयोगेण भट्टा वषुदेव त्ति जाणामि । जाव उवषप्पिष्षं । अहव तहि मम किं कय्यं । एदिणा कंषष्ष लञ्ञो वअणं षुणिअ अवलद्धो कषाहि तालिअ णिअलेहि बद्धो म्हि । ता ण गमिष्षं । अहव धिक्खु मे णिषंषभावं । मम गुणषहष्षं किदं, दुक्खे दुक्खइ, षुहे षहिणो होदि, तहवि षुमलामि लाअषायणेण किदं एक्कबन्धणं । जाव उवषप्पिष्षं । इयं दाली । किं कलिष्षं । होदु एवं दाव कलिष्षं । (उपसृत्यावलोक्य च । सविस्मयम्) पमादा लंअणी । एषो भट्टा वषुदेवो दालअं गह्णिअ ठिदो । (उपसृत्य) जेदु भट्टा जेदु । [अम्मो, स्वरयोगेन भर्ता वसुदेव इति जानामि । यावदुपसर्प्स्यामि । अथवा तत्र मम किं कार्यम् । एतेन कंसस्य राज्ञो वचनं श्रुत्वाऽपराद्धः कशाभिस्ताडयित्वा निगलैर्बद्धोऽस्मि । तन्न गमिष्यामि । अथवा धिक् खलु मे नृशंसभावम् । मम गुणसहस्रं कृतं; दुःखे दुःखयति, सुखे सुखी भवति, तथापि स्मरामि राजशासवेन कृतमेकबन्धनम् । यावदुपसर्प्स्यामि । इयं दारी । किं करिष्यामि भवत्वेवं तावत् करिष्यामि । प्रभाता रजनी । एष भर्ता वसुदेवो दारकं गृहीत्वा स्थितः । जयतु भर्ता जयतु ।]

वसुदेवः—वयस्य नन्दगोप ! अपि भगवतीभ्यो गोभ्यः कुशलम् ।

नन्दगोपः—आम भट्टा । कुषलं । [आम् भर्तः ! कुशलम् ।]

नन्दगोप—(कान लगाकर एवं सावधान होकर)—अह ! स्वर से स्वामी वसुदेव मालूम पड़ रहे हैं । तो पास चलूँ । अथवा वहाँ मेरा क्या कार्य है । मेरे अपराधी होने पर इसने राजा कंस के वचन को सुनकर कोड़े लगाकर मुझे जेल में बन्द कर दिया । तो नहीं जाऊँगा । अथवा मेरी नृशंसता को धिक्कार है । मेरा हजारों उपकार किया है । मेरे दुःख में दुःखी होता है । सुख में सुखी होता है । तथापि चलूँ । स्मरण है कि राजाज्ञा से केवल एक बन्धन लगाया । तो पास चलूँ । यह (मरी) बच्ची है । तो क्या करूँ । ठीक है । ऐसा करता हूँ । (पास जाकर देखकर विस्मयपूर्वक) रात बीत गयी । ये स्वामी वसुदेव बच्चा लेकर खड़े हैं । स्वामी की जय हो, जय हो ।

वसुदेव—मित्र नन्दगोप ! क्या भगवती गायों की कुशल तो है ?

नन्दगोप—हाँ स्वामी ! कुशल है ।

वसुदेवः—अथ भवतः परिजनस्य कुशलम् ।

नन्दगोपः—परिजणमिति आम भट्टा ! कुषलं [परिजनमिति । आम् भर्तः ! कुशलम् ।]

वसुदेवः—वयस्य ! किमिदानीं प्रच्छाद्यते ।

नन्दगोपः—भट्टा ! णत्थि किञ्चि [भर्तः ! नास्ति किंचित् ।]

वसुदेवः – मम खलु प्राणैः शापितः स्याद्, यदि सत्यं न ब्रूयात् ।

नन्दगोपः—का गई । षुणादु भट्टा । अज्ज अड्ढलत्ते अम्हाणं कडुम्बिणीए, ण हि ण हि, तुम्हाणं दाषीए जषोदाए पषूदा इअं च दाली तवष्षिणी जादमत्ता एव्व ओग्गदप्पाणा षंवुत्ता । षुवे अम्हाणं घोषष्ष उइदो इन्दयञ्ञो णाम उष्षवो भविष्षदि । ता मा खु एवं दुक्खं गोवजणेहि अणुहूअमाणं त्ति मए एक्काइणा णिगलगुलुचलणेण इमं दालिअं गह्णिअ णिग्गदो म्हि । जषोदा वि तवष्षिणी णेव जाणादि दालओ दालिआ वा पषूद त्ति मोह गदा । [का गतिः । श्रृणोतु भर्ता । अद्यार्धरात्रेऽस्माकं कुटुम्बिन्या, न हि न हि, युष्माकं दास्या यशोदया प्रसूतेयं च दारी तपस्विनी जातमात्रैवापगतप्राणा संवृत्ता । श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति । तद् मा खल्वेतद् दुःखं गोपजनैरनुभूयमानमिति मयैकाकिना निगलगुरुचरणेनेमां दारिकां गृहीत्वा निर्गतोऽस्मि । यशोदापि तपस्विनी नैव जानाति दारको दारिका वा प्रसूत इति मोहं गता ।]

वसुदेव—आपके परिजन (आदमियों) की तो कुशल है ?

नन्दगोप—'परिजन' ? हाँ स्वामी ।

वदेसुव—मित्र ! इस समय क्या छिपाये हो ।

नन्दगोप—स्वामी ! कुछ नहीं ।

वसुदेव—मेरे प्राणों की शपथ है यदि सत्य नहीं बताते हो ।

नन्दगोप—क्या उपाय है ? स्वामी सुनें—आज आधी रात को मेरी पत्नी, नहीं आपकी दासी यशोदा ने इस कन्या को जन्म दिया जो तपस्विनी जन्म लेते ही मर गयी । कल हमारे घोष के उपयुक्त इन्द्रयज्ञ नामक उत्सव होगा । तो इस दुःख को घोष के लोग अनुभव न करें इसलिये मैं अकेले ही भारी चरणों से

वसुदेवः—हन्त भोः ! न शक्यं लोकस्याधिष्ठानभूतं कृतान्तं वञ्चयितुम् । वयस्य ! काष्ठभूतं कलेवरं त्यज्यताम् ।

नन्दगोपः—ण षक्कुणोमि । भट्टा ! ण षक्कुणोमि । [न शक्नोमि भर्तः ! न शक्नोमि ।]

वसुदेवः—ईदृशो लोकधर्मः । त्यज्यताम् ।

नन्दगोपः—ज भट्टा आणवेदि । दालिए ! दालिए ! (इति रोदिति ।) [यद् भर्ताज्ञापयति । दारिके ! दारिके !]

वसुदेवः—वयस्य ! अलमलं रुदितेन । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।

नन्दगोपः—(तथा कृत्वोपगम्य) जेदु भट्टा । इमिणा दाषजणेण किं कत्तव्वं । [जयतु भर्ता । अनेन दासजनेन किं कर्तव्यम् ।]

वसुदेवः—वयस्य ! ननु त्वमपि जानासि दुरात्मना कंसेन मम षट् पुत्रा निधनमुपानीता इति ।

नन्दगोपः—जाणामि भट्टा ! जाणामि । [जानामि भर्तः ! जानामि !]

इस लड़की को लेकर निकल गया हूँ । यशोदा तो बिचारी बेहोश हो गयी है और नहीं जानती कि बच्चा या बच्ची उत्पन्न हुई है ।

वसुदेव—हाय ! संसार के अधिष्ठानभूत कृतान्त (काल) को वञ्चित नहीं किया जा सकता । मित्र ! काष्ठभूत इस शरीर को छोड़ दीजिये ।

नन्दगोप—स्वामी ! मैं छोड़ने में समर्थ नही हूँ । नहीं छोड़ सकता ।

वसुदेव—संसार की गति ऐसी ही है । छोड़ दीजिये ।

नन्दगोप—जैसी स्वामी की आज्ञा । बच्ची ! बच्ची ! (ऐसा कह कर रोता है)

वसुदेव—मित्र ! ज्यादा विलाप मत करो । उठो ! उठो ।

नन्दगोप—(वैसा कर पास जाकर) स्वामी की जय हो । यह दास क्या करे ?

वसुदेव—मित्र ! तुम तो जानते हो कि दुष्ट कंस ने मेरे छः पुत्रों को मार डाला ।

नन्दगोप—स्वामी ! मालूम है । मालूम है ।

वसुदेव--तत् सप्तमोऽयं दीर्घायुः। नास्ति मम पुत्रेषु भाग्यम्। तव भाग्याज्जीवितुं गृह्यताम्।

नन्दगोपः--भा आमि भट्टा! भाआमि। जदि कंषो लाआ षुणादि-वषुदेवष्ष दालओ णन्दगोवष्ष हत्थे णाषो णिक्खित्तो त्ति, किं बहुणा, गदं एव्व मे षीषं। [बिभेमि भर्तः! बिभेमि। यदि कंसो राजा शृणोति—वसुदेवस्य दारको नन्दगोपस्य हस्ते न्यासो निक्षिप्त इति, किं बहुना, गतमेव मे शीर्षम्।]

वसुदेवः--(आत्मगतम्) हन्त विपन्नं कार्यम्। उक्तज्ञाः खलु नृशंसाः। तदेवं कथयामि। (प्रकाशम्) वयस्य नन्दगोप!

यद्यस्ति भवतः किञ्चिन्मया पूर्वकृतं भवेत्।
तस्य प्रत्युपकारस्य कालस्ते समुपागतः॥ २०॥

अन्वयः—यदि मया भवतः किञ्चित् पूर्वकृतं भवेत् अस्ति तस्य प्रत्युपकारस्य ते कालः समुपस्थितः॥ २०॥

व्याख्या—यदि मया भवतः = तव नन्दस्य किञ्चित् = ईषदपि पूर्वकृतं—पूर्वोपकारो भवेदस्ति तर्हि तस्य=पूर्वोपकृतेः प्रत्युपकारस्य = निष्कृतेः ते = नन्दस्य कालः = समयः समुपस्थितः = समागतः॥ २०॥

वसुदेव--तो यह सातवाँ दीर्घायु है। मेरे भाग्य में पुत्र नहीं है। तुम्हारे भाग्य से यह जीवित रहे इसलिये लो।

नन्दगोप—स्वामी। डर रहा हूँ। डर रहा हूँ। यदि राजा कंस सुनेगा कि वसुदेव का लड़का नन्दगोप के यहाँ न्यास रखा गया है तो अधिक क्या, मेरा शिर चला जायेगा।

वसुदेव--(स्वगत) हाय! कार्य बिगड़ गया। बात के ज्ञाता दयाहीन होते हैं। तो यह कहूँ (प्रकट) मित्र नन्दगोप!

यदि कुछ भी मैंने आपका पूर्व में उपकार किया है तो उसके प्रत्युपकार का आपको समय आ गया है॥ २०॥

नन्दगोपः–किं किं पच्चुवकालं त्ति । जदि कंषो वा होदु, कंषष्ष पिदा उग्गषेणो वा होदु । आणेदु भट्टा दालअं । [किं किं प्रत्युपकार इति । यदि कंसो वा भवतु, कंसस्य पितोग्रसेनो वा भवतु । आनयतु भर्ता दारकम् ।]

वसुदेवः—वयस्य । गृह्यताम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! अचोक्खिदम्हि, मदलिआ दालिआ गहीदा । मुहुत्तअं पडिवालेदु भट्टा । जाव जमुणाहलं गच्छिअ चोक्खं कलेमि । [भर्तः ! अशौचितोऽस्मि, मृता दारिका गृहीता । मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भर्ता, यावद् यमुनाजलं गत्वा शौचं करोमि ।]

वसुदेवः—वयस्य । घोषवासात् प्रकृत्या शुचिरेव भवान् ।

नन्दगोपः—तेण हि अम्हाणं घोषष्ष उइदं पङ्खुणा चोक्खं कलेमि । [तेन ह्यस्माकं घोषस्योचितं पांसुना शौचं करोमि ।]

वसुदेवः—कोऽत्र दोषः । क्रियतां शौचम् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । (तथा कुर्वन् सविस्मयम्) अच्छलीअं अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं । पङ्खूणि मग्गमाणष्ष धलणीं भिन्दिअ जुगुप्पमाणा षलिलधाला उट्ठिदा ! [यद् भर्ताज्ञापयति । आश्चर्य-

---

नन्दगोप—क्या प्रत्युपकार ? तो कैसा क्या उसका बाप उग्रसेन ही क्यों न हो । स्वामी, बच्चे को लावें ।

वसुदेव—मित्र ! लो ।

नन्दगोप—स्वामी ! मृत बच्ची को लेने से अशुचि हूँ । थोड़ी देर स्वामी प्रतीक्षा करे । जब तक यमुना जल में जाकर शौच कर लूँ ।

वसुदेव—मित्र ! घोष (गायों के आवास) में रहने से स्वाभाविक रूप से आप शुचि हैं ।

नन्दगोप—तो मैं अपने घोष की मिट्टी से ही शौच कर लुं ?

वसुदेव—इसमें क्या दोष है। शौच कर लीजिये ।

नन्दगोप—जैसी स्वामी की आज्ञा (वैसा करते हुए विस्मय से) स्वामी !

माश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । पांसून् मार्गयतो धरणीं भित्त्वा युगप्रमाणा सलिलधारोत्थिता ।]

वसुदेवः—बालस्यैव प्रभावः । क्रियतां शौचम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! तह । (तथा कृत्वोपसृत्य) भट्टा ! अअम्हि । [भर्तः । तथा । भर्तः ! अयमस्मि ।]

वसुदेवः— गृह्यताम् ।

नन्दगोप.--भट्टा ! अदिदुब्बला मे बाहा मन्दलषदिषं बालअं गिह्णिदुं ण षमत्था । (भर्तः ! अतिदुर्बलौ मे बाहू मन्दरसदृश बालकं ग्रहीतुं न समर्थौ ।)

वसुदेवः—वयस्य ! महाबलपराक्रमः खलु भवान् ।

नन्दगोपः—षुणादु भट्टा मम बलपलक्कमं । षन्दालिअमाणे वृषभे षिङ्गं गह्णिअ मोचेमि । पङ्कुणिमग्गाणि भण्डषअडआणि आघट्टआमि । ईदिषो दाणि अहं दालअं गह्णिउं ण षमत्थो म्हि । [श्रृणोतु भर्ता मम बलपराक्रमम् । सन्दारयमाणे वृषभे शृङ्गं गृहीत्वा मोचयामि । पङ्कनिमग्नान् भाण्डशकटकान् आघट्टयामि । ईदृश इदानीमहं दारकं ग्रहीतुं न समर्थोऽस्मि ।]

आश्चर्य है । आश्चर्य है । धूल ढूंढ़ते समय पृथ्वी को फोड़ कर जूआ के समान (मोटी) जलधारा निकल गयी ।

वसूदेव--यह बच्चे का ही प्रभाव है । शौच कर लोजिये ।

नन्दगोप--स्वामो ! ठीक है । (शौच करके) यह मैं हूँ ।

वसुदेव--लीजिये ।

नन्दगोप--स्वामी ! मेरी अत्यन्त दुर्बल भुजायें मन्दर सदृश (भारी) बालक को लेवे में समर्थ नहीं हैं ।

वसुदेव--मित्र ! आप महाम् बल और पराक्रम से युक्त हैं ।

नन्दगोप—स्वामी मेरे पराक्रम कों सुनें ! पृथ्वी को विदीर्ण कर रहे वृषभ को सींग पकड़कर छुड़ा देता हूँ । कीचड़ में फँसी पात्रों से भरी गाड़ी को चला देता हूँ । किन्तु ऐसा (बलशाली) भी इस समय बालक को ग्रहण करने में असमर्थ हूँ ।

(ततः प्रविशन्ति पञ्चायुधानि गरुडश्च)

गरुडः—

अहं सुपर्णो गरुडो महाजवः शार्ङ्गायुधस्यास्य रथो ध्वजश्च ।
पुरा हि देवासुरविग्रहेषु वहामि भो विष्णुबलेन विष्णुम् ॥ २१ ॥

चक्रः—

चक्रोऽस्मि कृष्णस्य कराग्रशोभी मध्याह्नसूर्यप्रतिमोग्रतेजाः ।
त्रिविक्रमे चामृतमन्थने च मया हता दानवदैत्यसङ्घाः ॥ २२ ॥

अन्वयः—अहं गरुडः महाजवः सुपर्णः अस्य शार्ङ्गायुधस्य रथः ध्वजः च अस्मि । हि भो पुरा देवासुरविग्रहेषु विष्णुबलेन विष्णुं वहामि ॥ २१ ॥

व्याख्या—अहं = गरुडः गरुडनामा महाजवः = महावेगशाली सुपर्णः = शोभनं पर्णं यस्य सुपर्णः अस्य = शार्ङ्गायुधस्य शार्ङ्गधारिणो विष्णोः संप्रति वसुदेवस्य बालकरूपधारिणः ध्वजः रथश्चास्मि । पुरा प्राचीने काले देवासुर-विग्रहेषु = देवासुरविमर्देषु, विष्णुबलेन = विष्णोः शक्त्या, विष्णुं वहामि = वहनं कृतवान् ॥ २१ ॥

अन्वयः—कृष्णस्य कराग्रशोभी मध्याह्नसूर्यप्रतिमोग्रतेजाः चक्रः अस्मि । त्रिविक्रमे अमृतमन्थने च मया दानवदैत्यसंघाः हताः ॥ २२ ॥

व्याख्या—कृष्णस्य = विष्णोः कराग्रशोभी = अङ्गुलिनिवासी मध्याह्नसूर्य-प्रतिमोग्रतेजाः—मध्याह्ने = दिवसार्धे यः सूर्यस्तस्य प्रतिमं, उग्रं = भीषणं तेजः यस्यासो मध्याह्नसूर्यसदृशभीषणतेजाः चक्रः अस्मि । त्रिविक्रमे = वामनावतारे त्रैलोक्यमापनावसरे विष्णोः विराड्वपुषि अमृतमन्थने च मया दानवदैत्यसंघाः = दनुवंशदितिवंशसमूहाश्च हताः = विनाशिताः ॥ २२ ॥

(तदनन्तर पाँचों आयुध तथा गरुड प्रवेश करते हैं)

गरुड—मैं महान् वेगशाली पक्षी गरुड़ हूँ । मैं शार्ङ्गायुध (विष्णु) का रथ तथा ध्वज हूँ । पहले देवासुर-युद्धों में विष्णु के बल से ही विष्णु का वहन करता था ॥ २१ ॥

चक्र—मध्याह्नकालीन सूर्य के समान उग्र तेजवाला मैं विष्णु का चक्र हूँ । विष्णु के त्रिविक्रम रूप लेते समय तथा अमृतमन्थन के अवसर पर मैंने दानव तथा दैत्यसमूहों का विनाश किया था ॥ २२ ॥

शाङ्गः—

शाङ्गोंऽस्मि विष्णुकरलग्नसुवृत्तमध्या
स्त्रीविग्रहात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा ।
यस्यार्थमाहवमुखेषु मयारिसङ्घाः
प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः प्रभग्नाः ॥ २३ ॥

कौमोदकी--

कौमोदकी नाम हरेर्गदाहमाज्ञावशात् सर्वरिपून् प्रमथ्य ।
मया हतानां युधि दानवानां प्रक्रीडितं शोणितनिम्नगासु ॥२४॥

अन्वयः—विष्णुकरलग्नसुवृत्तमध्या स्त्रीविग्रहात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा शाङ्गः अस्मि । यस्यार्थम् मया आहवमुखेषु प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः अरिसङ्घाः प्रभग्नाः ।

व्याख्या—विष्णुकरलग्नसुवृत्तमध्या = विष्णुहस्तलग्नं सुवृत्तं = शोभनं मध्यं = मध्यभागं यस्याः सा विष्णुहस्तस्पृष्टशोभनमध्यभागा स्त्रीविग्रहात् = स्त्रीशरीरात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा—पुरुषस्य वीर्यस्य बलस्य च दर्पतिरस्कारिणी शाङ्गः तन्नामा धनुरस्मि । यस्यार्थं यस्य विष्णोः कृते मया शाङ्गेण आहवमुखेषु—संग्रामाग्रेषु प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः—प्रभ्रष्टाः = नाशिताः, नागाः = गजाः रथाः, वाजिनः = अश्वाः, नराः—मनुष्याश्च येषां तथाभूता अरिसंघाः—शत्रुसमूहाः प्रभग्नाः = विनाश्य पराजिताः ॥ २३ ॥

अन्वयः—अहं कौमोदकी नाम हरेः गदा । युधि सर्वरिपून् प्रमथ्य हतानां दानवानां शोणितनिम्नगासु मया प्रक्रीडितम् ॥ २४ ॥

व्याख्या--अहं कौमोदकी नाम हरेः = विष्णोः गदा अस्मि । युधि = आजौ

शाङ्ग—विष्णु के हाथ लगने से मैं सुन्दर मध्यभागवाली शाङ्ग हूँ । स्त्री शरीर होने पर भी पुरुषों के बल-वीर्य को तिरस्कृत करनेवाली है । इसके लिये मैंने युद्धों में हाथी, रथ, घोड़े और मनुष्यों को नष्ट कर शत्रुसमूहों का विनाश किया गया ॥ २३ ॥

कौमोदकी—मैं विष्णु की गदा कौमोदकी हूँ । उनकी आज्ञा से सभी शत्रुओं का मन्थन कर युद्ध में मारे गये दानवों की शोणित की नदियों से मैंने क्रीडा की ॥ २४ ॥

शङ्खः--

अहं हि शङ्खः क्षीरोदाद् विष्णुना स्वयमुद्धृतः ।
मम शब्देन नश्यन्ति युद्धे ते देवशत्रवः ॥ २५ ॥

नन्दकः--

नन्दकोऽहं न मे कश्चित् सङ्ग्रामेष्वपराङ्मुखः ।
गच्छामि स्मृतमात्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २६ ॥

चक्रः--

चक्रशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दका दैत्यमर्दनाः ।

सर्वरिपून् = सर्वशत्रून्, प्रमथ्य = विनाश्य, हतानां = मृतानां, दानवानां = दनुवंश्यानां राक्षसानां शोणितनिम्नगासु=रक्तनदीषु यमा प्रक्रीडितं=क्रीडा कृता ।२४।

अन्वयः—क्षीरोदात् विष्णुना स्वयम् उद्धृतः अहं शङ्खः अस्मि । मम शब्देन युद्धे ते देवशत्रवः नश्यन्ति ॥ २५ ॥

व्याख्या--क्षीरोदात् = क्षीरसमुद्रात् विष्णुना = भगवता नारायणेन स्वयमेव न तु अन्यद्वारा उद्धृतः = उत्थापितः अहं = पाञ्चजन्यः नाम शङ्ख अस्मि । मम शब्देन = रवेण युद्धे ते = सर्वे देवशत्रवः = देवरिपवः नश्यन्ति = विनश्यन्ति हतौजसो भवन्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥

अन्वयः—अहं नन्दकः । संग्रामेषु मे कश्चित् न अपराङ्मुखः । प्रभविष्णुना विष्णुना स्मृतमात्रेण अहं गच्छामि ॥ २६ ॥

व्याख्या—अहं नन्दकः = तन्नामा विष्णोर्मुशलं । संग्रामेषु = आहवेषु, मे कश्चित् = कोऽपि न अपराङ्मुखः । मम पुरतः सर्वे पराङ्मुखा भवन्तीत्यर्थः । प्रभविष्णुना = प्रभावशालिना विष्णुना = सर्वव्यापकेन नारायणेन स्मृतमात्रेण अहं तत्पार्श्वं गच्छामि ॥ २६ ॥

शङ्ख—क्षीरसागर से विष्णु द्वारा स्वयं निकाला गया मैं शङ्ख हूँ। युद्ध में मेरे शब्द से वे देवशत्रु नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

नन्दक—मैं नन्दक हूँ जिससे युद्ध में कोई अपराङ्मुख (सम्मुख) नहीं है । भावशाली विष्णु द्वारा स्मरण मात्र से मैं चलता हूँ ॥ २६ ॥

वासुदेवस्य कार्यार्थं प्राप्ताः पारिषदा वयम् ॥ २७ ॥

तस्मादागम्यताम् वयमपि मनुष्यलोकमवतीर्णस्य भगवतो विष्णो-र्बालचरितमनुचरितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोषमेवावतरिष्यामः ।

सर्वे—तथास्तु । (विष्णुमुपस्थिताः)

वसुदेवः—वयस्य ! बाल एव नमस्यताम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! तह ! लाअदालअ ! णमो दे णमो दे । ही, होदु, अत्ताणं एव अत्ताणं णिव्वावेहि । अम्हाणं गोपजणष्ष तुमं गह्लिदुं को बलपलक्कमो । [भर्तः ! तथा । राजदारक ! नमस्ते नमस्ते । ही, भवतु, आत्मनैवात्मानं निर्वाहय । अस्माकं गोपजनस्य त्वां ग्रहीतुं को बलपराक्रमः]

चक्रः—नमो भगवते नारायणाय । भगवन् ! महाविष्णो !

कार्याण्यकार्याण्यमरासुराणां
त्वया भविष्यन्ति बहूनि लोके ।

अन्वय—वासुदेवस्य पारिषदाः दैत्यमर्दनाः चक्रशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दका (तस्य) कार्यार्थं प्राप्ताः ॥ २७ ॥

व्याख्या—वासुदेवस्य = विष्णोः पारिषदाः = समीपवर्तिनो वयं चक्र-शार्ङ्गगदाशङ्खनन्दका (एतन्नामकाः) तस्य = वासुदेवस्य कार्यार्थंमत्र प्राप्ताः = उपस्थिताः ॥ २७ ॥

अन्वयः—त्वया अमराणाम् असुराणां बहूनि कार्याणि अकार्याणि लोके भविष्यन्ति । हे यदुवंशकेतो ! तस्मात् लघुत्वयोगात् अस्य जनस्य प्रसादं कुरु ।२८।

चक्र—दैत्यों का विनाश करनेवाले हम (चक्र, शार्ङ्ग, गदा, शङ्ख, और नन्दक वासुदेव के पार्षद हैं जो (उनके) कार्य के लिये आये हैं ॥ २७ ॥

तो आवें। हम भी मनुष्य लोक में अवतीर्ण भगवान् विष्णु के बालचरित का अनुकरण करने के लिये गोपालकों के वेष में छिपकर घोष में अवतार करें।

सभी—ऐसा ही हो (विष्णु के पास चले जाते हैं)

वसुदेव—मित्र ! इस बालक को नमस्कार करो।

नन्दगोप—स्वामी ! ठीक है । राजपुत्र ! नमस्कार । नमस्कार अपने को अपना वहन करो ! हम गोपों को तुम्हें वहन करने का क्या पराक्रम है ।

तस्माज्जनस्यास्य लघुत्वयोगात्
कुरु प्रसादं यदुवंशकेतो ! ॥ २८ ॥

वसुदेवः—गृह्यताम् ।

नन्दगोप—जं भट्टा आणवेदि । (गृह्णाति) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसुदेवः—वयस्य ! प्रभाता रजनी । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

नन्दगोपः—अच्छलीअं अच्छलीअं भट्टा । अच्छलीअं इमे बन्धणी पडिदे । [आश्चर्यमाश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । इमे बन्धने पतिते ।]

वसुदेवः—सर्वमेतत् कुमारस्य प्रभावः । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

व्याख्या—त्वया = भगवता विष्णुना, अमराणां = देवानाम्, असुराणां = दानवानां च कार्याणि = हितसाधनानि, अकार्याणि=विनाशरूपाणि च संपादितानि भविष्यन्ति । तस्मात् = तेन कारणेन लघुत्वयोगात् = लघुभारग्रहणात् अस्य जनस्य = नन्दगोपस्य प्रसादं कुरु । स्वशरीरभारं लघूकृत्य नन्दगोपग्रहणयोग्यो भवेत्यर्थः ॥ २८ ॥

चक्र—भगवान् नारायण को नमस्कार है । हे महाविष्णु, आपके द्वारा मनुष्य लोक में देवों तथा असुरों के विनाश से कार्य (हित) तथा अकार्य (अहित) होंगे अतः (मूर्धन्य) इस व्यक्ति (नन्द) पर लघुत्व योग से (हल्का) हो करिये ॥ २८ ॥

वसुदव—लीजिये ।

नन्दगोप—स्वामी की जो आज्ञा । (लेते हैं)

वसुदेव—मित्र ! रात बीत चली । आप लौट जायँ ।

नन्दगोद—स्वामी ! आश्चर्य है आश्चर्य है । ये दोनों बन्धन (टूटकर) गिर गये ।

वसुदेव—सभी यह कुमार का प्रभाव है । आप लौट जायँ ।

नन्दगोप—जो स्वामी की आज्ञा ।

वसुदेवः—अथवा एहि तावत्।

नन्दगोपः—भट्टा! अअम्हि। [भर्तः ! अयमस्मि।]

वसुदेवः—

जाने नित्यं वत्सलं त्वां प्रकृत्या
स्नेहोऽप्यस्मिन्नर्थ्यते रूढभावः॥
अस्मिन् काले दग्धभूयिष्ठशेषं
न्यस्तं बीजं रक्षितुं यादवानाम्॥ २९॥

कुमारस्य किं करिष्यति भवान्।

नन्दगोपः—सुणादु भट्टा। एक्कस्सिं गेहे गच्छिअ खीरं पिबइ, अण्णस्सिं गेहे गच्छिअ दधि भक्खइ। अवरस्सिं गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलइ। अण्णस्सिं गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ। इदरस्सिं गेहे गच्छिअ तक्कघटं

अन्वय—त्वां प्रकृत्या नित्यं वत्सलं जाने। अस्मिन् अपि स्नेहः रूढभावः अर्थ्यते। अस्मिन् काले यादवानां दग्धभूयिष्ठं बीजं रक्षितुं, न्यस्तम्॥ २९॥

व्याख्या—त्वां = नन्दगोपं प्रकृत्या = निसर्गतः नित्यं = सदैव वत्सलं = वात्सल्यप्रेमयुक्तं जाने। अस्मिन् अपि = बाले स्नेहः = वात्सल्यप्रेम रूढभावः = प्रवृद्धः अर्थ्यते = प्रार्थ्यते। अस्मिन् काले = इदानीं यादवानां = यदुवंशीयानां दग्धभूयिष्ठं = भृशदग्धं बीजं रक्षितुं = रक्षणाय त्वयि न्यस्तम्॥ २९॥

इति भासविरचिते बालचरिते प्रथमाङ्के गङ्गाभिधा हिन्दीसंस्कृतटीका संपूर्णा॥

वसुदेव—अथवा इधर आओ।

नन्दगोप—स्वामी! यह मैं हूँ।

वसुदेव—मैं जानता हूँ कि आप स्वभावतः सदैव वात्सल्यभावपूर्ण हैं पर इसमें (इस बालक में) वह मैं अत्यन्त बढ़ा हुआ याचना करता हूँ। (क्योंकि) इस समय यादवों के पर्याप्त जलने से शेष बचा बीज रक्षा के लिये रखा जा रहा है॥ २९॥

कुमार का आप क्या करेंगे।

नन्दगोप—स्वामी सुनें! एक घर में प्रवेश कर दही खायेगा। दूसरे घर

किं बहुणा, अम्हाणं घोषष्ष पदी होइ। (शृणोतु भर्ता। एकस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति। अपरस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिलति। अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते। इतरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते। किं बहुना, अस्माकं घोषस्य पतिर्भवति।]

वसुदेव.--एवमस्तु। प्रतिनिवर्ततां भवान्।

नन्दगोपः--जं भट्टा आणवेदि। (निस्क्रान्तः।) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

वसुदेवः—ननु निर्गतो नन्दगोपः। यावदहमपि मधुरामेव यास्यामि। (परिक्रम्य) रुदितशब्द इव श्रूयते। किं नु खलु कंसभयात् प्रतिनिवृत्तो नन्दगोपः। (परिक्रम्य) अये प्रत्यागतप्राणेयं दारिका। यावदिमां गृहीत्वा देवक्या हस्ते निक्षिप्य दुरात्मानं कंसं वञ्चयामि। (गृहीत्वा) अहो गुरुत्वमस्याः। एतदपि कुमारात् किञ्चिदन्तरं महद्भूतम्। यावदपक्रामामि। अये इयं भगवती यमुना तथैव स्थिता। यावदपक्रामामि। निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः। एतन्नगरद्वारम्। तथैव प्रसुप्तो मथुरायां सर्वो जनः। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) इदं खलु दुरात्मनः कंसस्य गृहं ज्येष्ठाश्रितमिव दृश्यते। इदमस्मदीयं गृहं श्रियारूढमिव

में मक्खन खायेगा। दूसरे घर में जाकर खीर खायेगा। अन्य घरों में जाकर मट्ठे का मटका देखेगा। अधिक क्या, हमारे घोष का स्वामी होगा।

वसुदेव--ऐसा ही हो। आप लौट जायँ।

नन्दगोप--जैसी स्वामी की आज्ञा (लौट जाता है)।

वसुदेव--नन्दगोप चले गये। तो मैं भी मथुरा में जाऊँ। (चलकर) अरे! इस बालिका में तो प्राण लौट आये। तो इसे देवकी के हाथ में रखकर दुरात्मा कंस को वञ्चित करूँ। (लेकर) अरे! इसका भारीपन! यह भी कुमार से कुछ अन्तर से भारी है। हट चलूँ! अरे! ये भगवती यमुना उसी तरह (बीच से विभक्त) स्थित हैं। तो निकल जाऊँ। यमुना तो पार हो गया। यह नगर का द्वार है। इसी प्रकार मथुरा में सभी व्यक्ति सो रहे हैं। प्रवेश करूँ (प्रवेश करके) यह दुरात्मा कंस का गृह ज्येष्ठा (अलक्ष्मी) युक्त (लक्ष्मी

दृश्यते । यावदहमप्यन्तःपुरं प्रविश्य देवकीं समाश्वासयामि । ईश्वराः स्वस्ति कुर्वन्तु । (निष्क्रान्तः ।)

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

से निर्वासित) जैसा दिखाई पड़ रहा है। यह हम लोगों का गृह लक्ष्मी से युक्त जैसा दिखाई पड़ रहा है । तो मैं भी अन्तःपुर में प्रवेश कर देवकी को आश्वासन दूँ। देवता मङ्गल करें ।

(निकल जाता है)

प्रथम अंक समाप्त

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति चाण्डालयुवतयः ।)

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ । अम्हाणं कण्णाणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—भोः ! किन्नु खल्विदम् ।

यन्मेदिनी प्रचलिता पतिताग्रहर्म्या
सन्तारनौरिव विकीर्णमहोर्मिमाला ।
सेव्यैः प्रधानगुणकर्मफलैर्निमित्तैः
किं वाग्रतो व्यसनमभ्युदयो नु तन्मे ॥ १ ॥

अन्वयः—विकीर्णमहोर्मिमाला सन्तारनौः इव पतिताग्रहर्म्या मेदिनी यत् प्रचलिता तत् अग्रतः प्रधानगुणकर्मफलैः निमित्तैः मे व्यसनम् अभ्युदयः वा । १ ।

व्याख्या—विकीर्णमहोर्मिमाला— विकीर्णाः = प्रसृताः महोर्मीणां = बृहदूर्मीणां मालाः = समूहाः यस्यां सा सन्तारनौः = संतरणनौका इव पतिताग्रहर्म्या—पतितानि अग्रहर्म्याणि = उत्तुङ्गभवानि यस्यां सा मेदिनी = पृथिवी यत् प्रचलिता = प्रकम्पिता तत् अग्रतः = आगामिकाले प्रधानगुणकर्मफलैः = श्रेष्ठगुणकर्मफलयुक्तैः निमित्तैः = हेतुभिः मे व्यसनं = विपत्तिः अभ्युदयः वा भविष्यतीति । यत् महान् भूमिकम्पः संजातो येन उच्चसौधाग्राणि पतितानि तेन निमित्तेन अग्रे मे अभ्युदयः विनाशो वा भविता इति चिन्ता ॥ १ ॥

(तदनन्तर चाण्डालयुवतियाँ प्रविष्ट होती हैं)

सभी—स्वामी ! आइये । आइये । हमारी कन्याओं का आपके साथ विवाह हो ।

(तदनन्तर राजा प्रवेश करते हैं)

राजा—अरे ! यह क्या है ?

महान् तरङ्गों में फँसी पार करने की नौका के समान महान् अट्टालिकाओं

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ अम्हाणं कण्णआणं तुए सह विवाहो होदु।
[आगच्छ । भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यकानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

राजा—

यस्मान्न रक्षिपुरुषाः प्रचरन्ति केचिद्
यस्मान्न दीपकधराः प्रमदाश्चरन्ति ।
तस्मादिमा मम गृहं समनुप्रविष्टा
नीलोत्पलाञ्जननिभा भयदाः श्वपाक्यः ॥ २ ॥

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ। अम्हाणं कण्णआणं तुए सह विवाहो होदु। [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यकानां त्वया सह विवाहो भवतु !]

अन्वयः—यस्मात् केचित् रक्षिपुरुषाः न प्रचरन्ति यस्मात् (च) दीपकधराः प्रमदाः न चरन्ति तस्मात् मम गृहम् इमाः नीलाञ्जननिभाः भयदाः श्वपाक्यः प्रविष्टाः ॥ २ ॥

व्याख्या—यस्मात् कारणात् केचित् रक्षिपुरुषाः =रक्षकाः न प्रचरन्ति = भ्रमन्ति द्वारदेशे रक्षार्थं, यस्मात् च दीपकधराः=प्रदीपिकाहस्ताः प्रमदाः = स्त्रियः न प्रचरन्ति तस्मात् कारणात् नीलाञ्जननिभाः श्यामाः मम = कंसस्य राज्ञो गृहं= प्रासादम् इमाः = पुरो दृश्यमानाः भयदाः=भयजनकाः श्वपाक्यः=चाण्डालस्त्रियः प्रविष्टाः ॥ २ ॥

के पतनवाली पृथ्वी प्रचलित हो रही है। प्रधान गुण कर्मफल से सेवित मेरी क्या विपत्ति उन्नति होनेवाली है ॥ १ ॥

सभी—आइये स्वामी ! आइये । हमारी कन्याओं का आपके साथ विवाह हो ।

राजा—क्योंकि यहाँ कोई रक्षकपुरुष नहीं घूम रहे हैं और क्योंकि यहाँ दीपकधारिणी स्त्रियाँ घूम रहीं हैं अतः ये नीलकमल और अंजनसदृश भयदायिका चाण्डालस्त्रियाँ मेरे गृह में प्रविष्ट हो गयी हैं ॥ २ ॥

सभी—आइये स्वामी ! आइये । हमारी कन्याओं का आपके साथ विवाह हो ।

राजा—अहो धृष्टाः खल्वेताश्चण्डालयुवतयः—

क्रोधेन नश्यति सदा मम शत्रुपक्षः
सूर्यः शशी हुतवहश्च वशे स्थिता मे ।
योऽहं यमस्य च यमो भयदोभयस्य
तं मापवादवचनैः परिधर्षयन्ति ॥ ३ ॥

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ ।]

राजा—आ अपध्वंस । कथं सहसैव नष्टाः । यावदिदानीमभ्यन्तरमेव प्रविशामि ।

(ततः प्रविशति शापः ।)

शापः—हं, क्वेदानीं प्रविशसि । इदं खलु मम गृहं संवृत्तम् ।

राजा—

कोऽयं विनिष्पतति गर्भगृहं विगाह्य
उल्कां प्रगृह्य सहसाञ्जनराशिवर्णः ।

अन्वयः—क्रोधेन मम शत्रुपक्षः सदा नश्यति । सूर्यः शशी हुतवहः च मे वशे स्थिताः । यमस्य च यमः भयस्य च भयदः यः अहं तं मा अपवादवचनैः परिधर्षयन्ति ॥ ३ ॥

व्याख्या—क्रोधेन=कोपेन मम शत्रुपक्षः वैरिवर्गः सदा नश्यति = विनश्यति । सूर्यः=दिनकरः, शशी = चन्द्रः, हुतवहोऽग्निश्च मे वशे स्थिताः । यमस्य =मृत्योः च यमो = नियामकः भयस्य = भीतेश्च भयदः = भयप्रदः योऽहं तं माम् =इमां अपवादवचनैः=निन्दितवचनैः परिधर्षयन्ति = तिरस्कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

राजा—अरे ! ये चाण्डालस्त्रियाँ बड़ी ढीठ हैं ।

मेरे क्रोध से शत्रुपक्ष सदा नष्ट हो जाता है । सूर्य, चन्द्र और अग्नि मेरे वशवर्ती हैं । जो मैं काल का भी काल और भय का भी भयदाता हूँ उस मुझको ये (चाण्डालस्त्रियाँ) कुत्सित वचनों से घर्षित कर रही हैं ॥ ३ ॥

सभी—आइये स्वामी ! आइये ।

राजा—अरी भागो । कैसे सहसा नष्ट हो गयीं । तो मैं अब भीतर चलूँ ।

(तब शाप प्रवेश करता है ।)

शाप—अरे ! इस समय कहाँ जा रहे हो । यह अब मेरा घर हो गया ।

भीमोग्रदंष्ट्रवदनो ह्यहिपिङ्गलाक्षः
क्रोधो महेश्वरमुखादिव गां प्रपन्नः ।। ४ ।।

को भवान् ।

शापः—किं न जानीषे माम् । अहं खलु मधूकस्य ऋषेः शापो वज्रबाहुर्नाम ।

श्मशानमध्यादहमागतोऽस्मि चण्डालवेषेण विरूपचण्डम् ।
कपालमालातिविचित्रवेषः कंसस्य राज्ञो हृदयं प्रवेष्टुम् ।। ५ ।।

कंस—असम्भाव्यमर्थं प्रार्थयसि ।

सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जं
मेरुं न कम्पयति वायसपक्षवातः ।

अन्वय—अञ्जनराशिवर्णः भीमोग्रदंष्ट्रवदनः ह्यहिपिगलाक्षः कः अयम् उल्का प्रगृह्य गर्भगृहं विगाह्य महेश्वरमुखात् गां प्रपन्नः क्रोधः इव विनिष्पतति ।। ४ ।।

व्याख्या—अञ्जनराशिवर्णः—अञ्जनस्य = कज्जलस्य राशिः=समूहः तत्सदृशः वर्णः यस्य, भीमोग्रदंष्ट्रवदनः—भीमं = भयंकरम्, उग्रदंष्ट्रं = तीव्रदंष्ट्रं, वदनं—मुखं यस्य अहिपिङ्गलाक्षः—अहेः = सर्पस्य इव पिङ्गले = पिङ्गलवर्णे अक्षिणी यस्य स कोऽयं गर्भगृहं = अन्तःपुरं विगाह्य = प्रविश्य महेश्वरमुखात् = त्र्यम्बकमुखात् गां= पृथिवीं प्रपन्नः = समागतः क्रोध इव विनिष्पतति = समागच्छति ।। ४ ।।

अन्वयः—विरूपचण्डं चाण्डालवेषेण कपालमालातिविचित्रवेषः अहं कंसस्य राज्ञः हृदयं प्रवेष्टुं श्मशानदेशात् आगतः अस्मि ।। ५ ।।

राजा—यह उल्का लिये कौन कज्जलराशि के रङ्गवाला अन्तःपुर में हठात् प्रविष्ट हो रहा है । वह भयंकर दाढयुक्त मुखवाला, सर्प सदृश रक्त नेत्रवाला है तथा पृथ्वी पर भगवान् शंकर के मुख से निकले क्रोध के समान पृथ्वी पर प्राप्त हुआ-सा है ।। ४ ।।

आप कौन हैं ?

शाप—क्या मुझे नहीं जानते । मैं मधूक ऋषि का वज्रबाहु नामक शाप हूँ । अत्यन्त भयंकर तथा कपाल की मालाओं वाला विचित्र वेषवाले चाण्डाल-वेश में मैं कंस राजा के हृदय में प्रविष्ट होवे के लिये श्मशान से आया हूँ ।। ५ ।।

हास्योऽसि भोः ! समकरक्षुभितोर्मिमालं
पातुं य इच्छसि कराञ्जलिनास मुद्रम् ॥ ६ ॥

शापः—काले ज्ञास्यसि ।

राजा—हं, कथं सहसैव नष्टः । यावदहमपि शयनमुपगम्य नयनव्याक्षेपं करोमि । (स्वपिति ।)

व्याख्या—विरूपं = रूपहीनं चण्डं = भयंकर तथाभूतं विरूपचण्डं चाण्डालवेषेण = श्वपाकवेषेण कपालमालातिविचित्रवेषः—कपालानां नृशीर्षाणां माला कपालमाला तयाऽतिविचित्रवेषोऽद्भुतरूपो यस्य सः, अहं कंसस्य राज्ञः = नृपतेः हृदयं प्रवेष्टुं = प्रवेशनाय श्मशानदेशात् आगतः अस्मि ॥ ५ ॥

अन्वय—सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जं मेरुं वायसपक्षवातः न कम्पयति । समकरक्षुभितोर्मिमालं समुद्रं यः कराञ्जलिना पातुम् इच्छसि भोः (एतादृशस्त्वं) हास्यः असि ॥ ६ ॥

व्याख्या—सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जं—सौवर्णं = सुवर्णमयं कान्ततरं = सुशोभनं कन्दराः = गुहाः कूटाः = शिखराणि कुञ्जानि = लतागृहाणि च यस्मिन् तं मेरुं = सुमेरुं वायसपक्षवातः = काकपक्षवायुः न कम्पयति = चालयति । समकरक्षुभितोर्मिमालं—मकरेण सहितं = ग्राहयुतं क्षुभिता = क्षोभं प्राप्ता ऊर्मीणां = तरङ्गानां माला यस्मिन् तं समुद्रं = सागरं यस्त्वं कराञ्जलिना = हस्तपुटकेन पातुमिच्छसि भो एतादृशस्त्वं हास्यो = हास्यस्य पात्रभूतोऽसि ॥ ६ ॥

कंस—असंभव विषय की प्रार्थना कर रहे हो ।

सुवर्णनिर्मित अत्यन्त सुन्दर कन्दराओं, शिखरों और कुञ्जों से युक्त मेरुपर्वत को कौए के पंख की वायु नहीं कम्पित कर सकती । तुम उपहास के पात्र हो जो मकरों से युक्त तथा लहरों से क्षुब्ध सागर को हाथ की अञ्जलि से पीना चाहते हो ॥ ६ ॥

शाप—समय से जानोगे ।

राजा—अरे ! यह सहसा कैसे नष्ट हो गया । तो मैं भी शयन पर जाकर आँखें बन्द कर लूं (सोता है) ।

शापः—अये प्रसुप्तः। अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! तदागम्यतामभ्यन्तरं प्रविशामः।

सर्वाः—एवं होदु। [एवं भवतु।]

(प्रविश्य)

राजश्रीः—न खलु प्रवेष्टव्यम्।

शापः—का भवती।

श्रीः—किं मां न जानीषे। अहं खल्वस्य लक्ष्मीः।

शापः—एवम्। राजश्रीः ! अपक्रामतु भवती। इदं खलु मम गृहं संवृत्तम्।

श्रीः,

लङ्कोपमं मम गृहं न विचिन्त्य मूढ !
कस्याश्रयाद् विशसि मामवधूय रात्रौ।
किं भाषितेन बहुना न च शक्यमेतद्
द्रष्टुं प्रवेष्टुमिह तेऽद्य मयाऽभिजुष्टम् ॥ ७॥

अन्वयः—हे मूढ ! लङ्कोपमं मम गृहं न विचिन्त्य माम् अवधूय कस्य आश्रयात् रात्रौ विशसि। किं बहुना भाषितेन मया अभिजुष्टम् एतत् अद्य ते इह द्रष्टुं प्रवेष्टुं (वा) न शक्यम् ॥ ७॥

व्याख्या—हे मूढ = मूर्ख ! लङ्कोपमं = लङ्कातुल्यं सुन्दरमित्यर्थः मम गृहं

शाप—अरे! सो गया। अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! तो तुम लोग आओ और अन्तःपुर में प्रवेश करो।

सभी—ऐसा ही हो।

(प्रवेश कर)

राजलक्ष्मी—प्रवेश मत करो।

शाप—आप कौन हैं ?

लक्ष्मी—क्या मुझे नहीं जानते ? मैं इसकी लक्ष्मी हूँ।

शाप—ठीक है। राजलक्ष्मी ! आप चली जायँ। यह मेरा घर हो गया है।

लक्ष्मी—हे मूढ ! रात्रि में मुझे तिरस्कृत कर तथा लङ्कातुल्य मेरे गृह का

शापः---भगवति पद्मालये ! अपक्रामतु किल कंसशरीरात् । विष्णु-राज्ञापयति ।

श्रीः---कथं विष्णुराज्ञापयतीति भोः ? कष्टम् ।

न चाहं चिरसंवासात् त्यक्तुं शक्नोमि पार्थिवम् ।
बलवान् गुणसङ्ग्राही दृढं तपति मामयम् ॥ ८ ॥

भवतु । अनतिक्रमणीया विष्णोराज्ञा । तस्मादहमपि विष्णुसकाशमेव यास्यामि । (निष्क्रान्ता ।)

न विचिन्त्य = विचार्य माम् अवधूय = तिरस्कृत्य कस्य आश्रयात् = संश्रयात् बलादित्यर्थः रात्रौ विशसि = प्रविशसि। किं बहुना अधिकेन भाषितेन उक्तेन मया राजलक्ष्म्या अभिजुष्टं संश्रितमेतत् गृहम् अद्येदानीं ते इह द्रष्टुं प्रवेष्टुं = प्रवेशं कर्तुं वा न शक्यं = संभवम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—अहं चिरसंवासात् पार्थिवं त्यक्तुं न शक्नोमि अयं बलवान् गुण-संग्राही (अतः) अयं (तस्य त्यागः) मां दृढं तपति ॥ ८ ॥

व्याख्या—अहं = राजलक्ष्मीः चिरसंवासात् अस्य गृहे = बहुकालं यावत् निवासात् इमं पार्थिवं = नृपं त्यक्तुं = विहातुं न शक्नोमि = पारयामि । अयं नृपः बलवान् =बलशाली गुणसंग्राही = गुणसंग्रहकर्ता च अयमस्य त्यागः मां= लक्ष्मीं दृढं = भृशं तपति = संतापं करोति ॥ ८ ॥

ध्यान न करके किसके आश्रय से प्रवेश कर रहे हो । अधिक कहने से क्या लाभ ! मेरे द्वारा सेवित इस (घर) में तुम प्रवेश तो क्या, देख भी नहीं सकते ॥ ७ ॥

शाप--भगवति लक्ष्मी ! आप कंस के शरीर से निकल जायँ ऐसा भगवान् विष्णु आदेश दे रहे हैं ।

लक्ष्मी--क्या भगवान् विष्णु आदेश दे रहे हैं ? कष्ट है । इस पार्थिव नरेश को, बहुत दिनों से साथ रहने से मैं इसे छोड़ नहीं सकती । यह अत्यन्त गुणग्राही है । यह मुझे घोर ताप दे रहा है ॥ ८ ॥

ठीक । भगवान् विष्णु की आज्ञा अनुल्लङ्घनीय है । तो मैं भी विष्णु के पास ही जा रही हूँ । (निकल जाती है) ।

शाप:--अपक्रान्ता राजश्री:। हन्तेदानीमिदमस्माकमावासः संवृत्तः। अलक्ष्मि! खलति! कालरात्रि! महानिद्रे! पिङ्गलाक्षि। अभ्यन्तरं प्रविश्य स्वजातिसदृशी क्रीडा क्रियताम्।

शाप: —

परिष्वजामि गाढं त्वां नित्याधर्मपरायणम्।
प्राप्नोमि मुनिशापस्त्वामचिरान्नाशमेष्यसि ॥ ९ ॥

(अन्तर्हितः।)

(प्रविश्य)

प्रतिहारी--जेदु भट्टा। [जयतु भर्ता।]

राजा—हं!

प्रतिहारी—भट्टा? जसोधरा खु अहं। [भर्तः! यशोधरा खल्वहम्।]

अन्वय:--नित्याधर्मपरायणं त्वां गाढं परिष्वजामि। मुनिशापः त्वां प्राप्नोमि। अचिरात् नाशम् एष्यसि ॥ ९ ॥

व्याख्या--नित्याधर्मपरायणं = सदैव पापरतं त्वां = कंसं गाढं = दृढं परिष्वजामि = आलिङ्गामि। अहं मुनिशापः = मधूकऋषेः शापः त्वां प्राप्नोमि = प्रविशामि। अचिरात् = शीघ्रमेव त्वं नाशं = विनाशम्, एष्यसि = प्राप्स्यसि। ९।

शाप—राजलक्ष्मी चली गयीं। अहा! यह इस समय हम लोगों का निवास हो गया। अलक्ष्मी! खलति! कालरात्रि! महानिद्रे! पिङ्गलाक्षि! तुम सभी अन्तःपुर में जाकर अपनी जाति के अनुरूप क्रीडा करो।

सभी—आज से तुम धर्माचरण से हीन हो जाओ।

शाप—नित्य अधर्मपरायण तेरा मैं आलिङ्गन करता हूँ। मुनि का शाप मैं तुझे प्राप्त करा रहा हूँ (तुझमें आविष्ट हो रहा हूँ)। शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाओगे। (अन्तर्हित हो जाता है) ॥ ९ ॥

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—स्वामी की जय हो।

राजा—एँ!

प्रतीहारी—स्वामी! मैं यशोधरा हूँ।

राजा—यशोधरे ? किं त्वया मातङ्गीजनप्रवेशो न दृष्टः ।

प्रतिहारी—हं मादङ्गिजणत्ति । णिच्चं भट्टिपादमूले वत्तमाणस्स व जणस्स, इह प्पवेसो दुल्लहो, किं उण मादङ्गिजणस्स । [हं मातङ्गीजन इति, नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्यैव जनस्येह प्रवेशो दुर्लभः, किं पुनर्मातङ्गी-जनस्य ।]

राजा—किं स्वप्नो नु मयानुभूतः ! यशोधरे ! गच्छ । बालाकिः काञ्चुकीयः प्रवेश्यताम् ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता ।) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आर्यं बालाके ! प्रष्टव्यौ सांवत्सरिकपुरोहितौ—अद्य रात्रौ वातोद्भ्रान्तभूमिकम्पोल्कापाता दैवतप्रतिमाश्च प्रतिभासिताः किमर्थं-मिति ।

काञ्चुकीयः—महाराज ! सांवत्सरिकपुरोहितौ विज्ञापयतः ।

राजा—किमिति ।

राजा—यशोधरे ! क्या तुमने चाण्डालिनियों का प्रवेश नहीं देखा ?

प्रतीहारी—क्या मातङ्गीजन (चाण्डालस्त्रियों) का ? नित्य स्वामी के पास रहनेवालों का ही प्रवेश नहीं कठिन है फिर मातङ्गीजनों की क्या बात ?

राजा—क्या मैंने स्वप्न देखा है ? यशोधरे ! जाओ । बालाकि नामक काञ्चुकीय को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—जो स्वामी की आज्ञा (चली जाती है)

(तदनन्तर काञ्चुकीय प्रविष्ट होता है)

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो ।

राजा—आर्य बालाके ! ज्योतिषी और पुरोहित से पूछना है कि आज रात में आँधी, भूकम्प, उल्कापात देखा और देवमूर्तियों का अनुभव किया गया । यह किसलिये ?

काञ्चुकीय—महाराज ! सांवत्सरिक तथा पुरोहित कहते हैं—

राजा—क्या ?

काञ्चुकीयः—श्रूयताम् ।

> भूतं नभस्तलनिवासि नरेन्द्र ! नित्यं
> कार्यान्तरेण नरलोकमिह प्रपन्नम् ।
> आकाशदुन्दुभिरवैः समहीप्रकम्पै-
> स्तस्यैष जन्मनि विशेषकरो विकारः ॥ १० ॥

राजा—

> कस्मिञ्जाते सशैलेन्द्रा कम्पितेयं वसुन्धरा ।
> ज्ञायतां कस्य पुत्रोऽयं किं वा जन्मप्रयोजनम् ॥ ११ ॥

इति ।

अन्वयः—हे नरेन्द्र ! नित्यं नभस्तलनिवासि भूतं कार्यान्तरेण इह नरलोकं प्रपन्नम् । तस्य जन्मनि समहीप्रकम्पैः आकाशदुन्दुभिरवैः एष विशेषकरः विकारः ॥

व्याख्या—हे नरेन्द्र = राजन् ! नित्यं = सदैव नभस्तलनिवासि = अन्तरिक्ष-निवासि भूतं = प्राणी कार्यान्तरेण = कार्यवशात् इह नरलोकं = मनुष्यलोकं प्रपन्नं = प्राप्तम् । तस्य = भूतस्य जन्मनि = उद्भवे समहीप्रकम्पैः = भूमि-कम्पैः सह आकाशदुन्दुभिरवैः = गगनदुन्दुभिशब्दैः एषः विशेषकरः = विशेषफल-प्रदः विकारः = विक्रिया अशुभदर्शनमिति जातः ॥ १० ॥

अन्वयः—सशैलेन्द्रा इयं वसुंधरा कस्मिन् जाते कम्पिता । अयं कस्य, पुत्रः जन्म प्रयोजनं वा किं (इति) ज्ञायताम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—सशैलेन्द्रा=पर्वतसहिता इयं वसुंधरा—वसूनि = धनानि धारयतीति वसुंधरा = पृथ्वी कस्मिन् सत्त्वे जाते = उत्पन्ने कम्पिता = चलिता । अयं सद्यो-जातः कस्य=जनस्य पुत्रः अस्य जन्मप्रयोजनं=जन्महेतुः वा किमिति ज्ञायताम् ।११।

काञ्चुकीय—सुनिये ।

हे राजन् ! नित्य आकाश में रहनेवाला प्राणी कार्यवश इस नरलोक में आया है । उसीके जन्म में आकाश में दुन्दुभि के शब्द से तथा भूमिका से यह विकार हुआ है ॥ १० ॥

राजा—किसके उत्पन्न होने पर पर्वतों से मुक्त यह पृथ्वी कम्पित हुई है । यह भी ज्ञात करिये कि यह किसका पुत्र है और इसके जन्म का क्या प्रयोजन है ।११।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । प्रसूतवती किल देवकी ।

राजा—किं प्रसूतम् ।

काञ्चुकीयः—दारिका प्रसूता ।

राजा—मा तावत् । एतानि महानिमित्तानि दारिकाप्रसूतिमात्रेण उत्पद्यन्ते ।

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महाराजः । अनृतं नाभिहितपूर्वं मया । भवतो भृत्यवर्गपरिवृतायाः धात्र्या हस्ते दृष्टा सा ।

राजा—अथवा ब्राह्मणवचनमनृतमपि सत्यं पश्यामि । गच्छ, वसुदेवस्तावदाहूयताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

राजा—धर्मशीलः सत्यवादी वसुदेवः । अथ तु मम समीपेऽनृतं न ब्रवीति । भवतु, श्रोष्यामस्तावत् ।

(ततः प्रविशति वसुदेवः)

काञ्चुकीय—महाराज की जो आज्ञा (जाकर तथा पुनः आकर) महाराज की जय हो । देवकी ने प्रसव किया है ।

राजा—क्या प्रसव किया है ।

काञ्चुकीय—कन्या का प्रसव किया है ।

राजा—नहीं ऐसी बात नहीं । ऐसे महान् कारण कन्या के उत्पन्न होने पर हो सकते हैं ?

काञ्चुकीय—महाराज प्रसन्न हों । मैंने पहले असत्य नहीं कहा है । आपके नौकरों से घिरी धाय के हाथ में उसे देखा है ।

राजा—अथवा ब्राह्मण के अनृत वचन को भी सत्य देख रहा हूँ । जाओ । वसुदेव को बुला लाओ ।

काञ्चुकीय—महाराज की जैसी आज्ञा (निकल जाता है) ।

राजा—वसुदेव धर्मपरायण तथा सत्यवादी है और मेरे सामने असत्य नहीं बोलता । ठीक है तो हम सुनें ।

(तदनन्तर वसुदेव प्रवेश करते हैं)

वसुदेवः—

षण्णां सुतानां समुपेत्य नाशं वहन्निदं शोककृशं शरीरम् ।
आहूयमानोऽकरुणेन राजा गच्छाम्यहं भृत्य इवास्वतन्त्रः ॥ १२ ॥

भोः ! एवंविधा लोकवृत्तिः ।

स्मरतापि भयं राजा भयं न स्मरतापि वा ।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयादप्यभयादपि ॥ १३ ॥

(उपसृत्य) शौरसेनीमातः ! आस्यते ।

अन्वयः—षण्णां सुतानां नाशं समुपेत्य इदं शोककृशं शरीरं वहन् अहम् अकरुणेन राज्ञा आहूयमानः भृत्य इव अस्वतन्त्रः गच्छामि ॥ १२ ॥

व्याख्या—षण्णां = षट्संख्याकानां सुतानां = पुत्राणां नाशं = विनाशं मृतिमित्यर्थः समुपेत्य = प्राप्य इदं शोककृशं = दुःखजरितं शरीरं वहन् = धारयन् अहम् अकरुणेन नृशंसेन = निर्दयेन राज्ञा = नृपतिना कंसेन आहूयमानः- आहूतः भृत्यः = सेवकः इव अस्वतन्त्रः = अस्वाधीनः गच्छामि तस्य पार्श्वं यामि ॥ १२ ॥

अन्वयः—राजा स्मरता अपि भयं वा न स्मरता अपि (राजा) भयम् । भयात् अभयात् उभाभ्याम् अपि गन्तव्यः ॥ १३ ॥

व्याख्या—राजा (राट्शब्दस्य तृतीया) राज्ञा स्मरता = स्मरणं कुर्वता अपि राज्ञा भयं भीतिकारणं न स्मरता अपि राज्ञा भयं = भीतात् भयं = भयात् भीतेः अभयात् अभीतेरपि उभाभ्यामपि=उभयकारणाभ्यामपि राज्ञः समीपं गन्तव्यो = गमनीय एव ॥ १३ ॥

वसुदेव—छः पुत्रों का नाश होवे से शोक से कृश इस शरीर का वहन करते हुए निर्दय राजा द्वारा बुलाये जाने पर अस्वाधीन भृत्य की भाँति जा रहा हूँ ॥ १२ ॥

हाँ ! ऐसी ही लोकवृत्ति है ।

राजा के स्मरण करने पर भी भय है और न स्मरण करने पर भी भय है । भय और अभय दोनों प्रकारों से जाना है ।

(पास जाकर) शौरसेनी पुत्र ! मैं आ गया ।

राजा—यादवीमातः । आस्यताम् ।

वसुदेवः—बाढम् । (उपविश्य) शौरसेनीमातः ? किमर्थं वयमाहूताः ।

राजा—यादवीमातः ? प्रसूतवती किल देवकी ।

वसुदेवः—अथ किम्, प्रसूतवती ।

राजा—किं प्रसूतम् ।

वसुदेवः—(आत्मगतम्) मयापि नामानृतं वक्तव्यं भविष्यति । अथवा कुमाररक्षणार्थमनृतमपि सत्यं पश्यामि । किमिदानीं करिष्ये भवतु, दृष्टम् । (प्रकाशम्) दारिका प्रसूता तया ।

राजा—

दारिका वा कुमारो वा हन्तव्यः सर्वथा मया ।
दैवं पुरुषकारेण वञ्चयिष्याम्यहं ध्रुवम् ॥ १४ ॥

अन्वय.—दारिका वा कुमारः वा मया सर्वथा हन्तव्यः अहं पुरुषकारेण दैवं ध्रुवं वञ्चयिष्यामि ॥ १४ ॥

व्याख्या—दारिका = कन्यका वा कुमारो = बालको वा यो वा को वा भवत्वित्यर्थः मया सर्वथा = सर्वप्रकारेण हन्तव्यः = वध्यः अहं = कंसः पुरुषकारेण = पौरुषेण दैवम् = दिष्टं ध्रुवं = निश्चितमेव वञ्चयिष्यामि = प्रतारयिष्यामि पुरुषकारेण दैवं पराजेष्यामीत्यर्थः ॥ १४ ॥

राजा—यादवीपुत्र ! बैठो ।

वसुदेव—ठीक है । (बैठकर) सौरशेनी पुत्र ! किसलिये हमें बुलाया है ।

राजा—यादवी पुत्र ! देवकी ने प्रसव किया है ।

वसुदेव—हाँ ! प्रसव किया है ।

राजा—क्या प्रसव किया है ।

वसुदेव—(मन में) मुझे भी असत्य बोलना पड़ेगा । अथवा कुमार की रक्षा के लिये असत्य को भी सत्य समझ रहा हूँ । इस समय क्या करूँ । ठीक हैं । सूझ गया । (प्रकट) उसने कन्या को उत्पन्न किया है ।

राजा—चाहे वह कुमार हो या कुमारी उसे मुझे सर्वथा वध करना है । मैं निश्चय ही पौरुष से दैव को वञ्चित करूंगा ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रतिहारी -- जेदु भट्टा । अम्हाअं भट्टिणी विण्णवेदि-दारिअत्ति बालेत्ति अ करीअदु किल महाराएण अणुक्कोसो । [जयतु भर्ता । अस्माकं भट्टिनी विज्ञापयति-दारिकेति बालेति च क्रियतां किल महाराजेनानुक्रोशः]

वसुदेवः--शौरसेनीमातः ? क्रियतां तपस्विन्या देवक्या वाक्यम् । दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति ।

राजा—किं भवान् स्मरति समयम् ।

मधूकस्य ऋषेः शापं श्रुत्वा मे समयस्तदा ।
देवक्या धारितान् गर्भान् दास्यामीति त्वया कृतः ॥ १५ ॥

वसुदेवः--समय इति । एष न व्याहरामि ।

प्रतिहारी--भट्टा किं त्ति अम्हाअं भट्टिणीए णिवेदिदव्वं । [भर्तः ! किमित्यस्माकं भट्टिन्यै निवेदयितव्यम् ।]

अन्वयः— मधूकस्य ऋषेः शापं श्रुत्वा त्वया तदा 'देवक्या धारितान् गर्भान् दास्यामि' इति मे समयः कृतः ॥ १५ ॥

व्याख्या—मधूकस्य=मधूकनाम्नः ऋषेः = मुनेः, शापं= मामुद्दिश्य प्रदत्तं शापं श्रुत्वा त्वया तदा =तस्मिन् काले देवक्या =त्वत्पत्न्या धारितान् गर्भान् = गर्भस्थशिशून् दास्यामि तव कंसस्य इति मे मां प्रति समयः =शपथः कृतः ।१५।

(प्रवेश कर)

प्रतिहारी--स्वामी की जय हो । हमारी स्वामिनी सूचित कर रही हैं— कन्या है इसलिये इस बार बाला समझ कर महाराज अनुग्रह करें ।

वसुदेव—सौरसेनी पुत्र ! तपस्विनी देवकी के वचन का पालन करिये । कन्याओं पर स्त्रियों का अधिक अपेक्षया स्नेह होता है ।

राजा—क्या आप शर्तं (प्रतिज्ञा) का स्मरण कर रहे हैं । आपने मधूक ऋषि का शाप सुनकर आपने मुझसे शपथ किया था कि देवकी द्वारा धारण किये गर्भों को आप मुझे दे देंगे ॥ १५ ॥

वसुदेव—शपथ । अब मैं नहीं बोलूंगा ।

प्रतिहारी--स्वामी ! हमारी स्वामिनी से क्या कहना है (उत्तर देना है) ?

राजा--यशोधरे ! उच्यतां देवक्याः--न युक्तमिदानीं निर्बन्धमभिधातुम् । अन्यत् प्रियतरं करिष्यामीति ।

प्रतिहारी--जं भट्टा आणवेदि । यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा--यशोधरे ! एवं क्रियताम् ।

प्रतिहारी--सुहं प्रविसदु किल भट्टा । [सुखं प्रविशतु किल भर्ता ।]

वसुदेवः--विविक्तमिच्छता मयापि नाम परापत्यनिधनमुपनेतव्यं भवति । किन्नु खलु कुमारमेवानीय प्रयच्छामि । अथवा,

दारिकेयं मृता पूर्वं पुनरेव समुत्थिता ।
अस्य बालस्य माहात्म्यान्नैषा वधमवाप्स्यति ॥ १६ ॥

यावदहमपि देवकीं समाश्वासयामि । (निष्क्रान्तः ।)

राजा – यशोधरे प्रवेश्यतां सा दारिका ।

अन्वयः—पूर्वं मृता इयं दारिका अस्य बालस्य माहात्म्यात् पुनः उत्थिता एव। एषा वधं न अवाप्स्यति ॥ १६ ॥

व्याख्या—पूर्वं मृता = मरणं प्राप्ता इयम् = एषा दारिका अस्य = बालस्य = शिशोः माहात्म्यात् = प्रभावात् पुनः उत्थिता = जीवनं प्राप्ता । एषा वधं = मृत्युं न अवाप्स्यति = प्राप्स्यति ॥ १६ ॥

राजा—यशोधरे ! देवकी से कहो कि इस समय प्रार्थना करना उचित नहीं है । दूसरा बड़ा प्रिय करूँगा ।

प्रतिहारी—जो स्वामी की आज्ञा ।

राजा—यशोधरे ! यही करो ।

प्रतिहारी—स्वामी सुख से बैठें ।

वसुदेव—छद्म की इच्छा से मेरे द्वारा दूसरे के अपत्य की हत्या करायी जायेगी । क्या कुमार को ही लाकर दे दूं ? अथवा—

यह कन्या पहले मर गई थी फिर कुमार के ही माहात्म्य से उठ खड़ी हुई (जीवित हो गयी) । यह वध को नहीं प्राप्त करेगी (मरेगी नहीं) ॥ १६ ॥

तब तक मैं देवकी को भी धैर्य दूँ । (निकल जाता है)

राजा—यशोधरे ! उस कन्या को ले आओ ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि ! (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति दारिकां गृहीत्वा धात्री रक्षिपुरुषाश्च ।)

सर्वे—सणिअं सणिअं अय्या । इदं मज्झमदुवालं । पविसदु अय्या । [शनैः शनैरार्या । इदं मध्यमद्वारम् । प्रविशत्वार्या ।]

धात्री—(प्रविश्य) जेदु भट्टा । इअं दारिआ अम्हेहि चिरप्पहुदि रक्खिदा । [जयतु भर्ता । इयं दारिकास्माभिश्चिरात् प्रभृति रक्षिता ।]

धात्री—सणिअं सणिअं भट्टा ! [शनैः शनैः भर्तः !]

राजा—कंसशिला । यावत् साहसमनुष्ठास्यामि !

अयं हि सप्तमो गर्भ ऋषिशापबलोत्थितः ।
अस्मिन् नाशं गते गर्भे मम शान्तिर्भविष्यति ॥ १७ ॥

(गृहीत्वा प्रहृत्य) अये,

अन्वयः—ऋषिशापबलोत्थितः अयं सप्तमः गर्भः । अस्मिन् नाशं गते मम शान्तिः भविष्यति ।। १७ ।।

व्याख्या—ऋषिशापबलोत्थितः—ऋषेर्मधूकस्य शापस्य = अभिशापस्य बलेन उत्थितः = उद्भूतः अयं = पुरोवर्ती सप्तमः = सप्तसंख्याकः गर्भः = गर्भसंभूतः अस्तीति शेषः । अस्मिन् = गर्भजाते शिशौ नाशं गते = विनाशं प्राप्ते मम कंसस्य शान्तिः भविष्यति ।। १७ ।।

धात्री—स्वामी की जो आज्ञा (चली जाती है) ।

(तदनन्तर कन्या को लेकर धायी तथा रक्षक पुरुष प्रवेश करते हैं ।

सभी—आर्या धीरे धीरे चलें । यह बीच का द्वार है । आर्या प्रवेश करें ।

धात्री—(प्रवेश कर) स्वामी की जय हो । यह कन्या है जिसकी हमने देर तक रक्षा की है ।

धात्री—धीरे-धीरे स्वामी ।

धात्री—यह कंसशिला है । तो मैं साहस करूँ ।

ऋषि के शाप-बल से उत्पन्न यह सातवाँ गर्भ है । इस गर्भ के नष्ट हो जावे पर मेरी शान्ति होगी ।। १७ ।।

(लेकर तथा प्रहार कर)

एकांशः पतितो भूमावेकांशो दिवमुन्नतः ।
मां निहन्तुमिहोद्भूतः करैः शस्त्रसमुज्ज्वलैः ॥ १८ ॥

अये इयमिदानीं—

तीक्ष्णाग्रं शूलमालम्ब्य रौद्रवेषेण जृम्भते ।
विनाशकाले सम्प्राप्ते कालरात्रिरिवोत्थिता ॥ १९ ॥

(ततः प्रविशति कात्यायनी सपरिवारा ।)

अन्वयः—एकांशः भूमौ पतितः एकांशः दिवम् उन्नतः । शस्त्रसमुज्ज्वलैः करैः मां निहन्तुम् इह उद्भूतः ॥ १८ ॥

व्याख्या—अस्या = दारिकायाः एकांशः = एकभागः भूमौ = पृथिव्यां पतितः = भ्रष्टः एकांशः = एकभागः दिवम् = आकाशम् उन्नतः = उद्गतः । शस्त्रसमुज्ज्वलैः-शस्त्रैः = आयुधैः समुज्ज्वलैः = विलसद्भिः करैः = हस्तैः मां = कंसं निहन्तुं = मारितुमिह उद्भूतः = जातः ॥ १८ ॥

अन्वयः—तीक्ष्णाग्रं शूलम् आलम्ब्य रौद्रवेषेण जृम्भते । विनाशकाले संप्राप्ते कालरात्रिः इव उत्थिता ॥ १९ ॥

व्याख्या—तीक्ष्णाग्रं—तीक्ष्णं = तिग्मम् अग्रं = यस्य तथाभूतं शूलमस्त्रविशेषं आलम्ब्य = गृहीत्वा रौद्रवेषेण = उग्रस्वरूपेण जृम्भते = हुङ्कुरुते । विनाशकाले = संहारकाले संप्राप्ते = समागते कालरात्रिः = तदाख्यदेवी इव उत्थिता = प्रादुर्भूता ॥ १९ ॥

अरे ! इसका एक भाग तो भूमि पर गिरा और एक भाग आकाश में उड़ गया यह मुझे मारने के लिये शस्त्रों से चमकीले हाथों सहित यहाँ उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥

अरे ! इस समय यह—

जैसे विनाश (प्रलयकाल) उपस्थित होने पर कालात्रि उठे वैसे ही तीक्ष्ण नोक वाले शूल लेकर अँगड़ायी ले रही है ॥ १९ ॥

(तदनन्तर सपरिवार कात्यायनी प्रवेश करती हैं)

कात्यायनी—

शुम्भं निशुम्भं महिषं च हत्वा कृत्वा सुरांस्तान् हतशत्रुपक्षान् ।
अहं प्रसूता वसुदेववंशे कात्यायनी कंसकुलक्षयाय ॥ २० ॥

कुण्डोदरः—

कुण्डोदरोऽहमजितो रणचण्डकर्मा
देव्याः प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः ।
शीघ्रं प्रयामि गगनादवनिं विशालां
दृप्ताञ्जिघांसुरसुरानतिवीर्यदर्पान् ॥ २१ ॥

अन्वयः—शुम्भं निशुम्भ महिषं च हत्वा तान् सुरान् हतशत्रुपक्षान् कृत्वा अहं कात्यायनी कंसकुलक्षयाय वसुदेववंशे प्रसूता ॥ २० ॥

व्याख्या—शुम्भं निशुम्भं महिषं एतन्नामकान् असुरान् हत्वा सुरान्= देवान् हतशत्रुपक्षान्—हताः = मारिताः शत्रुपक्षाः येषां तान् = विनष्टरिपुदलान् कृत्वा अहं कात्यायनी दुर्गा कंसकुलक्षयाय—कंसस्य = राज्ञः कुलक्षयाय = वंशविनाशाय वसुदेववंशे = वसुदेवकुले प्रसूता = समुद्भूता ॥ २० ॥

अन्वयः—देव्याः प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः अहं रणचण्डकर्मा अजितः कुण्डोदरः । अतिवीर्यदर्पान् दृप्तान् असुरान् जिघांसुः अहं गगनात् विशालाम् अवनिं शीघ्रं प्रयामि ॥ २१ ॥

व्याख्या—देव्याः = कात्यायन्याः प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः—प्रसूत्या = जन्मना जनितः = समुद्भूतः उग्रः = भयंकरः महानिनादः = महान् शब्दः यस्य तथोक्तः अहं रणचण्डकर्मा—रणे = संग्रामे चण्डं—भीषणं कर्म यस्य सः, अजितः = अपराजितः कुण्डोदरः, कुण्डोदरनामा देव्याः गणः अस्मि । अहमतिवीर्यदर्पान् =

कात्यायनी—शुम्भ, निशुम्भ तथा महिष (असुरों) को मारकर देवताओं को विनष्ट-शत्रु वाला कर अब कंसकुल के नाश के लिये मैं कात्यायनी वसुदेव के कुल में उत्पन्न हुई हूँ ॥ २० ॥

कुण्डोदर—

युद्ध में भयंकर पराक्रम करनेवाला, अपराजेय मैं कुण्डोदर हूँ देवी की उत्पत्ति से महान् शब्दयुक्त हूँ । अति पराक्रम से उद्दीपित असुरों को मारने के लिये मैं आकाश से शीघ्र विशाल पृथ्वी पर जा रहा हूँ ॥ २१ ॥

शूलः—

शूलोऽस्मि भूतमिह भूमितले प्रपन्नो
देव्याः प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः ।
कंसं निहत्य समरे परिकर्षयामि
तं पादपं जलनिधेरिव कार्त्तिकेयः ॥ २२ ॥

नीलः—

अहं हि नीलः कलहस्य कर्ता सङ्ग्रामशूरो न पराङ्मुखश्च ।
निहन्मि कंसं युधि दुर्विनीतं क्रौञ्चं यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः ॥ २३ ॥

मत्तान् = दृप्तान् असुरान् = राक्षसान् जिघांसुः = हन्तुकामोऽहं गगनात् = आकाशात् विशालां = विपुलाम् अवनिं = क्ष्मां शीघ्रं = जवेन प्रयामि = गच्छामि ॥ २१ ॥

अन्वयः—इह भूमितले प्रपन्नः देव्याः प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः अहं भूतम् शूलः अस्मि । तं कंसं समरे निहत्य जलनिधेः तं पादपं कार्तिकेय इव परिकर्षयामि ।

व्याख्या—इह भूमितले = पृथिव्यां प्रपन्नः = प्राप्तः भूतं देव्याः = भगवत्याः कात्यायन्या प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः—प्रसादेन = कृपया जनितः = प्राप्तः उज्ज्वलः चारुः = सुन्दरश्च वेषः यस्य सः = स्वच्छ सुन्दररूपः शूलः देव्याः शस्त्रविशेषोऽस्मि । अहं तं = कंसं समरे = युद्धे निहत्य = हत्वा जलनिधेः = समुद्रात् तं पादपं = वृक्षं कार्तिकेयः स्कन्द इव परिकर्षयामि = कर्षणं करोमि । उपमालङ्कारः ॥ २२ ॥

अन्वयः—कलहस्य कर्ता संग्रामशूरः न पराङ्मुखः च अहं नीलः हि प्रकृष्टः शक्तिधरः क्रौञ्चं यथा युधि दुर्विनीतं कंसं निहन्मि ॥ २३ ॥

व्याख्या—कलहस्य = विग्रहस्य कर्ता = कारकः संग्रामशूरः = युद्धवीरः न पराङ्मुखः = युद्धादपलायितः चाहं नीलः हि = निश्चयेन प्रकृष्टः = श्रेष्ठः

शूल—देवी की कृपा से उज्ज्वल सुन्दर वेश वाला मैं भूमितल पर आया वस्तुतः शूल हूँ । मैं कंस को मार कर उसी प्रकार भूमितल पर घसीटूँगा जैसा कार्तिकेय ने समुद्र से वृक्ष को घसीटा था ॥ २२ ॥

नील—मैं युद्ध में पराक्रमी, कलह को करवेवाला, अपराङ्मुख नील हूँ और युद्ध में कंस को वैसे ही मारूँगा जैसे श्रेष्ठ कार्तिकेय ने क्रौञ्च (पर्वत) का दारण किया था ॥ २३ ॥

मनोजवः--

मनोजवो मारुततुल्यवेगो देव्यास्तु कार्यार्थमिहोपयातः ।
करोमि सङ्ग्रामशिरःसु दैत्यान् वह्निर्नलानां निलयं यथैव ॥ २४ ॥

कात्यायनी--कुण्डोदर ! शङ्कुकर्ण ! महानील ! मनोजव ! तदागम्यताम् । भगवतो विष्णोर्बालचरितमनुभवितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोषमेवावतरिष्याम ।

सर्वे--यदाज्ञापयति भगवती । (निष्क्रान्ता सपरिवारा कात्यायनी ।)

राजा--अये प्रभाता रजनी

शक्तिधरः = स्कन्दः, क्रौञ्चं = क्रौञ्चपर्वतं यथा इव युधि = आयोधने समरे दुर्विनीतमुद्दण्डं कंसं निहन्मि = घातयामि । उपमालंकारः ॥ २३ ॥

अन्वयः--देव्याः कार्यार्थम् इह उपयातः मारुततुल्यवेगः मनोजवः अहं वह्निः नलानां निलयं यथा इव संग्रामशिरःसु दैत्यान् निलयं करोमि ॥ २४ ॥

व्याख्या--देव्याः = भगवत्या कात्यायन्याः कार्यार्थम् = कार्यसंपादनार्थम् इह उपयातः = आगतः मारुततुल्यवेगः--मारुतस्य = वायोः तुल्यः = समानः वेगो = गतिर्यस्य = पवनतुल्यवेगः मनोजवः = मनः इव जवो = वेगो यस्य एतन्नामकः अहं गणः वह्निः नलानां = एतन्नामकतृणानां निलयं = विनाशं यथा करोति तथैव संग्रामशिरःसु रणशिरःसु संग्रामाग्रे दैत्यान् विनष्टान् करोमि । २४ ।

मनोजव--

वायु के तुल्य पराक्रमवाला मैं मनोजव नामक देवी का गण हूँ । मैं देवी के कार्य से यहाँ आया हूँ । मैं युद्धभूमि में शत्रुओं को वैसे ही (नष्ट) कर दूँगा जैसे अग्नि नलो (नरकटों) का नाश करता है ॥ २४ ॥

कात्यायनी--कुण्डोदर ! शंकुकर्ण ! महानील ! मनोजव ! तो आओ । भगवान् विष्णु के बालचरित को देखने के लिये गोपाल वेश में छिपकर घोषों में ही अवतार लें ।

सभी--जैसी भगवती की आज्ञा (परिवार सहित कात्यायनी चली जाती हैं ।)

अतः प्रविश्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्मोचितं गृहम् ।
करोमि विपुलां शान्ति मम शान्तिर्भविष्यति ॥ २९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

अन्वयः—अतः शान्तिकर्मोचितं गृहं प्रविश्य विपुलां शान्ति करोमि । मम शान्तिः भविष्यति ॥ २९ ॥

व्याख्या—अतः एतदपशकुनशमनार्थं शान्तिकर्मोचितं = शान्तिकर्मोपयुक्तं गृहं = मन्दिरं प्रविश्य = विपुलां विस्तृतां = समीचीनामित्यर्थः शान्ति करोमि । अनेन शान्तिकर्मणा मम = कंसस्य शान्तिः = क्षेमं भविष्यति ।

इति भासविरचितस्य बालचरितस्य द्वितीयाङ्के गङ्गासागरशर्मणा विरचिता 'गङ्गा'भिधा संस्कृत-हिन्दीटीका संपूर्णा ॥ २ ॥

राजा—अरे ! रात बीत गई !

अब शान्ति कर्म के उपयुक्त ग्रह में प्रवेश कर विपुल शान्ति करूंगा । जिससे मेरी शान्ति होगी ।

(सभी निकल जाते हैं)

द्वितीय अंक समाप्त ।

Deemed University
Rajiv G... ...ringeri
LIBRARY
ACC. NO. 15142
DATE

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः ।)

वृद्धगोपालकः—भो मेघदिण्ण ! क्खु, वषभदिण्ण । क्खु कुम्भदिण्ण । क्खु, घोषदिण्ण । क्खु पकालेथ लेथ गोघणं । एदेष्षि वुन्दावणे पकामं पाणीअं पादूणं हुम्भारवं करन्तो आअन्तु गोघणं । एषो गोवज्जहादो णिक्कमिअ परिघट्टिअवम्मीअमूलो भुषङ्गेहि कुवण्णेहि णीलुप्पलादामेहि टषगलग्गेहि विअ वषमो षोभदि । अण्णो वि एषो वषमो उषिदप्पषारिअ-पुच्छो णिकुञ्चिअजाणू षषीव घवलङ्गो अग्गविषाणेहि महीं उव्वहन्तो विअ षोभदि । जाव दाणि दामअं षद्दावआमि । अले दामअ ! भअवदीणं षुथले ओदालिअ षहवच्छाणं तुवं पि आअच्छ । [भो मेघदत्त ! खलु, वृषभदत्त ! खलु, कुम्भदत्त ! खलु, घोषदत्त ! खलु, प्रकालयत प्रकालयत गोधनम् । एतस्मिन् वृन्दावने प्रकामं पानीयं पीत्वा हुम्भारवं कुर्वदायतु गोधनम् । एष गोव्रजात् (?) निष्क्रम्य परिघट्टितवल्मीकमूलो भुजङ्गैः कुवर्णैः नीलोत्पलदामभिः शृङ्ग-लग्नैरिव वृषभः शोभते । अन्योऽप्येष वृषभ उच्छ्रितप्रसारितपुच्छो निकुञ्चितजानुः शशीव धवलाङ्गोऽग्रविषाणाभ्यां महीमुद्वहन्निव शोभते । यावदिदानीं, दामकं शब्दयामि । अरे दामक ! भगवतीः सुस्थलेऽवतार्य सहवत्सास्त्वमप्यागच्छ ।]

(तदनन्तर वृद्धगोपालक प्रवेश करता है)

वृद्धगोपालक—हे मेघदत्त ! हे वृषभदत्त ! हे घोषदत्त !, गौओं को भली भाँति चरने दो । इस वृन्दावन में भर पेट पानी पीकर हुँकार करती हुई गौएँ आवें । इस गोव्रज से निकल कर वाल्मीक (बाँबी) की जड़ खोदने वाला काले भुजङ्गों से युक्तशृंग वाला वृषभ सींग पर नील कमलों की मालाओं से युक्त की भाँति शोभित हो रहा है । यह दूसरा वृषभ पूँछ को उठाता एवं फैलाता हुआ एवं जाँघों को सिकोड़ता हुआ चन्द्रमा की भाँति श्वेत वर्ण का है तथा सींगों की नोक से मानों पृथ्वी को उठाता हुआ शोभित हो रहा है । अब दामक को बुलाऊँ । अरे दामक ! भगवती गायों को अच्छे स्थान पर उतार कर बछड़ों सहित तुम भी आओ ।

(ततः प्रविशति दामकः ।)

दामकः--अहो महन्तं तिणजालं माभिणो णन्दगोवस्स । सुदजण-
णदिणादो आरब्भि अहिअदरं आणन्दब्भुदं वड्ढइ । भोदु, इह चिट्ठदु
गोधणं, जाव मादुलं उवसप्पिस्सं । (उपसृत्य) मादुल ? वन्दामि ।
[अहो महत् तृणजालं स्वामिनो नन्दगोपस्य । सुतजननदिनादारभ्याधिकतर-
मानन्दाद्भुतं वर्धते । भवतु, इह तिष्ठतु गोधनं, यावन्मातुलमुपसर्प्स्यामि ।
मातुल ! वन्दे ।]

वृद्धगोपालकः—सन्ती होदु सन्ती होदु अम्हाणं गोधणस्स अ ।
[शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवत्वस्माकं गोधनस्य च ।]

दामकः—मादुल ! जदप्पहुदि नन्दगोवपुत्ते पसूदे, तदप्पहुदि अम्हाणं
गोधणं वज्जिअरोअं संवुत्तं । ण (णं ?) सव्वाणं गोवजणाणं पीदी
वड्ढइ । अण्णं च, खादे खादे मूलाणि, फलाणि गुम्हे गुम्हे । मधु केत्तिअं
दुघ्घदि क्खीरं तत्तअं एव्व घिदं । [मातुल ! यदाप्रभृति नन्दगोपपुत्रः
प्रसूतः, तदाप्रभृत्यस्माकं गोधनं वर्जितरोगं संवृत्तम् । ननु सर्वेषां गोपजनानां
प्रीतिर्वर्धते, अन्यच्च, खाते खाते मूलानि, फलानि गुल्मे गुल्मे मधु कियद्
दुह्यते क्षीरं तावद् एव घृतम् ।]

वृद्धगोपालकः—अण्णं च इदं अच्छरिअं । दसरत्तप्पसूदे णन्दगोव-

(तदनन्तर दामक प्रवेश करता है)

दामक—अरे ! स्वामी नन्दगोप के पास पर्याप्त घासें हैं । पुत्र उत्पन्न होने के दिन से अत्यधिक अद्भुत आनन्द हो रहा है । ठीक हैं । गायें यहीं रहें । तब तक मामा के पास चलूं (पास जाकर) मामा ! प्रणाम ।

वृद्धगोपालक—हमारे गोधन का मङ्गल हो । मङ्गल हो ।

दामक—मामा ! नन्दगोप का पुत्र जब से उत्पन्न हुआ है, हमारे गोधन (गायें) रोग से विहीन हो गया है और निश्चय ही सभी गोपों में प्रेम बढ़ने लगा है । प्रत्येक गड्ढों में मूल और फल प्रत्येक गुल्म (झाड़ी) में लग गये हैं । कितना मधु दुहा जाता है ! जितना दूध है वह सभी घी है ।

वृद्धगोपालक—और भी यह दूसरा आश्चर्य है । नन्दगोप के पुत्र के उत्पन्न

वुत्ते पूतणा णाम दाणवी विषषम्पूरिदत्थणा णन्दगोवीए रूवं गह्लिअ आमदा। तदो ताए दालअं गह्लिअ तष्ष मुहे त्थणं पक्खित्तं। तदो तं विजाणिअ षुविदा पाडिदा चम्मवषेषा दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदा। तदो माषसत्ते णन्दगोववुत्ते षअडो णाम दाणवो षअडवेषं गह्लिअ आमदो। तं पि जाणिअ एकपादप्पहारेण चुण्णीकिदो षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो। तदो माषपरिवुत्ते नन्दगोववुत्ते एकष्षि गेहे गच्छिअ खीरं पिबइ, अण्णष्षि गेहे गच्छिअ दधिं भक्खइ, एकष्षि गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलदि, अण्णष्षि गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ, अपरष्षि गेहे गच्छिअ तक्कघटं पलोअदि। तदो लुठ्ठाहि गोवजुवदीहि णन्दगोवीए उत्तं तदो। लुट्ठाए णन्दगोवीए दामं गह्लिअ तष्ष मज्झे बन्धिअ षेषं उलूहले बज्झं। तदा तं पि उलूहलं आघट्टअन्तं पेक्खिअ जमलज्जुणे णाम दाणवे णिक्खित्तं। तदो दुवे एक्कीभूदे। तेषं अन्तलेण गच्छुन्तेण णन्दगोववुत्तेण आघट्टअन्तेण षमूलविडवं चुण्णीकिदे ते वि दाणवे भविअ तत्तो एव्व मुदे। तदो गोवजणेहि उत्तं महाबलपलक्कमो अजप्पहुदि भट्टिदामोदलो णाम होदु त्ति। तदो आहावणप्पहावणमत्ते

होवे पर दस दिन पर ही पूतना नाम की राक्षसी विषपूर्ण स्तनवाली होकर नन्द गोपी का रूप धारण कर आयी। उसने बच्चे को लेकर अपना स्तन उसके मुख में डाल दिया। तब उसे ऐसी जानकर उसे सोयी हुई गिरा दिया। वह राक्षसी होकर तभी मर गई। तदनन्तर नन्दगोप के पुत्र के एक महीने का होवे पर शकट नामक दानव शकट (छकड़े) का वेष धारण कर आया। उसको भी जानकर एक पाद के प्रहार से चूर्ण कर दिया और वह वहीं राक्षस होकर मर गया। तदनन्तर महोवे भर का नन्दगोप पुत्र एक घर में जाकर दूध पीता है। दूसरे घर में जाकर दही खाता है। एक घर में जाकर मक्खन निगलता है। दूसरे घर में जाकर पायस खाता है तथा दूसरे घर में जाकर मट्ठा गिराता है। तब गोपियों ने रुष्ट होकर नन्द गोपी से कहा। नन्दगोपी ने रुष्ट होकर रस्सी लेकर उसकी कमर (मध्य) में बांधकर शेष रस्सी ओखली में बाँध दी। तब उस ओखली को भी उखाड़कर यमल और अर्जुन नामक दानवों पर फेंक दिया। तब वे दोनों एक हो गये। तब दोनों के बीच जाकर ओखली को घसीटते हुए

णन्दगोववुत्ते पलंबो णाम दाणवो णन्दगोववेसं गह्णिअ आअदो । तदो षङ्कलिषणं कण्ठे णिक्खिविअ गच्छन्तं तं विजाणिअ भट्टिणा षङ्कलिष-णेण तष्ष दाणवष्ष षीषे मुट्ठिप्पहारो किदो । तेण प्पहारेण उक्खित्त-चक्खू षो वि दाणवो भविअ तो एव्व मुदो गोवजणेदि परिवुदो ताल-हलाणि गह्णिदुं तालवणं गदो । तहिं तालवणे धेणुओ णाम दाणवो गद्दभवेसं गह्णिअ आअदो । तदो तं पि जाणिअ भट्टिदामोदलेण तष्ष भविअ तत्तो एव्व मुदो । तदो केसी णाम दाणवो तुलङ्गवेसं गह्णिअ आअदो । तदा तं पि जाणिअ भट्टिदामोदलेण तष्ष मुहे कोप्परो दिण्णो । तदो तेण दुवी (?) पाडिदो तुलङ्गो । षो बि दाणवो भविअ तत्तो एव मुदो । एदाणि अण्णाणि (अ) कम्माणि भट्टिदामोदलेण ।

[अन्यच्चेदमाश्चर्यम् । दशरात्रप्रसूते नन्दगोपपुत्रे पूतना नाम दानवी विषसम्पू-रितस्तना नन्दगोप्या रूपं गृहीत्वागता । ततस्तया दारकं गृहीत्वा तस्य मुखे स्तनः प्रक्षिप्तः । ततस्तां विज्ञाय सुप्ता पातिता चर्मावशेषा दानवी भूत्वा तत्रैव मृता । ततो मासमात्रे नन्दगोपपुत्रे । शकटो दानवः शकटवेषं गृहीत्वागतः । तमपि ज्ञात्वैकपादप्रहारेण चूर्णीकृतः सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः । ततो मास-परिवृत्तो नन्दगोपपुत्र एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति, अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति एकस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिलति, अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते अपरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते । ततो रुष्टाभिर्गोपयुवति-भिर्नन्दगोप्यै उक्तम् । ततो रुष्टया नन्दगोप्या दाम गृहीत्वा तस्य मध्ये बद्ध्वा शेषमुलूखले बद्धम् । ततस्तदप्युलुखलमाघट्टयत् प्रेक्ष्य यमलार्जुनयोर्नाम दानव-योनिक्षिप्तम् । ततो द्वावेकीभूतौ । तयोरन्तरेण गच्छता नन्दगोपपुत्रेणाघट्टयता समूलविटपं चूर्णीकृतौ तावपि दानवौ भूत्वा तत एव मृतौ । ततो गोपजनैरुक्तं—

उनको चूर्ण कर दिया और वे दोनो राक्षस होकर वहीं मर गये । तब गोपजनों ने कहा कि यह महाबल पराक्रमशाली आज से भर्तृ दामोदर हो । तब नन्द गोप पुत्र के चलने-दौड़ने मात्र का होने पर प्रलम्ब नामक दानव नन्द गोप का वेश धारण कर आया । तदनन्तर संकर्षण को गले में लगाकर उसे जाते (भागते) जानकर स्वामी संकर्षण ने उसके सिर पर मुक्के से प्रहार किया । उस प्रहार से उसकी आँखें निकल गयीं और वह भी दानव होकर तुरन्त मर गया । गोपजनों

महाबलपराक्रमोऽद्यप्रभृति भर्तृदामोदरो नाम भवतु इति । तत आधावनप्रधावनमात्रे नन्दगोपपुत्रे प्रलम्बो नाम दानवो नन्दगोपवेषं गृहीत्वाऽऽगतः ततः संकर्षणं कण्ठे निक्षिप्य गच्छन्तं तं विज्ञाय भर्त्रा संकर्षणेन तस्य दानवस्य शीर्षे मुष्टिप्रहारः कृतः । तेन प्रहारेणोत्क्षिप्तचक्षुः सोऽपि दानवो भूत्वा तत्रैव मृतः । गोपजनैः परिवृतस्तालफलानि ग्रहीतुं तालवनं गतः । तत्र तालवने धेनुको नाम दानवो गर्दभवेषं गृहीत्वागतः । ततस्तमपि ज्ञात्वा भर्तृदामोदरेण तस्य वामपादं गृहीत्वोत्क्षिप्य पातितानि तालफलानि । सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः । ततः केशी नाम दानवः तुरङ्गवेषं गृहीत्वागतः । ततस्तमपि ज्ञात्वा भर्तृदामोदरेण तस्य मुखे कूर्परो दत्तः । ततस्तेन द्विधा पाटितस्तुरङ्गः । सोऽपि दानवो भूत्वा ततः एव मृतः । एतान्यन्यानि (च) कर्माणि कृतानि भर्तृदामोदरेण ।]

दामकः—मादुल ! षव्वं दाव चिट्ठदु । अज्ज भट्टिदामोदलो इमस्सिं वृन्दावणे गोत्वकण्णआहि षह हल्लीषअं णामप कीलिदुं आअच्छदि । [मातुल ! सर्वं तावत् तिष्ठतु । अद्य भर्तृदामोदरोऽस्मिन् वृन्दावने गोपकन्यकाभिः सह हल्लीसकं नाम प्रक्रीडितुमागच्छति ।]

वृद्धगोपालकः—तेण हि षव्वेहि गोवजणेहि षह भट्टिदामोदलष्ष हल्लीषअं पेक्खम्ह । [तेन हि सर्वैर्गोपजनैः सह भर्तृदामोदरस्य हल्लीसकं पश्यामः]

से घिरे ताल फल लेवे तालवन में गये । तब तालवन में धेनुक नामक दानव गर्दभ वेश धारण कर आया । तब उसको भी पहचान कर स्वामी दामोदर ने उसका बाँया पैर पकड़ कर उसे फेंक कर ताल फलों को गिराया । वह दानव होकर उसी समय मर गया । तदनन्तर केशी नामक दानव घोड़े का रूप धारण कर आया । तब उसे भी पहचान कर स्वामी दामोदर ने उसके मुख में कूर्पर (केहुनी) डाल दी । इससे घोड़ा दो भागों में फट गया । वह भी दानव होकर वहीं मर गया । ये तथा अन्य भी कर्म भर्तृ दामोदर ने किये ।

दामक—ये सभी छोड़िये । आज भर्तृदामोदर इस वृन्दावन में हल्लीसक नाम क्रीडा करने के लिये गोपकन्याओं के साथ आ रहे हैं ।

वृद्धगोपालक—इसलिये सभी गोपजनों के साथ भर्तृ दामोदर की हल्लीसक क्रीडा देखें ।

दामकः—जं मादुलो आणवेदि । [यद् मातुल आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

(प्रविश्य)

वृद्धगोपालकः—

अणुदिअमत्ते षुय्ये पणमह षव्वादलेण षीषेण ।
णिच्चं जगमादूणं गोणाणं अमिदपुण्णाणं ॥ १ ॥

अहो अम्हाणं पक्कणाणं षमिद्धो । आडोवषज्जाओ पडहरूदवेसाओ वाहलिदुं गच्छामो । अम्हाअं गोवकण्णआओ ! घोषषुन्दलि ! वणमाले ! चन्दलेहे ! मिअक्खि ! आअच्छह आअच्छह षिग्घं ।

[अनुदितमात्रे सूर्ये प्रणमत सर्वादरेण शीर्षेण ।
नित्यं जगन्मातॄणां गवाममृतपूर्णानाम् ॥ १ ॥]

अहो अस्माकं पक्कणानां समृद्धिः । आटोपसज्जाः पटहरूपवेषा व्याहर्तुं गच्छामः । अस्माकं गोपकन्यकाः ! घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे ! मृगाक्षि ! आगच्छतामच्छत शीघ्रम् ।]

अन्वयः—अनुदितमात्रे सूर्ये नित्यं जगन्मातॄणाम् अमृतपूर्णानां गवां सर्वादरेण शीर्षेण नमत ॥ १ ॥

व्याख्या—अनुदितमात्रे सूर्ये=सूर्योदयात् प्राक्, नित्यं – सर्वदा प्रतिदिनम्, जगन्मातॄणां=जगद्धात्रीणाम्, अमृतपूर्णानां=अमृतोपमदुग्धपूर्णानां, गवां= धेनूनां, सर्वादरेण= पूर्णश्रद्धाभरितेन, शीर्षेण – शिरसा, नमत = प्रणमत ॥ १ ॥

दामक—जैसी मातुल की आज्ञा ।

(दोनों निकल जाते हैं)

प्रवेशक

(प्रवेश कर)

वृद्धगोपालक—सूर्योदय से पूर्व नित्य अमृतपूर्ण जगन्माता गायों को समस्त आदर सहित शिर से प्रणाम करो ।

अहा ! हमारे गाँव कितने समृद्ध हैं । भली भाँति सजे हुए पटह (वाद्य

(ततः प्रविशन्ति सर्वाः ।)

सर्वाः—मादुल ! वन्दामो । [मातुल ! वन्दामहे ।]

वृद्धगोपालक—दालिआ ! एषो भट्टा दामोदलो गोक्खीरपण्डरेण भट्टिणा षङ्कलिषणेण षह गोवलहि अ परिवुदो गुहाणिक्खित्तो षिहा विअ इदो एव्व आअच्छदि । [दारिकाः । एष भर्ता दामोदरः गोक्षीर-पाण्डरेण भर्त्रा सङ्कर्षणेन सह गोपालकैश्च परिवृतः गुहानिक्षिप्तः सिंह श्वेत एवागच्छति ।]

(ततः प्रविशति गोपजनपरिवृतो दामोदरः सङ्कर्षणश्च ।) इति प्रवेशकः

दामोदरः—(सविस्मयम्) अहो प्रकृत्या रमणीयानां गोपककन्यकानां वेषग्रहणविशेषः ।

एताः प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्रा
गोपाङ्गनाः कनकचम्पकपुष्पगौराः ।

अन्वयः—प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्राः कनकचम्पकपुष्पगौराः वन्यकुसुमाकुल-केशहस्ताः नानाविरागवसनाः मधुरप्रलापाः एताः गोपाङ्गनाः क्रीडन्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्राः—प्रफुल्लानां=विकसितानां, कमलानां = सरसिजानाम्, उत्पलानां = नीलेन्दीवराणामिव, वक्त्राणि = मुखानि

विशेष) के रूप में हम टहलवे जा रहे हैं। अये हमारी गोपकन्याये ! घोष सुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे ! मृगाक्षि ! आओ । शीघ्र आओ ।

(तदनन्तर सभी प्रवेश करती हैं)

सभी—मामाजी ! हम प्रणाम करती हैं ।

वृद्धगोपालक—कन्याओ ! ये स्वामी दामोदर गोदुग्ध की भाँति श्वेत वर्ण के भाई संकर्षण सहित गोपालों से घिरे हुए सिंह की भाँति आ रहे हैं ।

(तदनन्तर गोपजनों से घिरे दामोदर और संकर्षण प्रवेश करते हैं)

दामोदर—(विस्मयपूर्वक) स्वभाव से रमणीय गोपकन्याओं का यह वेश कितना सुन्दर है :—

विकसित कमल और उत्पल के समान वक्त्र तथा नेत्रवाली, कमल चम्पक

नानाविरागवसना मधुरप्रलापाः
क्रीडन्ति वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ताः ॥ २ ॥

सङ्कर्षणः—एते गोपदारकाः समागताः ।

रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः प्रमुदिताः केचिन्नदन्तः स्थिताः
केचित् पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः क्रीडन्ति नानाविधम् ।
घोषे जागरिमा (?) गुरुप्रमुदिताहुम्भारशब्दाकुले
वृन्दारण्यगते समप्रमुदिता गायन्ति केचित् स्थिताः ॥ ३ ॥

नेत्राणि च यासां ताः, कनकचम्पकपुष्पगोराः = स्वर्णचाम्पेयकुसुमानामिव गौराः वर्णाः यासां ताः, नानाविरागवसनाः—नानाविरागैः = विविधवर्णैः रञ्जितानि वसनानि = वस्त्राणि यासां ताः, मधुरप्रलापाः = मधुरगीतशालिन्यः, वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ताः—वन्यानि = वनोद्भवानि कुसुमानि = पुष्पाणि तैः आकुलेषु व्याप्तेषु केशेषु हस्ताः, यासां ताः अरण्यपुष्पसंकुलकेशहस्ताः, एताः = पुरो दृश्यमानाः, गोपाङ्गनाः = गोपस्त्रियः क्रीडन्ति = क्रीडां कुर्वन्ति ॥ २ ॥

अन्वय—केचित् रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः प्रमुदिताः नदन्तः स्थिताः । पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः केचित् नानाविधं क्रीडन्ति । वृन्दारण्यगते हुम्भारशब्दाकुले घोषे जागरिमागुरुप्रमुदिता केचित् समप्रमुदिताः स्थिताः गायन्ति ॥ ३ ॥

व्याख्या—केचित् गोपजनाः रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः—रक्तैः = रञ्जितैः वेसुकडिण्डिमैः = पटहैः प्रमुदिताः = आनन्दिताः नदन्तः = शब्दं कुर्वन्तः स्थिताः । पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः = कमलपत्रनेत्रमुखाः केचित् नानाविधं क्रीडन्ति = विहरन्ति । वृन्दारण्ये = वृन्दावने हुम्भारशब्दाकुले = हुम्भारवव्याप्ते घोषे आभीरपल्ल्याम् जागरिमागुरुप्रमुदिताः = जागरणेनात्यानन्दिताः केचित् समप्रमुदिताः = तुल्यानन्दयुताः स्थिताः = तिष्ठन्तः गायन्ति ॥ ३ ॥

के समान गौरवर्ण वाली, नाना रंगों के वस्त्रों वाली, मधुरभाषिणी वन्यकुसुमों से भरे हाथों तथा केशों वाली ये गोपाङ्गनायें क्रीडा कर रही हैं ॥ २ ॥

संकर्षण—ये गोपों के बच्चे आ गये ।

कुछ रंगीन वेसुक डिण्डियों (वाद्यविशेषों = पटहों) के साथ प्रसन्न शब्द कर रहे हैं, कमलपत्र के समान नेत्र तथा मुख वाले कुछ नाना प्रकार की क्रीडायें कर रहे हैं । घोष में जागरण से कुछ लोग अत्यन्त आनन्दित हैं तथा

वृद्धगोपालकः—आम भट्टा । षव्वा षण्णद्धा आअदा । [आम भर्तः सर्वे सन्नद्धा आगताः !]

दामकः—जेदु भट्टा [जयतु भर्ता ।]

सङ्कर्षणः— दामक ! सर्वे गोपदारकाः समागताः ।

दामकः—आम भट्टा ! षव्वे षण्णद्धा आअदा । [आम भर्तः ! सर्वे सन्नद्धा आगताः ।]

दामोदरः—घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे । मृगाक्षि ! घोषवासस्यानुरूपोऽयं हल्लीसकनृत्तबन्ध उपयुज्यताम् ।

सर्वाः—जं भट्टा आणवेदि [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

सङ्कर्षणः—दामक ! मेघनाद ! वाद्यन्तामातोद्यानि ।

उभौ—भट्टा ! तह । [भर्तः ! तथा ।]

वृद्धगोपालकः—भट्टा ! तुम्हे हल्लीसअं पकीलन्ति । अहं एत्थ किं करोमि । [भर्तः ! यूयं हल्लीसकं प्रक्रीडय । अहमत्र किं करोमि ।]

दामोदरः—प्रेक्षको भवान् ननु ।

कुछ लोग (गायों के) हम्भारव से पूर्ण वृन्दावन में प्रसन्न होकर गा रहे हैं ।।१।।

वृद्धगोपालक—हाँ स्वामी ! सभी तैयार होकर आ गये हैं ।

दामक—स्वामी की जय हो ।

संकर्षण—दामक ! सभी गोपबालक आ गये हैं ?

दामक—हाँ स्वामी ! सभी तैयार होकर आ गये हैं ।

दामोदर—घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे ! मृगनयनि ! आप सभी इस घोषनिवास के अनुरूप हल्लीसकनृत्त का आरम्भ करें ।

सभी—जो स्वामी की आज्ञा ।

संकर्षण—दामक ! मेघनाद ! नगाड़े बजाइये ।

दोनों—स्वामी ! ठीक है ।

वृद्धगोपालक—स्वामी ! आप लोग हल्लीसक क्रीडा करें ! मैं यहाँ क्या करूँ ।

दामोदर—आप प्रेक्षक हैं ।

वृद्धगोपालकः—भट्टा ! तह । [भर्तः तथा ।]

(सर्वे नृत्यन्ति ।)

वृद्धगोपालकः—ही ही षुट्ठु इदं । षुट्ठु वाइदं । षुट्ठु णच्चिदं । जाव अहं वि णच्चेमि । परिस्सन्तो खु अहं । [ही ही सुष्ठु गीतम् । सुष्ठु वादितम् । सुष्ठु नर्तितम् । यावदहमपि नृत्यामि । परिश्रान्तः खल्वहम् ।]

(प्रविश्य)

गोपालकः—हा हा भट्टा अवक्कमदु इमादो देसादो । [हा हा भर्ता अपक्रामत्वस्माद् देशाद् ।]

दामोदरः—दामक ! किमसि सम्भ्रान्तः ।

गोपालकः—एषो अलिट्ठबषभो णाम दाणदो पिण्डीकिदणिग्घादरूवो भूमिदलं खुरपुडेहिं लिहन्तो, जष्ष घोषो मेघवरत्ति षङ्किदो जादो । [एषोऽरिष्टवृषभो नाम दानवः पिण्डीकृतनिर्घातरूपो भूमितलं खुरपुटैर्लिखन्, यस्य घोषो मेघरव इति शङ्कितो जातः ।]

दामोदरः—एवं प्राप्तोऽरिष्टर्षभः इमा नो गोपदारिका दारकांश्च गृहीत्वेतत् पर्वतशिखरमारुह्य दुरात्मनो मम च युद्धविशेषं पश्यत्वार्याः । अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि ।

वृद्धगोपालक—स्वामी ! ठीक है ।

(सभी नाचते हैं)

वृद्धगोपालक—हहा ! ठीक गान किया । अच्छा नर्तन किया । तो मैं भी नाचूं । मैं थक गया हूं ।

(प्रवेश कर)

गोपालक—हाय ! हाय ! स्वामी इस स्थान से भाग चलें ।

दामोदर—दामक ! क्यों घबड़ाये हो ?

गोपालक—यह अरिष्टवृषभ नामक दानव है । पुञ्जीभूत प्रहार रूप यह भूमितल को खुरों से कुरेद रहा है । इसका शब्द मेघगर्जन के समान होता है ।

दामोदर—अरिष्टवृषभ इस प्रकार आ गया । आर्य इन गोपबालिकाओं और बालकों को लेकर पर्वत शिखर पर चढ़कर इस दुष्ट का और मेरा युद्ध आप देखें । मैं इसका घमण्ड चूर करता हूं ।

(सङ्कर्षणस्तैः सह निष्क्रान्तः)

दामोदरः—एष एष दुरात्मारिष्टर्षभः।

कृत्वा खुरैर्भूमितलं प्रभिन्नं शृङ्गैश्च कूलानि समाक्षिपंश्च।
भयार्तगोपैः प्रसमीक्ष्यमाणो नदन् समाधावति गोवृषेन्द्रः ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशत्यरिष्टर्षभः।)

अरिष्टर्षभः—एष भोः ?

शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः खमिवालिखंश्च
शत्रोर्वधार्थमुपगम्य वृषस्य रूपम्।
वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमान-
माक्रम्य शत्रुमहमद्य सुखं चरामि ॥ ५ ॥

अन्वयः—खुरैः भूमितलं प्रभिन्नं कृत्वा शृङ्गैः च कूलानि समाक्षिपन् भयार्तगोपैः प्रशमीक्ष्यमाणो गोवृषेन्द्रः नदन् समाधावति ॥ ४ ॥

व्याख्या—खुरैः = शफैः भूमितलं = पृथ्वीतलं प्रभिन्नं = विदीर्णं कृत्वा शृङ्गैश्च = विषाणैश्च कूलानि = तटप्रदेशान् समाक्षिपन् = विक्षिपन् भयार्तगोपैः = गोपजनैः प्रशमीक्ष्यमाणः = दृश्यमाणः गोवृषेन्द्रः—गोवृषराजः अरिष्टर्षभः हुङ्कार वं कुर्वन् समाधावति = धावमान इव आगच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः—शत्रोः वधार्थं वृषस्य रूपम् उपगम्य शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः खम् आलिखन् इव च (अहं) वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमानं शत्रुम् आक्रम्य सुखं चरामि ॥ ५ ॥

व्याख्या—शत्रोः = रिपोः वधार्थं = हननार्थं वृषस्य = गोवृषभस्य रूपं =

(संकर्षण उन सभी के साथ निकल जाते हैं)

दामोदर—यह दुरात्मा अरिष्टवृषभ है। यह (उखाड़कर) खुरों से भूमितल को विदीर्ण कर सींगों से तटों को फेंक रहा है, गोप भयभीत होकर इसे देख रहे हैं तथा यह गोवृषराज शब्द करते हुए दौड़ रहा है ॥ ४ ॥

(तदनन्तर अरिष्टवृषभ प्रवेश करता है)

अरिष्टवृषभ—अरे ! शत्रुवध के लिये वृष का रूप धारण कर सींग के अग्र भाग की किरणों से आकाश को विदीर्ण करता सा हुआ वृन्दावन में लीलापूर्वक

हुङ्कारशब्देन ममेह घोषे स्रवन्ति गर्भा वनिताजनस्य ।
खुराग्रपातैर्लिखितार्धचन्द्रा प्रकम्पते सद्रुमकानना भूः ॥ ६ ॥

क्व नु खलु गतो नन्दगोपपुत्रः । भो नन्दगोपपुत्रः ! क्वासि ।

दामोदरः--भो गोवृषाधम ! इत इतः । एष स्थितोऽस्मि ।

अरिष्टर्षभः--(दृष्ट्वा) अहो,

सारवान् खल्वयं बालो यो मां दृष्ट्वा महाबलम् ।
उग्रबलं महानादं नैव भीतो न विस्मितः ॥ ७ ॥

स्वरूपमुपगम्य = सम्प्राप्य गृहीत्वा इत्यर्थः । शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः = शृङ्गाग्रवलयमयूखैः तीव्रविषाणैरित्यर्थः, खं = गगनमालिखन् = विदारयन् इव अहं वृन्दावने = वृन्दारण्ये सललितं = लीलापूर्वकं सविलासं प्रतिगर्जमानं शत्रुं = दामोदरम् आक्रम्य सुखं चरामि = परिभ्रमामि । श्रीकृष्णे हते निष्प्रतिद्वन्द्वं विचरामि ॥ ५ ॥

अन्वयः—इह घोषे मम हुङ्कारशब्देन वनिताजनस्य गर्भाः स्रवन्ति । खुराग्रपातैः अर्धचन्द्रा लिखिता भूः सकाननद्रुमाः कम्पते ॥ ६ ॥

व्याख्या—इह घोषे आभीरपल्ल्यां मम हुङ्कारशब्देन गर्जितेन वनिताजनस्य गर्भाः स्रवन्ते = प्रस्खलन्ति । मम खुराग्रपातैः = खुरविक्षेपणैः अर्धचन्द्रा = अर्धचन्द्राकारा लिखित उट्टङ्किता भूः = पृथ्वी सकाननद्रुमा = वनवृक्षसहिता कम्पते = प्रचलति ॥ ६ ॥

अन्वयः—महाबलम्, उग्ररूपं महानादं मां दृष्ट्वा यः न भीतः न विस्मितः सः अयं बालः सारवान् खलु ॥ ७ ॥

गर्जन करते हुए शत्रु (दामोदर) पर आज आक्रमण कर मैं सुख से विचरण करूँगा ॥ ५ ॥

इस वृन्दावन में मेरे हुँकार शब्द से स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं तथा मेरे खुर के अग्रभाग के गिरने से अर्ध चन्द्राकार चिह्नित यह पृथ्वी वृक्षों और वनों सहित काँप उठती है ॥ ६ ॥

दामोदर—हे गोवृषभ ! इधर-इधर । मैं खड़ा हूँ ।

अरिष्टर्षभ—(देखकर) अहो !

यह बालक अत्यन्त सारवान् (बलशाली) है जो महाबलशाली, भयंकर रूप

दामोदरः--

किमेतद् भो! भयं नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम्।
भीतानामभयं दातुं समुत्पन्नो महीतले ॥ ८ ॥

अरिष्टर्षभः--भो! बालस्त्वम्। अतः खलु भयं न जानासि।

दामोदरः--भो गोवृषाधम! किं बाल इति मां प्रधर्षयसि।

किं दष्टः कृष्णसर्पेण बालेन न निहन्यते।
बालेन हि पुरा क्रौञ्चः स्कन्देन निधनं गतः ॥ ९ ॥

व्याख्या--महाबलं = महाबलयुक्तम्, उग्ररूपं = भयंकराकृतिं, महानादं = भीषणगर्जनयुक्तं माम् = अरिष्टर्षभं, दृष्ट्वा यः न भीतः = भयाक्रान्तः विस्मितः = आश्चर्यान्वितश्च सोऽयं = पुरोऽवस्थितः बालो = दामोदरः सारवान् = बलवान् खलु = निश्चयमेव ॥ ७ ॥

अन्वयः--भो! भवतः अद्य मया श्रुतम् एतत् भयं नाम किम्? (अहं) भीतानाम् अभयं दातुं महीतले समुत्पन्नः ॥ ८ ॥

व्याख्या--भो अरिष्टर्षभ! भवतः मुखात् अद्येदानीं मया श्रुतं न तु पूर्वंश्रुतम् एतत् भयं नाम किं नाहं जानामि। अहं = कृष्णः भीतानां = भयार्तानाम्; अभयं भयराहित्यं दातुं = कर्तुं, महीतले = पृथिव्याम् समुत्पन्न = अवतीर्णः = प्रादुर्भूतः ॥ ८ ॥

अन्वयः--किं बालेन कृष्णसर्पेण दष्टः न निहन्यते। हि पुरा बालेन स्कन्देन क्रौञ्चः निधनं गतः ॥ ९ ॥

व्याख्या--किं बालेन = शिशुना कृष्णसर्पेण = कृष्णाहिना दष्टः = दंशितः न निहन्यते = म्रियते एव। हि = निश्चयेन पुरा = प्राचीने काले, बालेन = बालकेन स्कन्देन = कुमारेण कार्तिकेयेन, क्रौञ्चपर्वतः निधनं गतः = मृत्युं प्राप्तः ॥

तथा भीषण शब्दवाले मुझे देखकर न तो डरा और न आश्चर्ययुक्त हुआ ॥ ७ ॥

दामोदर--यह भय क्या होता है, यह तो मैंने आज तुमसे सुना। मैं तो भयभीतों को अभय देने के लिये पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ८ ॥

अरिष्टर्षभ--तुम बालक हो अतः भय नहीं जानते हो।

दामोदर--हे अधम गोवृष! क्या बालक समझकर मेरी निन्दा कर रहे हो।

भवितव्यम् ।

अपीदं शृणु मूर्ख ! त्वं कठिनोपलसञ्चयः ।
किं न पल्लवमात्रेण शैलो वज्रेण पातितः ॥ १० ॥

अरिष्टर्षभः—भो नन्दगोपपुत्र ! किं व्यवसितम् ।

दामोदरः—त्वां निधनमुपनेतुम् ।

अरिष्टर्षभः—समर्थो भवान् ।

दामोदरः—कः संशयः ।

अरिष्टर्षभः—तेन हि गृह्यतां स्वजातिसदृशं प्रहरणम् ।

दामोदरः—प्रहरणमिति । हं भोः ।

अन्वयः—हे मूर्ख ! अपि इदं त्वं शृणु । कठिनोपलसञ्चयः शैलः किं पल्लवमात्रेण वज्रेण न निपातितः ॥ १० ॥

व्याख्या—हे मूर्ख ! = बालिश ! अविचारशील इत्यर्थः । अपि त्वमिदं शृणु = अवधेहि कठिनोपलसंचयः = कठोरप्रस्तरसमूहः शैलः = पर्वतः किं पल्लवमात्रेण = पत्रप्रमाणेन वज्रेण न निपातितः = भूमौ निपातितः । पर्वताः पुरा पक्षवन्तो बभूवुस्तेषां पतनशङ्कया भीताः प्रजाः सुरेशं शरणं जग्मुः । सुरेशः लोकरक्षार्थं वज्रेण पर्वतानां पक्षच्छेदं चकारेति पौराणिकी कथा प्रसिद्धा ॥ १० ॥

क्या काले सर्प-शिशु से डँसा गया नहीं मर जाता ? पहले बालक स्कन्द द्वारा क्रौञ्च मृत्यु को प्राप्त हुआ था ॥ ९ ॥

ठीक है—

हे मूर्ख ! तुम यह भी सुनो कि क्या कठोर पत्थरों की राशि (पर्वत) पल्लव मात्र वज्र से नहीं गिरायी गयी थी ॥ १० ॥

अरिष्टर्षभ—हे नन्दगोप के पुत्र ! क्या करना चाहते हो ?

दामोदर—तुम्हें मृत्यु को प्राप्त कराना ।

अरिष्टर्षभ—क्या तुम समर्थ हो ?

दामोदर—इसमें क्या संशय ?

अरिष्टर्षभ—तो अपनी जाति के अनुकूल शस्त्र लो ।

दामोदर—क्या शस्त्र ! हाय ।

गिरितटकठिनांसावेव बाहू ममैतौ
प्रहरणमपरं तु त्वादृशां दुर्बलानाम् ।
अथ मम भुजदण्डैः पीड्यमानश्च शीघ्रं
यदि न पतसि भूमौ नास्मि दामोदरोऽहम् ॥ ११ ॥

अरिष्टर्षभः--तेन हि प्रवर्ततां युद्धम् ।

दामोदरः--भो गोवृषाधम ! यदि ते शक्तिरस्ति, मां पादेनैकेन स्थितं स्थानात् कम्पय ।

अरिष्टर्षभः--कोऽत्र संशयः (तथा कर्तुं चेष्टयित्वा मूर्च्छितः पतति ।)

दामोदरः--भो गोवृष ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । अनेन वीर्येण भवान् गर्वितः ।

अन्वयः—मम एतौ बाहू गिरितटकठिनांसौ । त्वादृशां दुर्बलानां तु अपरं प्रहरणम् । अथ यदि मम भुजदण्डैः पीड्यमानः च शीघ्रं भूमौ न पतसि अहं दामोदरः न अस्मि ।। ११ ॥

व्याख्या—मम = दामोदरस्य एतौ = पुरोदृश्यमानौ बाहू = उभौ भुजौ गिरितटकठिनांसौ = गिरितटयोरिव कठिनौ, अंसौ=स्कन्धौ ययोस्तौ पर्वततटकठोरस्कन्धौ, त्वादृशां=त्वत्सदृशानां दुर्बलानां = बलहीनानां अपरं प्रहरणं=प्रहारसाधनभूतम् । मम बाहू कठोरौ त्वं तु निर्बलः । अथ यदि मम बलयुक्तैः भुजदण्डैः = दोर्दण्डैः पीड्यमानः = पीडितः च शीघ्रं = त्वरितमेव भूमौ= पृथिव्यां न पतसि अहं दामोदरः = कृष्णः न अस्मि ॥ ११ ॥

पर्वत तट के समान कठिन कन्धे वाली ये मेरी बाहें तुम्हारे जैसे दुर्बलों को मारने के लिए दूसरे शस्त्र हैं। यदि मेरे भुजदण्डों से पीड़ित होकर भूमि पर नहीं गिर जाते तो मैं दामोदर नहीं हूँ ॥ ११ ॥

अरिष्टर्षभ—तो युद्ध प्रारम्भ करो ।

दामोदर—ऐ नीच गोवृष ! यदि तुझमें शक्ति है तो एक पैर पर खड़े मुझको स्थान से हिला ।

अरिष्टर्षभ—इसमें क्या संदेह है ।

(वैसा करने की चेष्टा करते हुए मूर्च्छित होकर गिर जाता है ।)

दामोदर—हे गोवृष ! धैर्य धारण करो। धैर्य धारण करो । इसी पराक्रम

अरिष्टर्षभः--(आश्वस्य, आत्मगतम्) अहो दुष्प्रसह्योऽयं बालः ।

रुद्रो वाऽयं भवेच्छक्रो विष्णुर्वाऽपि स्वयं भवेत् ।
अमिथ्या खलु मे तर्कः स एव पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

आः,

यत्र यत्र वयं जातास्तत्र तत्र त्रिलोकधृत् ।
दानवानां वधार्थाय वर्तते मधुसूदनः ॥ १३ ॥

भवतु । विष्णुना हतस्याप्यक्षयो लोको मे भविष्यति । तस्माद् युद्धं करिष्यामि । (प्रकाशम्) भो नन्दगोपपुत्र ! पुनरपि जातो मे दर्पः ।

अन्वयः—अयं रुद्रः शक्रः वा विष्णुः वा स्वयं भवेत् । मे तर्कः अमिथ्या खलु स एव पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

व्याख्या—अयं=दामोदरः रुद्रः = शिवः, शक्रः = इन्द्रः वा विष्णुः = जनार्दनः वा स्वयं भवेत् । मे = मम, तर्कः = वितर्कः अमिथ्या = सत्यमेव खलु एष स एव पुरुषोत्तमः = साक्षान्नारायणः अस्ति ॥ १२ ॥

अन्वयः—वयं यत्र यत्र जाताः तत्र तत्र दानवानां वधार्थाय त्रिलोकधृत् मधुसूदनः वर्तते ॥ १३ ॥

व्याख्या—यत्र यत्र = येषु येषु स्थानेषु वयं राक्षसाः जाताः = प्रादुर्भूताः तत्र तत्र = तेषु तेषु स्थानेषु दानवानां=राक्षसानां वधार्थाय=हननाय त्रिलोकधृत् = त्रैलोक्यधारकः मधुसूदनः=मधुहन्ता विष्णुः वर्तते ॥ १३ ॥

से तुम गर्वित थे ।

अरिष्टर्षभ—(स्वस्थ होकर—स्वगत) अरे यह बालक सामना करने में दुष्कर है ।

यह रुद्र या इन्द्र या स्वयं विष्णु है । मेरा तर्क सत्य है कि ये स्वयं पुरुषोत्तम हैं ॥ १२ ॥

हाय !

जहाँ-जहाँ हम लोग उत्पन्न हुए वहाँ वहीं हम दानवों के वध के लिए त्रैलोक्य-धारक मधुसूदन वर्तमान हैं ॥ १३ ॥

ठीक है । विष्णु से मारे जाने पर भी मुझे अक्षयलोक प्राप्त होगा । इसलिये युद्ध करूँगा । (प्रकट) नन्दगोप के पुत्र । फिर मेरा दर्प उत्पन्न हो गया ।

दामोदरः—हम् । तिष्ठ तिष्ठेदानीम् ।

किं गर्जसे भुजगतो मम गोवृषेन्द्र !
पातप्रवृद्ध इव वार्षिककालमेघः ।
एहि क्षिपामि धरणीतलमभ्युपेहि
वज्राहतस्तट इवाञ्जनपर्वतस्य ॥ १४ ॥

(तथा कृत्वा) एष एष दुरात्मारिष्टर्षभः,

विसृतरुधिरधाराक्लिन्ननासास्यनेत्रं
चलितककुदबालः प्रस्फुरत्पादकर्णः ।
निपतति विगतात्मा भूतले वज्रभिन्नो
गिरिरिव शिखराग्रैर्गोवृषो दानवेन्द्रः ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे गोवृषेन्द्र ! पातप्रवृद्धवार्षिककालमेघः इव मम भुजगतः किं गर्जसे । एहि क्षिपामि । अञ्जनपर्वतस्य वज्राहतस्तट इव धरणिम् अभ्युपेहि ।१४।

व्याख्या—हे गोवृषेन्द्र ! = गोवृषराज ! पातप्रवृद्धः पातेन वर्षणेन प्रवृद्धः, वार्षिककालमेघः= वर्षर्तु जलदः इव मम भुजगतः = बाहुमध्यगतः किं गर्जसे = एहिविकत्थसे = आगच्छ क्षिपामि = पातयामि अञ्जनपर्वतस्य = अञ्जनगिरेः वज्राहतः=वज्रप्रहारेणाहतः तट इव=प्रान्तप्रदेश इव धरणिं=पृथ्वीम् अभ्युपेहि= प्राप्नुहि ॥ १४ ॥

अन्वयः—गोवृषः दानवेन्द्रः विसृतरुधिरधाराविलन्ननासास्यनेत्रं चलितककुदबालः प्रस्फुरत्पादकर्णः वज्रभिन्नः शिखराग्रैः गिरि इव विगतात्मा भूतले निपतति ॥ १५ ॥

दामोदर—हाँ ! तो अब स्थिर हो जाओ ।

हे गोवृषराज ! मेरी भुजाओं में आकर जल गिराने से बढ़े वर्षाकाल के मेघ की भाँति क्यों गर्जन कर रहे हो । आओ मैं तुम्हें गिरा रहा हूँ । वज्र से आहत अञ्जन पर्वत के तट की भाँति पृथ्वी तल पर गिरो ॥ १४ ॥

(वैसा करके) यह दुरात्मा अरिष्टर्षभ—

मुख तथा नाक से रक्त गिराते हुए, ककुद् के बालों को हिलाते हुए, पैर और कानों को हिलाते हुए यह प्राणविहीन दानवेन्द्र गोवृष वज्र से मारे गये शिखरों वाले पर्वत की भाँति गिर रहा है ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

दामकः—जेदु भट्टा। एषो भट्टा षङ्कलिषणो पव्वदादो जमुणाहले कालिओ णाम महाणाओ उट्ठिदो त्ति षुणिअ तं पडि गओ। वालेहि वालेहि भट्टा। षङ्कलिषणं। (जयतु भर्ता। एष भर्ता संकर्षणः पर्वताद् यमुनाह्रदे कालियो नाम महानाग उत्थित इति श्रुत्वा तं प्रति गतः। वारय वारय भर्तः! संकर्षणम्।)

दामोदरः—कालियो नाम मयापि श्रूयते सदर्पः पन्नगपतिः। भवत्वहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि।

गोब्राह्मणादयस्तेन सुजूष्यन्ते किल प्रजाः।
अद्यप्रभृति शान्तात्मा निष्प्रभः स भविष्यति ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्तौ।)

इति तृतीयोऽङ्कः।

व्याख्या—गोवृषः =अरिष्टर्षभः दानवेन्द्रः = दानवराजः विसृतरुधिरधाराविलन्ननासास्यनेत्रं = प्रसृतरक्तधारार्द्रनासिकामुखनयनं चलितककुदबालः = प्रकम्पितककुदकेशः प्रस्फुरत्पादकर्णः = कम्पायमानचरणकर्णः वज्रभिन्नः = वज्रप्रहारेण खण्डितः शिखराग्रैः = शिखराग्रभागैः गिरिः=पर्वत इव विगतात्मा = मृतात्मा भूतले = पृथ्वीतले निपतति ॥ १५ ॥

अन्वयः—तेन गोब्राह्मणादयः प्रजाः सुजूष्यन्ते किल। अद्यप्रभृति सः शान्तात्मा निष्प्रभः भविष्यति ॥ १६ ॥

(प्रवेश कर)

दामक—स्वामी की जय हो। ये स्वामी संकर्षण, 'यमुना ह्रद में कालिय नामक महानाग उत्थित हुआ है' यह सुनकर पर्वत से उसकी ओर गये हैं। हे स्वामी! संकर्षण को रोकिये। रोकिये।

दामोदर—कालिय नामक घमण्डयुक्त पन्नगराज को मैंने भी सुना है। ठीक है मैं इसका भी दर्प शान्त करूँगा।

व्याख्या—तेन कालियनागेन गोब्राह्मणादयः = धेनुविप्रादयः प्रजाः प्रुजू-ष्यन्ते = पीडिता भवन्ति किल = निश्चयेन । अद्यप्रभृति = अद्यारभ्य सः= कालियः शान्तात्मा = शान्तचित्तः, अनुद्वेगकर इत्यर्थः, निष्प्रभः = कान्ति-रहितः भविष्यति ।। १६ ।।

इति भासविरचितस्य बालचरितस्य तृतीयाङ्के
गङ्गासागरशर्मणा विरचिता गङ्गाभिधा व्याख्या पूर्णा ।

गो ब्राह्मणादिक प्रजा उससे कष्ट पाते हैं । आज से वह शान्त तथा तेजो-विहीन होगा ।। १६ ।।

(दोनों चले जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति दामोदरः)

दामोदरः—

एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः
कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयो विस्रस्तकेशस्रजः ।
सम्भ्रान्ता गलितोत्तरीयवसनास्त्रासाकुलव्याहृता-
स्त्रस्ता मामनुयान्ति पन्नगपतिं दृष्ट्वैव गोपाङ्गनाः ॥ १ ॥

अन्वयः—पन्नगपतिं दृष्ट्वत्रस्ताः एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोतिन्नस्तनाः कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयः विस्रस्त केशस्रजः संभ्रान्ताः गलितोत्तरीयवसनाः त्राशाकुलव्याहृताः गोपाङ्गनाऽमाम् अनुयान्ति ॥ १ ॥

व्याख्या—पन्नगपतिं=सर्पराजं कालियं, दृष्ट्वा त्रस्ताः = भीताः मत्त-चकोरशावनयना मत्तचक्रवाकपोतानां, नेत्राणि इव नयनानि यासां ताः मत्तचक्र-वाकनेत्राः, प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः—प्रोद्भिन्नौ = विकसितौ क्रमौ = रमणीयौ स्तनौ यासां ताः=प्रस्फुटितरमणीयस्तनाः, कान्ताः = कमनीयाः, प्रस्फुरिताधरोष्ठरुच यः—प्रस्फुरिता= विकसिता अधरोष्ठानां रुचयः = कान्तयो यासां ताः = विक-सितोष्ठकान्तयः विस्रस्तकेशस्रजः—विस्रस्ता पतिताः व्यत्यस्ताकेशानां स्रजः यासां ताः – विक, लितकेशप्रालाः, संभ्रान्ताः = संक्षुब्धा = किंकर्त्तव्यविमूढाः, गलितोत्तरीय वसनाः—गलितानि = भ्रष्टानि पतितानीत्यर्थः उत्तरीयाणिवस्त्राणि वस्त्रादि यासां ताः, पतितप्रावारकाः, शिरो त्रासाकुलव्याहृतानि—त्रासाकुलानि भयेनाकुलानि व्याहृतानि वचांसि यासां ताः = भयाक्रान्तवचनाः गोपाङ्गनाः—गोपिस्त्रयः माम = श्रीकृष्णं, अनुयान्ति=अनुगच्छन्ति ॥ १ ॥

(तदनन्तर दामोदर प्रवेश करते हैं)

दामोदर—पन्नगराज (कालिय) को देखकर ये मत्त चकोर के बच्चों के समान नेत्रोंवाली, प्रस्फुटित सुन्दर कुचों वाली, प्रस्फुटित अधरोष्ठ कान्तिवाली, बिखरे केशर की मालाओंवाली, शिर से खिसके वस्त्रों वाली, भयाक्रान्त वचन बोलनेवाली भयभीत एवं क्षुब्ध गोपाङ्गनायें मेरे पास आ रही हैं ।

(ततः प्रविशन्ति गोपकन्यकाः)

सर्वाः--मा खु मा खु भट्टा ! एद जलासअं पविसिदुं । एसो खु दुट्ठमहोरअकुलावासो ! (मा खलु मा खलु भर्तः ! एतं जलाशयं प्रवेष्टुम् । एषः खलु दुष्टमहोरगकुलावासः ।)

दामोदरः—न खलु न खलु विषादः कार्यः । पश्यन्तु भवत्यः ।

निष्पक्षिव्यालयूथं भयचकितकरिव्रातविप्रेक्षिताम्भो-
गम्भीरं स्निग्धनीरं ह्रदमुदधिनिभं क्षोभयन् सम्प्रविश्य ।
गोपीभिः शङ्किताभिः प्रियहितवचनैः पेशलैर्वार्यमाणः
कालिन्दीवासरक्तं भुजगमतिबलं कालियं घर्षयामि ॥ २ ॥

दुष्टमहोरगकुलावासः दुष्टश्चासौ महोरगस्तस्य कुलस्यावासः निवासभूमिः ।

अन्वयः-- निष्पक्षिव्यालयूथ भयचकितकरिव्रातविप्रप्रेक्षिताम्भोगम्भीरं स्निग्धनीरम् उदधिनिभं ह्रदं संप्रविश्य क्षोभयन् शङ्किताभिः गोपीभिः पेशलैः प्रियहितवचनैः वार्यमाणः कालिन्दीवासरक्तम् अतिबलं भुजगं कालियं घर्षयामि ॥ २ ॥

व्याख्या--निष्पक्षिव्यालयूथं=निर्गतानि पक्षिणां = खगानां व्यालानां श्वापदानां वन्यपशूनां 'काल । पुंसि श्वापदसर्पयोः 'इत्यमरः यूथानि = समूहाः यस्मात् तत् पक्षिपशुरहितमित्यर्थः। भयचकितकरिव्रातविप्रेक्षिताम्भः—भयणकितेन=भीतिचञ्चलेन करिव्रातेन=हस्तियूथेन विप्रेक्षितमवलोकितमम्भः नीरं यस्य तत् गम्भोरस्निग्धनीरं = मसृणजलम्, उदधिनिभं=समुद्रतुल्यं ह्रदम्=

(तब गोपकन्याएँ प्रवेश करती हैं)

सभी--नहीं नहीं स्वामी ! इस जलाशय में मत प्रवेश करिये। यह दुष्ट महान् सर्प के कुल का निवास स्थान है ।

दामोदर—विषाद मत करिये--मत करियें । आप लोग देखें; पक्षियों एवं श्वापदों (वन्य पशुओं) से रहित, भय से हाथियों के समूह से अवलोकित जलवाले, चिक्कन जलवाले, गहरे, समुद्रतुल्य इस ह्रद में प्रवेश कर उसे क्षुब्ध करते हुए शङ्कित गोपियों के सुन्दर वचनों द्वारा रोके जाते हुए मैं यमुनानिवास के प्रेमी इस अत्यन्त बलवान् कालिय नाग को परास्त करूँगा ॥ २ ॥

सर्वाः—भट्टा ! षड्कलिषण ? वालेहि वालेहि भट्टिदामोदलं। (भर्तः ! संकर्षण ! वारय वारय भर्तृदामोदरम् ।)

(प्रविश्य)

सङ्कर्षणः—अलमलं भयविषादाभ्याम् । दर्शितोऽनुरागः। पश्यन्तु भवत्यः।

विषदहनशिखाभिर्यन्मुखात् प्रोद्गताभिः
कपिशितमशिवाभिश्चक्रवालं दिशानाम् ।
सरभसमभियान्तं कृष्णमालक्ष्य शङ्की
नमयति शिरसान्तर्मण्डलं चण्डनागः ॥ ३ ॥

अगाधजलं जलाशयं 'जलाशयो जलाधारस्तत्रागाधजलो ह्रदः' इत्यमरः । संप्रविश्य = अन्तःप्रविश्य क्षोभयन् = विक्षुब्धं कुर्वन् शङ्किताभिः अमङ्गलाशङ्किभिः गोपीभिः = गोपनारीभिः पेशलैः = चारुभिः प्रियहितवचनैः—प्रियाणि मधुराणि हितानि = हितयुक्तानि वचनानि = तैः वार्यमाणः = ह्रदप्रवेशात् निषिद्धयमानः (अहम् = दामोदरः) कालिन्दीवासरक्तं = यमुनानिवासानुरक्तम् अतिबलभुजगं = उत्कृष्टबलयुक्तं सर्पं = कालियमेतन्नामानं धर्षयामि = पराजितं करिष्यामि ॥ २ ॥

अन्वयः—यन्मुखात् प्रोद्गताभिः अशिवाभिः विषदहनशिखाभिः दिशानां चक्रवालं कपिशितम् स चण्डनागः सरभसम् अभियान्तं कृष्णम् आलक्ष्य शङ्की शिरसा अन्तर्मण्डलं नमयति ॥ ३ ॥

व्याख्या—यन्मुखात्—यस्य = कालियस्य मुखात् प्रोद्गताभिः = निःसृताभिर्बहिर्गच्छन्तीः अशिवाभिः = अमङ्गलमयाभिः विषदहनशिखाभिः = विषाग्नि-

---

सभी—स्वामी संकर्षण ! स्वामी दामोदर को रोकें, रोकें।

(प्रवेश कर)

संकर्षण—भय और विषाद मत करिये—मत करिये। आप लोगों ने प्रेम प्रदर्शित कर दिया। आप लोग देखें—

जिसके मुख से निकली अमङ्गलकारी विषाग्नि की शिखाओं से दिशाओं का समूह कपिश वर्ण हो गया है। वह प्रचण्ड नाग (कालिय) वेग से आ रहे कृष्ण को देखकर शङ्कित होकर शिर से अन्तर्मण्डल (फणों) को नम्र कर रहा है।

सर्वाः—हं भट्टिदामोदलो वि तादिसो एव । (हं भर्तृदामोदरोऽपि तादृश एव ।)

दामोदरः—सर्वप्रजाहितार्थं द्रुततरं नागं मे वशं करोमि । (इति ह्रदं प्रविष्टः ।)

सर्वाः—हा हा घूमो उट्ठिदो । (हा हा धूम उत्थितः ।)

दामोदरः—अहो ह्रदस्य गाम्भीर्यम् । इह हि,

सितेतराभुग्नदुकूलकान्तिद्रुतेन्द्रनीलप्रतिमानवीचिम् ।
इमामहं कालियधूमधूम्रां सान्तर्विषाग्नि यमुनां करोमि ॥ ४ ॥

ज्वालाभिः दिशानां चक्रबालं मण्डलं समग्राः दिश इत्यर्थः कपिशितं = कृष्ण-लोहितं स चण्डनागः = प्रचण्डसर्पः सरभसं = सवेगम् अभियान्तम् आगच्छन्तं कृष्णम् आलक्ष्य = दृष्ट्वा शङ्की = शङ्काहतात्मा शिरसा = मूर्ध्ना अन्तर्मण्डलमा-भोगं = नमयति = नम्रं करोति ॥ ३ ॥

अन्वयः—सान्तर्विषाग्नि कालियधूमधूम्रां इमां यमुनाम् अहं सितेतराभुग्नदु-कूलकान्ति द्रुतेन्द्रनीलप्रतिमानवीचिं करोमि ॥ ४ ॥

व्याख्या—अन्तः = मध्ये विषाग्निना = विषज्वलनेन मुक्तां कालियधूम-धूम्रा—कालियस्य—कालियनागस्य मुखनिःसृतेन धूमेन = विषज्वालेन धूम्रां = धूम्रवर्णाम् इमां पुरोवर्तिनीं यमुनां कालिन्दीम् अहं कृष्णः सितेतरेण = सितेतरेण कृष्णवर्णेन आभुग्नं = व्याप्तं यत् दुकूलं = क्षौमं वस्त्रं तस्य कान्तिः दीप्तिर्यस्याः सा तथा द्रुतस्य द्रवीभूतस्य इन्द्रनीलस्य इन्द्रनीलमणेः प्रतिमाना = तुल्या वीचि-स्तरङ्गः यस्याः सा तां तथाभूतां करोमि ॥ ४ ॥

सभी—ऐं । भर्तृ दामोदर भी वैसा ही है ।

दामोदर—सभी प्रजाओं के हित के लिये नाग को शीघ्रता से वश में करता हूँ । (ऐसा कहकर ह्रद में प्रविष्ट हो जाते हैं)

सभी—हाय ! हाय ! धुंआ उठा है !

दामोदर—अहा ! ह्रद इतना गम्भीर (गहरा) है ।

कालिय नाग के विष के धूम से धूम्र वर्णवाली तथा अन्तर्विष से युक्त इस यमुना को कृष्ण वर्ण के दुकूल (क्षौमवस्त्र) की कान्ति वाली तथा पिघले इन्द्र-नीलमणि के समान तरङ्गवाली करता हूँ ॥ ४ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः ।)

वृद्धगोपालकः—हा भट्टा ! एषो कण्णआहि वालिअमाणो जमुणाह्लदं पविट्ठो । मा खु मा खु षाहष कलिअ पविषिदुं । एत्थ वग्घा वराह ह्त्थिणो पाणीअं पिबिअ तहिं तहिं एव्व विमरन्ति । कहं ण दिस्सदि । किं दाणि करोमि । होदु, इमं दाव कुम्भनलाअं आलुहिअ णिज्झाआमि । (आरुह्यावलोक्य) हा हा धुमो उट्टिदो । (हा भर्तः ! एष कन्यकाभिर्वार्यमाणो यमुनाह्लदं प्रविष्टः । मा खलु मा खलु साहसं कृत्वा प्रवेष्टुम् । अत्र व्याघ्रा वराहा हस्तिनः पानीयं पीत्वा तत्र तत्रैव विम्रियन्ते । कथं न दृश्यते । किमिदानीं करोमि । भवतु, इमं तावत् कुम्भपलाशमारुह्य निध्यायामि । हा हा धूम उत्थितः ।)

सङ्कर्षणः—पश्यन्तु भवत्यः ।

दामोदरोऽयं परिगृह्य नागं विक्षोभ्य तोयं च समूलमस्य ।
भोगे स्थितो नीलभुजङ्गमस्य मेघे स्थितः शक्र इवावभाति ॥५॥

अन्वयः—अयं दामोदरः अस्य तोयं समूलं विक्षोभ्य नागं परिगृह्य नीलभुजङ्गमस्य भोगे स्थितः मेघे स्थितः शक्रः इव अवभाति ॥ ५ ॥

व्याख्या:—अयं पुरोवर्ती दामोदरः=श्रीकृष्णः अस्य = ह्लदस्य तोयं = जलं समूलं = मूलेन सहितं अधस्तादित्यर्थः । विक्षोभ्य = क्षोभयित्वा आलोडये-

---

(निकल जाता है)

(तदनन्तर वृद्धगोपालक प्रवेश करता है)

वृद्धगोपालक—हा स्वामिन् ! कुमारियों द्वारा रोका जाता हुआ भी, यह यमुना के ह्लद में प्रविष्ट हो गया । प्रवेश करने का साहस मत करो, मत करो । यहाँ व्याघ्र, वराह, हाथी जल पीकर वहीं मर जाते हैं । क्या दिखायी नहीं दे रहा है ? अब क्या करूँ । अच्छा, इस बड़े पलाश वृक्ष पर चढ़कर देखूँ । हाय ! हाय ! धूम उठ रहा है ।

संकर्षण—आप (कुमारियाँ) देखें ।

ये दामोदर जल को विक्षुब्ध (मथ) कर नाग को पकड़कर इस नील सर्प की फणा पर स्थित होकर मेघ पर स्थित इन्द्र की भाँति प्रतीत हो रहे हैं ॥ ५ ॥

वृद्धगोपालकः—ही ही षाहु भट्टा। षाहु। (हो ही साधु भर्तः! साधु।)

(ततः प्रविशति कालियं गृहीत्वा दामोदरः।)

दामोदरः—एष भोः।

निर्भर्त्स्य कालियमहं परिविस्फुरन्तं
मूर्धाञ्चितैकचरणश्चलबाहुकेतुः।
भोगे विषोल्बणफणस्य महोरगस्य
हल्लीसकं सललितं रुचिरं वहामि॥ ६॥

सर्वाः—अच्छलीअं भट्टा! अच्छलीअं। कालिअस्स पञ्च फणाणि

त्यर्थः, नागं = कालियं परिगृह्य नीलभुजङ्गस्य = नीलसर्पस्य कालियस्य फणाडम्बरे स्थितः सन् मेघे = वारिदे स्थितः शक्रः = इन्द्र इव अवभाति प्रतीयते॥ ५॥

अन्वय—परिविस्फुरन्तं कालियम् अहं निर्भर्त्स्य विषोल्वणफणस्य महोरगस्य भोगे मूर्धाञ्चितैक चरण· चलबाहुकेतुः सखलित रुचिरं हल्लीसकं वहामि॥ ६॥

व्याख्या—परिविस्फुरन्तं-परितः सर्वतः विस्फुरन्तं = चञ्चलं कालियं नागं, निर्भर्त्स्य = कुत्सयित्वा अहं = दामोदरः विषोल्वणफणस्य—विषेण उल्बणाः = तीक्ष्णाः फणाः यस्य तस्य महोरगस्य = महानागस्य, भोगे = फणाडम्बरे, मूर्धाञ्चितैकचरणः—मूर्ध्नि अञ्चितं = न्यस्यमेकचरणं यस्य सः, चलबाहुकेतुः—चञ्चलः बाहुः = भुजा एव केतुर्यस्य सः तथाभूतोऽहं सललितं = सविलासं रुचिरं = शोभनं, हल्लीसकं तन्नामकं नृत्यं वहामि = करोमीत्यर्थः॥ ६॥

वृद्धगोपालक—ही ही! बहुत अच्छा किया स्वामिन्! बहुत अच्छा किया।

(तदनन्तर कालिय को पकड़कर दामोदर प्रवेश करते हैं)।

दामोदर—यह।

चारों ओर फड़क रहे कालिय को डांटकर उसके सिर पर एक पैर रखकर हाथों को हिलाते हुए विष से उग्र फण वाले महान् सर्प के फणों पर विलासपूर्वक सुन्दर हल्लीसक नृत्य करता हूं॥ ६॥

सभी (कन्यायें)—स्वामिन्! आश्चर्य है। आश्चर्य है। कालिय के पाँचों फणों पर घूमते हुए हल्लीसक नृत्य कर रहे हैं।

अक्कमन्तो हल्लीषअं पकीलदि । (आश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । कालियस्य पञ्च फणानाक्रामन् हल्लीसकं प्रक्रीडति ।)

दामोदरः– यावदहमपि पुष्पाण्यवचिनोमि ।

कालियः– आः,

लोकालोकमहीधरेण भुवनाभोगं यथा मन्दरं
शैलं शर्वधनुर्गुणेन फणिना यद्वच्च यादोनिधौ ।
स्थूलाखण्डलहस्तिहस्तकठिनो भोगेन संवेष्टितं
त्वामेव त्रिदशाधिवासमधुना सम्प्रेषयामि क्षणाद् ॥ ७ ॥

वृद्धगोपालकः—हा हा भट्टा ! । एसो भट्टिदामोदलो पुष्पफाणुकारेहि

अन्वयः—यथा लोकालोकमहीधरेण भुवनाभोगं यद्वत् च यादोनिधौ मन्दरं शैलं शर्वधनुर्गुणेन फणिना स्थूलाखण्डलहस्तिहस्तकठिनः (अहं) भोगेन संवेष्टितं त्वाम् अधुना क्षणात् त्रिदशाधिवासं संप्रेषयामि एव ॥ ७ ॥

व्याख्या—लोकालोकमहीधरेण = लोकालोकव्यापिपर्वतेन यथा = यद्वत् भुवनाभोगं—भुवनस्य = लोकस्य आभोगं = विस्तृतिः यद्वत् च यथा च यादोनिधौ = सागरे मन्दरं शैलं मन्दरशैलं समुद्रमथने = मन्थनसाधनभूतं शर्वधनुर्गुणेन = शर्वस्य शिवस्य धनुषः = पिनाकस्य धनुर्गुणेन = प्रत्यञ्चारज्वा फणिना = सर्पेण शेषनागेन वेष्टितमिति शेषः । तद्वत् स्थूलः, आखण्डलस्य = इन्द्रस्य हस्ती = ऐरावतस्तस्य हस्तः = शुण्डः तद्वत् कठिनः = कठोरः अहं = कालियः भोगेन = फणविस्तारेण संवेष्टितं—समन्तात् परिवेष्टितं त्वाम् दामोदरम् अहम् अधुना = संप्रति क्षणात् = क्षणमात्रेण त्रिदशाधिवासं—त्रिदशानां = देवानामधिवासं = निवासभूमि यमलोकमित्यर्थः संप्रेषयामि ॥ ७ ॥

दामोदर— तब तक मैं भी पुष्पों का चयन करूँ ।

कालिय—जैसे लोकालोक (में व्याप्त) पर्वत ने भुवन के विस्तार को, जैसे समुद्र में शिव के धनुष की प्रत्यञ्चा स्वरूप सर्प (शेष) ने मन्दर पर्वत को घेर लिया वैसे ही इन्द्र के विशाल हाथी (ऐरावत) के समान कठोर मैं तुम्हें अपनी कुण्डली में लपेट कर क्षणमात्र में अब देवलोक में पहुँचाता हूँ ॥ ७ ॥

वृद्धगोपालक—अहा ! अहा ! ये स्वामी दामोदर इस महानाग को जो

पदेहि आआरवन्तं विअ जमुणाहल महाणाअं पादेण परिघट्टअन्तो पुप्पाणि अवइणोदि। (अवतीर्य) षाहु भट्टा ! षाहु। फल्लेहि फल्लेहि। अहं बि वहाओ होमि। अहो भाआमि भट्टा ! भाआमि। जाव इमं वतन्तं णन्दगोवष्प णिवेदेमि। (निष्क्रान्तः) (हा हा भर्तः ! एष भर्तृदामोदरः पुष्पानुकाराभ्यां पदाभ्यामाकारवन्तमिव यमुनाह्लदं महानागं पातेन परिघट्टयन् पुष्पाण्यवचिनोति। साधु भर्तः ! साधु। फालय फालय। अहमपि सहायो भवामि। अहो बिभेमि भर्तः ! बिभेमि। यावदिमं वृत्तान्तं नन्दगोपाय निवेदयामि।)

दामोदरः—

विध्वस्तमीनमकराद् यमुनाह्लदान्ताद्
दर्पोच्छ्रयेण महता दृढमुच्छ्वसन्तम्।
आशीविषं कलुषमायतवृत्तभोग-
मेष प्रसह्य सहसा भुवि विक्षिपामि॥ ८॥

अन्वयः—विध्वस्तमीनमकरात् यमुनाह्लदान्तात् महता दर्पोच्छ्रयेण दृढम् उच्छ्वसन्तम् आयतवृत्तभोगं कलुषम् आशीविषं प्रसह्य एष सहसा भुवि विक्षिपामि॥ ८॥

व्याख्या—विध्वस्तमीनमकरात्—विध्वस्ताः=नाशिताः मीनाः=नक्राः मत्स्याः, मकरः—यस्मात् तस्मात् यमुनाह्लदान्तात्—यमुनायाः, ह्लदोऽगाधजलस्तस्यान्तात्= = मध्यभागात् महता दर्पोच्छ्रयेण—दर्पस्य = गर्वस्योच्छ्रयः = उन्नतिर्विस्तारो वा तेन दृढमत्यन्तमुच्छ्वसन्तं निःश्वसन्तं श्वासप्रश्वासयुतम् आयतवृत्तभोगयुतम् आयतः विस्तृतः वृत्तः वर्तुलः फणाटोपो यस्य तं कलुषं कृष्णवर्णं दुर्वृत्तं वा आशी-

---

स्वरूपवान् यमुना ह्लद की भाँति है अपने पुष्पतुल्य पैरों से रौंदते हुए पुष्पों को चुन रहे हैं। ठीक है स्वामी ! ठीक है। (पैरों से) रौंदिये रौंदिये। मैं भी सहायता करता हूँ। हाय ! डर रहा हूँ स्वामिन ! डर रहा हूँ। तो यह समाचार नन्दगोप को दे दूँ।

दामोदर—अत्यन्त दर्प से, अत्यन्त दीर्घ उच्छ्वास ले रहे और कलुषित विस्तृत फणवाले इस सर्प को जिस यमुना ह्लद से मीन और मकर नष्ट हो गये उससे (बाहर) पृथ्वी पर बलपूर्वक सहसा फेंक रहा हूँ॥ ८॥

कालियः—एष भोः !

रोषेण धूमायति यस्य देहस्तेनैव दाहं पृथिवी प्रयाति ।
ज्वालावलीभिः प्रदहामि सोऽहं रक्षन्तु लोकाः समरुद्गणास्त्वाम् ॥९॥

दामोदरः—कालिय ! यदि ते शक्तिरस्ति, दह्यतां ममैको भुजः ।

कालियः—हहह,

चतुःसागरपर्यन्तां ससप्तकुलपर्वताम् ।
दहेयं पृथिवीं कृत्स्नां किं भुजं न दहामि ते ॥ १० ॥

हं, तिष्ठेदानीम् । एष त्वां भस्मीकरोमि । (विषाग्निं मुञ्चति)

विषं सर्पं कालियं प्रसह्य हठात् एषोऽहं सहसा =द्रुतं भुवि =पृथिव्यां विक्षिपामि= बहिष्करोमि ॥ ८ ॥

अन्वयः—यस्य रोषेण देहः धूमायति तेन एव पृथिवी दाहं प्रयाति सः अहं ज्वालावलीभिः (त्वां) प्रदहामि त्वाम् समरुद्गणाः लोकाः (यदि शक्तिरस्ति) रक्षन्तु ॥ ९ ॥

व्याख्या—यस्य = मम कालियस्य रोषेण = क्रोधेन देहः = शरीरं धूमायति= धूम इवाचरति कृष्णवर्णतां यातीत्यर्थः । तेन एव रोषेण धूम्रवर्णेन वा पृथिवी = धरा दाहं = ज्वलनं प्रयाति = गच्छति सोऽहं = कालियः ज्वालावलीभिः = अग्निशिखाभिः त्वां प्रदहामि = प्रदग्धं करोमि समरुद्गणाः मरुतां गणः मरुद्गणस्तेन सह लोकाः = भुवनानि जना वा यदि तेषां तव रक्षणे शक्तिरस्ति त्वां रक्षन्तु ॥ ९ ॥

कालिय—अरे ।

रोष के कारण जिसका देह धूम्र वर्ण का है और उसी से पृथ्वी दाह को प्राप्त करती है वह मैं (तुम्हें) अपनी ज्वालाओं से जला रहा हूँ तुम्हारी मरुद् गणों सहित सभी लोक रक्षा करें ॥ ९ ॥

दामोदर—कालिय ! यदि तुझमें शक्ति है तो मेरी एक भुजा को जला दो ।

कालिय—हहा ! सातो कुलपर्वतों से युक्त चारों समुद्रों तक की समग्र पृथ्वी को जला दूँ । क्या तेरी भुजा को नहीं जला सकता ॥ १० ॥

अच्छा । इस समय रुको ! यह तुम्हें जलाता हूँ (विषाग्नि छोड़ता है ।)

दामोदर--हन्त दर्शितं ते वीर्यम् !

कालियः—प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः ।

दामोदरः--अनेन वीर्येण भवान् गर्वितः ।

कालियः—प्रसीदतु भगवान् ।

गोवर्द्धनोद्धरणमप्रतिमप्रभावं
बाहुं सुरेश ! तव मन्दरतुल्यसारम् ।
का शक्तिरस्ति मम दग्धुमिमं सुवीर्यं
यं संश्रितास्त्रिभुवनेश्वर ! सर्वलोकाः ॥ ११ ॥

अन्वयः—चतुःसागरपर्यन्तां ससप्तकुलपर्वतां कृत्स्नां पृथिवीं दहेयं किं ते भुजं न दहामि ॥ १० ॥

व्याख्या—चतुःसागरपर्यन्तां--चत्वारः सागराः = समुद्राः पर्यन्तः = सीमा यस्यास्तां चतुःसमुद्रमर्यादा, ससप्तकुलपर्वतां—सप्तकुलपर्वतैः युक्तां कृत्स्नां = सम्पूर्णां पृथिवीं = मेदिनीं दहेयं = दग्धुं शक्नुयाम् । किं ते = तव भुजं = बाहुं न दहामि । तुच्छकर्मैतदित्यर्थः ॥ १० ॥

अन्वयः—हे सुरेश ! त्रिभुवनेश्वर ! गोवर्धनोद्धरणम् अप्रतिमप्रभावं मन्दरतुल्यसारं सुवीर्यम् इमं तव बाहुं यं सर्वलोकाः संश्रिताः दग्धुं मम का शक्तिः, अस्ति ॥ ११ ॥

व्याख्या—हे सुरेश=देवराज ! त्रिभुवनेश्वर=त्रैलोक्यस्वामिन् ! गोवर्धनोद्धरणम् गोवर्धनपर्वतस्योत्थापकं अप्रतिमप्रभावम्=अतुलनीयप्रभावयुतं, मन्दरतुल्यसारं--मन्दरगिरितुल्यबलयुतं, सुवीर्यं=महद्बलयुतम्, इमं तव बाहुम्=भुजं यं=सर्वलोकाः सर्वाणि भुवनानि संश्रिताः आश्रमं प्राप्ताः दग्धुं = दग्धं कर्तुं मम =

दामोदर—अरे ! अपना पराक्रम दिखा लिया ।

कालिय—भगवान् नारायण प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ।

दामोदर—इसी वीर्य से आप गर्वित थे ।

कालिय—भगवान् प्रसन्न हों । हे त्रैलोक्य के स्वामिन् ! गोवर्धन को उठाने वाले, अप्रतिम प्रभाव वाले, मन्दर तुल्य बल (सार) वाले एवं अत्यन्त बलवान् आपकी इस भुजा को जलाने की मुझमें क्या शक्ति है । इस भुजा के आश्रय में सर्वलोक अवस्थित हैं ॥ ११ ॥

भगवन् ! अज्ञानादतिक्रान्तवान्, सान्तापुरः शरणागतोऽसि ।

दामोदरः—कालिय ! किमर्थमिदानीं यमुनाह्रदं प्रविष्टोऽसि ।

कालियः—भगवतो वरवाहनाद् गरुडाद् भीतोऽहमिह प्रविष्टोऽस्मि । तदिच्छामि गरुडादभयं भगवत्प्रसादात् ।

दामोदरः—भवतु भवतु ।

मम पादेन नागेन्द्र ! चिह्नितं तव मूर्धनि ।
सुपर्ण एव दृष्ट्वेदमभयं ते प्रदास्यति ॥ १२ ॥

कालियः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

दामोदरः—प्रविशतु भवान् ।

कालियः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः ।

दामोदरः—अथवा एहि तावत् ।

कालियस्य का शक्तिः अस्ति । इमं बाहुं दग्धुं सर्वथा असमर्थोऽस्मीत्यर्थः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे नागेन्द्र ! तव मूर्धनि इदं मम पादेन चिह्नितं दृष्ट्वा एव सुपर्णः ते अभयं प्रदास्यति ॥ १२ ॥

व्याख्या—हे नागेन्द्र ! = नागराज कालिय ! तव मूर्धनि = शिरसि इदं मम पादेन चिह्नितं = लक्षितं दृष्ट्वा एव = अवलोक्यैव, सुपर्णः = गरुडः, ते = तव, अभयं = भयराहित्यं प्रदास्यति ॥ १२ ॥

भगवन् ! अज्ञानवश आक्रमण किया है । अन्तःपुरसहित शरणागत हूँ ।

दामोदर—किसलिये इस समय यमुना ह्रद में प्रविष्ट हो ।

कालिय—आपके श्रेष्ठ वाहन गरुड से डर कर यहाँ प्रविष्ट हूँ । तो आपकी कृपा से गरुड से अभय चाहता हूँ ।

दामोदर—ठीक है ।

तुम्हारे सिर पर मेरे पैर के चिह्न को देखकर सुपर्ण तुम्हें अभय देंगे । १२ ।

कालिय—अनुगृहीत हूँ ।

दामोदर—तो आप प्रवेश करें (जांय) ।

कालिय—जैसी भगवान् नारायण की आज्ञा ।

दामोदर—अथवा आओ ।

कालियः--भगवन् ! अयमस्मि ।

दामोदरः- अद्यप्रभृति गोब्राह्मणपुरोगासु सर्वप्रजास्वप्रमादः कर्तव्यः ।

कालियः--भगवन् ! मद्विषदूषितमिदं जलम् । तदिदानीमेव विषं संहृत्य यमुनाह्रदान्निष्क्रामामि ।

दामोदरः--प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

कालियः--यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । (परिजनो निष्क्रान्तः ।)

दामोदरः--यावदहमपि ह्रदाद् गृहीतानि पुष्पाणि गोपकन्यकाभ्यः प्रयच्छामि ।

सर्वाः--एसो भट्टा अम्हाणं हिअआणन्दं करन्तो अक्खदसरीरो इदो एव आअच्छदि । जेदु भट्टा । [एष भर्तास्माकं हृदयानन्दं कुर्वन् अक्षतशरीर इत एवागच्छति । जयतु भर्ता ।]

सङ्कर्षणः--दिष्टया गोब्राह्मणहितं कृतम् ।

दामोदरः--गृह्यन्तां पुष्पाणि ।

सर्वाः--भट्टा ! एदाणि मुणि सङ्घेहि अणवइदपुव्वाणि पुप्फाणि पलामिट्ठाणि चन्दादिच्चकिरणेहि अपरिमद्दिदाणि । भाआमा भट्टा ! ।

कालिय--भगवन् ! यह हूँ ।

दामोदर--आज से गो, ब्राह्मण आदि सभी प्रजाओं में प्रमाद न करना ।

कालिय--भगवन् ! यह जल मेरे विष से दूषित है । तो इसी समय मैं विष को हटाकर यमुना ह्रद से निकल जाता हूँ ।

दामोदर--आप लौट जायें ।

कालिय--जैसी भगवान् नारायण की आज्ञा (परिजनों सहित चला जाता है) ।

दामोदर--तो मैं भी ह्रद से चुने गये पुष्पों को गोपकन्याओं को दे दूँ ।

सभी (कन्यायें)--ये स्वामी हमारे हृदयों को आनन्दित करते हुए शरीर में बिना किसी चोट के इधर ही आ रहे हैं । स्वामी की जय हो ।

संकर्षण--भाग्य से गो ब्राह्मण का हित हुआ ।

दामोदर--पुष्प लें ।

सभी (कन्यायें)--स्वामिन् ! ये पुष्प पूर्व में मुनिसंघों से चुने नहीं गये हैं

[भर्तः ! एतानि मुनिसङ्घैरनवचितपूर्वाणि पुष्पाणि परामृष्टानि चन्द्रादित्य-किरणैरपरिमर्दितानि । बिभीमो भर्तः ! ।]

दामोदरः—पूर्वं दृष्टभया वित्रस्तास्तपस्विन्यः । न भेतव्यं न भेतव्यम् । इदानीं खलु मत्करस्पर्शनात् सौम्यभावमुपगतानि; गृह्यन्ताम् ।

सर्वाः—जं भट्टा आणवेदि [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(प्रविश्य)

भटः—भो गोपालक ! क्व गतो नन्दगोपपुत्रः ।

गोपालकः—एषो भट्टा कालिअं णाम महाणाअं परिपीडिअ गोवकण्णआहि परिवुदो ट्ठिओ । [एष भर्ता कालियं नाम महानागं परिपीड्य गोपकन्यकाभिः परिवृतः स्थितः ।]

भटः—(उपगम्य) भो नन्दगोपपुत्र ! अनुगतार्थनामधेयस्य महाराजस्योग्रसेनस्य पुत्रः कंसराजो भवन्तमाज्ञापयति ।

दामोदरः—कथमाज्ञापयतीति ।

भटः—मथुरायां धनुर्महो नाम महोत्सवो भविष्यति । तमनुभवितुं सपरिजनाभ्यां भवद्भ्यामागन्तव्यमिति ।

और चन्द्र तथा सूर्य की किरणों से परामृष्ट और परिमर्दित नहीं हुए हैं । हम डर रही हैं । हम डर रही हैं । स्वामिन् ।

दामोदर—पहले भय को देखकर ये तपस्विनियाँ भीत हैं । डरो मत, डरो मत । ये मेरे हाथ के स्पर्श से सौम्यभाव को प्राप्त हो गयी हैं । पकड़ो ।

सभी (कन्यायें)—जैसी स्वामी की आज्ञा ।

(प्रवेश कर)

भट—हे गोपालक ! नन्दगोप का पुत्र कहाँ गया ।

गोपालक—ये स्वामी कालिय नामक महानाग को परिपीडित कर गोपकन्याओं से घिरे अवस्थित हैं ।

भट—(पास जाकर) हे नन्दगोप के पुत्र ! अन्वर्थ मामा महाराज उग्रसेन के पुत्र कंसराज आपको आज्ञा दे रहे हैं ।

दामोदर—क्या आज्ञा दे रहे हैं ?

भट—मथुरा में धनुः उत्सव नामक महोत्सव होगा उसे देखने के लिये

दामोदरः—आर्य ! अयं ननु देवरहस्यकालः ।

सङ्कर्षणः—शीघ्रमिदानीं गमिष्यावः ।

दामोदरः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । एष भोः !

प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं परिकीर्णकेशं
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रम् ।
आकृष्य कंसमहमद्य दृढं निहन्मि
नागं मृगेन्द्र इव पूर्वकृतावलेपम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं परिकीर्णकेशं विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रं कंसम् आकृष्य अहं पूर्वकृतावलेपं नागं मृगेन्द्र इव अद्य दृढं निहन्मि ॥ १३ ॥

व्याख्या—प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं = प्रभ्रष्टं प्रकर्षेण पतितं रत्नमुकुटं=शिरोभूषणं यस्य तं, परिकीर्णकेशं—परिकीर्णाः = इतस्ततः विसृताः केशाः = कचा यस्य तं, विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रं—विच्छिन्नः त्रुटितः हारः = कण्ठभूषणं यस्य तं तथा पतितं अङ्गदं = केयूरमङ्गदं लम्बसूत्रं = तन्नामकमाभूषणं यस्य तं कंसं मधुरऽधिरमोग्रकेनिमाकृष्य आसनाद्भूमावाक्षिप्य अहं = कृष्णः पूर्वकृतावलेपं पूर्वगर्वान्वितं नागं = गजं मृगेन्द्रः = सिंह इव अद्येदानीं दृढं = दार्ढ्येन निहन्मि = हनिष्यामि ॥ १३ ॥

इति भासविरचिते बालचरिते डा० गङ्गासागरशर्मणा कृतायां
गङ्गाभिधायां संस्कृतटीकायां चतुर्थोऽङ्कः ।

●

परिजनों सहित आप दोनों भी आवें ।

दामोदर—आर्य ! यह देवताओं के रहस्य का काल है ।

संकर्षण—इस समय शीघ्रता से हम दोनों चलें ।

दामोदर—ठीक है । उचित निर्णय है । यह (मैं) गिरे रत्नमुकुट वाले, बिखरे केशवाले, विच्छिन्न हारवाले, गिरे बाजूबन्द और लम्ब सूत्रवाले कंस को खींचकर दृढता से उसी प्रकार मार डालूंगा जैसे पूर्ण दर्पवाले हाथी को सिंह मार डालता है ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

(सभी निकल जाते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—

श्रुत्वा व्रजे विपुलविक्रमवीर्यसत्त्वं
दामोदरं सह बलेन समाचरन्तम् ।
आदिश्य कार्मुकमहं तमिहोपनीय
मल्लेन रङ्गगतमद्य तु घातयामि ॥ १ ॥

ध्रुवसेन ! ध्रुवसेन !

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

अन्वयः—व्रजे विपुलविक्रमवीर्यसत्त्वं दामोदरं बलेन सह समाचरन्तं श्रुत्वा अद्य अहं कार्मुकम् आदिश्य तम् इह उपनीय रङ्गगतं मल्लेन घातयामि ।

व्याख्या—व्रजे = व्रजप्रदेशे, विपुलविक्रमवीर्यसत्त्वं—विपुलः = प्रभूतः विक्रमः = पराक्रमः वीर्यं = शौर्यं सत्त्वं = बलं च यस्य तं दामोदरं = श्रीकृष्णं, बलेन = बलरामेण, सह समाचरन्तं = विहरन्तं, श्रुत्वा = आकर्ण्य, अहं = कंसः कार्मुकं = धनुर्यज्ञमित्यर्थः, आदिश्य = आज्ञाप्य, तं = श्रीकृष्णम् इह = मथुरापुर्यां, उपनीय = आनीय रङ्गगतं = मल्लशालां, प्रविष्टं मल्लेन = मल्लद्वारा घातयामि = मारयिष्यामि ॥ १ ॥

गन्धहस्ती = मदमत्त गजः ।

(तदनन्तर राजा का प्रवेश)

राजा—व्रज में विपुल पराक्रम और बल संपन्न बलराम सहित दामोदर को विचरण करते सुनकर धनुष यज्ञ का आदेश देकर उसे यहाँ बुलाकर आज रङ्गभूमि में आये उसे मल्लों (चाणूर इत्यादि) के द्वारा मरवा डालूंगा ॥ १ ॥

ध्रुवसेन ! ध्रुवसेन ।

(प्रवेश कर)

भट—महाराज की जय हो ।

राजा—ध्रुवसेन ! किमागतो नन्दगोपपुत्रः ।

भटः—श्रोतुमर्हति महाराजः—प्रविशन्नेव दामोदरः ससङ्कर्षणो गोपजनपरिवृतो रजकेभ्यो वस्त्राण्याच्छिद्य गृहीतवानिति श्रुत्वा महामात्रेणोत्पलापीडो नाम गन्धहस्ती सञ्चोदितस्तमभिघातयितुम् । ततः,

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य सभीतगोपालकवृन्दमध्ये ।
बालो बलेनाद्रिनिभं गजेन्द्रं दन्तं समाकृष्य जघान शीघ्रम् ॥ २ ॥

राजा—कथं जघानेति । गच्छ । भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । एष इदानीं नन्दगोपपुत्र उत्सवाधिकारोच्छ्रितध्वजपताकमवसक्तमाल्यदामालङ्कृतमुत्थापितागुरुधूपसमाकुलं राजमहापथं प्रविश्य राजकुलद्वारे

अन्वयः—सभीतगोपालकवृन्दमध्ये तम् अद्रिनिभं गजेन्द्रं सहसा आपतन्तं समीक्ष्य बालः दन्तं समाकृष्य शीघ्रं जघान ॥ २ ॥

व्याख्या—सभीतगोपालकवृन्दमध्ये—सभीतानां = भयार्तानां, गोपालकानां = गोपबालकानां, वृन्दस्य = समूहस्य, मध्ये तम् अद्रिनिभं = पर्वततुल्यं विशालकायं गजेन्द्रं = गजराजं कुवलयापीडमित्यर्थः, सहसा = द्रुतम्, आपतन्तं = समागच्छन्तं, समीक्ष्य = दृष्ट्वा बालः = दामोदरः, दन्तं = गजदन्तं; समाकृष्य = उत्पाट्य शीघ्रं तं जघान = व्यापादितवान् ॥ २ ॥

राजा—ध्रुवसेन ! क्या नन्दगोप का पुत्र आ गया ।

भट—महाराज सुनें—गोपजनों से घिरे संकर्षण सहित दामोदर ने धोबियों से वस्त्रों को छीनकर ले लिया और यह सुनकर महामात्र (महामंत्री) ने उत्पलापीड (कुवलयापीड) नामक गन्धहस्ती (मत्त गजराज) को उसे मारने के लिये प्रेरित किया । तदनन्तर डरे हुए गोपालों के बीच उसे आते देख सहसा उस बालक ने बलपूर्वक उस पर्वततुल्य गजराज को दाँत उखाड़कर शीघ्रता से मार डाला ॥ २ ॥

राजा—क्या ? मार डाला ? जाकर पुनः वृत्तान्त ज्ञात करो ।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा (निकलकर तथा पुनः प्रवेश कर) महाराज की जय हो । इस समय इस नन्दगोप पुत्र ने उत्सव निमित्त लगाये गये ध्वजापताका वाले; टंगी हुई मालाओं से सुसज्जित, उठे हुए अगरु-धूप से व्याप्त राज-

गन्धसमुद्गावसक्तहस्तां मदनिकां नाम कुब्जिकां दृष्ट्वा तस्या हस्ताद् गन्धमादाय स्वगात्रमनुलिप्य तेनैव हस्तेन कुब्जस्यानुमार्जनेन विगत-कुब्जभावां तां कृत्वा मालाकारापणेभ्यः पुष्पाण्याहृत्यावबध्य धनुःशाला-भिमुखो गतः।

राजा--किन्तु खलु तेन व्यवसितम्। तेन हि शीघ्रं गच्छ। भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

भटः--यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। धनुःशालारक्षकेण सिंहबलेन वार्यमाणस्तं कर्णमूले प्रहृत्य हत्वा धनुः समादाय द्विखण्डं कृत्वा साम्प्रतमुपस्थानाभिमुखो गतः। स हि,

आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः
पीताम्बरः सजलतोयदराशिवर्णः।

धनुःशाला = तत् स्थानं यत्र पणभूतं धनुर्वर्तते। व्यवसितं = सम्पादितम्। उपस्थानाभिमुखः = आवाससम्मुखः।

अन्वयः--आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः सजलतोयदराशिवर्णः रोषपरिवृत्तविशालनेत्रः, पीताम्बरः (दामोदरः) अवतीर्णः मृत्युः इव रामेण सार्धम् इह अभ्येति ॥ ३ ॥

व्याख्या—आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः = आपीडदाम्ना = निबद्धमाल्येन शिखिबर्हेण = मयूरपिच्छेन विचित्रः = अनुपमो वेषः यस्यासौ आपीडदामशिखि-बर्हविचित्रवेषः, सजलतोयदराशिवर्णः—सजलानां जलपूर्णानां तोयदानां = मेघानां, राशिः = समूहस्तस्य वर्णो = रङ्गो यस्यासौ जलपूर्णमेघराशिवर्णः रोष-

---

मार्ग में प्रवेश कर, राजकुल के द्वार पर पहुँचकर, हाथ में गन्धादि ली हुई मदनिका नामक कुब्जा को देखकर उसके हाथ से गन्ध को लेकर; अपने गात्र को अनुलिप्त कर उसी हाथ से कुब्जा को दूर कर उसे कुब्जापन से पृथक् कर मालियों के दूकान से पुष्पों को छीन कर, बाँध कर धनुःशाला को ओर गया है।

राजा—उसने क्या किया? अतः शीघ्र जाओ। पुनः समाचार ज्ञात करो।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा (निकलकर तथा पुनः प्रवेश कर) महा० की जय हो। धनुःशाला के रक्षक सिंहबल से रोका जाता हुआ उसकी कनपटी में प्रहार कर उसे मार डाला और धनुष लेकर उसे दो खण्डों में विभक्तकरके इस

अभ्येति रोषपरिवृत्तविशालनेत्रो
रामेण सार्धमिह मृत्युरिवावतीर्णः ॥ ३ ॥

राजा—सावेगमिव मे हृदयम्। गच्छ, यथानिर्दिष्टौ चाणूरमुष्टिकौ प्रवेशय, वृष्णिकुमाराणां सन्नाहमाज्ञापय।

भटः–यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रान्तः)।

राजा—यावदहमपि प्रासादमारुह्य चाणूरमुष्टिकयोर्युद्धं पश्यामि। (आरुह्य) मधुरिके ! विघाटयतां द्वारम्।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि। यद् भर्ताज्ञापयति।]

(राजा प्रविश्योपविशति।)

(ततः प्रविशतश्चाणूरमुष्टिकौ।)

परिवृत्तविशालनेत्रः--रोषेण = क्रोधेन परिवृत्ते = व्यत्यस्ते: विवृते वा विशाले नेत्रे = नयने यस्य सः, पीताम्बरः—पीतमम्बरं = वस्त्रं यस्य स दामोदरः, अवतीर्णः = पृथिव्यामागतः, मृत्युः काल इव, रामेण = बलरामेण सार्धं = सह इह अभ्येति = आगच्छति ॥ ३ ॥

सावेगं = सोद्वेगम्। सन्नाहं = युद्धम्।

समय बैठक की ओर गया है। वह मालाओं तथा मयूरपिच्छ से विचित्र वेषवाला, पीतवस्त्रों वाला, जलपूर्ण मेघ के वर्ण वाला क्रोध से खुले एवं विस्तृत नेत्रवाला (दामोदर) राम के साथ अवतार लिये मृत्यु के समान यहाँ आ रहा है ॥ ३ ॥

राजा–मेरा हृदय उद्वेगयुक्त हो रहा है। जाओ, जैसा कि उन्हें निर्देश दिया गया है चाणूर और मुष्टिक को लाओ। वृष्णिकुमार को तैयार रहने का आदेश दो !

भट—महाराज की जैसी आज्ञा (निकल जाता है)।

राजा--तो मैं भी प्रासाद पर चढ़कर चाणूर-मुष्टिक का युद्ध देखूं (प्रासाद पर चढ़कर) मधुरिके ! द्वार को खोलो।

प्रतीहारी--स्वामी की जैसी आज्ञा।

चाणूरः--

एसो म्हि जुद्धसज्जो मत्तो हत्थीव दप्पसम्पुण्णो ।
भञ्जेमि अज्ज बालं दामोदलं लंगमज्झम्मि ।। ४ ।।
[एषोऽस्मि युद्धसज्जो मत्तो हस्तीव दर्पसंपूर्णः ।
भनज्मयद्य बालं दामोदरं रङ्गमध्ये ।।]

मुष्टिकः--

लोहमयमुट्ठिहत्थो णामेण अ मुट्ठिओ लुट्ठि ।
पादेमि अज्ज लामं गिलिवलकूटं जहा वज्जो ।। ५ ।।

भटः--एष महाराजः । उपसर्पेतां भवन्तो !

अन्वयः—मत्तो हस्ती इव दर्पसंपूर्णः मत्तः एष (अहं) युद्धसज्जः अस्मि । अद्य रङ्गमध्ये बालं दामोदरं भनज्मि ।। ४ ।।

व्याख्या—हस्ती = गज इव दर्पसंपूर्णः = गर्वयुक्तः, मत्तः = मदेन युक्तः, एषोऽहं युद्धसज्जः—युद्धाय सज्जः = प्रस्तुतः अस्मि । एतादृशोऽहम्, अद्य = इदानीं, रङ्गमध्ये = रङ्गशालामध्ये, बालम् = अल्पवयस्कं; दामोदरं भनज्मि = त्रोटयामि = चूर्णयिष्यामीत्यर्थः ।। ४ ।।

अन्वयः—लोहमयमुष्टिहस्तः नाम्ना च मुष्टिकः रुष्टः अद्य गिरिवरकूटं वज्रः यथा रामं पातयामि ।। ५ ।।

व्याख्या--लोहमयमुष्टिहस्तः--लोहमया = लोहमयोमुष्टिः हस्ते = करे यस्य सः नाम्नाऽभिधानेन च मुष्टिकः, एतन्नामाऽहं रुष्टः = क्रुद्धः सन् गिरवरकूटं = पर्वतश्रेष्ठशिखरं वज्रः = कुलिशं यथा = इव पातयिष्यामि = हन्मीत्यर्थः ।। ५ ।।

(राजा प्रवेश कर बैठता है)

(तदनन्तर चाणूर और मुष्टिक प्रवेश करते हैं)

चाणूर--दर्प से संपूर्ण मददत्त हाथी के समान यह मैं युद्ध के लिये सज्जित हूँ । आज रङ्गभूमि के मध्य बालक दामोदर को तोड़ दूँगा ।। ४ ।।

मुष्टिक--लोहमय मुष्टियुक्त हाथ वाला, नाम से मुष्टिक मैं क्रुद्ध होकर आज बलराम को वज्र से पर्वत शिखर के समान गिरा दूँगा ।। ५ ।।

भट--ये महाराज हैं । आप दोनों पास चलें ।

उभौ--(उपेत्य) जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता]

राजा—चाणूरमुष्टिकौ । सर्वप्रयत्नेन युवाभ्यामानृण्यं कर्तव्यम् ।

उभौ--सुणादु भट्टा । अड्ढिदकरणसन्धाबन्धप्पहारेहि जुद्धविसेसेहि सिद्धि गच्छामो । हं पेक्खदु भट्टा । [शृणोतु भर्ता (आट्ठिद !) करण-सन्धाबन्धप्रहारैर्युद्धविशेषैः सिद्धि गच्छामः । हं पश्यतु भर्ता ।]

राजा—बाढमेवं क्रियताम् । ध्रुवसेन ! प्रवेश्येतां गोपदारकौ ।

भटः--यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशतो दामोदरसङ्कर्षणौ ध्रुवसेनेन सह ।)

दामोदरः—आर्य !

मर्त्येषु जन्म विफलं मम तानि घोषे
कर्माणि चाद्य नगरे धृतये न तावत् ।

उपसर्पेतां = समीपं गच्छताम् । आनृण्यं = ऋणराहित्यं भर्तृहितार्थं प्राणलोभं परित्यज्य योधव्यमित्यर्थः । करणसन्धाबन्धप्रहारैः = एतन्नामकैः प्रहारविशेषैः ।

अन्वयः--मम मर्त्येषु जन्म विफलं घोषे नगरे च अद्य कर्माणि तावत् धृतये न यावत् अहं जन्मान्तरासुरं कंसहतकं युधि पातयित्वा न परिकर्षयामि ।। ६ ।।

व्याख्या--मम = श्रीकृष्णस्य मर्त्येषु = मानुषेषु मनुष्यलोकेष्वित्यर्थः तावत् जन्म विफलं = व्यर्थं घोषे = आभीरपल्ल्यां वृन्दावने इत्यर्थः नगरे = मथुरा-पुर्यां च कर्माणि = लोकोत्तराणि चरितानि तावत् धृतये धैर्याय = संतोषार्थ-

---

दोनों--(पास जाकर) स्वामी की जय हो ।

राजा--चाणूर और मुष्टिक ! सभी प्रकार के प्रयत्नों द्वारा तुम दोनों मुझे ऋणमुक्त करो ।

दोनों—स्वामी सुनें । आकर्षण और सन्धि-बन्ध प्रहार नामक विशेष युद्धों से हम सिद्धि को प्राप्त करेंगे । स्वामी देखें ।

राजा--ठीक है । ऐसा ही करो । ध्रुवसेन ! दोनों गोपबालकों को ले आओ ।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा (निकल जाता है)

(तदनन्तर ध्रुवसेन के साथ दामोदर और संकर्षण प्रवेश करते हैं)

दामोदर—आर्य । तब तक घोष (आभीरपल्ली) में मेरा जन्म विफल है

यावन्न कंसहतकं युधि पातयित्वा
जन्मान्तरासुरमहं परिकर्षयामि ॥ ६ ॥

सङ्कर्षणः—
प्रविश्य रङ्गं कृतलोहमुष्टिं तं मुष्टिना मुष्टिकमद्य रुष्टम् ।
हत्वा चरिष्याम्यनिलप्रचण्डः प्रलम्बमम्भोदमिवान्तरिक्षे ॥ ७ ॥

भटः—एष महाराजः ! उपसर्पतां भवन्तौ ।

उभौ—आः कस्य महाराजः ।

भटः—सर्वस्य जगतोऽस्माकं च ।

दामोदरः—अद्यप्रभृति न भविष्यति ।

भटः—जयतु महाराजः ! एतौ तौ ।

मित्यर्थः यावत् न अहं श्रीकृष्णो जन्मान्तरासुरं = पूर्वजन्मनि राक्षसं कंसहतकं = दुष्टकंसं युधि = समरे पातयित्वा = निपात्य परिकर्षयामि सर्वतः कर्षयामि ॥६॥

अन्वयः—अद्य रङ्गं प्रविश्य कृतलोहमुष्टिं रुष्टं मुष्टिकं अन्तरिक्षे अनिलप्रचण्डः प्रलम्बम् अम्भोदम् इव हत्वा चरिष्यामि ॥ ७ ॥

व्याख्या—अद्य = इदानीं रङ्गं = रङ्गशालां प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा कृतलोहमुष्टिं—कृता लोहवत् = कठिना मुष्टिर्येन तं कृतलोहमुष्टिं मुष्टिकं = तन्नामानं दैत्यं, अनिलप्रचण्डः = प्रचण्डो वायुः प्रलम्बं लम्बमानम् अम्भोदं = जलदम् इव हत्वा = विनाश्य चरिष्यामि = विचरिष्यामि ॥ ७ ॥

और नगर में भी कर्म सन्तोषजनक नहीं है जब तब मैं जन्मजन्मान्तर के असुर नीच कंस को युद्ध में गिरा कर घसीटूँ नहीं ॥ ६ ॥

संकर्षण—आज रङ्गशाला में प्रवेशकर लोहसदृश मुष्टिवाले उस क्रुद्ध मुष्टिक को मुष्टि से मारकर उसी प्रकार विचरण करूँगा जैसे अन्तरिक्ष में (अति भार से) लटके बादल को छिन्न-भिन्न कर प्रचण्ड वायु घूमता है ॥ ७ ॥

भट—ये महाराज हैं । आप दोनों पास चलिये ।

दोनों—एँ ! किसके महाराज ?

भट—सभी जगत् के और हम लोगों के ।

दामोदर—आज से नहीं रहेगा ।

भट—महाराज की जय हो । ये वे दोनों हैं ।

राजा--(विलोक्य) अयं स दामोदरः। अहो,

श्रीमान् मदान्धगजधीरविलासगामी
श्यामः स्थिरांसभुजपीनविकृष्टवक्षाः।
पूर्वं श्रुतानि चरितानि न चित्रमस्य
लोकत्रयं हि परिवर्तयितुं समर्थः॥ ८॥

अयं नु ललितगम्भीराकृतिः पूर्वजोऽस्य राम इति श्रूयते।

अभिनवकमलामलायताक्षः शशिनिभमूर्तिरुदारनीलवासाः।
रजतपरिघवृत्तदीर्घबाहुश्चलदसितोत्पलपत्रचित्रमालः॥ ९॥

अन्वयः—श्रीमान् (अयं दामोदरः) मदान्धगजधीरविलासगामी श्यामः स्थिरांसभुजपीनविकृष्टवक्षाः (अस्ति)। अस्य चरितानि पूर्वं श्रुतानि न चित्रम्। अयं लोकत्रयं परिवर्तयितुं समर्थः॥ ८॥

व्याख्या—श्रीमान् = श्रियायुक्तः अयं = पुरोवर्ती दामोदरः मदान्धगजधीरविलासगामी—मदेन = दानमदेन अन्धः = स चासौ गजश्च = मदमत्तगजस्तद्वत्, धीरं = विलासयुक्तं च गमनं यस्य मत्तगजेन्द्र इव, सविलासं = धीरं गमनशीलः स्थिरांसभुजपीनविकृष्टवक्षाः—स्थिरौ = पुष्टौ अंसौ = स्कन्धौ भुजौ = करौ पीनं = मांसलं विकृष्टं पृथु वक्षः = उरःप्रदेशः यस्य सः श्यामः = कृष्णवर्णः अस्ति। अस्य श्रीकृष्णस्य चरितानि अलौकिकानि विचेष्टितानि पूर्वं श्रुतानि पूर्वप्रसिद्धानीत्यर्थः। अत्र तस्यालौकिकचेष्टितेषु न चित्रमाश्चर्यम्। अयं श्रीकृष्णः लोकत्रयं त्रैलोक्यं परिवर्तयितुं अन्यथा विधातुं समर्थः = सामर्थ्यवान्।

अन्वयः—(अस्य अग्रजः रामः) अभिनवकमलायताक्षः शशिनिभमूर्तिः उदारनीलवासाः रजतपरिघवृत्तदीर्घबाहुः चलदसितोत्पलपत्रचित्रमाल्यः (अस्ति)

राजा—(देखकर)—यह वही दामोदर है। अहो,

यह श्रीमान् मदान्ध गजराज की भाँति धीरज और विलास से गमन करनेवाला है। यह श्याम वर्ण का, दृढ कन्धा और भुजा तथा पीन एवं विस्तृत वक्षःस्थल वाला है। जो इसके चरित्र पूर्व में सुने गये हैं उसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह त्रैलोक्य को उलटने में समर्थ है॥ ८॥

यह सुन्दर एवं गम्भीर आकृति वाला इसका बड़ा भाई राम कहा जाता है।

यह नवीन कमल के समान निर्मल एवं विस्तृत आँखों वाला, चन्द्रमा की

दामोदरः—आर्य । एतावेवावाभ्यां युद्धसन्नद्धाविति मन्ये ।

सङ्कर्षणः—भवितव्यम् !

राजा—ध्रुवसेन ! प्रवर्ततां युद्धम् !

भट—यदाज्ञापयति महाराजः (मालां क्षिपति ।)

मल्लौ—अङ्का ! वादेथ वादेय सङ्खपटहाणि । अङ्गो ! वादयत वादयत सङ्खपटहान् ।]

चाणूरः—एहि दामोदाल ! अज्ज मे भुजजुअल्लेहि सिद्धि गच्छ ।
[एहि दामोदर ! अद्य मे भुजयुगलेन सिद्धि गच्छ ।]

अस्य श्रीकृष्णस्याग्रजः = बलरामः अभिनवकमलायताक्षः—अभिनव = नवीनं कमल = पद्मं तद्वत् अमले = निर्मले आयते = विस्तृते अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः, शशिनिभमूर्तिः—शशिनिभा = चन्द्रतुल्या मूर्तिः = स्वरूपं यस्य सः, उदारनीलवासा—उदारं = प्रशस्तं नीलं वासः यस्य सः, उदारनीलवासा, रजतपरिघवृत्तदीर्घबाहुः—रजतस्य = रूप्यस्य परिघः = परिघातनः तद्वत् वृत्तौ = वर्तुलौ पुष्टौ च दीर्घौ = लम्बिनौ बाहू = करौ यस्य सः, जलदसितोत्पल-चित्रमालः—चलत् = चञ्चलं यत् असितोत्पलं = नीलकमलं तस्य पत्राणि = दलानि तेषां चित्र = विचित्रा रुचिरेत्यर्थः माला यस्य सः चञ्चलासितोत्पल-मालाधरः अस्ति ॥ ९ ॥

भाँति मूर्ति वाला, प्रशस्त नील वस्त्रोंवाला, रजत (चाँदी) के परिघ के समान मोटी एवं लम्बी बाँहों वाला है तथा नीलकमल की विचित्र एवं चञ्चल माला को धारण किये हैं ॥ ९ ॥

दामोदर—आर्य ! मैं समझता हूँ कि ये दोनों ही हम दोनों के साथ युद्ध के लिये तैयार हैं ।

संकर्षण—हो सकता है ।

राजा—ध्रुवसेन ! युद्ध आरम्भ करो ।

भट—जैसी महाराज की आज्ञा (माला फेंकता है)

दोनों मल्ल—अरे ! युद्ध-दुन्दुभियों को बजाओ-बजाओ ।

चाणूर—दामोदर ! आओ । आज हमारी दोनों बाहों से सिद्धि प्राप्त करो ।

दामोदरः—

प्राप्तोऽस्मि तिष्ठ मम वेगमिमं सहस्व

मुष्टिकः—ए ए लाम ! अज्ज मे मुट्ठिपिट्ठगत्तगलिअलुहिलपडल-मज्जो जीविअं उज्झसि । [ए ए राम ! अद्य मे मुष्टिपिष्टगात्रगलितरुधिर-पटलमज्जो जीवितमुज्झसि] ।

सङ्कर्षणः—

त्वामद्य मुष्टिक ! यमाय निवेदयामि ।

(सर्वे नियुद्धं कुर्वन्ति ।)

दामोदरः—(चाणूरं निहत्य)

भग्नास्थिरेष निहतो

सङ्कर्षणः—

निहतो मयापि

दामोदरः—

कंसासुरं च यमलोकमहं नयामि ।। १० ।।

अन्वयः—प्राप्तः अस्मि । तिष्ठ । मम इमं वेगं सहस्व ! मुष्टिक ! त्वाम् अद्य यमाय निवेदयामि । एष भग्नास्थिः निहतः । मया अपि निहतः । अहं कंसासुरं च यमलोकं नयामि ।। १० ।।

व्याख्या—(चाणूरं प्रति कृष्णोक्तिः) प्राप्तः अस्मि = आगतोऽस्मि । तिष्ठ=

दामोदर—आ गया हूँ । मेरे इस वेग को सहन करो ।

मुष्टिक—ऐ ऐ राम ! आज मेरी मुट्ठी से पिसे शरीर में से निकले रुधिर-समूह और मज्जा वाला होकर प्राणत्याग करते हो ।

संकर्षण—हे मुष्टिक ! आज तुम्हें यमराज को सौंप रहा हूँ ।

(सभी घोर युद्ध करते हैं)

दामोदर—(चाणूर को मारकर)—यह हड्डियों के टूटने से मारा गया ।

संकर्षण—मैंने भी मार डाला ।

दामोदर—मैं कंस असुर को यमलोक भेज रहा हूँ ।

(प्रासाद पर चढ़कर कंस को शिर से पकड़कर तथा गिराकर) यही यही

(प्रासादमारुह्य कंसं शिरसि निगृह्य पातयित्वा] एष एष दुरात्मा कंसः,

विस्तीर्णलोहितमुखः परिवृत्तनेत्रो
भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजङ्घः ।
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रो
वज्रप्रभग्नशिखरः पतितो यथाद्रिः ॥ ११ ॥

स्थिरो भव । मम = श्रीकृष्णस्य इमं = तवोपरि निष्पाद्यमानं वेगं = प्रहारशक्ति सहस्व = अनुभवस्व । (बलरामस्य मुष्टिकं प्रति उक्तिः) हे मुष्टिक ! त्वाम् अद्य = इदानीं यमाय = प्रेतराजाय निवेदयामि = समर्पयामि । (कृष्णस्योक्तिः) एष चाणूरः भग्नास्थिः–भग्नानि अस्थीनि यस्य चूर्णीकृतशरीरः निहतः = व्यापादितः । (बलरामस्योक्तिः) मया अपि मुष्टिकः निहतः । (कृष्णस्योक्तिः) अहं कंसासुरं = कंसनामानमसुरं च यमलोकं = प्रेतराजनगरं नयामि = प्रेषयामि ॥ १० ॥

अन्वयः—विस्तीर्णलोहितमुखः परिवृत्तनेत्रः भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजङ्घः विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रः (अयं कंसः) वज्रप्रभिन्नशिखरः अद्रिः यथा पतति ॥ ११ ॥

व्याख्या—विस्तीर्णलोहितमुखः–विस्तीर्णं = विस्तृतं निःसृतमित्यर्थः लोहितं = रक्तं यस्मात् तन्मुखं यस्य सः, परिवृत्तनेत्रः—परिवृत्ते = व्यावृते नेत्रे यस्य सः, भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजङ्घः—भग्नानि अंसः = स्कन्धदेशः, कण्ठः, कटिः, जानुः, ऊरु, करौ यस्य सः, विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रः—विच्छिन्नः = त्रुटितः हारः, पतितः अङ्गदः = केयूरः लम्बसूत्रं = हारः यज्ञोपवीतं वा यस्य सः एतादृशः कंसः वज्रप्रभिन्नशिखरः = वज्रेण = कुलिशेन प्रभिन्नानि = खण्डितानि शिखराणि यस्य स अद्रिः = गिरिः यथा इव पतति ॥ ११ ॥

दुरात्मा कंस—

जिसके फैले मुख से रक्त निकल रहा है, आँखें उलट-पलट गयी हैं, कंधा, कण्ठ, कटि, घुटना, हाथ, ऊरु और जंघा टूट गये हैं, हार टूट गया है, बाजूबन्द और लम्बसूत्र गिर गये हैं उसी प्रकार गिरा है जैसे वज्र से टूटे शिखरवाला पर्वत ॥ ११ ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

भो भो वृष्णियोधाः ! अनावृष्टिशिबकहृदिकपृथुकसोमदत्ताक्रूर-प्रमुखाः ! अयं खलु भर्तृपिण्डनिष्क्रयस्य कालः । शीघ्रमागच्छन्तु भवन्तः ।

दामोदरः—आर्य ! संवार्यतां सैन्यम् ।

सङ्कर्षणः—अयमहं वारयामि ।

द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनादं
विलसदमलखड्गप्रासशक्त्यष्टिकुन्तम् ।
पवनबलविकीर्णं फेनजालोर्मिमालं
जलनिधिमिव दोर्भ्यां क्षोभयाम्येष सैन्यम् ॥ १२ ॥

भर्तृपिण्डनिष्क्रयस्य कालः = स्वामिनः भुक्तान्नस्य प्रतिकारस्य समयः ।

अन्वयः—द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनादं विलसदमलखड्गप्रासशक्त्यष्टिकुन्तं सैन्यं पवनबलविकीर्णं फेनजालोर्मिमालं जलनिधिम् इव एष दोर्भ्यां क्षोभयामि ।

व्याख्या—द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनादं—द्रुताः = वेगयुताः तुरगाः = अश्वाः रथाः = स्यन्दनानि इभाः = गजा, भ्रान्ताः = दिग्भ्रमिताः योधाः = पदातयः तैः उग्रः = तीव्रः नादः = शब्दः यस्मिन् तत् वेगयुताश्वस्यन्दनभ्रान्तपदातिभीषणनादं, विलसदमलखड्गप्रासशक्त्यष्टिकुन्तं—विलसम् = शोभमानम्,

---

(नेपथ्य में)

हाय ! हाय ! महाराज ।

(पुनः नेपथ्य में)

हे वृष्णिवंश के योद्धाओ ! हे अनावृष्टि, शिवक, हृदिक, पृथुक, सोमदत्त, अक्रूर आदि ! यह स्वामी के पिण्ड का बदला चुकावे का समय आ गया है । आप लोग शीघ्र आवें ।

दामोदर—आर्य ! सेना को रोकिये ।

संकर्षण—यह मैं रोक रहा हूँ ।

(ततः प्रविशति वसुदेवः !)

वसुदेवः—भो भो मधुरावासिनः! अलमलं साहसेन।

ज्येष्ठोऽयं मम तनयस्तु रौहिणेयो
देवक्यास्तनयमिमं च किं न वित्थ।
सन्नाहं त्यजत किमायुधैश्च कार्यं
कंसार्थं स्वयमिह विष्णुराजगाम ॥ १३ ॥

अमलं = स्वच्छं खड्गः = असिः प्रासः =शक्तिः, अष्टिः = अस्त्रविशेषः, कुन्तस्त-दाख्यायुधः इत्येते यस्मिन् तत् सैन्यं = सेना पवनबलविकीर्ण—पवनस्य = वायोः बलेन = शक्त्या विकीर्णः = उत्क्षिप्तः तम्, फेनजालोर्मिमालं—फेनस्य जालः = समूहः; उर्मीणां = वीचीनां मालाः यस्मिन् तं जलनिधि = सागरमिव दोर्भ्यां बाहुभ्यां क्षोभयामि = क्षुब्धं करोमि ॥ १२ ॥

अन्वयः—अयं मम ज्येष्ठः रोहिणेयः तनयः। इमं देवक्या तनयं किं च न वित्थ। सन्नाहं त्यजत। आयुधैश्च किं कार्यम्। कंसार्थम् इह स्वयं विष्णुः आजगाम ॥ १३ ॥

व्याख्या—अयं = पुरोदृश्यमानस्तु मम = वसुदेवस्य ज्येष्ठः-तनयः = पुत्रः अस्तीति शेषः। इमम् = अपरं पुरोदृश्यमानं देवक्यः=मम भार्यायाः तनयं = पुत्रं किं च न वित्थ = जानीथ। सन्नाहं = युद्धसंभारं त्यजत! आयुधैरस्त्र-शस्त्रैः किं कार्यम् न किमपि कार्यमित्यर्थः। कंसार्थं = कंसहननार्थं इह विष्णुः भगवान् जनार्दनः स्वयमाजगाम = स्वयमागतोऽस्ति ॥ १३ ॥

यह मैं दौड़ रहे अश्व, रथ, हाथी से व्यामिश्र योधाओं के उग्र नाद वाली और मल्लों से शोभित हो रहे खड्ग, प्रास, अष्टिकुन्त वाली सेना को मैं अपनी दोनों भुजाओं से उसी प्रकार क्षुब्ध कर रहा हूँ जैसे फेन जालयुक्त तरङ्गों वाले जलनिधि को पवन अपने बल से विकीर्ण कर देता है ॥ १२ ॥

(तब वसुदेव प्रवेश करते हैं)

वसुदेव—हे मधुरावासियो ! साहस मत करो।

यह मेरा रोहिणी से उत्पन्न बड़ा लड़का (संकर्षण) है और देवकी के इस लड़के (वासुदेव) को नहीं जानते। युद्ध के उद्योग को छोड़ो। आयुधों से क्या काम ? कंस के वध के लिये यहाँ स्वयं विष्णु आये हैं ॥ १३ ॥

सङ्कर्षणः—(विलोक्य) अये तातः । तात ! सङ्कर्षणोऽहमभिवादये ।

दामोदरः—तात ! दामोदरोऽहमभिवादये ।

वसुदेवः—अक्षयविजयिनौ भवेतां भवन्तौ । सत्पुत्रजन्मफलमद्य प्राप्तवानस्मि ।

उभौ—अनुगृहीतौ स्वः ।

वसुदेवः—कोऽत्र !

(प्रविश्य)

भटः—जयत्वार्यपुत्रः ।

वसुदेवः—अपविध्यन्तां कलेवराणि ।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः !

गोपालकाः सर्वे—ही ही गोवालआणं रज्जं संवुत्तं । [ही ही गोपालकानां राज्यं संवृत्तम् ।]

वसुदेवः—कोऽत्र ।

भटः—जयत्वार्यपुत्रः ।

संकर्षण—(देखकर) अरे पिताजी ! पिताजी ! मैं संकर्षण प्रणाम कर रहा हूँ ।

दामोदर—तात ! मैं दामोदर प्रणाम कर रहा हूँ ।

वसुदेव—तुम दोनों स्थिर विजयवाले होवो । मैंने आज सत्पुत्र के उत्पन्न करने का फल प्राप्त कर लिया है ।

दोनों—हम दोनों अनुगृहीत हुए ।

वसुदेव—यहाँ कौन है ?

(प्रवेश कर)

भट—आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेव—इन कलेवरों (शवों) को हटाया जाय ।

भट—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा ।

सभी गोपालक—ही ही ! गोपालकों का राज्य हो गया ।

वसुदेव—यहाँ कौन है ?

भट—आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेवः—गच्छ, शीघ्रं दामोदरस्यादेशादनावृष्टिमाज्ञापय—महाराज-मुग्रसेनमपनीय निगडान्निर्वृत्ताभिषेकं कृत्वा प्रवेशयेति।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः। (निष्क्रान्तः।)

वसुदेवः—अये,

नदन्ति सुरतूर्याणि वृष्टिः पतति कौसुमी।
कंसान्तकस्य पूजार्थं प्रायो देवाः समागताः॥ १४॥

(नेपथ्ये)

श्रीमानिमां कनकचित्रितहर्म्यमालां
विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टाम्।

अन्वयः—सुरतूर्याणि नदन्ति। कौसुमी वृष्टिः पतति। कंसान्तकस्य पूजार्थं प्रायः देवाः समागताः॥ १४॥

व्याख्या—सुरतूर्याणि = देवदुन्दुभ्यो नदन्ति = शब्दं कुर्वन्ति। कौसुमी = पुष्पमयी वृष्टिः पतति = निपतति गगनादिति शेषः। कंसान्तकस्य = कंसविघातकस्य पूजार्थं=पूजनार्थं प्रायः = समग्रेण देवा समागताः = आगताः सन्ति।१४।

अन्वयः—कमलायताक्षः त्रैलोक्यजित् सुरवरः त्रिदशेन्द्रनाथः श्रीमान् इमां कनकचित्रितहर्म्यमालां विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टां मधुरां सदा एव पायात्॥ १५॥

व्याख्या—कमलायताक्षः—कमले=पद्मे इव आयते = विस्तृते अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः कमलायताक्षः = कमलविशालनेत्रा, त्रैलोक्यजित् = त्रैलोक्य-

---

वसुदेव—जाओ। दामोदर को आज्ञा से शीघ्र अनावृष्टि को आज्ञा दो कि महाराज उग्रसेन को कारावास से मुक्त कर अभिषेक कराकर प्रवेश कराओ।

भट—आर्यपुत्र को जैसी आज्ञा!

वसुदेव—अरे

देवों की दुन्दुभियाँ बज रही हैं, पुष्पों की वृष्टि हो रही हैं एवं कंस को मारनेवाले की पूजा के लिये सभी देव आ गये हैं॥ १४॥

(नेपथ्य में)

इस स्वर्णखचित प्रासादोंवाली, विस्तृत राजभवन, बाजार, गोपुर (प्रवेश

पायात् सदैव मधुरः कमलायताक्ष-
स्त्रैलोक्यजित् सुरवरस्त्रिदशेन्द्रनाथः ॥ १५ ॥

वसुदेवः--भो भो मथुरावासिनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः । अस्य खलु दैत्येन्द्रपुरार्गलोत्पाटनपटोः सर्वक्षत्रपराङ्मुखावलोकिनो वसुदेवसम्भवस्य वासुदेवस्य प्रसादात् पुनरधिगतराज्यस्योग्रसेनस्य शासनमिदानीमवघुष्यते ।

सर्वे--प्रतिष्ठितमिदानीं वृष्णिराज्यम् ।

वसुदेवः--प्रवेश्यतां महाराजः ।

भटः--यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशत्युग्रसेनः ।)

विजयी, सुरवरः = देवश्रेष्ठः त्रिदशेन्द्रनाथः, श्रीमान्=श्रियायुतः श्रीविष्णुरित्यर्थः इमां = पुरोवर्तिनीं कनकचित्रितहर्म्यमालां--कनकैः = सुवर्णैः चित्रिता = जटिता हर्म्याणां = प्रासादानां माला = श्रेणिः यस्यां तां, विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टां - विस्तीर्णः =विततं राजभवनं = राजगृहम् आपणं = हट्टं गोपुरं = पुरद्वारं अट्टं = प्रासादः यस्यां तां मधुरां = मथुरापुरीं सदा एव = नैरन्तर्येण पायात् = रक्षतु ॥ १५ ॥

द्वार) एवं अट्टालिकाओं वाली मथुरा की कमल के समान विस्तृत नेत्रोंवाले त्रैलोक्यविजयी देवश्रेष्ठ श्रीमान् देवेन्द्र (इन्द्र) नाथ (विष्णु) सदैव रक्षा करें ॥ १५ ॥

वसुदेव—हे मथुरावासियो । आप लोग सुनें । दैत्यराज ने नगर की अर्गला को तोड़ने में पटु, सभी क्षत्रियों को पराङ्मुख देखने वाले वसुदेवपुत्र इस वासुदेव (कृष्ण) की अनुकम्पा से पुनः राज्य प्राप्त किये हुए इस उग्रसेन की आज्ञा इस समय उद्घोषित की जा रही है—

सभी--अब वृष्णिराज्य स्थापित हो गया ।

वसुदेव—महाराज को प्रवेश कराइये ।

भट--जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा (निकल जाता है)

(इसके बाद उग्रसेन प्रवेश करते हैं ।)

उग्रसेनः--

चिरोपरोधसम्प्राप्तः क्लेशो मे केशिसूदनात् ।
अपनीतः स्ववीर्येण यथा विष्णोः शतक्र (तु ? तोः) ॥१६॥

भगवत्प्रसादाद् व्यसनार्णवादुत्तारितोऽस्मि ।

(ततः प्रविशति नारदः ।)

नारदः--

कंसे प्रमथिते विष्णोः पूजार्थं देवशासनात् ।
सगन्धर्वाप्सरोभिश्च देवलोकादिहागतः ॥ १७ ॥

अन्वयः—यथा विष्णोः शतक्रतुः (तथा) केशिसूदनात् स्ववीर्येण मे चिरोपरोधसंप्राप्तः क्लेशः अपनीतः ॥ १६ ॥

व्याख्या—यथा विष्णोः = भगवतो जनार्दनस्य स्ववीर्येण शतक्रतुः—शतं क्रतवो = यज्ञाः यस्य सः = शतमख इन्द्रः विगतदुःखः कृतः तथा केशिसूदनात् = केशिनं = दैत्यं सूदयति = विनाशयतीति केशिसूदनः = कृष्णस्तस्मात् स्ववीर्येण = निजपराक्रमेण मे मम = उग्रसेनस्य चिरोपरोधसंप्राप्तः—चिरकालं = निगडे संयमनात् प्राप्तः क्लेशः दुःखम् अपनीतः = दूरीकृतः ॥ १६ ॥

व्यसनार्णवात् = दुःखसागरात् ।

अन्वयः--कंसे प्रमथिते विष्णोः पूजनार्थं देवशासनात् सगन्धर्वाप्सरोभिः च देवलोकात् इह आगतः अस्मि ।

उग्रसेन--

बहुत दिनों से बन्दी होने से प्राप्त हुआ मेरा क्लेश केशिसूदन (दामोदर) ने अपने पराक्रम द्वारा हटा दिया । जैसे विष्णु द्वारा शतक्रतु (इन्द्र) का क्लेश दूर किया जाता है । भगवान् की कृपा से विपत्तिसागर से उत्तीर्ण कर दिया गया हूँ ।

(तदनन्तर नारद प्रवेश करते हैं)

नारद—

कंस का वध हो जाने पर विष्णु की पूजा के लिये देवों की आज्ञा से गन्धर्वों

दामोदरः—अये देवर्षिनारदः । देवर्षे ! स्वागतम् । इदमर्घ्यं पाद्यं च ।

नारदः—सर्वं गृह्णामि ! गन्धर्वाप्सरसो गायन्ति ।

नारायण ! नमस्तेऽस्तु प्रणमन्ति च देवताः ।
अनेनासुरनाशेन मही च परिरक्षिता ॥ १८ ॥

दामोदरः—देवर्षे ! परितुष्टोऽस्मि किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

व्याख्या—कंसे = तदाख्ये असुरे प्रमथिते = विनाशिते विष्णोः भगवतो जनार्दनस्य कृष्णस्य पूजार्थं = पूजनार्थं कृष्णमर्चितुमित्यर्थः देवशासनात्—देवानां = देवराजस्येन्द्रस्य वा शासनात् =आज्ञया सगन्धर्वोप्सरोभिः—गन्धर्वैः =अप्सरोभिः = सुरवेश्याभिश्च सह देवलोकात् – स्वर्गलोकात् इह = अत्र आगतोऽस्मि ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे नारायण ! ते नमः अस्तु । देवताः प्रणमन्ति च । अनेन असुरनाशेन (त्वया) मही परिरक्षिता ॥ १८ ॥

व्याख्या—हे नारायण ! = भगवन् कृष्ण ! ते = तुभ्यं नमः – प्रणतिरस्तु । भवन्तं देवताः = देवाः प्रणमन्ति = नमस्कुर्वन्ति । अनेन – त्वया कृतेन असुरनाशेन =दैत्यविनाशनेन, मही = पृथिवी परिरक्षिता = त्राता ॥१८॥

और अप्सराओं सहित देवलोक से आया हूँ ।

दामोदर—अरे ये देवर्षि नारद हैं । स्वागत है । यह अर्घ्य है । यह पाद्य है ।

नारद—सभी ग्रहण करता हूँ । गन्धर्व एवं अप्सरायें गाती हैं, हे नारायण ! आपको नमस्कार है । देवता प्रणाम कर रहे हैं । इस असुर-नाश से पृथ्वी की रक्षा की गई ॥ १८ ॥

दामोदर—देवर्षे ! मैं प्रसन्न हूँ । और आपका क्या प्रिय किया जाय ।

नारदः—

प्रहृष्टो यदि मे विष्णुः सफलो मे परिश्रमः।
गमिष्ये विबुधावासं सह सर्वैः सुरोत्तमैः॥ १९॥

दामोदरः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय!

नारदः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः। (निष्क्रान्तः।)

(भरतवाक्यम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महामेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥ २०॥

अन्वयः—यदि मे विष्णुः प्रहृष्टः मे परिश्रमः सफलः। सर्वैः सुरोत्तमैः सह विबुधावासं गमिष्ये॥ १९॥

व्याख्या—यदि मे = ममोपरि विष्णुः = भगवान् कृष्णः प्रहृष्टः = प्रसन्नः तर्हि, मे = मम, परिश्रमः = अत्रागमनरूपः श्रमः सफलः = सार्थकः। इदानीमहं सर्वैः सुरोत्तमैः = देववरैः सह विबुधावासं—विबुधानां = देवानामावासं = निवास-गमिष्ये = गमिष्यामि॥ १९॥

अन्वयः—नः राजसिंहः इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्कां स्थानं देवलोकं महीं प्रशास्तु॥ २०॥

व्याख्या—नः = अस्माकं राजसिंहः = शासकवरः, इमां = पुरोवर्तिनीं, सागरपर्यन्तां = सागरसीमितां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलां—हिमवान् = विन्ध्यस्य कुण्डले कर्णालङ्कारौ यस्या सा ताम्, एकातपत्राङ्कां = एकमेव न द्वितीयमित्यर्थः छत्रं = अङ्कं यस्या सा तां तथोक्ताय द्वितीय शासनामित्यर्थः प्रशास्तु = रक्षतु॥ २०॥

नारद—यदि विष्णु मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा प्रयास सफल है। सभी देव-श्रेष्ठों-सहित देवलोक को जाऊँगा॥ १८॥

दामोदर—आप (भगवान्) पुनः दर्शन (देवे) के लिये जायँ।

नारद—जैसी भगवान् नारायण की आज्ञा।

(निकल जाते हैं)

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

पञ्चमोऽङ्कः ।

अवसितं बालचरितम् ।

इति भासरचिते बालचरिते पंचमाङ्कस्य सांकृत्यायन गङ्गासागरशर्मणा कृता गङ्गाभिवा टीका संपूर्णा ।

(भरत वाक्य)

एकच्छत्र से चिह्नित हिमालय और विन्ध्य से आवेष्टित सागर पर्यन्त पृथ्वी का हमारे राजसिंह शासन करें ॥ २० ॥

(सभी निकल जाते हैं)

पञ्चम अंक समाप्त

बालचरित समाप्त

परिशिष्टम्-१

सूक्तिग्रन्थेषु निर्दिष्टानि भासपद्यानि

सदुक्तिकर्णामृते

दग्धे मनोभवतरौ बालाकुचकुम्भसंभृतैरमृतैः ।
त्रिवलीकृतालवाला जाता रोमावली वल्ली ॥

विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशांपति-
र्गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः ।
अभिनववधूरोषस्वादुः करीषतनूनपा-
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणाः ॥

प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् ।
उन्मादस्मितरोमलज्जितरसैर्गौर्या कथञ्चिच्चिराद्
बद्धः स्त्रीवचनात्प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥

शार्ङ्गधरपद्धतौ--

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं
ग्राह्यः स्वभावललितो विकटश्च वेषः ।
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः ॥

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः
शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः ।
तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥

कपोले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी सङ्कलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा ।
आपाण्डुरक्षामकपोलभित्तावनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ।।
दयिताबाहुपाशस्य कुतोऽयमपरो विधिः ।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ।।

सुभाषितावल्याम्

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः ।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने
हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ।।
कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुखप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि ।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे रतम् ।।
कृतककृतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं वेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ।।
दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ।
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ।।

सूक्तिमुक्तावल्याम्

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
तदपि सकलं चारुस्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ।।

●

परिशिष्टम्—२

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१. नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

जिसमें देवताओं, द्विजों, राजादि की अशीर्वचनयुक्त स्तुति हो वह नान्दी होती है । यह बारह या आठ पदों की होती है और जिसमें मङ्गलवाची शङ्ख, चक्र, पद्म का उल्लेख होता है ।

२. प्रस्तावना—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है और उसी की प्रस्तावना भी संज्ञा है ।

३. सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण—वस्तु, नेता तथा रस ये सूत्र कहे जाते हैं । उस नाट्यो-

अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा ।
आपाण्डुरक्षामकपोलभित्तावनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ।।
दयिताबाहुपाशस्य कुतोऽयमपरो विधिः ।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ।।

सुभाषितावल्याम्

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः ।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने
हा क्वापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ।।
कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुखप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि ।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे रतम् ।।
कृतककृतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं चेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ।।
दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ।
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ।।

सूक्तिमुक्तावल्याम्

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
तदपि सकलं चारुस्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ।।

परिशिष्टम्—२

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१. नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

जिसमें देवताओं, द्विजों, राजादि की अशीर्वचनयुक्त स्तुति हो वह नान्दी होती है। यह बारह या आठ पदों की होती है और जिसमें मङ्गलवाची शङ्ख, चक्र, पद्य का उल्लेख होता है।

२. प्रस्तावना—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

जब नटी, विदुषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है और उसी को प्रस्तावना भी संज्ञा है।

३. सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा

नाटयस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाटयोपकरण—वस्तु, नेता तथा रस ये सूत्र कहे जाते हैं। उस नाटयो-

पकरण को धारण करनेवाले को सूत्रधार कहते हैं। दूसरे लक्षणानुसार वेता अथवा कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा पिरोवेवाला--रङ्गप्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता हैं।

४. प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की मंज्ञा दी जाती हैं।

५. नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

नट के परिवार के गृह को वेपथ्य कहा जाता है।

६. विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

नाटक में हो गयी या होवे वाली घटनाओं का यह सूचक होता है। यह नाटक के कथांश को संक्षिप्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। यदि इसमें मध्यम कोटि के पात्र हों तो यह शुद्ध विष्कम्भक होता है और यदि इसमें मध्यम और नीच कोटि के पात्र प्रयुक्त हों तो संकीर्ण कहा जाता है।

७. प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयःशेषं विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र होते हैं और भाषा प्राकृत होती है। यह दो अङ्कों के बीच में प्रयुक्त होता है और अन्य विशेषतायें विष्कम्भक की ही होती हैं।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होतीं उसे स्वगत कहते हैं।

९. प्रकाश—

सर्वंश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।

जो सभी के सुनने के लिए होता है उसे प्रकाश कहते हैं।

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि के द्वारा जो हास्य उत्पन्न करने वाला, कलह-प्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता हो उसे विदूषक कहते हैं। उसके नाम कुसुम, वसन्त आदि होते हैं।

११. नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोगों का रञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक बुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञा-कला-मान से युक्त, शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्र दृष्टिवाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणास्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथा संभवैर्युक्ता॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारण के भेद से तीन प्रकार की होती है; यथासंभव वह नायक के गुणों से युक्त होती है।

१३. अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः॥

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

श्लोकानुक्रमणी

पद्यानि	अङ्कश्लोकसंख्या
अ	
अगणितपरि०	१।१०
अनुदित०	३।१
अतः प्रविश्य	२।२५
अनन्तवीर्यः	१।७
अपीदं श्रृणु	३।१०
अप्रकाशा इव	१।१६
अभिनवकमलाय०	५।९
अयं हि सप्तमो	२।१७
अहं गगन०	१।३
अहं सुपर्णो	१।२१
अहं हि नीलः	२।२३
आ	
आपीडदाम०	५।३
इमां नदीं	१।१८
इमां सागर०	५।२०
ए	
एकांशपतितो	२।१८
एताः प्रफुल्ल०	३।२
एता मत्ताचकोर०	४।१
एषो स्मियुद्ध०	५।४
क	
कस्मिञ्जाते	२।११
कंसे प्रमथिते	५।१७

पद्यादि	अङ्कश्लोकसंख्या
कार्याण्यकार्या०	१।२८
किं गर्जसे	३।१४
किं दष्टः कृष्ण०	३।९
किं द्रष्टव्यः	१।११
किमेतद् भोः	३।८
कुण्डोदरोऽहम्	२।२१
कृत्वा खुरैर्भूमितलं	३।४
कोऽयं विनिष्पतति	२।४
कौमोदकी	१।२४
क्रोधेन नश्यति	२।३
क्षीणेषु देवासुर०	१।४
ग	
गिरितटकठि०	३।११
गोब्राह्मणादयस्	३।१५
गोवर्धनोद्ध०	४।११
च	
चक्रशार्ङ्गगदा०	१।२७
चक्रोऽस्मि कृष्ण०	१।२२
चतुस्सागर०	४।१०
चिरोपरोध०	५।१६
ज	
जाने नित्यं	१।२९
ज्येष्ठोऽयं मम	५।१३

पद्यानि	अङ्कश्लोकसंख्या
त	
तमसा संवृते	१।१७
तमापतन्तं	५।२
तीक्ष्णाग्रं शूल०	२।१९
द	
दामोदरोऽयम्	४।५
दारिकां वा	२।१४
दारिकेयं मृता	२।१६
दुर्दिन०	१।१९
द्रुततुरगरथेभ०	५।१२
न	
न चाहं चिरसंवासात्	२।८
नदन्ति सुर०	५।१४
नन्दकोऽहं न मे	१।२६
नारायण ! नमस्ते	५।१८
नारायणाय	१।८
निर्भर्त्स्य कालियमहं	४।६
निष्पक्षिव्याल०	४।२
प	
पतत्यसौ पुष्प०	१।२
परिष्वजामि गाढं	२।९
प्रथमसुतविनाश०	१।१४
प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं	४।१३
प्रविश्य रङ्गं कृत०	५।७
प्रहृष्टो यदि मे	५।१९
प्राप्तोऽस्मि तिष्ठ	५।१०
भ	
भक्तिः परा मम	१।५
भूतं नभस्तल०	२।१०
भ्रमति नभसि	१।९
म	
मधूकस्य ऋषेः	२।१५
मनोजवो मारुत०	२।२४
मम पादेन	४।१२
मर्त्येषु जन्म	५।६
यत्र यत्र वयं	३।१३
यद्यस्मि भवतः	१।२०
यन्मेदिनी प्रचलि०	२।१
यस्मान्न रक्षि०	२।२
रक्तैर्वेसुक०	३।३
र	
रुद्रो वायं	३।१२
रोषेण धूमायति	४।९
ल	
लङ्कोपमं मम	२।९
लिम्पतीव	१।१५
लोकानामभयंकरं	१।६
लोकालोकमहीधरेण	४।७
लोहमयमुष्टि०	५।५
व	
विध्वस्तमीन०	४।१२
विन्ध्यमन्दर०	१।१२
विषदहनाशिखा०	४।३

पद्यानि	अङ्कश्लोकसंख्या
विसृतरुधिर०	३।१५
विस्तीर्णं लोहित०	५।११
श	
शङ्खक्षीरवपुः	१।१
शङ्खोऽहमस्मि	१।२५
शार्ङ्गोऽस्मि	१।२३
शुम्भं निशुम्भं	२।२०
शूलोऽस्मि भूत०	२।२२
शृङ्गार कोटि०	३।५
श्मशानमध्या०	२।५
श्रीमान् मदान्ध०	५।८
श्रीमानिमां	५।१५

पद्यानि	अङ्कश्लोकसंख्या
श्रुत्वा व्रजे	५।१
ष	
षण्णां सुतानां	२।१२
स	
सारवान् खलु	३।६
सितेतराभुग्न०	४।४
सौवर्णकान्ततर०	२।६
स्मरतापि भयं	२।१३
ह	
हुङ्कारशब्देन	३।९
हृदयेनेह	१।१३

●

Rastriya Sanskrit Sansthanam
Rajiv
ACC NO. 151H2
DATE

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२४८

महाकविभासविरचितम्

अविमारकम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

सम्पादको व्याख्याकारश्च

डॉ. गङ्गासागररायः

एम.ए., पी-एच.डी.

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत भवन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्रकाशक :
चौखम्भा संस्कृत भवन
संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल पुस्तकों के प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
टेलीफोन :+९१-५४२-२४२०४१४ फैक्स :+९१-५४२-२४००७५५

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
© चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि०सं० २०६८
मूल्य : रु० ४५.००

वितरक :
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी - २२१००१ (भारत)

मुद्रक : श्रीगोकुलेश प्रेस, वाराणसी

वक्तव्य

संस्कृत वाङ्मय के देदीप्यमानकृती नाटककार महाकवि भास के 'अविमारकम्' का यह संस्करण अध्येताओं के सामने रखते हुये हमें संतोष का अनुभव हो रहा है। श्री गणपति शास्त्री द्वारा भास के नाटकों का प्रथम प्रकाशन होने के बाद इन नाटकों का सतत संपादन, व्याख्यान और प्रकाशन होता चला आ रहा है। प्रस्तुत संस्करण उसी में एक कड़ी है। इसके व्याख्यान में यदि कुछ गुण है तो वह प्राचीन अध्येताओं के परिश्रम की परिणति है और जो कुछ त्रुटि है वह मेरे मान्द्य और प्रमाद का परिपाक है। इस संस्करण को उपयोगी बनाने का हरसंभव प्रयास किया गया है और प्रारम्भ में लघुविस्तारी भूमिका में भास एवं उनके नाटक-चक्र का संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक विवरण दिया गया है। अन्त में परिशिष्टों का समावेश कर अध्ययन की सुविधाओं को अग्रसर करने का प्रयास किया गया है। भास का शृङ्गार प्रधान यह प्रकरण सहृदयों को रसानुभूति से आप्लावित करेगा ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ की व्याख्या में हमें स्व० पं० बदरीनारायणमिश्र और पं. हीरामणि मिश्र से सहयोग मिला है और प्रूफ संशोधन में पं० हीरामणि मिश्र तथा पं० कृपासिन्धुशर्मा ने अपेक्षित सहायता की है। इन विद्वानों का मैं आभारी हूँ। पुस्तक प्रकाशन में चौखम्बा संस्कृत-संस्थान के स्वामी श्री मोहनदासजी गुप्त और उनके उदीय-

मान चिरंजीवि श्री राजन ने उत्साह और धैर्य दिखाया है। मेरे आलस्यवश इस लघुकाय नाटक के प्रकाशन में प्रायः दो वर्ष का समय लग गया। फिर भी इन लोगों ने धैर्यपूर्वक इसको पूर्ण किया। अस्तु, संस्कृत-जगत् उनका आभारी है। मैं उन अपने सभी मित्रों, हितैषियों और मान्यों का आभारी हूँ जिनका अहेतुक स्नेह मुझे सुलभ रहता है।

काशी
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, २०४५ वि०

गङ्गासागर राय

1. ભાસ પરિચય: -> માતા, પિતૃ, નામ, ગ્રંથ, 13 નાટકોનાં નામ, વિવરણ
2. પાત્ર પરિચય:
3. પ્રમુખ પાત્રોનો ચરિત્ર પરિચય:।
4. નાટકસ્ય સાર:
   પદ્યશ્લોક:

भूमिका

भास : परिचय

संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास में नाटककार भास का महत्त्व सुतरां सर्वातिशायी है और संस्कृत के महनीय कवियों ने भास की महत्ता को प्रशस्त शब्दों में स्वीकार किया है। न केवल प्राचीनता अपितु लोकप्रियता की दृष्टि से भी भास के नाटक अपनी विशिष्टता से संस्कृत-साहित्य को जाज्वल्यमान बनाये हुए हैं। संस्कृत-काव्य के उस प्रारम्भिक युग में जबकि नाटक की विधा अपनी अवस्थिति को पुष्ट आधार पर अवस्थित न कर पायी थीं। भास ने इतने प्रौढ़, सरस और सरल नाटकों का निर्माण कर उन्हें पञ्चम वेद के रूप में प्रतिष्ठापित किया। आसेतु हिमाचल और पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक भास की मसृण कीर्तिकौमुदी काल की बाधा को बाधित करते हुए विगत प्रायः दो सहस्र वर्षों से निरन्तर सहृदयों का हृदयावर्जन करती आ रही है।

भास के नाटकों की प्रसिद्धि इतनी व्यापक थी और संस्कृत के सभी अध्येता इससे इतने अभिभूत थे कि उनका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते थे। उनकी महत्ता का परिचय कुछ महत्त्वशाली लेखकों के अधोनिर्दिष्ट उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

(१) संस्कृतसाहित्य के सर्वोत्कृष्ट महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में सूत्रधार से प्रश्न कराया है कि भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि भूतकाल के यशस्वी कवियों की कृतियों के रहते वर्तमानकाल के कालिदास की कृति में इतना आदर क्यों?—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।—प्रस्तावना

(२) प्रख्यात गद्यकार बाणभट्ट ने हर्षचरित में बताया है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं, विस्तृत भूमिका वाले होते हैं तथा पताका से युक्त होते हैं। इसलिए वे देवकुल (देवालय) जैसे होते हैं—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित

यहां यह ध्यातव्य है कि सामान्यतया संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नान्दी से होता है पर भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं—यह सूचना मात्र होती है कि नान्दी समाप्त हो चुकी है। भास की यह विशिष्टता बाण-भट्ट के समीक्षक हृदय को आकृष्ट किये बिना नहीं रही।

(३) प्राकृत के महाकवि वाक्पतिराज ने अपने महाकाव्य 'गउडवहो' में भास को 'ज्वलनमित्र' कहा है जिसका अर्थ अग्नि का मित्र है। विद्वानों की धारणा है कि स्वप्नवासवदत्ता में स्वप्नवासवदत्ता के जलकर मर जाने की मिथ्या वार्ता प्रसारित कर नाट्य-वस्तु-विकास को जो उपयुक्त एवं हृदयग्राही अवसर प्रदान किया गया उसीसे अभिभूत होकर वाक्पतिराज ने भास को ज्वलनमित्र कहा है—

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुचारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारियन्दे अ आणन्दे ॥—गउडवहो ८००

(४) जयदेव ने भास को कविता का हास्य बताया है। भास के नाटकों में हास्य की योजना बड़ी ही कुशलता से की गई है। हास्य के उद्धत और सुकुमार दोनों प्रकारों की योजना भास ने बड़ी ही विशिष्टता के साथ विनिबद्ध की है। उद्धत हास्य के लिए प्रतिज्ञायौगन्धरायण के विदूषक की श्लिष्ट भाषा तथा सुकुमार हास्य के लिए अन्य नाटकों में प्राप्त औदरिक विदूषकों के वचन उदाहरण में द्रष्टव्य हैं। जयदेव का अनर्घराघव में प्राप्त वह पद्य इस प्रकार है—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय ॥—अनर्घराघव

(५) दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी में बताया है कि भास के रूपकों में मुख और प्रतिमुख सन्धियाँ स्पष्टतः भासित होती है तथा भास ने अनेक वृत्तियों का आश्रय लेकर विविध भाव दशाओं का सफल प्रदर्शन किया है।

(६) राजशेखर ने आख्यान के रूप में उपन्यस्त किया है कि विदग्धों ने भास की वासवदत्ता को अग्नि में प्रक्षिप्त कर दिया पर अग्नि भी वासवदत्ता को दग्ध न कर सका—

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥—काव्यमीमांसा

(७) नाट्यदर्पणकर्ता रामचन्द्रगुणचन्द्र ने भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है—

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।
—नाट्यदर्पण

इससे यह स्पष्टतः अवभासित होता है कि रामचन्द्रगुणचन्द्र के समय (१२वीं सदी) में भास के नाटक और विशेषतः स्वप्नवासवदत्ता प्रसिद्धि की चरम स्थिति में थे।

(८) इसी सदी के अन्य आचार्य शारदातनय ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रकरण में भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

(९) आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर अपनी टीका में 'क्वचित् क्रीडां यथा वासवदत्तायाम्' कहकर भास की स्वप्नवासवदत्ता का निर्देश किया है।

(१०) भोज ने शृङ्गारप्रकाश में—वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः–कहकर स्वप्नवासवदत्ता से अपना पूर्व परिचय बताया है।

(११) अमरकोशटीकासर्वस्व में टीकाकार सर्वानन्द ने उदयन एवं वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है। यह भास के नाटक का ही निर्देश हो सकता है।

(१२) जयानक ने पृथ्वीराजविजय में कहा है कि व्यास तथा भास के श्रेष्ठत्व के विवाद में दोनों की सर्वोत्तम कृतियाँ अग्नि को समर्पित कर दी गयी। भासकृत विष्णुधर्म अग्नि में नहीं जल सका। इस व्याख्या की यथार्थता के विषय में व्यास को महर्षि व्यास मानने पर सन्देह होना स्वाभाविक है। क्योंकि एक तो कालक्रम की दृष्टि से महान् अन्तर, दूसरे व्यास उपजीव्य हैं और तीसरे भासकृत विष्णुधर्म की अप्राप्ति है।

राजशेखर का यह उल्लेख कि स्वप्नवासवदत्ता को अग्नि भी न जला सका, भी इसके विरोध में पड़ता है। अतः यही स्वीकार करना ज्यादा संगत हैं कि राजशेखर के समय में यह जनश्रुति पर्याप्त प्रचलित थी और भास की स्वप्नवासवदत्ता अत्यन्त लोकप्रिय कृति थी और उसकी महत्ता लोक में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी। इन उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि कालिदास के समय या उससे पूर्व से भास की प्रसिद्धि अत्यन्त व्यापक रूप से हो गयी थी और संस्कृत के कवि तथा नाटककार उनका अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख करते थे।

भास के नाटकों का प्रकाशन—संस्कृत के कवियों द्वारा इस प्रकार से सम्मानित और उद्धृत भास के नाटक कालचक्र से एकदम दुष्प्राप्य हो गये। उनका उल्लेख केवल कविवचनों और सूक्तियों तक ही सीमित हो गया था। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उठता है कि जब भास के नाटक इतने प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय थे तो सहसा प्रचार से क्यों दूर हो गये। इस प्रश्न का उचित समाधान तो नहीं हो सका है पर विद्वानों ने कुछ तर्क दिये हैं जिनका सारांश यह है कि उत्तर भारत में मुसलमानों के प्रसार एवं शासन से वैदिक धर्म के प्रतिपादक तथा लोकप्रिय भास के नाटकों का उत्तरी भारत से उच्छेद हो गया। क्योंकि इन नाटकों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' का उपदेश है अतः यवन ऐसे राजसिंह का शासन कब सहन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त विदेशियों से बार-बार आक्रान्त होने से उत्तर भारत के लोग नैराश्यमग्न होकर धर्म तथा दर्शन की ओर उन्मुख हो गये। फलतः उत्तरी भारत से भास के देवनागरी लेखों का अभाव हो गया।[1]

---

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य ए, एस० पी० अय्यरकृत भास पृ० १३—१५

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने १९१२ ई० में भास के तेरह नाटकों का प्रकाशन किया। ये १३ नाटक इस प्रकार हैं—(१) दूतवाक्य (२) कर्णभार (३) दूतघटोत्कच (४) मध्यमव्यायोग (५) पञ्चरात्र (६) ऊरुभङ्ग (७) अभिषेक (८) बालचरित (९) अविमारक (१०) प्रतिमानाटक (११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (१२) स्वप्नवासवदत्तम् (१३) चारुदत्त—ये तेरह नाटक तो सर्वथा भासकृत माने जाते हैं।

इनके अतिरिक्त भास की चौदहवीं कृति 'यज्ञफल' नाम से प्रकाश में आयी है। इसे १९४१ ई० में राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने प्रकाशित किया और इसे भास कृत बताया। यह नाटक देवनागरी लिपि के दो हस्तलेखों पर आधृत था। किन्तु इसके प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही जयपुर के पण्डित गोपालदत्त ने इसे अपनी रचना बतायी। बाद में विद्वानों ने इसकी व्यापक खोजबीन की और पण्डित गोपाल दत्त शास्त्री के दावे को असत्य स्वीकार किया। डा० दाण्डेकर ने इस विषय पर विवेचन कर दर्शाया कि गोपाल दत्त का कथन तो मिथ्या है ही इस नाटक का प्रणयन संवत् १६७० से पूर्व हो चुका था और किसी कवि ने भास के अनुकरण पर इसका प्रणयन किया। यह नाटक ७ अंकों में विभक्त है और रामजन्म से लेकर सीता-विवाह तक की कथा इसमें निबद्ध है। इस विषय का विस्तृत विवेचन डा० पुसालकर के ग्रन्थ भास : ए स्टडी में निबद्ध है।

भास-नाटक-चक्र के सभी नाटक भासकृत हैं अथवा नहीं यह भी प्रश्न विवेचित हुआ है। प्रायः अधिकांश विद्वानों की सम्मति है कि ये सभी नाटक एक ही नाटककार द्वारा प्रणीत हैं। इसके विषय में तर्कों का सारांश इस प्रकार है।

(१) चारुदत्त को छोड़कर सभी नाटक 'नान्द्यन्ते' से प्रारम्भ होते हैं।

(२) अङ्कों के मध्य में छोटे-छोटे प्रवेशकों तथा विष्कम्भकों का प्रयोग हुआ है।

(३) प्रस्तावना के स्थान पर सर्वत्र 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त है।

(४) सभी नाटकों के भरतवाक्यों (चारुदत्त तथा दूतघटोत्कच में भरत-वाक्य नहीं है) में महीं को सागर पर्यन्तां तथा हिमवद् विन्ध्यकुण्डलां कहकर राजसिंह से उसके शासन की कामना की गई है।

(५) सामान्यतः भरत-प्रतिपादित नाट्य सिद्धान्तों का यहाँ उल्लंघन दृष्टिगोचर होता है क्योंकि मृत्यु, युद्ध तथा दूर से पुकारने की प्रक्रिया इन नाटकों में रंगमञ्च पर प्रदर्शित की गई है।

(६) कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थों से भिन्न रूप में हुआ है जिन में 'आर्यपुत्र' का प्रयोग ऐसा ही है।

(७) सभी नाटकों में आकाश भाषित का प्रयोग हुआ है। कञ्चुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटकों में पुनरावृत्ति हुई है।

(८) 'प्रतिज्ञा' और 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम बादरायण है और स्वप्न, प्रतिज्ञा, अभिषेक और प्रतिमा में प्रतिहारी का नाम विजया है।

(९) कर्णभार को छोड़कर प्रायः सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना का प्रयोग हुआ है।

(१०) नाट्यनिर्देशों का अभाव या त्रुटिपूर्ण होना सामान्यतः सभी नाटकों में प्राप्त होता है।

(११) नाटककार के नाम का उल्लेख किसी भी नाटक में नहीं है और नाटक का नामोल्लेख केवल नाटक के अन्त में ही प्राप्त होता है।

(१२) नाटक में प्रयुक्त विविध छन्दों में साम्य है।

(१३) कई नाटकों में नवागन्तुक के द्वारा प्रभावशाली पद्धति में अप्रत्याशित उत्तर की उपलब्धि होती है।

अभिषेक नाटक में जब रावण-सीता से कहता है कि 'इन्द्रजित् ने राम लक्ष्मण का वध कर डाला अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ?" उसी समय राक्षस आकर कहता है कि 'लक्ष्मणेन...'

इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्ता में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कौन राजपुत्र वासवदत्ता के लिए उपयुक्त वर

होगा तभी कञ्चुकी सहसा आकर कहता है वत्सराज। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की आवृत्ति है, वाक्यों की भी आवृत्ति हुई है। कई नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग हुआ है। एक ही पात्र द्वारा या अन्य पात्रों द्वारा वाक्यांशों की पुनरावृत्ति हुई है, पाणिनीय नियमों का स्खलन हुआ है, भाषा तथा शैली में व्यापक साम्य है और समान सामाजिक स्थिति की प्रतीति होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नाटक एक ही नाटककार की लेखनी से प्रसूत हैं।[1]

* (भास का समय—भास-नाटक चक्र के प्रणेता, संस्कृत साहित्य के मान्य एवं प्रशस्त रचनाकार महाकवि भास के समय के विषय में नाना प्रकार के विचार और मत-मतान्तर उपलब्ध होते हैं। कोई विद्वान् तो इन्हें ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी का रचनाकार मानता है और कोई ईसा की दशम शताब्दी में इन्हें लाकर रख देता है और कोई-कोई विद्वान् तो इस भास नाटक-चक्र को कालिदास तथा बाणभट्ट आदि द्वारा निर्दिष्ट एवं प्रशंसित भास की रचना ही नहीं मानते अपितु इसे वे किसी केरलीय रचनाकार द्वारा भास के नाम से रचित मानते हैं। अतः इन कालक्रमों के मूल में यह प्रश्न प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहता है कि ये नाटक मूल भास रचित हैं या नहीं। कुछ लोग समग्र रूप से इन्हें भासकृत मानते हैं और कुछ लोग पूर्ण रूप से इन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं। कुछ विद्वान् मध्यमार्ग के अनुयायी हैं और कहते हैं कुछ नाटक तो मूल भास कृत हैं और कुछ उसकी अनुकृति पर रचे गये हैं। इन सब बातों पर विचार करने पर यही निश्चित होता है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं और उनका समय कालिदास के समय पर निर्भर करता है। कुछ भी हो भास निश्चित रूप से चौथी सदी ईसा से पूर्ववर्ती हैं।)

---

१. नाटकों की समानता के लिए द्रष्टव्य डा० ए० डी० पुसालकर का ग्रन्थ-भास ए स्टडी तथा ए० एस० पी० अय्यर का ग्रन्थ-भास।

कथासार

अविमारक नाटक छः अङ्कों में विभक्त है और नाटक के प्रकरण भेद के अन्तर्गत आता है। इसका नायक विष्णुसेन है, जो अवि नामक असुर को मारने से अविमारक नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णुसेन सौवीरराज का पुत्र है और उसकी माता का नाम सुदर्शना है। चण्डभार्गव नामक एक अत्यन्त क्रोधी ऋषि के शाप से एक वर्ष तक सौवीरराज सपरिवार चाण्डालत्व को प्राप्त हो गये थे और यह शापकाल उन्होंने अज्ञात रूप से व्यतीत किया।

१. प्रथम अङ्क में नान्दी के अन्त में मङ्गलाचरण के अनन्तर सपरिवार राजा प्रविष्ट होकर केतुमति दासी से महारानी को बुलवाते हैं। महारानी आनेपर अत्यन्त प्रसन्न दिखाई पडती हैं। राजा उनसे उनकी प्रसन्नता का कारण पूछते हैं तो रानी कहती है कि महाराज ने बताया है कि कुरङ्गी के वरण के लिये दूत आया है अतः मैं शीघ्र ही जामाता का दर्शन करूँगी। कुन्तिभोज जामातृ-वरण में पर्याप्त सोच-विचार कर निर्णय लेने का औचित्य-प्रतिपादन करते हैं। उसी समय गम्भीर ध्वनि सुनायी पड़ती है और कौञ्जायन नामक मन्त्री आकर सूचना देता है कि—वह महाराजकुमारी के साथ उद्यान में गया था और उद्यान-विहार के अनन्तर लौटते समय एक मदमत्त गजराज मार्ग में उत्पात करने लगा। उस समय सब ओर हाहाकार होने लगा, कुछ लोग मर गये तदनन्तर वह हाथी सहसा महाराजकुमारी की सवारी पर टूट पड़ा। उसी समय एक अनुपम सौन्दर्यशाली, वीर एवं विनम्र युवक ने आकर उसे परास्त कर महाराजकुमारी कुरङ्गी को उस विपत्ति से मुक्त कर दिया। थोड़ी देर बाद भूतिक नामक मंत्री ने उस कथा को सुनाकर महाराजकुमारी के युवक द्वारा त्राण की कथा की पुष्टि की। इसे सुनकर राजा कुन्तिभोज उस युवक के पराक्रम और परदुःखकातरता से अत्यन्त प्रभावित होते हैं और उस युवक के कुल-शीलादि का पता लगाने का आदेश देते है क्योंकि कौञ्जायन नामक मंत्री ने सूचना दी थी कि वह अपने को अन्त्यज कहता है। भूतिक

का मत है कि रूप सद्गुणादि के आधार पर वह सत्कुलोत्पन्न है। वह अपने को छिपा रहा है अतः अन्त्यज बताता है। राजा मन्त्रियों से पूछते हैं कि काशिराज के दूत को क्या उत्तर दिया जाय। भूतिक और कौञ्जायन का मत है कि सौवीरराज ने अपने पुत्र के निमित्त पहले दूत भेजा था। उस समय कन्या छोटी है यह कहकर टाल दिया गया था। अब काशिराज का दूत आया है अतः सोच-विचार कर निर्णय करना चाहिये। राजा कहते हैं कि सौवीरराज का पुनः कुछ पता नहीं लगा। सौवीरराज महारानी के भाई हैं अतः उन्हें प्राथमिकता देनी चाहिये ऐसा कौञ्जायन का विचार है। भूतिक बताता है कि सौवीरराज सारा राज्यकार्य मन्त्रियों में न्यस्त कर लापता हैं। काशिराज के दूत का इस समय प्रत्याख्यान न किया जाय ऐसा निश्चय होता है।

द्वितीय अङ्क में विदूषक आकर कुरङ्गी पर आसक्त अविमारक की मनोदशा का वर्णन करता है। इसी बीच चेटी और विदूषक में कुछ विनोदपूर्ण बाते होती हैं और चेटी चली जाती है। तब अविमारक आकर कुरङ्गी पर अपनी आसक्ति का वर्णन करता है। वह कुरङ्गी के रूप-यौवन पर इतना अधिक आसक्त है कि उसे भूख-प्यास नहीं लगती है अनिद्रा की स्थिति हो गयी है, शरीर पीतवर्ण का हो गया है। कुरङ्गी की भी वैसी ही दशा है। यह दशा दोनों की हस्तिसंभ्रम के दिन से ही है। धात्री और नलिनिका मिलकर कुरङ्गी एवं अविमारक के मिलने की योजना बनाते हैं और 'नलिनिका' अविमारक को इसका निमंत्रण दे आती हैं। अविमारक इस निमन्त्रण से अत्यन्त प्रसन्न होता है और पराक्रम का आश्रय लेकर कन्या के अन्तःपुर में प्रवेश का निश्चय करता है।

तृतीय अङ्क में नलिनिका अविमारक के अन्तःपुर में प्रवेश की व्यवस्था कर देती है। अविमारक रक्षि-पुरुषों के कड़े पहरे के होने पर भी अकेले कन्यान्तःपुर में प्रवेश कर जाता है। कुरङ्गी उसे पाकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित एवं प्रसन्न होती हैं। दोनों सानन्द कालयापन करने लगते हैं।

चतुर्थ अङ्क में ज्ञात होता है कि वर्ष पर्यन्त कन्यान्तःपुर में अविमारक के निवास के बाद यह वृत्तान्त कुन्तिभोज को ज्ञात हो जाता है। कुरङ्गी

लज्जा और भय से संत्रस्त हो जाती है। उसका स्नेह उसी प्रकार का उद्दाम है। अविमारक पकड़े जाने के भय से निकल भागता है। किन्तु प्रियतमा के वियोग के कष्ट को सहन करने में वह असमर्थ है। वह इतना दुःखी और विषण्ण है कि आत्महत्या का निश्चय करता है। सर्वप्रथम वह जलमें डूबकर मरना चाहता है पर जल में डूबकर मरने को धर्म विरुद्ध मानकर वह दावानल में प्रविष्ट होकर मृत्यु का वरण करना चाहता है। वह अग्नि में प्रवेश कर जाता है पर अग्नि शीतल होकर मलय चन्दन के लेप की भाँति उसे प्रतीत होता है। अन्त में वह मरुत् प्रपात (पर्वत से कूदकर आत्महत्या) करना चाहता है। इस उद्देश्य से वह पर्वत पर चढ़ जाता है परन्तु उसी समय एक सपत्नीक विद्याधर वहाँ आ जाता है। उसकी रूप संपत्ति से प्रभावित विद्याधर उसकी विरह-वेदना का ज्ञान प्राप्त करता है। विद्याधर उसके कष्ट से द्रवित हो जाता है और उसे एक दिव्य अङ्गुलीयक (अंगूठी) प्रदान करता है जो दाहिने हाथ में धारण करने पर अदृश्य बना देती है और वाम हस्त में धारण करने पर पुनः दृश्य कर देती है। उस अङ्गुलीयक को प्राप्त कर वह पुनः अपनी प्रियतमा कुरङ्गी से मिलने को तैयार हो जाता है। वह कुन्तिभोज की नगरी में लौट आता है और वहीं उसकी विदूषक से भेंट हो जाती है और वह सारा वृत्तान्त विदूषक को बताता है।

5. पञ्चम अङ्क में ज्ञात होता है कि अविमारक के वियोग में कुरङ्गी की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी है। वह सभी शृङ्गारों का परित्याग कर बैठी है। वह सखियों की दृष्टि बचाकर आत्महत्या भी करना चाहती है उसी बीच विदूषक के साथ वह अङ्गुलीयक की सहायता से वहाँ पहुँच जाता है। दोनों मिलकर परम प्रसन्न होते हैं। परिचारिकायें विदूषक को वहाँ से हटा ले जाती हैं। दोनों का समय पुनः आनन्द से बीतने लगता है।

6. षष्ठ अङ्क में सौवीरराज का सपुत्र पता न चलने पर कुन्तिभोज काशिराज के पुत्र जयवर्मा से कुरङ्गी के विवाह का निश्चय करते हैं। एतदर्थ उन्होंने जयवर्मा को उसकी माता सुदर्शना के साथ अपने यहां बुला लिया है। विवाह की सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। सौवीरराज भी प्रकट होकर आ

जाते हैं। कुन्तिभोज और सौवीरराज मिलकर परम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। पुत्र-वियोग के कारण सौवीरराज अत्यन्त दुःखी हैं। जब कुन्तिभोज उनके दुःख का कारण पूछते हैं तो पुत्र का पता न चलने का वृत्तान्त बताते हैं। सौवीरराज चण्डभार्गव के शाप के कारण पत्नी और पुत्र के साथ अज्ञातवास कर रहे थे तभी से अविरूपधारी असुर का संहारक पुत्र गायब है। सौवीरराज के पुत्र की वीरता को सुनकर कुन्तिभोज को विश्वास हो जाता है कि हस्तिसंभ्रम के दिन कुरङ्गी की रक्षा करने वाला अविमारक ही था। कुरङ्गी का विवाह जयवर्मा से संपन्न होने ही वाला था कि उसी समय देवर्षि नारद वहाँ उपस्थित हो गये। देवर्षि नारद ने बताया कि अविमारक यहीं पर कुन्तिभोज के अन्तःपुर में कुरङ्गी के साथ है। दोनों का विवाह भी गान्धर्व पद्धति से हो गया। उन्होंने सुदर्शना से यह भी रहस्य बता दिया कि अविमारक तुम्हारा ही पुत्र है जो अग्निदेव से उत्पन्न है और तुम्हीं ने उसे अपनी भगिनी सुचेतना को जन्मकाल में ही दे दिया था क्योंकि उसका पुत्र प्रसवकाल में ही मृत हो गया था। सुचेतना सौवीरराज की पत्नी है। यह वृतान्त जानकर सुदर्शना संतुष्ट हो जाती है क्योंकि वह अपने पुत्र जयवर्मा को कुरङ्गी के साथ विवाह के लिये लेकर आयी है। कुरङ्गी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ जयवर्मा का विवाह संपन्न हो जाता है। इस प्रकार सौवीरराज, काशिराज और कुन्तिभोज सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

IV

प्रमुख पात्रों

चरित्राङ्कन

चरित्र-परिचय

अविमारक—यह इस नाटक का नायक है। यह सौवीरराज का पुत्र है। वस्तुतः यह अग्निदेव द्वारा सुदर्शना में उत्पन्न हुआ था पर सुदर्शना ने इसे अपनी छोटी बहन सुचेतना, जो सौवीरराज की पत्नी है, को उत्पन्न होते ही दे दिया था और इस प्रकार यह सौवीरराज के पुत्र के रूप में प्रख्यात हुआ। इसका वास्तविक नाम विष्णुसेन था पर अविरूपधारी असुर को मारने के कारण यह अविमारक नाम से लोक-प्रसिद्ध हुआ।

अविमारक सुरूप, आकर्षक, अनहंकारी, नम्र, सुकुमार, आत्मविश्वासी, अपूर्व साहसी एवं बल-पराक्रम से संपन्न है। उसका सौम्यरूप देवतुल्य, ब्राह्मणतुल्य सुसंस्कृत वाणी तथा क्षत्रिय के समान बल एवं तेज हैं—

दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च। (१।७)

उसके रूप को देखकर विद्याधर भी प्रभावित हो जाता है और कहता है कि यह मन्त्रभ्रष्ट विद्याधर ही है क्योंकि ऐसा रूप अन्यत्र कहाँ हो सकता है। वीरता भी उसमें पराकोटि की है। बाल्यकाल में ही दुर्दान्त असुर अवि का अकेले वध कर दिया था। कुन्तिभोज की नगरी में हस्ति-संभ्रम के अवसर पर अकेले ही उस मत्तगज को पकड़कर कुरङ्गी की सवारी से पृथक् कर उसे हस्तिशाला में डाल दिया। इस घटना में उसके बल-पराक्रम के साथ ही उसकी परदुःखकातरता भी स्पष्टतः द्योतित होती है। जब कुन्तिभोज के अन्तःपुर में जाने का अवसर उपस्थित होता है तो वह एकाकी अपने पराक्रम का आश्रय लेकर रक्षिपुरुषों से घिरे अन्तःपुर में प्रवेश कर जाता है। शौर्य-पराक्रम के साथ ही साथ उसका प्रेम भी एकनिष्ठ है। कुरङ्गी में आसक्त होने पर वह शरीर की चिन्ता छोड़ देता है। कुरङ्गी से पृथक् होने पर वह प्राणत्याग करने में नहीं हिचकता। संक्षेप में अविमारक अनुपम रूप-सौन्दर्य, बल-पराक्रम, तेज से संपन्न पुरुष है। वह परदुःखकातर और प्रेमी व्यक्ति है। नायक के सभी गुणों से वह संपन्न है।

कुरङ्गी—वैरन्त्य नगर के स्वामी राजा कुन्तिभोज की कन्या इस नाटक की नायिका है। वह अनुपम सौन्दर्यशालिनी है। उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अविमारक कहता है—

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः
मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम्।
भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः
कथं नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत्॥ २।६

उर-प्रदेश स्तन के भार से अलस हैं और जघनभार से शरीर खिन्न है। मुख नेत्रों को आकर्षक है, विम्व तुल्य अधर स्वभावतः लाल है। यदि भय में भी शरीर नेत्रों को ऐसा लुभावना लग रहता है तो सुरतान्तर में कैसा हाव-भाव युक्त होगा।

हस्तिसंभ्रण के समय ही अविमारक उस मोहक आकृति पर आकृष्ट हो गया और उसका यह आकर्षण अनुदिन वृद्धिगत ही होता रहा।

कुरङ्गी ने प्रेम के वश होकर अपने हृदय को सर्वात्मना अविमारक को समर्पित कर दिया था। यह नैसर्गिक प्रेम प्रथम दृष्टि में ही हो गया और उसमें कभी न्यूनता नहीं आयी। कुरङ्गी में स्त्री-सुलभ लज्जा, भयादि गुणों की भी अवस्थिति तत्तद् स्थलों पर द्रष्टव्य है। प्रथमतः तो भ्रम से अविमारक का आलिङ्गन करने पर चरित्रपतन की आशंका से घवड़ाती है पर बाद में यह स्थिति जाती रहती है। दयादाक्षिण्यादि गुण भी उसमें पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं। उसकी परिचारिकायें उसकी मनोनुकूल परिस्थितियों को जुटाने में प्राण-पण से संलग्न हैं जिससे उसके दान-दाक्षिण्यादि गुणों की प्रतीति होती है।

(3) **विदूषक**—इसका नाम संतुष्ट है। वह हास्योत्पादक और पेटू है। अविमारक उसके स्वभाव का वर्णन करता है—

गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः
शोके गुरुः साहसिकः परेषु।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्
द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥४।२१

यह गोष्ठियों में तो हास्योत्पादक है, युद्ध में वीर है, दुःख-शोक में गुरुतुल्य है, शत्रुओं में साहसी है। उसकी विभिन्न उक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि वह निरक्षर भट्टाचार्य और भोजनभट्ट है। पर वस्तुतः इसके ये रूप हास्योत्पादन के लिए ही प्रतीत होते हैं यथार्थ में वह नायक का परम हित-संपादक, मनोविनोदकारक और दुःख-सुख में सतत सहचर है।

(4) **धात्री तथा नलिनिका**—ये कुरङ्गी की परिचारिकायें हैं और सतत

उसके सुख और मनोविनोद का उपाय करती रहती हैं। ये दोनों वाक्पटु और उचित समय पर उचित कार्य करने में सिद्धहस्त हैं। अविमारक और कुरङ्गी को मिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य ये संपन्न कराती है। दूसरी बार अविमारक और कुरङ्गी को मिलाकर ये विदूषक को वहाँ से हटा ले जाती हैं। इनमें उनकी चतुरता और बुद्धिकौटिल्य स्पष्ट है। वे दोनों कुरङ्गी के सुख में सुखी और उसके दुःख में दुःखी रहती है।

5 **भूतिक और कौञ्जायन**—ये वैरन्त्य नगर के स्वामी कुन्तिभोज के अमात्य है। ये अपने दायित्व के प्रति सदैव सचेष्ट हैं। कौञ्जायन ने अमात्यों के दायित्व का इस पद्य में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दृश्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥१।५

अर्थात् यदि कार्यसिद्ध होता है तो लोग इसे राजा की सामर्थ्य समझते हैं और असफलता में मन्त्रियों का दोष मानते हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों में मंत्री कार्य करते हैं।

समीक्षा

अविमारक एक प्रकरण है जिसकी विषयवस्तु कविकल्पना-प्रसूत है। इसमें सौवीरराज के पुत्र अविमारक और वैरन्त्य नगराधीश्वर कुन्तिभोज की कन्या कुरङ्गी का प्रणय वर्णित है। यह प्रणय हस्तिसंभ्रम के दिन से पूर्व राग के रूप में उद्भूत होता है और तभी से प्रगाढ़ आसक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। छिपे-छिपे मिलने का यह प्रेम कथानक अन्त में दोनो के परिणय में परिवर्तित हो जाता है। घटना-क्रम का संयोजन इस कौशल और सिद्धहस्तता से किया गया है कि अन्ततः सारी विपरीत परिस्थितियाँ अनुकूल बन बैठती है और दोनों का विवाह संपन्न होता है। कल्पनाप्रसूत इस कथा की रचना, विभिन्न घात-प्रतिघात और विषम

परिस्थितियों का सर्जना और सभी की सुखद परिणति भास कीमहती सफलता है। कुरङ्गी का बिवाह काशिराज के पुत्र से होने जा ही रहा था कि सहसा देवर्षि नारद प्रकट हो गये। उन्होंने कुछ रहस्य की बातें वतायी। काशिराज की स्त्री का परितोष कर दिया और कुरङ्गी का विवाह अविमारक से हो गया। कथानक का यह आकस्मिक रूप बड़ा ही हृदयहारी हैं—

भास अपने कथनोपकथनों के लिए प्रसिद्ध हैं। वे लघु-वाक्यों एवं सरल शब्दों के माध्यम से वे दर्शक और पाठक का हृदयावर्जन करते हैं। इनके कथनोपकथनों में इतनी स्वाभाविकता होती है कि अभिनय काल में वे सद्यः दर्शक के चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। अविमारक में भी भास का यह गुण वड़ी विस्पष्टता से परिलक्षित होता है। यह कथनोकथनों का वैशिष्टय सभी संवादों में वर्तमान है।

भास की भाषा सरल है और भास कठिन शब्दों के संग्रह के पक्षपाती नहीं है। फलतः उनके नाटक रङ्गमञ्च पर सरलता से अभिनीत होते हैं। अविमारक की भाषा उनकी इस विशेषता से परिपूर्ण हैं। सरल शब्दों के माध्यम से नाटककार अपनी बात को सद्यः एवं सीधे दर्शक तक पहुँचा देता है।

नाटक का मुख्य रस शृङ्गार है। नाटक के आदि से अन्त तक शृङ्गार की सत्ता ओत-प्रोत है। वीच-वीच से प्रकरणवशात् अन्य रसों का भी विनियोजन नाटककार ने किया है। किन्तु वे सभी रस अङ्ग या सहायक ही हैं, प्रधान या अङ्गी तो शृङ्गार ही हैं।

अविमारक में काव्य-कौशल का नाटककार ने सम्यक् उपयोग किया है। मनुष्य की नाना सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवृत्तियों, विविध कालोपयोगी सूक्तियों, प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण आदि सभी काव्यगत विशेषतायें इस नाटक में उपलब्ध है। बहुत ऊपर से देखने पर पृथ्वी की विशालतम वस्तुयें भी कितनी लघु दिखाई पड़ती हैं इसका दिग्दर्शन विद्याधर के इस कथन से होता है:

शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमाः
वृक्षाः शैवलसंनिभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।
सीमान्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च विन्दूपमाः
दृष्टं वक्रमिवाभिभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥४।११

पहाड़ हस्तिशावक के समान, समुद्र क्रीडावापी के समान और वृक्ष शैवाल-सदृश लग रहे हैं। पृथ्वीतल का निम्नभाग अदृश्य हो रहा है। नदियाँ सीमान्त की भाँति प्रतीत हो रही हैं। बड़े-बड़े प्रासाद बिन्दु-सदृश लग रहे हैं। यह संपूर्ण जगत् संक्षिप्त रूप में लग रहा है और दृश्य टेढ़े प्रतीत हो रहे हैं।

रात्रि के घोर अन्धकार का वर्णन कवि कितनी भाव-प्रवणता से कर रहा है—

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीयः इवायमन्धकारः ॥३।४

मार्ग-रूपी नदियाँ मानो अन्धकार (रूपीजल) को बहा रही है। प्रासादों की पंक्ति कूल (किनारे) जैसे प्रतीत हो रहे हैं। घोर अन्धकार में चारों दिशायें डूब गयी हैं। यह अन्धकार मानो नाव से पार किया जायेगा।

कवि का घोर तामिस्र का यह वर्णन नितरां हृदयावर्जक है।

अर्धरात्रि का यह दूसरा वर्णन भी कितना विशिष्ट एवं प्रभावोत्पादक है।

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजना ध्यानं प्रविष्टा इव ।
प्रग्रस्ता इव संचितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगाः
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् ॥

इस समय सारी प्रजा गर्भस्थ शिशु की भाँति मोह में पड़ी है (मुग्ध है)। प्रासादों में सभी सुख से सोये हैं अतः नीरवता है। मानो प्रासाद ध्यानमग्न हों। एकत्रित अन्धकार से ढँके वृक्ष स्पर्श से ज्ञात होते हैं। जगत् प्रच्छन्नरूप वाला हो गया है मानो अन्तर्धान हो रहा है।

संध्याकाल का वर्णन नाटककार ने निम्नोद्धृत पद्यों में बड़ा ही मार्मिक किया है। इन पद्यों को देखते ही कवि की सूक्ष्मेक्षिकां का स्पष्ट अवभास होता है।

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यत्यार्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥२।१२

सन्ध्याकाल हो गया है। पूर्व दिशा अन्धकार से व्याप्त हो गई है और पश्चिम दिशा में संध्याकालीन अरुणिमा (ललाई) व्याप्त है। इस प्रकार अन्तरिक्ष दो भागो में विभक्त हो गया है और भगवान् शङ्कर के अर्धनारीश्वर रूप की शोभा को प्राप्त कर रहा है।

आकाश में पूर्व दिशा में तो अन्धकार व्याप्त हो रहा है और पश्चिम में सन्ध्याकाल की अरुणिमा से कुछ प्रकाश है। प्रतीत होता है कि अन्तरिक्ष भगवान् शङ्कर का अर्धनारीश्वर रूप है। कैसी सटीक उपमा है। भगवान् शङ्कर व्योमकेश और जीमूतकेतु तो हैं ही। यह कवि की कल्पना प्रकृति के सूक्ष्मेक्षण का प्रसाद है।

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥२।१३

मनुष्य लोक का सूर्यरूप तिलक हट गया है और तारागों की माला फैल गयी है। धूप नष्ट हो गयी है, मृदु मनोहर शीतल वायु प्रवाहित हो

रही है। कामुक जन (अपने-अपने संकेत-स्थानों में) छिप गये हैं। शूर (रक्षि-) पुरुष विचरण कर रहे हैं। मानो यह मनुष्य लोक दूसरे वेष को धारण कर रहा है।

यह नाटक कवि की सूक्तियों से भी भरा पड़ा है जो कवि के जीवन, जगत्, शास्त्र और व्यवहार ज्ञान का पूर्ण परिचायक है। संक्षेप में अविमारक भास की एक उत्तम नाटच कृति है।

भासप्रशस्तयः

(१)

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ बाणभट्टः हर्षचरित १।१५

(२)

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ राजशेखरः

(३)

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥ दण्डी, अवन्तिसुन्दरी

(४)

भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

(५)

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।—कालिदास, विक्रमोर्वशीयम ।

(६)

भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धने च बन्धे हरिचन्द्रे च आनन्दे ॥ गउडवहो

पात्रपरिचयः

(अ) पुरुषपात्राणि—

१. राजा कुन्तिभोजः—कुरङ्गयाः पिता
२. कौञ्जायनः—कुन्तिभोजस्यामात्यः
३. भूतिकः—कुन्तिभोजस्यामात्यः
४. भटः—कुन्तिभोजस्य जयसेननामा प्रतिहारी
५. अविमारकः—सौवीरराजस्य पुत्रः विष्णुसेननामा
६. विदूषकः—अविमारकस्य संतुष्टनामा सखा
७. सौवीरराजः—अविमारकस्य पिता
८. नारदः—देवर्षिः
९. विद्याधरः—अविमारकाय अंगुलीयकप्रदानकर्ता
१०. जयवर्मा—काशिराजस्य तनयः

(ब) स्त्री-पात्राणि—

१. देवी—कुन्तिभोजस्य महिषी, कुरङ्ग्या माता
२. कुरङ्गी—कुन्तिभोजस्य कन्या, अविमारकस्य प्रेयसी
३. सुदर्शना—अविमारकस्य जननी, काशिराजपत्नी
४. प्रतीहारी—कुन्तिभोजस्य द्वाररक्षिका
५. चेटी—चन्द्रिकानाम्नी कुरङ्गयाः सेविका
६. धात्री—कुरङ्गयाः पोषणकर्त्री जयदा नाम्नी
७. नलिनिका, ८. मागधिका, ९. विलासिनी — कुरङ्गयाः सेविकाः सहचारिण्यश्च
१० वसुमित्रा, ११. हरिणिका — देव्याश्चेट्यौ
१२. सौदामिनी—विद्याधरस्य प्रेयसी
१३. सुचेतना—सौवीराजस्य पत्नी
१४. सुमित्रा—जयवर्मणः पत्नी कुरङ्गयाः भगिनी

महाकविभासप्रणीतम्

अविमारकम्

'गङ्गा' संस्कृतहिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उत्क्षिप्तां सानुकम्पं सलिलनिधिजलादेकदंष्ट्राग्ररूढा-
माक्रान्तामाजिमध्ये निहतदितिसुतामेकपादावधूताम् ।

व्यापृण्वानो विश्वतो विश्वरूपः, कश्चिद् देवः सच्चिदानरूपः ।
एतत्कृत्ये वृत्तये चेतसो मे निष्प्रत्यूहं जायतां हृन्निविष्टः ।।

अन्वयः—सलिलनिधिजलात् सानुकम्पम् उत्क्षिप्ताम्, एकदंष्ट्राग्ररूढाम्, आक्रान्ताम् आजिमध्ये निहतदितिसुताम्, एकपादावधूताम्, प्रीतिपूर्वम् सम्भुक्ताम्, स्वभुजवशगताम् एकचक्राभिगुप्ताम् उच्छ्रितैकातपत्राम् वसुधाम् श्रीमान् नारायणः ते प्रदिशतु ।

व्याख्या:—उत्क्षिप्तामिति—सलिलनिधिजलात् = वारिधिपयसः, सानुकम्पम् = सकृपम् । उत्क्षिप्ताम् = उत्थापिताम् एकदंष्ट्राग्रलग्नाम् = केवलं एकदशनसंसक्ताम् (वाराहावतारे), आक्रान्ताम् = विक्रम्याधीनीकृताम् , आजिमध्ये = संग्रामे, निहतदितिसुताम् = विनाशितदैत्याम् (नृसिंहावतारे),

---

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—भगवान् ने जिस पृथिवी को समुद्र के जल से अपने वराहावतार में एक दाँत पर उठाया, (नृसिंहावतार में हिरण्यकश्यपु) दैत्य को

सम्भुक्तां प्रीतिपूर्वं स्वभुजवशगतामेकचक्राभिगुप्तां
श्रीमान् नारायणस्ते प्रदिशतु वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम् ॥१॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअम्हि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! तव वदनजनितकौतूहलेन स्मितेन निवेदित इवान्तर्गतो भावः । ननु किञ्चिद् वक्तुकामासि ।

एकपादावधूताम् = एकपदन्यासकम्पिताम्, (वामनावतारे), प्रीतिपूर्वम् = सानुरागम् , सम्भुक्ताम् = सम्पालिताम् । (रामावतारे) । स्वभुजवशगताम् = आत्मबाहुबलवशगां एकचक्राभिगुप्ताम्=एकलसहस्रारचक्ररक्षिताम् । उच्छ्रितैकातपत्राम् = उन्नतैकच्छत्राम् , (अनन्यशासनामिति भावः), वसुधाम् = भूमिम् , श्रीमान् नारायणः = सर्वावतारबीजम् श्रीविष्णुः, ते = तुभ्यम्, प्रदिशतु = ददातु । (स्रग्धरावृत्तम्) म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्, इति तल्लक्षणात् ।

वदनजनितकौतूहलेन = तव मुखं कुतुकभावसमुल्लसितं कुर्वता ।

युद्ध में मारकर उसकी अधीनता से मुक्त किया, वामनावतार में एक पैर से नाप लिया और रामावतार में प्रेमपूर्वक पालन किया तथा अपने भुजबल से उसे अधीन कर एक सुदर्शन चक्र से रक्षित किया ऐसी अनन्यशासना (एकच्छत्रा) पृथ्वी भगवान् नारायण आपको दें । यह स्रग्धरा छन्द में है ॥१॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्य्ये ! इधर तो आना ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य्य ! यह हूँ ।

सूत्रधार—हे प्रिये ! तुम्हारे मुख में कौतूहल के भाव को पैदा करने

नटी—को एत्थ विम्हओ अय्यो भावञ्ञो त्ति। [कोऽत्र विस्मय आर्यो भावज्ञ इति।]

सूत्रधारः—तेन हि स्वैरमभिधीयताम्।

नटी—इच्छेमि अय्येण सह उय्याणं गन्तुं। अत्थि मे तहिं इत्थिआकरणीअं णिअमकय्यं। [इच्छाम्यार्येण सहोद्यानं गन्तुम्। अस्ति मे तत्र स्त्रीकरणीयं नियमकार्यम्।]

(नेपथ्ये)

भूतिक ! त्वमप्युद्यानं गच्छ कुरङ्गीरक्षणार्थम्। मदभावस्थो ह्यञ्जनगिरिः।

सूत्रधारः—आर्ये ! ननु भवत्या श्रुतम्-उद्यानं गता राजपुत्रीति। तस्मात् सम्प्रति सर्वतः परिगुप्तानि भवन्त्युद्यानानि। प्रतिनिवृत्तायां राजसुतायां स्वैरं गमिष्यावः।

स्मितेन = मन्दहास्येन। अन्तर्गतः = चित्तवर्त्ती। भावः = अभिप्रायः। निवेदित इव = वचनं विनाऽपि सूचित इव। किञ्चिद् वक्तुकामा असि = किञ्चिद् विवक्षसि।

वाले इस मुसकान ने ही तुम्हारे मनोगत भाव को सूचित कर दिया है कि तुम कुछ कहना चाहती हो।

नटी—आर्य्य ! आप भाव को जानने वाले हैं इसमें क्या आश्चर्य है ?

सूत्रधार—तो स्वच्छन्द कहो।

नटी—मैं आपके साथ बगीचे में जाना चाहती हूँ। वहाँ हमको स्त्रियोचित कुछ नियम कार्य करना है।

(नेपथ्य में)

हे भूतिक ! तुम भी बाग में कुरङ्गी की रक्षा के लिये जाओ। क्योंकि आजकल अञ्जन गिरि (नामक हाथी) मादक भाव में है।

सूत्रधार—आर्य्ये ! सुना तुमने। राजकुमारी उद्यान में गई हैं। अतः इस समय उद्यान में कड़ा पहरा होगा। राजकुमारी के वहाँ से लौट जाने पर हम लोग वहाँ स्वच्छन्द चलेंगे।

नटी—जं अय्यो आणवेदि । [यदार्यं आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति राजा सपरिवारः)

राजा—

इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसन्नाः
प्रज्ञापिता भयरसं समदा नरेन्द्राः ।
एवंविधस्य च न मेऽस्ति मनःप्रहर्षः
कन्या पितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् ॥ २ ॥

अन्वयः—मखाः इष्टाः, द्विजवराः च मयि प्रसन्नाः समदाः नरेन्द्राः (मया) भयरसम् प्रज्ञापिताः एवं विधस्य च मे मनः प्रहर्षः न अस्ति हि कन्या पितुः सततम् बहु चिन्तनीयम् ।

इष्टा इति—मखाः = यज्ञाः । इष्टाः = विहिताः । द्विजवराः = ब्राह्मणवर्य्याः । च = अपि मयि प्रसन्नाः = सविनयं यथेष्टदक्षिणादानादिना नितरां प्रसन्नाः । समदाः = अहंमन्याः नरेन्द्राः = प्रतिपक्षिणो राजानः भयरसम् = भीतिभावम् , प्रज्ञापिताः = विशेषेण बोधिताः एवंविधस्य = कृतधर्मकार्य्यस्य पार्ष्णिप्रतिपक्षरहितस्यापि । मे = मम कुन्तिभोजस्य,

---

नटी—आपकी जो आज्ञा ।

(ऐसा कह कर दोनों चले जाते हैं)

(स्थापना)

(तदनन्तर सपरिपार राजा का प्रवेश)

राजा—मैंने यज्ञ किया, उचित दक्षिणा द्वारा सत्कार से, एवं विनय से ब्राह्मणगण भी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। अपने प्रतिपक्षी अभिमानी राजाओं को भी भयभीत बना दिया (बलगर्वित) इस प्रकार श्रेय (पारलौकिक सत्कर्म) प्रेय (ऐहिकसुख) सुखों से सम्पन्न होता हुआ भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है क्योंकि अविवाहित कन्या के पिता का सुख कहाँ ? उसे तो निरन्तर [illegible] चिन्ता रहती है ॥ २ ॥

केतुमति ! गच्छ देवीमानय ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति सपरिवारा देवी)

देवी—जेदु महाराओ । [जयतु महाराजः ।]

राजा—देवि ! नित्यप्रसन्नमपि ते मुखमद्यातिप्रसन्नमिव । किङ्कृतोऽयं प्रहर्षः ।

देवी—णं महाराएण कहिदं—कुरङ्गीणिमित्तं दुदो आअदत्ति । ता अइरेण जामादुअं पेक्खामि त्ति । [ननु महाराजेन कथितं—कुरङ्गीनिमित्तं दूत आगत इति । तदचिरेण जामातरं प्रेक्ष इति ।]

राजा—तादृशमप्यस्ति । न तु तावत् क्रियते निश्चयः । एह्युपविश ।

मनःप्रहर्षः = चित्ताह्लाद; न अस्ति = न वर्तते । हि = यतः, कन्यापितुः = अनूढकन्याजनकस्य सततम् = निरन्तरम् । वहु = अनेकविधम्, चिन्तनीयम् = चिन्ताविषयः विचारणीयमिति यावत् । उक्तञ्च—

पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः ।
दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा न वेति कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥

भावः—श्रेयस्वी कृतधर्माः प्रेयस्वी परिपन्थिरहितोऽपि ।
कन्याविवाहचिन्ता-सक्ततया नास्मि प्रीतात्मा ॥

केतुमति ! आओ और महारानी को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा (जाती है) ।

(उसके बाद परिवार सहित देवी का प्रवेश)

देवी—जय हो महाराज की ।

राजा—देवि ! सदा प्रसन्न रहने वाले भी तेरे मुख में आज अधिक प्रसन्नता दिखाई दे रही है । किस कारण से यह प्रसन्नता है ?

देवी—महाराज ने ही तो कहा है कि कुरङ्गी के लिये दूत आया है । इसलिये शीघ्र ही दामाद को देखूंगी ।

राजा—ऐसी बात तो है । परन्तु अभी निश्चय नहीं है । आओ बैठो ।

देवी—जं महाराओ आणवेदि। [यद् महाराज आज्ञापयति।]

(उपविशति।)

राजा—देवि ! विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति। कुतः,

जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव॥ ३॥

अन्वयः—जामातृसम्पत्तिम् अचिन्तयित्वा, पित्रा स्वमनोऽभिलाषात् दत्ता तु नारी क्षुब्धजला नदी कूलद्वयम् इव मदेन कुलद्वयम् हन्ति।

व्याख्या—जामातृसम्पत्तिम् जामातुः सम्पत्तिस्तां जामातृसम्पत्तिं = कन्याग्रहीतुः वयोधनबलादिसम्पन्नताम्, अचिन्तयित्वा = अविचार्य्य, पित्रा = जनकेन, स्वमनोऽनुकूलम् = स्वचित्तानुरोधेन, दत्ता = वितीर्णा तु नारी = महिला (कन्या) क्षुब्धजला = वार्षिकजलोपगतमहावेगा नदी = सरित्, कूलद्वयम् = उभयतटम्, इव = यथा, मदेन = तारुण्यजनितावेशेन, कुलद्वयम् = पितृकुलं श्वशुरकुलञ्च, हन्ति = नाशयति। उक्तञ्च—

कुलञ्च, शीलञ्च सनाथतां च, विद्यां च वित्तञ्च वपुर्वयश्च।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

उपजातिवृत्तम्। उपमालंकारः—

भावः—स्वसम्पदो न्यूनधनादिकाय, कन्या प्रदत्ता स्वधिया मदेन।
कुलद्वयं हन्ति नदी यथैव कूलद्वयं बद्धरया स्वकीयम्॥

देवी—जो महाराज का आदेश। (बैठती है।)

राजा—देवि ! विवाह बहुत विचार कर करना होता है। क्योंकि—

जामाता की योग्यता सम्पत्ति का बिना विचार किये यदि स्वेच्छा से किसी को कन्या दे दी जाय, तो वह अपने तारुण्य के मद से पिता तथा श्वसुर दोनों के कुल को उसी तरह नष्ट कर देती है जैसे वर्षा के जल से वेगवती नदी अपने दोनों तटों को नष्ट कर देती है॥ ३॥

अये शब्द इव । बहुभिः कारणैर्भवितव्यम् । अयं हि,

बहुत्वाद् दूरसंस्थोऽपि समीप इव वर्तते ।
सत्सु हेतुसहस्रेषु कुरङ्ग्यां शङ्कते मतिः ॥ ४ ॥

देवी—हं उय्याणं गआ मे दुहिआ । [हम् उद्यानं गता मे दुहिता ।]

राजा—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । एष आर्यकौञ्जायनो निवेदयितुमागतः ।

अये इति—शब्द इव श्रूयते इति शेषः । अस्य शब्दस्य बहूनि कारणानि सम्भवन्ति । अयं हि = शब्दो हि—

अन्वयः—दूरस्थः अपि बहुत्वात् समीपे इव वर्तते, हेतुसहस्रेषु सत्सु मतिः कुरङ्ग्याम् शङ्कते ।

व्याख्या—दूरस्थः = दूरदेशवर्त्ती अपि, बहुत्वात् = आधिक्यात्, समीपे= निकटे इव, वर्तते = अस्ति, हेतुसहस्रेषु = अनेककारणेषु, सत्सु = सम्भावितेषु मतिः = मम बुद्धिः, कुरङ्ग्यां = स्वतनयां प्रति शङ्कते = शङ्काकुला भवति । 'स्नेहः पापमाशङ्कते' इति कारणात् ॥ ४ ॥

हम् इति—शङ्काद्योतकमिदम्, मदीया दुहितोद्यानं गता तत्र काचिदापत् सम्भाव्यते ।

सनिर्वेदम् = सकष्टम् । अमात्यत्वम् कष्टम् = मन्त्रिभावः कष्टदायकः ।

अरे शब्द सुनाई दे रहा है, इसमें बहुत कारण हो सकते हैं । यह शब्द—

यह शब्द अधिक होने के कारण दूर होने पर भी समीप में होने वाला जैसा ज्ञात होता है । इस शब्द में अनेक कारणों की सम्भावना होने पर भी मेरी बुद्धि कुरङ्गी के प्रति शङ्का युक्त हो रही है, क्योंकि अधिक स्नेह अनवसर में शङ्का का कारण हो जाता है ॥ ४ ॥

देवी—हाँ, मेरी पुत्री बगीचे में गई है ।

राजा—कोई है ?

(प्रवेश करके)

भट—जय हो महाराज की । आर्य्य कौञ्जायन कुछ निवेदन करने आये हैं ।

राजा—शीघ्रं प्रवेशयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(ततः प्रविशति कौञ्जायनः ।)

कौञ्जायनः—(सनिर्वेदम्) भोः ! कष्टममात्यत्वं नाम । कुतः,

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—कार्य्याणाम् प्रसिद्धौ जनः पार्थिवबलम् प्रवदति, विपत्तौ सचिवमतिदोषम् विस्पष्टम् जनयति, नृपतिभिः श्रुतिसुखम् उदारम् च अमात्या इत्युक्ताः मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः सुसूक्ष्मम् दण्डचन्ते ।

व्याख्या—कार्य्याणाम् = कर्तव्यार्थानाम्, प्रसिद्धौ = सम्पन्नतायां जातायाम्, जनः = लोकः, पार्थिवबलम् = नृपतिमाहात्म्यम्, प्रवदति = ख्यापयति । विपत्तौ = विधेयार्थस्यासाफल्ये, सचिवमतिदोषम् = मन्त्रि-बुद्धिविपर्य्ययजन्यदोषम् विस्पष्टम् = जनयति=समुत्पादयति, नृपतिभिः = राजभिः, श्रुतिसुखम् = श्रवणाह्लादजनकम्, उदारम् = महत्वशालि, च अमात्या इति = इमे मन्त्रिण इति, उक्ताः = सादरमभिहिताः, मतिबल-विदग्धाः = मिथ्याप्राज्ञम्मन्याः, कुपुरुषाः = कुमन्त्रिणः, सुसूक्ष्मम् = निभृतम्, दण्डचन्ते = दण्डिता भवन्ति । शिखरिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

राजा—शीघ्र भेज दो ।

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(कौञ्जायन का प्रवेश)

कौञ्जायन—(खेद के साथ) मन्त्री होना कष्टदायक होता है । क्योंकि—

कार्य सिद्ध होने पर लोग राजा के बल की प्रशंसा करते हैं और असिद्धि होने पर मन्त्री के बुद्धि को दोष देते हैं राजा लोग 'अमात्य' इस सुन्दर शब्द से सम्बोधित कर मानो उन पण्डितमानी कुपुरुष मन्त्रियों को सूक्ष्म रूप से दण्ड देते हैं ॥ ५ ॥

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी । किं ब्रवीषि—उपस्थानगृह इति । अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः । (परिक्रम्य ससम्भ्रम्) प्रसीदतु स्वामी ।

राजा—अलमलं सम्भ्रमेण । स्वैरमुपविश्य कथ्यतां वृत्तान्तः ।

कौञ्जायनः—शृणोतु स्वामी । ननु स्वामिनाहमुक्तः—स्वामिदारिकया सह गच्छोद्यानम् इति ।

राजा—एवमुक्तम् । पुनः किम् ।

कौञ्जायन—ततो गत्वोद्यानं यथासुखमाक्रीडय निवर्तमानायां राजसुतायां दासीदासहसितकथितश्रवणबृंहितमदस्रवन्मदजलार्द्रदुर्दि-

---

भावः—कार्य्यसिद्धौ जना भूपतिं संस्तुवन्ति
ह्यर्थनाशे त्वमात्यं प्रणिन्दन्त्यधन्यम् ।
मन्त्रिवर्य्या इमे ये पदं मान्यताया-
स्ते प्रदण्ड्यन्त एते कुबुद्धया विदग्धाः ॥

उपस्थानगृहे = यत्र स्थितं राजानं सर्वसाधारणाः निःशङ्कं प्रविश्य संस्तुवन्ति अतः अशङ्कनीया इयं भूमिः अशङ्कप्रवेशार्हा तत्र स्थितस्य राज्ञो दर्शनस्यानुमतत्वात् ।

अलमलं संभ्रमेण = सम्भ्रमो न कार्य्यः । स्वैरम् = स्वच्छन्दम् ।

स्वामिनाहमुक्तः = भवताहमाज्ञप्तः । स्वामिदारिकया = राजकुमार्य्या ।

दासीदासेति-दासीनां = राजकिङ्करीणां, दासानां = राजभृत्यानां च,

---

जयसेन—महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा ? उपस्थान गृह में हैं । वहाँ जाने में तो कोई अनुमति की आवश्यकता नहीं है । (चलकर घबड़ाहट के साथ) महाराज प्रसन्न हों ।

राजा—घबड़ाओ नहीं, यथेष्ट बैठकर समाचार कहो ।

कौञ्जायन—महाराज सुनें । श्रीमान् ने आज्ञा दी थी कि तुम राजकुमारी के साथ उद्यान में जाओ ।

राजा—हाँ, ऐसा कहा था । फिर क्या हुआ ?

कौञ्जायन—तदनन्तरं उद्यान में जाकर इच्छानुसार वहाँ क्रीडा कर

नाननो निहतपतितसादिपुरुषः क्षितिरजोवगुण्ठिताव्यक्तभीमर्मूर्तिमानिव पवनो दृष्टादृष्टलघुप्रचारः स्वामिसचिवानां वक्तव्यं जनयितुकाम इवैकपुरुषविशेषं प्रकाशयितुमिच्छन्निव मदान्धस्तं देशमभ्युपगतो हस्ती ।

राजा—तिष्ठतु विस्तरः । ननु कुशलिनी कुरङ्गी ।

कौञ्जायनः—कथमकुशलिनी भवति विद्यमानेषु स्वामिभाग्येषु ।

राजा—दिष्टया । यथेष्टमिदानीं ब्रूहि,

कौञ्जायनः—ततः प्रद्रुतेषु प्राकृतजनेषु हाहाकारमात्रप्रतीकारासु

हसितकथितयोः श्रवणेन बृंहितो यो मदस्तेन स्रवता मदजलेन आर्द्रं = सिक्तं, दुर्दिनं=सघनं आननं यस्य सः = दासीदासहसितकथितश्रवणबृंहितमदस्रवन्मदजलार्द्रदुर्दिनाननः = परिचारकपरिचारिकाहास्यवचनश्रवणजन्यपरिवर्धितदानवारिक्लिन्नमुखः, •निहतपतितसाक्षिपुरुषः = निहतः मारितः पतितश्च्यावितः सादिपुरुषो येन सः=निहतपतिताधोरणः, क्षितिरजोऽवगुण्ठिताव्यक्तभीममूर्तिः= भूधूलिसंच्छन्नास्पष्टभयानकाकारः, मूर्तिमान = देहधारी, पवनः = वायुरिव, दृष्टादृष्टलघुप्रचारः = लक्ष्यालक्ष्यशीघ्रगमनः स्वामिसचिवानाम् = भवन्मन्त्रिणाम्, वक्तव्यम् = वचनीयताम् , जनयितुकाम इव = जनयिष्यन्निव, पुरुषविशेषम् = अपूर्वपरिचितम् ।

तत इति—प्राकृतजनेषु = साधारण लोकेषु, प्रद्रुतेषु = पलायितेषु,

---

जब राजकुमारी घर की ओर लौट रही थीं उसी समय दासी-दास के हँसने और बोलने के शब्द से चिढ़ा हुआ, मदमत्त, पृथ्वी की धूलि से सने रहने के कारण महाभयङ्कर मूर्त्तिमान वायु के आकार वाला कोई हाथी अपने पीलवान् को मारकर पृथ्वी पर गिराते हुये समस्त राजकीय पुरुषों की असावधानी प्रकट करता हुआ वहाँ उपस्थित हो गया, उसकी शीघ्रतापूर्वक गमन क्रियाकला को किसी ने देखा, किसी ने नहीं भी देखा ।

राजा—विस्तार रहने दो। कुरङ्गी सकुशल है न ?

कौञ्जायन—आपके प्रबल भाग्य के रहते उसका अकुशल क्यों होगा ?

राजा—धन्य भाग्य ! अब यथेच्छ कहो ।

कौञ्जायन—इसके अनन्तर जब साधारण लोग भाग गये, मात्र स्त्रियाँ

स्त्रीषु समाश्रितनिहतेषु सुपुरुषेषु उद्यानगतानां सर्वोपकरणानां परीक्षणाय मुहूर्तव्याक्षिप्ते मयि च नीतिगुप्ते सहसैव स्वामिदारिकाया यानमेव प्राप्तः स हस्ती ।

देवी—हं इदो वरं किण्णु खु भविस्सदि । [हम् इतः परं किन्नु खलु भविष्यति ।]

राजा अथ केन सनाथीकृता कुरङ्गी ।

कौञ्जायनः - अथ कश्चिद् दर्शनी—(इत्यर्धोक्ते तिष्ठति)

राजा—यथेष्टमिदानीं ब्रूहि । निष्परिहारा व्यापदः ।

कौञ्जायनः—अथ कश्चिद् दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः

स्त्रीषु, हाहाकारमात्रप्रतीकारासु = हाहाकारमात्रः प्रतीकारो यासां तास्तथाभूतासु = केवलं हाहाकारकुर्वाणासु, समाश्रितनिहतेषु सुपुरुषेषु = स्वसमीपवर्त्तिषु जनेषु निहितेषु, उद्यानगतानाम्=उद्यानवर्तिनाम् सर्वोपकरणानाम् = सर्वविधसामग्रीणाम्, परीक्षणाय = अनुसन्धानाय, मुहूर्तव्याक्षिप्ते = किञ्चित्कालमन्यमनस्के मयि नीतिगुक्ते = युक्त्या रक्षिते सहसा एव हस्ती स्वामिदारिकायाः = स्वामितनयायाः यानम् = कुरङ्गीयानम् प्राप्तः ।

अथेत्यादि—दर्शनीयः सुन्दरः, अविस्मितः = विस्मयरहितः, तरुणः = युवकः अनहङ्कारः = अहङ्काररहितः, शूरः = वीरः, दाक्षिण्यवान् =

उसके किसी भी प्रकार का प्रतिकार करने में असमर्थ हो हाहाकार कर रही थीं, उस समय उद्यानगत वस्तुओं के देख-रेख में मुहूर्त्तमात्र का समय लग जाने से मैं सुरक्षित बच गया, तो देखा कि वह हाथी राजकुमारी के वाहन के पास पहुँच गया ?

देवी—इसके बाद क्या हुआ ?

राजा—किसने कुरङ्गी की रक्षा की—

कौञ्जायन—कोई खूबसूरत (आधा कहकर रुक जाता है ।)

राजा—इस समय स्वच्छन्द होकर कहो । आने वाली आपत्तियां निष्परिहार्य होती हैं वे तो आकर ही रहती हैं ।

कौञ्जायन—इसके बाद कोई सुन्दर होते हुए भी गर्व रहित, तरुण

शूरोऽपि दाक्षिण्यवान् सुकुमारोऽपि बलवान् स्वामिदारिकायां हस्तिनाभिभूयमानायां तत्कालदुर्लभमभयं प्रदाय निर्विशङ्कः समासादितवांस्तं द्विपवरम् ।

राजा—अनृणः स कारुण्यस्य । ततस्ततः ।

कौञ्जायनः—ततस्तेन सललितसरभसकरतलताडनप्ररुष्टः सहसैव स्वामिदारिकां विहाय तमेव हन्तुकामः प्रतिनिवृत्तः स व्यालः ।

देवी—कुसलो होदु । [कुशलं भवतु ।]

अनुकूलः, सुकुमारः = कोमलाङ्गः, बलवान् = बलिष्ठः, स्वामिदारिकायाम् = राजकुमार्य्याम्, हस्तिनाभिभूयमानायाम् = गजेन परिभूयमानायाम्, तत्कालदुर्लभम् = तस्मिन् समये दुष्प्रापम् , अभयम् प्रदाय = मा भैरिति वचनमुक्त्वा, निर्विशङ्कः = निर्भयः, समासादितवान् = सम्प्राप्तः ।

अनृणः स कारुण्यस्य = करुणभावानुकूलं स व्यधात् ।

ततः = तदनन्तरम्, तेन = युवकेन, सललितसरभसं = सविलासं निर्भयं च, करतलेन यत्ताडनं तेन प्ररुष्टः = सलील-निरायास-भुजप्रताडनकुपितः, प्रतिनिवृत्तः = परावृत्तः । व्यालः = रुष्टो हस्ती । अभ्यागतेन = तस्मिन् समये आयातेन । महान् प्रमादः आरक्षिपुरुषाणामसावधानता । तस्य पुरुषस्य = कुरङ्गीं रक्षितवतः पुरुषस्य प्रवृत्तिम् = समाचारम्, अन्वयम् = वंशम् ।

होकर भी अहङ्कार रहित, शूर होते हुए भी अनुद्धत, सुकुमार होते हुए भी बलवान् युवा पुरुष हाथी से डरी हुई उस राजकुमारी को उस समय के लिये सर्वथा दुर्लभ 'मत डरो, मत डरो' इस प्रकार का अभय दान देता हुआ निर्भय हो हाथी के पास जा पहुँचा ।

राजा—उस पुरुष ने दयालुता का ऋण चुका दिया । उसके बाद क्या हुआ ।

कौञ्जायन—उस पुरुष से लीला पूर्वक अनायास हाथों से मारने के कारण कुपित हुआ वह रुष्ट हाथी राजकुमारी को छोड़कर उस पुरुष को ही मारने के लिये दौड़ा ।

देवी—भला हो उसका ।

राजा—ततस्ततः।

कौञ्जायनः—अथ तदनन्तरमभ्यागतेन भूतिकेन मया च पुनर्यानमारोप्य द्रुतमानीय कन्यान्तःपुरमेव प्रवेशिता स्वामिदारिका।

राजा—अहो महानयं प्रमादः। अथ भूतिकः किमर्थं नाभ्यागतः।

कौञ्जायनः—उक्तोऽहं भूतिकेन—गत्वेमं वृत्तान्तं स्वामिने कथय। अहं पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञात्वा शीघ्रमागमिष्यामीति।

राजा—तेन हि सत्त्वं परीक्ष्यागमिष्यति भूतिकः। कौञ्जायन! कतरकुलसमुद्भूतः परव्यसनसहायः।

कौञ्जायनः—स्वामिन् इह विसंवादयत्यात्मानमन्त्यजोऽहमिति।

देवी—महाराअ! अकुलीणो कहं एव्वं साणुक्कोसो भवे। [महाराज! अकुलीनः कथमेवं सानुक्रोशो भवेत्।]

सत्त्वं परीक्ष्य = कुलादिकं सर्वं ज्ञात्वा। कतरकुलसमुद्भूतः = कस्मिन् कुले समुत्पन्नः, परव्यसनसहायः—अन्यदीयापत्तिसाहाय्यकर्ता।

आत्मानं विसंवादयति = रूप-विक्रमशीलादिसदृशवंशमनख्याय अन्त्यजोऽहमित्युक्त्वा स्वं निह्नुते। सानुक्रोशः = दयावान्।

राजा—इसके बाद।

कौञ्जायन—इसके बाद तत्काल आये हुए भूतिक ने और मैंने राजकुमारी को सवारी पर विदा कर एवं शीघ्रता से ले जाकर कन्याओं के निवास हेतु बने महल में उसे पहुँचा दिया।

राजा—ओह! यह रक्षकों में बहुत बड़ी असावधानी की। अच्छा, भूतिक क्यों नहीं आया।

कौञ्जायन—भूतिक ने हमसे कहा कि तुम जाकर यह समाचार महाराज से कह दो। मैं उस युवक का समाचार और वंश का पता लगा कर आ रहा हूँ।

राजा—तब तो भूतिक सारी बातों का पता लगा कर आयेगा। कौञ्जायन! दूसरे की आपत्ति में सहायक वह पुरुष किस कुल का है?

कौञ्जायन—इस विषय में उसकी बातें भ्रमोत्पादक हैं, वह कहता है मैं अन्त्यज हूँ।

देवी—महाराज नीचकुल का व्यक्ति इस प्रकार दयालु कैसे हो सकता है?

राजा—किन्नु खलु भवेदेतत् ।

(ततः प्रविशति भूतिकः)

भूतिकः—(सविस्मयम्) अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः । अस्य तावत् पुरुषस्य निर्व्याजेन विक्रमेण मन्दीभूता इव मनस्विनां विक्रम-बुद्धयः । एकस्तु मे संशयः, किमर्थमात्मानमन्वयं चाच्छादयति । अथवा कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् । इह हि,

छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः ।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

पृथिव्याः, प्रच्छन्नरत्नता = प्रच्छन्नानि रत्नानि यस्यां सा तस्या भावः प्रच्छन्नरत्नता = गुप्तरत्नत्वम् । निर्व्याजेन = स्वाभाविकेन मनस्विनाम् = वीराणाम्, विक्रमबुद्धयः = विक्रान्ता वयमिति मतयः, मन्दीभूताः = न्यूनत्व-मासादिताः । आत्मानमन्वयश्चाच्छादयति = नामवंशादिकं गोपयति । कः शक्तः सूर्य्यं हस्तेनाच्छादयितुम् अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः । यथा हस्तेन सूर्य्यस्याच्छादनं दुष्करं तथा वीराणां नामकुलादीनामाच्छादनं दुष्करम् ।

अन्वयः—कथञ्चित् स्वैः कारणैः गुरुजनैः च नियम्यमानाः सत्पुरुषा भुवि छन्ना भवन्ति, भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामाः पूर्वनियमम् विस्मृत्य विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

राजा—ऐसा कैसे हो सकता है ? यह (उसकी बातें अवश्य सन्देह जनक हैं ।)

(इसके बाद भूतिक का प्रवेश)

भूतिक—अहा ! पृथ्वी में रत्न छिपे हैं । इस व्यक्ति के निष्कारण पराक्रम से मनस्वियों की पराक्रम बुद्धियाँ निष्प्रभ हो गयी है । एक ही मेरा सन्देह है कि क्यों अपने को छिपा रहा है ? अथवा सूर्य को कौन हाथ से छिपा सकता है ? यहाँ—

सज्जन पुरुष कारण विशेष एवं गुरुजनों के नियन्त्रण से छिपे रहने

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी। किं ब्रवीषि-उपस्थानगृह इति। अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये अयं महाराजो देव्या सहास्ते। (उपगम्य) जयतु महाराजः।

राजा—देवि ! त्वमभ्यन्तरं प्रविश्याश्वासय कुरङ्गीम्। अहमप्यनुपदमागमिष्यामि।

देवी—जं महाराओ आणवेदि। [यन्महाराज आज्ञापयति।]

(निष्क्रान्ता)

व्याख्या—छन्ना इति = कथञ्चित् = केनापि कारणेन, स्वैः = अनिर्वचनीयैः कारणैः = हेतुभिः, गुरुजनैश्च = मान्यपुरुषैः (पित्रादिभिः) नियम्यमानाः = शापादिना, नियम्यमाना = नियन्त्रिताः, सत्पुरुषाः = सज्जनाः, भुवि = भूतले, छन्नाः = पिहिताः, भवन्ति, भूयः = पुनः, परव्यसनम् = अन्यजनापदम्, एत्य = प्राप्य, विमोक्तुकामाः = तदुद्दिधीर्षया नियमम् = प्राक्तनसंयमम् विस्मृत्य = कारुणिकतया = गुप्तिभावमवहेल्य, विवृताः = प्रकाशिताः, भवन्ति = जायन्ते। वसन्ततिलकावृत्तम्॥ ६॥

भावः—शापादिना पिहितसर्वनिजप्रभावा
लोके कथञ्चिदपि सत्पुरुषा भवन्ति।
आपन्नमेत्य तु नियन्तुमशक्नुवन्तः
तं रक्षितुं द्रुततरं प्रकटीभवन्ति॥

पर भी दूसरों की आपत्ति को देखकर अपने को संभालने में असमर्थ हो उसकी रक्षा के लिये अपने नियम को त्यागकर (भूलकर) शीघ्र प्रकट हो जाते हैं॥ ६॥

जयसेन ! महाराज कहाँ है ? क्या कहा, उपस्थान गृह में हैं, तब तो वहाँ बेरोक प्रवेश किया जा सकता है, तो चलूँ (प्रवेश कर) ओह ! यहाँ तो महाराज रानी के साथ बैठे हैं। (पास जाकर) जय हो महाराज की।

राजा—देवि ! तुम भी भीतर जाकर कुरङ्गी को आश्वासित करो मैं भी पीछे-पीछे आ रहा हूँ।

देवी—जो महाराज की आज्ञा।

(चली गई)

राजा—को वृत्तान्तस्तस्य परार्थमनवेक्षितशरीरस्य।

भूतिकः—शृणोतु स्वामी। स मुहूर्तमनादरमत्वरितं सललितं प्रियवयस्येनेव तेन हस्तिना प्रक्रीड्य निवर्तनानुवर्तनगतिविशेषैर्विमोह्य लज्जित इव तेन कर्मणा महाजनप्रशंसामसहमानः समवनतशिरस्कः स्वैरं स्वसेत्रावासं गतः।

राजा—भोः! प्रीतोऽस्मि। अयं हि मे द्वितीयो लाभः।

भूतिकः—अथ तदनन्तरमुपलभ्य हस्तिनीभिस्तं गजवरं सङ्ग्रा-

व्याख्या—को वृत्तान्तः = समाचारः, परार्थम् = अन्यं रक्षितुम्, अनवेक्षितशरीरस्य = अनवलोकितस्वदेहव्यापदः पुरुषविशेषस्य।

शृणोतीत्यादि—स मुहूर्तम् = क्षणम्, अनादरम् = सावहेलम् अत्वरितम् = अशीघ्रम् = असम्भ्रम्। सललितम् = सविलासम्, प्रियवस्येनैव = प्रियमित्रेणेव, निवर्तनानुवर्तनगतिविशेषैः = अपसरणाभिसरणरूपगतिविशेषैः, विमोह्य = मोहमापाद्य, लज्जित इव ह्रीण इव महाजनप्रशंसाम् = सत्पुरुषसंस्तुतिम्, असहमानः = अनभिलषन्, अवनतशिरष्कः = नतमस्तकः, स्वैरम् = स्वच्छन्दम् स्वावासम् = निजनिवासम्।

द्वितीयो लाभः, कन्यायाः कुशलता, तद् रक्षकस्यापि दुष्टगजात् संरक्षणाम्।

अथ—तत्पश्चात्, तदनन्तरमुपलभ्य = तमवसरं लब्ध्वा-करिणीभिः हस्ति-

---

राजा—दूसरे की रक्षा के लिये अपने शरीर की परवाह न करने वाले उस पुरुष का क्या समाचार है?

भूतिक—महाराज सुनिये, वह कुछ समय तक अवहेलना एवं बिना घबराहट के अपने मित्र के समान उस हाथी के साथ खेलकर आमने-सामने रूप पैंतरे से उसको मोहित कर उस कार्य से मानो लज्जित हो ऐसा लोगों की प्रशंसा को न सहता हुआ स्वच्छन्द रूप से अपने निवास स्थान में चला गया।

राजा—मैं प्रसन्न हुआ, मेरे लिये यह दूसरा लाभ हुआ।

भूतिक—इसके बाद उस मतवाले हाथी को हथिनियों की सहायता से

ह्येमां गजशालां प्रवेश्याहं तस्य पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञातुमन्यापदेशेन गतवानस्मि ।

राजा—अथ किं कृतो निश्चयः । श्रुतमस्माभिरन्त्यज इति ।

भूतिकः—शान्तं शान्तं पापम् । नायं तादृशः । केनापि कारणेनात्मानमन्वयं चाच्छादयति ।

राजा—अथ किं भवता परीक्षितम् ?

भूतिकः—किमत्र परीक्षितव्यम् ।

नीभिः, तं गजवरम्, सम्प्राप्य = समेत्य, = तद्भिया तद्रोषमपनुद्य, तस्य = कुरङ्गीसंरक्षकस्य पुरुषस्य, प्रवृत्तिम् = समाचारम् , अन्वयम् = वंशञ्च, ज्ञातुम् = अन्यापदेशेन = अन्यव्याजेन गतवानस्मि ।

किं कृतो निश्चयः = तस्य वंशादिपरिचयः प्राप्तः किम् । मया तु श्रुतमन्त्यजः = चाण्डालः सः ।

शान्तं पापम् = एतादृशं न वाच्यम्, नायं तादृशः=तथाविधः, केनापि = अज्ञातेन कारणेन, आत्मानमन्वयञ्च, स्वरूपं वंशञ्च आच्छादयति = गोपायति ।

भवता किं परीक्षितम् = किं निर्णीतम् ।

किमत्र परीक्षितव्यम् = अत्र संशयो नास्ति येन परीक्षणस्यावश्यकता भवेत् ।

अन्वयः—तस्य दैवम् रूपम् ब्रह्मजम् वाक्यम् क्षात्रम् तेजः सौकुमार्यं बलम् च एवम् तस्य अन्त्यजत्वम् यदि सत्यम् स्यात् (तद्) अस्माकम् शास्त्रमार्गेषु खेदः व्यर्थः स्यात् ।

पकड़वाकर मैंने गजशाला में भेज दिया । तदनन्तर मैं किसी अन्य बहाने से उसके कार्य (समाचार) एवं वंश का पता लगाने के लिये उसके यहाँ गया ।

राजा—तो क्या निश्चय किया ? मैंने तो सुना है कि वह अन्त्यज है ।

भूतिक—महाराज ऐसा न कहें । यह वैसा नहीं है । किसी कारण विशेष से अपने को और अपने वंश को छिपाता है ।

राजा—आखिर आपने क्या निश्चय किया ?

भूतिक—इसमें क्या जानना है—

दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च।
यद्येवं स्यात् सत्यमस्यान्त्यजत्वं
व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ॥ ७ ॥

राजा—किमस्त्यस्य कलत्रम् ?

भूतिकः—सर्वमस्ति । कलत्रं त्वयमभिनिविष्टः ।

राजा—यद्यपि स्त्रीदर्शनं परिहृतं, किमर्थं तस्य पिता न परीक्षितः ?

भूतिकः—दृष्टस्तत्रभवान् सत्पुत्रसम्पन्नः । स हि,

दैवं रूपमित्यादि—तस्य = यूनः, दैवम् = देवसदृशम्, रूपम् = आकारः ब्रह्मजम् = ब्रह्म = वेदस्तदध्ययनोचितम् वाक्यम् = वचनम्, क्षात्रम् = क्षत्रियोचितम् , तेजः = शरीरकान्तिः शूरत्वमित्यर्थः, वलञ्च, एवम् = अस्यां स्थितौ, यदि = चेत् तस्य अन्त्यजत्वम् = चाण्डालत्वम् सत्यम् = तथ्यम्, स्यात् = भवेत्, तर्हि अस्माकम् शास्त्रमार्गेषु = शास्त्राध्ययनेषु, खेदः = परिश्रमः, व्यर्थः = निरर्थकः स्यात्-भवेत्-तद्रूपादिकमभिलक्ष्य तत्कुलादिनिश्चयाभावे पाण्डित्यम् व्यर्थः स्यात् । शालिनी छन्दः ।

भावः—दैवं रूपं वाणीं सुकुमारत्वं बलं तेजः ।
दृष्ट्वाप्यस्यान्त्यजता-वित्तौ मद्विज्ञता व्यर्था ॥

पद्यम्—दृष्टस्तत्र भवान् = अवलोकितः संमाननीयः स हि सत्पुत्रसम्पन्नः = तादृशगुणवत्पुत्रोपेतः ।

देवतुल्य उसका रूप, वेदों के अध्ययन से सुसंस्कृत वाणी, क्षत्रिय के समान बल, तेज और सुकुमारता यह सब होते हुए भी यदि वह वस्तुतः चाण्डाल हो तो मेरा शास्त्राध्ययन व्यर्थ ही है ।। ७ ।।

राजा—क्या उसे स्त्री है ?

भूतिक—सब है, क्योंकि वह स्त्री का बहुत आदर करता है ।

राजा—यद्यपि पर-स्त्री दर्शन वर्जित है। उसके पिता की परीक्षा क्यों नहीं की ?

भूतिक—इस प्रकार के पुत्र से उसके पिता आदर के योग्य जान पड़ते है ।

व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसो
ज्याघातप्रचितकिणोल्बणप्रकोष्ठः ।
प्रच्छन्नोऽप्यनुकृतिलक्ष्यराजभावो
मेघान्तर्गतरविवत् प्रभानुमेयः ॥ ८ ॥

अन्वयः—व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसः, ज्याघातप्रचितकिणोल्वणप्रकोष्ठः प्रच्छन्नः अपि अनुकृतिलक्ष्यराजभावः मेघान्तर्गतरविवत् प्रभानुमेयः ।

व्याख्या—व्यायामेति-व्यायामेन = परिश्रमेण, स्थिरः = दार्ढ्यं नीतः, विपुलः = विस्तारमाप्तः, उच्छ्रितः = तुङ्गः, आयतः = आयामवान, अंसः = स्कन्धप्रदेशो यस्य तादृशः । ज्यायाः मौर्व्याः आघातेन = सन्ताडनेन प्रचितैः= समुत्पन्नैः किणैः = शुष्कव्रणैः, उल्वणः=भीष्मः प्रकोष्ठः=कफोणेरधः भुजभागः यस्य सः तथाभूतः, प्रच्छन्नः = गुप्तः अपि अनुकृत्या = राजोचितव्यवहारेण लक्ष्यः=अनुमेयः राजभावः=नृपत्वम् यस्य स तथाभूतः । मेघान्तर्गतः=जलदाच्छन्नो यो रविः = सूर्य्यस्तद्वत्=तादृशः प्रभानुमेयः=प्रभया दीप्त्या अनुमेयः = अनुमितिज्ञानविषयः । नामकुलादिकं प्रच्छादयन्नपि आकारप्रभादर्शनेन राजायमिति ज्ञायते । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ८ ॥

भावः—ज्याघातनिष्ठुरप्रकोष्ठवता भुजेन
स्कन्धेन चायतदृढेन पिता तदीयः ।
गुप्तोऽपि स व्यवहृतेन प्रभाव्यराज-
भावो घनावृतियुतः सवितेव भाति ॥ ७ ॥

अलमेतावता प्रसङ्गेन = तत्कुलादिज्ञीप्सया कृतेनैतावन्मात्रप्रयासो न पर्य्याप्तः पुनरप्येषा परीक्षा कर्तव्या = यथार्थस्तत्परिचयप्रयासः पुनरपि करणीयः काशीराजदूतं प्रति किं कर्तव्यम् = कः सन्देशस्तस्मै प्रदेयः । दूतशतानि = शतशब्दो बहुत्ववाचको बहवो दूता आगताः ।

व्यायाम करने के कारण उनके कन्धे पुष्ट, विशाल एवं उन्नत हैं, उनके हाथ में प्रत्यञ्चा के आघात से उत्पन्न कठिन घट्ठे हैं। यद्यपि वे छिपकर रहते हैं तथापि राजत्वभाव उनके आकार-प्रकार से इस तरह लक्षित हो रहा है जैसे मेघों से घिरे सूर्य्य लक्षित होते हैं ।

राजा—अलमेतावता प्रसङ्गेन। पुनरप्येषा परीक्षा क्रियताम्।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी।

राजा—अथेदानीं काशिराजदूतं प्रति किं कर्तव्यम्।

भूतिकः—स्वामिन्! दूतशतान्यागतान्यागमिष्यन्ति च।

न तत्र कर्तव्यमिहास्ति लोके
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम्।

अन्वयः—इह लोके तत्र कर्तव्यम् न अस्ति कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम् हि सर्वे नरेन्द्राः मल्लाः पताकाम् इव नरेन्द्रकन्याम् तर्कयन्ति।

व्याख्या—न तत्रेति—इह लोके तत्र = दूतागमनविषये कर्तव्यम् = करणीयम् नास्ति = न विद्यते (तस्य चिन्ता न करणीया) हि यतः कन्यापितृत्वम् = कन्यापितृभावः, बहुवन्दनीयम् = अत्यन्तं प्रशंसनीयम्, (तस्यां सत्यां राजानस्तदाकृष्टाः तमीड्यदृष्टया पश्यन्ति) हि = यतः सर्वे नरेन्द्राः = राजानः, मल्लाः = मल्लक्रीडानिपुणाः, योद्धारः, पताकामिव = विजयध्वजमिव नरेन्द्रकन्याम् नृपसुताम् पश्यन्ति। मल्ला यथा विजयमभिलषन्ति, तथा राजानः राजकन्यां लिप्सन्ते। उपजातिवृत्तम्।

भावः—

कन्यासत्त्वेऽभ्यर्थिनोऽनेकसङ्ख्या, किं वाच्यास्ते नात्र कार्य्या हि चिन्ता।
राज्ञः पुत्री सर्वभूपैर्ह्युपेया मल्लैः यद्वद् वैजयन्ती जयस्य॥ ६॥

दाक्षिण्यम् = उदारता, गुणबाहुल्यम् = गुणाधिक्यम्, तदात्वम् = समयोचितां परिस्थितिम्, आयतिम् = भविष्यञ्च, अवेक्ष्य = परीक्ष्य त्वरतां = शीघ्रतां दीर्घसूत्रतां = विलम्बञ्च परित्यज्य देशकालाविरोधेन = देशकालानु-

---

राजा—इस प्रसङ्ग को यहीं समाप्त करो।
फिर भी इसकी परीक्षा करो।

भूतिक—जो महाराज की आज्ञा।

राजा—काशीराज का दूत आया है। उनको क्या सन्देश दिया जाय।

भूतिक—महाराज अनेको दूत आये तथा और भी आयेंगे।
इस प्रसङ्ग में कुछ करना नहीं है, कन्या का पिता होना बहुत

सर्वं नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ॥ ९ ॥

राजा—कोऽभिप्रायः ।

भूतिकः—सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् । गुणबाहुल्यं तदात्वमायति चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थः ।

राजा—युक्तमभिहितं भूतिकेन। कौञ्जायन ! किमर्थं तूष्णींभूतः ।

कौञ्जायनः—स्वामिन् ! बहुष्वपि क्षत्रियेषु पूर्वसम्बन्धविशेषौ

सारेण, साधयितव्यम् = करणीयम् । किमर्थं तूष्णीं भूतः = कथं न स्वविचारं प्रकटयसि ।

पूर्वसंबन्धविशेषौ = पुरातनसम्बन्धिनौ, भगिनीपतित्वे तुल्यौ = द्वावप्यावुत्तौ, आत्मसम्बन्धयोग्यौ=स्वसम्बन्धार्हौ, पुत्रस्य कारणात्=स्वपुत्रविवाहार्थम्, अतिबाला=अत्यल्पवयस्काः, अपदेशमुक्त्वा=छलेनोक्त्वा, बलाबलचिन्तायाम्= कर्तव्याकर्तव्यनिर्णये, स्वामी प्रमाणम् = भवानन्तिमो निर्णायकः । अपोह्य = त्यक्त्वा, द्वयोः = सौवीरराज-काशीराजयोः । भृत्यदूषणीयाः = भृत्यैः अनुचरैः दूषणीयाः = निन्दनीयाः । स्वामिनो हि स्वाम्यममात्यानाम्=मन्त्रिभी राजाऽनुसर्तव्यः । इदानीं न प्रत्याख्यातव्यम् = स्वनिर्णयो वाच्य इत्यर्थ । अस्म-

---

प्रशंसनीय है सभी राजे राजकन्या को उसी प्रकार चाहते हैं जैसे वीर विजय-पताका को चाहते हैं ॥ ९ ॥

राजा—इसका क्या अभिप्राय है ।

भूतिक—सब जगह उदारता नहीं करनी चाहिये, गुण की अधिकता और उस काल की परिस्थिति तथा भविष्य का विचार करके न शीघ्रता करनी चाहिये और न विलम्ब ही करना चाहिये । देश और काल के अनुसार कार्य्य करना चाहिये ।

राजा—भूतिक ने ठीक कहा है, कौञ्जायन ! तुम क्यों मौन हो ?

कौञ्जायन—महाराज बहुत क्षत्रियों के रहने पर भी पुराने सम्बन्धी

सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ अस्मत्सम्बन्धयोग्याविति स्वामिना चिन्तितौ। तत्र पूर्वमेव सौवीरराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। स चास्माभिरतिबाला कन्येत्यपदेशमुक्त्वा सुपूजितो विसर्जितः। इदानीं तु काशिराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। तत्र बलाबलचिन्तायां स्वामी प्रमाणम्।

राजा—सम्यगुक्तं कौञ्जायनेन। भूतिक ! सर्वराजमण्डलमपोह्य द्वयोः स्थापितयोः कं प्रति विशेषः।

भूतिकः—न भृत्यदूषणीया राजानः, स्वामिनो हि स्वाम्यममात्यानाम्।

राजा—अलमुपचारेण। ब्रूहि को निश्चयः।

भूतिक—इदानीं तु न प्रत्याख्यातव्यम्। स्वामिन् ! सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ। अथ देव्या भ्रातेति सौवीरेन्द्रो गुणाधिकः।

त्सङ्कल्पानु॰ःवादकः = मद्विचारानुमोदकः। उभयथा=अधिकगुणिनः पुरातन सम्बन्धिनः भवता स्वीकृतस्य च प्राप्त्येत्यर्थः। दूतसम्पातः = दूतस्य प्रेषणम्।

सौवीर राज एवं काशीराज आपके बहनोई होने के कारण दोनों समान हैं, और सम्बन्ध के योग्य हैं ऐसा आपने बिचारा है। उसमें सौवीरराज ने पहले ही दूत भेजा था तो उसको हम लोगों ने अभी 'कन्या अत्यन्त कम अवस्था की है' ऐसा बहाना करके सत्कार सहित लौटा दिया। इस समय काशीराज ने पुत्र के विवाह के लिये दूत भेजा है। इस विषय में क्या किया जाय ? यह निर्णय आप के ही आधीन है।

राजा—कौञ्जायन ने उचित कहा। भूतिक ! सब राजाओं की उपेक्षा करके पूर्वोक्त दो राजाओं को प्रमुखता दी गयी। इन दोनों में किसकी विशेषता है ?

भूतिक—भृत्यों को राजा की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। राजाओं का मन्त्रियों पर प्रभुत्व रहता है।

राजा—चापलूसी छोड़ो। अपना निर्णय बताओ।

भूतिक—अब तो खण्डन नहीं करना है। महाराज ! सौवीरराज तथा

राजा—न खलु भवानस्मत्सङ्कल्पानभिवादकः।

भूनिकः—उभयथानुगृहीतोऽस्मि।

राजा—भोः! किन्नु खलु सौवीरेन्द्रेण पुनर्न दूतसम्पातः क्रियते।

भूतिकः—तत्रास्ति मे कश्चित् सन्देहः। सुष्ठु परीक्ष्य वक्ष्यामीति नोक्तवानस्मि।

राजा—ननु कुशली तत्रभवान्।

भूतिकः—वदन्ति चारपुरुषाः-

न दृश्यते तत्रभवान् सपुत्रः
कार्याण्यमात्याः किल वर्तयन्ति।

अन्वयः—सपुत्रः तत्रभवान् न दृश्यते अमात्याः किल कर्माणि वर्तयन्ति, अत्र किञ्चित् कारणम् न विद्यते, राजकुलप्रवेशः न लभ्यते।

व्याख्या—न दृश्यत इति—सपुत्रः = ससुतः, तत्रभवान् = माननीयः, (सौवीरराज इति शेषः) न दृश्यते=नावलोक्यते, (इदानीं तदभावे) अमात्याः= मन्त्रिणः किल कर्माणि = राजकार्य्याणि, वर्तयन्ति = कुर्वन्ति, संपादयन्ति अत्र = तददर्शने किञ्चित् कारणम् = कोऽपि हेतुः न विद्यते = स्पष्टतो नोपलभ्यते। राकुलप्रवेशः = राजसद्मनि संगमः न लभ्यते न प्राप्यते कैश्चिंदिति शेषः अतो गत्वापि समाचारः सम्यगवगन्तुं न शक्यते॥ १०॥

काशीराज यद्यपि बहनोई होने के कारण समान हैं तथापि महारानी के सौवीरराज भाई हैं। इसलिये अधिक गुण वाले है।

राजा—तुम कभी भी हमारे सङ्कल्प का विरोध नहीं करते हो!

भूतिक—दोनों प्रकार से अनुगृहीत हुआ।

राजा—अजी! किन्तु सौवीरराज पुनः दूत क्यों नहीं भेजते है।

भूनिक—इस विषय में मुझे भी कुछ सन्देह है, अच्छी तरह परीक्षा करके वताऊँगा।

राजा—सौवीरराज सकुशल तो हैं न?

भूतिक—गुप्तचर लोग ऐसा कहते है—

न विद्यते कारणमत्र किञ्चि-
न्न लभ्यते राजकुलप्रवेशः ॥ १० ॥

राजा—भोः किन्नु खलु भवेदेतत् ।

कामाहतः कुमतिभिः सचिवैर्गृहीतो
रोगातुरः स्वजनरागमवेक्षते वा ।
शप्तो द्विजैर्व्रतमुपेत्य करोति शान्तिं
को वा भवेन्नरपतेर्गृहरोधहेतुः ॥ ११ ॥

भावः—सौवीरराजः ससुतः कुतोऽपि न दृश्यते लोकैः । कारणमत्राविदितं गत्वापि न प्रवृत्तिरुपलभ्या ॥ १० ॥

किन्तु खल्वेतत् भवेत् = राज्ञोऽदर्शने किं कारणम् ।

अन्वयः—कामाहृतः कुमतिभिः सचिवैः गृहीतः वा रोगातुरः स्वजन-रागम् अवेक्षते, द्विजैः शप्तः व्रतम् उपेत्य शान्तिम् करोति, नरपतेः गृहरोध-हेतुः कः वा भवेत् ।

व्याख्या—कामाहृतः इति—कामाहृतः = कामिन्यनुरागेण पीडितः, कुमतिभिः = कुबुद्धिभिः, सचिवैः = मन्त्रिभिः, गृहीतः = कुत्राप्यज्ञाते स्थाने नियन्त्रितः, रोगातुरः = व्याधिपीडितः, वा स्वजनरागम् = आत्मीयपरिजन-रागम्, अवेक्षते = परीक्षते आत्मीयाचारं ज्ञीप्सते द्विजैः = ब्राह्मणैः (अपराधे) शप्तः = प्राप्तशापः, वनम् = अरण्यम् उपेत्य = गत्वा, व्रतमुपेत्य इति पाठे व्रतमाश्रित्य शान्तिम् = तच्छापप्रायश्चित्तं करोति । नरपतेः = सौवीरराजस्य गृहरोधहेतुः = गृहे प्रच्छन्नवासकारणम् को वा भवेत् = पूर्वोक्तेषु कारणेष्वेकः स्यात् येन नालोक्यते ।

सौवीर महाराज नहीं दिखाई देते । सारा राजकार्य मन्त्री लोग करते हैं, इसमें कोई कारण प्रत्यक्ष नहीं दीखता । राजदरबार में किसी का भी प्रवेश निषिद्ध हैं ।

राजा—अजी ! इसमें क्या कारण हो सकता है—

कामासक्त हैं या मन्त्रियों ने उनको कैद कर लिया है, अथवा रोगी हैं या आत्मीय जनों के प्रेम की परीक्षा कर रहे हैं । अथवा ब्राह्मणों ने उनको शाप दे दिया है व्रत ग्रहण कर उसकी शान्ति कर रहे हैं इनमें उनके छिपने का कौन सा कारण हो सकता है ?

शीघ्रं परीक्ष्यतामेष वृत्तान्तः ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

राजा—कौञ्जायन ! किमिदानीं काशिराजदूतं प्रति कर्तव्यम् ।

कौञ्जायनः—एवं गते काशिराजदूतः पूजयितव्यः । बहुमुखा विवाहा यथेष्टं साध्यन्ते ।

राजा—अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम् ।

(नेपथ्ये)

जयतु स्वामी, जयतु महाराजः । दशनालिकाः संपूर्णाः ।

भूतिकः—स्वामिन् ! शेषमभ्यन्तरे चिन्तयिष्यामः । अतिक्रामति

भावः—सचिवात्तः किं कामी रुग्णो वा वीक्षते स्वजनरागम् ।
शप्तो वने तपस्यति को हेतुस्तस्य गृहरोधे ।। ११ ।।

शीघ्रं परीक्ष्यतामेष वृत्तान्तः = अस्य याथार्थ्यमुपलभ्यतां वृत्तस्य । पूजयितव्यः = सत्कृत्य विसर्जनीयः ।

कार्य्यमवेक्षते = कर्तव्यमेव निश्चिनोति न स्नेहम् अभ्यन्तरे = कालान्तरे अतिक्रामति = अतिवर्त्तते । आश्वासयितव्या = सान्त्वयितव्या महाजनः = आत्मीयवर्गः ।

इस बात शीघ्र पता लगाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—कौञ्जायन ! इस विषय में काशीराज के दूत के प्रति क्या किया जाय ?

कौञ्जायन—ऐसी स्थिति में काशीराज के दूत का आदर करना चाहिये, विवाह के बहुत मार्ग हैं और वहुतों में किसी एक को चुनना होता है ।

राजा—अहो मन्त्रियों की बुद्धि काम को विचारती, प्रेम को नहीं । (नेपथ्य में) जय हो महाराज की । दश बज गये ।

भूतिक—इस विषय का शेष विचार अन्य समय होगा । इस समय

स्नानवेला। स्वामिदारिका चाश्वासयितव्या। महादेवी च चिरं प्रतीक्षते। महाजनोऽप्यस्मिन्नुपद्रवे स्वामिनं द्रष्टुमिच्छति।

राजा—अहो महद्भारो राज्यं नाम। कुतः,

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।

अन्वयः—धर्मः प्रागेव चिन्त्यः स्वबुद्ध्या सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या, रागरोषौ प्रच्छाद्यौ कालयोगेन मृदुपरुषगुणौ कार्यौ लोकानुवृत्तम् = ज्ञेयम् परचरनयनैः मण्डलम् प्रेक्षितव्यम् इह आत्मा यत्नात् रक्ष्यः पुनः रणशिरसि सः अपि न रक्षितव्यः।

व्याख्या—धर्म इति = धर्मः प्रागेव = पूर्वमेव, चिन्त्यः = विवेचनीयः, स्वबुद्ध्या = स्वधिया, सचिवमतिगतिः = मन्त्रिबुद्धिमार्गः, प्रेक्षितव्या = अवलोक्या रागरोषौ = कामक्रोधौ, प्रच्छाद्यौ = वशान्नियम्यौ, कालयोगेन = समयानुसारेण, मृदुपरुषगुणौ = मार्दवपारुष्ये, कार्यौ = विधेयौ, लोकानुवृत्तम्= जनाचरितम्, ज्ञेयम् = बोधव्यम्, परचरनयनैः = परे ये चरास्तन्नयनैः = परगुप्तचरनेत्रैः, मण्डलम् = राष्ट्रम् प्रेक्षितव्यम् = अवलोकनीयम्। इह = लोके आत्मा = स्वशरीरम्=यत्नात्=प्रयत्नात्, रक्ष्यः=रक्षणीयः, रणशिरसि= सङ्ग्रामाङ्गणे पुनः सोऽपि = आत्मापि न अवेक्षणीयः=न अपेक्षणीयः, तस्यापि रक्षा न कर्तव्या सर्वथा विजयाय युधि गन्तव्यः पराजयान्मरणं श्रेयस्करम्। इत्थं राज्यं महाभारः।

स्नान की बेला बीत रही है, राज पुत्री को आश्वासन भी देना है, महारानी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहीं होंगी। और लोग भी श्रीमान् को देखना चाहते हैं।

राजा—ओह! राज्य महाभार हैं—

इसमें पहले धर्म देखना होता है, अपनी बुद्धि से मन्त्रियों का विचार जानना होता है, रागद्वेष को छिपाना पड़ता है, समय-समय पर कोमलता और कठोरता का अनुसरण करना होता है, प्रजा वर्ग के आचरण को जानना होता है, गुप्तचरों द्वारा अपने राष्ट्र और बाहरी राष्ट्र की जानकारी रखनी

ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥१२॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे: ।)

प्रथमोऽङ्कः ।

भावः—धर्मचिन्ता पुरा मन्त्रिभावो विलोक्यः
क्रोधरागौ सुगोप्यौ मृदुत्वोग्रते च ।
योग्यकाले विधेये, चरैः प्रेक्षणीयं
रक्षणीयोऽयमात्मा रणे सोऽप्युपेक्ष्यः ॥

पड़ती है, हर समय में अपनी रक्षा करनी पड़ती है। संग्राम में अपनी रक्षा की भी उपेक्षा की जाती है ॥ १२ ॥

(सबका प्रस्थान)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः—भो ! ण जाणन्ति अवत्थाविसेसं इस्सरपुत्ता णाम। अदो तत्तभवं अविमारओ इसिसावेण कुलपरिब्भंसं अन्तअकुलप्पवासं अत्तणो विण्णाणं गुरुजणं च अचिन्तअन्तो जदा हत्थिसम्भमदिअसे कुन्तिभोअदुहिआ कुरंगी दिट्ठा, तदप्पहुदि, अण्णादिसो विअ संवुत्तो। ही ही किं बहुणा, मए वि सह गोट्ठि णेच्छदि, सव्वआलं चिन्तअन्तो अहिरमदि। सच्चो खुलीअप्पवादो 'सङ्घआरिणो अणत्थ' त्ति। को एत्थ सम्बन्धो। सा राअदारिआ सअं अन्तअ त्ति। अहं पि दाव बम्हणपरिवादं परिहरन्तो बम्हणकुलेसु परिब्भमिअ पच्छण्णो तत्तहोदो आवासं एव्व गच्छामि। [भोः ! न जानन्त्यवस्थाविशेषमीश्वरपुत्रा

अवस्थाविशेषम् = समयपरिवर्तनम् , ईश्वरपुत्राः = राजपुत्राः, तत्रभवान् = माननीयः, ऋषिशापेन = चण्डालो भवेति वर्षव्यापिना शापेन हस्तिसंभ्रमदिवसे = मत्तगजस्य क्रीडोद्यानं प्रविश्य तत्रत्यान् पीडयतो निग्रहदिवसे। अन्यादृशः = चण्डालताविशदृशः, संवृत्तः = जातः, गोष्ठीं नेच्छति = जनैः सह वासं न काययते, सर्वकालम् = सर्वदा, चिन्तयन्नभिरमते = चिन्तितो भवति, सहचारिणोऽनर्थाः = एकस्यानर्थस्य सम्पातेऽन्येप्यागच्छन्ति। "छिद्रेष्वनर्था वहुलीभवन्तीति' लोकोक्तिः। सा राजदारिका = राजपुत्री, स्वयमन्त्यजः = चण्डालः कोऽत्र संबन्धः = संबन्धयोग्यता नास्ति। अवस्थापरिभ्रष्टे = स्वदशाच्युते, अवहुकार्यतया = कार्याधिक्याभावेन, मुहूर्तकम्=कियन्तं कालम् निर्वेदं विनोदयामि = मनोऽनुरञ्जयामि।

ब्राह्मणेन किं कार्य्यम् = किमर्थं ब्राह्मणमन्विष्यसि।

विदूषक—ये राजा के लड़के अवस्था के परिवर्तन को नहीं समझते हैं। इसीलिये यह अविमारक ऋषि के शाप के कारण कुल-पतन, अन्त्यज कुल-प्रवास, अपना ज्ञान तथा गुरुजन सब कुछ भूलकर, जब से उस हस्ति-संभ्रम के दिन कुन्तिभोज की लड़की कुरङ्गी दिखाई दी, तभी से कुछ और ही

नाम । अतस्तत्रभवान् अविमारकः ऋषिशापेन कुलपरिभ्रंशमन्त्यजकुलप्रवासमात्मनो विज्ञानं गुरुजनं चाचिन्तयन् यदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरङ्गी दृष्टा, तदाप्रभृत्यन्यादृश इव संवृत्तः । ही ही किं वहुना, मयापि सह गोष्ठीं नेच्छति, सर्वकालं चिन्तयन्नभिरमते । सत्यः खलु लोकप्रवादः 'सङ्चारिणोऽनर्था' इति । कोऽत्र सम्वन्धः । सा राजदारिका स्वयमन्त्यज इति । अहमपि तावद् ब्राह्मणपरिवादं परिहरन् ब्राह्मणकुलेषु परिभ्रम्य प्रच्छन्नस्तत्रभवत आवासमेव गच्छामि ।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—एदस्सिं अवत्थापरिब्भट्ठे राअउले अबहुकय्यदाए णअरं पेक्खिदुं णिग्गदम्हि । (परिक्रम्यावलोक्य) अयि एसो अय्यसन्तुट्ठो गच्छइ । होदु, एदेण सह हसन्ती मुहुत्तअं णिव्वेदं विणोदेमि । (उपसृत्योर्ध्वमवलोक्य) हला कोमुदिए ! किं लद्धो बम्हणो । किं भणासि–ण लभामि त्ति । [एतस्मिन्नवस्थापरिभ्रष्टे राजकुलेऽवहुकार्यतया नगरं प्रेक्षितुं निर्गतास्मि । अयि एष आर्यसन्तुष्टो गच्छति । भवतु, एतेन सह हसन्ती मुहूर्तकं निर्वेदं विनोदयामि । हला ! कौमुदिके ! किं लब्धो ब्राह्मणः । किं भणसि—न लभ इति ।]

तरह का हो गया है । हः हः ! और तो और मेरे साथ भी बैठना नहीं चाहता है । सदा कुछ विचारता रहता है । लोग ठीक ही कहते है, अनर्थ अकेला नहीं होता है । यहाँ कौन सम्बन्ध ? वह राजकन्या है स्वयं अन्त्यज है, मैं भी ब्राह्मणों की निन्दा को बचाता हुआ ब्राह्मणों के घरों में घूमता हुआ छिपकर उस के आवास में जाता हूँ ।

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—इस अवस्था परिभ्रष्ट राजकुल में काम कम होने के कारण नगर देखने निकली हूँ । (चलकर तथा देखकर) अरे यह आर्य सन्तुष्ट जा रहे हैं । इनके साथ हंस खेलकर जरा दिल वहला लूं । (समीप जाकर और ऊपर देखकर) सखी कौमुदिके ! क्या ब्राह्मण मिल गये ? क्या कहा ? अभी नहीं मिले ।

विदूषकः—चन्दिए। किं एदं ! [चन्द्रिके ! किमेतत् ।]

चेटी—अय्य ! कञ्चि बम्हणं अण्णेसामि। [आर्य ! कञ्चिद् ब्राह्मणमन्विष्यामि ।]

विदूषकः—बम्हणेण किं कय्यं ! [ब्राह्मणेन किं कार्यम् ।]

चेटी—किमण्णं, भोअणत्थं णिमन्तेदुं। [किमन्यद्, भोजनार्थं निमन्त्रयितुम् ।]

विदूषकः—भोदि ! अहं को, समणओ। [भवति ! अहं कः, श्रमणकः ।]

चेटी—तुवं किल अवेदिओ। [त्वं किलावैदिकः ।]

विदूषकः—किस्स अहं अवेदिओ सुणाहि दाव। रामाअणं णाम णट्टसत्थं। तस्सि पञ्च सुलोआ असम्पुण्णे संवच्छरे मए पठिदा। [कस्मादहमवैदिकः। शृणु तावत्। अस्ति रामायणं नाम नाटयशास्त्रम्। तस्मिन् पञ्च श्लोका असम्पूर्णे संवत्सरे मया पठिताः ।]

चेटी—जाणामि जाणामि। अय्यस्स कुलोइदो ईदिसो मेधाविभावो। [जानामि जानामि। आर्यस्य कुलोचित ईदृशो मेधाविर्भावः ।]

विदूषकः—ण केवलं सुलोआ एव, तेसं अत्थो वि मुणिओ। अण्णं च। अवरो विसेसो, बम्हणो दुल्लहो अवखरञ्जो अत्थञ्ञो अ।

विदूषक—चन्द्रिके ! यह क्या ?

चेटी—किसी ब्राह्मण की खोज कर रहीं हूँ।

विदूषक—ब्राह्मण से क्या कार्य है ?

चेटी—और क्या ? भोजन के लिये निमन्त्रण देना है।

विदूषक—अरी मैं क्या संन्यासी हूँ।

चेटी—तुम वैदिक नहीं हो।

विदूषक—कैसे मैं अवैदिक हूँ। सुनो-रामायण नाम का नाटक है। वर्ष पूरा नहीं हो पाया और मैंने इसके पाँच श्लोक पढ़ लिये।

चेटी—जानती हूँ। आपकी यह बौद्धिक प्रखरता कुल-क्रम से आयी है।

विदूषक—केवल श्लोक ही नहीं, उनके अर्थ को भी जानता हूँ,

[न केवलं श्लोका एव, तेषामर्थोऽपि ज्ञातः । अन्यच्च । अपरो विशेषः, ब्राह्मणो दुर्लभोऽक्षरज्ञोऽर्थज्ञश्च ।]

चेटी—तेण हि भणाहि किं णाम एदं अक्खरं। [तेन हि भण किं नामैतदक्षरम् ।] (नाममुद्रिकां दर्शयति)

विदूषकः—(आत्मगतम्) अजाणमाणो किं भणिस्सं। (विचार्य) भोदु दिट्ठं। एवं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) भोदि ! इदं अक्खरं मम पुत्थए णत्थि। [अजानानः किं भणिष्यामि। भवतु दृष्टम्। एवं तावद् भणिष्यामि भवति ! एतदक्षरं मम पुस्तके नास्ति ।]

चेटी—जदि ण जाणासि, अदक्खिणं भुञ्जेहि । [यदि न जानासि, अदक्षिणं भुङ्क्ष्व ।]

विदूषकः—भोदु भोदु । [भवतु भवतु ।]

चेटी—पेक्खामि दाव अय्यस्स अंगुलीअअं। [पश्यामि तावदार्यस्याङ्गुलीयकम् ।]

विदूषकः—पेक्ख पेक्ख ममकेरअं दंसणीअं। [पश्य पश्य मदीयं दर्शनीयम् ।]

चेटी—(गृहीत्वा) एसो भट्टिदारओ इदो एव्व आअच्छदि । [एष भर्तृदारक इत एवागच्छति ।]

मुझमें यह विशेषता है। अक्षर जाने और उसका अर्थ भी जाने, ऐसे ब्राह्मण दुर्लभ होते हैं।

चेटी—अच्छा तो कहो यह कौन अक्षर है (नाम लिखी अंगूठी दिखाती है)।

विदूषक—(अपने आप) मैं अनजान क्या बताऊँगा, (सोचकर) समझ गया यही कहूँगा (प्रकट) यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है।

चेटी—अगर नहीं जानते तो विना दक्षिणा के भोजन करो।

विदूषक—अच्छा अच्छा।

चेटी—जरा आपकी अंगूठी देखूँ।

विदूषक—देखो देखो। मेरी अंगूठी देखने लायक है।

चेटी—(लेकर) यह राजकुमार इधर ही आ रहे हैं।

विदूषकः—(परावृत्यावलोक्य) कहिं कहिं तत्तभवं। [कुत्र कुत्र तत्रभवान् ।]

चेटी—विलोभिदो मुद्धबम्हणो। इमं जणसमूहं पविसिअ चउप्पहमग्गे वञ्चिअ गमिस्सं। (निष्क्रान्ता) [विलोभितो मुग्धब्राह्मणः। इयं जनसमूहं प्रविश्य चतुष्पथमार्गे वञ्चयित्वा गमिष्यामि।]

विदूषकः—(सर्वतो विलोक्य) चन्दिए ! चन्दि ! कहिंए कहिं चंदिआ हा वंचिदो म्हि। गंडभेददासीए सीलं आणंतो वि अत्तणो भोअणविस्सम्भेण छालिदो म्हि (परिक्रम्य) भोअणं वि सलिअं चिंतेति। (अग्रतो विलोक्य) हंत एसा धावइ। चिट्ठ चिट्ठ अधम्मिट्ठदासि ! चिट्ठ। किं धावइ एव। जाव अहं वि धावामि। (धावति) मम पादा सिविणे हत्थिणा आसादिअमाणस्स विअ तहिं तहि एव्व पडन्ति। हन्त कुम्भदासीए वुत्तन्तं तत्तहोदो णिवेदइस्सं। [चन्द्रिके ! चन्द्रिके ! कुत्र कुत्र चन्द्रिका। हा वञ्चितोऽस्मि। गण्डभेददास्याः शीलं जानन्नप्यात्मनो भोजनविश्रम्भेण च्छलितोऽस्मि। भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि। हन्तैषा धावति। तिष्ठ तिष्ठ अधर्मिष्ठदासि ! किं धावत्येव। यावदहमपि धावामि।

गण्डभेददास्याः = गर्हितचरित्राया दास्याः, भोजनविश्रम्भेण = भोजनविश्वासेन, छलितः = वञ्चितः, भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि यथा वञ्चितः-तत्कथितं भोजनमपि मिथ्यैव सम्भवेत्। अधर्मिष्ठदासि = पापदासि। हस्तिना आसाद्यमानस्य=करिणा गृहीतस्य, तत्र तत्रैव पततः = तस्मिन्नेव स्थाने पततः, अग्रे न गच्छतः इत्यर्थः।

विदूषक—(मुड़कर) कहाँ ? कहाँ हैं राजकुमार ?

चेटी—ठग लिया इस बेवकूफ ब्राह्मण को। इस जन समूह में मिलकर चौराहे पर ठगकर निकल जाऊँगी। (चली गयी)

विदूषक—(चारो ओर देखकर) चन्द्रिके ! कहाँ कहाँ है चन्द्रिका ? हाय ठगा गया। मैं इस कलमुही दासी का स्वभाव जानता था तथापि भोजन मिलने की आशा से ठगा गया। (चलकर) भोजन निमन्त्रण भी झूठा हो सकता है (आगे देखकर) हाय यही तो दासी जा रही है मैं भी दौड़ता हूँ।

मम पादौ स्वप्ने हस्तिनासाद्यमानस्येव तत्र तत्रैव पततः। हन्त ! कुम्भदास्या वृत्तान्तं तत्रभवते निवेदयिष्यामि।]

(निष्क्रान्तः)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशत्युपविष्टोऽविमारकः।)

अविमारकः—

अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीं
बालां भयाकुलविलोलविषादनेत्राम्।

अन्वयः—अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीम् भयाकुलविलोलविषादनेत्रां बालाम् नित्यम् स्वप्नेषु उपलभ्य पुनः विबोधे जातिस्मरः प्रथमजातिम् इव स्मरामि ॥ १ ॥

व्याख्या—अद्यापीति—अद्यापि=बहुतिथे काले गतेऽपि संप्रति, हस्तिनः करस्य शीकरैः शीतलानि अङ्गानि यस्याः सा ताम् तथोक्ताम्=करिकर-जलकणसुषीरशरीराम्, भयेन आकुले विलोले विषादनेत्रे यस्यां सा तथोक्ताम् भीतिव्याकुल-चञ्चल-विषण्ण-लोचनाम्, बालाम् = नवयौवनाम् नित्यम्=प्रतिरात्रि, स्वप्नेषु = स्वप्नकालेषु, उपलभ्य = प्राप्य पुनः= तदनन्तरं, विबोधे=जागरे, जातिस्मरः=जातेः पूर्वजन्मनः स्मरो यस्य स

(दौड़ता है) मेरे पैर जहाँ के तहाँ ही पड़ रहे है, जैसे सपने में हाथी पकड़ लिया हो हाय, इस अभागी दासी की सारी बातें महाराज से कहूँगा।

(निष्क्रान्तः)

इति प्रवेशकः।

(बैठे हुये अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—हाथी के सूंड़ के जलकणों से सिक्त शीतल शरीर वाली, एवं भय से व्याकुल चञ्चल तथा विषाद पूर्ण नेत्र वाली उस नवयौवना

स्वप्नेषु नित्यमुपलभ्य पुनर्विबोधे
जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि ॥ १ ॥

अहो बलमनङ्गस्य। कुतः,

दृष्टिस्तदाप्रभृति नेच्छति रूपमन्यद्
बुद्धिः प्रहृष्यति विषीदति च स्मरन्ती।

तथाभूतः = योगशक्त्या पूर्वजन्मस्मरणसिद्धिशाली प्रथमजातिम् = पूर्वजन्म इव स्मरामि = स्मृतिविषयतामानयामि ॥ १ ॥

वसन्ततिलकावृत्तम्।

भावः—करिकरसलिलसुषीमां भयलोलदृशमद्यापि तां बालाम्।
स्वप्ने दृष्ट्वा बुद्धः पूर्वजन्मेव जातिस्मरोऽध्येमि ॥ १ ॥

अहो बलमनङ्गस्य = आश्चर्यजनकं कामस्य बलम्, कुतः=तदुपपादयति—

अन्वयः—तदाप्रभृति दृष्टिः अन्यरूपम् न इच्छति, (ताम्) स्मरन्ती बुद्धिः प्रहृष्यति विषीदति च, वदनम् पाण्डुत्वम्, शरीरम तनुताम् एति, दिवसेषु शोकम्, निशासु मोहम् व्रजामि।

व्याख्या—दृष्टिरिति—तदाप्रभृति = तद्दर्शनकालादारभ्य, दृष्टिः = नयनम् अन्यरूपम् = अन्यसौन्दर्यम् द्रष्टुम् न इच्छति = न वाञ्छति ताम् स्मरन्ती = ध्यायमाना, बुद्धिः = मतिः, प्रहृष्यति = अतिमनोहरं तद्रूपं स्मृत्वा प्रसीदति, तद्दौर्लभ्यं विचार्य च विषीदति = विषादमनुभवति वदनम् = मुखम्, पाण्डुत्वम्=पीतिमानम्, शरीरम् = देहः तनुताम् = कार्श्यम्, एति = प्राप्नोति, दिवसेषु = अहःसु, शोकम् = तदनवाप्तिजन्यां शुचम्,

---

राजकुमारी को आज भी नित्य रात में स्वप्न काल में देखकर जगा हुआ पूर्वजन्म स्मरण करने वाला जैसे पूर्वजन्म का स्मरण करता है उस प्रकार याद करता हूँ ॥ १ ॥

अहो, काम कितना प्रबल है क्योंकि—

उस काल से मेरी दृष्टि दूसरे को देखना नहीं चाहती है। बुद्धि उसका

पाण्डुत्वमेति वदनं तनुतां शरीरं
शोकं व्रजामि दिवसेषु निशासु मोहम् ॥ २ ॥

अथवा अयुक्तमधृतित्वं पुरुषाणाम्। सङ्कल्प्यमानो हि विजृम्भते मदनः। तस्मादहमिदानीं न सङ्कल्पयामि। (स्मृत्वा) अहो तस्या रूप सम्पद्, रूपानुरूपं यौवनं, यौवनसदृशं सौकुमार्यम्। अत्र हि,

प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं
गता वा स्त्रीरूपं कथमपि च ताराधिपरुचिः।

निशासु = रात्रिषु मोहम् = मूर्च्छाम् व्रजामि = गच्छामि। एतादृशं दशा-विवर्तं जनयन्कामः आश्चर्यजनकः।

भावः—पाण्डुवक्त्र तदारभ्य देहः कृशो
द्रष्टुमन्यन्न दृष्टिः शुभे वाञ्छति।
बुद्धिराधाय मोदं विषादं समैति
शोकयुक्तो दिवा मूर्च्छितोऽहं निशि ॥ २ ॥

अधृतित्वम् = धीरताभावः, सङ्कल्प्यमानः = सङ्कल्पविषयतामापाद्यमानः, विजृम्भते = वृद्धि गच्छति। यौवनसदृशं सौकुमार्यम् = यौवनानुकूलं सौन्दर्यम्। मतिस्मृत्योरत्र सन्धिः, भावसन्धिः, एकावल्यलङ्कारः।

अन्वयः—धात्रा युवति वपुषाम् प्रतिच्छन्दम् रचितम् किन्नु, वा ताराधिपरुचिः कथमपि स्त्रीरूपम् गता च, वा श्रीः जलशयनं सुप्तम् कृष्णम् विहाय कृतभया अ...स्त्रीरूपम् धृता क्षितिपतिगृहे तिष्ठति ॥ ३ ॥

व्याख्या—प्रतिच्छन्दमिति—धात्रा = ब्रह्मणा, युवति वपुषाम् = तरुणीशरीराणाम् प्रतिच्छन्दम् = आदर्शम्, रचितम् = विहितम् किन्नु, वा =

स्मरण करके कष्ट और विषाद दोनों को प्राप्त करती है, मुख पीला एवं शरीर दुबला होता जा रहा है, दिन शोक और रात में मोह घेरे रहता है ॥ २ ॥

अथवा पुरुषों का धैर्यहीन होना उचित नहीं है। संकल्प करने से ही काम बढ़ता है, इसलिये मैं सङ्कल्प नहीं करूँगा (स्मरण करके) ओह !

विहाय श्रीः कृष्णं जलशयनसुप्तं कृतभया
धृतान्यस्त्रीरूपं क्षितिपतिगृहे वा निवसति ॥ ३ ॥

कथमयं पुनरारब्धश्चिन्तयितुम् । किमिदानीं करिष्ये । मनश्च तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते । इह हि,

प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते ।
चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा ॥ ४ ॥

अथवा ताराधिपरुचिः = नक्षत्रेशकान्तिः, कथमपि = केनापि प्रकारेण, स्त्रीरूपम् = कामिनीकायम्, गता = प्राप्ता च । वा = अथवा, श्रीः = लक्ष्मीः जलशयनम् = सलिलशय्याशायिनम् कृष्णम् = विष्णुम्, विहाय कृतभया = जातभीतिः, अन्यस्त्रीरूपम् = इतरनारीशरीरम् धृता = गृहीता क्षितिपति-गृहे = भूपतिगेहे, तिष्ठति = वर्तते ।

भावः—व्यधितविधिरिमां किं सर्वनारीनिदर्शं
कथमपि शशिकान्तिः स्त्रीस्वरूपं गता वा ।
सलिलशयनसुप्तं श्रीपतिं श्रीर्विहाय
क्षितिपतिगृहमाप्त्वा भीतचित्ता स्थिता वा ॥ ३ ॥

आरब्धश्चिन्तयितुम् = चिन्ताकर्तुमारब्धवान्, मदिच्छया न प्रवर्तते = मामिकामिच्छां नानुसरति ।

अन्वयः—प्रयत्नेन प्रतिषिद्धम् क्षणमात्रम् न वीक्षते, दुर्गुणितम् शास्त्रम् यथा चिराभ्यस्तपथम् याति ।

व्याख्या—प्रतिषिद्धमिति—प्रयत्नेन = प्रयासेन, प्रतिषिद्धम् = व्यावर्तितम् क्षणमात्रम् = स्तोकमपि कालम् न वीक्षते = स्वमार्गं नालोकते यथा = येन प्रकारेण, दुर्गुणितम् = दुरभ्यस्तम्, शास्त्रम् = व्याकरणादि, चिराभ्य-

---

कैसा उसका रूप था रूप के अनुसार जवानी और जवानी के समान सुकुमारता, यहाँ उस ब्रह्मा ने सारी युवतियों के शरीर का आदर्श बनाया है क्या ? अथवा चन्द्रमा की कान्ति ने ही किसी तरह स्त्री का रूप धारण कर लिया है, अथवा लक्ष्मी समुद्र में सोये विष्णु को छोड़कर डर से दूसरी स्त्री का रूप धारण करके राजा के घर निवास कर रही है ॥ ३ ॥

अथवा न शक्यं मनो जेतुम् । चिन्तयिष्याम्येनाम् । अहो सर्वेषां स्त्रीगुणानामेकत्र समवायः (चिन्ताभिभूत उपविशति)

(ततः प्रविशति धात्री नलिनिका च ।)

धात्री—(सवितर्कम्) अहो सङ्कडदा कय्यस्स । जइ एवं करीअदि, राअउलं दूसिअं होइ । जदि ण करोअदि, अवस्सं मा विवज्जइ । मए अणेएहि उवाएहि विआरिदं च । मम वि सा अज्ज वि पच्छादेदि । अहव किं ताए पच्छादिदं । सा तदप्पहुदि सुमणावण्णअं णेच्छदि, आहारं णाभिलसदि, ण रमदि गोट्ठीजणेण, दिग्घं णिस्ससदि, असम्बद्धं कहेदि, कहिदं ण जाणादि, गूढं हसदि, विवित्ते रोदिदि, रोअं अवदि-

---

स्तम् = वारं वारं दुरभ्यस्तरूपमेव मन आरोहति । सदैव तस्याश्चिन्तनाभ्यासात् तत्रैव याति ॥ ४ ॥

भावः—असतोमार्गाद् निगृह्य न सत्पथे स्थाप्यते मयका ।
दुर्व्यवसितमिव शास्त्रं वारं वारं मनोऽभ्येति ॥ ४ ॥

सङ्कटतां = सङ्कटपूर्णतां, यद्येवं क्रियते = प्रच्छाद्य राजकुमारो राजकुमार्य्यां प्रदीयते । सा = राजकुमारी । विपद्यते --प्राणान् प्रत्यक्ष्यति । यमपि

क्यों फिर भी मैं उसी की चिन्ता करने लगा । इस काल में मैं क्या करूँ । मन तो मेरी इच्छा के अनुसार नहीं चलता है । यहाँ पर तो—

मना करने पर भी क्षणमात्र नहीं मानता है, वारंवार उसी का स्मरण करता है । अशुद्ध याद किया गया शास्त्र वारंवार अशुद्ध ही मन पटल पर आरूढ़ हो जाता है ।

अथवा मन नहीं जीता जा सकता । तो उसी की चिन्ता करूँगा । ओह सभी प्रकार के सभी गुणों का वह एकत्रीकरण है । (चिन्ता से युक्त होकर बैठ जाता है)

(धात्री तथा नलिनिका का प्रवेश)

धात्री—(कुछ सोचती हुई) ओह कार्य की कठिनता । यदि ऐसा करें तो राजकुल दूषित होता है, न करें तो निश्चित राजकुमारी मर जाती है । मैंने अनेक प्रकार से विचारा है । आज भी हमसे भी छिपाती है । अथवा

सदि, तणुआ होदि, पण्डभावं गच्छदि। एकं पि तहिं अच्छरिअं। एवं विधेहि अवत्थाविसेसेहि अत्तणो लज्जाए भएण कुलमाणेण बालभावेण अ एकस्सा वि किञ्चि ण मन्तेदि। [अहो सङ्कटता कार्यस्य। यद्येवं क्रियते, राजकुलं दूषितं भवति। यदि न क्रियतेऽवश्यं सा विपद्यते। मयानेकैरुपायैर्विचारितं च। ममापि साद्यापि प्रच्छादयति। अथवा किं तया प्रच्छादितम्। सा तदाप्रभृति सुमनोवर्णकं नेच्छति, आहारं नाभिलषति, न रमते गोष्ठीजनेन, दीर्घं निःश्वसिति, असम्बद्धं कथयति कथितं न जानाति, गूढं हसति, विविक्ते रोदिति, रोगमपदिशति, तन्वी भवति, पाण्डुभावं गच्छति। एकमपि तत्राश्चर्यम् एवंविधैरवस्थाविशेषैरात्मनो लज्जया भयेन कुलमानेन बालभावेन च एकस्या अपि किञ्चिन्न मन्त्रयते।]

नलिनिका— किस्स ण मन्तेदि। मम सव्वं कहेदि। [कस्मान्न मन्त्रयते। मम सर्वं कथयति।]

प्रच्छादयति = स्वाभिप्रायं कथयति। सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्। गोष्ठीजनेन = प्रियसखीसङ्गमेन असंबद्धम् = असङ्गतम्, विविक्ते = एकान्ते, रोगमपदिशति = रोगव्याजं करोति। कुलमानेन = कुलगौरवेण।

अवस्थां ज्ञात्वा = परिस्थितिं परिचिन्त्य। सर्वथा = सर्वेण प्रयत्नेन, एतेन = राजपुत्रेण योजय = घटय। तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत् = एवंविध शूरत्वदयालुत्वगुणयुक्ता = अन्त्यजा न भवन्ति, महिष्या = राज्ञ्या। स सन्देहः = चण्डालत्वसन्देहः, अतिरिक्तगुणः = अस्मादधिकगुणान्वितः।

उसने क्या छिपाया। वह तभी से फूल की माला नहीं लेती है, भोजन करना नहीं चाहती है। सखियों की सङ्गति नहीं करती है। लम्बी साँस लेती है। असम्बद्ध बोला करती है। कहा हुआ नहीं समझती है। छिपा कर हँसती है। एकान्त में रोती है। रोग का बहाना करती है। दुबली होती जा रही है, पीली पड़ गयी है। इस पर भी यह आश्चर्य है कि वह इस स्थिति में भी भय ने कुल-गौरव तथा बाल्यभाव के चलते किसी से कुछ नहीं कहती है।

नलिनिका—क्यों नहीं कहती हमसे तो सारी बातें कह देती है।

धात्री—हला ! जाणामि दे अभिप्पाअं, अवत्थं जाणिअ सव्वहा इमं एदेण जोजेहि त्ति । [हला ! जानामि तेऽभिप्रायम, अवस्थां ज्ञात्वा सर्वथेमामेतेन योजयेति ।]

नलिनिका—किन्नु खु ईदिसो तादिसेहि गुणविसेसेहि अकुलीणो भवे । [किन्नु खल्वीदृशस्तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत् ।]

धात्री—तहि च सन्देहो । सुदं च भए भट्टिणीए समीवे अमच्चेहि किल भणिदं—ण सो तादिसो दुक्खुलजो त्ति। अत्ताणं केणवि कारणेण पच्छादेदि त्ति । [तत्र च सन्देहः । श्रुतं च मया भट्टिन्याः समीपेऽमात्यैः किल भणितं—न स तादृशः दुष्कुलज इति । आत्मानं केनापि कारणेन प्रच्छादयतीति ।]

नलिनिका—को णु खु भवे । [को नु खलु भवेत् ।]

धात्री—जदि सो सन्देहो णत्थि, को अण्णो अदिरित्तगुणो जामातुओ भवे । [यदि स सन्देहो नास्ति, कोऽन्योऽतिरिक्तगुणो जामाता भवेत् ।]

(नेपथ्ये)

यदि च विभवरूपज्ञानसत्त्वादयः स्यु-
र्न तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः ।

अन्वयः—कुलविकलानाम् विभवरूपज्ञानवित्तादयः यदि च स्युः वृत्त-

धात्री—हाँ री, मैं तुम्हारा मतलब समझती हूँ अवस्था देखकर इसे उससे दिला दो ।

नलिनिका—क्या ऐसा व्यक्ति इस तरह के गुणों के रहते अकुलीन हो सकता है ।

धात्री—उसमें सन्देह है मैंने महारानी के पास मन्त्रियों से सुना है कि वह किसी कारण से अपने को छिपा रहा है ।

नलिनिका—यह कौन हो सकता है ।

धात्री—यदि वह सन्देह नहीं है तो कौन इससे अधिक गुण वाला दामाद मिल सकता हैं ।

(नेपथ्य में)

यदि सम्पति-सौन्दर्य-ज्ञान-बल आदि हो भी जाय तो भी कुलहीनों का

ध्रुवमिह कुलमस्य श्रोष्यसि प्राप्तकाले
त्यज कुलगतशङ्कां साध्यतां स्वन्तमेतत् ॥ ५ ॥

धात्री—हला ! केण ख्खु भणिदं [हला ! केन खलु भणितम् ।]

नलिनिका—एत्थ को वि ण दिस्सदि । [अत्र कोऽपि न दृश्यते ।]

धात्री—पहिट्ठरोमकूवं मे सरीरं । असंसअं दव्वेण भणिदं । अहं

शुद्धिः न वर्तते । इह अल्पप्राप्तकाले ध्रुवं कुलम् श्रोष्यसि कुलगतशङ्कां त्यज एतत् स्वन्तम् साध्यताम् ।

व्याख्या—यदि चेति–कुलविकलानाम्=नीचकुलोत्पन्नानाम्, विभवरूपज्ञानसत्वादयः = धनसौन्दर्यविचारशौर्यादयः, यदि स्युः=भवेयुर्नाम वृत्तशुद्धिः= चरित्रशुद्धिः न तु वर्तते = नास्ति चेत् इह = अस्मिन् विषये, अस्य = पुरुषस्य, प्राप्तकाले = अवसरे प्राप्ते सति ध्रुवम् = निश्चयेन, कुलम् = वंशम्, श्रोष्यसि, ज्ञास्यसि, कुलगतशङ्काम् = वंशविषयकसन्देहम्, त्यज = जहीहि, स्वन्तम् = सत्परिणामम् एतत् साधय = इदं करु । कुलीनोऽयं अनेन राजकुमारीं योजयेत्यर्थः । शालिनी नाम छन्दः ॥ ५ ॥

भावः—वित्तसौन्दर्यवीर्य्यादयः सन्त्वलं

दुष्कुलानां चरित्रं नहीदृग् भवेत् ।
अस्य वंशं ध्रुवं ज्ञास्यसि प्राप्तकाले
कार्य्यमेतत् त्वया सत्फलं साध्यताम् ॥ ५ ॥

चरित्र निर्मल नहीं हो सकता है । निश्चय ही तुम इसके कुल के विषय में समय आने पर जान लोगे इस अच्छे परिणाम वाले कार्य को करो ॥ ५ ॥

धात्री—अरी यह किसने कहा—

नलिनिका—यहाँ तो कोई नहीं दीख रहा है ।

धात्री—मेरा रोमाञ्च हो गया है, निश्चय ही दैव ने कहा है । मैं जानती हूँ, यह (वचन) मनुष्य का केवल नहीं है ।

पुण जाणामि ण एसो केवलो माणुसत्ति। [प्रहृष्टरोमकूपं मे शरीरम्। असंशयं दैवेन भणितम्। अहं पुनर्जानामि नैष केवलो मानुष इति।]

नलिनिका— गदो तस्स कुलसन्देहो। अम्हाणं वअणं करेदि ण करेदि त्ति चिंतेमि। (विचिन्त्य) धण्णो खु सो जणो इमं एवं उम्मादेदि। किं बहुणा, सअं कामदेवो वि भट्टिदारिआए रूवं तेक्खिअ किलिस्सदि। तेण सो वि किलिस्सिदि त्ति तक्केमि। [गतस्तस्य कुलसन्देहः। अस्माकं वचनं करोति न करोतीति चिन्तयामि। धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति। किं बहुना, स्वयं कामदेवोऽपि भर्तृदारिकाया रूपं प्रेक्ष्य क्लिश्यते। तेन सोऽपि क्लिश्यत इति तर्कयामि।]

धात्री—हला ! एसो तस्स आवासो, जं तदा हत्थिसम्भमदिअसे कोदूहलेण आअदम्ह। [हला ! एष तस्यावासः, यं तदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कौतूहलेनागते स्वः।]

नलिनिका—हला ! अहो दस्सणीअं किदोवहारं च दुवारमुहं।

प्रहृष्टरोमकूपम् = उदञ्चद्रोमाञ्चम्, गतः कुलसन्देहः = तदीयकुलविषयेऽधुना सन्देहो नाऽस्ति। इमामेवमुन्मादयति = धीरधियमपि कुमारीमुन्मत्तं करोति = सौन्दर्यविशेषशालितया स धन्य इत्यर्थः। तस्य = राजकुमारस्य आवासः = निवासस्थानम्, हस्तिसम्भ्रमदिवसे = गजोपद्रवदिने, कौतूहलेन = क्वायं निवसतीति जिज्ञासाकौतूहलेन। दर्शनीयम् = सुन्दरम्, कृतोपहारम् = सुसज्जितम्, चतुःशाले = बहिर्गृहे, सुखमार्यस्य = भवतः।

नलिनिका—इसके वंशगत संशय का तो अन्त हो गया। देखें हमारी बात मानता है या नहीं। वह धन्य है जिसके लिए इस तरह पागल हो रहा है। और क्या, स्वयं कन्दर्प भी राजकुमारी के रूप को देखकर दुःखी हो जाय। इसीलिए यह भी दुःखी हो रहा है ऐसा सोचती हूँ।

धात्री—अरी, यही न उसका निवास-स्थान है जहाँ हाथी वाले उपद्रव के दिन हम दोनों आई थीं।

नलिनिका—इसका दरवाजा कितना सुन्दर तथा अलङ्कृत है ? चलो प्रवेश करें।

हला ! एहि पविसामो । [हला ! अहो दर्शनीयं कृतोपहारं च द्वारमुखम् । हला ! एहि प्रविशावः ।]

धात्री—हला ! कहिं भट्टिदारओ किं भणासि—चउस्साले वत्तदि त्ति । [परिक्रम्यावलोक्य] अअं अम्हाणं भट्टिदारओ । एको एव किं वि चिन्तअन्तो चिट्ठई । [हला ! कुत्र भर्तृदारकः । किं भणसि—चतुःशाले वर्तत इति । अयमस्माकं भर्तृदारक एक एव किमपि चिन्तयंस्तिष्ठति ।]

नलिनिका—हला ! णं पिविसामो । [हला ! ननु प्रविशावः ।]

धात्री—एवं करेम्ह । (प्रविश्य) सुहं अय्यस्स । [एवं कुर्वः । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—अहो तस्या रूपसम्पत् ।

धात्री—(साकुलम्) किण्णु हु भवे । सुहं अय्यस्स ! [किन्नु भवेत् । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः

धात्री—अम्मो पिप्पलवदि । [अम्भो विप्रलपति ।]

अन्वयः—उरःस्तनतटालसम् जघनभारखिन्ना तनुः मुखम् नयनवल्लभम् प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् भये अपि यदि नयनपात्रपेयम् वपुः, सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम् तत् कथन्नु भवेत् ।

धात्री—अरी, राजकुमार कहाँ है ? क्या कहा—चतुःशाल में है ? यही तो हमारे राजकुमार कुछ सोचते हुए बैठे हैं ।

नलिनिका—अरी, चलो चलें ।

धात्री—ऐसा करें । (प्रवेश करके) आप आनन्द से तो हैं ?

अविमारक—अहा, कैसा विलक्षण था उसका रूप ।

धात्री—(आकुलता के साथ) जाने क्या होता है । आप सानन्द तो हैं ?

अविमारक—छाती स्तन के भार से अलस है, शरीर जघन के भार से भिन्न है ।

धात्री—अरे, यह तो विप्रलाप कर रहा है ।

अविमारकः—

मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् ।

धात्री—घण्णो खु सो जणो इमं एवं उन्मादेदि । [धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति ।]

अविमारकः—

भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः

धात्री—सुत्थितं कय्यं [सुस्थितं कार्यम् ।]

अविमारकः—

कथन्नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत् ॥ ६ ॥

व्याख्या—उरः स्तनतटेति—उरः = वक्षस्थलम्, स्तनभारालसम्, स्तनभारेणालसम् = कुचभाराक्रान्तम् जघनभारखिन्ना = नितम्बगौरव-पीडिता, तनुः = शरीरम्, मुखम् = आननम् , नयनवल्लभम् = नेत्रसुन्दरम्, प्रकृतिताम्रविम्वाधरम् = सहजरक्तविम्वफलसदृशाधरोष्ठम् भयेऽपि = भय-समयेऽपि तादृशम् = विलक्षणसौन्दर्ययुक्तम्, नयनपात्रपेयम् = नेत्रैः सादर-मवलोकनीयम्, वपुः = शरीरम् । सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम् = रतिकालमध्ये विलासयुक्तम्, कथन्नु = कीदृशं नु; भवेत् = स्यात् । भयकालेऽपि सुन्दरं तद् रतिकालेऽलौकिकसौन्दर्ययुक्तं स्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥

भावः—अलसगमना श्रोणीभारात्, समुन्नमितस्तनी

नयनसुषमाऽसीमश्रीकमनोहरमाननम् ।

भयसमुदयेऽपीदृक् रूपं तदीयवपुर्यदि

सुरतसमये नानाभावं भवेत्तु कथं विधम् ॥ ६ ॥

अविमारक—मुख आँख की सुन्दरता से पूर्ण हैं, अधर स्वाभाविक लालिमा से भरा है ।

धात्री—धन्य है वह स्त्री जिसके लिए यह इस तरह पागल हो रहा है ।

अविमारक—भय की स्थिति में भी यदि उसका रूप देखते ही बनता था तो फिर—

धात्री—काम वन गया ।

अविमारक—सुरत (कामक्रीड़ा) के मध्य में विलासों से पूर्ण उसका चेहरा कितना सुन्दर होगा ।

धात्री—सा एव इमं उम्मादेदि। [सैवेममुन्मादयति।]

नलिनिका—सुट्ठु भणिदं—एसो वि किलिस्सिदि त्ति। [सुष्ठु भणितम्—एषोऽपि क्लिश्यत इति।]

धात्री—सुट्ठु विञ्ञादं तुए। सुहं अय्यस्स। [सुष्ठु विज्ञातं त्वया। सुखमार्यस्य।]

अविमारकः—(विलोक्य सव्रीडम्) स्वागतं भवतीभ्याम्।

उभे—अवि सुहं। [अपि सुखम्।]

अविमारकः—भविष्यति वां दर्शनेन।

धात्री—अय्य ! चिन्तीअदि। [आर्य ! किं चिन्त्यते।]

अविमारकः—भवति ! शास्त्रं चिन्त्यते।

धात्री—किं णाम एदं रमणीअं सत्थं विवित्थे चिन्तीअदि। [किं नामैतद् रमणीयं शास्त्रं विविक्तं चिन्त्यते।]

अविमारकः—भवति ! योगशास्त्रं चिन्त्यते।

धात्री—(सस्मितम्) पडिग्गहिदं मङ्गलवअणं। जोअसत्थं एव्व होदु। [प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनम्। योगशास्त्रमेव भवतु।]

धात्री—राजकुमारी ही इसको उन्मत्त कर रही है।

नलिनिका—तुम ने ठीक समझा।

अविमारक—(देखकर, लज्जा से) स्वागत हो आप लोगों का।

उभे—आप आनन्द से हैं ?

अविमारक—आप लोगों के दर्शन से आनन्द हो जायगा।

धात्री—आप क्या सोच रहे हैं।

अविमारक—मैं शास्त्र की चिन्ता कर रहा हूँ।

धात्री—कौन सा सुन्दर शास्त्र है जिसका आप एकान्त में चिन्तन कर रहे हैं।

अविमारक—मैं योगशास्त्र का चिन्तन कर रहा हूँ।

धात्री—(मन्दहास्य के साथ) इस मङ्गलवचन को स्वीकार करती हूँ। योगशास्त्र ही हो।

अविमारकः—(आत्मगतम्) को नु खलु वाक्यार्थः । अन्यदप्यभिलाषवशादन्यथा सङ्कल्पयामि । (प्रकाशम्) किमभिप्रेतं भवत्याः ।

धात्री— जोअं इच्छन्तीओ आअदम्ह । अणुमदो अय्येण जोओ त्ति णं णिट्ठिदं कय्यं अम्हाअं राअउले विवित्ते अवआसे । तहिं पि को वि जणो अहिअदरं जाअं चिन्तअन्तो अच्छदि । तेण सह तहिं एव अय्येण सुट्ठु जोअविहाणं चिन्तीअदु त्ति । [योगमिच्छन्त्यावागते स्वः । अनुमत एव आर्येण योग इति ननु निष्ठितं कार्यमस्माकं राजकुले विविक्ते अवकाशे । तत्रापि कोऽपि जनोऽधिकतरं योगं चिन्तयन्नस्ति । तेन सह तत्रैवार्येण सुष्ठु योगविधानं चिन्त्यतामिति ।]

अविमारकः—कथमद्यापि सावशेषाणि मे भाग्यानि । (आसनादुत्थाय) भवति ! पुनर्दत्ता इव मे प्राणाः । कुतः,

---

को नु खलु वाक्यार्थः—आभ्यां किमुच्यते, अन्यदपि = इतरार्थमपि, अभिलाषवशात् = स्वरूपानुरागवशात् । निष्ठितम् = सुसम्पन्नम् । तत्रापि कोऽपि जनः = राजकुलेऽपि = राजपुत्रीरूपः । सावशेषाणि = अवशिष्टानि, भाग्यशेषतयैवैतादृशावसरलाभः । पुनर्दत्ताः = पुनः प्रत्यर्पिताः भवत्योरीदृशवचनेन जीवितोऽस्मि जानामि भवतीभ्यामेव प्राणादत्ताः ।

अविमारक—(स्वगत) इसका क्या अर्थ है, दूसरी वस्तु को भी अभिलाषवश अन्य रूप में विचारने लगता हूँ । (प्रकट) आपका क्या अभिप्राय है ।

धात्री—हम लोग योग की इच्छा से ही आयी थी, आप ने भी योग की अनुमति दे दी है इससे हमारा काम बन गया, वह एकान्त राजकुल में सम्पन्न होगा । वहाँ भी कोई उत्कट रूप से योग की चिन्ता कर रहा है । उसके साथ आप भी अच्छी तरह से योग चिन्ता करें ।

अविमारक—क्या अभी भी मेरे भाग्य बचे हुए हैं (आसन से उठकर) क्योंकि—

तस्या भयाकुलितदृष्टिविषं मनोज्ञं
सौम्यप्रकारमतितीक्ष्णमवेक्ष्य वक्त्रम् ।
उन्मादमभ्युपगतोऽस्मि चिरं भवत्यो-
र्वाक्यामृतेन पुनरद्य कृतः ससंज्ञः ॥ ७ ॥

धात्री—दिट्ठआ अय्येण परिपालिदो अअं जणो। अलमदिप्पसङ्गेण। अज्ज एव पविसिदव्वं कण्णाउरं। अमच्चो अय्यभूदिओ कण्णाउररक्खओ कासिराअदूदेण सह अम्हाअं महाराएण पूइदो पत्थिदो अ। [दिष्टचार्येण परिपालितोऽयं जनः। अलमतिप्रसङ्गेन। अद्यैव

अन्वयः—भयाकुलितदृष्टिविषम् सौम्यप्रकारम् अतितीक्ष्णम् तस्या मनोज्ञम् वक्त्रम् अवेक्ष्य, चिरम् उन्मादम् अभ्युपगतः अद्य पुनः भवतीभ्यां वचनेन ससंज्ञः कृतः अस्मि ॥ ७ ॥

व्याख्या—तस्या इति—भयेनाकुला दृष्टिरेव विषं यस्मिन् तादृशम् = भयचञ्चलदृष्टिगरलम्, सौम्यप्रकारम् = अतिशयसुन्दरम्, अतितीक्ष्णम् = कामावेशजनकत्वात् तीव्रतरम्, तस्याः = राजपुत्र्याः, मनोज्ञम् = सुन्दरम् वक्त्रम् = मुखम्, अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, चिरम् = चिरकालम् = उन्मादः = मतिविक्षेपः, अधिगतः = प्राप्तः, अद्य पुनः = इदानीं तु भवतीभ्याम् = युवाभ्याम्, वचनेन ससंज्ञः = सचेतनः, कृतः = विहितोऽस्मि ।

भावः—भयचलदृशा विषाक्तं सौम्यं तीक्ष्णं निरीक्ष्य तद्वक्त्रम् ।
चिरमुन्मत्तोयुवयोर्वचनेनानेन लब्धवान् संज्ञाम् ॥

अयं जनः परिपालितः=ईप्सितपूरणेन जीवितः, अतिप्रसङ्गेन = विलम्बेन, प्रथमः कल्पः = राजकुलप्रवेशलक्षणं प्रस्तावः स्वीकृतः । कस्तावद् औषध-

---

उसके भयाकुल नयनों से सुन्दर सौम्य, मनोहर, अतितीक्ष्ण मुख को देखकर मैं पागल हो गया था, इस समय आप लोगों के वाक्यामृत ने हम को होश में ला दिया है ॥ ७ ॥

धात्री—सौभाग्य से आपने हम लोगों को बचा लिया, विलम्ब करने की जरूरत नहीं, आज ही कन्यान्तःपुर में प्रवेश कीजिये, कन्यान्तःपुर के रक्षक अमात्य भूतिक काशीराज दूत के साथ गये हैं ।

प्रवेष्टव्यं कन्यापुरम् । अमात्य आर्यभूतिकः कन्यापुररक्षकः काशिराजदूतेन सहास्माकं महाराजेन पूजितः प्रस्थितश्च ।]

अविमारकः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । भवति ! कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः ।

धात्री—पवेसमत्तं एव्व दुल्लहं । सक्कं अब्भन्तरे चिरं वसिदुं । [प्रवेशमात्रमेव दुर्लभम् । शक्यमभ्यन्तरे चिरं वस्तुम् ।]

अविमारकः—प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः । क्रियतामनर्गलविशाला प्रासादमाला ।

धात्री—एवं करेम्ह । सव्वं अब्भन्तरकरणीअं संपादेम्ह । अप्पमत्तो एव पविसदु अय्यो । [एवं कुर्वः । सर्वमभ्यन्तकरणीयं संपादयावः । अप्रमत्त एव प्रविशत्वार्यः ।]

मुपलक्ष्य मन्दीभवत्यातुरः, = विरहरोगातुरोऽहम् औषधमिव भवत्प्रस्तावं श्रुत्वा विलम्बं न करिष्यामि । अप्रस्तुतप्रशंसा । प्रवेशमात्रमेव दुर्लभम् बहुरक्षित्वात् प्रवेशः कठिनः प्रवेशे लब्धे चिरं तत्र वक्तुं शक्यते ।

प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः = अहं निश्चितं प्रवेक्ष्यामीति प्रत्येयम्, अनर्गलविशाला प्रासादमाला = अर्गलहीनैः कपाटैः विवृतविशालद्वारा राजगृह-

---

अविमारक—अच्छी बात है, कौन ऐसा रोगी होगा जो औषध मिलने पर विलम्ब करेगा ।

धात्री—प्रवेश पाना ही कठिन है भीतर जाकर बहुत दिनों तक सुख से रहा जा सकता है ।

अविमारक—आप लोग यही समझें कि मैं प्रवेश पा चुका । केवल आप लोग प्रासाद के किवाड़ खुला छोड़ दें ।

धात्री—हम ऐसा ही करेंगे, भीतर का सारा काम हम कर लेगी, आप सावधानी से प्रवेश करें ।

अविमारकः—भवति ! सकृदभिधीयतां राजकुलस्य विधानम् ।

धात्री—एवं विअ । [एवमिव ।]

अविमारकः—हन्त भोः !

श्रुत्वा तु राज्ञो गृहसंविधानं प्रविष्टमात्मानमवैति बुद्धिः ।
न पौरुषं वै परदूषणीयं न चेद् विसंवादमुपैति दैवम् ॥ ८ ॥

(विचिन्त्य) भवति ! कोऽस्माकमस्मिन् कार्ये प्रत्ययः ।

समूहा । अभ्यन्तरकरणीयम् = तत्र प्रविष्टैः कर्तव्यम् अप्रमत्तः = सावधानः, राजकुलविधानम् = तत्र निवासार्थं कर्तव्यज्ञानम् ।

अन्वयः—राज्ञः गृहसंविधानम् श्रुत्वा तु बुद्धिः आत्मानं प्रविष्टम् अवैति, पौरुषम् परदूषणीयम् न वै, चेत् दैवम् विसंवादम् न उपैति ।

व्याख्या—श्रुत्वेति—राज्ञः = कुन्तिभोजस्य, गृहसंविधानम् = कन्यान्तःपुरं प्रविश्य करणीयं कार्य्यजातम् श्रुत्वा=आकर्ण्य तु, बुद्धिः=मतिः, आत्मानम्= स्वम्, प्रविष्टम् = कृतप्रवेशम्, अवैति = जानाति । पौरुषम् = पुरुषार्थः, परदूषणीयम् = परैः तिरस्करणीयम्, नाऽस्ति । चेद्=यदि, दैवम् = भाग्यम् विसंवादम् = प्रतिकूल्यम्, न उपैति = न प्राप्नोति ॥ ८ ॥

भावः—तत्रत्यं कर्तव्यं श्रुत्वा जाने प्रविष्टोऽहम् ।
दैवानुकूल्ये जाते पुरुषार्थो मे परैरहार्य्योऽस्ति ॥ ८ ॥

प्रत्यक्षः = विश्वासः इदं कार्यं भविष्यतीति कथं विश्वासः कार्यः ।

अविमारक—आप एक बार बता दें कि राजकुल में कैसा व्यवहार किया जाता है ।

धात्री—(कान में) ऐसे ही ।

अविमारक—यहाँ राजा के गृह का व्यवहार सुनकर मेरी बुद्धि समझ रही है कि मैंने राजकुल में प्रवेश पा लिया । मेरा पराक्रम दूसरे की निन्दा करने योग्य नहीं है, यदि भाग्य प्रतिकूल न हो ॥ ८ ॥

(सोचकर) भद्रे ! इस कार्य में हमको विश्वास कैसे हो ।

उभे—अअं पच्चओ। जेदु भट्टिदारओ। [अयं प्रत्ययः। जयतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—हन्त गम्यतां सम्प्रति। प्रतीक्ष्यतामर्धरात्रम्।

उभे—जं भट्टिदारओ आणवेदि (निष्क्रान्ते) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अहो णअरस्स सोहा संपदि। अत्थं आसादिदो भअवं सुय्यो दीसइ दहिपिण्डपण्डरेसु पासादेसु अग्गापणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसङ्क्रदो विअ। गणिआजणो णाअरिअजणो अ अण्णोण्णविसेसमण्डिदा अत्ताणं दंसइदुकामा तेसु तेसु पासादेसु सविब्भमं सञ्चरन्ति। अहं तु तादिसाणि पेक्खिअ उन्मादिअमाणस्स तत्तहोदो रत्तिसहाओ होमि त्ति णअरादो णिग्गदो म्हि। सो वि दाव अम्हाअं अधण्णदाए केण वि अणत्थसञ्चिन्तणेण अण्णादिसो विअ संवुत्तो। एदं तत्तहोदो आवासगिहं। अज्ज णअरापणालिन्दे सुणामि तत्तहोदो

अहो नगरस्य शोभा = विस्मयकारिणी नगरशोभा, अस्तमासादितः = अस्तंगतः दधिपिण्डपाण्डरेषु = दधिपिण्डधवलेषु, अग्रापणालिन्देषु = पण्यवीथिकालिन्देषु, प्रसारितगुडमधुरसङ्क्रत इव प्रसारितस्य गुडस्य मधुनश्च रसमास्वादयितुमिव तत्र प्रतिबिम्बितः सूर्यो लक्ष्यते। गणिका = वेश्या, अन्योन्यविशेषमण्डितौ = परस्परस्पर्धयेव समधिकमण्डितशरीरौ, सविभ्रमम् =

दोनों—ऐसे विश्वास होगा। राजकुमार की जय हो।

अविमारक—अच्छा आप लोग जायँ, आधीरात में मेरी प्रतीक्षा करें।

दोनों—राजकुमार की जैसी आज्ञा।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अहा, इस समय नगर की शोभा विचित्र है। अस्ताचल को प्राप्त सूर्य दही की तरह सफेद कोठों तथा अँगने की सहन पर पसारे गुडमधु की तरह शोभित हो रहे हैं। वेश्यायें एवं विलासी लोग एक से एक वेश-भूषा से सुसज्जित होकर अपने को दिखलाने की इच्छा से कोठे पर टहल रहे हैं।

गिहादो णिग्गदा राअदारिआए धत्ती सही अ त्ति। किं णु खु एत्थ कय्यं। अहव हत्थिहत्थचञ्चलाणि पुरुसभग्गाणि होन्ति। अहव गच्छदु अणत्थो अम्हाअं। अवत्थासदिसं राअउलं पविसामि। (प्रविश्य) ही ही एसो अत्तभवं कामुअजणवण्णएण अणुलित्तो विअ पण्डुभावेण इदो एव आअच्छदि। अहव सव्वं अलङ्कारो होदि सुरूवाणं (उपेत्य) जेदु भवं। [अहो नगरस्य शोभा सम्प्रति। अस्तमासादितो भगवान् सूर्यो दृश्यते दधिपिण्डपाण्डरेषु प्रासादेष्वग्रापणालिन्देषु प्रसारितगुडमधुरसङ्गत इव। गणिकाजनो नागरिकजनश्चान्योन्यविशेषमण्डितावात्मानं दर्शयितुकामौ तेषु तेषु प्रासादेषु सविभ्रमं संचरतः। अहं तु तादृशानि प्रेक्ष्योन्माद्यतस्तत्रभवतो रात्रिसहायो भवामीति नगरान्निर्गतोऽस्मि। सोऽपि तावदस्माकमधन्यतया केनाप्यनर्थसंचिन्तनेनान्यादृश इव संवृत्तः। एतत् तत्रभवत आवासगृहम्। अद्य नगरापणालिन्दे शृणोमि तत्रभवतो गृहान्निर्गता राजदारिकाया धात्री सखी चेति। किं नु खल्वत्र कार्यम्। अथवा हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति। अथवा गच्छत्वनर्थोऽस्माकम्। अवस्थासदृशं राजकुलं प्रविशामि।

सविलासम्। तादृशानि = कामसन्दीपनानि। उन्माद्यतः = सञ्जातोन्मादस्य। रात्रिसहायः = निशिसहचरः। अधन्यतया = अभाग्यतया। अनर्थसञ्चिन्तनेन= दुःखं विचारयता। तत्रभवतः = माननीयस्य राजकुमारस्य। अत्र = राजकुमारावासे, हस्तिहस्तचञ्चलानि=करिकरचपलानि, गच्छतु=नश्यतु, अनर्थः= दौर्भाग्यम्। कामुकजनवर्णकेन = कामिजनाकारेण, पाण्डुभावेन = धवलिम्ना सुरूपाणां सर्वमेवालङ्कारो भवति = सर्वावस्थास्वपि दर्शनीया भवन्ति। अतिविलम्बितम् = अधिकः विलम्बः कृतः। आमन्त्रणविप्रलब्धः = निमन्त्रणेन

मैं इसलिये नगर से निकला हूँ कि इस तरह के दृश्यों को देख उन्मत्त हुए राजकुमार की सहायता कर सकूँगा। वे आजकल कुछ अनर्थ की चिन्ता से दूसरी तरह के हो गये हैं। यही उनका निवास-स्थान है। मैंने बाजार में सुना है कि उनके घर से राजकुमारी की सखी और धात्री निकली हैं। उनका यहाँ क्या कार्य हो सकता है? अथवा पुरुष के भाग्य हाथी के सूंड़ की तरह चञ्चल होते हैं। अथवा—हमारे अनर्थ दूर हों। अवस्थानुकूल

ही ही एषोऽत्रभवान् कामुकजनवर्णकेनानुलिप्त इव पाण्डुभावेनेत एवागच्छति। अथवा सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम् । जयतु भवान् ।]

अविमारकः—वयस्य ! अतिविलम्बितमिव भवता नगरे।

विदूषकः—तुमं दाव आमन्तणविप्पलद्धो :विअ बम्हणो अहोरत्तं चिन्तेसि । अहं पि दाव दिअसे णअरं परिब्भमिअ अलद्धभोआ पाअडगणिआ विअ रत्तिं पस्सदो सइदुं आअच्छामि । [त्वं तावदामन्त्रणविप्रलब्ध इव ब्राह्मणोऽहोरात्रं चिन्तयसि । अहमपि तावद् दिवसे नगरं परिभ्रम्यालब्धभोगा प्राकृतगणिकेव रात्री पार्श्वतः शयितुमागच्छामि ।]

अविमारकः—सखे ! प्रियं ते कथयिष्यामि ।

विदूषकः—किं समत्तो अम्हाअं इसिसावो । [किं समाप्तोऽस्माकमृषिशापः ।]

अविमारकः—मूर्ख ! अवश्यं भवितव्येऽर्थे कः प्रहर्षः ।

प्रतारितः अलब्धभोजनः । अलब्धभोगा = अप्राप्तकामुकजना, प्राकृतगणिका= साधारणवेश्या इति ।

भवितव्ये अर्थे कः प्रहर्षः = ऋषिशापः सावधिकः स ममावधौ निवृत्ते

राजकुल में प्रवेश कर रहा हूँ। यही तो कामिजन की धवलता से युक्त राजकुमार हैं। ये इधर ही आ रहे हैं। सुन्दर लोगों के लिये सब कुछ सुन्दर ही होता है। जय हो आपकी ।।

अविमारक—मित्र ! आपने नगर में बहुत विलम्ब कर दिया ।

विदूषक—तुम तो निमन्त्रण में हो गये ब्राह्मण की तरह रात-दिन चिन्ता करते रहते हो, मैं भी दिन भर घूमकर कार्य्य के न मिलने पर वेश्या की तरह रात में बगल में सो जाता हूँ ।

अविमारक—मित्र ! तुम्हें खुशखबरी सुनाऊँगा ।

विदूषक—क्या हमारा ऋषि का शाप समाप्त हो गया ?

अविमारक—मूर्ख ! उस निश्चित होने वाले कार्य में क्या प्रसन्नता है।

विदूषकः—किं पुण अण्णं। [किं पुनरन्यत्।]

अविमारकः—किं न दृष्टा कुरङ्ग्या धात्री नलिनिका च।

विदूषकः—आम भो ! दिट्ठाओ तत्तहोदीओ ! किं आणीदं। [आम् भोः दृष्टे तत्रभवत्यौ। किमानीतम्।]

अविमारकः—अस्मच्छोकौषधमानीतम्।

विदूषकः—पेक्खामि दाव। [पश्यामि तावत्।]

अविमारकः—काले द्रक्ष्यसि। अद्य तावत् श्रूयताम्।

विदूषकः—भणादु भणादु भवं [भणतु भणतु भवान्।]

अविमारकः—किं बहुना। तत्रभवती ब्रवीति अद्यैव प्रवेष्टव्यं कन्यापुरमिति।

विदूषकः—(विहस्य) केण खु उवाएण अब्भन्तरं पविसिअ जीवग्गहणं पत्तुकामोऽसि। अमच्चा णाम विसमसीला कुन्तिभोअस्स।

स्वयंगतो भविष्यति निश्चिते कः प्रहर्षः। अस्मच्छोकौषधम् = शोकनिवारकम्। जीवग्रहणं प्राप्तुकामः = जीवितुमिच्छुः। विषमशीलाः = कठिनस्वभावाः, कुन्तिभोजामात्याः तैर्गृहीतश्चेत् कं स्वरक्षणोपायं चिन्तयसीति तदाशयः।

विदूषक—तो और क्या है ?

अविमारक—क्या तुमने कुरङ्गी की धात्री और नलिनिका को नहीं देखा है ?

विदूषक—हाँ, उन दोनों को तो देखा हैं। क्या लाईं थीं ?

अविमारक—उन दोनों ने मेरे जीवन की दवा लाई थीं।

विदूषक—देखें कहाँ है।

अविमारक—समय पर देख लेना, अभी सुनो।

विदूषक—कहिये कहिये आप।

अविमारक—अधिक क्या कहें महारानी ने कहा है आज ही कन्यान्तःपुर में प्रवेश करूँ।

विदूषक—(हँसकर) किस प्रकार अन्तःपुर में प्रवेश कर जीते रह सकोगे ? कुन्तिभोज के अमात्य बड़े कठोर हैं।

[केन खलूपायेनाभ्यन्तरं प्रविश्य जीवग्रहण प्राप्तुकामोऽसि । अमात्या नाम विषमशीलाः कुन्तिभोजस्य ।]

अविमारकः—कथं भवतापि शङ्कनीयम् । पश्य,

भग्ना मयैकेन पराः ससैन्या
अद्यापि गन्धेन न संश्रयन्ते ।
किं मानुषैः सोऽप्यसुरेश्वरो मे
हतो भुजाभ्यामविरूपधारी ॥ ९ ॥

अन्वयः—मया एकेन ससैन्याः पराः भग्नाः अद्यापि गन्धेन न संश्रयन्ते मानुषैः किम् अविरूपधारी सः असुरेश्वरः अपि मे भुजाभ्याम् हतः ।

व्याख्या—भग्न इति—मया एकेन = सहायकनिर्व्यपेक्षेण, ससैन्याः = सेनासहिताः पराः = शत्रवः, भग्नाः = पराजिताः, अद्यापि = इदानीमपि, गन्धेन = गर्वेण, न संश्रयन्ते = गर्वयुक्ता न भवन्ति, मानुषैः किम् = का गणना मनुष्याणाम्, अविरूपधारी = मेषाकारः, सः = प्रसिद्धो बलवान्, असुरेश्वरः = राक्षसराजः, मे = मम, भुजाभ्यां = हस्ताभ्याम्, हतः = मारितः । एवंविध-दृष्टमत्पराक्रमस्य तवापि तत्र गमने कापत्तिः शङ्का ॥ ९ ॥

भावः—एकलेनैव सैन्यैर्युताः शत्रवो
निर्जिता भग्नदर्पा मयापादिताः ।
का कथा मानवानां स रक्षोऽधिपो
मेषरूपो भुजाभ्यां मया मारितः ॥ ९ ॥

अविमारक—तुम भी शंका कर रहे हो ? देखो ।

विना किसी की सहायता से मैंने अकेले ही सेना से युक्त शत्रुओं को हरा दिया, वे आज भी गर्व-धारण नहीं कर रहे हैं । मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? भेड़े का रूप धारण करने वाले उस असुरराज को भी मैंने भुजा से मार दिया ॥ ९ ॥

विदूषकः—जाणामि जाणामि भवदो अमाणुसाणि कम्माणि। सव्वहा सङ्कणीओ रत्तिच्छण्णो परगिहप्पवेसो। [जानामि जानामि भवतोऽमानुषाणि कर्माणि। सर्वथा शङ्कनीयो रात्रिच्छन्नः परगृहप्रवेशः।]

अविमारकः—एष समासः। सर्वथा प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। तदनुमन्तुमर्हति महाब्राह्मणः।

विदूषकः—कहं मं उज्झिअ गच्छसि। अहं भवन्तं सव्वकालं ण मुञ्चामि। अक्कोसन्तो वि एक्को इच्छिदव्वो। [कथं मामुज्झित्वा गच्छसि। अहं भवन्तं सर्वकालं न मुञ्चामि। आक्रोशन्नप्येक एष्टव्यः]

अविमारकः—न जानाति भवान् शास्त्रमार्गम्।

एकः परगृहं गच्छेद् द्वितीयेन तु मन्त्रयेत्।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः॥ १०॥

एष समासः = सङ्क्षेपेणैतत्कथयामि, मया प्रवेष्टव्यं राजकुलम् = निर्भयं राजगृहं प्रवेक्ष्यामि, अनुजानातु = आज्ञापयतु। आक्रोशम् = विपदागमे शब्दायमानः, एष्टव्यः = अभिलषणीयः। शास्त्रमार्गम् = शास्त्रसिद्धान्तम्—

अन्वयः—एकः परगृहम् गच्छेत्, द्वितीयेन तु मन्त्रयेत्, बहुभिः समरम् कुर्य्यात् इति अयं शास्त्रनिर्णयः।

व्याख्या—एक इति—एकः = एकलः, परगृहम् = अन्यसद्म, गच्छेत् = यायात् द्वितीयेन = अपरेण, मन्त्रयेत् = कार्यनिर्णयम् कुर्य्यात् बहुभिः=अनेकैः

विदूषक—जानता हूँ, मैं आपके अमानवीय बल को, किन्तु-किन्तु रात में छिप कर दूसरे के घर में प्रवेश करना सर्वथा शङ्कनीय है।

अविमारक—यह संक्षेप है। निश्चय कर लिया हूँ, किसी भी प्रकार से राजा कुन्तिभोज के घर में अवश्य जाऊँगा। महाब्राह्मण हो मुझे अनुमति दो।

विदूषक—मुझे छोड़ कर क्यों जाते हो, मैं किसी समय आपको नहीं छोड़ता। आपत्ति पड़ने पर कोई पुकारने वाला भी तो चाहिये।

अविमारक—आप शास्त्र की बात नहीं जानते।

अकेला दूसरे के घर में प्रवेश करे, दो आदमी के साथ सलाह करे, और बहुतों के साथ युद्ध करे यह शास्त्र का निर्णय है॥ १०॥

तस्मादेकेनैव मया प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। न ते वयं शङ्कनीयाः। पश्यतु भवान्,

मितगुणमिह कुन्तिभोजसैन्यं
नृपभवनं विभवैः सुखं प्रवेष्टुम्।
वयमपि च भुजायुधप्रधानाः
किमिह सखे! भवतापि शङ्कनीयाः॥ ११॥

सहायैः, समरम् = सङ्ग्रामम्, कुर्य्यात् = सम्पादयेत् इत्ययम्=एवं रूपः अयम् शास्त्रेषु = नीतिषु, निर्णयः = सिद्धान्तः अस्तीति शेषः॥ १०॥

प्रकारान्तरेण—अन्यस्यैको गेहं यायान् मन्त्रं द्वाभ्यां कुर्य्याद्द्वा।
भूयोलोकैः कार्य्यं युद्धं राद्धान्तोऽयं नीतेर्ज्ञेयः॥ १०॥

अन्वयः—इह कुन्तिभोजसैन्यम् मितगुणम्, विभवैः (युक्तम्) नृपभवनम् प्रवेष्टुम् सुखम्, भुजायुधप्रधानाः वयम् अपि च। सखे! भवता अपि किम् शङ्कनीयाः॥ ११॥

व्याख्या—मितगुणमिति- इह = कन्यान्तःपुरे कुन्तिभोजस्य सैन्यम् = कुन्तिभोजनृपतेर्बलम्, मितगुणम् = अतिस्वल्पम् (अस्ति) विभवैः = सम्पत्या (युक्तम्) नृपगृहम् = राजसद्म प्रवेष्टुम् = अन्तर्गन्तुम् सुखम् = सुशकम्, भुजायुधप्रधानाः = बाहुप्रहरणप्रधानाः। वयमपि च = दृष्टपराक्रमा भवता सखे = मित्रं भवताऽपि = सुपरिचितमत्पराक्रमेण, शङ्कनीयाः किम् भवता मद्विषये शङ्का न कार्य्या अतो न मद्विपत्तिचिन्ता कार्य्या—पुष्पिताग्रा वृत्तम्॥ ११॥

भावः—परिमितसैन्यं कन्यासदनं विभवयुतं सुगमं नृपगेहम्।
वयमपि चिन्त्या भुजयुगशस्त्रा इह विषये किं भवता कथमपि॥ ११॥

अतः मैं अकेला ही कुन्तिभोज के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करूँगा। तुमको मेरे विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। आप देखें—

कुन्तिभोज की सेना साधारण (सीमित) है वैभवयुक्त राजगृह में प्रवेश सरल है, हम भी हाथों में शस्त्र धारण करने वाले हैं। मुझ पर तुम क्यों शङ्का कर रहे हो।

विदूषकः—जइ एवं किदो णिच्चओ, संपदि णअरं पविसामो। तहि मम अत्थि भित्तो। तस्स आवासे कालं पडिवालम्ह। [यद्येवं कृतो निश्चयः, संप्रति नगरं प्रविशावः! तत्र ममास्ति मित्रम्। तस्यावासे कालं प्रतिपालयावः।]

अविमारकः—सम्यग् भवानाह। साम्प्रतमभ्यन्तरं प्रविश्य कृताह्निको महाराजेनाभ्यनुज्ञातो वासगृहे शयनसंविधानं प्रविश्याज्ञातो नगरं प्रविश्य भवतो मित्रगृहे कालं प्रतिपालयामि। (प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिदारओ। आवुत्तं ह्णाणोदअं। [जयतु भर्तृदारकः। आवृत्तं स्नानोदकम्।]

अविमारकः—अयमयमागच्छामि। गच्छाग्रतः।

चेटी—ज भट्टिदारओ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति।]

अविमारकः—वयस्य! अस्तमितो भगवान् दिवाकरः। सम्प्रति हि—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।

प्रतिपालयावः = निशीथं कन्यागृहप्रवेशकालं प्रतीक्षावहे।

अन्वयः—पूर्वा काष्ठा तिमिरानुलिप्ता पश्चिमाशा च सन्ध्यारुणा भाति द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षम् अर्धनारीश्वररूपशोभां याति।

विदूषक—यदि यही निश्चय किया है तो चलो नगर में चलें, हमारा एक मित्र है उसी के घर बैठकर प्रतीक्षा करें।

अविमारक—आपने ठीक कहा। इस समय घर में जाकर दैनिक कार्य्यं करके पिता जी से आज्ञा लेकर वासगृह में प्रवेश कर छिपे-छिपे तुम्हारे मित्र के घर में जाकर समय की प्रतीक्षा करें।

चेटी—जय हो राजकुमार की। स्नान के लिये जल तैयार है, (जाती है)।

अविमारक—यह आया, तुम आगे चलो।

चेटी—जो राजकुमार की आज्ञा।

अविमारक—मित्र, भगवान् सूर्य्यं अस्त हो गये। इस समय—

पूर्व दिशा तो अन्धकार से अनुलिप्त है, पश्चिम दिशा सन्ध्याराग-

द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ १२ ॥

विदूषकः—सुट्ठु, भवं भणादि। अदिक्कन्दो दिअसो। आरूढो पओसो। [सुष्ठु भवान् भणति। अतिक्रान्तो दिवसः। आरूढः प्रदोषः।]

अविमारकः—अहो विचित्रस्वभावता जगतः। कुतः।

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।

व्याख्या—पूर्वा त्विति—पूर्वा=प्राची काष्ठा=दिशा, तिमिरानुलिप्ता= अन्धकारावृता, पश्चिमाशा = पश्चिमा दिक्, सन्ध्यारुणा = सायङ्कालिक-रागताम्रा, भाति = शोभते, द्विधा विभक्तम् = प्रकारद्वयेन पृथक्कृतम्, अन्तरिक्षम् = गगनम्, अर्धनारीश्वररूपकान्तिम् = वामभागनिहितपार्वतीक-शङ्कररूपम्, याति = प्राप्नोति तादृशं विभाति ॥ १२ ॥

भावः—ऐन्द्री तिमिराच्छन्ना तथा पराची समनुरक्ता।
वामावामार्धयुतां शैवीतनुमनुकरोति गगनम् ॥ ११ ॥

विचित्रस्वभावतां = प्रकृतेराश्चर्यकारित्वम्।

अन्वयः—व्यामृष्टसूर्यतिलकः विततोडुमालो, नष्टातपः मृदुमनोहर-शीतवातः, संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरः मनुष्यलोकः वेशान्तरम् रचयति इव।

व्याख्या—व्यामृष्टेति—व्यामृष्टं सूर्य्यतिलकं यस्य सः तथोक्तः = प्रोञ्छिततरणितिलकः, नष्टातपः = आतपरहितः, मृदुमनोहरशीतवातः =

से रक्त है, दो रूपों में विभक्त आकाश अर्धनारीश्वर (शिव) का अनुकरण कर रहा है ॥ १२ ॥

विदूषक—आप ठीक कर रहे हैं, दिन बीत गया प्रदोष आ गया है।

अविमारक—अहा! जगत् का स्वभाव विचित्र है। क्योंकि—

सूर्य्य रूपी चन्दन तिलक पुँछ गया, चारों तरफ तारा-गण व्याप्त हो गये घाम का ताप नष्ट हो गया, कोमल मनोहर शीतल हवा चलने लगी। कामी

संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

द्वितीयोऽङ्कः ।

सुखस्पर्शमनोरमशिशिरपवनः संलीनकामुकजनः = लीलागृहसन्निविष्टविलासिलोकः, प्रविकीर्णशूरः = सर्वतः प्रचलितशूरः मनुष्यलोकः = मानवजनः, वेषान्तरम् = भिन्नवेषम्, रचयति इव = धारयति इव ॥ १३ ॥

भावः—रवितिलकविहीनो व्याप्तनक्षत्रमालो
विगलितपरितापः शीतलस्पर्शवातः ।
अभिकनिलयलीनः सञ्चरद्वीरलोको,
रचयति निजवेशं नूतनं जीवलोकः ॥ १३ ॥

समाप्तः द्वितीयोऽङ्कः ।

लोग अपने वासगृह में छिप गये वीर लोग चारो तरफ घूम रहे हैं। सारे मनुष्य लोक के प्राणी मानो नया वेश बना लिये हैं ॥ १३ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

द्वितीय अंक समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी चेट्यौ च)

कुरङ्गी—हला ! किं तेण भणिअ [हला ! किं भणितम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! केण । [भर्तृदारिके ! केन ।]

कुरङ्गी—(स्वगतम्) हं भिन्दामि खु मन्दभाआ । (प्रकाशम्) कण्णेउरचेडेण । [भिनद्मि खलु मन्दभागा । कन्यापुरचेटेन ।]

मागधिका—दिट्ठो भए कण्णेउरचेडो । भणिदं च । ण किञ्चि आह । [दृष्टो मया कन्यापुरचेटः । भणितं च । न किञ्चिदाह ।]

कुरङ्गी—हन्त भट्टिणीए णिवेदेमि—कण्णेउरचेडो मम सुअपञ्जरं ण करेदि त्ति । [हन्त भट्टिन्यै निवेदयामि—कन्यापुरचेटो मम शुकपञ्जरं न करोतीति ।]

भिनद्मि = अपमानेन भिन्नहृदया भवामि। कन्यापुरचेटः = कन्यान्तःपुर-

---

(कुरङ्गी के साथ दो चेटियों का प्रवेश)

कुरङ्गी—उसने क्या कहा ?

चेटी—भर्तृदारिके ! किसने ?

कुरङ्गी—(स्वगत) मैं अपमान के दुःख से मरी जा रही हूँ । (प्रकट) कन्यापुर के भृत्य ने ।

मागधिका—मैंने कन्यापुर के भृत्य से भेंट की थी । कहा भी था । उसने कुछ भी नहीं कहा ।

कुरङ्गी—अच्छा मैं महारानी से कहूँगी । कन्यापुर का भृत्य मेरा शुकपञ्जर नहीं बना रहा है ।

मागधिका—णं णिट्ठदो सुअपञ्जरो भट्टिदारिए। [ननु निष्ठितः शुकपञ्जरो भर्तृदारिकायाः।]

कुरङ्गी—वाचाडे ! किं अण्णो वि अत्थि। [वाचाटे ! किमन्योऽप्यस्ति।]

मागधिका—भोदव्वं। [भवितव्यम्।]

कुरङ्गी—हला ! का वेला [हला ! का वेला।]

मागधिका—ओगाहो पओसो। [अवगाढः प्रदोषः।]

कुरङ्गी—तेण ही पासादं आलुहामो। [तेन हि प्रासादमारोहामः।]

मागधिका—विलासिणि ! अग्गदो जाहि। विरएहि सअणासणाणि। [विलासिनि ! अग्रतो याहि। विरचय शयनासनानि।]

विलासिनी—सुप्ता खु तुवं ! को कालो विरइदाणि सअणासणाणि। [सुप्ता खलु त्वम्। कः कालो विरचितानि शयनासनानि।]

मागधिका—हला ! जाणामि दे अलसत्तणं। दिवसरइदाणि भणासि रइदाणि त्ति। [हला ! जानामि तेऽलसत्वम्। दिवसरचितानि भणसि रचितानीति।]

चारकः। निष्ठितः = निर्मितः। वाचाटे = बहुभाषिणि। अवगाढः = घनीभूतः।

मागधिका—राजकुमारी का शुकपञ्जर तो बनकर आ चुका है।

कुरङ्गी—अरे बकवाद करने वाली ! क्या दूसरा भी है।

मागधिका—होना चाहिये।

कुरङ्गी—सखि, क्या समय है।

मागधिका—प्रदोष गाढ़ा हो रहा है।

कुरङ्गी—तब हम प्रासाद पर चढ़ें।

मागधिका—अरी, तू आगे चल बिछावन ठीक कर।

विलासिनी—क्या तुम सो रही थी, मैंने कभी से बिछावन ठीक कर दिया है।

मागधिका—मुझे तुम्हारा आलस्य ज्ञात है, दिन में ठीक किये गये बिछावन को अभी ठीक किया बताती है।

विलासिनी—हला ! मा एव्वं भणाहि। भट्टिदारिअं अन्तदेण अण्णादिसाणि होन्ति। [हला ! मैवं भण। भर्तृदारिकामन्तसेणान्यादृशानि भवन्ति।]

मागधिका—हला ! गदुअ जाणामि। [हला ! गत्वा जानामि।]

(सर्वाः परिक्रामन्ति।)

मागधिका—एसो पासादो। [एष प्रासादः।]

कुरङ्गी—अग्गदो जाहि ! [अग्रतो याहि।] (आरोहणं नाटयति।)

मागधिका—साहु विलासिणि ! साहु ! अत्तणो णामसदिसं किदं एदस्सि सिलादले रइदं सअणं। [साधु विलासिनि ! साधु ! आत्मनो नामसदृशं कृतम्। एतस्मिन् शिलातले रचितं शयनम्।]

विलासिनी—अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। मागधिए ! पेक्ख पेक्ख मे अलसत्तणं। [अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। मागधिके ! पश्य पश्य मेऽलसत्वम्।]

मागधिका—अदिपण्डिता खु सवुत्ता एवं पण्डितचेडवुत्तं भत्तारं लभेहि। [अतिपण्डिता खलु संवृत्ता। एवं पण्डितचेटवृत्तं भर्तारं लभस्व।]

अतिपण्डिता = अतिचतुरा, पण्डितचेटवृत्तम् = चतुरत्वेन ख्यातस्य

विलासिनी—ऐसा मत कहो। राजकुमारी क्या सोंचेंगी।

मागधिका—जाकर ही जान सकूंगी। (सभी जाती है)

मागधिका—यही प्रासाद है।

कुरङ्गी—आगे चल। (चढ़ती है)

मागधिका—शावास विलासिनी शावास, तुमने नामानुकूल काम किया है। इस शिलातल पर बिछावन लगा दिया है।

विलासिनी—मैंने भीतर के मण्डप में बिछावन लगा दिया है। देखो मेरा आलस्य ?

मागधिका—तुम बड़ी चालाक हो गयी हो। अपने ही समान चालाक स्वामी को प्राप्त करो।

कुरङ्गी—हला ! इमस्सि सिलादले मुहुत्तअं उववविसामि । [हला ! अस्मिन् शिलातले मुहूर्तकमुपविशामि ।]

मागधिका—जं भट्टिदारिआए रुइदं । होदु । [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम् । भवतु ।]

(सर्वा उपविशन्ति)

मागधिका—भट्टिदारिए ! कहेमि वक्खाण । [भर्तृदारिके ! कथयामि व्याख्यानम् ।]

कुरङ्गी—हला ! जाणामि दे असम्बद्धप्पलावं । [हला ! जानामि तेऽसंवद्धप्रलापम् ।]

मागधिका—भट्टिदारिए ! अभिणवा खु कहा । [भर्तृदारिके ! अभिनवा खलु कथा ।]

कुरङ्गी—याचेमि, मा णिब्बन्धिअ, मुहूत्तअं सआमि । [याचे, मा निर्बन्धय, मुहूर्तकं शये ।१]

विलासिनी—सुहं सइदु भट्टिदारिआ । मे कहेहि । [सुखं शेतां भर्तृदारिका । मह्यं कथय ।]

परिचारकस्य समाचारम् । व्याख्यानम् = कथाविशेषम् । असम्बद्धप्रलापम्= परस्परासम्बद्धकथाभिधायकत्वम् । याचे = प्रार्थये । मा निर्बन्धय = आग्रहं मा कार्षीः भर्तृदारिकामन्तरेण = राजपुत्रीं विना । परिभ्रष्टास्मि=पतितास्मि यदाभिमंम तस्मिन् यूनि अनुरागादिकं ज्ञातं तदा मम पतनं जातम् ।

कुरङ्गी—इस शिलातल पर थोड़ी बैठ लेती हूँ ।

मागधिका—जो राजकुमारी के लिये अच्छा लगे । अस्तु । (सब बैठती हैं) ।

मागधिका—अब मैं कहानी कहती हूँ ।

कुरङ्गी—मैं जानती हूँ तुम बेशिर-पैर की कहती है ।

मागधिका—यह बिलकुल नयी कथा है ।

कुरङ्गी—प्रार्थना करती हूँ, हठ मत करो । थोड़ा सो लेती हूँ ।

विलासिनी—राजकुमारी सुख से सोयें, हमको सुनाओ ।

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) किण् खु भवे ! [किनु खलु भवेत् ।]

मागधिका—हला ! सुणाहि भट्टिदारिअं अन्तरेण··· । [हला ! शृणुहि भर्तृदारिकामन्तरेण ।]

कुरङ्गी—हंह विदिदं रहस्सं । परिब्भट्ठम्हि । [हं विदितं रहस्यम् । परिभ्रष्टास्मि ।]

विलासिनी—हला । कहिं तुए सुदं । [हला ! कुत्र त्वया श्रुतम् ।]

मागधिका—भट्टिणीपरिचारिआए वसुमित्ताए कहिदं । [भट्टिनी-परिचारिकया वसुमित्रया कथितम् ।]

विलासिनी—सअं णाम भट्टिणीए कहिदं होदि । [स्वयं नाम भट्टिन्या कथितं भवति ।

मागधिका—अत्थि कासिराअपुत्तो जअवम्मा णाम । तस्स दिण्णा भट्टिदारिआ । तस्स अ दूदो आअदो महाराएण पूइदो । पडिग्गहिदं च वण्णिआरं । [अस्ति काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम । तस्मै दत्ता भर्तृदारिका । तस्य च दूत आगतो महाराजेन पूजितः । प्रतिगृहीतं च वर्णिकारम् ।]

कालान्तरितम् = विलम्बसम्पाद्यम् । स्वयौवनं सफलं संवृत्तम् = अनुकूलस्याभिलाभेन राजकुमार्या रूपं यौवनञ्च सफलं जातम् । प्रियनिवेद्यमानानि प्रियतराणि भवन्ति = प्रियजनेन सूचितो हि प्रियसमाचारोऽत्यन्तप्रियत्वं याति । सर्वं विश्वस्तं न भणति = मयि विश्वस्ता भूत्वा हृदयाभिलाषं

कुरङ्गी—(स्वगत) न जाने क्या बात है ?

मागधिका—सखि ! राजकुमारी के बिना सुनो—

कुरङ्गी —हाय मेरा रहस्य इसको मालूम हो गया । मैं भ्रष्ट हो गई ।

विलासिनी—तुमने कहाँ सुना ।

मागधिका—महारानी की परिचारिका वसुमित्रा ने कहा है ।

विलासिनी—तब तो महारानी ने कहा है ।

मागधिका—काशीराज का एक पुत्र जयवर्मा नाम का है । राजकुमारी उसको दी गयी है । उसका दूत भी आया था । महाराज ने उठकर सत्कार किया, वरण सामग्री भी ले ली ।

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) एदं अलिअं। अहं अत्तणो पभवामि। [एतदलीकम् अहमात्मनः प्रभवामि।]

मागधिका—तहि किल भट्टिणीए भणिदं—बाला खु मे दुहिआ, ण सक्कुणोभि एक्कंपि दिअसं अपेक्खन्ती जीविउं। जेदि मे महाराओ पसण्णो, एत्थ एव्व जामादुओ आणीदव्वो त्ति। [तत्र किल भट्टिन्या भणितं-बाला खलु मे दुहिता, न शक्नोम्येकमपि दिवसमपश्यन्ती जीवितुम्। यदि मे महाराजः प्रसन्नः, अत्रैव जामातानेतव्य इति।]

विलासिनी—तदो तदो। [ततस्ततः।]

मागधिका—तदो तं पि किल अणुमदं महाराएण। अज्ज णक्खत्तं सोभणं ति तेण अ दूदेण अमच्चो अय्यभूदिओ पत्थिदो। [ततस्तदपि किलानुमतं महाराजेन। अद्य नक्षत्रं शोभनमिति तेन च दूतेनामात्य आर्यभूतिकः प्रस्थितः।]

कुरङ्गी—(स्वगतम्) हन्त कालन्तरिदं कय्यं। (हन्त ! कालान्तरितं कार्यम्।)।

विलासिनी—पिअं भट्टिदारिआए रूव जोव्वणं सफलं संवुत्तं त्ति। (प्रियं भर्तृदारिकाया रूपयौवनं सफलं संवृत्तमिति।)

सर्वं न कथयति। लज्जते। काले पार्श्वतः प्रभवामि = यथावसरं समीपस्था भवामि।

कुरङ्गी—(स्वगतम्) यह असत्य है। मैं अपनी मालिक स्वयं हूँ।

मागधिका—इस पर महारानी ने कहा मेरी लड़की अभी छोटी है, उसको मैं एक दिन के लिये भी नजर से अलग नहीं कर सकती। यदि महाराज की मेरे ऊपर कृपा है तो दामाद को यहीं बुला लें।

विलासिनी—तब क्या हुआ।

मागधिका—महाराज ने वह भी स्वीकार कर लिया। आज शुभ समय था इसलिये दूत के साथ अमात्य आर्य भूतिक भी गये हैं।

कुरङ्गी—(स्वगत) अच्छा हुआ, यह कार्य्य विलम्ब से होगा।

विलासिनी—बड़ी खुशी की बात है। राजकुमारी का रूप एवं यौवन सफल हो गया।

(प्रविश्य)

नलिनिका—भणिदं हि मम मादाए—गच्छ एदं वुत्तन्तं भट्टिदारिआए कहेहि। पिअणिवेदिअमाणाणि पिआणि पिअदराणि होन्ति। अह अ सा वि मं पेक्खन्ती सव्वं विस्सत्थं ण भणादि। अहं पि काले पस्मदो पभवामि त्ति। जाव भट्टिदारिआए पिअं णिवेदेमि। (परिक्रामति) (भणितं हि मम मात्रा—गच्छैतं वृत्तान्तं भर्तृदारिकायै कथय। प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति। अथ च सापि मां पश्यन्ती सर्वं विश्वस्तं न भणति। अहमपि काले पार्श्वतः प्रभवामीति यावद् भर्तृदारिकायै प्रियं निवेदयामि।)

कुरङ्गी—कोणु खु अभूदपूव्वो रोओ चिन्तिअमाणो मं उम्मादेदि। सुमणावण्णअं णेच्छदि। न तुस्सदि गोट्ठीए। इदं एत्थ दारुणं मनोहरं च। (निःश्वस्य) णलिणिए ! किं एदं। [को नु खल्वभूतपूर्वो रोगश्चिन्त्यमानो मामुन्मादयति। सुमनोवर्णकं नेच्छति। न तुष्यति गोष्ठ्या। इदमत्र दारुणं मनोहरं च। नलिनिके ! किमेतत्।]

मागधिका—भट्टारिए ! माअधिआ खु अहं। [भर्तृदारिके ! मागधिका खल्वहम्।]

अभूतपूर्वः = पूर्वं कदाप्यजातः, सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्। सोपानशब्देन = सोपानोपरि जायमानेन मदीयपादन्यासशब्देन।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—मेरी माता ने कहा है कि यह समाचार जाकर राजकुमारी को सुनाओ। प्रियजन द्वारा कही प्रिय बात अत्यन्त प्रिय हो जाती है। तभी मुझे देखते ही सारी बाते खुलकर नहीं कहती है, मैं भी समय पर समीप आ जाऊँगी। अब मैं राजकुमारी को खुशखबरी सुना दूँ।

कुरङ्गी—(गहरी श्वास लेकर) यह कौन सा अपूर्व रोग है, जिसकी चिन्ता में मैं पागल होती जा रही हूँ। मुझे पुष्पमाला अच्छी नहीं लगती। लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता। यह तो अत्यन्त कष्टकर होते हुए भी मनोहर है। (श्वास लेकर) नलिनिके ! यह क्या बात है।

मागधिका—राजकुमारी ! मैं मागधिका हूँ।

विलासिनी—भट्टिदारिए ! विलासिणी खु अहं। [भर्तृदारिके ! विलासिनी खल्वहम् ।]

नलिनिका—(उपगम्य) भट्टिदारिए ! अहं णलिणिआ। सोवाण-सद्देण खु भट्टिदारिआए विञ्जादं। भट्टिदारिए ! भट्टिणी भणादि। (भर्तृदारिके ! अहं नलिनिका। सोपानशब्देन खलु भर्तृदारिकया विज्ञातम्। भर्तृदारिके ! भट्टिनी भणति।)

कुरङ्गी—किं त्ति। (किमिति।)

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ। (एवमिव।)

कुरङ्गी—हं हीणं चारित्तं। [हं हीनं चारित्रम्]

नलिनिका—णं सम्भावणीओ एसो। णं सो एव सो। [ननु संभावनीयं एषः ! ननु स एव सः।]

कुरङ्गी—णलिणिए ! संवाहेहि मं। [नलिनिके ! संवाहय माम्।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि। [यद् भर्तृदारिका। आज्ञापति।]

विलासिनी—णलिणिए ! विवाहो कदा भविस्सदि। [नलिनिके। विवाहः कदा भविष्यति।]

सम्भावनीयः = आदरेण गृहीतः।

विलासिनी—स्वामिनि ! मैं विलासिनी हूँ।

नलिनिका—(समीप जाकर) राजकुमारी ! मैं हूँ नलिनिका। सीढ़ी के शब्द से आपने जान लिया, महारानी ने कहा है।

कुरङ्गी—क्या कहा है ?

नलिनिका—(कान में) यही कहा है।

कुरङ्गी—हाय ! चारित्रिक पतन हो गया।

नलिनिका—ऐसा मत कहिये, निश्चय ही यह वही है।

कुरङ्गी—नलिनिके ! पकड़ ले मुझे।

नलिनिका—जो कुमारी की आज्ञा।

विलासिनी—विवाह कब होगा ?

(नेपथ्ये)

अद्य

नलिनिका—चिरं जीव ।

(नेपथ्ये)

राजपुरुषाः ! अमात्यः प्रस्थित इति कश्चिदमात्यभृत्यः कन्यापुर-रक्षणार्थं नाभ्यागतः । तद् यथेष्टं भवतु । तावदहं श्वो राज्ञे निवेदयिष्यामि ।

विलासिनी—हला णलिणिए ! किं भणिदं । [हला नलिनिके ! किं भणितम् ।]

नलिनिका—जदा सो भट्टिदारओ पविसदि, तदा होदि विवाहो । [यदा स भर्तृदारकः प्रविशति, तदा भवति विवाहः ।]

विलासिनी—अविग्घेण पविसदु । [अविघ्नेन प्रविशतु ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु]

मागधिका—हला ! एहि चउस्साले उपविसामो । [हला ! एहि चतुःशाले उपविशामः ।]

विलासिनी—एवं होदु । गदप्पाओ पओसो । आरूढा जोह्ला । [एवं भवतु । गतप्रायः प्रदोषः । आरूढा ज्योत्स्ना ।]

(नेपथ्य में) आज ।

नलिनिका—चिरकाल तक जीती रहो ।

(नेपथ्य में) राजपुरुषो ! अमात्य चले गये हैं, कोई अमात्य का भृत्य कन्यान्तःपुर की रक्षा करने नहीं आया । जो होता है होवे, कल मैं महाराज से निवेदन करूँगा ।

विलासिनी—सखि नलिनिके ! क्या कहा ?

नलिनिका—जब वह राजकुमार आयेंगे तब विवाह होगा ।

विलासिनी—निर्विघ्न भाव से प्रवेश करें ।

नलिनिका—ऐसा हो ।

मागधिका—चलो चतुःशाला में चलकर बैठें ।

विलासिनी—ऐसा ही हो, प्रदोष हो गया, चन्द्रिका फैल रही है ।

नलिनिका—हला ! मम वि अत्थरं अत्थरेहि । [हला ! ममाप्यास्तरमास्तृणु ।]

मागधिका—अत्थि अवआसो । सेवेहि भट्टिदारिअं, जाव णिद्दं लभदि । [अस्त्यवकाशः । सेवस्व भर्तृदारिकां, यावन्निद्रां लभते ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे निष्क्रान्ते)

(ततः प्रविशति खड्गहस्तश्चोरवेषेण रज्जुहस्तोऽविमारकः)

अविमारकः—(सविमर्शम्) भोः ! कष्टं तारुण्यं नाम । कुतः,

राग विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।

तारुण्यं कष्टं नाम = यौवनम् अतिकष्टकरम् ।

अन्वयः—रागम् विजृम्भयति, प्रमादम् संश्रयते दोषान् न चिन्तयति साहसम् अभ्युपैति स्वच्छन्दतः व्रजति, नीतिमार्गम् न इच्छति विदुषाम् शुभाम् बुद्धिम् अवशीकरोति ।

व्याख्या—रागमिति–रागम् विषयाभिलाषम्, विजृम्भयति = वर्धयति, प्रमादम् = असावधानताम्, संश्रयते = धारयति, दोषान् = अनर्थान्, न चिन्तयति = न विचारयति, साहसम् = दोषवत्कार्य्याध्यवसायम्, अभ्युपैति=

नलिनिका—सखि ! मेरा भी विस्तर लगा दे ।

मागधिका—अवकाश तो है, राजकुमारी की सेवा कर जब तक वह सो नहीं जाती ।

नलिनिका—यही हो (.दोनों का प्रस्थान) ।

(इसके बाद खड्ग तथा रस्सी हाथ में लिये चोर वेशधारी अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—(विचार करके) अहो ! जवानी बहुत कष्टकारक है, क्योंकि राग बढ़ता है, असावधानता को धारण करता है, अनर्थ का विचार नहीं करता है, दोष युक्त कार्य्य को हठात् कर देता है, गुरुजनों के नियन्त्रण

स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥ १ ॥

कथमात्माधीनेष्वर्थेषु मन्दीभवामि । इह हि,

नगरपरिचितोऽहं रक्षिणो ज्ञातसारा-
स्तिमिरगहनभीमं वर्तते चार्धरात्रम् ।

स्त्रीकरोति, स्वच्छन्दतः = गुर्वादिनियन्त्रणमवहेल्य चरति = व्यवहरति, सुविदुषाम् = महापण्डितानामपि-शुभाम्=स्वच्छाम्, बुद्धिम् = धियम्, अवशीकरोति = अस्वाधीनीकरोति = विधत्ते । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

भावः—रागोद्रेकोऽसावधानत्वमन्यत्
दोषानीक्षाऽकार्य्यकारित्वमेव ।
स्वैराचारो नीतिमार्गस्य हानं
विद्वद्बुद्धेरप्यनीहाभिसारः ॥ १ ॥

आत्माधीनेषु = स्वाधीनेषु, मन्दीभवामि = उत्साहरहितो भवामि ।

अन्वयः—अहम् नगरपरिचितः रक्षिणः ज्ञातसाराः तिमिरगहनभीमम् अर्धरात्रम् वर्तते, असिः अपि सुसहायः अन्तरात्मा च निश्चितः इह बहुविचारैः किम् ? कः अर्थः मया दुष्करः (अस्ति) ॥ २ ॥

व्याख्या—नगरेति—अहम् नगरपरिचितः = नगराभिज्ञः (अस्मि) रक्षिणः = रक्षकाः, ज्ञातसाराः = विदितबलाः तिमिरेण गहनं भीमम् तिमिर-गहनभीमम् = अन्धकारपूर्णं भयङ्करम्, अर्धरात्रम् = निशीथम्, वर्तते =

से रहित कर देता है, नीति-मार्ग का अनुसरण नहीं करता है, बड़े-बड़े विद्वानों की शुद्ध बुद्धि अस्वाधीन कर देता है ॥ १ ॥

स्वाधीन कार्य में ढिलाई कैसी ? यहाँ पर—

मुझे नगर का परिचय है, रक्षकों के बल को जानता हूँ अन्धकार से पूर्ण भयानक आधी रात है, तलवार मेरा सहायक है, मेरी आत्मा स्थिर

असिरपि सुसहायो निश्चितश्चान्तरात्मा
किमिह बहुविचारैः को मया दुष्करोऽर्थः ॥ २ ॥

अहो अर्धरात्रस्थ प्रतिभयता । सम्प्रति हि,

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजना ध्यानं प्रविष्टा इव ।

अस्ति, असिः = खड्गः सहायः = साहाय्यकर्ता अन्तरात्मा = हृदयञ्च निश्चितः= = कृतकर्तव्यनिर्धारणः इह = अस्मिन् साध्येऽर्थे, बहुविचारैः = अनेकविध- विचारैः किम् ? कोऽर्थः = किं कार्य्यम् मया दुष्करः = दुःसम्पादः । न कोऽपी- त्यर्थः । मालिनी छन्दः ॥ २ ॥

भावः—पुरीयं विज्ञाता सुविदितबला रक्षकगणा
निशीथोऽयं भीमस्तिमिरविततश्चातिगहनः ।
सहायो मे खड्गो मतिरपि सुनिष्ठा कृतमतो
विचारैः कोऽर्थो मे य इह खलु साध्यो न भवति ॥ २ ॥

प्रतिभयता = भयानकता ।

अन्वयः—सर्वाः प्रजाः गर्भस्थाः इव निद्रया मोहम् उपगताः, सुखसुप्त- नीरवजनाः प्रासादाः ध्यानं प्रविष्टा इव, नगाः सञ्चितेन तमसा ग्रस्ताः इव स्पर्शानुमेया प्रच्छन्नरूपम् सकलम् जगत् अन्तर्धानम् इव उपयाति ॥ ३ ॥

व्याख्या—गर्भस्था इवेति—सर्वाः = अखिलाः, प्रजाः = लोकाः, गर्भस्थाः गर्भमध्यगता इव = यथा निद्रया = स्वापेन, मोहम् = वैचित्यम्, गताः = प्राप्ता, सुखं सुप्ता नीरवा जना येषु ते तथोक्ताः = सुषुप्तनिःशब्द- लोकाः, प्रासादाः = राजभवनानि, ध्यानं प्रविष्टा = ध्यायन्त इव वर्तन्ते,

---

विचार वाली है, फिर यहाँ अनेक विचारों की क्या आवश्यकता, कौन ऐसा कठिन काम है जिसको मैं नहीं कर सकता ।

अहो ! आधी रात का समय कितना भयङ्कर है ।

इस समय सारी जनता गर्भस्थ शिशु के समान निद्रा से ज्ञानरहित हो गई है । सुख से सोये लोगों से युक्त प्रासाद मानो ध्यान कर रहे हैं ।

प्रग्रस्ता इव सञ्चितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगा
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् ॥ ३ ॥

अद्यैव खलु वर्तते कालरात्रिः ।

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥ ४ ॥

नगाः = पर्वताः, सञ्चितेन = पुञ्जीभूतेन, तमसा = अन्धकारेण ग्रस्ताः = निगीर्णा इव = यथा स्पर्शानुमेयाः, अप्रत्यक्षाः स्पर्शमात्रेण ज्ञेयाः, प्रच्छन्न-रूपम् = आच्छादिताकारम् जगत् = संसारः अन्तर्धानम् = अन्तर्हितम् उपगतम् = प्राप्तम् इव । शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः ॥ ३ ॥

भावः—गता गर्भं मन्ये नहि किमपि जानन्ति जनताः
गृहाः शङ्के ध्यानं सुनिभृतजनाः संविदधति ।
चिताध्वान्तग्रस्ता इव गिरिगणाः स्पर्शविदिता
ध्रुवं छन्नो लोकः, सकल इह चान्तर्धिमगमत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—मार्गनद्यः तिमिरम् वहन्ति इव, हर्म्यमालाः पुलिननिभाः प्रतिभान्ति दश दिशः तमसि निमग्नरूपाः अन्धकारः प्लवतरणीय इव ॥ ४ ॥

व्याख्या—तिमिरमिवेति—मार्गनद्यः = पथिरूपा नद्यः, तिमिरमिव वहन्ति, अन्धकाररूपं जलं वहन्ति, तासाम् हर्म्यमालाः = प्रासादपरम्परा पुलिनमिव = तटा इव प्रतिभान्ति = शोभन्ते, अयमन्धकारः = ध्वान्तम्, प्लवतरणीयः = प्लवेन नावा पारणीयो भाति । पुष्पिताग्रा छन्दः ॥ ४ ॥

पुञ्जीभूत अन्धकार से मानो निगल गया हो ऐसा पर्वत केवल स्पर्श से ज्ञात हो रहा है, ढका हुआ सारा संसार मानों अन्तर्धान हो गया है ॥ ३ ॥

आज ही काल रात्रि है ।

सभी मार्ग तिमिर जल को बहाने वाली नहीं हो गये है, दोनों तरफ की अटारियाँ तह के समान प्रतीत हो रही हैं सारी दशदिशायें अन्धकार डूब गयी है, इतना घना अन्धकार है कि इसको नाव से मानों पार किय जा सकता है ॥ ४ ॥

(परिक्रम्य कर्णं दत्त्वा) अये गान्धर्वध्वनिरिव श्रूयते। को नु खल्वयं सर्वकालसुखी पुरुषः कान्तया सह गान्धर्वमनुभवति व्यक्तं स्वयं वीणां वादयति। कुतः,

उच्चं हर्म्यं सन्निरुद्धाश्च जाला-
स्तन्त्रीनादः श्रूयते सानुनादम्।
बाह्यस्थानं व्यक्तमेवं प्रयोक्तुं
किं सामर्थ्यं स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम्॥ ५॥

भावः—मार्गो नदी तिमिरवारिवहा विभाति
हर्म्यालिरेतितटताश्च सभा तदीयाम्।
मग्ना दिशो दश घने तमसीह सर्वा
नावा विभान्ति सुखतः खलु पारणीयाः॥ ४॥

गान्धर्वध्वनिः = गानवाद्यध्वनिः, सर्वकालसुखी = सर्वदानन्दः, गान्धर्वम् अनुभवति = गीतवादित्रानन्दमनुभवति स्वयं वीणां वादयति—

अन्वयः—हर्म्यम् उच्चम् जालाः च सन्निरुद्धाः तन्त्रीनादः सानुनादम् श्रूयते बाह्यस्थानं व्यक्तम् एव प्रयोक्तुम् स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् किम् सामर्थ्यम्।

व्याख्या—उच्चमिति—उच्चम् = उन्नतम्, हर्म्यम्=प्रासादः, जालाः = गवाक्षा संनिरुद्धाः, मुद्रिताः=पिहिताः, तन्त्रीनादः=वीणाध्वनिः, सानुनादम्= सप्रतिनादम्, श्रूयते = आकर्ण्यते, वाह्यस्थानम् = परश्रवणयोग्यम्, व्यक्तम् = स्फुटम् एवम् = अनेन प्रकारेण प्रयोक्तुम् एवं वीणा वादयितुम् स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम्=नारीकराङ्गुल्यग्राणाम् किं सामर्थ्यम्, का शक्तिः। हर्म्यस्योच्चता गवाक्षाणाम् पिधानम् तथापि सानुनादः वीणाध्वनिः श्रूयत इति पुरुष एव वीणां वादयति॥ ५॥

(चलकर कान देकर) गीत की ध्वनि सुनाई दे रही है। कौन यह सदा आनन्द का अनुभव करने वाला है जो वीणा बजाकर गाने का आनन्द लें रहा है। स्पष्ट है कि यह पुरुष स्वयं वीणा बजा रहा है क्योंकि—

मकान ऊँचा है जंगले बन्द हैं, प्रतिध्वनि के साथ वीणा का शब्द सुनाई पड़ रहा है, इस वीणा ध्वनि के बाह्यस्थान (पर श्रवण योग्यता) स्पष्ट है इस तरह वीणा बजाने की शक्ति स्त्री की अंगुलियों में कहाँ से आ सकती है॥५॥

गीतं तु पुनः स्त्रियाः । इह हि,

तानस्तु मन्दो विशदप्रवृत्तो
जातश्च नादो मुखनासिकेन ।
स्थूलोऽपि हेतुः करतालनादः
सञ्जायते सद्वलयस्वनेन ॥ ६ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) हहह अयमपरः कः क्रुद्धां कान्तां प्रसादयति । महान् खल्वस्यापराधः, येनेयमस्यां वेलायामपि न प्रसीदति । अथवा प्रसन्ना खल्वियं व्यपदेशमिच्छति । कुतः,

---

भावः—उच्चे हर्म्ये पिहितगवाक्षे वीणावादः प्रतिरवयुक्तः ।
स्पष्टाकर्ण्यो नहि वनितायाः हस्तादेवं कथमपि शक्यः ॥ ५ ॥

अन्वयः—विशदप्रवृत्तः तानः तु मन्दः, नादः च मुखनासिकेन जातः, स्थूलः अपि करतालनादः सद्वलयस्वनेन हेतुः जायते ॥ ६ ॥

व्याख्या—तानस्त्विति—विशदप्रवृत्तः = स्पष्टरूपेणारब्धः, तानः = लयप्रकाशनप्रकारः, नादः = ध्वनिश्च, मुखनासिकेन = मुखेन नासिकया च जातः = उत्पन्नः, स्थूलः = महान् अपि करतालनादः = परस्परकरताडनशब्दः, वलयस्वनेन = कङ्कणध्वनिना युक्तः हेतुः = स्त्रीजन्यत्वे कारणम् । निर्दिष्ट-हेतुभिर्ज्ञायते यत् स्त्री गायति ॥ ६ ॥

भावः—तानस्य स्पष्टमन्दत्वात् माधुर्य्याच्च ध्वनेस्तथा ।
स्थूलस्य करतालस्य वलयध्वनियोगतः ॥ ६ ॥

गाना तो स्त्री का है, यहाँ पर—

तान मन्द एवं स्पष्ट है, नाद मुख और नासिका दोनों के प्रयत्न से पैदा हुआ है, स्थूल करताल वलय के शब्द से मिला है ॥ ६ ॥

(यह गान के स्त्रीकृत होने का कारण है)

(चलकर और देखकर) ह. ह. ह. यह कौन अपनी मानिनी स्त्री को मना रहा है । ज्ञात होता है इसने कोई बड़ा अपराध किया है । जिससे यह स्त्री इस समय भी नहीं मान रही है, अथवा यह प्रसन्न है, कोई बहाना ढूंढ रही है ।

बाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठं
काऽहं तवेत्यसकलं प्रणयाद् वदन्ती ।
सद्भावतः प्रियवशं समुपागतापि
स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव ॥ ७ ॥

को नु खल्वयं पक्षी भैरवस्वरः । आ उलूकः खल्वयम् । कथं हसितमनेन । उलूकस्वरश्रवणभीतया कान्तया परिष्वक्तः खल्वयं तपस्वी । सदृशं वयसः । किं परव्यापारवीक्षणम् । साधयामस्तावत् । (परिक्रम्य) को नु खल्वयमस्मिन् नगरापणालिन्दे सशङ्कितमतिस्निग्धं च सम्भाषते । अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी ।

अन्वयः—वाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठम् तव अहम् का इति प्रणयात् असकलम् वदन्ती सद्भावतः प्रियवशम् गता अपि स्त्रीभावतः प्रतिकूलम् एव वदति ।

व्याख्या—वाष्पोपेति—वाष्पेण = अन्तरुष्मणा अवरुद्धः = आवृतः जडः= कुण्ठितः गद्गदः = स्खलद्वर्णः जिह्मः = मन्दः कण्ठो यस्मिन् कर्मणि तत्तथा तव का अहम् = त्वं मां न स्निह्यसि इति प्रणयाद् = प्रेम्णा असकलमसंपूर्णं वदन्ती सद्भावतः स्वाभाविकस्नेहात् प्रियवशम् = प्रियतमाधीनताम्, गता प्राप्ताऽपि स्त्रीभावतः = निसर्गवाम्यात् प्रतिकूलम् = विपरीतम् एव प्रवदति= प्रलपति ॥ ७ ॥

भावः—सगद्गदं कापि न तेऽहमस्मीत्येतद् ब्रुवाणाऽसकलं वचो हि ।
सद्भावतः प्रेष्टवशंगतापि वाम्याद् विरुद्धं प्रलपत्यभीक्ष्णम् ॥७॥

भैरवस्वरः—भयावहशब्दः उलूकस्वरभीतया = कौशिकध्वनिभीरुकया कान्तया = प्रियया परिष्वक्तः = आलिङ्गितः, सदृशं वयसः = अवसणानुकूलम् किंपरव्यापारवीक्षणम् = दम्पतिरहः प्रणयदर्शनमनुचितम्, साधयामस्तावत् = गच्छामस्तावत् । नगरापणालिन्दे = नगरविपणि बहिर्भागे शङ्कितशङ्कायुक्तम्, अतिस्निग्धम् = अत्यनुरागम् । अस्मत् सब्रह्मचारी = मत्सदृश एव प्रच्छन्नकामुकः ।

वाष्प से रुद्ध गद्गद एवं जड कण्ठ से मैं तुम्हारी कौन हूँ ऐसा कहती हुई प्रियतम के सन्निकट वर्तमान भी स्त्रीस्वभाव के कारण विपरीत बोलती है ॥ ७ ॥

सम्पीड्यते परिजनेन शनैर्वदेति
संविग्नवद् भवति भूषणनिःस्वनेन।
सङ्गं वदत्यसुखदं मदनाभिभूतः
सङ्केतमिच्छति च नेच्छति चाभिगन्तुम् ॥ ८ ॥

(परिक्रम्य) अये ज्योत्स्ना। नैषा ज्योत्स्ना, उभयपङ्क्तिगतानां प्रासादानां गवाक्षान्तरगता दीपप्रभैषा। इह खलु प्रयत्नादात्मा रक्षितव्यः। अये अयं तु तस्करः। एष हि,

---

अन्वयः—परिजनेन शनैः वद इति सम्पीड्यते भूषणनिःस्वनेन संविग्नवद् भवति सङ्गम् असुखदम् वदति मदनाभिभूतः सङ्केतम् इच्छति अभिगन्तुम् च न इच्छति।

व्याख्या—सम्पीड्यत इति—परिजनेन = परिचारकवर्गेण, शनैर्वद = मन्दं जल्प इति सम्पीड्यते = कदर्थ्यते, भूषणनिःस्वनेन = प्रियतमाभरण-शब्दश्रवणेन = संविग्नवत् = उद्दीपितकाम उद्विग्न इव भवति, सङ्गम् = परस्त्रीसमागमम् , असुखदम् = दुष्परिणामम्, वदति = कथयति, मदनाभिभूतः = कामसमाकुलः, सङ्केतम् = प्रियासम्मेलनगुप्तस्थानम्, इच्छति = कामयते, अभिगन्तुम्=तत्र गन्तुं च नेच्छति भीरुत्वात्। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥८॥

भावः—नोच्चैर्वदेति परिचारकसन्निरुद्धः
भूषारवश्रवणतश्च नितान्तखिन्नः।

भयानक शब्द वाला यह कौन पक्षी बोल रहा है ? अरे यह उल्लू है, यह हँस क्यों रहा है, उलूक के शब्द को सुनकर डरी यह कामिनी अपने प्रियतम का आलिङ्गन कर रही है। (चलकर) यह कौन नगरापण के अलिन्द पर सशङ्क तथा सानुराग भाषण कर रहा है। यह वेचारा भी हमारे समान है।

धीरे से बोलो ऐसा परिचारकों द्वारा डांटा जा रहा है। आभूषण के शब्द से उद्विग्न जैसा हो जाता है। सङ्ग असुखकारी है ऐसा कहता है और कामार्त संकेतस्थल को चाहता है पर (भीरुता के कारण) जाना नहीं चाहता ॥ ८ ॥

दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः ।
द्रुतगतिरपि दीपिकावलोकी भवति च पादनिपातनादभीरुः ॥९॥

हन्त परिहरिष्याम्येनम् । (एकान्ते स्थितः) गतो नृशंसः । वयमपि तावत् प्रतिष्ठामहे । (परिक्रम्य) अये रक्षिणः खल्वेते । किन्तु खल्विदानीं करिष्ये । भवतु दृष्टम् । इमां शृङ्गाटकस्थां विटसभां प्रविशामि । (विलङ्घ्य स्थित्वा)

अन्याङ्गनारतिमनायति मा ब्रवीति
सङ्केतमिच्छुरपि नेच्छति तत्र गन्तुम् ॥ ८ ॥

ज्योस्ना = चान्द्रीप्रभा उभयपङ्क्तिगतानाम् = पार्श्वद्वयसंस्थितानाम् प्रासादानाम् = राजगृहाणाम्, दीपप्रभा = दीपप्रकाशः ।

अन्वयः—दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः, परगृहवादनिबद्धदृष्टिचेष्टः द्रुतगतिरपि दीपिकावलोकी पादनिपातनाद् भीतः च भवति ।

व्याख्या—दृढपरिकरेति—दृढस्य परिकरस्य बन्धेन हृष्टः=सुस्थिरकटिबन्धनेन प्रसन्नः परगृहस्य वादे निबद्धा दृष्टिचेष्टा यस्य सः तथोक्तः = अन्यगृहवार्तालापश्रवणयोजितनयनव्यापारः । द्रुतगतिरपि = शीघ्रगतिरपि दीपिकावलोकी = दीपवीक्षणार्थं नाश्रितमन्दगतिः । पादनिपातनादभीतः पादप्रक्षेपजनितशब्देन भीतः भवति मा कश्चित् शब्दं श्रुत्वा द्राक्षीत् ।

भावः—आबद्धकक्षो मुदितान्तरात्मा गृहप्रवादे विनिबद्धदृष्टिः ।
शीघ्राभिसारोऽपि प्रदीपदर्शी पादावपातध्वनिभीरुकश्च ॥ ९ ॥

परिहरिष्यामि = वर्जयिष्यामि, नृशंसः = घातकः, प्रतिष्ठामहे = गच्छामः, शृङ्गाटकस्थाम् = चतुष्पथस्थाम्, विटसभाम् = विटनिवेशस्थानम् ।

(चलकर) अरे यह चांदनी है । नहीं यह चाँदनी नहीं है । दोनों कतारों में वर्तमान भवनों के जंगलों से निकली दीपों की प्रभा है । इसमें यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी है । यह—

दृढतापूर्वक परिकर बंधने से प्रसन्न, दूसरों के घर की वातों के सुनने में दृष्टि ले गये हुए, शीघ्र चलता हुआ भी दीपक को देखता हुआ अपने पैर की ध्वनि से भी डरता है ।

आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां
मामभ्युपेत्य हसतीव ममैष खड्गः।
नैते तु रक्षिपुरुषा मम भारभूता
मत्कार्यसाधनपरोऽहमिह प्रविष्टः ॥ १० ॥

गता रक्षिणः। के रक्षन्ति रक्षितात्मानम्।

अबहुपुरुषपक्षमेत्य शौर्यं
निशि विचरन्ति सरागलोभमोहाः।

अन्वयः—मितविक्रमाणाम् आरक्षिणाम् विमुखम् माम् तु अभ्युपेत्य एषः मम खड्गः हसति इव, तु एते रक्षिपुरुषा मम भारभूता न अहम् इह मत्कार्यसाधनपरः प्रविष्टः।

व्याख्या—आरक्षिणामिति—मितविक्रमाणाम्=अत्यल्पबलानाम्, आरक्षिणाम् = कन्यान्तःपुररक्षकाणाम्, विमुखम् = पराङ्मुखम्, माम् = महावीरं तु अभ्युपेत्य = प्राप्यज्ञात्वा इत्यर्थः, एषः = अयम् मम खड्गः = कृपाण, हसति इव = अहा एभ्यः क्षुद्रेभ्यो भीत इति दृष्ट्या प्रहसति। अहमिह मत्कार्य्यसाधनपरः = स्वेष्टप्रियासमागमार्थं प्रविष्टः=न युद्धार्थम् इत्येतान् उपेक्षामि। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १० ॥

भावः—रक्षकनिकरमुपेक्ष्य स्वकार्यसाधने प्रवृत्तं माम्।
हीनबलेभ्यो भीत इत्यवेत्य हसतीवायं खड्गः ॥ १० ॥

अन्वयः—अबहुपुरुषपक्षम् शौर्य्यम् एत्य निशि सरागलोभमोहाः विचरन्ति इह तु पुरुषकारसारसाक्षी रात्रिचारः बहुविषमः सुखश्च अस्ति।

व्याख्या—अबह्विति—न सन्ति बहवः पुरुषाः पक्षे यस्य स तथोक्तः =

अच्छा इनसे बच जाऊँ (एकान्त में खड़ा होकर) चला गया वह क्रूर। अब मैं भी जाता हूँ। (चलकर) यह तो रक्षक हैं। अब क्या करूँ, सोच लिया। इस चौराहे पर की विट-सभा में बैठ जाऊँ (लांघ कर खड़ा होकर) इन साधारण बल वाले से मुझे विमुख देख यह मेरा खड्ग हँस रहा है पर वे रक्षक तो मेरे भार नहीं हैं। मैं यहाँ अपना कार्य्य करने आया हूँ ॥१०॥

रक्षक चले गये जो अपनी रक्षा स्वयं करता है उसकी कौन रक्षा करेगा। अन्य बहुत लोगों की सहायता से निरपेक्ष शूरता की एक मात्र

इह तु पुरुषकारसारसाक्षी
बहुविषमश्च सुखश्च रात्रिचारः ॥ ११ ॥

एतद् राजकुलम् । अहो स्थिरत्वमुच्छ्रितत्वं प्राकारस्य । इह खलु प्रयुज्यते पुरुषाणां कक्ष्याबन्धः । अथवा प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः, यदि स्थिराः कपिशीर्षकाः । इह स्थित्वा रज्जुं प्रक्षिपामि । नमः प्रजापतये । नमः सर्वसिद्धेभ्यः । प्रसीदन्तु बलिशम्बरमहाकालाः । विजृम्भतां रात्रिः । वर्धतां निद्रा । अनुमन्यतां पद्मा । लयं गताः सर्वविघ्ना भवन्तु । हताः परिपन्थिका भवन्तु । जयतु भगवती

बहुजनाननुश्रितपक्षम् , शौर्य्यम् = शूरताम् , एत्य = अभ्युपगम्य, निशि = रात्रौ सरागलोभमोहाः = रागेण-लोभेन-मोहेन च युक्ताः = जार-चौर-मोहाभिभूता, विचरन्ति = पर्य्यटन्ति, इह तु = राजप्रासादे तु अन्यतो विशेषः पुरुषकारसारः = प्रबलपराक्रमप्रमाणभूतः, रात्रिचारः = निशिपर्यटनं साक्षी बहुविषमम् = सर्वतो रक्षिणां बहुत्वाद् भयजनकम् अतिमनोहरस्थानत्वाच्च सुखम् = सुखकरः । अस्ति ॥ ११ ॥

भावः—अनन्यसाहाय्यमपेक्ष्य शौर्यं जाराश्च चौराश्च निशि भ्रमन्ति ।
राजाधिवासे तु निशाप्रचारः महाभयः सौख्यकरस्तथास्ति ॥ ११ ॥

राजकुलम् = राजपरिजननिवासप्रासादः । उच्छ्रितत्वम् = औनत्यम् । प्राकारस्य = पुरप्रवेशावरोधाय परितो रचितस्य महाकुड्यस्य । कक्ष्यबन्धन् = परिकरबन्धनम्, कपिशीर्षकः = कपिशीर्षाकारः भवनप्रदेशः, बलिशम्बर

सहायता से राग-लोभ-मोह-युक्त, जार-चौर आदि रात में घूमते हैं, इस राजमहल में तो रात का चलना बड़ी बहादुरी का प्रमाण है । यह भयानक तथा सुखकर भी है ॥ ११ ॥

यही राजकुल है, अहा चाहारदीवारी कितनी ऊँची और दृढ है, यहाँ पर-पुरुषों को परिकर बाधना होता है । अथवा मैं तो प्रविष्ट ही हूँ । यदि यह कंगूरे स्थिर हैं तो यहीं रस्सी फेकता हूँ । प्रजापति को नमस्कार, सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ । बलि-शम्बर, महाकाल मुझ पर प्रसन्न हों । रात बढ़े । नींद गहरी हो, लक्ष्मी अनुकूल रहें । सभी विघ्नों का

कात्यायनी। (रज्जुं क्षिप्त्वा) हन्त बद्धः कर्कटकरज्ज्वा कपिशीर्षकः। अहो भवित व्यस्य प्रभावः। एकेनैव क्षेपेण सुसंसक्तां रज्जुं कार्यसिद्धिमिव पश्यामि। अहो बलवान् हि भगवान् प्रजापतिः। कुतः,

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम्।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः॥ १२॥

महाकालाः = चौर्य्यशास्त्रप्रसिद्धा एते। अनुमन्यताम् = अनुजानन्तु, परिपन्थिनः = शत्रवः, भवितव्यस्य प्रभावः = अवश्यभावित्वप्रभावः, सुसंसक्ताम् = दृढलग्नाम्। कार्य्यसिद्धिमिव पश्यामि-एक प्रक्षेपेण कपिशीर्षकलग्नारज्जुः कार्यसिद्धिं सूचयति।

अन्वयः—यत्ने कृते यदि कार्यं न सिध्यति अत्र कः दोषः कः वा मम न सिध्यति इति कार्यं करोति। इह शुभैः यत्नैः नृणां पुरुषता भवति। कार्यसिद्धिः दैवं विधानम् अनुगच्छति।

व्याख्या—यत्ने कृत इति—यत्ने कृते = शक्त्यनुसारं प्रयासे कृते यदि कार्य्यं न सिध्यति = विपद्यते, अत्र कोः दोषः = कर्तुर्दोषो नास्तीत्यर्थः। को वा पुरुषो मम न सिद्ध्यति मम कार्य्यसिद्धिर्न जायतामिति कार्यं = कर्म, करोति = सर्वोऽपि कार्यसिद्धिमपेक्ष्यैव करोति। शुभैः = यथार्थैः, यत्नैः = प्रयासैः नृणाम् = मनुष्याणाम् पुरुषता भवति, पुरुषाः पौरुषवन्तो ज्ञायन्ते, कार्य्यसिद्धिः = कार्य्यसाफल्यम् तु, दैवं विधानम् = भाग्यविहितं, नियमम्,

---

नाश हो। अहो मेरे शत्रु विनष्ट हों। जय हो, भगवती दुर्गा की जय हो (रस्सी फेंक कर) अहो रस्सी से कंगूरा बंध गया।

अहा भवितव्यता का क्या प्रभाव है। एक ही वार फेकने से रस्सी कस गयी इससे पता चलता है कि कार्य्य बन जायगा। भगवान् प्रजापति बड़े प्रभावशाली हैं। क्योंकि—

यत्न करने पर भी कार्य्यसिद्ध न हो तो इसमें किसका दोष है कौन नहीं चाहता कि मेरा कार्य सिद्ध हो। अच्छे प्रयत्नों से पुरुषों की पुरुषता की सिद्ध होती है, कार्य-सिद्धि तो भाग्य के विधान पर निर्भर होती है॥ १२॥

भवतु रज्जुमवलम्ब्यारोहामि। (आरुह्य दृष्ट्वा) अहो राजकुलस्य श्रीः।

विपुलमपि मितोपमं विभागा-
त्रिबिडमिवाभ्युदितं क्रमोच्छ्रयेण।
नृपभवनमिदं सहर्म्यमालं
जिगमिषतीव नभो वसुन्धरायाः ॥ १३ ॥

इह तु न स्थातव्यम्। अट्टालप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्ना भवन्ति।

अनुगच्छति = अनुसरति। महाप्रयासे कृतेऽपि कार्य्यसिद्धिर्भाग्याधीना भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

भावः—यत्नः कार्य्यो मानवैः सर्वथा हि
कामं सिद्धिर्जायतां भाग्यतो न।
एवं नृणां पौरुषं याति सम्यक्
साफल्यं तत्तस्य निघ्नं हि कार्यम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—विपुलम् अपि विभागात् मितोपमम् क्रमोच्छ्रयेण निविडम् इदम् सहर्म्यमालम् नृपभवनम् वसुन्धरायाः नभः जिगमिषति इव।

व्याख्या—विपुलमिति-विपुलम् = विशालमपि, विभागात्=तत्तद्विभागहेतोः मितोपमम् = संजातसीमभिव, क्रमोच्छ्रयेण = क्रमिकोन्नत्या, निविडम् = घनमिव, अभ्युदितम्=उच्छ्रितमिव प्रतीयमानम्। इदम् सहर्म्यमालम् = हर्म्यमालया सहितम्, नृपभवनम्=राजभवनम् = वसुन्धरायाः=पृथिव्याः सकाशात्, नभः = आकाशम्, जिगमिषति = गन्तुमिच्छतीव। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ १३ ॥

अट्टालः = गृहोपरिभागः, प्रतोली = रथ्या, इन्द्रपथः = प्रधानमार्गः। अवतरिष्यामि = अधोगमिष्यामि।

ठीक रस्सी पकड़ कर चढ़ता हूँ। (चढ़कर तथा देखकर) राजकुल की समृद्धि धन्य है!

अनेक भागों में विभक्त होने कारण विशाल होने पर भी परिमित सा ज्ञात होता है, क्रमशः उन्नत होते जाने के कारण घना सा ज्ञात होता है प्रासाद समूहों से युक्त यह भवन धरातल से मानों आकाश में जाना चाह रहा हो।

भवतु अनयैव रज्ज्वावतरिष्यामि । (अवतीर्य) क्व नु खल्विदानीं रज्जुं प्रच्छादयामि । (विचिन्त्य) भवतु दृष्टम् । अस्यां हस्तिशालायां पाशं क्षिप्त्वा क्षिपामि । (प्रक्षिपति । परिक्रम्य)

अये तन्त्रीनादो युवतिकलगीतध्वनियुतः

अन्यतो यास्यामि ।

अये गन्धामोदो गजवरमदोद्बोधितपटुः ।

मुहूर्तं स्थित्वा यास्यामि ।

प्रभैषा दीपानामिह तु वितता रक्षिपुरुषाः

का गतिः ।

चिराद् रात्रौ शान्तं सह कमलषण्डैर्नृपगृहम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—अय इति—अये = अहो युवतिकलगीतध्वनियुतः = कामिनी-कमनीयध्वनिसंवलितः, तन्त्रीनादः = वीणानादः, अये = अहो, गजवर-मदोद्बोधितपटुः = गजवराणाम्, मदेन = दानवारिणा, उद्बोधितः = समेधितः, पटुः = सर्वतः प्रसवशीलः, गन्धामोदः = सुरभिगन्धः, प्रसरति एषा = पुरो दृश्यमाना दीपानाम् = प्रदीपानाम् प्रभा = कान्तिः, इह तु = एतस्मिन् स्थले तु विततः = व्याप्ताः रक्षिपुरुषाः = आरक्षिजनाः, सन्तीति शेषः । रात्रौ = निशि चिरात् = चिरकालानन्तरम्, कमलषण्डैः सह = कमलवनैः सार्धम्, नृपगृहम् = राजभवनम्, सुप्तम् = प्रयासरहितम् शान्तम् जातम् ।

यहाँ नहीं ठहरना चाहिये, अटारियों, गलियों, चौराहों से ही विघ्न हैं, अस्तु इसी रस्सी के सहारे नीचे उतरूँगा (उतर कर) अब इस रस्सी को कहाँ छिपाऊँ ? (सोचकर) इस हस्तिशाला में गांठ खोल कर रख देता हूँ. (फेंकता है । चलकर) अरे यह युवती के गीत से युक्त वीणा का नाद है–दूसरी ओर जाऊँगा । अहो यहाँ हाथियों के मद-जल से उत्पन्न गन्ध फैल रहा है थोड़ा ठहर कर जाऊँगा, यह दीपों का प्रभा है. यहाँ बहुत से रक्षक हैं, (क्या उपाय है) बड़ी रात गये यह राजभवन शान्त होता है, जिस समय कमल समूह मुद्रित (संकुचित) हो जाते हैं ॥ १४ ॥

यास्यामि । एष तयोक्तो मार्गः । इयं मन्दाकिनी । असौ दारुपर्वतकः । इयमुपस्थानसभा । अये अयं कन्यापुरप्रासादः । एष तु काष्ठकर्मबहुलतया समासन्नजालत्वाच्च सुखमारोढुम् । अथवा दुरारोहश्चेत्,

कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषा-
द्धर्म्याधिरोहणमतेर्मम का विशङ्का ।
संसक्तनालगतकण्टकभीतचेता-
स्तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति ॥ १५ ॥

इयम् मन्दाकिनी = कृत्रिमा सरित्, हासपर्वतकः = काष्ठनिर्मितः पर्वतप्रतिच्छन्दकः, उपस्थानसभा = यत्र स्थितं राजानं सर्वे पश्यन्ति । काष्ठकर्मबहुलतया = काष्ठशिल्पाधिक्यात्, समासन्नजालत्वात् सन्निकटस्थ गवाक्षत्वात् ।

अन्वयः—मनोभिलाषात् कान्तासमीपम् उपगम्य हर्म्याधिरोहणमतेः मम विशङ्का का ? कः तृष्णार्दितः (पुरुषः) संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः पुष्करिणीम् जहाति ।

व्याख्या—कान्तासमीपेति—मनोभिलाषात् = मनोरथाधिक्यात्, कान्तासमीपम् = प्रियतमासन्निधिम्, उपेत्य = अभिगम्य, हर्म्याधिरोहणमतेः = प्रासादारोहणाभिलाषिणः, मम का विशङ्का=को विकल्पः, कः तृष्णार्दितः = पिपासाकुलः संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः = संसक्तात् = संश्लिष्टात्, नालगतात् = विसस्थात्, कण्टकात्, भीतम् = संजातभयम्, चेतः = चित्तम् यस्य सः तथोक्तः । पुष्करिणीम् = वापीं, जहाति = त्यजति ॥ १५ ॥

जाता हूँ । यही मार्ग तो उसने बताया था, यही मन्दाकिनी है, यही दारु पर्वतक है, यही उपस्थान सभा, यह है कन्यान्तःपुर का प्रासाद है । इसमें लकड़ी की कारीगरी अधिक की गयी है, खिड़कियाँ पास में हैं, अतः इस पर चढ़ना सरल है, अथवा यदि चढ़ना कठिन होगा तो भी—

कान्ता के समीप में आकर प्रासाद पर चढ़ने में क्या शङ्का ? नालगत कण्टकों के भय से कोई पिपासाकुल व्यक्ति क्या पुष्करिणी को छोड़ देता है ? ॥ १५ ॥

भवत्वारोहामि । (आरुह्य) इदं तयोक्तं जालयन्त्रम् । (विघाटच प्रविश्यावलोक्य च) साधु कुन्तिभोज ! साधु । उत्प्रहसित । इव भवनेनानेन स्वर्गः । तथा हि,

हंसाः स्वपन्ति मणिरत्नशिलातलेषु
वैदूर्यमौक्तिककृताः सिकताप्रतानाः ।
स्तम्भाः प्रवालविहिताः किमिह प्रलापै-
र्मन्दीभवन्ति मणिदीपहताः प्रदीपाः ॥ १६ ॥

अलं रौद्रवेषेण । (चोरवेषमपनीय कक्ष्यावन्धं विमुञ्चति)

भावः—कान्तासविधमुपेत्य हर्म्यारोहणे तु कैव शङ्का मे ।
नालस्य कण्टकभयात् तृष्णार्तः किं जलं त्यजति ॥ १५ ॥

अन्वयः—मणिरत्नशिलातलेषु हंसा स्वपन्ति सिकताप्रताना वैदूर्य्यमौक्तिककृताः स्तम्भाः प्रवालविहिताः इह प्रलापैः किम् मणिदीपहताः प्रदीपाः मन्दी भवन्ति ।

व्याख्या—हंसा इति—मणिरत्नशिलातलेषु = मणिरत्ननिर्मितशिलाफलकेषु, हंसाः = पक्षिविशेषाः, स्वपन्ति=निद्रति, सिकताप्रतानाः = सिकतासमूहाः, वैदूर्यमौक्तिककृताः=हरिन्मणिमौक्तिकक्षोदरचिताः, स्तम्भाः=आधारस्तम्भाः, प्रवालविहिताः = प्रवालरचिताः, प्रलापैः = वर्णनविस्तारैः किम् प्रदीपाः=मणिदीप्तिहताः = मणिप्रकाशैस्तिरोहिताः सन्तीति शेषः ।

भावः—मणिरचितशिलायां शेरते हंससंघाः,
मरकतमणिमुक्तानिर्मिताः सैकताश्च ।

ठीक है चढ़ता हूँ । (चढ़कर) यह उसके द्वारा बताया गया जालयन्त्र है। (खोलकर प्रवेशकर और देखकर)। साधु कुन्तिभोज ! साधु ! इस भवन से स्वर्ग उपहसित हो रहा है। क्योंकि—

रत्नमय शिला पर हंस सो रहे हैं, यहाँ की वालुका वैदूर्य्य और मोती से बनी हैं। खम्भे मूंगा के बने हैं। अधिक क्या कहा जाय मणियों के प्रकाश से दीप प्रकाश तिरोहित हो गया है ॥ १६ ॥

अब उग्रवेष की क्या आवश्यकता है (चोर के वेष को छोड़कर कछोटा को छोड़ता है) ।

नलिनिका—को णु खु वुत्तन्तो भट्टिदारअस्स। भट्टिदारिआ वि अवत्थादुल्लहं णिद्दं लभदि अज्ज उ मम पिओ आअच्छदि त्ति सुदमत्तेण एव। [को नु खलु वृत्तान्तो भर्तृदारकस्य। भर्तृदारिकाप्यवस्थादुर्लभां निद्रां लभते अद्य तु मम प्रिय आगच्छतीति श्रुतमात्रेणैव।]

अविमारकः—(श्रुत्वा सहसोपसृत्य) भवति ! अयं मे वृत्तान्तः।

नलिनिका– (विलोक्य सहर्षम्) साअदं भट्टिदारअस्स। [स्वागतं भर्तृदारकस्य।]

अविमारकः—(दृष्ट्वा सानन्दम्) इयमियं सा। यत्र मम

दृष्टिर्न तृप्यति परिष्वजतीव साङ्गं
बुद्धिस्त्वरां व्रजति बोधयतीव सुप्ताम्।

इह विरचितरूपाः स्तम्भकाश्च प्रवालैः
मणिरुचिभिरपीह क्षीणभासः प्रदीपाः ।। १६ ।।

अन्वयः—दृष्टिः न तृप्यति सा अङ्गम् परिष्वजति इव बुद्धिः त्वरां व्रजति सुप्ताम् बोधयति इव रागः अभिचोदयति अङ्गम् च सादयति इव अन्तरात्मा प्रसीदति विमुह्यति च।

व्याख्या—दृष्टिर्नेति–दृष्टिः = विलोचनम्, न तृप्यति = न सन्तुष्यति, सा = दृष्टिः, अङ्गम् = प्रियतमावयवान् परिष्वजति = आलिङ्गतीव बुद्धिः = मतिः, त्वराम् = शीघ्रताम्, व्रजति = गच्छति, सुप्ताम्=निद्रिताम्, बोधयतीव=

नलिनिका—राजकुमार का क्या समाचार है, प्रियतम के आने का समाचार सुनकर आज राजकुमारी विरहावस्था में दुर्लभ गाढ़ी नींद सो रही है।

अविमारक—(सुनकर सहसा समीप जाकर) यह हमारा समाचार है।

नलिनिका—(देखकर सहर्ष) राजकुमार का स्वागत है।

अविमारक—(देखकर सानन्द) यह वही है जिसमें—

मेरी आँखें तृप्त नहीं हो रही हैं, मानों अङ्गों का आलिङ्गन कर रही हैं, बुद्धि जल्दी कर रही है मानों सोयी को जगा रही है, अनुराग प्रेरित कर रहा है अङ्ग सन्न हो रही हैं, हर्ष से आत्मा प्रसन्न भी हो रही है और मुग्ध भी हो रही है ।। १७ ।।

रागोऽभिचोदयति सादयतीव चाङ्गं
हर्षात् प्रसीदति विमुह्यति चान्तरात्मा ॥ १७ ॥

नलिनिका—(आत्मगतम्) एसो खु भअवं कामदेवो ओघो विअ उभअपक्खं पीडेइ । (प्रकाशम्) भट्टिदारअ ! अलङ्करीअदु सअणअलं [एष खलु भगवान् कामदेव ओघ इवोभयपक्षं पीडयति । भर्तृदारक ! अलंक्रियतां शयनतलम् ।]

अविमारकः—बाढम् । (उपविशति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! किं ओबोधेमि भट्टिदारिअं । [भर्तृदारक ! किमवबोधयामि भर्तृदारिकाम् ।]

अविमारकः—भद्रे ! अलमलं बालचापलेन । पश्य,

अहं द्विनेत्रो न सहस्रनेत्रो
मतिश्च मूढा सुचिराभिलाषात् ।

जागरयतीव, रागः = स्नेहातिशयः, अभिचोदयति = प्रेरयति, अङ्गम् = सकलावयवम्, सादयतीव = पीडयतीव, अन्तरात्मा च = हृदयञ्च, प्रसीदति = प्रसन्नताम्-याति, मुह्यति च = मोहम् = अधिगच्छति च ॥ १७ ॥

भावः—अतृप्ते प्रेयस्याः स्वजत इव नेत्रे मम तनुम्
प्रसुप्तां जागर्यै त्वरयति च बुद्धिः प्रियतमाम् ।
नुदत्येष.स्नेहः सकलतनुसादश्च-कुरुते
प्रसीदत्यानन्दादपि च हृदयं मुह्यतितराम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—अहम् द्विनेत्रः सहस्रनेत्रः न, सुचिराभिलाषात् मतिः च मूढा अद्य कामार्णवस्य दृष्टपारम् मे अक्षियुग्मम् सुखम् चेक्रीड्यताम् ॥ १८ ॥

नलिनिका—(स्वगत) यह भगवान् कामदेव जलराशि की तरह दोनों तटों को पीडित कर रहे हैं, (प्रकाश) राजकुमार इस शयन-तल को अलंकृत करें ।

अविमारक—अच्छी बात है (बैठता है) ।

नलिनिका—भर्तृदारक ! क्या राजकुमारी को जगा दूं ।

अविमारक—अरी बालसुलभ चपलता नहीं करो देखो—

मेरे दो ही नेत्र हैं, मैं सहस्रनेत्र नहीं हूँ, बहुत दिनों की प्रतीक्षा से

कामार्णवस्याद्य तु दृष्टपारं
चेक्रीड्यतां मे सुखमक्षियुग्मम् ॥ १८ ॥

नलिनिका—जाणामि जाणामि भट्टिदारिअं अन्तरेण भट्टिदारअस्स परिस्समं। [जानामि जानामि भर्तृदारिकामन्तरेण भर्तृदारकस्य परिश्रमम्।]

अविमारकः—अद्य सफलो मे परिश्रमः।

कुरङ्गी—(बुद्ध्वा) हला ! किं णिरणुकोसेण भणिअं। [हला ! किं निरनुक्रोशेन भणितम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! भणिदं खु मए पुढमं। [भर्तृदारिके ! भणितं खलु मया प्रथमम्]

अविमारकः—प्राप्तं खलु मया जीवितस्य फलं, येनेयमीदृशं मोहं गता।

व्याख्या—अहमिति–अहम् द्विनेत्रः = नयनद्वययुक्तः, सहस्रनेत्रः = सहस्रनेत्रयुक्तो न तेन न तुष्याम्येनां निरीक्ष्य, सुचिराभिलाषात् = चिरकालमनोरथेन, मतिः = बुद्धिः च मूढा = मोहं प्राप्ता अद्य = इदानीं तु, कामार्णवस्य = कामवारिधेः, दृष्टपारम् = अन्तम् दृष्टवानस्मि आलापादिकं भविष्यत्येव मे = मम, अक्षियुग्मम् नयनयुगलम्, सुखम् = यथानन्दम्, चेक्रीड्यताम् सुषमासम्भारदर्शनानन्दमनुभवतु ॥ १८ ॥

मेरी बुद्धि कुण्ठित हो रही है, आज मैं काम-सागर के पार पहुँच गया हूँ, मेरी आँखें यथेच्छ क्रीड़ा कर ले ॥ १८ ॥

नलिनिका—राजकुमारी के वियोग में मैं आपके परिश्रम को जानती हूँ।

अविमारक—आज मेरा परिश्रम सार्थक हुआ।

कुरङ्गी—(जागकर) उस निर्दय ने क्या कहा।

नलिनिका—वह तो मैंने पहले कह दिया था।

अविमारक—मेरा जीवन सफल हुआ जब यह मेरे विरह में मूर्छित हो रही है।

कुरङ्गी —(आत्मगतम्) हं परिब्भट्ठम्हि । (प्रकाशम्) हला ! किं मए भणिदं । [हं परिभ्रष्टास्मि ! किं मया भणितम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! किञ्चि ण मन्तिदं । [भर्तृदारिके ! किञ्चिन्न मन्त्रितम् ।]

अविमारकः—अयमस्या मोहविस्तरेण द्वितीयो मे मोहः ।

कुरङ्गी—णलिणिए ! चिरं खु उवविट्ठा । का वेला । [नलिनिके ! चिरं खलूपविष्टा । का वेला ।]

नलिनिका—संवुत्तं अद्धरत्तं । [संवृत्तोऽर्धरात्रः ।]

कुरङ्गी—तेण हि परिस्सन्तासि । एहि परिस्सजेहि मं । [तेन हि परिश्रान्तासि । एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—(अपवार्य) अहं संवाहेमि । भट्टिदारअ ! परिस्सजेहि भट्टिदारिअं । [अहं संवाहयामि । भर्तृदारक ! परिष्वजस्व भर्तृदारिकाम् ।]

अविमारकः—(सहर्षम्) बाढम् । एवमेव त्वमपि प्रियशतानि शृणु ।

भावः—नेयं द्विनेत्रेण समग्रदृश्या चिरप्रतीक्षे मतिरस्ति मूढा ।
सुदृष्टपारो मदनाब्धिरद्य मन्नेत्रयुग्मं रमतां तदत्र ॥ १८ ॥

कुरङ्गी—(आत्मगत) मैंने भूल की (प्रकाश में) सखि मैंने क्या कहा ?

नलिनिका—आपने कुछ नहीं कहा ।

अविमारक—इसके मोह के बढ़ने से मेरा दूसरे तरह का मोह हो रहा है ।

कुरङ्गी—नलिनिके तुम बड़ी देर से बैठी हो, क्या समय हुआ होगा ।

नलिनिका—आधी रात हो रही है ।

कुरङ्गी—मैं थक गयी हूँ आओ हमसे लिपट जाओ ।

नलिनिका—(छिपकर) मैं पैर दबाती हूँ राजकुमार ! आप कुमार से लिपट जायँ ।

अविमारक—(सहर्ष) अच्छा इसी तरह प्रिय कथायें तुम को भी सुनने को मिला करें ।

कुरङ्गी—अलं अदिसिणेहेण। एहि दाव। [अलमतिस्नेहेन। एहि तावत्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि। [भर्तृदारिके ! इयमस्मि।]

कुरङ्गी—(बलादाकृष्याविमारकमालिङ्गति) हं को दाणिं मं संवाहेदि। [हं क इदानीं मां संवाहयति।]

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ। [एवमिव।]

कुरङ्गी—(ससम्भ्रमम्) हा हीणं चारित्तं। भीदम्हि। [हा हीनं चारित्रम्। भीतास्मि।]

अविमारकः—

न त्वं प्रिये ! मम नवासि मनोभियोगात्
किं कम्पसे पवनवेगहता लतेव।
भद्रे ! भयं त्यज कुरुष्व मयि प्रसादं
किं वा प्रलप्य बहुधा शरणागतोऽस्मि॥ १९॥

अन्वयः—प्रिये ! त्वम् मनोभियोगात् मम नवा न असि, पवनवेगहता लता इव किम् वेपसे, भद्रे ! भयम् त्यज। मयि प्रसादम् कुरुष्व। बहुधा प्रलप्य किम् ? अहम् तव शरणागतः अस्मि।

व्याख्या—न त्वमिति—हे प्रिये ! त्वं मनोभियोगात्=मानसिकसमागमेन, मम नवा = अनभिज्ञा नासि = न वर्तसे, पवनवेगहता=वायुरवान्दोलिता लता इव = वल्लीव, किम्=कथम्, कम्पसे = कम्पमनुभवसि, अपूर्वभावात्तव कम्पो

कुरङ्गी—अधिक स्नेह की आवश्यकता नहीं शीघ्र आओ।

नलिनिका—राजकुमारी यहीं तो हूँ।

कुरङ्गी—(बलपूर्वक अविमार का आलिङ्गन करती है) इस समय मेरा पैर कौन दबा रहा है।

नलिनिका—(कान में) यह बात है।

कुरङ्गी—हाय मेरा चरित्र नष्ट हो गया मैं डरती हूँ।

अविमारक—हे प्रिये, चिरानुराग के कारण तुम मेरे लिये नयी नहीं हो, क्यों वायु प्रेरित लता की तरह काँप रही हो, भद्रे ! भय को छोड़ो मुझ पर प्रसन्न हो विशेष क्या कहूँ मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ॥ १९॥

(कुरङ्गी सलज्जं नलिनिकां विलोकयति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि । भट्टिदारिआ भणादि। उट्ठेहि किल । [भर्तृदारक ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । भर्तृदारिका भणति । उत्तिष्ठ किल ।]

अविमारकः--बाढम् । (उत्तिष्ठति)

(प्रविश्य)

धात्री—जेदु भट्टिदारओ । [जयतु भर्तृदारकः ।]

अविमारकः--कथं भवती ।

धात्री—णलिणिए ! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। भट्टिदारिअं भट्टिदारअं च तहिं एव पवेसेहि । [नलिनिके ! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम् । भर्तृदारिकां भर्तृदारकं च तत्रैव प्रवेशय ।]

न युक्तः, भद्रे ! भयम् = भीतिम्, त्यज = जहीहि, मयि = प्रपन्ने, प्रसादम् = दयाम्, कुरु = विधेहि, बहुधा = अनेकधा, प्रलप्य = प्रलापं कृत्वा, किंवा = किं प्रयोजनम्, अहम् तव शरणागतोऽस्मि कृपाकाङ्क्षी अतो भीतिं त्यजेत्यर्थः ॥ १९ ॥

भावः—मनोभिसङ्गान्न नवा प्रिये मे
किं वेपसे वातहता लतेव ।
त्यक्त्वा भयं भामिनि मे प्रसीद
ब्रुवे किमन्यच्छरणागतोऽस्मि ॥ १९ ॥

(कुरङ्गी लज्जा से नलिनिका को देखती हैं)

नलिनिका—राजकुमार ! उठो-उठो । राजकुमारी कहती है उठिये ।

अविमारक—अच्छा (उठता है) ।

(प्रवेश कर)

धात्री—जय हो राजकुमार की ।

अविमारक—क्या आप आ गयीं ।

धात्री—नलिनिके ! भीतर आसन बिछा दिया है राजकुमार तथा राजकुमारी को वहीं पहुँचा दो ।

नलिनिका—तह। [तथा।]

(निष्क्रान्ता धात्री)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। तहि एव पविसदु भट्टिदारिआए सह। [भर्तृदारक ! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। तत्रैव प्रविशतु भर्तृदारिकया सह।]

अविमारकः—त्वमप्येवं प्रियशतानि शृणु।

(हस्तेन तस्या हस्तं गृहीत्वोत्तिष्ठति।)

नलिनिका—एदु एदु भट्टिदारओ। [एत्वेतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—अयमहमागच्छामि। (उभौ परिक्रामतः)

अविमारकः—(सहर्षम्) अनृणोऽस्मि यौवनस्य। कुतः,

नेत्रे बाष्पपरिप्लुते करधृतौ व्यावल्गमानौ स्तनौ
श्रोणी चाधिकभारिका न विशदौ पादौ ह्रिया स्यन्दिनौ।

अन्वयः—नेत्रे वाष्पपरिप्लुते करधृतौ स्तनौ व्यावल्गमानौ, श्रोणी च अधिकभारिका ह्रिया स्यन्दिनौ पादौ न विशदौ एतत् सप्तपदप्रमाणम् इह भोः योजना सम्पाद्यते यदि एषा क्षणदा युगशतं भवेत् मत् अन्यः कः धन्यः।

व्याख्या—नेत्रे इति–नेत्रे = प्रियतमानयने वाष्परिप्लुते = आनन्दाश्रु-परिगते करधृतौ = हस्तगृहीतौ, स्तनौ = कुचौ, व्यावल्गमानौ = चलन्तौ,

---

नलिनिका—अच्छा (धात्री का प्रस्थान)।

नलिनिका—राजकुमार, मण्डप में भीतर बिछावन् लगा है आप राज-कुमारी के साथ वहीं चलें।

अविमारक—तुम भी इसी प्रकार प्रिय वचन सुनो। (हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उठता है)।

नलिनिका—आईये राजकुमार।

अविमारक—आ रहा हूँ। (दोनों जाते हैं)।

आज मैंने जवानी का ऋण चुका दिया हूँ। क्योंकि—

ये मेरी प्रिया की आँखें आनन्दाश्रु से भरी हैं, हाथ द्वारा पकड़े गये स्तन सात्विक भाव से कांप रहे हैं, श्रोणी अधिक भारवती है, चरण स्वेद से

एतत् सप्तपदप्रमाणमिह भोः ! सम्पाद्यते योजना
यद्येषा क्षणदा भवेद् युगशतं धन्यो मदन्यः कुतः ॥ २० ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः

श्रोणी च = जघनाभोगः, अधिकभारिका = समधिकभारवती, ह्रिया=व्रीडया, स्यन्दिनौ = प्रस्विन्नौ, पादौ = चरणौ न विशदौ = स्खलितौ एतत् सप्तपदीप्रमाणम् = विवाहसमयविहिता सप्तपदीपरिक्रिया, इह भो = अत्र भोः योजना सम्पाद्यते मनश्चिन्तितम् क्रियते, यदि-चेत् एषा = इयम् क्षणदा युगशतं = युगशतकालीना भवेत् मदन्यः = मद्व्यतिरिक्तः कुतः = केन प्रकारेण धन्यः = कृतार्थो भवेत् । सकलसात्त्विकभावपरिपूर्णेयमद्य प्रथमसमागमापदीयं रात्रिर्युगसमसमया यदि स्यात् तदा मत्सदृशः कोऽन्यः सुखी समभविष्यत् ।

भावः—सास्रे दृशौ करधृतौ सुकुचौ स्फुरन्तौ
श्रोणीभरालसगती चरणौ सुमुन्नौ ।
एषा हि सप्तपदिका मनसोऽनुगं मे
रात्रिर्युगं यदि भवेन्न मदन्यधन्यः ॥ २० ॥

गीले हो रहे हैं, यही हम दोनों की सप्तपदी है, यदि रात युग के समान बड़ी हो तो मेरे समान और धन्य सुखी और कौन है ॥ २० ॥

(सब जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चाङ्गेरिकाहस्ता मागधिका)

मागधिका—अहो परिजणस्स पमादो। आसुय्योदअं पि ण किदा पासादरअणा। ण सुणीअदि गोट्ठीजणकोलाहलो। किं णु खु भवे। आ, रत्तिजागरदाए पभादप्पसुत्ता भवे। जाव भट्टिदारिअं ओबोधेमि। (परिक्रामति) [अहो परिजनस्य प्रमादः। आसूर्योदयमपि न कृता प्रासादरचना। न श्रूयते गोष्ठीजनकोलाहलः। किं नु खलु भवेत्। आ, रात्रिजागरतया प्रभातप्रसुप्ता भवेत्। यावद् भर्तृदारिकामवबोधयामि।]

(ततः प्रविशति विलासिनी वीजनेन)

विलासिनी—मागधिए ! चिट्ठ चिट्ठ। [मागधिके ! तिष्ठ तिष्ठ !]

मागधिका—हला ! मा वारेहि। भट्टिदारिआए सुमणावण्णअं मए आणीअदि। [हला ! मा वारय। भर्तृदारिकायै सुमनोवर्णकं मया नीयते।]

चाङ्गेरिकाहस्ता = पुष्पधारणार्हं पात्रविशेषं करे धृत्वा। परिजनस्य = भृत्यपरिचारकगणस्य, प्रमादः = असावधानता, प्रासादरचना = प्रासादपरिक्रिया, प्रभातसुप्ता = उषसि निद्रिता, अवबोधयामि = उन्निद्रयामि सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्, अविनीते = अनुचितव्यवहारिणि; सतता-

---

(हाथ में चाङेरी लिये मागधिका का प्रवेश)

मागधिका—परिजनों की असावधानी देखो। सूर्योदय हो जाने पर भी प्रासाद को अलंकृत नहीं किया है, गोष्ठीजनों का कोलाहल भी नहीं सुना जाता है। क्या बात है ? ओ रातभर जगने के कारण सुवह नींद लग गयी होगी, तब तक राजकुमारी को जगाऊँ।

(इसके बाद हाथ में पंखा लिये विलासिनी का प्रवेश)

विलासिनी—मागधिके ठहर ठहर।

मागधिका—सखी रोको मत। मैं राजकुमारी के लिये पुष्पमाला लाई हूँ।

विलासिनी—किं भट्टिदारिआए सुमणावण्णएण वा अलङ्कारेण वा। [किं भर्तृदारिकायाः सुमनोवर्णकेन वालङ्कारेण वा।]

मागधिका—अविणीदे ! मा अमङ्गलं भणाहि। सददालङ्किदा भट्टिदारिआ होदु। [अविनीते ! मा अमङ्गलं भण। सततालङ्कृता भर्तृदारिका भवतु।]

विलासिनी—ण खु। आइदी एव भट्टिदारिआए अलङ्कारो त्ति भणामि। [न खलु। आकृतिरेव भर्तृदारिकाया अलङ्कार इति भणामि।]

मागधिका—उम्मत्तिए ! णणु पुप्फं वि वासीअदि। [उन्मत्तिके ! ननु पुष्पमपि वास्यते।]

विलासिनी—सदिसं एदं। सभावरमणीआणि मण्डिदाणि अदिरमणीआदि होन्ति। [सदृशमेतत्। स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति !]

मागधिका—हला ! सुजोजिदो खु भट्टिदारिआए रूवाणुरूवो भत्ता। [हला ! सुयोजितः खलु भर्तृदारिकाया रूपानुरूपो भर्ता।]

लङ्कृता = निरन्तरभूषिता, आकृतिः = स्वरूपम्, निसर्गसुन्दरी नाहार्यगुणमपेक्षते, पुष्पमपि वास्यते = तथा प्रकृतिसुन्दर्यापि भूषणेन समुत्कर्षमापाद्यते। अनुरूपः = रूपस्य योग्यः, शरीरधारी कामः = राजकुमाररूपः काम एव, सास्रा = साश्रुनयना।

विलासिनी—राजकुमारी को पुष्पमाला अथवा अलङ्कार की क्या आवश्यकता है।

मागधिका—अरी अविनीते अमङ्गल बात मत कह।

विलासिनी—नहीं नहीं मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि राजकुमारी का अलङ्कार उसकी आकृति ही है।

मागधिका—अरी, पगली पुष्प भी वासा जाता है।

विलासिनी—तो ठीक कहा, जो स्वभावतः सुन्दर होता है वह अलङ्कार से और अधिक सुन्दर हो जाता है।

मागधिका—राजकुमारी को अपने रूप के अनुकूल पति मिल गये हैं।

विलासिनी—अलं पक्खवादेण भट्ठिदारअस्स समीवे भट्टिदारिआ पदुमिणिआ विअ दिस्सदि। [अलं पक्षपातेन। भर्तृदारकस्य समीपे भर्तृदारिका पद्मिनीव दृश्यते।]

मागधिका—सुट्ठु भणादि। अहं वि चिन्तेमि—ससरीरो भअवं कामदेवो ईदिसो भवेत्ति। [सुष्ठु भणति। अहमपि चिन्तयामि—सशरीरो भगवान् कामदेव ईदृशो भवेदिति।]

विलासिनी—तह एव भट्टिदारिआ भट्टिदारअं विणा खणमत्तं वि ण रमदि। [तथैव भर्तृदारिका भर्तृदारकं विना क्षणमात्रमपि न रमते।]

(ततः प्रविशति सास्रा नलिनिका)

नलिनिका—(सशोकम्) सच्चो खु लोअप्पवादो—बहुविग्घाणि सुहाणि त्ति। एसो खु संवच्छरो अदिक्कन्दो भट्टिदारिआए अविच्छिण्णसुहसम्भोएण रदिं करिअ। अम्हाअं पुण गोट्ठीजणस्स उत्तरकुरुवासो संवुत्तो। अज्ज उअ महाराएण विदिदो एसो खु वुत्तन्तो त्ति

बहुविघ्नानि = अनेकविघ्नयुक्तानि, अतिक्रान्तः = व्यतीतः अविच्छिन्नसुखसम्भोगेन = निरन्तरसुखानुभवेन। उत्तरकुरुवासः = प्रसन्नाया राजकुमार्य्या गोष्ठी सहासनालाभेन दीर्घप्रवास इत्यर्थः, एष वृत्तान्तः = कुरङ्ग्या राजपुत्रेण सह मिलनसमाचारः, सीदति = दुःखीभवति। लज्जाभयमदनैः-लोकैरिदं

विलासिनी—पक्षपात करना ठीक नहीं है। राजकुमार के सामने राजकुमारी कमलिनी के समान शोभती है।

मागधिका—ठीक कहती हो, मैं भी सोचती हूँ, कामदेव यदि शरीर धारण कर लें तो राजकुमार के सदृश प्रतीत हों।

विलासिनी—राजकुमारियाँ राजकुमार के बिना क्षण भर भी प्रसन्न नहीं दिखाई देती है।

(रोती हुई नलिनिका प्रवेश)

नलिनिका—(शोक के साथ) लोग ठीक ही कहते हैं सुख में बड़े विघ्न होते हैं एक वर्ष हुआ राजकुमारी निरन्तर सुखोपभोग करती ही है। हम लोग इस बीच प्रवासित सी हो गयीं थी। आज राजमहल को इस बात की

सुणिअ सीदंदि विअ सरीरं। भट्टिदारिआ च लज्जाभअमअणेहि अभितालिअमाणा सन्दावेण मुद्धा अवअदचेदणा विअ संवुत्ता। एसो खु पासादो णिव्वाविददीवो विअ मे पडिभादि। तेण भट्टिदारएण विरहिदाए मम एक्कं पि हिअअप्पीदिकरं ण जादं। भट्टिदारओ अविग्घेण णिग्गदो त्ति सुणिअ अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं। सम्पदि सुरुद्धं कण्णाउरं। (परिक्रम्य) (अम्मो सहीओ। हला माअधिए! किं एदं। [सत्यः खलु लोकप्रवादः-बहुविघ्नानि सुखानीति। एष खलु संवत्सरोऽतिक्रान्तो भर्तृदारिकाया अविच्छिन्नसुखसम्भोगेन रतिं कृत्वा। अस्माकं पुनर्गोष्ठीजनस्योत्तरकुरुवासः संवृत्तः। अद्य पुनर्महाराजेन विदित एष खलु वृत्तान्त इति श्रुत्वा सीदतीव शरीरम्। भर्तृदारिका च लज्जाभयमदनैरभिताड्यमाना सन्तापेन मुग्धापगतचेतनेव संवृत्ता। एष खलु प्रासादो निर्वापितदीप इव मे प्रतिभाति। तेन भर्तृदारकेण विरहिताया ममैकमपि हृदयप्रीतिकरं न जातम्। भर्तृदारकोऽविघ्नेन निर्गत इति श्रुत्वाद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। सम्प्रति सुरुद्धं कन्यापुरम्। अम्मो सख्यौ। हला मागधिके! किमेतत्।]

मागधिका—हला! किं पुच्छसि। णं मण्डणवेला भट्टिदारिआए। [हला! किं पृच्छसि। ननु मण्डनवेला भर्तृदारिकायाः]

रहस्यं ज्ञातमिति लज्जा, पितृकोपाद् भयम्, राजकुमारेण पुनर्मेलनाभावात् मदनः। अवगतचेतना = मूर्च्छिता, विरहितायाः = वियुक्तायाः। निर्गतः = कन्यान्तःपुराद् बहिर्गतः। प्रह्लादितम् = प्रसन्नम् सुरुद्धम् = सुगोपितम्।

खबर लग गई है। यह सुनकर हमारे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं। राजकुमारी तो आज लाजभय और काम पीड़ित हो गई है और सन्ताप से बेहोश हो रही है। हमको ऐसा लग रहा है मानों इस महल का दीप बुझ गया है। राजकुमार के वियोग से हमको कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है, राजकुमार सकुल यहाँ से निकल गये, यह जानकर थोड़ी खुशी हो रही है, इस समय कन्यान्तःपुर में कड़ा पहरा है। अरी मागधिके! यह क्या है।

मागधिका—क्या पूछती हो राजकुमारी अलङ्करण का यही समय है।

नलिनिका—अदिक्कन्दो उच्छवो। (रोदिति) [अतिक्रान्त उत्सवः।]

उभे—सिविणं विअ किं एदं। भणादि समाणा भवामो। [स्वप्न इव किमेतत्। भण समाना भवामः।]

नलिनिका—सव्वहा गओ भट्टिदारओ। [सर्वथा गतो भर्तृदारकः।]

उभे—हं।

नलिनिका—अहं पि भट्टिदारिआए दुक्खं पेक्खिदुं असहन्ती इह आअदम्हि। [अहमपि भर्तृदारिकाया दुःखं प्रेक्षितुमसहमानेहागतास्मि।]

मागधिका—ण सक्कं खु भट्टिदारिआए अवत्थादंसणं। तह वि भट्टिदारिअं अस्सासइस्सामो। [न शक्यं खलु भर्तृदारिकाया अवस्था-दर्शनम्। तथापि भर्तृदारिकामाश्वासयिष्यामः।]

उभे—एवं करेम्ह [एवं कुर्मः।]

(सर्वा निष्क्रान्ताः)

प्रवेशकः।

मण्डनवेला = अलङ्कारकालः, समानाः = समदुःखाः, असहमाना = अक्षमा। अवस्थादर्शनम् = दुःखावस्थावलोकनम्।

नलिनिका—उत्सव के दिन तो बीत गये है (रोती है)।

दोनों—स्वप्न के समान यह क्या बात है, अहो हम सब एक सी हो जायें।

नलिनिका—राजकुमार तो चले गये।

दोनों—हाँ।

नलिनिका—मैं भी राजकुमारी का दुःख न देख सकी, अतः वहाँ से चली आई हूँ।

मागधिका—राजकुमारी का दुःख नहीं देखा जाता है। फिर भी राजकुमारी को आश्वासित करूँगी।

दोनों—ऐसा करते हैं।

(सभी जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(ततः प्रविशत्यविमारकः)

अविमारकः—(सशोकम्)

कन्यापुरात् कथमपीह विनिर्गतं मे
भाग्यावशेषमवलम्ब्य शरीरमात्रम् ।
अद्यापि तन्मम मनो न तु मामुपैति
नावेक्षते मयि तथा प्रिययावरुद्धम् ॥ १ ॥

का नु खलु भवेदवस्था कुरङ्ग्याः ।

ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्भीता च राज्ञा दृढसन्निरुद्धा ।

अन्वयः—भाग्यावशेषम् अवलम्ब्य इह मे शरीरमात्रम् कथमपि कन्यापुरात् विनिर्गतम् तु अद्यापि मम तत् मनः माम् न अभ्युपैति तथा प्रियया अवरुद्धम् मयि न अवेक्षते ।

व्याख्या—कन्यापुरादिति—भाग्यावशेषात् अवशिष्टजीवनादृष्टात्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, इह = अस्मिन् काले मे = मम, शरीरमात्रम् = केवलशरीरम् कथमपि = केनापि प्रकारेण, कन्यापुरात् = कन्यावासस्थानात्, विनिर्गतम् = बहिरायातम्, तु = किन्तु अद्यापि = इदानीं यावत्, मम तन्मनः = हृदयम् प्रियया = कुरङ्ग्या, तथा = तेन प्रकारेण अवरुद्धम् = निगृह्य स्थापितम् यत् मयि = मदुपरि, नावेक्षते = अपेक्षां न करोति ॥ १ ॥

भावः—कन्यापुराच्छरीरं मे कथमप्यत्र निर्गतम् ।
तया गृहीतं तु मनो नाद्याप्यायाति मामहो ॥ १ ॥

अन्वयः—प्रेष्यजनप्रवादैः ह्रीता भवेत् राज्ञा दृढसन्निरुद्धा च भीता भवेत्, माम् अनवेक्षमाणा वाष्पाविला रात्रिषु मोहम् व्रजेत् किम् करिष्ये ।

(अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—(शोक के साथ) भाग्यशेष के सहारे केवल मेरा शरीर कन्यापुर से यहाँ निकल आया है मेरा मन तो आज भी नहीं आ रहा हैं उस मेरे मन को प्रियतमा ने रोके रखा है । वह मेरी ओर नहीं देखता है ॥१॥

कुरङ्गी की क्या हालत होगी ।

वह परिजनों के अपवाद से लज्जित और राजा के द्वारा कड़ाई के

बाष्पाविला मामनवेक्षमाणा मोहं व्रजेद् रात्रिषु किं करिष्ये ॥ २ ॥

हन्त दृष्टः प्रतीकारः। तथापि तावदस्मदपेक्षया नापेक्षित आत्मा। तस्मादहमपि तावत् तदर्थे प्राणान् परित्यजामि। (परिक्रम्य) कतिपयदिवसप्रोषितोऽहमस्मि। अद्य तु मानसं शारीरं च दुःखमसह्यमिव मे प्रतिभाति। इह हि,

निर्व्याजं परिचयवर्धमानरागां
रूपाढ्यामभिनवयौवनां मनोज्ञाम्।

व्याख्या—ह्रीतेति—प्रेष्यजनप्रवादैः = परिजननिन्दावचनैः ह्रीता = लज्जिता भवेत् = स्यात्, राज्ञा = कुन्तिभोजेन, दृढसन्निरुद्धा = कठोरे कारागारे स्थापिता भीता = भयम् प्राप्ता भवेत्, माम् = प्रियम्—अनवेक्षमाणा = अपश्यन्ती वाष्पाविला = अश्रुकलुषिता, रात्रिषु = निशासु, मोहम् = मूर्छाम् व्रजेत् किम् करिष्ये = अत्र विषये किमपि कर्तव्यं न निश्चिनोमि ॥ २ ॥

भावः—ह्रीता परिजनवादैः राज्ञा रुद्धा च सा भवेद् भीता।
वाष्पाविला विना माम् रात्रौ मुह्येत् ततोऽत्र किं कुर्याम् ॥२॥

दृष्टः = ज्ञातः, प्रतीकारः = उपायः, तया = कुरङ्ग्या, मदपेक्षया = ममानुरागमूढया, आत्मा नापेक्षितः = स्वचिन्ता न कृता, कतिपयदिवसप्रोषितोऽहमस्मि = कियद्भिरहोभिर्विप्रयुक्तोऽस्मि।

अन्वयः—निर्व्याजम् परिचयवर्धमानरागाम् रूपाढ्याम् अभिनवयौवनाम् मनोरमाम् ताम् त्यक्त्वा क्षणम् अपि जीवन् अहम् वञ्चितः अस्मि इह अन्यः कष्टः कः कृतघ्नभावः भवेत्।

साथ निरुद्ध होकर डरी हुई होगी, मुझे न देखती हुई रो रही होगी, रातों में मूर्च्छित हो जाती होगी—क्या किया जाय ॥ २ ॥

अहा ! उपाय ज्ञात हो गया, उसने मेरे लिये प्राणों की चिन्ता नहीं की। अतः मैं भी उसके लिये प्राणों को त्याग दूंगा। (चलकर) कुछ दिनों से मैं वियुक्त हूँ आज मानसिक तथा शारीरिक क्लेश असह्य हो रहा है। यहाँ—

त्यक्त्वा तां क्षणमपि वञ्चितोऽस्मि जीवन्
कष्टोऽन्यः क इह भवेत् कृतघ्नभावः ॥ ३ ॥

सम्प्रति हि मदनेनान्तर्दह्यमानस्य क्षारीभवितुमारब्धो भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः । (सर्वतो विलोक्य) अहो प्रतिभयता निदाघस्य । सम्प्रति हि,

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात् ।

व्याख्या—निर्व्याजमिति–निर्व्याजम् = निश्छलम् , परिचयमात्रेण वर्धमानो रागो यस्याः सा तथोक्ताम् = सकृद्दर्शनमात्रोपचीयमानानुरागाम् रूपाढ्याम् = परमसुन्दरीम् , अभिनवयौवनाम् = आरब्धयौवनावस्थाम् मनोरमाम् = मनोज्ञाम् ताम् = पूर्वानुभूताम्, त्यक्त्वा = विहाय क्षणमपि स्तोकसमयमपि, जीवन् = प्राणन् अहम् वञ्चितोऽस्मि = प्रतारितोऽस्मि । इह = अत्र, कष्टः = क्लेशदः, अन्यः = अपरः कः कृतघ्नभावः = कृतघ्नता भवेत् ॥ ३ ॥

भावः—निरुपधि परिचयरक्तां रूपाढ्यामभिनवयौवनां हृद्याम् ।
हित्वा प्राणन् कोऽन्यो मद्व्यतिरिक्तः कृतघ्नः स्यात् ॥ ३ ॥

मदनेनान्तर्दह्यमानस्य = कामेन सन्तप्तहृदयस्य, क्षारीभवितुमारब्धः = अन्तस्तप्तस्य बहिरपि तापजनकत्वात् ; प्रतिभयता = भयानकता ।

अन्वयः—भास्करकरैः आपीतसाराः अत्युष्णा मही ज्वरिता इव, (लक्ष्यते) दवाग्न्याश्रयात् प्रमुषितच्छाया पादपा यक्ष्मार्ता इव, उच्छ्रित-गुहाव्यात्ताननाः पर्वताः अवशा विक्रोशन्ति इव रविपाकनष्टहृदयः अयम् लोकः मूर्च्छाम् संयाति इव ।

निश्छल भाव से परिचय से बढ़े अनुराग वाली, सुन्दरी, नवयौवना तथा प्रियतमा उस कुरङ्गी को छोड़कर मैं यदि क्षण भर भी जीवित हूँ, तो इस से बड़ी कौन कृतघ्नता हो सकती है ॥ ३ ॥

इस समय काम से जलते हुये मेरे शरीर पर सूर्य्य नमक छिड़क रहे हैं । (चारों तरफ देखकर) अहा ग्रीष्म-काल कितना भयङ्कर है । इस समय—

विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥ ४ ॥

किमिदानीं करिष्ये । न चास्म्यहं गन्तुं समर्थः । कुतः,

लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णैः
संस्वेदयन्ति च नगाः परुषैः पलाशैः ।

व्याख्या—अत्युष्णा इति—भास्करकरैः = सूर्य्यकिरणैः, आपीतसारा = संशुष्कजला, अत्युष्णा = अतितप्ता, मही = धरित्री, ज्वरिता = संजातज्वराः इव लक्ष्यते, दवाग्न्याश्रयात् = वनदहनसम्पर्कात्, प्रमुषितच्छाया = पत्र-नाशात् छायारहिताः, पादपाः = वृक्षाः, यक्ष्मार्ताः = राजयक्ष्मरोगपीडिताः इव संलक्ष्यन्ते, उच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः = व्यात्तोन्नतगुहामुखाः, पर्वताः = शैलाः, अवशाः = अस्वाधीनाः, व्याक्रोशन्ति = आक्रन्दन्तीव, रविपाकनष्ट-हृदयः = सूर्य्यकिरणसन्तापदग्धहृदयः अयम् = एषः लोकः = संसारः, मूर्च्छामिव = मोहमिव, संयाति = सम्प्राप्नोति ॥ ४ ॥

भावः—ज्वरार्तेवेयं भू रविकिरणदग्धा गतरसा
क्षयग्रस्ता वृक्षा दवदहनदग्धा गतदलाः ।
गुहास्यं व्यादाय ह्यवश इव रोदन्ति गिरयो
रवेरस्रैस्तप्तः सकल इव संमूर्च्छंरिजनः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पवनाः सिकताग्निचूर्णैः लिम्पन्ति, परुषैः पलाशैः नगाः च संस्वेदयन्ति, भास्वान् दावैः द्रवीकृततनुः स्रवति इव, लोकः आदित्यपाक-चलितः फलति इव ।

सूर्य्य के किरणों से नीरस हो गयी पृथिवी ज्वर पीडित-सी तप्त दिखाई दे रही है, दवाग्नि लगने से वृक्ष छायाहीन यक्ष्मा से पीडित के समान दीखते हैं, गुहा रूप मुख को फैलाये सभी पर्वत अवश होकर मानो चिल्ला रहे हैं, यह संसार सूर्य्य की किरणों से दग्ध हृदय होकर मूर्च्छित सा हो रहा है ॥ ४ ॥

अब मैं क्या करूँ चल भी नहीं सकता क्योंकि—

बालुका रूपी अग्निकणों से यह वायु सब जगह व्याप्त कर रहा है, ये

दावैर्द्रवीकृततनुः स्रवतीव भास्वा-
नादित्यपाकचलितः फलतीव लोकः ॥ ५ ॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! देहि मे प्रतिवचनम् । (मूर्च्छा नाटयति । पुनर्निःश्वस्य ऊर्ध्वमवलोक्य) रुद्धः खलु भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः । अथवा,

किमत्र चित्रं वितताः पयोदा
रुन्धन्ति सूर्यं ननु वातनीताः ।

व्याख्या—लिम्पन्तीवेति–पवनाः = वायवः, सिकताग्निचूर्णैः=मुर्मुराभ-वालुकाकणैः लिम्पन्ति = लेपमिव कुर्वन्ति, नगाः = वृक्षाः परुषैः = शुष्कत्वाद् रुक्षैः पलाशैः = पत्रैः, संस्वेदयन्ति = स्वेदं जनयन्ति भास्वान् = रविः दावैः = वनाग्निभिः, द्रवीकृततनुः = द्रुतशरीरः, स्रवति = च्यवतीव, लोकः = जनः, आदित्यपाकचलितः = सूर्य्यपाकविकलः फलति = स्फुटतीव भ्राष्टयवा इव लाजीभवति ।

भावः—वालुका मुर्मुराभाः समन्तात्पतन्ति
शुष्कपत्रैः कुजाः स्वेदयन्ते जनान् ।
च्योततीयांशुमान् दाववह्निद्रुतो
लाजतां सूर्यमृष्टो जनो यात्ययम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—वातनीताः वितताः पयोदाः सूर्य्यम् रुन्धन्ति अत्र किं चित्रं ननु मे अन्तःस्थितम् कामम् यदि वारयन्ति एतत् विस्मयनीयम् भवेत् ।

व्याख्या—किमत्रेति, वातनीताः = वायुप्रापिताः, वितताः = विस्तृताः, पयोदाः=मेघाः, यदि = चेत् सूर्य्यम् = भास्करम् रुन्धन्ति = आवृण्वन्ति, अत्र=

वृक्ष कर्कश पत्रों से सभी को स्वेदित कर रहे हैं। दावाग्नि से मानो पिघल कर सूर्य्य चू रहा है। सूर्य्य के ताप से यह संसार भाड में पककर लावा जैसा हो रहा है ॥ ५ ॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! मुझे उत्तर दो (मूर्छित होता है) (पुनः होश में आकर ऊपर देखकर) भगवान् सूर्य्य छिप गये । अथवा—

हवा से लाये गये मेघ सूर्य्य को छिपा रहे हैं, इसमें आश्चर्य्य ही क्या

अन्तःस्थितं मे यदि वारयन्ति
काामं भवेद् विस्मयनीयमेतत् ॥ ६ ॥

किमनेन जीवन्मरणेन । विसर्जयिष्याम्यात्मानम् (उत्थाय परिक्रामति) किन्नु खलु करिष्ये। भवतु दृष्टम्। अस्मिन्नारण्यतटाके विसर्जयिष्याम्यात्मानम्। धिगधर्मः खलु मे मरणमार्गः। अभिमानमोहान्महापथो विस्मृतः। अन्यथा प्रयतिष्ये। (विलोक्य) भवतु दृष्टम्। अये अदूरे दृश्यते दवाग्निः। तस्मिन् प्राणाहुतिं करिष्यामि। (उपगम्य प्रणम्य च) भगवन् ! अग्ने !

इष्टं चेदेकचित्तानां यद्यग्निः साधयिष्यति ।
परत्रापि च मे कान्ता सा भवेदेककीर्तनी ॥ ७ ॥

अस्मिन् विषये किम् चित्रम् न = आश्चर्यं, मे = मम, अन्तःस्थितम् = अन्तःकरणनिष्ठम् कामम् मनसिजम् यदि = चेत् वारयन्ति = आच्छादयन्ति, एतत् = इदम् विस्मयनीयम् विस्मयजनकम् भवेत् ॥ ६ ॥

भावः—वातानीतपयोदैः रोधः सूर्य्यस्य किं चित्रम् ।
कामं मेऽन्तर्निष्ठं रुन्ध्यादेतद् भवेच्चित्रम् ॥ ६ ॥

जीवन्मरणेन = मरणवद्दुःखदायिना जीवनेन। विसर्जयिष्यामि = त्यक्ष्यामि, आरण्यतटाके = वन्यसरसि, मरणमार्गः = मृत्युप्रकारः, अभिमानमोहात् = देहाभिमानवशात्, महापथः = श्रेष्ठमृत्युमार्गः। अन्यथा = उपायान्तरम्, अदूरे = समीपे, प्राणाहुतिम् = प्राणहोमम्।

अन्वयः—यदि चेत् अग्निः एकचित्तानाम् इष्टम् साधयेत् (तदा) परत्र अपि सा कान्ता मे एककीर्तनी भवेत्।

है ? ये मेघ यदि मेरे हृदय में वर्तमान काम को छिपा दें तो यह आश्चर्य की बात होगी ॥ ६ ॥

इस जीवन-मरण से क्या लाभ, मैं जीवन का त्याग करूँगा। (उठकर चलता है) अच्छा क्या करूँ ? उपाय सूझ गया, इसी वन्य सरोवर में प्राण त्याग करूँगा। मेरे मरने का मार्ग अधर्मपूर्ण है, देह के अभिमान और मोह

(अग्नि प्रविश्य सकुतूहलम्) किमिदं वर्तते ।

दग्धाः स्फुलिङ्गनिकरैर्निपतन्ति वृक्षा
ज्वालाश्च मे मलयचन्दनपङ्कशीताः ।
अग्निर्दयां हि कुरुते मदनातुरेऽपि
पुत्रं पितेव च परिष्वजति प्रहृष्टः ॥ ८ ॥

व्याख्या—इष्टमिति–यदि चेत् अग्निः = दहनः, एकचित्तानाम् = परस्परं प्रेमानुसक्तानाम् इष्टम् = अभिलषितम्, साधयेत् = सम्पादयेत् (तदा) परत्रापि = अन्यजन्मनि अपि सा = कुरङ्गी, कान्ता = प्रिया एककीर्तनी = एकानुगा भवेत् = स्यात् । इति भगवन् ! अग्ने त्वया विधातव्यम् ॥ ७ ॥

भावः—अग्निदाहप्रदग्धानां इष्टावाप्तिः श्रुता श्रुतौ ।
ततो मे निश्चिता भार्य्या परत्रापि भवेद्धि सा ॥ ७ ॥

अन्वयः—स्फुलिङ्गनिकरैः दग्धाः वृक्षाः निपतन्ति, मे ज्वाला मलयचन्दनपङ्कशीता हि अग्निः मदनातुरे अपि दयाम् कुरुते हृष्टः पिता-पुत्रम् इव (माम्) परिष्वजति ।

व्याख्या—दग्धा इति–स्फुलिङ्गनिकरैः = अग्निकणसमूहैः, दग्धाः = प्लुष्टाः, वृक्षाः=पादपाः, निपतन्ति=धराशायिनो भवन्ति, मे = मध्यविमारके, ज्वालाः = अग्निहेतवः मलयचन्दनपङ्कशीताः = पाटीरपङ्कशिशिराः (सन्ति) हि अग्निः = दहनः, मदनातुरे = कामपीडिते अपि दयाम् कुरुते = दयते, हृष्टः = प्रसन्नः पिता = जनकः, पुत्रम् = तनयमिव परिष्वजति = आलिङ्गति ।

से मैंने अच्छा मार्ग भुला दिया । दूसरा प्रयास करूँगा । (देखकर) अच्छा देख लिया समीप में ही दावाग्नि है, इसीमें प्राणों का होम कर देता हूँ, (समीप जाकर प्रणाम कर) भगवन् अग्निदेव ! यदि हृदय से स्नेह करने वाले का हित आप करते हैं तो जन्मान्तर में भी मेरी वही प्रिया रहे ॥ ७ ॥

(आग में बैठकर साश्चर्य) क्या बात है ।

अग्निकणों से जलकर वृक्ष धराशायी होते हैं, यह अग्नि ज्वाला मेरे शरीर में, चन्दन के पङ्क के समान शीतल प्रतीत हो रही हैं । जैसे प्रसन्न पिता पुत्र का आलिङ्गन करता है वैसे अग्नि मेरा आलिङ्गन कर रहा है ॥८॥

भोः किमतः परं विस्मयनीयम् ! अग्निः खलु मां न दहति। अथवा एतदप्यस्ति कारणम्। अन्यथा प्रयतिष्ये (परिक्रम्य) एष खलु महान् पर्वतः,

असितजलदवृन्दैर्मिश्रसन्दिग्धशृङ्गो
गगनचरकुलानां विश्रमस्थानभूतः।
सुकविमतिविचित्रो मित्रसंयोगहृद्यो
नरपतिरिव नीचो दृश्यते निष्फलाढ्यः॥ ९॥

भवतु तावदस्मिञ्छैले प्राणान् परित्यजामि। मरुत्प्रपातो हि

अन्वयः—असितजलदवृन्दैः, मिश्रसन्दिग्धशृङ्गः, गगनकरकुलानाम् विश्रमस्थानभूतः सुकविमतिविचित्रः मित्रसंयोगहृद्यः निष्फलाढयः नीचः नरपतिः, इव दृश्यते।

व्याख्या—असितेति—असितानां जलदानां वृन्दैः = नीलनीरधरमेचकैः, मिश्राणि सन्दिग्धानि शृङ्गाणि यस्य स तथोक्तः = व्याप्तनीलमेघशयित-शिखरः। गगनचरकुलानाम् = खेचरसमूहानाम्, विश्रमस्थानभूतः = विश्रामस्थानभूतः, मित्रसंयोगहृद्यः = सुहृत्समागममनोहरः, निष्फलाढयः = निरर्थकधनशाली, नीचः = निर्दयोऽदानी, नरपतिरिव राजेव दृश्यते = विलोक्यते। मालिनीवृत्तम्॥ ९॥

इससे बढ़कर क्या आश्चर्य हो सकता है, अग्नि मुझे न ही जला रहा है। अथवा इसका भी कारण है। दूसरा प्रयास करूँगा (चलकर) यह विशाल पर्वत है।

काले बादल इस पर चल रहे हैं, जो शिखरों से मिलकर तदाकार प्रतीत हो रहे हैं, यह पर्वत आकाशचारियों का विश्रामस्थान है, कवि बुद्धि के समान विचित्र है और मित्र के मिलन के समान मनोहर है। निष्फल धन वाला नीच राजा के समान दिखाई दे रहा है॥ ९॥

अस्तु इसी पर्वत पर प्राण-त्याग करता हूँ। पर्वत शिखर से गिर कर प्राण छोड़ना सब कामना का साधक है, चढ़ता हूँ (चढ़कर और देखकर)

सर्वार्थसाधकः। यावदारोहामि। (आरुह्यावलोक्य) एतत् पानीयं गोत्रस्थं स्नात्वोपस्पृश्य मन्त्रं जपामि। (तथा कृत्वा जपति)

(ततः प्रविशति विद्याधरः सह प्रियया)

विद्याधरः—

प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातं पुनर्मानसे
भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।
क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता
यास्यावो मलयस्य चन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखान् ॥ १० ॥

मरुत्प्रपातः = पर्वतशिखरात्पतनम्, गोत्रस्थम् = पर्वतस्थम् पानीयम् = जलम्।

अन्वयः—उत्तरेषु कुरुषु प्राक् सन्ध्या गमिता पुनः मानसे स्नातम् मन्दरकन्दरान्तरतटेषु यौवनम् आमोदितम्, क्रीडार्थम् हिमवद्गुहासु लोभिता दृष्टिश्च रचिता मलयस्य चन्दननगात् मध्याह्ननिद्रासुखान् यास्यावः।

व्याख्या—प्राक् सन्ध्येति—प्राक्सन्ध्या = प्रातस्तनी सन्ध्या उत्तरकुरुषु गमिता = यापिता पुनः = भूयः मानसे = एतन्नाम्नि सरसि, स्नातम् = स्नानं कृतम्. भूयः = पुनः मन्दरकन्दरतटेषु = पर्वतविशेषकन्दरमध्ये, यौवनम् = तारुण्यम् आमोदितम् = सफलं कृतम्, क्रीडार्थम् हिमवद्गुहासु = हिमालयदरिषु संलोभिता = संजातलोभा दृष्टिः = नयनम्, रचिता = कृता, मलयस्य तन्नाम्नः पर्वतस्य मध्याह्ननिद्रासुखान् = निदाघमध्याह्ननिद्रासुखकरान् चन्दननगान् = चन्दनपर्वतान् यास्यावः = गमिष्यावः।

यह पर्वत पर जल, इसमें स्नान आचमन करके मन्त्र जप लूं, (वैसा करके मन्त्र जपता है)।

(प्रिया के साथ विद्याधर का प्रवेश)

विद्याधर—प्रातःकाल मैंने उत्तर कुरु में व्यतीत किया, पुनः मानसरोवर में स्नान किया, मन्दराचल की कन्दरा में जवानी का सुख-भोग किया, क्रीडा के लिये लुभाई आँखें हिमालय पर विचरती रहीं, अब हम लोग मध्याह्न काल के निद्रासुख को मलय के चन्दन पर्वत पर अनुभव करेंगे॥१०॥

(आकाशयानं निरूप्य) सौदामिनि ! पश्य पश्य भगवत्या वसुन्धरया दूरस्थां दर्शनीयामाकृतिम् । इह हि,

शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा
वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।
सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च बिन्दूपमा
दृष्टं वक्रमिवाभिभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥ ११ ॥

भद्र ! अवहिता भव । शीतचन्दननिलयं मलयं प्रयास्यावः ।

अन्वयः—शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमाः वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलम् प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्, सीमान्ता इव निम्नगा सुविपुलाः सौधाः च विन्दूपमा दृष्टम् सङ्क्षिप्तम् सकलम् जगत् वक्रम् इव भाति ।

व्याख्या—शैलेन्द्रा इति–शैलेन्द्रा = महापर्वताः कलभोपमाः=करिशावकसदृशाः, जलधयः = समुद्राः, क्रीडातटाकोपमा = विलासवापीसदृशाः, वृक्षाः= भूरुहाः शैवालसन्निभाः = जम्बालसमानाः, क्षितितलम् = भूतलम्, प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् = अन्तर्हितनिम्नभागम्, निम्नगाः = नद्यः, सीमान्ता इव= केशान्तभागा इव सुविपुलाः = महान्तः सौधा विन्दूपमा = विन्दुसदृशाः, दृष्टम् = इत्थमवलोकितम् सकलम् = सर्वम्, जगत् = लोकः, संक्षिप्तरूपम् = संहितपरिणामम्, वक्रम् = कुटिलम् भाति = शोभते ।

अवहिता = सावधाना, शीतचन्दननिलयम् = शीतलचन्दनोत्पत्तिस्थानम् मलयम् = दक्षिणदिगवस्थम् पर्वतविशेषम्, प्रयास्यावः = गमिष्यावः ।

(आकाश गमन कर देखकर) प्रिये सौदामिनी देखो यह पृथिवी दूर से कैसी सुन्दर दीखती है ।

बड़े-बड़े पर्वत हाथी के बच्चे के समान ज्ञात होते हैं, समुद्र क्रीडा-सरोवर की तरह, वृक्ष सेवार के समान, दिखाई देते हैं, पृथ्वी के सभी निम्न भाग छिप गये हैं, नदियाँ भूमि की माँग के समान ज्ञात होती हैं प्रासाद बिन्दु के समान दीखते हैं, यह सारा संसार छोटा एवं टेढ़ा दिखाई देता है ॥ ११ ॥

भद्रे ! सावधान हो जाओ, अब शीतलचन्दन वाले मलय पर्वत पर चलेंगे ।

सौदामनी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(उभावाकाशयानं निरूपयतः)

सौदामनी—अय्य ! ण पारेमि अविस्सन्ता गन्तुं । [आर्य ! न पारयाम्यविश्रान्ता गन्तुम् ।]

विद्याधरः—तेन हि कस्मिञ्चित् पर्वते मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! पिअं मे । [आर्य ! प्रियं मे ।]

(उभाववतरतः)

विद्याधरः—सौदामिनि ! पश्य पश्य ।

जलदगहनमुज्झतीव वेगा-
दभिपततीव मही समुद्रमुद्रा ।
जलदसमयतोयदा इवामी
भृशमभिभान्ति नगा विजृम्भमाणाः ॥ १२ ॥

पारयामि = शक्नोमि, अविश्रान्तः=अविरम्य, मुहूर्तकम् = अल्पकालम् ।

अन्वयः—वेगात् समुद्रमुद्रा मही जलदगहनम् उज्झतीव अभिपतति, अमी विजृम्भमाणा नगा जलदसमयतोयदा इव भृशम् अभिभान्ति ।

व्याख्या—जलदेति–वेगात् = अतिशयात्, समुद्रमुद्रा = जलधिवेष्टिता, मही = धरा जलदगहनम् = घनघटाम्, उज्झतीव = परित्यजतीव, अभिपतति = अभिमुखम् आयाति, अमी = पुरस्ताद् दृश्यमाना विजृम्भमाणा = स्फुट-

---

सौदामिनी—बहुत अच्छा ।

(दोनों आकाश-गमन का अभिनय करते है)

सौदामिनी—आर्य्य ! मैं बिना विश्राम किये आगे नहीं जा सकती ।

विद्याधर—तो किसी पर्वत पर विश्राम करके चलेंगे ।

सौदामिनी—यह मुझे बड़ा प्रिय है ।

(दोनों उतरते है)

समुद्र से घिरी हुई यह पृथ्वी मेघमालाओं से निकल कर वेग से समीप आ रही है । क्रमशः स्पष्टता को प्राप्त होते हुए ये वृक्ष मेघों की तरह मालम होते हैं ।

भवति ! अयं पर्वतः समर्थ इवास्माकं मुहूर्तमातिथ्यं कर्तुम्। तस्माद् विश्रान्तौ गमिष्यावः।

सोदामनी—अय्य ! एवं करेम्ह। [आर्य ! एवं कुर्वः।]

विद्याधरः—सौदामनि ! पुष्पितानां नगानां षड्भागग्रहणमस्माकं धर्मः तस्मादनृणान् वृक्षान् करिष्यावः।

सोदामनी—अय्य ! तह। [आर्य। तथा।]

(पुष्पावचयं नाटयतः)

विद्याधरः—(अविमारकं विलोक्य) अये को नु खल्वयम्। आ ज्ञातम्। विद्याधरः खलु मन्त्रभ्रष्टः। कुतः, रूपमीदृशं हि नान्येषाम्। दिष्टया यदयं दृष्टः। भवत्वहमपि विस्मृतं पृच्छामि।

तामापद्यमाना नगाः = पर्वता जलदसमयतोमुद्रा इव = वर्षाकालजलधरा इव, भृशम् = अतिवेलम् अभिभान्ति = शोभन्ते। स्वभावोक्तिः। मालिनी छन्दः।१२।

अयम् = मलयपर्वतः, आतिथ्यम् = अतिथिसत्कारम्, विश्रान्तौ = विनोदितपरिश्रमौ।

नगानाम् = वृक्षाणाम् षड्भागग्रहणम् = षष्ठस्यांशस्य स्वीकारः, धर्मः= विहितः। अनृणान् = ऋणरहितान् अपाकृतर्णान्। मन्त्रच्युतः = मन्त्रसिद्धि-

---

भद्रे ! यह पर्वत कुछ काल तक हम लोगों का अतिथि-सत्कार करने में समर्थ है।

सौदामिनी—ऐसा ही करेंगे।

विद्याधर—इन फूले वृक्षों से छठा भाग लेना मेरा धर्म है, अतः इन वृक्षों को ऋण मुक्त कर दें।

सौदामिनी—आर्य ! अच्छी बात है।

(फूल तोड़ता है)

विद्याधर—(अविमारक को देखकर) अरे यह कौन है ? ओह ! समझ गया कोई मन्त्रभ्रष्ट विद्याधर ही होगा। ऐसा रूप-दूसरों का कैसे होगा! भाग्यवश यह मिल गया। मैं विस्तार से इसका वृत्तान्त पूछूंगा।

अविमारकः—भवतु कृतं देवकार्यम् । प्रपतामि। (पार्श्वतो विलोक्य, विद्याधरं दृष्ट्वा) भोः ! को नु खल्वयम् । अथवा, स्वप्नोऽयं भवेत् । न ह्यहं सुप्तः । आ अन्तकाले मनुष्याः किमपि पश्यन्ति । तदेतत् स्यात् । तदपि संमूढानां खलु । अहं तु सर्वं जानामि । भवतु पृच्छाम्येनम् । भोः ! कतरकुलान्वयो भवतालङ्क्रियते ।

विद्याधरः—श्रूयताम्—'अहं मेघनादो नाम विद्याधरः । इयं तावदस्मत्कुटुम्बिनी सौदामनी नाम । अद्य भगवन्तमगस्त्यमाराधयितुं मलयपर्वते विद्याधरैरुत्सवः प्रारब्धः । तत्र वयमपि सङ्केतिताः । इह मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्याव इत्यवतीर्णाः । एषोऽस्माकं वृत्तान्तः । अथ किमर्थमिदानीं भवान् क्षितितलं देवलोकीकरोति ।

अविमारकः—(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्तव्यम् । वर्तमाने ममान्तकालेऽनृतं न वक्तव्यम् । (प्रकाशम्) भोः ! सौवीरराजपुत्रोऽविमारको नाम्नास्मि ।

रहितः विस्मृतम् = अस्मर्यमाणस्वस्वरूपम् । प्रपतामि = शैलशिखरात्पतित्वात्मानम् व्यापादयामि । संमूढानाम् = अज्ञानाम्, कतरकुलान्वयः = कः वंशः, अलङ्क्रियते = स्वजन्मना विभूष्यते । कुटुम्बिनी = स्त्री-सहचारिणी, सकेतिता = आगन्तुं कृतसंकेता, क्षितितलं देवलोकीक्रियते = देवसमो भवान्

अविमारक—देव कार्य्य कर लिया अब गिरता हूँ । (बगल की ओर विद्याधर को देखकर) अरे यह कौन है । अथवा यह स्वप्न होगा । मैं सोया तो नहीं हूँ । मरण-काल में मनुष्य जो कुछ देखते हैं यही कुछ होगा । यह तो बेहोश लोगों की बात है, मैं तो होश में हूँ । अच्छा इससे पूछता हूँ । आप किस वंश को अलङ्कृत करते हैं ।

विद्याधर—सुनिये मैं मेघनाद नाम का विद्याधर हूँ ? और यह मेरी स्त्री सौदामिनी है । आज भगवान अगस्त्य की आराधना के लिये विद्याधरों ने उत्सव का आयोजन किया है । उसमें हमें भी बुलाया है । यहाँ क्षण भर विश्राम करके आगे बढ़ूँगा । यही वृत्तान्त है । अब आप यह बताइये कि आप इस धरातल को क्यों देवलोक बना रहे हैं ।

अविमारक—(स्वगत) क्या कहूँ मरण काल में झूठ तो नहीं बोलूँगा (प्रकट) मैं अविमारक नाम का सौवीर राज का पुत्र हूँ—

विद्याधरः—(आत्मगतम्) एतदनृतम् । नेयमाकृतिर्मानुषी । (प्रकाशम्) अथ किमर्थमेकाकी भवानिहागतः ।

अविमारकः—(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्ष्यामि । (अधोमुखस्तिष्ठति)

विद्याधरः—(आत्मगतम्) भवत्वहमेव ज्ञास्यामि । (विद्यामावर्तयति) भोः कष्टम् । अयं खलु भगवतोऽग्नेः पुत्र आत्मानं न जानाति, कुन्तिभोजदुहितरं कुरङ्गीमभिलषमाणो रममाणश्च तत्र विदिते सति निर्गतः, पुनः प्रवेशोपायमलभमानः प्राणपरित्यागाभिलाषी मरुत्प्रपातं कर्तुमिहारूढः । सापि च तत्र जीवन्मरणमनुभवति । अहमस्यास्मिन् कार्ये सहायो भविष्यामि । (प्रकाशम्) भो अविमारक ! अच्छलं मित्रत्वं नाम । न शक्नोषि मया विदितमर्थं प्रच्छादयितुम् ।

अविमारकः—उच्यताम् ।

स्याश्रयात् भूतलं देवलोकमिव करोति । अन्तकाले = मृत्युसमये, एकाकी = राजपुत्रेणं नैकाकिना भाव्यम् । सहायरहितः कथम् विद्यामावर्तयति = यया विद्यया परमनोगतं जानाति तां विद्या स्मरति । अभिलषमाणः = कामयमानः, विदिते = कन्यापुरं प्रच्छन्नभावेनेत्य तया सह रमणवृत्तान्ते अवगते

विद्याधर—(स्वगत) झूठी बात है । यह मनुष्य की आकृति नहीं हो सकती है । (प्रकट) आप अकेले यहाँ क्या करने आये हैं ।

अविमारक—(स्वगत) क्या कहूँगा (मुख नीचे कर बैठा रहता है) ।

विद्याधर—(स्वगत) अच्छा मैं स्वयं जान लूंगा । (विद्या की आवृत्ति करता है) अहा ! बड़ा कष्ट है, यह व्यक्ति यह नहीं जानता है । मैं अग्निदेव का पुत्र हूँ, इसे कुन्तिभोज की लड़की कुरङ्गी से प्रेम हो गया है । उसके साथ विहार करता रहा । भेद खुल जाने पर वहाँ से निकल भागा । फिर वहाँ प्रवेश का उपाय न जानकर प्राण-त्याग की इच्छा से पर्वत पर चढ़ा है । इसकी प्रेयसी भी वहाँ जीते हीं मरण का अनुभव कर रही है । मैं इसके इस कार्य में सहायक बनूंगा (प्रकट) अजी अविमारक ! मित्रता में छल नहीं । मैं जिस बात को जानता हूँ उसको छिपा नहीं सकते ।

अविमारक—कहिये ।

विद्याधरः—अद्यप्रभृत्यावयोः सख्यमस्तु। सकला च भवतोऽस्माभिरवस्था विदिता। प्राणपरित्यागार्थमिहारूढो भवान् ननु।

अविमारकः—वयस्य! एवमेतत्।

विद्याधरः—भोः! प्रीतोऽस्म्यनेन विस्रम्भेण यदि तत्राज्ञातमेव-प्रवेष्टुं स्यादुपायः, किं करिष्यति भवान्।

अविमारकः—(सहर्षम्) किमन्यत्। अनुप्रवेक्ष्यामि तदर्थो हि व्याक्षेपः।

विद्याधरः—तेन हि सखे! दृश्यतामङ्गुलीयम्। (इत्यङ्गुलीयकं दर्शयति)

अविमारकः—वयस्य! किमनेन प्रयोजनम्।

विद्याधरः—एतदङ्गुलीयकं दक्षिणाङ्गुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थः।

प्रवेशोपायम् = कन्यापुरे पुनर्गमनोपायम्, मरुत्प्रपातम् = पर्वतशिखरात् पतित्वा प्राणत्यागम्, जीवन्मरणम्=जीवनकाल एव मरणदुःखम्, अच्छलम्=

विद्याधर—आज से हम दोनों की मित्रता हुई। मैंने तुम्हारी सारी अवस्था जान ली है। तुम प्राण देने के लिये इस पर्वत पर चढ़ आये हो।

अविमारक—मित्र! ऐसी ही बात है।

विद्याधर—मैं तुम्हारे इस विश्वास-भाव से प्रसन्न हूँ। यदि तुम छिपे-छिपे वहाँ पर प्रवेश का कोई उपाय जान लोगे तो क्या करोगे?

अविमारक—(सहर्ष) और क्या? वहाँ जाऊँगा। इसीलिये न पागल हो गया हूँ।

विद्याधर—अच्छा तो यह अँगूठी देखो (अँगूठी दिखलाता है)

अविमारक—मित्र! इससे क्या कार्य होगा।

विद्याधर—इस अँगूठी को दाहिने हाथ की अँगुली में धारण करने से अदृश्य हो जाओगे, और बायें हाथ की अँगुली में धारण करने पर पुनः दिखाई देने लगोगे।

अविमारकः—वयस्य ! एतदप्यस्ति ।

विद्याधरः—अयं ते प्रत्ययं करिष्यामि । वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—एवम् ।

विद्याधरः—अवहितो भव ।

अविमारकः—अवहितोऽस्मि ।

विद्याधरः—(दक्षिणाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य) वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—वयस्य ! छायापि न दृश्यते, किं पुनः शरीरम् । एते खलु लोके सुखिनो नाम ।

ये सञ्चरन्ति गगने वनितासहायाः
क्रीडन्ति पर्वततटेषु कृतोपदेशाः ।

छलरहितम्, प्रच्छादयितुम् = निह्नोतुम् । विश्रम्भणे=विश्वस्य स्वरहस्योक्त्या तत्र = कुन्तिभोजस्य कन्यान्तःपुरे, तदर्थो हि व्याक्षेपः = तत्र प्रवेशार्थमेवाऽयं तवोन्मादः । अदृश्यः = अन्येनानवलोकनीयः, प्रकृतिस्थः = पुनर्दृश्यरूपः ।

अन्वयः—ये वनितासहायाः गगने सञ्चरन्ति, कृतोपदेशाः पर्वततटेषु क्रीडन्ति, मन्त्रकृतैः प्रभावैः सर्वम् विदन्ति च अन्तर्हिताः विवृताः च सुखम् भ्रमन्ति ।

व्याख्या—य इति–ये वनितासहायाः = प्रियासहिताः, गगने = आकाशे सञ्चरन्ति = भ्रमन्ति, कृतोपदेशाः = विहितेष्टस्थलाः, पर्वततटेषु = शिखरि-

---

अविमारक—मित्र ! ऐसा भी है ।

विद्याधर—अभी-अभी मैं तुमको विश्वास दिला देता हूँ, मित्र क्या मुझे देख रहे हो ।

अविमारक—हाँ ।

विद्याधर—सावधान हो जाओ ।

अविमारक—सावधान हूँ ।

विद्याधर—(दक्षिण अँगुलि में पहिन कर) मित्र मुझे देख रहे हो ।

अविमारक—छाया भी नहीं देख रहा हूँ, शरीर की क्या बात । यही लोग संसार में सुखी है ।

जो स्त्रियों के साथ आकाश में भ्रमण करते रहते हैं, पर्वतों पर मार्ग

सर्वं विदन्त्यपि च मन्त्रकृतैः प्रभावै-
रन्तर्हिताश्च विवृताश्च सुखं भ्रमन्ति ॥ १३ ॥

भवतु, प्रविष्ट एवास्म्यनेन ।

विद्याधरः—(वामाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य) तेन हि गृह्यतामाङ्गुलीयकम् ।

अविमारकः--(प्रतिगृह्य) अनुगृहीतोऽस्मि ।

विद्याधरः—न न, अहमेवानुगृहीतः । कुतः,

न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकाङ्क्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ॥ १४ ॥

भागेषु क्रीडन्ति = विलसन्ति, मन्त्रकृतैः = मन्त्रजनितैः, प्रभावैः = सामर्थ्यातिशयैः, सर्वम् = अखिलम् प्रत्यक्षम् परोक्षञ्च विदन्ति=जानन्ति, अन्तर्हिताः= प्रच्छन्नाः, विवृताः = प्रकटाश्च सर्वत्र सुखम् = सानन्दम् भ्रमन्ति = अटन्ति । एतादृशाः विलक्षणप्रभावाः विद्याधराः अतिसुखिनो धन्याः ॥ १३ ॥

अन्वयः—सुजनः रत्नम् आसाद्य तथा न परितुष्यति, यथा तद्गताकाङ्क्षे तत् पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ।

व्याख्या—न तथेति–सुजनः = सज्जनः, रत्नम् आसाद्य = प्राप्य तथा तेन प्रकारेण न परितुष्यति = आनन्दमनुभवति, यथा = येन प्रकारेण तद्गताकाङ्क्षे = तदभिलाषिणि तद् = रत्नम् दत्त्वा = प्रदाय, प्रसीदति = प्रसन्नो भवति ॥ १४ ॥

करते हैं मन्त्र के प्रभाव से सब प्रत्यक्ष-परोक्ष को जान जाते हैं । छिपकर तथा प्रकट होकर सब जगह विचरते हैं ॥ १३ ॥

इस अँगुठी से (राजमहल में) प्रवेश तो हो ही गया ।

विद्याधर—(बायें हाथ में पहन कर) तो इस अँगुठी को ले लो ।

अविमारक—(लेकर) आप ने बड़ी कृपा की ।

विद्याधर—नहीं-नहीं मैं ही अनुगृहीत हुआ क्योंकि—

सुजन लोग रत्न पाकर उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जिस प्रकार उसको चाहने वाले को देकर प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥

अविमारकः—एकस्तु मे संशयः। मम शरीरे परीक्षितुमिति वक्तुमसदृशमिव।

विद्याधरः—तेन हि प्रक्षिप दक्षिणाङ्गुल्याम्।

अविमारकः—बाढम्। (तथा करोति)

विद्याधरः—वयस्य ! गृह्यतामसिः।

अविमारकः—बाढम्। (खड्गं गृहीत्वा सविस्मयम्) अहो खड्गस्य प्रभावः।

प्रच्छन्नरूपस्त्वशनिः कथञ्चित्
खड्गीकृतः स्यात्तु तडित्कलापः।
निर्भर्त्सयन् सूर्यकृतां प्रदीप्तिं
वनं दवाग्निः सहसाभ्युपैति॥ १५॥

अन्वयः—प्रच्छन्नरूपः अशनिः स्यात् कथञ्चिद् खड्गीकृतः तडित्कलापः स्यात्सूर्यकृताम् प्रदीप्तिम् निर्भर्त्सयन् दवाग्निः सहसा वनम् अभ्युपैति।

व्याख्या—प्रच्छन्नेति–प्रच्छन्नरूपः = प्रच्छन्नं रूपं यस्य सः तिरोहिताकारः, अशनिः = वज्रम्, स्यात् = भवेत्, कथंचित् केनापि प्रकारेण खड्गीकृतः = खड्गरूपं प्रापितः, तडित्कलापः = विद्युत्प्रभा, स्यात् सूर्यकृताम् = रविजनिताम्, दीप्तिम्=प्रभाम् निर्भर्त्सयन् = पराभवन्, दवाग्निः = वनवह्निः सहसा = अकस्मात् वनम् = अरण्यम्, अभ्युपैति=प्राप्नोति। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

अहो अग्निपुत्रस्य वीर्यम् = अग्निपुत्रत्वेनावतीर्णस्यास्य महान् प्रभावः।

अविमारक—मुझे एक सन्देह है, मैं भी अपने शरीर पर इसकी परीक्षा कर लेता यद्यपि यह कहना अनुचित के समान है।

विद्याधर—तो तुम अपने दाहिने हाथ की अँगुली में पहन लो।

अविमारक—अच्छा (पहनता है)।

विद्याधर—वयस्य (मित्र)! इस खड्ग को धारण करो।

अविमारक—अच्छा (खड्ग लेकर साश्चर्य) खड्ग का कैसा अद्भुत प्रभाव है।

यह छिपा हुआ वज्र है, किसी प्रकार खड्ग का रूप धारण कर लिया है। विद्युतों का समूह है, सूर्य्य के प्रभा को अभिभूत करता हुआ दावानल सहसा वन में आरहा है॥ १५॥

विद्याधरः—अहो वीर्यमग्निपुत्रस्य । अस्य खड्गस्य प्रभावं विद्याधरेष्वपि कतिचित् सहन्ते । अग्निः खलु भगवानिमं रक्षति ।

अविमारकः—(खड्गं दृष्ट्वा) अहो भगवतीनां विद्यानां प्रभावः ।

दिव्यं स्वभावं समुपागतोऽस्मि
स एव नामास्मि गुणैर्विशिष्टः ।
इदं यदा निर्गुणमर्त्यवृन्दै-
र्न ज्ञायते चास्ति च मे शरीरम् ॥ १६ ॥

वयस्य ! कृतमस्मत्कार्यम् । गृह्यतामसिः ।

अन्वयः—दिव्यम् स्वभावम् समुपागतः अस्मि स एव नामगुणैः विशिष्टः अस्मि यदा इदम् मे शरीरम् निर्गुणमर्त्यवृन्दैः न ज्ञायते अस्ति च ।

व्याख्या—दिव्यमिति–दिव्यम् = अलौकिकम्, स्वभावम् = प्रकृतिं समुपागतः = सम्प्राप्तः अस्मि, स एव नाम = प्राकृत एवाऽहम्, गुणैः विशिष्टः = समधिकगुणवान् अस्मि, यदा मे = मम इदम् वर्तमानम्, शरीरम् = देहः, निर्गुणमर्त्यवृन्दैः = गुणहीनमानवसमूहैः न ज्ञायते = न प्रतीयते अस्ति च वर्तमानोऽपि साधारणजनैर्न ज्ञायते ॥ १६ ॥

अन्तर्हितः = योऽङ्गुलीयकं धृत्वाऽन्तर्धानं गतः तत् स्पृष्टः = तेनान्तर्हितेन स्पृष्टः कृतस्पर्शः, तत्स्पृष्टः = तेनान्तर्हितस्पृष्टस्पृष्टश्चेति त्रयोऽप्यन्तर्हिता भवन्ति । इति निश्चयः । अयमभ्युदयादभ्युदयः = त्रिकपरम्परान्तर्धानम्

विद्याधर—अहो ! अग्नि-पुत्र का कैसा अद्भुत प्रभाव है, विद्याधरों में भी कोई ही इस खड्ग के प्रभाव को सहन करते हैं । मेरा विचार है भगवान् अग्नि इसकी रक्षा करते हैं ।

अविमारक—अहो विद्याओं का कैसा अद्भुत प्रभाव है ।

इस समय मैं दिव्य प्रभाव को प्राप्त हो गया हूँ, मैं वही हूँ किन्तु मेरे में अद्भुत गुण हो गया है, क्योंकि यह मेरा शरीर वर्तमान होता हुआ भी गुणहीन मनुष्यों से दिखाई नहीं देता है ॥ १६ ॥

आपने मेरा कार्य्य कर दिया, इस खड्ग को लीजिये ।

विद्याधरः—यदिष्टं भवतः। वयस्य ! अन्तर्हितश्चान्तर्हितस्पृष्टश्च तत्स्पृष्टश्चान्तर्हिता भवन्तीति निश्चयः।

अविमारकः—सखे ! प्रीतोऽस्मि। अयमभ्युदयादभ्युदयः। सखे ! अस्मदपेक्षया विलम्बितमिति तर्कयामि। मा भूदिदानीं वेलातिक्रमः।

विद्याधरः—प्रविष्टोऽस्मि, यद्यापृष्टो भवान्।

अविमारकः—किं बहुना भाषितेन।

विद्यावशानां तु भवद्विधानां
कोऽस्मद्विधः स्यात् प्रतिकर्तुकामः।
क्रीतोऽस्म्यहं जीवितसम्प्रदानात्
प्रशाधि मां किं करवाणि भृत्यः॥ १७॥

महाभ्युदयः अस्मदपेक्षया = मम कार्य्यसाधनपरतया विलम्बितम् = कृतसमयातिक्रमो भवान्। वेलातिक्रमः = नियतसमयातिक्रमः।

अन्वयः—विद्यावशानाम् भवद्विधानाम्, अस्मद्विधः कः प्रतिकर्तुकामः स्यात् जीवितसम्प्रदानात् अहम् क्रीतः अस्मि अहम् भृत्यः किं करवाणि प्रशाधि।

व्याख्या—विद्येति-विद्यावशे येषां ते विद्यावशास्तेषां विद्यावशानाम्=

विद्याधर—मित्र ! जैसी तुम्हारी इच्छा। मित्र ! अँगूठी पहनने पर तुम स्वयं अदृश्य हो जाओगे जिसको छूते रहोगे तब तक वह भी अदृश्य रहेगा और उस व्यक्ति के स्पर्श से युक्त व्यक्ति भी अदृश्य रहेगा, यह निश्चित जानो।

अविमारक—सखे ! मैं प्रसन्न हूँ, अभ्युदय पर अभ्युदय हो गया है। मित्र ! हमारे कारण आपको बहुत देर हो गई अब देर मत करिये।

विद्याधर—आपने अनुमति दे दी, मुझे पहुँचा ही समझिये।

अविमारक—अधिक क्या कहूँ।

आप ने विद्या सिद्ध की है। मेरे जैसा व्यक्ति आपका क्या प्रत्युपकार कर सकता है, आपने हमको जीवनदान देकर खरीद लिया, आज्ञा दीजिये मैं भृत्य आपका क्या प्रत्युपकार करूँ॥ १७॥

विद्याधरः—जानाम्यहं भवतोऽच्छलां बुद्धिम्। यदि च भवानस्मद्वचनमनुवर्तते,

सख्यै मम प्रतिनिवेदय मामिमां च
त्वं मामनुस्मर सखे! गतिरीक्ष्यतां मे।
क्रीडारसैः प्रतिविलोभय राजपुत्रीं
कार्यान्तरेषु पुनरप्यहमस्मि पार्श्वे॥ १८॥

अन्तर्धानाद्यनेकविद्यावशवताम्, भवद्विधानाम् = भवादृशाम्, अस्मद्विधः = अस्मादृशः, कः प्रतिकर्तुकामः = प्रत्युपकारं कर्तुं समर्थः, स्यात्, जीवितसम्प्रदानात् = जीवनदानात्, अहम् क्रीतः = निष्क्रयेण गृहीतः स्वकीयः कृतः, अस्मि, अहम् = अविमारकः ते भृत्यः = अनुचरः, किम् करवाणि = विदधानि इति प्रशाधि = आदिश! प्राणत्यागार्थं कृतसंकल्पोऽहम् भवतैव रक्षितः प्रियासङ्गमोपायं प्रदाय रक्षित इति जीवनदाता भवान्। जीवनप्रतिदानं कर्तुमसमर्थोऽस्मि॥ १७॥

अच्छलाम् = छलरहिताम्, मद्ववचनमनुवर्तते = मद्वचनं पालयति।

अन्वयः—माम् इमाम् च मम सख्यै निवेदय त्वम् माम् अनुस्मर सखे मे गतिः, ईक्ष्यताम् क्रीडारसैः राजपुत्रीम् प्रतिविलोभय कार्य्यान्तिरेषु पुनः अहम् तव पार्श्वे अस्मि।

व्याख्या—सख्या इति–माम् = विद्याधरम् इमाम् = मम प्रियाम् सौदामिनीम् च सख्यै = मम सख्यै कुरङ्ग्यै निवेदय = कथय तां प्रति मम चर्चा कुरु सखे = मित्र त्वम्, माम् = मित्रम् अनुस्मर = मा विस्मार्षीः। मे = मम गतिः गमनम् ईक्षताम्=दृश्यताम्, क्रीडारसैः = विलाससौख्यैः, राजपुत्रीम् = कुरङ्गीम् प्रतिविलोभय = मोदय, कार्य्यान्तिरेषु = इतरकार्य्येषु पुनरपि =

विद्याधर—मैं आपकी निश्छल बुद्धि को जानता हूँ, यदि आप मेरे वचन को मानते हैं तो–आप अपनी प्रियतमा से मेरी और मेरी प्रिया सौदामिनी की चर्चा करें। मेरी गति देखें। अपनी क्रीडाओं से राजकुमारी को सन्तुष्ट करें, किसी अन्य अवसर पर भी मैं आपके पास आ जाऊँगा॥ १८॥

अहो पुरुषसारो हि नाम नेच्छति विसर्जयितुं मे मनः । वयस्य ! गच्छामस्तावत् ।

अविमारकः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

विद्याधरः—बाढम् ।

(उत्थितो विद्याधरः सह प्रियया)

अविमारकः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष हि तत्रभवान् मेघनादो गगनार्णवमवगाढः । य एषः,

वातोद्धूताग्रकेशः सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः
सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः ।

भूयोऽपि = अहम् पार्श्वे = ते समीपे, अस्मि, चिन्तनकाल एव त्वामुपस्यास्यामि ।। १८ ।।

पुरुषसारः = पुरुषश्रेष्ठः । 'अतो मम मनः विसर्जयितुं नेच्छति' । पुनर्दर्शनाय=भूयोपि दर्शनाय ।

गगनार्णवम् = आकाशसागरम्, अवगाढः = प्रविष्टः ।

अन्वयः—वातोद्धूताग्रकेशः ललिताधरदरीभृष्टदृष्टाङ्गरागः सम्यग् बद्धासिकक्ष्यः, प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः, वातोद्धूतोत्तरीयः मुकुटमणिगणैः तारकाः संप्रमृद्नन् श्रीमान् असौ विद्याधरः उपरिगतिजवैः क्षीयमाणः प्रयाति ।

व्याख्या—वातोद्धूतेति–वातेनोद्धूतः उत्तरीयो यस्य स तथोक्तः =

(स्वगत) यह कैसा पुरुष है इसको छोड़कर जाने की इच्छा नहीं हो रही है । मित्र ! मैं जा रहा हूँ ।

अविमारक—आप जाँय, फिर दर्शन दीजियेगा ।

विद्याधर—अच्छा ।

(अपनी प्रियतमा के साथ उठता है)

अविमारक—यह मेघनाद आकाश सागर में बैठ गया । इसके आगे के बाल हवा में हिल रहे हैं, मेघ की गुफा में इसकी देह कभी छिप जाती है एवं कभी दिखाई देती है, कमर में तलवार अच्छी तरह बँधी है, प्रियतमा के

वातोद्धूतोत्तरीयो मुकुटमणिगणैस्तारकाः सम्प्रमृद्नन् ।
श्रीमान् विद्याधरोऽसावुपरिगतिजवैः क्षीयमाणः प्रयाति ॥१९॥

इयमपि विद्याबलेन प्रियमनुवर्तते । यैषा,

जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी
स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या ।

वायुवेगकम्पितप्रावारः सलिलधरा एव दर्यः ताभिर्मृष्टः प्लुष्टः अङ्गरागो-यस्य स तथोक्तः = मेघकन्दरानिह्नुतावलोकितकृष्णवर्णः, सम्यग्बद्धोऽसि-र्यत्र तादृशी कक्ष्या यस्य स तादृशः = सम्यग्बद्धखड्गक्ष्यः, प्रियया युवत्या करेण स्पृष्टं सम्यग् गूढं मध्यं यस्य स तथोक्तः = प्रिययुवतिसंगूढा-वलम्बितमध्यभागः, वाताद्धूतोत्तरीयः = वायुवेगकम्पितोत्तरासङ्गः मुकुट-मणिजनैः = मुकुटजटितरत्नसमूहैः, तारकाः = नक्षत्राणि समीपवर्तीनि, संप्रमृद्नन् = घर्षयन् । श्रीमान् = शोभायुक्तः, असौ विद्याधरः = मेघनादः, उपरिगतिजवैः = ऊर्ध्वगतिवेगैः, क्षीयमाणः=क्रमशः स्वल्पदर्शनः याति = गच्छति ॥ १९ ॥

इयमपि = तत्प्रियतमापि विद्याबलेन = विद्याप्रभावेण तमनुसरति = विद्याधरमनुगच्छति ।

अन्वयः—जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी, स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या वियति दयितदत्तपूर्वकाया तोयधरेषु तडित् इव दृष्टनष्टा (अनुसरति) ।

व्याख्या—जवशिथिलेति–जवेन शिथिलः विमुक्तपार्श्वकेशो यस्या सा तथोक्ता = वेगश्लथन्निर्मुक्तपार्श्वशिरोरुहा, स्तनतटयोर्वल्गनेन खिन्नः सन्नो मध्यभागो यस्याः सा तथोक्ता स्तनतटसंचलनखेदवच्छून्यमध्यभागा,

---

हाथों से इसकी कमर पकड़ी गई है, इसकी चादर हवा से उड़ रही है, मुकुट की मणियों से तारों को घिस रहा है, इस प्रकार यह विद्याधर गति की तीव्रता से क्रमशः अदृश्य होता जा रहा है ॥ १९ ॥

यह सौदामिनी भी अपनी विद्या के प्रभाव से इसका अनुसरण कर रही है । वेग के कारण इसके पार्श्व के केश खुल गये हैं, स्तन तट के कम्पित रहने के कारण इसका मध्य भाग खिन्न हो रहा है, आकाश में जाकर इसने अपने

विपति दयितदत्तपूर्वकाया
तडिदिव तोयधरेषु दृष्टनष्टा ॥ २० ॥

गतस्तत्रभवान् मेघनादः। अहमप्यद्यैव नागराभिमुखो भविष्यामि। यावदवतरामि। (अवतीर्य) परिश्रान्त इवास्मि। भवतु, एतस्मिन् शिलातले मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यामि। (उपविशति।)

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अहो तत्तहोदो सुगहीदणामहेअस्स सोवीरराअस्स अधण्णदा, जाए चिरं अपुत्तो भविअ अत्तणो णिअमविसेसेण देव्वप्पसादेण अ माणुसलोअदुल्लभं सुपुत्तं लभिअ पुणो वि तादिसो एव संवुत्तो।

वियति = आकाशे दयितेन दत्तः पूर्वं कायो यया सा तथोक्ता = प्रियावलम्बिताग्रदेहा, तोयधरेषु = मेघेषु-तडिदिव = विद्युदिव, दृष्टनष्टा = दृश्यादृश्या, प्रियमनुसरति।

तत्र भवतः = माननीयस्य, सुगृहीतनामधेयस्य=प्रसिद्धनाम्नः, अधन्यता= अश्रेष्ठता, नियमविशेषेण = तपःप्रभावेण, देवप्रसादेन = देवताप्रीत्या, मानुषलोकदुर्लभम् = मानुष्यदुर्लभम्, तादृशः = पूर्ववदपुत्रः, जातः। समाप्तजीविततया = जीवनावसानेन, अधन्यतया = अभाग्यतया, परिभ्रष्टः = अदर्शनं गतः क्षेमेण गतः = सकुशलं निर्गतः, मन्मथेनाभिताड्यमानः =

शरीर के पूर्वभाग को प्रियतम से अवलम्बित कर दिया है। अतः वह मेघ में बिजली के समान दृश्यादृश्य प्रतीत हो रही है ॥ २० ॥

माननीय मेघनाद चले गये, मैं भी आज ही नगर की ओर प्रस्थान करूँगा (उतर कर) थक गया हूँ इसी शिला पर थोड़ा विश्राम करके जाऊँगा (बैठता है)।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—हमारे माननीय प्रसिद्ध नाम वाले सौवीरराज का अभाग्य है। बहुत दिनों तक पुत्रहीन रहने पर अपने तपस्या एवं देवताओं की कृपा से मनुष्य लोक में दुर्लभ वैसे पुत्र को प्राप्त करके भी फिर अपुत्र हो गये।

सव्वहा मम अ समत्तजीविददाए बन्धुजणस्स अघण्णदाए परिब्भट्ठो कुमारो। (परिक्रम्य) अज्ज खु तत्तहोदीए भणिदं—खेमेण गदो कुमारो त्ति। अहव को एत्थ जाणादि अदिसुउमारो राअउमारो एआई वम्महेण अभिताडिअमाणो परिब्भट्ठो कुसलो होदि त्ति। अहं वि कुमारं वा कुमारस्स सरीरं वा पेक्खिस्सामि दाव सव्वलोअं परिब्भमिअ। जदि ण पेक्खामि, तत्तहोदो परत्त सहाओ होमि। परिस्सन्तो खु अहं। भोदु, एदस्सिं पादपिच्छाआअं मुहुत्तअं विस्समिअ गमिस्सं। (स्वपिति) [अहो तत्रभवतः सुगृहीतनामधेयस्य सौवीरराजस्याधन्यता, यया चिरमपुत्रो भूत्वात्मनो नियमविशेषेण दैवप्रसादेन च मानुषलोकदुर्लभं सुपुत्रं लब्ध्वा पुनरपि तादृश एव संवृत्तः। सर्वथा मम च समाप्तजीविततया बन्धुजनस्याधन्यतया परिभ्रष्टः कुमारः। अद्य खलु तत्रभवत्या भणितं—क्षेमेण गतः कुमार इति। अथवा कोऽत्र जानाति अतिसुकुमारं राजकुमार एकाकी मन्मथेनाभिताड्यमानः परिभ्रष्टः कुशलो भवतीति। अहमपि कुमारं वा कुमारस्य शरीरं वा प्रेक्षिष्ये तावत् सर्वलोकं परिभ्रम्य। यदि न प्रेक्षे, तत्रभवतः परत्र सहायो भवामि। परिश्रान्तः खल्वहम्। भवतु, एतस्यां पादपच्छायायां मुहूर्तकं विश्रम्य गमिष्यामि।]

अविमारकः—का नु खलु सन्तुष्टस्यावस्था। सुष्ठु भवेद् यदि मे

कामेन नितान्तं कदर्थितः, कुमारस्य शरीरम् = प्राणनाशेऽपि तस्य देहम्—परत्र = स्वर्गे पादपच्छायायाम् = वृक्षतले, विपत्स्ये = जीवनं त्यक्ष्यामि।

सर्वथा हमारे जीवन के समाप्त हो जाने तथा बन्धुजनों के अभाग्य से वह राजकुमार खो गये हैं। अथवा कौन जानता है कि अतिसुकुमार राजकुमार असहाय अवस्था में कामातुर होकर सकुशल होंगे। मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली है कि सारी पृथ्वी कुमार को या उसकी देह को अवश्य देखूंगा। यदि नहीं देख सका तो परलोक जाकर उसका सहायक बनूंगा। थक गया हूँ, इस वृक्ष की छाया में बैठकर तब जाऊंगा। (सोता है)

अविमारक—सन्तुष्ट हुये मेरी क्या अवस्था है, अच्छा होता कि उसको भी सकुशल निकल जाने की खबर मिल जाती, यदि वह समाचार नहीं

निर्गमनं तेन श्रुतं, न श्रुतं चेद् विपत्स्यते स ब्राह्मणः। अथवा किं मम सर्वारम्भैस्तेन विना। स हि,

गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः
शोके गुरुः साहसिकः परेषु।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापै-
र्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥ २१ ॥

(सर्वतो विलोक्य) अये को नु खलु च्छायायामध्वगः प्रसुप्तः। (उपेत्य) अभ्युदयो मे हृदयस्य यदृच्छयागतः। त्वरते मे मनः परिष्वक्तुमेनम्।

विदूषकः—(बुद्ध्वा) चिर खु सुत्तम्हि। जाव गच्छामि। को विस्समो णाम विब्भट्ठमणोरहाणं। (परिक्रम्याविमारकं विलोक्य) कहं

अन्वयः—गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योद्धा, शोके गुरुः परेषु साहसिकः, मे हृदि महोत्सवः प्रलापैः किम् द्विधा विभक्तम् मे शरीरम् खलु।

व्याख्या—गोष्ठीषु इति–गोष्ठीषु = सभासु हास्यः = हासकर्ता, समरेषु = संग्रामेषु, योद्धा = वीरः, शोके = मनःखेदे, गुरुः = उपदेष्टा, परेषु = शत्रुष्वागतेषु साहसिकः = साहसकरः, मे = मम हृदि = हृदये,

---

ज्ञात होगा तो वह ब्राह्मण मर जायगा। तो उसके न रहने पर मेरे इन प्रयासों का क्या फल है ? वह—

सभा में हँसी करने वाला, समर में योद्धा, शोक में सदुपदेश देने वाला, शत्रुओं के आने पर साहस करने वाला और मेरे हृदय में महोत्सव है। विशेष क्या कहूँ। दूसरे आकार में वह मेरा शरीर ही है ॥ २१ ॥

(चारो तरफ देखकर)

अरे छाया में यह कौन यात्री सो रहा है।

(समीप जाकर)

यह तो मेरे हृदय का उत्सव स्वयं आ गया है। इसे गले लगाने के लिये मेरा हृदय उत्सुक हो रहा है।

विदूषक—(जाग कर) ओ ! बहुत देर तक सोया रह गया। अब

तत्तभवं अविमारओ। [चिरं खलु सुप्तोऽस्मि। यावद् गच्छामि। को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम्। कथं तत्रभवान् अविमारकः।]

अविमारकः—अये वयस्यः सन्तुष्टः।

(उभौ परिष्वजेते)

विदूषकः—(उच्चैर्विहस्य) भो वअस्स ! कहेहि कहेहि एत्तिअं कालं किं तुए किदं [भो वयस्य ! कथय कथयैतावन्तं कालं किं त्वया कृतम्।]

अविमारकः—वयस्य ! एतत् कृतम्। (अङ्गुलीयकं दक्षिणाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य तिरस्कृतः)

विदूषकः—हा हा कहिं कहिं तत्तभवं। कहं ण दिस्सदि। आ तस्सिं गदाए चिन्ताए तं विअ पेक्खामि। अहव फुडीकरिस्सं। भो वअस्स ! सावेण साविदो सि, जदि अत्ताणं छादेसि। [हा हा क्व क्व तत्रभवान्। कथं न दृश्यते। आ तस्मिन् गतया चिन्तया तमिव पश्यामि अथवा स्फुटीकरिष्यामि। भो वयस्य ! शापेन शापितोऽसि, यद्यात्मानं छादयसि।]

अविमारकः—वयस्य ! अयमस्मि।

महोत्सवः = महान् उत्सवस्वरूपः प्रलापैः=बहुकथनैः किम् द्विधा विभक्तम् = द्विरूपेणावस्थितं मे शरीरम् मम = देहः।

जाता हूँ, जिसके नमोरथ नष्ट हो गये उसको क्या विश्राम ? (चलकर अविमारक को देखकर) यह मेरे अविमारक हैं।

अविमारक—अरे यह तो मेरा मित्र सन्तुष्ट है (दोनों आलिङ्गन करते हैं)।

विदूषक—मित्र ! कहो-कहो इतने काल तक तुमने क्या किया है ?

अविमारक—(जोरों से हँसकर) हे मित्र ! यह किया है (अँगूठी को दाहिने हाथ की अँगुली में पहन कर)

विदूषक—हाय-हाय ! कहाँ गया मेरा मित्र ? दिखाई नहीं देता क्यों। उसी की चिन्ता करते रहने के कारण सर्वत्र उसी की छाया देखा करता हूँ, मित्र ! मैं शाप दे दूंगा यदि छिपे रहे।

अविमारक—मित्र यहीं तो हूँ।

विदूषकः—कहिं कहिं सि। [क्व क्वासि।]

अविमारकः—(वामाङ्गुल्यामङ्गुलीयकं प्रक्षिप्य) वयस्य ! अयमस्मि।

विदूषकः—पुढमं सुद्धो अविमारओ, दाणिं माआविमारओ संवुत्तो। एवं माआवित्तअ ! किस्स तुवं कण्याउरे पच्छण्णरूवो ण चरसि। [प्रथमं शुद्धोऽविमारकः, इदानीं मायाविमारकः संवृत्तः, एवं मायावित्तक ! कस्मात् त्वं कन्यापुरे प्रच्छन्नरूपो न चरसि !]

अविमारकः—वयस्य ! इदानीं खल्वेतदुपलब्धम्।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं। कुदो दाणिं एदस्स आगमो। [आश्चर्यमाश्चर्यम्। कुत इदानीमेतस्यागमः]

अविमारकः—सर्वमन्तःपुरे कथयिष्यामि।

विदूषकः—सम्पदि बुभुक्खिदो सि। [संप्रति बुभुक्षितोऽसि।]

अविमारकः—वैधेय ! शीघ्रमागच्छ प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय। नो वायं हस्तो मोचयितव्यः।

मायाविमारकः = मायया विख्यातोऽविमारकः मायाविमारकः मध्यमपदलोपी समासः, मायावित्तकः = मायाकुशलः। एतद् अङ्गुलीयकम् यस्य

विदूषक—कहाँ हो, कहाँ हो।

अविमारक—(बायी अँगुली में अँगूठी पहन कर) मित्र यहीं हूँ।

विदूषक—पहले तुम केवल अविमारक थे, अब मायाविमारक हो गये हो। अरे माया प्रवीण ! क्यों नहीं अब तुम छिपकर कन्यापुर में भ्रमण करते हो।

अविमारक—अभी तो यह मिला है।

विदूषक—आश्चर्य है आश्चर्य है ! यह कहाँ मिला ?

अविमारक—सारी बातें अन्तःपुर में कहूँगा।

विदूषक—अभी भूख लगी है।

अविमारक—मूर्ख ! शीघ्र ही अन्तर्धान हो जा, इस हाथ को छोड़ना नहीं।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं। अहं पि दाव अदिस्सो। मम सरीरं अत्थि वा णत्थि वा। उच्छिट्ठं करिस्सं। थु थु। [आश्चर्यं-माश्चर्यम्। अहमपि तावददृश्यः। मम शरीरमस्ति वा नास्ति वा। उच्छिष्टं करिष्यामि। थु थु।]

अविमारकः—मूर्ख ! अलमलं विलंवितेन। त्वरते मे मनः कान्ता दर्शनाय। (आकर्षति)

विदूषकः—ण मे स्रद्धा। [न मे श्रद्धा।]

अविमारकः—हन्त भोजनवेलां प्रतिपालयामि।

विदूषकः—कञ्चि कालं विस्समिअ गमिस्सामा। [कंचित् कालं विश्रम्य गमिष्यावः।]

अविमारकः—किं न स्मरति मां कुरङ्गी।

धारणेनान्तर्हितो भवामि। कुत एतस्यागमः=आश्चर्यजनकस्यास्य कुतो लाभः। वैधेय=मूर्ख, प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय=माययान्तर्धानप्राप्तये। उच्छिष्टं करिष्यामि=येन स्वशरीरस्य सत्ता प्रतीयेत। कान्तादर्शनाय = प्रियामवलोकनाय।

नग्नान्धश्रवणिका = अत्यन्तशोचनीया तपस्विनी किन्नु खलु जीवति यदि जीवति तदा स्मरति। तस्या जीवने सन्देहः। कृतसमावर्त्तः वटुक इव, यथा चिरं गुरुकुले स्थितः समावर्तनसंस्कारानन्तरं वटुः गृहं गन्तुं त्वरते।

विदूषक—आश्चर्य्यं आश्चर्यं मैं भी अदृश्य हो गया हूँ। मेरी देह है कि नहीं उच्छिष्ट करता हूँ थूंकता है।

अविमारक—मूर्ख ! देर मतकर कान्ता को देखने के लिये मेरा मन उद्विग्न हो रहा है।

(खींचता है)

विदूषक—मुझे श्रद्धा नहीं हो रही है।

अविमारक—खाने के समय की प्रतीक्षा करता हूँ।

विदूषक—थोड़ा विश्राम करके चलूंगा।

अविमारक—क्या कुरङ्गी हमको याद करती है।

विदूषकः—किण्णु खु जीवदि णग्गन्धस्समणिआ। [किं नु खलु जीवति नग्नान्धश्रमणिका।]

अविमारकः—वयस्य ! याचे भवन्तं, शीघ्रमागम्यताम्।

विदूषकः—किस्स तुवं किदसमावुत्तो वडुओ विअ तुवरसि। [कस्मात् त्वं कृतसमावर्तो बटुक इव त्वरसे।]

अविमारकः—मूर्ख ! इतस्तावत्।

विदूषकः—मा कड्ढेहि, अअं अणुधावामि। [मा कर्ष, अयमनुधावामि।]

अविमारकः—(परिक्रम्य) एतन्नगरम्।

विदूषकः- पेक्खामि दाव णअरस्स सोहं। [पश्यामि तावन्नगरस्य शोभाम्]

अविमारकः—इदं राजकुलम्।

एतन्नरेन्द्रभवनं निशि जातशङ्को
यत् साहसं समुपलभ्य तथा प्रविष्टः।

अन्वयः—एतत् नरेन्द्रभवनम् यत् अहम् निशि जातशङ्कः तथा साहसम् उपलभ्य प्रविष्टः, भूयः तदेव दिवसे सुसहायमायः सताम् वृन्दमिव पटुः अशङ्कः प्रविशामि।

विदूषक—क्या वह तपस्विनी जीवित है।

अविमारक—मैं प्रार्थना करता हूँ मित्र ! शीघ्र चलो।

विदूषक—क्यों तुम समावर्तन किये गये वटु की तरह शीघ्रता करते हो।

अविमारक—मूर्ख ! इधर चलो।

विदूषक—खींचो मत, चल ही रहा हूँ।

अविमारक—(चलकर) यह नगर है।

विदूषक—तब तक नगर की शोभा देखता हूँ।

अविमारक—यही राजकुल है।

यही वह राजभवन है जहाँ मैंने रात में डरते-डरते प्रवेश किया था,

भूयस्तदेव दिवसे सुसहायमायो
वृन्दं सतामिव पटुः प्रविशाम्यशङ्कः ॥ २२ ॥

(परिक्रम्य) इदानीं प्रसादे स्नातयाभ्यन्तरस्थया कुरङ्ग्या भवितव्यम् ।

विदूषकः—जहिं वा तहिं वा पविसामो। अदिक्कमदि भिक्खवेला। (यत्र वा तत्र वा प्रविशावः । अतिक्रामति भिक्षावेला ।)

अविमारकः—एहि तावदभ्यन्तरमेव प्रविशावः (प्रविश्य) इह हि,

पुरे गृहे वापि पुरा सुखोषितै-
र्मनस्विभिर्दुर्लभचिन्तयागतैः ।

व्याख्या—एतदिति-एतन्नरेन्द्रभवनम् = तदेतत् सौवीराजभवनम्, यत्= भवनम् अहम्, निशि = रात्रौ, जातशङ्कः = अन्यदर्शनभयाच्छङ्कितः तथा = तेन प्रकारेण साहसम् = चौरचरितम्, उपलभ्य = स्वीकृत्य, प्रविष्टः = मध्यंगतः। तदेव = नृपभवनम् दिवसे = दिने सुसहायमायः = तिरोधानमाया-सहकारेण, सताम् = सज्जनानाम् वृन्दम् = समूहम् इव पटुः = चतुरजन इव अशङ्कः = निर्भयः प्रविशामि = प्रवेशं करोमि ।

भावः—चौर इव यत्र सभयः रात्रौ पूर्वं प्रविष्टोऽहम् ।
मायाबलेन दिवसे निःशङ्कस्तत्र गच्छामि ॥

अन्वयः—पुरे गृहे वा अपि पुरा सुखोषितैः दुर्लभचिन्तया आगतैः मनस्विभिः पुनः कृतार्थैः मुदितान्तरात्मभिः सविशेषकर्मभिः प्रवेष्टुम् सुखम् ।

व्याख्या—पुरे गृह इति-पुरे = नगरे, गृहे = सद्मनि वापि, पुरा = प्रथमम्, सुखोषितः = सानन्दं कृतनिवासैः, दुर्लभस्य = दुष्प्रापस्य वस्तुनः

आज उसी राजभवन में दिन में ही माया के प्रभाव से वैसा प्रवेश कर रहा हूँ जैसे सज्जनों के समाज में कोई चतुर व्यक्ति निर्भय प्रवेश करता है ॥२२॥

(घूमकर) इस समय राजकुमारी छतपर नहाकर भीतर बैठी होगी ।

विदूषक—जहाँ तहाँ बैठ जाओ । भिक्षा का समय बीत रहा है ।

अविमारक—चलो भीतर चलें (जाकर) यहाँ—

जहाँ नगर या घर में किसी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति की आशा से आकर

पुनः कृतार्थैर्मुदितान्तरात्मभिः
सुखं प्रवेष्टुं सविशेषकर्मभिः ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

चतुर्थोऽङ्कः

चिन्तया आशया, आगतैः = समायातैः, मनस्विभिः = धीरैः, पुनः, भूयः, कृतार्थैः = समधिगताभीप्सितैः मुदितान्तरात्मभिः = प्रसन्नचेतोभिः सविशेषाकर्मभिः = कार्यविशेषमुद्दिश्यागतैः प्रवेष्टुम् = अन्तर्गन्तुं सुखम् ।

धीर लोग सुख से रह चुके हैं, कृतार्थ होकर प्रसन्न चित्त वाले वे ही कार्य विशेष के लिये पुनः वहां आकर सुख से प्रवेश कर सकते हैं ॥ २३ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ ।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी नलिनिका च)

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं सन्दावेण । कण्णाउरप्पासादं आलुहिअ दिट्ठिविलोभणं करिस्सामो । [भर्तृदारिके ! अलं सन्तापेन । कन्यापुरप्रासादमारुह्य दृष्टिविलोभनं करिष्यावः ।]

कुरङ्गी—हला ! किं तुए मम हिअअं परिञ्ञादं । एत्थ हि अजाणन्तेण परिजणेण मम परितोसणिमित्तं बउलसरलसज्जज्जुण-कदम्बणीवणिउलप्पहुदोणि मेहकालवल्लहाणि परमसुरहीणि आणी-अमाणाणि मं उम्मादअन्ति । अह अ इमे मोरा अम्हाअ राअउल-

---

अलं सन्तापेन = सन्तापो न कार्य्यः, दृष्टिविलोभनम्=रमणीयावलोकनेन मनोविनोदम् । अजानता = मनोव्यथानभिज्ञेन, परितोषनिमित्तम् = मम-मनसोऽनुरञ्जनार्थम्, वकुलः = केशरः, सरलः = देवदारुः, अर्जुनः = कुब्जः, कदम्बः = नीपः, वञ्जुलः = वेतसस्ते प्रभृतयो येषां तानि, वर्षाकालजानि = मेघकालसम्भवानि, परमसुरभीणि=अतिसुगन्धीनि, आनीयमानानि उपह्रिय-मानानि, उन्मादयन्ति = उन्मत्तीकुर्वन्ति । राजकुलमानसे = राजगृहवर्तिनां चित्ते, मयूराः = बर्हिणः, पीठमर्दभावम् = विरहवेदनोपबृंहणम् कुर्वन्ति=विद-धति । अदेशकालज्ञतया=परिस्थितिपरिचयाभावात्, सततलालिता=आत्मीया

(नलिनिका और कुरङ्गी का प्रवेश)

नलिनिका—राजकुमारी सन्ताप न करे, चलिये कन्यापुर के प्रासाद पर चलकर आँखों का अनुरञ्जन करें ।

कुरङ्गी—सखि ! तुमने हमारा हृदय क्या समझा है ? अनभिज्ञ परिजनों द्वारा बरसात में सुखकर अति सुगन्धित वकुल, सरल सजं, अर्जुन कदम्ब आदि फूल लाये जाते हैं । उनसे मेरा सन्ताप बढ़ता ही है । ये मयूर इस कन्यापुर में पीठमर्द का काम करते हैं । मैंने इनको पाला है, ये मर्मभिज्ञ हैं ।

माणसे अदिपीठयद्दभावं करन्ति। अम्हेहि सददलालिदा वि अदेसकालञ्ञदाए अत्तणो अहिकञ्ञभावं दंसेदि। सुअसारिआ वि वक्खाणं एव कहेदुं आरद्धा। मम णिव्वेदभावं अजाणन्ती भूदिअसारिआ वि सव्वलोअवुत्तन्तं कहइस्सामि त्ति आअदा। मम रोआवत्थं पुच्छिदुं आअदो परिजणो मं णिब्बन्धिअ णिवेदेदि। ता इच्छामि मुहुत्तअं पासादे अच्छिदुं। [हला! किं त्वया मम हृदयं परिज्ञातम्। अत्र ह्यजानता परिजनेन मम परितोषनिमित्तं बकुलसरलसर्जार्जुनकदम्बनीपनिचुलप्रभृतीनि मेघकालवल्लभानि परमसुरभीण्यानीयमानानि मामुन्मादयन्ति। अथ चेमे मयूरा अस्माकं राजकुलमानसे अतिपीठमर्दभावं कुर्वन्ति। अस्माभिः सततलालिता अप्यदेशकालज्ञतयात्मनोऽधिकज्ञभावं दर्शयति। शुकसारिकापि व्याख्यानमेव कथयितुमारब्धा। मम निर्वेदभावमजानन्ती भूतिकसारिकापि सर्वलोकवृत्तान्तं कथयिष्यामीत्यागता। मम रोगावस्थां प्रष्टुमागतः परिजनो मां निर्बध्य निवेदयति। तदिच्छामि मुहूर्तकं प्रासादे आसितुम्।]

नलिनिका—ज भट्टिदारिआए रुइदं। होदु। [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम्। भवतु।]

अपि, अधिकज्ञभावम् = अनभिज्ञताम्। शुक्यः सारिकाश्च निर्वेदभावम् = मनोव्यथाम्।

विद्युत्प्रदीपं गृहीत्वा = मामन्विष्यमाण इव कालमेघः = कामोद्दीपकतया काल इव कृष्णो मेघः। तेनात्रापि च मे मनः शान्तिमनुभवति।

किन्तु अपनी विशेषज्ञता को प्रकट करते हैं। ये शुकी और सारिकायें अपना व्याख्यान प्रारम्भ कर देती हैं। भूतिक वाली सारिका भी कथा ही करते आई है। मेरी रोगावस्था को जानने के लिये जो दासी आती है, वह हठ करके हमसे कुछ कहलवाना चाहती है। अतः मैं चाहती हूँ कि कुछ काल तक (एकान्त में) कोठें पर बैठूं।

नलिनिका—आपको जो अच्छा लगे वही हो।

(उभे आरोहतः)

कुरङ्गी—हला एत्थ वि महन्ता अणत्थो उट्ठिदो विज्जुप्पदीवं घारिअ कालमेहो। [हला ! अत्रापि महाननर्थ उत्थितो विद्युत्प्रदीपं धृत्वा कालमेघः।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं उक्कण्ठिदेण पेक्ख पेक्ख णवसलिलधररुद्धसुय्यं पविरलजलणिवाददस्सणीअ गअणअलं। [भर्तृदारिके अलमुत्कण्ठितेन। पश्य पश्य नवसलिलधररुद्धसूर्यं प्रविरलजलनिपातदर्शनीयं गगनतलम्।]

कुरङ्गी—पेक्खामि अ रमणीअं आआसं। [पश्यामि च रमणीयमाकाशम्।]

(ततः प्रविशत्यविमारको विदूषकश्च)

अविमारकः—वयस्य ! दृष्टा सा कुरङ्गी। यैषा,

रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा
विमुक्तभूषा गतहावभावा।

नवैः सलिलधरैः = मेघैः, रुद्धसूर्य्यम् = आच्छादितरविम् प्रविरलेन = सततेन जननिपातेन जलपातेन, दर्शनीयम् = रमणीयम्।

अन्वयः—रोगात् अकालागुरुचन्दनार्द्रा विमुक्तभूषा गतहावभावा निर्व्याजमनोहराङ्गी, हेतुविर्वजिता श्रुतिः = इव विभाति।

(दोनों प्रासाद पर जाती हैं)।

कुरङ्गी—यहाँ भी महान् अनर्थ करने वाला बिजली रूप दीप लिये काला मेघ उपस्थित है।

नलिनिका—राजकुमारि ! उत्कण्ठा न करें। देखो-देखो नवीव मेघों ने सूर्य को छिपा लिया, मन्द-मन्द बूदें पड़ रहीं है। आकाश कैसा सुन्दर लग रहा है।

कुरङ्गी—रमणीय आकाश को देख रही हूँ।

(अविमारक और विदूषक का प्रवेश)

अविमारक—मित्र ! देखा तुमने कुरङ्गी को।

विरहातुरा होने के कारण इसने बिना गुग्गुल के ही चन्दन का लेप

विभाति निर्व्याजमनोहराङ्गी
वेदश्रुतिर्हेतुविवर्जितेव ॥ १ ॥

विदूषकः—भो ! तुट्टो म्हि । तुवं खु सव्वलोए अहं सुरूवो त्ति अत्ताणं आअरसि । जिदो दाणि तत्तहोदीए सहावरमणीएण रूवेण । चिन्तेमि भवदो विओएण इअ तणुआ जादा । एवं पि एसा बालचन्द-लेहा विअ दिट्ठिं तोसेदि । [भोः ! तुष्टोऽस्मि ! त्वं खलु सर्वलोकेऽहं सुरूप इत्यात्मानमाचरसि । जित इदानीं तत्रभवत्याः स्वभावरमणीयेन रूपेण ।

व्याख्या—रोगादिति–रोगात् = विरहातुरत्वात्, अकालागुरुचन्दनार्द्रा = कालागुरुरहितचन्दनपङ्कलिप्ता कालापुरोरुष्णत्वात् त्यागः । विमुक्तभूषा = भूषणरहिता, गतहावभावा = विलासरहिता निर्व्याजमनोहराङ्गी=अनाहार्य सहजसुन्दरी । हेतुविवर्जिता = तर्करहिता वेदश्रुतिः=निगमवाणीव विभाति = शोभते ।

तुष्टोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि; सर्वलोके = अखिले लोके, अहं सुरूपः = सुभगंमन्यः । तत्र भवत्याः = माननीया राजकुमार्य्या जितः = पराजितः । भवतो वियोगेन = त्वद्विरहेण तनुका = कृशाङ्गी एवमप्येषा=एवं विधापि सा वालचन्द्रलेखेव = शिशुशशिकल इव दृष्टिम् रञ्जयति=नयनासेचनं करोति ।

अतिपण्डित इव = पण्डितप्रकाण्ड इव ।

'नित्यपरिचयेन=अतिपरिचिततया तथा च जनाः कथयन्ति 'अतिपरिचया-दवज्ञा' इति, अपूर्वो जनः = प्रथमदर्शने लोकः मम बुद्धिमजानन् = अविदित मद्बुद्धिवैभवः । अधिकतरम् प्रशंसति = यथेष्टं ब्रवीति । तज्ज्ञात्वा = अति-परिचयादवज्ञेति जानन् विश्रम्भम् = अतिपरिचयम् ।

किया है । भूषण नहीं पहना है, हाव-भावादि विलासों से रहित है, कल्पित भूषणों के बिना ही सहज सुन्दरी यह तर्क-रहित वेद वाणी के समान शोभा दे रही है ॥ १ ॥

विदूषक—हे जी ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ । सारे संसार में तुम अपने को बड़ा सुन्दर समझते हो । इसने अपनी स्वाभाविक सुन्दरता से तुमको पराजित कर दिया है । मेरा विचार है यह तुमारे वियोग से दुर्बल हो गई है तथापि द्वितीया के चन्द्र की तरह बड़ी भली ज्ञात होती है ।

चिन्तयामि भवतो वियोगेनेयं तनुका जाता । एवमप्येषा बालचन्द्रलेखेव दृष्टिं तोषयति]।

अविमारकः—सखे ! अतिपण्डित इव किमेतत् ।

विदूषकः—भो ! णिच्चपरिचएण मं परिहससि । अपुव्वो जणो मम बुद्धिं अजाणन्तो अहिअदरं पसंसेदि । अहं पि तं जाणिअ एदस्सिं णअरे केण वि विस्सम्भं ण करेमि । [भोः ! नित्यपरिचयेन मां परिहससि । अपूर्वो जनो मम बुद्धिमजानन्नधिकतरं प्रशंसति । अहमपि तद् ज्ञात्वैतस्मिन्नगरे केनापि विस्रम्भं न करोमि ।]

अविमारकः—अलमौदासीन्येन । बहुजनपरिवारतया न लब्धः क्षणः कान्तां प्रबोधयितुम् । तदिदानीं प्रासादगतामपि तत्रैव तां बोधयिष्यावः ।

विदूषकः—सुट्ठु भवं भणादि । पासादं आलुहामो । [सुष्ठु भवान् भणति । प्रासादमारोहावः ।]

अलमौदासीन्येन=एतादृशीं दुःखितां दृष्ट्वा समाश्वासयितव्या । बहुजनपरिवारतया = परिजनमध्यस्थतया । क्षणः=अवसरः, प्रबोधयितुम् = आश्वासयितुम्, प्रासादगताम् = हर्म्यस्थाम् । प्रासादशब्दः = लोपानारोहणे चरणपातशब्दः ।

उच्छिष्टमकुर्वन्भोक्तुम्=यथोच्छिष्टमविधाय भोक्तुं न शक्यं तथा पादध्वनिमकुर्वतारोहणं दुःशकम् ।

यदि विमुञ्चे दृश्यते भवान् = भवदन्तर्धानत्वं मत्स्पर्शताधीनत्वात् ।

अविमारक—मित्र ! आज महापण्डित लग रहे हो । यह क्या ?

विदूषक—अजी ! अतिपरिचय के कारण तुम मेरा उपहास करते हो, नये लोग जो मेरी बुद्धि को नहीं जानते वे मेरी प्रशंसा करते हैं । इसीलिये ही तो मैं इस नगर में किसी से अधिक परिचय नहीं करता ।

अविमारक—उदासीन होना उचित नहीं हैं । बहुत लोगों के बीच में रहने के कारण मैं प्रियतमा को नहीं समझा सका । इस समय वह प्रासाद पर गयी है वहीं पर उसे समझा दूंगा ।

विदूषक—चलो प्रासाद पर चलें ।

अविमारकः—सखे ! प्रयत्नादारोढव्यं यथा तथा न प्रवर्तते प्रासाद-शब्दः ।

विदूषकः— भो ! ण सक्कं एदं । को सकदि उच्छिट्ठं ण करन्तो भुञ्जिदुं । अहं एत्थ चिट्ठामि । तुवं एव आलुह । [भोः ! न शक्य-मेतत् । कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् । अहमत्र तिष्ठामि । त्वमेवारोह ।]

अविमारकः— यदि विमुञ्चे, दृश्यते भवान् ।

विदूषकः—भो ! विस्मरिदं खु मए एदं । पुणो पुणो कहेहि । [भोः ! विस्मृतं खलु मयैतत् । पुनः पुनः कथय ।]

अविमारकः—इतस्तावत् । (आरुह्यावलोक्य) सखे ! इयमस्मत्कान्ता शिलातले नलिनिकया सहास्ते । यैषा,

सव्ये करे समुपवेश्य मुखं सुदीनं
कालं मनोभवसहायममृष्यमाणा ।

अन्वयः—सुदीनम् मुखं सव्ये करे समुपवेश्य मनोभवसहायम् कालम् अमृष्यमाणा अलोलदृष्टिः बाष्पम् निवारयितुम् ऊर्ध्वम् अवेक्षमाणा व्यग्रा किञ्चिद् विचिन्तयति ।

व्याख्या—सव्य इति–सुदीनम् = अतिदीनम्, मुखम् = आननम्, सव्ये = वामे, करे = हस्ते, समुपवेश्य = संस्थाप्य, मनोभवसहायम् = कामसहचरम्

अविमारक—मित्र ! इस प्रकार प्रयास करके चलो कि पैर की आवाज न हो ।

विदूषक—यह सम्भव नहीं है । बिना जूठा किये कोई नहीं खा सकता है । मैं यहीं रहता हूँ । तुम चढ़ो ।

अविमारक—यदि मैं छोड़ दूंगा तो तुम दीखने लगोगे ।

विदूषक—अजी यह बात तो मैं भूल ही गया था फिर कहो ।

अविमारक—इधर आओ (चढ़कर तथा देखकर) यही हमारी प्रिया नलिनिका के साथ बैठी है ।

उदास मुख को बायें हाथ पर रखकर काम के सहायक इस वर्षा काल को सहन करने में असमर्थ होती हुई व्यग्रभाव से निश्चल दृष्टि करके कुछ सोच

व्यग्रा विचिन्तयति किञ्चिदलोलदृष्टि-
र्बाष्पं निवारयितुमूर्ध्वमवेक्षमाणा ॥ २ ॥

कुरङ्गी—(स्वगतम्) किं एदेण जीवन्मरणेण । (प्रकाशम्) णलिणिए ! गच्छ माअधिअं आणेहि उवण्हाणेण । [किमेतेन जीवन्मरणेन । नलिनिके ! गच्छ मागधिकामानयोपस्नानेन ।]

नलिनिका—एआइणि भट्टदारिअं उज्झिअ कह गमिस्सं । ण हु एत्थ को वि जणो । [एकाकिनीं भर्तृदारिकामुज्झित्वा कथं गमिष्यामि । न खल्वत्र कोऽपि जनः ।]

(प्रविश्य)

हरिणिका—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए । भट्टिणी भणादि—सम्पदि कीदिसी सीसवेदणत्ति । एदं वि ओसधं लिम्पेहि किल । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! भट्टिनी भणति—सम्प्रति कीदृशी शीर्षवेदनेति । एतदप्यौषधं लिम्प किल ।]

कुरङ्गी—णलिणिए ! गच्छ दाणि तुवं । तक्केमि देवो वरिसिदुं आरद्धो । अहं इच्छामि अहिणवेण आआसतोएण ण्हादुं । ता तुवारेहि

कालम् = वर्षाकालम्, असहमाना = सोढुमसमर्था अलोलदृष्टिः = स्थिरनयना, वाष्पम् = अश्रु, निवारयितुम् = नियन्तुम्, ऊर्ध्वम् = उपरि अवेक्ष-

---

रही है और आँखों के अश्रु को रोकने के लिये ऊपर की ओर देख रही है ।

कुरङ्गी—(स्वगत) इस जीते जी मरने से क्या लाभ ? (प्रकट) नलिनिके ! जाओ स्नानोपकरण के साथ मागधिका को बुला लाओ ।

नलिनिका—अकेली राजकुमारी को छोडकर कैसे चला जाऊँ ?

(प्रवेश कर)

हरिणिका—जय हो राजकुमारी की ! महारानी ने पूछा है कि इस समय शिर का दर्द कैसा है ? यह दवा भी लगा लेने को कही है ।

कुरङ्गी—नलिनिके ! अब तुम जाओ मैं समझती हूँ अब देव बरसने लगें । चाहती हूँ कि इस नये वर्षा-जल से स्नान करूँ । अतः स्नानोपकरण शीघ्र लाओ ।

उवण्हाणं। [नलिनिके ! गच्छेदानीं त्वम्। तर्कयामि देवो वर्षितुमारब्धः। अहमिच्छाम्यभिनवेनाकाशतोयेन स्नातुम्। तत् त्वरयोपस्नानम्।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि। [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति।]

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम्।

कुरङ्गी—हला ! एहि दाव ! [हला ! एहि तावत्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि। [भर्तृदारिके ! इयमस्मि।]

कुरङ्गी—हला ! णं सीदलं दे सरीरं। [हला ! ननु शीतलं ते शरीरम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! ण जाणामि। [भर्तृदारिके! न जानामि।]

कुरङ्गी—हला ! एहि परिस्सजेहि मं। [हल ! एहि परिष्वजस्व माम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! तह (परिष्वजते) [भर्तृदारिके ! तथा।]

कुरङ्गी—हला ! अदिसीदलं मणोहरं च दे सरीरं। [हला ! अतिशीतलं मनोहरं च ते शरीरम्।]

माणा = पश्यन्ती व्यग्रा = उद्विग्ना किञ्चिद् = किमपि, विचिन्तयति = विचारयति।

किन्नु खल्वनया व्यवसितम् = इयं किं कर्तुमिच्छति।

नलिनिका—जो राजकुमारी की आज्ञा।

अविमारक—यह इस समय क्या करना चाहती है।

कुरङ्गी—सखि ! इधर आओ।

नलिनिका—राजकुमारी यह हूँ।

कुरङ्गी—सखि ! तुम्हारा शरीर शीतल है।

नलिनिका—राजकुमारी मैं नहीं जानती हूँ।

कुरङ्गी—आओ मेरा आलिङ्गन करो।

नलिनिका—राजकुमारी ! अच्छी बात है।

(आलिङ्गन करती है)

कुरङ्गी—सखि ! तेरा शरीर अत्यन्त शीतल और मनोहर है।

नलिनिका—अणुग्गहीदम्हि। [अनुगृहीतास्मि।]

कुरङ्गी— हला ! सम्पदि णस्सदि विअ मे सरीरदाहो। (स्वगतम्) हन्त किदो सहिप्पणओ। समत्तो अ अज्ज एदाए सरीरससग्गा। (प्रकाशम्) गच्छ दाणि तुवं। [हला ! सम्प्रति नश्यतीव मे शरीरदाहः। हन्त कृतः सखीप्रणयः। समाप्तश्चाद्यैतस्याः शरीरसंसर्गः गच्छेदानीं त्वम्।]

नलिनिका— जं भट्टिदारिआ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति।]

हरिणिका— भट्टिदारिए। भट्टिणीए किं णिवेदेमि। [भर्तृदारिके ! भट्टिन्यै किं निवेदयामि।]

कुरङ्गी—अज्ज विअदरोआ सोत्था होदि त्ति। [अद्य विगतरोगा स्वस्था भवतीति।]

हरिणिका—कहं तुए विञ्ञादं त्ति पुच्छिदा किं विण्णवेमि। [कथं त्वया विज्ञातमिति पृष्टा किं विज्ञापयामि।]

कुरङ्गी—सुट्ठु तुए विञ्ञादं। एदेण ओसधविसेसेण त्ति भणेहि। [सुष्ठु त्वया विज्ञातम्। एतेनौषधिविशेषेणेति भण।]

अद्य निवृत्तरोगा भवतीति—अद्य मृताहं सर्वेभ्यो रोगेभ्यो निवृत्ता भविष्यामीति तात्पर्य्यम्।

नलिनिका—अनुगृहीत हूँ।

कुरङ्गी—अब मेरे शरीर का दाह समाप्त हो गया (स्वगत) हाय सखी के प्रति स्नेह कर लिया, अब इसके शरीर का संसर्ग नहीं होगा। (प्रकट) अब तुम जाओ।

नलिनिका—जो राजकुमारी की आज्ञा (जाती है)।

हरिणिका—महारानी को क्या कहूँगी।

कुरङ्गी—कह देना अब स्वस्थ एवं निरोग हो गई है।

हरिणिका—रानी पूछेंगी तुमने कैसे जाना। तो क्या कहूँगी ?

कुरङ्गी—तुमने ठीक समझा है। कह दे इस औषध से।

हरिणिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम् ।

उष्णं श्वसिति तन्वङ्गी सर्वतः प्रेक्षते मुहुः ।
नेत्राभ्यां बाष्पपूर्णाभ्यां किन्नु कर्तुं व्यवस्थिता ॥ ३ ॥

कुरङ्गी - होदु, उत्तरीअवासेण अत्ताणं उब्बन्धिअ वावादइस्सं। (उत्थाय तथा कुर्वती मेघस्तनितं श्रुत्वा) हं परित्ताआहि परित्ताआहि मं। [भवतु, उत्तरीयवाससात्मानमुद्बध्य व्यापादयिष्यामि । हं परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

अविमारकः—सखे ! न शक्यमतः परमुपेक्षितुम् । (अङ्गुलीयकं

किन्नु खल्वनया व्यवसितम् = अधुना किमियं विधातुमिच्छति ।

अन्वयः—इयम् तन्वङ्गी उष्णम् श्वसिति मुहुः सर्वतः वाष्पपूर्णाभ्याम् नेत्राभ्याम् प्रेक्षते किन्नु कर्तुम् व्यवस्थिता ।

व्याख्या—उष्णमिति—इयम् तन्वङ्गी = कृशाङ्गी, उष्णम्, श्वसिति= निःश्वासं त्यजति मुहुः = वारंवारम् = सर्वतः = अभितः वाष्पपूर्णाभ्याम् = अश्रुपूर्णाभ्याम् नेत्राभ्याम् = नयनाभ्याम् प्रेक्षते = पश्यति किन्नु कर्तुं व्यवस्थितां = किं कर्तुमिच्छति ॥ ३ ॥

उत्तरीयवाससा = उत्तरीयवसनेन, उद्बध्य = गलमूर्ध्वं बध्वा । आत्मानम् व्यापादयिष्यामि = स्वप्राणान् त्यक्ष्यामि ।

हरिणिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा (जाती है)

अविमारक—यह क्या करना चाहती है—

यह कृशाङ्गी गरम श्वास ले रही है, बारबार चारो तरफ अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखती है, क्या करना चाहती है ॥ ३ ॥

कुरङ्गी—अच्छा इसी उत्तरीय से फांसी लगाकर अपना प्राणत्याग दूंगी (उठकर फाँसी लगाकर मेघ का शब्द सुनकर) मुझे बचाओ बचाओ ।

अविमारक—मित्र ! इसके बाद उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

वामाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य) कान्ते ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । (इति कुरङ्गी-मुत्थापयति)

कुरङ्गी—(सहर्षम्) किण्णु खु सच्चं एदं । मूढा विअ जादा ।
[किन्नु खलु सत्यमेतत् । मूढेव जाता ।]

अविमारकः—कान्ते । व्यपनीयतां शङ्का । (परिष्वजते)

कुरङ्गी—अच्छरीअं एकक्खणेण णस्सदि विअ मे सरीरदाहो ।
[आश्चर्यम् । एकक्षणेन नश्यतीव मे शरीरदाहः]

अविमारकः—अयं खल्वस्याः परिष्वङ्गः,

सततपरिचितो मनोभियोगा-
दधिकरसः प्रथमात् समागमात् ।

अन्वयः—मनोऽभियोगात् सततपरिचितः (अपि) प्रथमात् समागमात् अधिकरसः यः अद्य नृपेण रणशिरसि साहसात् विजय इव मया अनुभूयते ।

व्याख्या—सततेति-मनसोभियोगस्तस्मात् = गाढचित्तासङ्गात् सतत-परिचितः=निरन्तरं पूर्वानुभूतः, प्रथमात्=पूर्वकालजातात् समागमात्=संसर्गात् अधिको रसो यत्र तथाभूतः = अत्यन्तसुखजनकः अज्ञातविषयगतवैशिष्ठ्यस्य पूर्वरागपुरःसरसंयोगात् लब्धविषयगतविशेषानुभूतेः विप्रलम्भपुरःसर-सम्भोगस्याधिकसुखकरत्वात् । उक्तं हि-न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टि-मश्नुते, कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागः प्रवर्धते इति । यः=संयोगः अद्य= अस्मिन् काले, नृपेण=राज्ञा, रणशिरसि = समरमूर्ध्नि साहसात् = अवहेलिता-

---

(अँगूठी बायें हाथ में पहनकर) प्रिये ! मत डरो मत डरो । (कुरङ्गी को उठाता है) ।

कुरङ्गी—(सहर्ष) क्या सत्य है, मैं मूर्छित सी हो रही हूँ ।

अविमारक—शङ्का दूर करो (आलिङ्गन करता है) ।

कुरङ्गी—एक ही क्षण में मेरा शरीर का दाह दूर हो गया ।

अविमारक—इसका यह आलिङ्गन ।

मन की विशेष आसक्ति के कारण पूर्व काल में निरन्तर परिचित भी यह आलिङ्गन आज विशेष सुखदायी प्रतीत हो रहा है जैसे कोई राजा

रणशिरसि नृपेण साहसाद्यो
विजय इवाद्य मयानुभूयते ॥ ४ ॥

विदूषकः—कहं रोदिदुं आरद्धा। अलं अदिमत्तं सन्दावेण। अहव अहं वि रोदामि। एक्कं पि तहिं दुल्लहं मम णअणादो बप्फं ण णिग्गच्छइ। जदा मे पिदा उवरदो, तद वि महन्तेण आरम्भेण रोदिदुं आरद्धो। बप्फं ण णिग्गच्छइ किं पुण अण्णसन्दावस्स। तह वि अणुस्सुओ रोदामि। [कथं रोदितुमारब्धा। अलमतिमात्रं सन्तापेन। अथवा अहमपि रोदिमि। एकमपि तत्र दुर्लभं मम नयनाद् वाष्पं न निर्गच्छति। यदा मे पितोपरतस्दापि महतारम्भेण रोदितुमारब्धः। बाष्पं न निर्गच्छति। किं पुनरन्यसन्तापस्य। तथाप्यनुत्सुको रोदिमि।]

अविमारकः—अलमुत्प्रहसितेन। अच्छलो हि स्नेहो नाम।

त्मविपत्पूर्वकाक्रमणात्, विजयः=शत्रुपराजयः इव, अनुभूयते=अधिकसौख्यकर-प्रतीयते ॥ ४ ॥

आरब्धा—प्राक्रमत्, अलमतिमात्रं सन्तापेन=सन्तापो न कर्तव्यः, उपरतः= मृतः, महता संरम्भेण=अत्यन्तेन प्रयत्नेन, रोदितुं प्रारब्धः=रोदनं प्रारब्धवान्, किं पुरन्यसन्तापस्य = महाकष्टप्रदे पितृमरणेऽपि यो न रोदितुमशकत् सोऽन्यकष्टे कथं रुदियात्।

उत्प्रहसितेत = साभिप्रायहास्येन।

युद्ध क्षेत्र में साहस पूर्वक (आक्रमण के बाद) विजय प्राप्त करने पर विशेष आनन्द को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

विदूषक—यह रोने क्यों लगी ? सन्ताप नहीं करो; अथवा मैं भी रोता हूँ। मेरी आँखों में आँसू आते ही नहीं, जब हमारे पिता मरे थे तब भी मैंने रोने का प्रयास किया था परन्तु रो नहीं सका तो दूसरे सन्ताप में कैसे रोऊँ।

अविमारक—मन में कुछ रखकर हँसने की आवश्यकता नहीं। प्रेम में छल नहीं किया जाता है।

न ते न बुद्धिर्मम दूषणीया
येन प्रकामं भवितास्मि हास्यः ।
प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ॥ ५ ॥

(प्रविश्य)

नलिनिका—हरिणिए ! हरिणिए ! । कहं दुवारं रुद्धं । हद्धि दुवारणिरोहेण अवअदसन्दावं अत्ताणं करिस्सदि त्ति तक्केमि । हरिणिए ! हरिणिए ! हद्धि तं एव संवुत्तं । [हरिणिके ! हरिणिके ! कथं द्वारं रुद्धम् । हा धिग् द्वारनिरोधेनापगतसन्तापमात्मानं करिष्यतीति तर्कयामि । हरिणिके ! हरिणिके ! हा धिग् तदेव संवृत्तम् ।]

अन्वयः—न ते न मम बुद्धिः दूषणीया येन प्रकामम् हास्यः भवितास्मि, कार्ययोगे प्राज्ञस्य मूर्खस्य च तनुः समत्वम् अभ्येति न बुद्धिः ।

व्याख्या—न ते इति–न ते=तव न, मम=मे, बुद्धिः = मतिः, दूषणीया= दूषयितुम् योग्या = अर्हा । येन = कारणेन प्रकामम् = अत्यन्तम् हास्यः = उपहसनीयः, भवितास्मि = भविष्यामि, कार्ययोगे = अर्थस्य साधने, प्राज्ञस्य = अभिज्ञस्य, मूर्खस्य = मूढस्य, तनुः = शरीरम्, समत्वम् = तुल्यताम् अभ्येति = प्राप्नोति, बुद्धिः = मतिर्न समत्वमेति । कस्मिन्नपि कार्य्ये शरीरव्यापारसमत्वेऽपि विचारे महान् भेदः पण्डितस्य मूर्खस्य च ।

तदुक्तं भगवता गीतायाम्,

सक्ता कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्य्याद् विद्वान् तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

द्वारनिरोधेन = द्वारि कपाटसंघटनेन, अपगतसन्तामात्मानं = प्राणत्यागेन

यहाँ पर न तुम्हारी और न मेरी बुद्धि दूषित करने योग्य है जिससे मैं अत्यन्त उपहास के योग्य हूँ । कार्य्य सिद्धि में प्राज्ञ और मूर्ख का शरीर का योग समान होता है किन्तु विचार भिन्न-भिन्न होते हैं ॥ ५ ॥

नलिनिका—हरिणिके ! हरिणिके ! हाय क्यों द्वार बन्द है, द्वार बन्द करने से ज्ञात होता है कि यह द्वार बन्द करने से अपने को विरह-सन्ताप से रहित करना चाहती है ! हाय ! आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी ।

अविमारकः—नलिनिकाया इव स्वरः ! वयस्य ! विघाटयतां द्वारम् ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (विघाटच) एदु एदु भोदी । [यद् भवानाऽऽपयति । एत्वेतु भवती ।]

नलिनिका—हं की दाणिं एसो पुरिसो। [हम् ! क इदानीमेष पुरुषः ।]

विदूषकः—सुट्‌ठु विञ्ञादं तुए । अहो राअउलस्स विसेसो । को अण्णो जणो मं पेक्खिअ पुरिसो त्ति भणादि । इत्थिआ खु अहं । [सुष्ठु विज्ञातं त्वया । अहो राजकुलस्य विशेषः । कोऽन्यो जनो मां प्रेक्ष्य पुरुष इति भणति । स्त्री खल्वहम् ।]

अविमारकः—नलिनिके ! प्रविशेदानीम् ।

नलिनिका --कहं भट्टिदारओ। भट्टिदारअ ! वन्दामि । भट्टिदारअ ! को एसो पुरिसो । [कथं भर्तृदारकः ! भर्तृदारक ! वन्दे । भर्तृदारक ! क एष पुरुषः ।]

विदूषकः—अहूं पुक्खरिणी णाम । [अहं पुष्करिणी नाम चेटी ।]

व्यपगतविरहवेदनम्, विपाटयताम् = विव्रियताम् । राजकुलस्य विशेषः= अन्यत्रासदृशो व्यवहारः ।

अविमारक—नलिनिका की आवाज ज्ञात हो रही है । मित्र ! द्वार खोल दो ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा । (खोलकर) आप आइये ।

नलिनिका—हैं ! इस समय यह कौन पुरुष है ।

विदूषक—आपने खूब पहचाना ? राजकुल की यह विशेषता है । दूसरा कौन आदमी मुझे देखकर पुरुष कह सकता हैं । मैं तो औरत हूँ ।

अविमारक—नलिनिके ! इस समय भीतर आओ ।

नलिनिका—क्या राजकुमार ! राजकुमार को नमस्कार, यह कौन पुरुष है ।

विदूषक—मैं पुष्करिणी नाम की दासी हूँ ।

अविमारकः—योऽस्माभिः सदा कथ्यते सन्तुष्ट इति, सोऽयं ब्राह्मणः।

नलिनिका—आ दिट्ठपुरुवो णअरापणालिन्दे अअं बम्हणो। [आ दृष्टपूर्वो नगरापणालिन्देऽयं ब्राह्मणः।]

विदूषकः—आम भोदि। जण्णोपवीदेण बम्हणो, चीवरेण रत्तपडो। जदि वत्थं अवणेमि, समणओ होमि। भोदि ! किं एदं। [आम भवति ! यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः, चीवरेण रक्तपटः यदि वस्त्रमपनयामि श्रमणको भवामि। भवति ! किमेतत्।]

नलिनिका—भट्टिदारिआए उवण्हाणं [भर्तृदारिकाया उपस्नानम्]

विदूषकः—किं एदिणा बुभुक्खिदाए रोदन्तीए अत्तहोदीए उवण्हाणेण कय्यं। गच्छ सिग्घं भोअणं आणेहि। अहं अग्गासणीओ होमि। [किमेतेन बुभुक्षिताया रुदन्त्या अत्रभवत्या उपस्नानेन कार्यम्। गच्छ शीघ्रं भोजनमानय। अहमग्राशनीयो भवामि।]

नगरापणालिन्दे = क्वापि नगरापणबहिर्भागे। चीवरेण = कर्पटखण्डेन; उपस्नानम् = स्नानोपकरणम्। बुभुक्षितायाः = क्षुधार्तायाः उपस्नानेन = स्नानोपकरणेन, बुभुक्षितायै भोजनं देयम न तु स्नानोपकरणम्। ब्राह्मणोऽग्राशनीयः गृहस्थैर्हि भोजनात्पूर्वं ब्राह्मणेभ्यो दीयते ततः पूर्वं मह्यं देयमित्यर्थः। अनेकपुरुषसम्पाते = बहुजनसङ्कुले दिवसे कथं भवान् प्रविष्टः कन्यापुरे कथमायातः। भर्तृदारकः = राजकुमारः।

अविमारक—जिस सन्तुष्ट की सदा चर्चा किया करते थे वही यह ब्राह्मण है।

नलिनिका—इस ब्राह्मण को नगर के बाजार में मैंने देखा था।

विदूषक—हाँ मैं यज्ञोपवीत से ब्राह्मण हूँ, कपड़े से रक्तपटधारी योगी हूँ। यदि कपड़ा उतार दूं तो बौद्ध संन्यासी बन सकता हूँ, यह क्या है।

नलिनिका—यह राजकुमारी के लिये स्नान का उपकरण।

विदूषक—भूख से रोती हुई राजकुमारी को स्नानोपकरण की क्या आवश्यकता है ? जाओ शीघ्र भोजन लाओ। पहले मैं उसमें से थोड़ा भोजन कर लूंगा।

नलिनिका—दुब्बम्हण ! एदं पि भोअनं चिन्तेसि। सव्वं दाव चिट्ठदु । कहं दिअसे अणेअपुरुससम्पादे राअमग्गे भट्टिदारओ पविट्ठो । [दुर्ब्राह्मण ! एतदपि भोजनं चिन्तयसि । सर्वं तावत् तिष्ठतु । कथं दिवसेऽनेकपुरुषसम्पाते राजमार्गे भर्तृदारकः प्रविष्टः]

अविमारकः—सर्वं भवत्यै सन्तुष्टः कथयिष्यति ।

नलिनिका—विसज्जिदम्हि इमिणा बहुमाणवअणेण । भोदु, इमं गह्णिअ चउस्सालं पविसिअ गोट्ठीजणेण सह वुत्तन्तं सुणामि। एहि बम्हण ! (इत्याकर्षति ।) [विसर्जितास्म्यनेन बहुमानवचनेन । भवतु, इमं गृहीत्वा चतुःशालं प्रविश्य गोष्ठीजनेन सह वृत्तान्तं शृणोमि । एहि ब्राह्मण !।]

विदूषकः—अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं । [अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् ।]

कुरङ्गी—हस्सो खु अअं बम्हणो । [हास्यः खल्वयं ब्राह्मणः ।]

विसर्जिताऽस्मि = स्थानान्तरं गन्तुमाज्ञप्ताऽस्मि । बहुमानवचनेन = आदरसूचकवचनेन, गोष्ठीजनेन = सखीसमूहमध्ये, प्रवेशवृत्तान्तम् = इह प्रवेशरहस्यम् । हास्यः = उपहसनीयः । अश्रद्धेयम् = अविश्वसनीयम्, आत्मनोऽवस्थाम् विरहावस्याम्, किमपि कर्तुं व्यवसिता = मरणार्थमुद्युक्ता, मेघशब्दं श्रुत्वा=घनगर्जितमाकर्ण्य, तद् विस्मृत्य = अनवधार्य । याचे=प्रार्थये, आगन्तुकस्य = अतिथेः । नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति घृतश्रवणमात्रेण न पित्तं नश्यति किन्तु भोजनेन । मम हस्तेऽर्पयाभरणं न केवलं ब्रूहि ।

नलिनिका—अभागा ब्राह्मण यहाँ भी भोजन को ही सोचता है। छोड़ो सारी बातों को । दिन में बहुत लोगों से भरे राजमार्ग में राजकुमार ने किस प्रकार यहाँ प्रवेश किया ।

अविमारक—सारा समाचार आपको सन्तुष्ट बतायेगा ।

नलिनिका—इस आदर वचन से यह मुझे यहाँ से जाने का सङ्केत कर रहे हैं इसको लेकर चतुःशाल में जाती हूँ । वहाँ सखियों के साथ सारा वृत्तान्त सुनूंगी । चलो ब्राह्मण देवता ।

विदूषक—अनर्थ हो गया, अनर्थ हो गया ।

कुरङ्गी—यह ब्राह्मण बड़ा हँसमुख है ।

अविमारकः—वयस्य । हास्यः खलु भवान् ।,

विदूषकः—को एत्थ मम अस्सद्धअं भणादि । अहं ण हस्सो, तत्त-होदी एव हस्सा । जा अत्तणा अवत्थ जाणिअ किं पि कत्तुं ववसिअ मेहसद्दं सुणिअ सव्वं विसुमरिअ पडिदा । [कोऽत्र ममाश्रद्धेयं भणति । अहं न हास्यः, तत्रभवत्येव हास्या। यात्मनोऽवस्थां ज्ञात्वा किमपि कर्तुं व्यवस्य मेवशब्दं श्रुत्वा सर्वं विस्मृत्य पतिता ।]

कुरङ्गी—ह एदं पि इमेहि दिट्ठं । [हम् ! एतदप्याभ्यां दृष्टम् ।]

नलिनिका—याचेमि अहं । इदो एहि बम्हण ! [याचेऽहम् । इत एहि ब्राह्मण ! ।]

विदूषकः—जइ भोअणं देसि, तदो गच्छामि अहं । इट्ठं आअन्तुअ-स्स भोअणदाणं । [यदि भोजनं ददासि, ततो गच्छाम्यहम् । इष्टमागन्तु-कस्य भोजनदानम् ।]

नलिनिका—एहि मे सव्वाभरणं देसि । [एहि मे सर्वाभरणं ददामि ।]

विदूषकः—णहि घिदवअणेण पित्तं णस्सदि । मम हत्थगदं करेहि । [नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति । मम हस्तगतं कुरु ।]

उन्मुच्य = शरीरान्निःसार्य; चतुःशालं गत्वा श्रोष्यामि अतस्तत्रैव गत्वा, गोष्ठीजनेन = सखीसमुदायसमक्षम् भण । तत्रभवतीं = माननीयां राजकुमा-रीमापृच्छच ।

अविमारक—

विदूषक—कौन मुझे अविश्वस्त कहता है, मैं नहीं राजकुमारी हँसी के योग्य है जो अपनी अवस्था को जानकर कुछ करने जा रही थी । मेघ का शब्द सुनकर सब भूलकर गिर पड़ी ।

कुरङ्गी—अरे इन लोगों ने यह भी जान लिया है ।

नलिनिका—ब्राह्मण मैं प्रार्थना करती हूँ इधर आओ ।

विदूषक—यदि मुझे भोजन दोगी तो मैं चलूंगा । अतिथि को भोजन कराना उचित है ।

नलिनिका—चलो मैं अपना सारा भूषण तुम को दूंगी ।

विदूषक—घी का नाम लेने से पित्त शान्त नहीं होता है, मेरे हाथ में दो ।

नलिनिका—एवं होदु । [(आभरणान्यवमुच्य ददाति) एवं भवतु ।]

विदूषकः—सुणादि होदी । [शृणोतु भवती ।]

नलिनिका—मूढ ! बम्हण ! चउस्साले उवविसिअ गोट्ठीजणेण सह सुणामि । [मूढ ! ब्राह्मण ! चतुःशाल उपविश्य गोष्ठीजनेन सह शृणोमि ।]

विदूषकः—तत्तहोदीं पुच्छिअ आअच्छामि । [तत्रभवतीं पृष्ट्वा गच्छामि ।]

नलिनिका—को तुवं, मम सव्वाभरणं गह्णिअ बल्लहो जादो । एहि दाव । (विदूषकं हस्ते गृह्णाति ।) [कस्त्वं, मम सर्वाभरणं गृहीत्वा वल्लभो जातः । एहि तावत् ।]

विदूषकः—भोदि ! मा मा एवं । अदिसुमारो ख अहं । [भवति ! मा मैवम् । अतिसुकुमारः खल्वहम् ।]

नलिनिका—जाणामि जाणामि दे सुउमारत्तणं । जइ सुउमारो, सिग्धं एहि ।[जानामि जानामि ते सुकुमारत्वम् । यदि सुकुमारः शीघ्रमेहि।]

परमदर्शनीयान् = अत्यन्तमनोहरान्, प्रावृट्कालवल्लभान्=वर्षासमयमनोहरान् कालमेघान् = कृष्णजलदान् ।

नलिनिका—अच्छा ऐसा ही हो ।

(अपना भूषण उतार कर देती है ।)

विदूषक—सुनिये ।

नलिनिका—मूर्ख ब्राह्मण ! चतुःशाल में चलकर सखियों के सामने सुनूंगी ।

विदूषक—माननीया राजकुमारी से पूछ लूं ।

नलिनिका—तुम कौन हो राजकुमारी से पूछने वाले, मेरे सारा भूषण लेकर मालिक बने बैठे हो चलो । (विदूषक का हाथ पकड़कर)

विदूषक—ऐसा मत खींचो मैं बहुत सुकुमार हूँ ।

नलिनिका—मैं तुम्हारी सुकुमारता को जानती हूँ । सुकुमार हो तो शीघ्र चलो ।

विदूषकः—भोदि ; अअं आअच्छामि । [भवति ! अयमागच्छामि ।]

(निष्क्रान्तौ)

अविमारकः—प्रिये ! पश्य पश्य परमदर्शनीयान् प्रावृट्कालवल्लभान् कालमेघान् । इमे हि,

जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजृम्भका वज्रभृद्गृष्टयो
भगणयवनिकास्तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूता नभोमार्गरूढक्षुपाः ।

अन्वयः—जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजृम्भकाः वज्रभृद्गृष्टयः भगणजवनिकाः तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूताः नभोमार्गरूढक्षुपाः मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः गिरिस्नापनाम्भोघटाः उदधिसलिलभैक्षहाराः रवीन्द्वर्गलाः देवयन्त्रप्रपा नीलाम्बुदाः भान्ति ।

व्याख्या—जलदसमयेति–जलदसमयस्य = वर्षाकालस्य घोषणायाः = वर्षाकालः समागत इत्युच्चैर्घुष्टस्य, आडम्बराः सारोपा या अनेकक्रियाः = अनेकविधव्यापारास्तासां जृम्भकाः = वर्धकाः, वज्रभृतः = इन्द्रस्य गृष्टयः = सकृत्प्रसूता गावः, भगणानाम् = नक्षत्रसमूहानाम्, जवनिकाः = तिरस्करिण्यः तिरोधायकाः, तडित एव पन्नग्यस्तासां निवासस्थानवल्मीकरूपाः वालूरसमाः नभोमार्गे = आकाशपथे रूढक्षुपाः = प्ररूढस्वल्पकायभूरुहाः, मदनशरनिशानशैलाः = कामशिलीमुखसन्तेजनशाणप्रस्तराः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः = मानिनीनां मानमपनीय प्रियैः सह सन्धानकारिणः, गिरीणां = पर्वतानां

विदूषक—भद्रे ! अभी आ रहा हूँ ।

(दोनों जाते है)

अविमारक—प्रिये देखो-देखो इन अत्यन्तदर्शनीय वर्षा काल के प्रिय काले मेघों को ये सब—

ए काले मेघ वर्षाकाल के आने की सूचना देने वाली आक्षेपपूर्वक अनेक क्रियाओं को बढ़ा रहे हैं । ये इन्द्र की प्रथम प्रसूता गौ रूप हैं, नक्षत्रों को छिपाने के लिये पर्दा हैं विजली रूप नागिन के निवास स्थान रूप वामी भी है । आकाश मार्ग में उसे क्षुप वृक्ष हैं; कामवाणों को समुत्तेजित करने के लिये शाण हैं, रुष्ट स्त्री को प्रियतम के साथ सन्धि कराने वाले हैं, पर्वतो को स्नान कराने के लियें जल-घट हैं; समुद्र के जलों की भिक्षाका वाले हैं

मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः गिरिस्नापनाम्भोघटाः
उदधिसलिलभैक्षहारा रवीन्द्वर्गला देवयन्त्रप्रपा भान्ति नीलाम्बुदाः ॥

कुरङ्गी—अय्यउत्त ! दस्सणीआ दाणिं संवुत्ता । [आर्यपुत्र ! दर्शनीया इदानीं संवृत्ताः ।]

अविमारकः—अहो विपुलता विरलता धाराणाम् । तथा हि—

व्योमार्णवोर्मिसदृशा निनदन्ति मेघा
मेघप्ररोहसदृशाः प्रपतन्ति धाराः ।
रक्षोङ्गनाभ्रुकुटिवत् तडितः स्फुरन्ति
प्राप्तोऽग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः ॥ ७ ॥

स्नापने = स्नानविधौ अम्भोघटाः=जलकुम्भाः उदधेः=समुद्रस्य सलिलानि एव भैक्षम् तद्धरन्तीति तथाभूताः = जलधिजलसमादनशीलाः । रवीन्द्वर्गलाः = सूर्य्यस्य चन्द्रमसश्च अर्गलाः पिधानकाः देवस्येन्द्रस्य यन्त्रप्रपाः = यान्त्रिक-प्रपारूपाः नीलाम्बुदाः = श्यामघनाः भान्ति = शोभन्ते । रूपकालङ्कारः दण्डकवृत्तम् ।

इदानीं दर्शनीयाः संवृत्ताः त्वद्विरहकाले तु कामोत्तेजकत्वात् महाकष्ट-दायका आसन् । विपुलता = समधिकता, विरलता = विरग्य भाविता ।

अन्वयः—मेघाः व्योमार्णवोर्मिसदृशाः निपतन्ति, धारा मेघप्ररोह-सदृशाः निपतन्ति, तडितः रक्षोऽङ्गनाभ्रुकुटिवत् स्फुरन्ति उग्रयौवनघनस्तन-मर्दकालः प्राप्तः ॥ ७ ॥

चन्द्रमा और सूर्य्य को ढांकने वाले तथा देवनिर्मित यन्त्र के पौसरे के समान शोभ रहे हैं ॥ ६ ॥

कुरङ्गी—अब ये मेघ देखने के लायक लग रहे हैं ।

अविमारक—अहो कभी कम कभी जोरों से हो रही यह वर्षा कैसी सुन्दर रात होती है आकाश रूपी सागर के तरङ्ग के समान मेघ गरज रहे हैं, मेघ रूपी वट वृक्ष के प्ररोह के समान धारा गिर रही हैं । राक्षसी की कुटिल दृष्टि के समान बिजली चमक रही है । यह उत्कट यौवन वाली स्त्रियों के स्तनमर्दन का समय आ गया है ॥ ७ ॥

कुरङ्गी—अय्यउत्त ! आरद्धो सम्पदि वरिसिदुं देवो। [आर्यपुत्र ! आरब्धः सम्प्रति वर्षितुं देवः।]

अविमारकः—प्रिये ! एहि अभ्यन्तरमेव प्रविशावः।

कुरङ्गी—(सहर्षम्) जं अय्यउत्तो आणवेदि। [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति।]

(निष्क्रान्तौ)

पञ्चमोऽङ्कः।

व्याख्या—व्योमार्णव इति–मेघाः = जलदाः, व्योमार्णवोर्मिसदृशाः = आकशसागरतरङ्गसमाः निनदन्ति = शब्दायन्ते। धाराः = जलासारः मेघप्ररोहसदृशाः = जलदवृक्षप्ररोहाकाराः प्रपतन्ति = अध आगच्छन्ति तडितः = क्षणप्रभा, रक्षोऽङ्गनाभ्रुकुटिवत् = राक्षसीकुटिलदृष्टिवत्, स्फुरन्ति = द्योतन्ते, उग्रयौवनानाम् = गाढतारुण्यानाम्, स्तनयोः = कुचयोः मर्दकालः = गाढपीडनसमयः सम्प्राप्तः = समागतः। अतस्त्वं गेहं प्रविशेति ध्वनिः ॥ ७ ॥

देवो वर्षितुमारब्धः = वृष्टिः प्रारब्धा, अभ्यन्तरम् = गृहमध्यम्।

कुरङ्गी—आर्यपुत्र ! देव अब बरसना आरम्भ कर दिये।

अविमारक—प्रिये ! आओ हमलोग भीतर चलें।

कुरङ्गी—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा।

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त हुआ।

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति धात्री ।)

धात्री—अहो अणवत्था किदन्तस्स, जं राअदारिआ पढमं महाराएण सोवीरराएण तं विह्णुसेणं उद्दिसिअ वरिदा। अज्ज अविदिअसम्भवेण माणुसलोअदुल्लभाकिदिगुणविसेसेण केण वि संओओ जादो। अहअ दाणि कासिराअपुत्तो जअवम्भा णाम भट्टिणीए सुदस्सणाए सह अमच्चेण भूदिएण आणीदो सम्पदि राअउलं पविट्ठो। सअं किल कासिराओ जण्णवावारेण ण आअदो। किणु खु एदं भविस्सदि।
[अहो अनवस्था कृतान्तस्य, यद् राजदारिका प्रथमं महाराजेन सौवीरराजेन तं विष्णुसेनमुद्दिश्य वृता। अद्याविदितसम्भवेन मानुषलोकदुर्लभाकृतिगुणविशेषेण केनापि संयोगो जातः। अथ चेदानीं काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम भट्टिन्या सुदर्शनया सहामात्येन भूतिकेनानीतः संप्रति राजकुलं प्रविष्टः। स्वयं किल काशिराजो यज्ञव्यापारेण नागतः किन्नु खल्वेतद् भविष्यति।]

अहो कृतान्तस्य अनवस्था = दैवस्यानिश्चितता आश्चर्यरूपा। विष्णुसेनमुद्दिश्य वृता = स्वपुत्राय विष्णुसेनाय दातुं प्रार्थिता अविदितसम्भवेन = अज्ञातजन्मना, अविदितवृत्तेनेत्यर्थः। मानुषलोकदुर्लभाकृतिगुणविशेषेण = मनुष्यलोके दुर्लभा आकृतिर्गुणविशेषो यस्य तेन = लोकोत्तराकारगुणसम्पत्सम्पन्नेन, केनापि संयोगो जातः अज्ञातेन संयोगो जातः। यज्ञव्यापारेण = यज्ञक्रियानुपक्ततया। किन्नु खल्वेतद् भविष्यति = सौवीरराजपुत्राय, काशीराजपुत्राय राजपुत्र्या सहानन्यभावेनानुरक्तायापरिचिताय वा कस्मै राजपुत्री प्रदेयेति शंसये किं भविष्यतीति तात्पर्यम्।

धात्री—भाग्य कितना अस्थिर होता है, राजकुमारी का विवाह महाराज ने सौवीरराज के पुत्र विष्णुसेन के साथ स्थिर किया था, आज अज्ञात कुल अतिमानव गुण वाले किसी के साथ हो गया है। अब भूतिक अपने साथ काशीराज के पुत्र जयवर्मा को उसकी माता के साथ ले आये हैं। काशीराज यज्ञ में लगे रहने कारण नहीं आ सके हैं। देखें क्या होता है कोई निश्चित नहीं है।

(ततः प्रविशति वसुमित्रा ।)

वसुमित्रा—अहो विसमसीला संवच्छरिआ णाम अत्तणो णक्खत्त-विसेसं एव्वं चिन्तअन्ति, कम्मगोरवं ण जाणन्ति। अज्ज पविट्ठो कुमारो, अज्ज एव विवाहो णिउत्तो । (परिक्रम्य) किण्णु खु जअदा इअं किं वि चिन्तअन्ती अप्पसण्णा विअ उस्सुआ दीसइ। जअदे ! भट्टिणी भणादि—आअच्छेहि त्ति । [अहो विषमशीलाः सांवत्सरिका नामात्मनो नक्षत्रविशेषमेव चिन्तयन्ति, कर्मगौरवं न जानन्ति । अद्य प्रविष्टः कुमारोऽद्यैव विवाहो नियुक्तः । किं नु खलु जयदेयं किमपि चिन्तयन्त्यप्रसन्नेवोत्सुका दृश्यते। जयदे ! भट्टिनी भणति-आगच्छेति ।]

धात्री—हला ! जाणासि किं णिमित्तं त्ति । [हला ! जानासि किं निमित्तमिति ।]

वसुमित्रा—किं अण्णं, एदस्सि कय्ये कत्तव्वं चिन्तेदुं। [किमन्यत्, एतस्मिन् कार्ये कर्तव्यं चिन्तयितुम् ।]

विषमशीलाः = विपरीतस्वभावाः सांवत्सरिकाः = ज्योतिर्विदः । नक्षत्रविशेषमेव = शुभमुहूर्तमेव, कार्यगौरवम् = कर्तव्यार्थस्य महत्त्वम् , अद्य-प्रविष्टः = समायातः, निर्धारितः = निश्चितः, एतावतो विवाहसमारोह-स्याल्पकालभाविता कथमिति विचारासमर्थता तेषाम् ।

(वसुमित्रा का प्रवेश)

वसुमित्रा—ज्योतिषी लोग बड़े विचित्र स्वभाव वाले होते हैं, ये लोग अपने मुहूर्त का ही विचार करते हैं, किसी कार्य्य का महत्व नहीं जानते हैं। आज ही राजकुमार आये और आज ही विवाह का मुहूर्त स्थिर कर दिया। क्यों यह जयदा कुछ सोचती सी अप्रसन्न दीख रही है। जयदे ! महारानी की आज्ञा है कि आओ।

धात्री—सखि जानती हो क्यों महारानी जयदा को बुला रही हैं।

वसुमित्रा—और क्या हो सकता है इसी विषय में कर्तव्य-निर्णय करने के लिये बुलायी होंगी।

धात्री—सम्पदि भट्टिणीए को अभिप्पाओ । [संप्रति भट्टिन्याः कोऽभिप्रायः ।]

वसुमित्रा—अत्तणो वंसजादस्स विह्णुसेणस्स अवत्थं अजाणिअ णेच्छदि जअवम्मणो दारिअं दादुं । किन्तु महाराओ सोवीररा अउत्तं अजाणन्तो अज्ज किल अहिअसंदावो जादो । [आत्मनो वंशजातस्य विष्णुसेनस्यावस्थामज्ञात्वा नेच्छति जयवर्मणे दारिकां दातुम् किन्तु महाराजः सौवीरराजपुत्रमजानन्नद्य किलाधिकसन्तापो जातः ।]

(प्रविश्य)

नलिनिका—अज्ज किदसङ्केदा विअ अम्हाअं सव्वसङ्कडा । (परिक्रम्यावलोक्य) किण्णु हु एसा मम मादा वसुमित्ताए सह किं वि चिन्तेदि । इमं उपसप्पिअ असुहवुत्तन्तं सुणामि । [अद्य कृतसंकेतानीवास्माकं सर्वसंकटानि । किं नु खल्वेषा मम माता वसुमित्रया सह किमपि चिन्तयति । इमामुपसर्प्यासुखवृत्तान्तं शृणोमि ?]

भट्टिन्याः कोऽभिप्रायः-कस्मै स्वकन्यां दातुमिच्छति आत्मनो वंशजातस्य= स्ववंशे समुत्पन्नस्य, अवस्थामज्ञात्वा=सम्प्रति का परिस्थितिस्तस्येत्यविचार्याथ कन्यापेक्षयाल्पवयस्कत्वञ्चोपेक्ष्य । सौवीराजपुत्रस्यावस्थामजानन् = स कुत्र-वर्तत इति तद्विषयां प्रवृत्तिं न जानन् इत्यर्थः । सर्वसङ्कटानि कृतसङ्केतानि = सर्वापदः आगन्तुं कृतनिश्चयानि । राजकुलवासेन = निरन्तरराजकुलस्थित्या सर्ववृत्तान्तम् = सर्वविधसमाचारं जानासि । अभिनवो वृत्तान्तः = नूतनः समाचारः । इह ते निवेदयितुं कथयितुमागता ।

धात्री—इस समय महारानी का क्या अभिप्राय है ?

वसुमित्रा—अपने वंश में उत्पन्न विष्णुसेन को स्थिति को बिना जाने नहीं चाहती हैं कि जयवर्मा को आपकी कन्या दें । किन्तु महाराज सौवीर-राज के समाचार को न जानकर अतिसन्तप्त हैं । (प्रवेश कर)

नलिनिका—आज हमारे सारे संकट आने वाले है ।

(चलकर देखकर)

क्यों वह हमारी माता के साथ कुछ विचार कर रही हैं उसके पास जाकर कुछ असुखकर समाचार जानूं ।

वसुमित्रा—हला णलिणिए। एहि दाव। तुमं कञ्चुइसहवासेण राअउलवुत्तन्तं जाणासि। [हला नलिनिके ! एहि तावत्। त्वं कञ्चुकिसहवासेन राजकुलवृत्तान्तं जानासि।]

नलिनिका—अभिणवो वुत्तन्तो। णं तं णिवेदिउं आअदम्हि। [अभिनवो वृत्तान्तः। ननु तं निवेदयितुमागतास्मि।]

वसुमित्रा—भाणाहि जादे !। [भण जाते !।]

नलिनिका—पेसिदो खु सोवीररराअस्स अमच्चेहि दूदो—अम्हाअं सामी तुम्हाणं णअरे सपुत्तकलत्तो पच्छण्णो पडिवसि त्ति अम्हाअं गूढपुरुसेहि वुत्तन्तो जाणिअदु सामिणेत्ति। [प्रेषितः खलु सौवीरराजस्यामात्यैर्दूतः—अस्माकं स्वामी युष्माकं नगरे सपुत्रकलत्रः प्रच्छन्नः प्रतिवसतीत्यस्माकं गूढपुरुषैर्वृत्तान्तो ज्ञायतां स्वामिनेति।]

उभे—कहं पच्छण्णवेसो वत्तदित्ति। तदो तदो। [कथं प्रच्छन्नवेषो वर्तत इति। ततस्ततः।]

नलिनिका— तदो एवं सव्वं सुणिअ तस्स लेहस्स अवसाणं पेक्खिअ

सौवीरराजामात्यैः = सौवीराजसचिवैः। प्रच्छन्नः = गुप्तः। गूढपुरुषैः = गुप्तचरैः वृत्तान्तः = समाचारः। तस्य लेखस्य = सौवीरराजेन लिखितपत्रस्य, अवसानम = अभिप्रायम् , तम् = सौवीरराजम्, अन्वेष्टुम = विचेतुम्।

वसुमित्रा—आओ नलिका कञ्चुकी के साथ रहने के कारण तुम राजकुल का वृत्तान्त जानती होगी।

नलिनिका—हाँ नया वृत्तान्त है जिसको सुनाने आई हूँ।

वसुमित्रा—कहो बेटी—

नलिनिका—सौवीरराज के मन्त्रियों ने मेरे महाराज के यहाँ दूत भेजा है। उसके द्वारा सूचित किया है कि मेरे राजा स्त्री-पुत्र के साथ छिपकर आपके नगर में वस रहे हैं हमारे गुप्तचरों ने ऐसा पता लगाया है, आप भी इसको जान लें।

दोनों—क्यों छिपकर रहते हैं, आगे कहो।

नलिनिका—इसके बाद सारे समाचार को जानकर लेख का तात्पर्य समझकर महाराज भूतिक के साथ उनको खोजने गये हैं।

अय्यभूदिएण सह गओ किल महाराओ तं अण्णेसिदुं । [तत् एतत् सर्वं श्रुत्वा तस्य लेखस्यावसानं प्रेक्ष्यार्यभूतिकेन सह गतः किल महाराजस्तमन्वेषितुम् ।]

धात्री—किण्णु खु भवे । [किन्नु खलु भवेत् ।]

वसुमित्रा—णलिणिए ! । तुवं दाव अब्भन्तरं पविस । [नलिनिके ! त्वं तावदभ्यन्तरं प्रविश ।]

नलिनिका—जं अय्या भणादि । (निष्क्रान्ता) [यदार्या भणति ।]

वसुमित्रा—एहि दाव वअं भट्टिणीं पेक्खामो । [एहि तावत् । आवां भट्टिनीं पश्यावः ।]

धात्री—एवं करेम्ह । [एवं कुर्वः ।]

(निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति कुन्तिभोजः सौवीरराजभूतिकाभ्याम्) ।

कुन्तिभोजः—वयस्य !

किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकालदृष्टो
गाढं परिष्वज सखे ! स्मर बालभावम् ।

अन्वयः—सखे चिरकालदृष्टः (त्वम्) मे मुखम् किम् प्रेक्षसे सखे गाढम् परिष्वज बालभावम् स्मर । प्रीत्या अनिमेषम् भवन्तम् अवेक्षितुं मे वयस्यभावः स्नेहात् अद्य नवीकृतः ।

धात्री—देखें क्या होता है ।

वसुमित्रा—नलिनिका तुम अन्दर चलो ।

नलिनिका—जो आपकी आज्ञा ।

(जाती है)

वसुमित्रा—आओ हम दोनों महारानी के यहाँ चलें ।

धात्री—ऐसा ही करें । (दोनों जाती है)

(प्रवेशक)

(कुन्तिभोज, भूतिक और सौवीरराज का प्रवेश)

कुन्तिभोज—मित्र ! बहुत दिनों पर आपके दर्शन हुए हैं, मेरा मुख

प्रीत्या भवन्तमनिमेषमवेक्षितुं मे
स्नेहान्नवीकृत इवाद्य वयस्यभावः ॥ १ ॥

सौवीरराजः—यदिष्टं भवतः ।

(उभौ परिष्वजेते)

कुन्तिभोजः—

चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव बुद्धि-
र्वाक्यं च बाष्पाहतगद्‌गदं च ।

व्याख्या—किं प्रेक्षस इति—हे सखे = हे मित्र, चिरकालदृष्टः = बहुकालात् अवलोकितः त्वम् मम मुखम् = आननम् किम् = किमर्थम् प्रेक्षसे = पश्यसि, गाढम् = अशिथिलम्, परिष्वज = आलिङ्गय वालभावम् = बालकत्वम् स्मर = अनुस्मर तत्कालकृतान नानाविधक्रियाकलापान् स्मर । प्रीत्या = प्रेम्णा, अनिमेषम् = निमेपरहितम्, भवन्तं = त्वाम्, अवेक्षितुं = प्रेक्षितुम् मे = मम, वयस्यभावः = सौहार्दम्, स्नेहात् = दर्शनोद्‌बुद्धस्नेहवशात् नवीकृतः = नूतनतां जातः अस्तीति शेषः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

भावः—चिरान्निरीक्षितो भवान् किमद्य मां निरीक्षते
दृढं परिष्वजस्व मां स्मरावयोः सुबालताम् ।
असीमहार्दसागरस्तवेक्षणादुदश्चति,
न तृप्तिमेति दर्शनान्मदीयमक्षियुग्मकम् ॥

अन्वयः—ते बुद्धिः चिन्ताकुलत्वम् व्रजति इव वाक्यम् च बाष्पाहतगद्‌गदम, नेत्रे सबाष्पे मुखम् अप्रसन्नम् हर्षकाले विषादः किं क्रियते ।

क्या देख रहे हैं ! आइये हृदय से लिपट जाइये । बालकपन का याद करिये । प्रेम से देखने के लिये मेरा मित्रभाव आज नवीनता को धारण कर रहा है ॥ १ ॥

सौवीरराज—जैसी आपकी इच्छा ।

(दोनों मिलते है)

कुन्तिभोज—आपकी बुद्धि चिन्ताकुल हो रही है, वचन भी बाष्प से

नेत्रे सबाष्पे मुखमप्रसन्नं
किं हर्षकाले क्रियते विकारः ॥ २ ॥

सौवीरराजः—न खल्वहमप्रहृष्टो भवत्सङ्गमेन। किन्तु बलवान् पुत्रस्नेहो नाम।

यो मे पुत्रगतः शोको हृदयस्थो विजृम्भते।
सोऽद्य लब्ध्वा सहायं त्वां वाष्परूपेण निर्गतः ॥ ३ ॥

व्याख्या—चिन्तेति–ते = तव, बुद्धिः = मतिः चिन्ताकुलत्वम् = चिन्तया दुःखविशेषं स्मरन्तीवाकुलत्वम् = व्यग्रताम् व्रजति = याति इव। वाक्यम् = वचनम् च वाष्पाहतम् = अन्तरुष्मावरुद्धम् गद्गदम् स्खलद्वर्णम्, नेत्रे = नयने, सवाष्पे = साश्रुणी मुखम् = आननम् अप्रसन्नम् = प्रसादरहितम्, हर्षकाले = चिरान्मित्रसमागमरूपे विषादः = खेदः किम् = किमर्थम् क्रियते। को भवतो विषादहेतुः ॥ २ ॥

भावः—चिरान्मित्रसमासत्तिः परा हर्षप्रदा ननु।
हर्षकाले भवानद्य कथं चिन्ताकुलो वद ॥ २ ॥

अप्रहृष्टः = अप्रसन्नः, भवत्समागमेन = भवदीयसंमेलनेन पुत्रस्नेहः = तनयप्रेम, बलवान् इतोऽप्यधिकः।

अन्वयः—पुत्रगतः मे हृदयस्थः यः शोकः विजृम्भते सः अद्य त्वां सहायम् लब्ध्वा वाष्परूपेण निर्गतः ॥ ३ ॥

व्याख्या—यो इति–पुत्रगतः = तनयनिष्ठः मे = मम हृदयस्थः = हृदये वर्तमानः यः शोकः विजृम्भते = परिवर्धतेः सः अद्य=इदानीम् त्वाम् = भवन्तम् सहायम् = मित्रम् लब्ध्वा = प्राप्य वाष्परूपेण=अश्रुरूपतया निर्गतः। तदेतदुक्तं कालिदासेन "स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते।"

अवरुद्ध होकर गद्गद हो रहा है। आँखे अश्रुपूर्ण हैं इस मित्रमिलन रूप हर्ष के समय आप क्यों विषाद कर रहे हैं ॥ २ ॥

सौवीरराज—आपसे मिलकर मैं अप्रसन्न नहीं हूँ, किन्तु पुत्र का प्रेम बलवान् है यो मेरा पुत्रशोक अन्तःकरण में बढ़ रहा है वह आज आप सहायक को प्राप्त करके अश्रुरूप से निकल रहा है ॥ ३ ॥

कुन्तिभोजः—कथं पुत्रगतः शोक इति ।

भूतिकः—विदितमस्तु स्वामिना । न दृश्यते किलास्मिन् संवत्सरे कुमारः ।

सौवीरराजः—बलवान् पुत्रस्नेहो नाम । पश्यतु भवान्

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तं
सुतमविमारकमद्य चिन्तयामि ।
तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशो
यदि स भवेदिह को नु मद्विशिष्टः ॥ ४ ॥

भावः—हृदयनिगूढः पुत्रशोको भवतः समागमेनाद्य ।
अमान् समुद्वेल्य हृदो वाष्पव्याजाद्बहिर्याति ॥ ३ ॥

अन्वयः—अनुपमबलवीर्यरूपवन्तम् अविमारकम् सुतम् अद्य चिन्तयामि यदि स तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशः भवेत् इह कः नु मद्विशिष्टः भवेत् ।

व्याख्या—अनुपमेति = बलञ्च वीर्य्यञ्च रूपञ्चेति तान्यनुपमानि सन्ति यस्मिन् तम् अनुपमबलवीर्य्यरूपवन्तम् = अनन्योजःशौर्यकान्तिमन्तम् अविमारकम् = मेषाकारराक्षसहन्तारम् तन्नामकं सुतम् = पुत्रम्-अद्य = प्रियसुहृदो भवतः समागमकाले स्मरामि = चिन्तयामि, यदि = चेत् सः = सुतः तव = भवतः, चरणरजसा = पादधूल्याऽञ्चिताः शोभिता अग्रकेशाः शिरोरुहाग्रभागा यस्य तथाभूतः भवेत्=स्यात्, इह जगति मद्विशिष्टः मदधिकः कः स्यादिति शेषः । तादृशानुपमपुत्रसम्पन्नं स्वं सकललोकाधिकं जानीयाम् ॥ ४ ॥

भावः—अमानवौजोबलकान्तिसंयुतम् तमद्य पुत्रं ह्यविमारकं स्मरे ।
त्वदङ्घ्रिधूल्यञ्चितमग्रमूर्धजमीक्षेत्ततो मेऽत्र समो हि कः स्यात् ॥४॥

कुन्तिभोज—कैसा पुत्रशोक यह है ?

भूतिक—महाराज को ज्ञात हो कि इस वर्ष कुमार कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं ।

सौवीरराज—पुत्र-स्नेह बहुत प्रबल होता है, देखें आप—

आज मैं अलौकिक बलवीर्य्य कान्ति वाले अविमारक का स्मरण कर रहा हूँ यदि यह आज आपके चरण की धूलि से विभूषित शिरोरुह (केश) वाला होता तो मेरे समान इस संसार में कौन धन्य होता ? ॥ ४ ॥

भूतिकः—(आत्मगतम्) महान् खल्वयं सन्तापो वर्धत एव हि कुमारमन्तरेण। विलोपयाम्येनम्। (प्रकाशम्) कथं स्वामिनोऽभ्यागता व्यापत्।

कुन्तिभोजः—अहमप्यनेन व्याक्षेपेण विस्मृतवानेतत् प्रष्टुम्।

सौवीरराजः—श्रूयताम्। अथवा भूतिकस्तु विजानाति। अप्यस्मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छति।

कुन्तिभोजः—वयमवहिताः स्मः।

सौवीरराजः—अपि ज्ञायते चण्डभार्गवो नामात्यन्तरोषी ब्रह्मर्षिः।

कुन्तिभोजः—श्रूयते तत्रभवांस्तपोनिधिः।

अयं सन्तापः=पुत्रशोकः, कुमारमन्तरेण=कुमारस्यादर्शनेन, विलोपयामि=शोकसभारम्भमेनम्, कथान्तरेणान्तरयामि। व्याक्षेपेण=व्याक्षिप्तचित्ततया, एतत्प्रष्टुम्=एतादृशदुःखकारणमनुवक्तुम्। अस्मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छति मया कथ्यमानमाकर्णयितुमिच्छति। अवहिताः=सावधानाः, अत्यन्तरोषी=अतिक्रोधी। तपोनिधिः=महातपस्वी। अस्मद् विषयम्=मम देशम्, आगतः=समायातः। कान्तारे=वने, व्याघ्रेण=सिंहेन, अभिभूय=आक्रम्य, मृगयावशात्=आखेटकारणात् यदृच्छयैव=आकस्मिकरूपेण। तं देशम्=तदाश्रितं स्थानम् अभ्युपगतः=समागतः।

भूतिक—(स्वगत) कुमार के बिना इनका यह सन्ताप बढ़ता ही जाता है। इनको दूसरी ओर ले जाता हूँ। (प्रकट) श्रीमान् पर यह आपत्ति आई कैसे ?

कुन्तिभोज—मैं भी इसी सन्ताप के कारण आप से यह पूछना भूल गया।

सौवीरराज—सुनिये, अथवा भूतिक तो सब जानते ही हैं, आप मेरे मुख से सुनना चाहते हैं।

कुन्तिभोज—हम सावधान हैं।

सौवीरराज—क्या आप चण्डभार्गव नामक अत्यन्त क्रोधी महर्षि को जानते हैं।

कुन्तिभोज—हाँ मैंने उनका नाम सुना है।

सौवीरराजः—सोऽस्मद्विषयमभ्यागतः। कान्तारे तस्य शिष्यो व्याघ्रेणाभिभूय मारितः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—ततोऽहमपि तस्मिन् काले मृगयावशात् यदृच्छयैव तं देशमभ्युपगतः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—अथ मां दृष्ट्वा विजृम्भमाणरोषभ्रुकुटीपुटविषमीकृतवदनः प्रलम्बजटाभारः शिष्ये स न्यस्तकरः क्रुद्धो दहन्निव क्रोधाग्निना मद्वचनमश्रोतुकामः संरम्भस्खलितवचनो मां बहुधा क्षेप्तुमारब्धः।

विजृम्भमाणेन = वर्धमानेन क्रोधेन या भ्रुकुटीपुटयोः = भ्रुवोः कौटिल्यं तेनाविषमितम् विषमं संजातं मुखं यस्यैवं भूतः।

प्रलम्बो जटाभारो यस्य स तथोक्तः=प्रलम्बमानजटाजूटः। न्यस्तकरः= स्थापितहस्तः, क्रोधाग्निना = अमर्षज्वलनेन संरम्भस्खलितवचनः क्रोधावेशत्रुटिताक्षरवाचं, क्षेप्तुम् = आक्रोष्टुम्। भवितव्यस्यार्थस्य = अवश्यंभाविनोऽनर्थस्य, प्राबल्येन = प्रबलतया, अधृतिः = धैर्यहीनः अकारणम् = कारणं विनैव क्षिपसि = आक्रोशसि, संक्रुद्धवान् = क्रुद्धः।

सौवीरराज—एक बार वे मेरे देश में आये। जङ्गल में उनके किसी शिष्य को व्याघ्र ने मार डाला।

कुन्तिभोज—इसके बाद।

सौवीरराज—संयोगवश मैं भी शिकार खेलता वहीं पहुँच गया।

कुन्तिभोज—उसके बाद क्या हुआ।

सौवीरराज—वे हमको देखकर क्रोधित हो गये बढ़ते हुये क्रोध से भौंहे के कुटिल हो जाने के कारण उनका मुखमण्डल विषम हो गया उनकी जटायें लटक रहीं थी, शिष्य के ऊपर हाथ रखे क्रोधाग्नि से जलाते हुए मेरी बातों को अनसुनी करके क्रोध से त्रुटित अक्षर वाले वचनों से मुझे फटकारने लगे।

कुन्तिराजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—ततोऽहमपि भवितव्यस्यार्थस्य प्राबल्येनाधृतिः 'वृत्तान्तं न ब्रवीषि, निष्कारणं क्षिपसि' इति संक्रुद्धवानस्मि।

न भाषसे वृत्तमुपैषि रोषं
निष्कारणं प्रक्षिपसि प्रकामम्।
अभाजनं त्वं तपसां प्रकोपाद्
ब्रह्मर्षिरूपेण भवाञ्छ्वपाकः॥ ५॥

कुन्तिभोजः—असदृशमुक्तं भवता।

अन्वयः—वृत्तम् न भाषसे रोषम् उपैषि, निष्कारणम् प्रकामं प्रक्षिपसि प्रकोपात् त्वम् तपसाम् अभाजनमसि, भवान् ब्रह्मर्षिरूपेण श्वपाकः।

व्याख्या—वृत्तमिति-वृत्तम् = समाचारम् न भाषसे = ब्रवीषि। रोषम् = क्रोधम् उपैषि = धारयसि, निष्कारणम् = हेतुं विनैव प्रकामम् = अत्यर्थम्, क्षिपसि = आक्रोशसि, प्रकोपात् = क्रोधात्। हेतोः, त्वम् = भवान्, तपसाम् = तपश्चर्य्याणां अभाजनम् नाश्रयं तपस्विन एवंविधाकारण-क्रोधविकृतिः न भवति यतो भवान् तपस्वीत्यर्थः। तपस्विरूपेण = तपोरूपा-कारवान् श्वपाकः = चाण्डालो भवान् अस्तीति शेषः।

आज्यधारावसिक्तः = घृतधारया अवसिक्तः सम्पादितसेकः अग्निरिव ज्वलितनेत्रः = जाज्वल्यमाननेत्रः बहुशः = अनेकबारम्, शिरः कम्पयन् = मूर्धानं विधुन्वन्।

कुन्तिभोज—उसके बाद क्या हुआ—

सौवीरराज—भवितव्य के प्रबल होने के कारण मैं भी धैर्य रहित हो गया आप समाचार को नहीं कहते निष्कारण आक्षेप कर रहे हैं, ऐसा क्रोध से कहा। क्रोध कर रहे हैं। बिना कारण ही हमको अत्यन्त फटकार रहे हैं। क्रोध के कारण आप तपस्या के पात्र नहीं है। आप ब्रह्मर्षि के रूप में चाण्डाल हैं॥ ५॥

कुन्तिभोज—आप ने अनुचित कहा।

सौवीरराजः—ततस्तच्छ्रुत्वैवाज्यधारावसिक्तो भगवान् हुताशन इव प्रज्वलितनेत्रो बहुशः शिरः कम्पयन् 'कथं कथम्' इत्युक्त्वा मां शप्तुमारब्धवान् ।

यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं श्वपाक इति भाषितः ।
तस्मात् सपुत्रदारस्त्वं श्वपाकत्वमवाप्स्यसि ॥ ६ ॥

इति ।

कुन्तिभोजः—अहो ! अल्पमूलत्वं महतां चानर्थस्य ।

भूतिकः—सभाग्यं सौवीराजकुलम् । कुतः,

ब्रह्मर्षिणा प्ररुष्टेन श्वपाकत्वं तदा कृतम् ।
तस्मात् तेनैव रूपेण न सर्वं भस्मसात् कृतम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यस्मात् ब्रह्मर्षिमुख्यः अहम् (त्वया) श्वपाक इति भाषितः तस्मात् त्वम् सपुत्रदारः श्वपाकत्वम् अवाप्स्यसि ॥ ६ ॥

व्याख्या—यस्मादिति-यस्मात् = कारणात्, ब्रह्मर्षिषु मुख्यः ब्रह्मर्षि-मुख्यः = ब्रह्मर्षिप्रधानः अहम् = भार्गवः, त्वया श्वपाकः = चाण्डाल इति भाषितः = कथितः तस्मात्=कारणीभूतादपराधात् त्वम्, सपुत्रदारः=सतनय-स्त्रीकः श्वपाकत्वम्=चाण्डालत्वम्, अवाप्स्यसि = अधिगमिष्यसि ॥ ६ ॥

अल्पमूलत्वम् = तुच्छकारणजन्यत्वम् , सभाग्यम् = भाग्यशालि, अन्य-थाऽसौ चण्डभार्गवः स्वतपोबलेन सकलं कुलं भस्मसादपि कर्तुं क्षमः ।

अन्वयः—तदा रुष्टेन ब्रह्मर्षिणा श्वपाकत्वं कृतम् तस्मात् तेनैव रूपेण सर्वम् भस्मसात् न कृतम् ॥ ७ ॥

सौवीरराज—इतना सुनते ही वह घी की धारा से सिंची आग के समान रक्त नेत्र होकर बार-बार शिर हिलाते हुए, 'क्या कहा ?' क्या कहा यह कहकर मुझे शाप देना आरम्भ किया ।

मुझ ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ को तुमने चाण्डाल कह दिया इसलिये तुम पुत्र और स्त्री के साथ चाण्डाल हो जाओगे ॥ ६ ॥

कुन्तिभोज—साधारण कारण से महान् अनर्थ हुआ ।

भूतिक—सौवीराज का कुल भाग्यशाली है । क्योंकि—

जिस क्रोध से उन्होंने उस समय चाण्डाल बनाया उस क्रोध से उसी

कुन्तिभोजः—युक्तमभिहितं भवता । ततस्ततः ।

सौवीरराजः—ततस्तच्छापप्रक्षुब्धमनसा मया सुचिरमनुनीयमानः शनैः शनैः प्रकृतिस्थो भूत्वानुग्रहं कृतवान्—

तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सरं व्रजेः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥ ८ ॥

इति । एवमुक्त्वा प्रसन्नचित्तेन एहि भोः काश्यप ! इत्याह्वयत, स

व्याख्या—ब्रह्मर्षिणेति प्ररुष्टेन = क्रुद्धेन, ब्रह्मर्षिणा = चण्डभार्गवेन श्वपाकत्वम् = चाण्डालभावमात्रं कृतम्, तस्मात् = तस्य कोपात् तेनैव रूपेण = तेनैवप्रकारेण सर्वम् = सकलम्-कुलम् = वंशम् भस्मसात् = भस्मीभूतं न कृतम् = न विहितम्, अतो भाग्यं भवतः कुलस्य ॥ ७ ॥

तच्छापक्षुब्धमनसा = तच्छापव्याकुलहृदयेन, सुचिरम् = बहुकालम् अनुनीयमानेन = आराधयता, प्रकृतिस्थः = स्वाभाविकीं स्थितिं प्राप्तः

अन्वयः—तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सरम् व्रजेः, ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥ ८ ॥

व्याख्या—तावदिति-तावत् = प्रथमम् प्रच्छन्नरूपेण = गुप्तरूपेण संवत्सरमभिव्याप्येति यावत्संवत्सरम् = वर्षपर्यन्तम्, व्रजेः = स्वस्थानादन्यत्र गत्वा निवस, ततः = पश्चात् संवत्सरे पूर्णे = वर्षे समाप्ते मुक्तशापः = तीर्णशापः भविष्यसि = सम्पत्स्यते ॥ ८ ॥

प्रसन्नचित्तेन = सन्तुष्टहृदयेन आह्वयत = आह्वास्त, मृतं स्वशिष्य-

---

प्रकार वे सौवीरराजवंश को भस्म भी कर सकते थे । नहीं (किये अतः भाग्यशाली) हैं ॥ ७ ॥

कुन्तिभोज—आप ठीक कहते हैं, उसके बाद ।

सौवीरराज—शाप सुनकर मैं दुःखित हो गया, मेरे बहुत अनुनय करने पर धीरे-धीरे वे स्वाभाविक स्थिति में आकर कृपा किये—

पहले श्वपाक के रूप में अन्यत्र छिपकर एक वर्ष बिताओ । एक वर्ष पूरा होने पर उसके बाद शाप से मुक्त हो जाओगे ॥ ८ ॥

हमसे ऐसा कहकर प्रसन्न चित्त उस मुनि ने 'हे कश्यप इधर आओ'

तमनुगतो व्याघ्रेण मारितो वटुः, चरितं च मया संवत्सरं श्वपाकव्रतम्। अद्यास्मि शापान्मुक्तः।

कुन्तिभोजः—अहो व्यापदः प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च। दिष्टया भवान् वर्धते।

भूतिकः—जयतु स्वामी।

कुन्तिभोजः—ननु विष्णुसेनमाता सपरिवारमन्तःपुरं प्रविष्टा।

भूतिकः—तत्रभवती प्रविश्याभ्यन्तरं चिरकालप्रसुप्तं प्रणयमुद्बोधयति।

कुन्तिभोजः—अथेदानीं विष्णुसेनः कथमविमारको जातः।

मित्यर्थः, तमनुगतो व्याघ्रेण मारितः तदाह्वानमात्रेण पुनरुज्जीवितः स वटुः तमनुससारं, व्यापदः=विपत्तेः, समागमो निवृत्तिश्चाश्चर्यमयमित्यर्थः तत्र भवती माननीया चिरकालप्रसुप्तम् = वहुकालात् विलुप्तव्यवहारम् प्रणयम् स्नेहम् उद्वोधयति = प्रकटयति। विष्णुसेनः कथमविमारको जातः = नामान्तराधिगमस्य किं कारणम्।

उत्सादयितुम् = नाशयितुम्। अपूर्वाः = अप्रस्तुतपूर्वाः सर्वप्रजानाम् = सर्वजनानाम्, आर्तिम् = पीडाम्, तस्य = असुरस्य प्रतिक्रियाम् = निवारणोपायम् अनवेक्षमाणः = स्वसामर्थ्यमननुभवन्। क्षितिरेणुपरुषगात्रः = क्षितेः =

इस तरह पुकारा गया वह व्याघ्र से मारा गया शिष्य सुप्त की तरह उठकर उनका अनुसरण करने लगा। मैंने भी एक वर्ष तक श्वपाक व्रत किया अव शाप से मुक्त हो गया हूँ।

कुन्तिभोज—आपके ऊपर आपत्ति आई और निवृत्त हो गई आप वड़े भाग्यशाली हैं।

भूतिक—जय हो महाराज की—

कुन्तिभोज—क्या विष्णुसेन की माता अपने परिवार के साथ अन्तःपुर में आईं।

भूतिक—वह अन्तःपुर में आकर चिरसुप्त स्नेह को प्रबुद्ध कर रही है।

कुन्तिभोज—आप यह बताइये कि विष्णुसेन गया अविमारक नाम का कैसे हो जाय।

भूतिकः—शृणोतु स्वामी—अस्ति धूमकेतुर्नामासुरः। सर्वलोकमारणाय परिभ्रमन् स कदाचित् सौवीरराष्ट्रमुत्सादयितुं प्रवृत्तः।

कुन्तिभोजः—अपूर्वा खलु कथा। ततस्ततः।

भूतिकः—ततः स्वदेशे सर्वप्रजानामार्तिं दृष्ट्वा तस्य राक्षसस्य च प्रतिक्रियामनवेक्षमाणः स्वामी क्लेशमुपगतः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

भूतिकः—ततस्तत् सर्वं बुद्ध्वा कुमारो विष्णुसेनः क्षितिरेणुपुरुषगात्रः प्रलम्बमानकाकपक्षः शिशुभिस्तुल्यवयोभिः प्रक्रीडमानो दैवयोगात् प्रमत्तेषु सर्वरक्षिपुरुषेषु सहसैव तं देशमभ्युपगतो यत्रासौ राक्षसः।

कुन्तिभोजः—अहो आश्चर्यमाश्चर्यम्। ततस्ततः।

पृथिव्याः रेणुभिः = धूलिभिः परुषगात्रः = रुक्षशरीरः, क्षितिरेणुक्रीडासक्तः तुल्यवयोभिः = समवयस्कैः, दैवयोगात् = दैवप्रभावात्-प्रमत्तेषु = असावधानेषु, रक्षिपुरुषेषु=बालरक्षाधिकृतेषु। सुमम्पनम् = अतिरुचिरं, नवत्वात् स्वादिष्टमांसम्, समीक्ष्य = दृष्ट्वा स्वकर्मकर्तुम् = भक्षितुम्। नृशंसता = क्रूरता।

भूतिक—सुनिये महाराज, धूमकेतु नाम का एक महान् असुर था, सर्व लोगों को मारने के लिये घूमता हुआ वह एक समय सौवीर देश में आया और सौवीर राष्ट्र को नष्ट करने लगा।

कुन्तिभोज—यह कथा अनसुनी है, तब क्या हुआ।

भूतिक—तब अपने प्रजावर्ग के कष्ट को देखकर एवं उस राक्षस के प्रतीकार को न देखकर महाराज क्लेश को प्राप्त हुये।

कुन्तिभोज—उसके बाद क्या हुआ?

भूतिक—तब यह सब जान कर कुमार विष्णुसेन जिसका शरीर भूमि की धूलि से रुक्ष था और केश लटक रहे थे और बहुत से स्ववयस्क बालकों के साथ खेल रहे थे दैवयोग से रक्षकों की असावधानी के कारण एकाएक जहाँ वह राक्षस था वहाँ चला आया।

कुन्तिभोज—ओह आश्चर्य है तब क्या हुआ।

भूतिकः--ततः स राक्षसः प्रीत्या सुसम्पन्नमिवाहारं कुमारमभिसमीक्ष्य स्वकर्म कर्तुमारब्धः।

कुन्तिभोजः—अहो नृशंसता राक्षसस्य। ततस्ततः।

भूतिकः—अथ कुमारेण किञ्चित् प्रहस्य,

प्रपतदशनिना यथा गिरीन्द्रो
दवदहनेन यथा वनप्रदेशः।
युधि ललितमनायुधेन तेन
क्षितिपसुतेन तदा हतः स नीचः॥ ९॥

कुन्तिभोजः—प्रथममेव हस्तिसम्भ्रमे मयोक्तं—दैवादुत्पादितोऽयं केवलो मानुषो न भवतीति।

अन्वयः—प्रपतदशनिना यथा गिरीन्द्रः दवदहनेन यथा वनप्रदेशः (तथा) अनायुधेन तेन क्षितिसुतेन युधि स नीचः ललितम्, तदा हतः॥ ९॥

व्याख्या—प्रपतदिति = प्रपतताऽशनिना = पतता वज्रेण यथा येन प्रकारेण गिरीन्द्रः, निपात्यते, दवदहनेन = वनाग्निना, यथा वनप्रदेशः = वनभागः, दह्यते, तथा अनायुधेन = आयुधरहितेन, तेन = विष्णुसेनेन। युधि = संग्रामे, तदा = तस्मिन् काले स नीचः = अधमो रासक्षः ललितम् सविलासम् अनायासेनैव हतः = मारितः॥ ९॥

भूतिक—उसके बाद बहुत रुचिकर आहार को देखकर वह राक्षस अपना काम करना आरम्भ कर दिया।

कुन्तिभोज—अहो! राक्षस की क्रूरता—तब क्या हुआ।

भूतिक—इसके बाद कुमार ने कुछ हँसकर—

जैसे गिरते हुए वज्र से पर्वत और दावाग्नि से वन नष्ट हो जाता है उसी प्रकार विना आयुध के उस राजकुमार ने खेल में ही उस नीच राक्षस को मार डाला।

कुन्तिभोजः—मैंने पहले ही हाथी के उत्पात के दिन कहा था कि वह दैववशात् उत्पन्न है साधारण मनुष्य नहीं है।

सौवीरराजः—भवान् सहस्रनेत्रश्चरैः कथं चिन्तयत्यविमारकं प्रति।

भूतिकः—स्वामिन् !

गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे
न दृश्यते क्वापि चरैः कुमारः।
परीक्षितुं तं मनसोऽस्ति शक्ति-
र्नूनं हि मायामनुगच्छतीति ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति नारदः)

दैवादुत्पादितः = भाग्यवशादुत्पन्नः, केवलमानुष्यः = मनुष्यमात्रं न भवति । सहस्रनेत्रश्चरैः = सहस्रनेत्रतुल्यः 'राजानश्चारचक्षुष' इति वचनात् । गुप्तचरैः कथं न वेत्ति ।

अन्वयः—गम्याः देशाः तु मया सुपरीक्षिताः चरैः क्वापि कुमारः न दृश्यते तम् परीक्षितुम् मनसः शक्तिः अस्ति हि नूनम् मायाम् अनुगच्छति इति ।

व्याख्या—गम्यास्त्विति गम्याः = गन्तुं शक्ताः देशाः = विषयाः, परीक्षिताः = विचिताः, क्वापि = कस्मिन्नपि स्थाने कुमारः = विष्णुसेनः चरैः = गुप्तचरैः = न दृश्यते । तं परीक्षितुम् = गवेषयितुम् मनसः = चेतसः शक्तिः = सामर्थ्यम् अस्ति = न हि चक्षुषा स दृष्टुं शक्यते हि = यतः स मायामनुगच्छति=विद्यादिप्रभावेणान्तर्हितः इति । मायावी चक्षुषा कथं दृश्यते स तु ध्यानेनैव मनसा ज्ञातुं शक्यः ॥ १० ॥

सौवीरराज—आपके हजारों गुप्तचर नेत्र हैं उनके द्वारा कुमार के विषय में क्यों नहीं जानते हैं ?

भूतिकः—महाराज ! जाने योग्य देशों में अच्छी तरह खोज लिया मेरे गुप्तचरों द्वारा कुमार कहीं नहीं देखें जाते हैं। उनको खोजने के लिये केवल मन की ही शक्ति हैं, क्योंकि कि वे माया का अनुसरण कर रहे हैं ॥ १० ॥

(इसके बाद नारद का प्रवेश)

नारदः—

वेदैः पितामहमहं परितोषयामि
गीतैः करोमि हरिमुद्गतरोद्गमहर्षम् ।
उत्पादयाम्यहरहर्विविधैरुपायै-
स्तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके ॥ ११ ॥

भोः ! कुन्तिभोजस्य पित्रा दुर्योधनेन वयं सुचिरमाराधिताः ! तस्मिन् मानुषस्वभावमुपगते कुन्तिभोजश्चास्मासु भृत्यत्वमाचरति ! अद्य कुन्तिभोजस्य सौवीरराजस्य च महानविमारकादर्शनेन कार्य-

---

अन्वयः—अहम् वेदैः पितामहम् परितोषयामि, गीतैः हरिम् उद्गत-रोमहर्षम् करोमि अहरहः विविधैः उपायैः तन्त्रीषु स्वरगणान् लोके च कलहान् उत्पादयामि ॥ ११ ॥

व्याख्या—वेदैरिति–अहम्–वेदैः = श्रुतिभिः पितामहम् = विरञ्चिम्, ब्रह्माणम्, परितोषयामि = तर्पयामि, गीतैः = गानैः, हरिम् = श्रीविष्णुम्, उद्गतो रोमहर्षो यस्य तं तथोक्तम्=उदञ्चद्रोमाणम् करोमि = सम्पादयामि, विविधैरुपायैः = अनेकाभिर्विधाभिर् तन्त्रीषु = वीणासु, स्वरगणान् = षड्-जातीन् स्वरान्, लोके = जनेषु च कलहान् = मिथः वैराणि, उत्पादयामि = जनयामि ॥ ११ ॥

भावः—वेदान्निशम्य मम तुष्यति स स्वयम्भु-
र्गानैश्च कैटभरिपुः परितोषमेति ।
कर्तुं क्षमोऽस्म्यहमनेकविधैरुपायैः
वीणास्वरान् कलिमथापि जनेषु नित्यम् ॥

नारद—मैं अपने वेदाध्ययन से पितामह को प्रसन्न कर देता हूँ तथा मेरे गाने को सुनकर भगवान् श्रीविष्णु रोमाञ्चित हो जाते हैं, मैं अनेक उपायों से वीणा में विविध स्वरों तथा लोक में कलह को पैदा करने में कुशल हूँ ॥ ११ ॥

कुन्तिभोज के पिता ने मेरी बहुत दिनों तक आराधना की थी। उनके मर जाने पर कुन्तिभोज भी मेरे प्रति सेवक-सा भाव रखते हैं। इस समय

सङ्कटो वर्तते । तदिदानीमहमविमारकप्रदर्शनेन तयोर्व्याक्षेपं समाक्षिपामीत्यवतीर्णोऽस्मि भूम्याम् (इति कुन्तिभोजसौवीरराजयोः पुरतः स्थितः ।)

कुन्तिभोजः—अये भगवान् देवर्षिर्नारदः । भगवन् ! अभिवादये ।

नारदः—स्वस्ति भवते ।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सौवीरराजः—भगवन् ! अभिवादये ।

नारदः—शान्तिरस्तु ते ।

सौवीरराजः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

कुन्तिभोजः—(कर्णे) भूतिक ! एवं क्रियताम् ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इदमर्घ्यं पाद्यं च ।

आराधिताः = सेविताः, मनुष्यभावम् = मनुष्यगतिम् मृत्युमिति यावत् गते = प्राप्ते, भृत्यवदाचरति = सेवां करोति । अविमारकादर्शनेनं =

अविमारक के गुप्त हो जाने से कुन्तिभोज और सौवीरराज पर बड़ा सङ्कट आगया है, इसमें अविमारक को दिखाकर इन दोनों की आपत्ति को दूर कर दूँ ।

(कुन्तिभोज और सौवीरराज के बीच में नारद का प्राकट्य)

कुन्तिभोज—अहा भगवान् देवर्षि नारद जी आये हैं, भगवन् मैं नमस्कार करता हूँ ।

नारद—आपका कल्याण हो ।

कुन्तिभोज—मैं अनुगृहीत हुआ ।

सौवीरराज—भगवन्, मैं प्रणाम करता हूँ ।

नारद—शान्ति हो ।

सौवीरराज—मैं अनुगृहीत हुआ ।

कुन्तिभोज—(कान में) भूतिक ! ऐसा करो ।

भूतिक—जो महाराज की आज्ञा (बाहर जाकर और पैठकर) महाराज यह पाद्य और अर्घ्य है ।

कुन्तिभोजः—भगवन् ! क्रियतामनुग्रहः ।

नारदः—एवमस्तु ।

कुन्तिभोजः—(अभ्यर्च्य) भगवन् ! अस्मद्गृहं परिपूतं भवदवतरणेन ।

सौवीरराजः—इदानीं मुक्तशापोऽस्मि देवर्षिदर्शनेन ।

नारदः—नाहं साम्प्रतं युष्मद्दर्शनार्थमेवागतोऽत्र । अविमारकादर्शनेन सम्भूतं दुःखं भवतोर्ज्ञात्वावतीर्णोऽस्मि ।

उभौ—यद्येवं, विमुक्तसन्तापौ स्वः ।

नारदः—भूतिक ! सुदर्शनामानय ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान् (निष्क्रम्य सुदर्शनया सार्धं प्रविष्टः)

सुदर्शना—अब्भाअदो देवरिसी । [अभ्यागतो देवर्षिः] ।

भूतिकः—एवम् ।

गन्धर्वाङ्गुलीयकेनान्तर्धानेन, कार्यसंकटम्=करणीयकष्टम्, व्याक्षेपम्=कष्टम्, समाक्षिपामि = संहरामि = समापयामीति यावत् ।

कुन्तिभोज—भगवन् कृपा करें ।

नारद—ऐसा ही हो ।

कुन्तिभोज—(पूजा करके) भगवन् आपके आने से मेरा घर पवित्र हो गया ।

सौवीररस—आज देवर्षि के दर्शन से मैं शाप से मुक्त हो गया ।

नारद—मैं आप लोगों को केवल दर्शन देने ही नहीं आया हूँ ।

किन्तु अविमारक के अदर्शन से दूर आप लोगों के कष्ट को दूर करने भी आया हूँ ।

दोनो—यदि ऐसा है तो हम दोनों शाप रहित हो गये ।

नारद—भूतिक, सुदर्शना को ले आओ ।

भूतिक—आपकी जैसी आज्ञा ।

(जाकर पुनः सुदर्शना के साथ प्रवेश)

सुदर्शना—देवर्षि नारद पधारे हैं ।

भूतिक—हाँ ।

सुदर्शना—सणाहो दाणि मे पुत्तअस्स विवाहो संवुत्तो । (उपगम्य) भअवं वन्दामि । [सनाथ इदानीं मे पुत्रकस्य विवाहः संवृत्तः । भगवन् ! वन्दे ।]

नारदः—

एवमेव महाभागे ! नित्यं प्रीतिमवाप्नुहि ।
कुन्तिभोजश्च भूपालो नित्यं स्यात् प्रीतिपीडितः ॥ १२ ॥

सुदर्शना—अणुग्गहीदम्हि । [अनुगृहीतोऽस्मि ।]

नारदः—इदानीं पृच्छतां भवन्तौ प्रष्टव्यम् ।

उभौ –अनुगृहीतौ स्वः ।

कुन्तिभोजः—भगवन् ! किं जीवति सौवीराजपुत्रः ।

नारदः—बाढम् ।

सौवीरराजः—केन कारणेन न दृश्यते ।

अन्वयः—हे महाभागे ! एवम् एवनित्यम् प्रीतिम् अवाप्नुहि । कुन्तिभोजः भूपालश्च नित्यम् प्रीतिपीडितः स्यात् ।

व्याख्या—हे महाभागे=सौभाग्यशालिनि ! एवम् = इत्थमेव नित्यम् = सदा, प्रीतिम् = प्रसन्नताम् अवाप्नुहि = अधिगच्छः, कुन्तिभोजः भूपालः = क्षितीश्वरश्च नित्यं=सदैव, प्रीतिपीडितः=तवानुरागनियन्त्रितः स्यात् ॥१२॥

सुदर्शना—अब हमारे पुत्री का विवाह सनाथ हो गया । भगवन्, नमस्कार करती हूँ ।

नारद—हे महाभागे ! इसी प्रकार सदा तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ती रहे राज कुन्तिभोज भी सदा तुमारे प्रेम से युक्त रहें ॥ १२ ॥

सुदर्शना—मैं अनुगृहीत हुई ।

नारद—इसे जो पूछना चाहते हो तुम दीनो पूछ लो ।

दोनों—आपने बड़ा अनुग्रह किया ।

कुन्तिभोज—क्या सौवीर राजा का पुत्र अविमारक जीता है ।

नारद—अवश्य ।

सौवीरराज—फिर दीखता क्यों नहीं ।

नारदः—विवाहव्याक्षेपात् ।

सौवीरराजः—कथं निर्विष्टः कुमारः ? ।

कुन्तिभोज—कुत्र ?

नारदः—नगरे वैरन्त्ये ।

कुन्तिभोजः—वैरन्त्यं नाम नगरमप्यस्तीति । भवतु, कस्य जामातृत्वमुपगतः ।

नारदः—कुन्तिभोजस्य ।

कुन्तिभोजः—कः सः

नारदः—

पिता कुरङ्ग्या भूपालो वैरन्त्यनगरेश्वरः ।
दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजो भवान् ननु ॥ १३ ॥

Rashtriya Sanskrit Sansthan
Deemed University
Rajiv Gandhi ...
LIBRARY
ACC. NO. 15142
DATE

विवाहव्याक्षेपात् = विवाहसंलग्नत्वात्, निर्विष्टः=गृहस्थो जातः विवाहं कृतवान् , वैरन्त्यं नामनगरम् = मन्नगरादन्यदपि वैरन्त्यं नाम नगरमस्ति किम्, भवतु=नगरचर्चादूरेऽस्तु कस्य जामातृत्वमुपगतः=कस्य जामाता जातः ।

अन्वयः—कुरङ्ग्या पिता भूपालः वैरन्त्यनगराधिपः दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजः भवान् ननु ।

व्याख्या—पितेति-कुरङ्ग्याः पिता = जनकः, भूपालः = क्षितीश्वरः

नारद—विवाह में आसक्त होने के कारण ।

सौवीरराज—क्यों कुमार ने विवाह कर लिया ।

कुन्तिभोज—कहाँ विवाह किया ?

नारद—वैरन्त्य नगर में ।

कुन्तिभोज—वैरन्त्य नामक कोई दूसरा नगर भी है क्या ? नगर की बात छोड़िये किसका जामाता हुआ ?

नारद—कुन्तिभोज का ।

कुन्तिभोज—वह कौन है ?

नारद—वैरन्त्यनगर का शासक भूपाल कुरङ्गी का पिता है, दुर्योधन के पुत्र = कुन्तिभोज आप हैं ।

कुन्तिभोजः—किं बहुभिः प्रश्नैः ? मत्सुतायां कुरङ्ग्यां निर्विष्ट इत्युच्यते भगवता ।

नारदः—एवमेतत् ।

कुन्तिभोजः—लज्जित इवास्मि । केन दत्ता, कथं वा, कथं चायं प्रविष्टः कन्यापुरम् ।

नारदः—

दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे ।
पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ॥ १४ ॥

वैरन्त्यनगरेश्वरः = वैरन्त्यनगरस्वामी, दुर्योधनस्य = एतन्नाम्नः, तनयः = पुत्रः कुन्तिभोजः भवान् ननु = भवानेव नान्यः ॥ १३ ॥

निर्विष्टः = विवाहपूर्वकमागतः ।

अन्वयः—पूर्वम् विधिना दत्ता सा हस्तिसम्भ्रमे दृष्टा । पूर्वम् पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टः अधुना मायया (प्रविष्टः) ।

व्याख्या—दत्तासेति–पूर्वम् = विवाहात् प्राक्काले, विधिना = ब्रह्मणः-दत्ता = अर्पिता, सा कुरङ्गी, हस्तिसम्भ्रमे = गजोपद्रवे, अविमारकेन दृष्टा पूर्वम् = प्रथमम् पौरुषम् = पराक्रमम्, आश्रित्य प्रविष्टः = कन्यापुरमिति शेषः, अधुना = इदानीम् , मायया = विद्यारप्रक्ताङ्गुलीयस्य प्रभावेण—प्रविष्टः ।

कुन्तिभोज—अधिक क्या कहा जाय, आपके कहने का तात्पर्य है कि कन्या कुरङ्गी का विवाह अविमारक के साथ हो गया है ।

नारद—हाँ यही यथार्थ है ।

कुन्तिभोज—मैं लज्जित-सा हो रहा हूँ, उसको किसने दिया, कैसे दिया, कन्यापुर वह कैसे प्रविष्ट हुआ ।

नारद—विवाह के पहले ही विधाता ने कुरङ्गी को अविमारक को दे दिया उसके बाद हाथी के उपद्रव के समय कुमार ने उसको देखा । प्रथम बार वह कन्यापुर में पराक्रम से घुसा दूसरी बार माया से गया ।

कुन्तिभोजः—भवत्वेवं तावन्निष्प्रतिवचनमृषिवचनम्। भगवन्! इदानीं किं प्राप्तकालं कुमारस्य कुरङ्ग्याश्च। विवाहः पूर्वमारब्धव्यः?

नारदः—इदानीम् निष्ठितो विवाहो ननु गान्धर्वः स्वसमय एव।

कुन्तिभोजः—अग्निसाक्षिकमिच्छामि।

नारदः—नित्यमग्निः साक्ष्येव। तथापि स्वजनपरितोषणार्थमभ्यन्तरसमयमात्रमुपाध्यायेन कारयित्वा शीघ्रमानीयतामिह कुमारः सह भार्यया।

कुन्तिभोजः—भगवन्! एष गच्छामि:

नारदः—तिष्ठतु भवान्। भूतिक! गच्छ त्वम्।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान्। (निष्क्रान्तः।)

कुन्तिभोजः—भगवन्! विज्ञाप्यमस्ति।

नारदः—इतस्तावत्। स्वैरमभिधीयताम्।

निष्प्रतिवचनम् = निरुत्तरम्, प्राप्तकालम् = समयानुसारं करणीयम् निष्ठितः = संयातः, अग्निसाक्षिकम् = विधिपूर्वकमग्निं साक्षीकृत्य। स्वजनपरितोषणार्थम्, स्वजनानां परितोषणं तदर्थम्=आत्मीयलोकानां प्रीत्यर्थम्।

कुन्तिभोज—इस अवसर पर देवर्षि का वचन निरुत्तर है, अब कुमार और कुरङ्गी का विवाह करना है।

नारद—गान्धर्व विवाह समय पर स्वयं हो गया है।

कुन्तिभोज—विधिपूर्वक अग्नि साक्षिक करना चाहता हूँ।

नारद—अग्नि तो सदा साक्षी रहा है, तथापि आप अपने बान्धवों के सन्तोषार्थं पुरोहित द्वारा अपनी प्रथा के अनुसार करवा कर शीघ्र कुमार दम्पती को यहाँ लाइये।

कुन्तिभोज—अभी जारहा हूँ।

नारद—आप यहाँ रहें, भूतिक तुम जाओ।

भूतिक—जो आपकी आज्ञा (जाता है)।

कुन्तिभोज—भगवन्, आप से कुछ निवेदन करना है।

नारद—अब तुम स्वच्छन्द रूप से कहो।

कुन्तिभोजः—भगवन् सुदर्शनायाः पुत्राय जयवर्मणे कुरङ्गी दास्यामीति मयानीता सा पूर्वं सनाथा। किं कर्त्तव्यमिदानीम्, अभिधीयताम्।

नारदः—एवं करोमि। मुहूर्तमेकान्ते तिष्ठ।

कुन्तिभोजः—तथास्तु। (तथा करोति)।

नारदः—सुदर्शने! इतस्तावत्।

सुदर्शना—भअवं! इहम्हि। (भगवन् इयमस्मि।)

नारदः—ननु श्रुतमस्मद्वचनम्।

सुदर्शना—सुदं सोवीरराअउत्तस्स गुणसंकोत्तणं। [श्रुतं सौवीर-राजपुत्रस्य गुणसङ्कीर्तनम्।]

नारदः—मा मैवम्। भवत्या विस्मृतोऽग्निदेवादुत्पन्नोऽग्रजस्ते पुत्रः।

सुदर्शना—ह, एदं पि भअवं जाणादि। [हम्, एतदपि भगवान् जानाति।]

अभ्यन्तरसमयमात्रं = अन्तःपुरसिद्धान्तानुसारं उपाध्यायेन = पुरोहितेन, कारयित्वा = सम्पाद्य।

कुन्तिभोज—भगवन्, पहले मैंने सुदर्शन के पुत्र से कुरङ्गी का विवाह करूंगा इस विचार से पुत्र सहित सुदर्शना को यहां बुलवाया हूं अब मैं क्या करूं आप आदेश दें।

नारद—ऐसा करूंगा, थोडी देर एकान्त में वैठो।

कुन्तिभोज—जो आपकी आज्ञा (वैसा ही करता है)

नारद—सुदर्शने इधर आओ।

सुदर्शना—यह आई (आती है)।

नारद—तुमने हर बातें सुनी।

सुदर्शना—मैंने सौवीरराज पुत्र का सारा प्रशंसा वचन सुना है।

नारद—ऐसा तुम मत कहो, क्या तुमने अग्निदेव से उत्पन्न अपने जेठे पुत्र को भुला दिया है?

सुदर्शना—हूं, आप इस बात को भी जानते हैं क्या।

नारदः—ममैवमाज्ञां कुरुष्व तावत् ।

सुदर्शना—एवं करोमि । भअवं भणादु । [एवं करोमि । भगवान् भणतु ।]

नारदः—तवायं पुत्रोऽग्नेरुत्पन्नः । त्वद्भगिन्याः सुचेतनायाः प्रसव समकाल एव तत्सुतः स्वर्गं गतः । तवायं पुत्रस्त्वद्भगिन्यै त्वया दत्तः । सौवीरराजश्चासावत्यन्तसन्तुष्टः प्रीतिसदृशीः क्रियाः कृत्वा विष्णुसेन इति संज्ञामकरोत् । अमानुषस्वरूपबलवीर्यपराक्रमेणानेन वर्धमानेन यस्मादविरूपधारी मारितोऽसुरः, तस्मादविमारक इति विष्णु-

मामैवम् = सौवीरराजपुत्रोऽयं विष्णुसेन इति मा वद ? स खलु वह्नेरुत्पन्न इति तात्पर्यम् । प्रसवकाल एव = जन्मसमय एव, स्वर्गं गतः मृतः आमानुष-स्वरूप-बल-वीर्यपराक्रमेण = स्वरूपश्च बलश्च वीर्यश्च पराक्रमश्चेति तथोक्ताः अमानुषा यस्य स तेन तथोक्तेन—अलौकिककान्तिशौर्यबलपराक्रमेण, अविरूपधारी = मेषाकारवान्, अविमारको जातः = अविमारकनाम्ना जगति प्रसिद्धोऽभूत् । ब्रह्मशापपरिभ्रष्टः = चण्डभार्गवशापेन चाण्डालतां गतः । हस्तिसंभ्रमे = गजोपद्रवे समुत्पन्नाभिलाषः = समुत्पन्नः = सञ्जातः अभिलाषः = कामो यस्य तथाभूतः । कुरङ्ग्या संगम्य = तया सह समागमं कृत्वा, दर्शनशङ्कितैः = अग्निपरिवेष्ठितः कोऽयं गच्छतीति भीतैः, परीक्ष्यमाणः = परिदृश्यमानः प्रच्छादितः = पिहितः । तेन निर्वेदेम = पुनस्तत्समागमो न भविष्यतीति संपातदुःखेन मरुत्पातम् = पर्वतान्निपत्य प्राणान् हातुम् । पर्वतमारूढः = शिखरिणमारूढवान् ।

नारद—मेरी आज्ञा मानो ।

सुदर्शना—ऐसा ही करूँगी आप आदेश दें ।

नारद—अविमारक अग्निदेव से उत्पन्न तुम्हारा ही पुत्र है, तुम्हारी बहिन सुचेतना का पुत्र जन्मते ही मर गया था । तुमने अपना पुत्र उसको दे दिया था ! सौवीरराज को पुत्र प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई उन्होंने विधिवत् उस का संस्कार कर के विष्णुसेन ऐसा नाम रखा । अलौकिक रूप-बल-वीर्यशाली उस कुमार ने मेषरूपधारी किसी राक्षस को मार

सेनं लोको ब्रवीति। ततः सोऽपि ब्रह्मशापपरिभ्रष्टो हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुरङ्गीं दृष्ट्वा समुत्पन्नाभिलाषः परेण पौरुषेण सङ्गम्य कुरङ्ग्या दर्शनशङ्कितैः कन्यापुररक्षिभिः परीक्ष्यमाणोऽग्निना भगवता प्रच्छादितो निर्गतः तेन निर्वेदेनाग्निं प्रविष्टः पित्रा भगवताग्निना प्रीत्या परिष्वज्यमानो न दहत्यग्निरिति मरुत्प्रपातार्थं कञ्चित् पर्वतमारूढः।

सुदर्शना—अहो अच्चाहिदं। [अहो अत्याहितम्।]

नारदः—तत्र केनापि विद्याधरेण तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन प्रीत्यान्तर्धानकार्यमात्रमङ्गुलीयकं दत्त, यद् दक्षिणाङ्गुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थश्च।

सुदर्शना—अच्छरीअं अच्छरीअ। [आश्चर्यमाश्चर्यम्।]

तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन=केवलं तदीयरूपमवलोक्य प्रसन्नेन, अन्तर्धानकार्यमात्रम् = तिरोधानकार्यसाधकम्, अङ्गुलीयम् = अङ्गुलिपरिधेयं भूषणम्, यथेष्टम् = यावदिच्छम्, यथासुखम्, रममाणस्तया सहसुरतरतः।

डाला इस कारण लोग उसको अविमारक कहने लगे। बाद में ब्रह्मर्षि के शाप से नाति च्युत वह बालक हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के समय कुरङ्गी को देखकर उसमें आसक्त हो गया। बड़ी बहादुरी से उसने कुरङ्गी से भेंट की। कन्यापुर के रक्षक अग्नि से घिरे उसको देखकर भयभीत हो गये, अग्निदेव सुरक्षित होकर वह कन्यापुर से बाहर चला गया। कुरङ्गी के वियोग से दुःखित होकर उसने अपना प्राण त्यागना चाहा, अग्निदेव ने पुत्र स्नेह से उसको गले लगा लिया। तब उसने पहाड़ से गिर कर अपने प्राणों का त्याग करने के लिये किसी पर्वत पर चढ़ा।

सुदर्शना—बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ।

नारद—उस समय किसी विद्याधर ने उसके सुन्दर रूप मात्र को देखकर प्रसन्न होकर उसको अन्तर्धान होने का साधन एक अंगूठी दे दी। जिसको दाहिने हाथ की अगुली में पहने से अन्तर्धान हो जाय और बायें हाथ की अंगुली में पहनने से पुनः पूर्ववत् दिखाई देने लगे।

सुदर्शना—अहो आश्चर्य है, आश्चर्य है।

नारदः—ततस्तद् दक्षिणाङ्गुल्या धारयन् सन्तुष्टनामधेयेन ब्राह्मणेन सह कुन्तिभोजस्य कन्यापुरं स्वगृहवत् प्रविश्य कुरङ्ग्या यथेष्टमभिरममाणः सुखमास्ते। एष वृत्तान्तः। किमिदानीं कर्तव्यम्।

सुदर्शना—अणन्तरं अय्याए वञ्चिदाए चलदो विअ मे हिअअं, कोदूहलेण तुस्सदि। भअवं! एसु दिअसेसु कुरङ्गी जअवम्मणो भय्यत्ति पुच्छदि। अज्जप्पहुदि तस्स वन्दणीआ संवुत्ता। [अनन्तरमार्यया वञ्चितया चलतीव मे हृदयं, कौतूहलेन तुष्यति। भगवन् एषु दिवसेषु कुरङ्गी जयवर्मणो भार्येति पृच्छयते। अद्य प्रभृति तस्य वन्दनीया संवृत्ता।]

नारदः—अभिजनयुक्तमेवाभिहितं भवत्या। कथमिदानीं ज्येष्ठपत्नी कनीयसे दीयते। सुदर्शने! अभिधीतां काशिराजाय जयवर्मणः कुरङ्गी वयसाधिकेति। नन्वस्ति कुरङ्ग्याः कनीयसी सुमित्रा नाम। सा जयवर्मणो भार्या भविष्यति।

आर्यया वञ्चिततया चलतीव मे हृदयम् = ज्येष्ठभगिन्या सुचेतनया प्रतारितत्वात्, मदेवपुत्रमासाद्य तया मत्पुत्रप्रतिग्राह्या कुरङ्गी स्वपुत्रवधूकृतेति मनश्चलति। कौतूहलेन तुष्यति, अनुरागपुरःसरं तत्समागमं विचार्य

नारद—इसके बाद वह अंगूठी को अपने दाहिने हाथ में पहन कर सन्तुष्ट नामक ब्राह्मण के साथ अपने घर के समान कुन्तिभोज के कन्यापुर में प्रविष्ट हो गया, इस समय वह कुरङ्गी के साथ यथेच्छ विहार करता हुआ वहीं पर रह रहा है। यह वृत्त है, अब क्या करना चाहिये।

सुदर्शना—इस समय मैं अपनी बड़ी बहन से ठगी गयी यह विचारकर मेरा हृदय विचलित सा हो रहा है, कौतूहल से सन्तुष्ट भी हो रहा है। कुरङ्गी जयवर्मा की स्त्री मानी जाने लग गयी थी, अब वह उसकी वन्दनीया हो गयी।

नारद—यह तो तुम ने अपने कुल के समान ही कहा, बड़े की स्त्री छोटे को कैसे दी जायगी। काशीराज से कह देना कि कुरङ्गी जयवर्मा से बड़ी है कुरङ्गी की छोटी बहन से अब जयवर्मा की शादी होगी।

सुदर्शना—पडिग्गहिदं इसिवअस। [प्रतिगृहीतमृषिवचनम्।]

नारदः—गच्छ कुन्तिभोजमनुवर्तस्व।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि। [यद् भगवानाज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति वरवेषेणाविमारकः कुरङ्गी भूतिकश्च)

अविमारकः—भोः! लज्जित इवास्म्यनेन वृत्तान्तेन।

दृष्ट्वा तदानीं गजसम्भ्रमे मां
मद्विक्रमं ये परिकीर्तयन्ति।
ते किन्नु वृत्तान्तमिमं विदित्वा
चारित्रदोषं मयि पातयन्ति॥ १५॥

सन्तोषमनुभवति। अभिजनोचितम् उदात्तस्वकुलसदृशम्, ज्येष्ठस्य पत्नी कनीयसे जयवर्मणे कथं दीयताम् वयसाधिका। काशीराजाय = स्वपतये अभिधीयताम् = कथ्यताम्।

अन्वयः—तदानीम् गजसम्भ्रमे माम् दृष्ट्वा ये मद्विक्रमं परिकीर्तयन्ति ते इमम् वृत्तान्तम् विदित्वा मयि चरित्रदोषम् पातयन्ति किम् नु।

व्याख्या—दृष्ट्वेति-तदानीम् = तस्मिन् काले, गजसम्भ्रमे = हस्तिन उपद्रवे माम् दृष्ट्वा = तथाभूतं पराक्रमवन्तमवलोक्य ये = जनाः मद्विक्रमं = मम पराक्रमम्, परिकीर्तयन्ति = प्रशंसन्ति, ते = प्रशंसितारो जनाः इमम् वृत्तान्तम् मायया कन्यागृहप्रवेशम् विदित्वा ज्ञात्वा मयि = अविमारके, चरित्रदोषम् = दुश्चरित्रताम् पातयन्ति आरोपयन्ति किन्तु = किं स्वित्।

सुदर्शना—यह ऋषि वचन स्वीकृत है।

नारद—जाओ कुन्तिभोज का अनुसरण करो।

सुदर्शना—आपकी जैसी आज्ञा।

(इसके बाद वर के वेष में अविमारक और कुरङ्गी का प्रवेश)

अविमारक—मैं इस घटना से लज्जित सा हो रहा हूँ।

उस समय हाथी के उपद्रव काल में जिन्होंने मुझे देखकर मेरे पराक्रम की प्रशंसा की थी वे ही आज मेरे इस वृत्तान्त को जानकर मेरे ऊपर चारित्रिक दोष का आरोप कर रहे हैं क्या॥ १५॥

(परिक्रम्य दृष्ट्वा) अये अयं खलु भगवान नारदः य एषः,

शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धि-
वेंदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः।
स्निग्धेषु वैराण्युपपाद्य यत्ना-
न्नष्टानि कार्याणि समीकरोति ॥ १६ ॥

कुन्तिभोजः—इत इतः कुमारः । अभिवादयस्वात्मकुलदैवतं देवर्षिम् ।

अविमारकः—भगवन् ! अभिवादये ।

नारदः—स्वस्ति भवते सपत्नीकाय ।

भावः—गजोपद्रवकाले ये ममैवासन्प्रशंसकाः ।
मायामयं ते मद्‌ ं विदित्वा निन्दका अहो ॥

अन्वयः—शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धिः वेदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः स्निग्धेषु यत्नात् वैराणि उपपाद्य नष्टानि कार्याणि समीकरोति ।

व्याख्या—शापे प्रसादेषु चेति—शापे = विरुद्धानुध्याने प्रसादेषु = अभीष्टदानेषु, च=अपि सक्तबुद्धिः=संसक्तचेताः वेदेषु=वेदपाठकर्मणि, गीतेषु = गायनकर्मणि च रक्तकण्ठः = मधुरजलः, स्निग्धेषु = परस्परप्रीतिमत्सु वैराणि=विरोधान् समुत्पाद्य = जनयित्वा नष्टानि = असिद्धानि, कार्याणि = अर्थान् समीकरोति = समानतामानयति ॥ १६ ॥

(चलकर देखकर)

यह तो भगवान् नारद हैं, यह—

शाप तथा वर देने में समान भाव से समर्थ, सभी तरह के गानों में सुरीला कण्ठवाले यह नारद भगवान् परस्पर प्रेमासक्त व्यक्तियों में बल से विरोध कराकर विगड़े हुए कार्य को सुधार देते हैं ॥ १६ ॥

कुन्तिभोज—कुमार इधर आओ अपने कुल-पूज्य नारद जी का अभिवादन करो ।

अविमारक—भगवन्, अभिवादन करता हूँ ।

नारद—पत्नीयुक्त तुम्हारा कल्याण हो ।

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि । मातुल अभिवादये ।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

क्षमया जय विप्रेन्द्रान् दयया जय संश्रितान् ।
तत्त्वबुद्ध्या जयात्मानं तेजसा जय पार्थिवान् ॥ १७ ॥

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

कुन्तिभोजः—वत्स ! इत इतः पितरमभिवादयस्व ।

अविमारकः—भोस्तात ! अभिवादये ।

सौवीरराजः—एह्येहि वत्स !

विरचितवरवेषदर्शनीयो गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः ।

अन्वयः—क्षमया विप्रेन्द्रान् जय दयया संश्रितान् जय तत्त्वबुद्ध्या आत्मानम् जय तेजसा पार्थिवान् जय ॥ १७ ॥

क्षमया = मर्षणेन, नम्रतयेत्यर्थः, विप्रेन्द्रान् = ब्राह्मणान्, जय = स्ववशीकुरु, दयया = कृपया, संश्रितान् = आश्रितजनान्, जय = स्वायत्तीकुरु । तत्त्वबुद्ध्या = यथार्थज्ञानेन आत्मज्ञानेनेत्यर्थ आत्मानं जय, पार्थिवान् = नृपान् तेजसा = स्वबलेनेत्यर्थः, जय=स्ववशीकुरु ॥ १७ ॥

अन्वयः—विरचितवेषदर्शनीयः गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः वयमिव त्वमपि भवत्तनयम् समीक्षमाणः इह सहर्षबाष्पनेत्रः भव ॥ १८ ॥

व्याख्या—विरचितेति = विरचितेन=सुसाधितेन वरवेषेण=वरस्वरूपेण

अविमारक—अनुगृहीत हुआ, मामाजी को नमस्कार ।

कुन्तिभोज—आओ आओ पुत्र ।

क्षमा से ब्राह्मणों को जीतो, दया से अपने आश्रितों को जीतो, सद्विचार से आत्मा पर विजय प्राप्त करो और पराक्रम से राजाओं को जीतो ॥ १७ ॥

अविमारक—अनुगृहीत हुआ ।

कुन्तिभोज—इधर इधर-पिता का अभिवादन करो ।

अविमारक—हे पिता, आपको नमस्कार हो ।

सौवीरराज—आओ आओ वत्स —

जैसे मैं आज वरवेष से मनोहर एवं गुरुजनों का नमस्कार करते हुए

वयमिव भव हर्षवाष्पनेत्रस्त्वमिह भवत्तनयं समीक्षमाणः ॥१८॥

पुत्र ! अभिवादयस्व मातुलम् ।

अविमारकः—मातुल ! अभिवादये ।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः
सत्यैर्दृढैर्दशरथप्रतिमो भव त्वम् ।
नित्यार्पितैः पितृसमो भव सम्प्रदानैः
स्वेनात्मना सुसदृशेन पराक्रमेण ॥ १९ ॥

जामातृरूपेणेत्यर्थः, दर्शनीयः = रमणीयः, सुन्दरः, गुरुजनानाम् = माननीयानाम्—वन्दनेन = नमस्कारेण, शुभ्रम्=मनोहरं, वक्त्रम्=मुखं यस्य सः तथोक्तः, वयमिव = अस्मादृशः, इह त्वमपि भवत्तनयम् = स्वकीयपुत्रम् समीक्षमाणः = अवलोकमानः, हर्षवाष्पं नेत्रयोर्यस्य तथोक्तः = आनन्दाश्रुपूरितनेत्रो भव ।

भावः—

विरचितवरवेषो वन्दमानो वरिष्ठान् नयनयुगं मे वाष्पपूर्णं करोति । त्वमपि तनयमीदृग्वेषवैशिष्टचमेतं नयनविषयमाप्तं वीक्ष्य वाष्पाक्ष एधि ।

अन्वयः—नित्ययुक्तैः शुभैः यज्ञैः हरिसमो भव । दृढैः सत्यैः त्वम् दशरथप्रतिमो भव । नित्यार्पितैः सम्प्रदानैः पितृसमः भव । सुसदृशेन पराक्रमेण आत्मना समः भव ।

व्याख्या—यज्ञैः शुभैरिति—नित्ययुक्तैः = प्रतिदिनं विधीयमानैः शुभैः =

तुम को आनन्दश्रुपूरित नेत्रवाला हो रहा हूँ, उसी प्रकार तुम भी अपने पुत्र को देखकर प्रसन्नता को प्राप्त करो ॥ १८ ॥

पुत्र मामा को नमस्कार करो ।

अविमारक—मामाजी को नमस्कार ।

कुन्तिभोज—वत्स आओ आओ ।

तुम नित्य यज्ञों से इन्द्र के समान हो दशरथ के समान सत्य से अविचल हो अपने पिता के समान नित्य दान देने वाले हो, समुचित पराक्रम से अपने समान हो ॥ १९ ॥

सौवीरराजः—पुत्र ! सुदर्शनामभिवादयस्व ।

कुन्तिभोजः—अयुक्तमिव सुचेतनामनभिवाद्य सुदर्शनामभिवादयितुम् ।

नारदः—अस्ति कारणम् । अभिवाद्यतां सुदर्शना ।

उभौ—एवं क्रियताम् ।

अविमारकः—भवति ! अभिवादये ।

सुदर्शना—पुत्र ! चिरं जीव एदाए सह । (परिष्वज्य) चिरेण दिट्ठो सि । अज्ज मए अणुभूदो पुत्तसम्पत्तिरसो । [पुत्र ! चिरं जीवैतया सह । चिरेण दृष्टोऽसि । अद्य मयानुभूतः पुत्रसम्पत्तिरसः] (रोदिति)

शुभफलप्रदैः, यज्ञैः = यागैः, हरिसमः = इन्द्रतुल्यः, भव = एधि, दृढैः = अविचलैः, सत्यैः=सत्यवचनैः, दशरथप्रतिमः = दशरथतुल्यः, भव = भूयाः, नित्यार्पितैः = अहरहः दत्तैः, सम्प्रदानैः = त्यागैः, पितृसमः = यथा तव पिता-तादृग्दाता भव = भूयाः, सुसदृशेन = यथावत्प्रयुक्तेन, पराक्रमेण = विक्रमेण, आत्मना = स्वेन समो भव ।

सुदर्शनाम् सुचेतनामित्यत्र सुदर्शनां मातरमभिवादयस्व । स्वमातरम् = स्वजननीं–अनभिवाद्य = अनमस्कृत्य सुदर्शनाभिवादनमयुक्तम् = अनुचितम् स्वमातुरभ्यर्हितत्वात् ।

अस्तिकारणम् = सुदर्शनैव वास्तविकी माता अतो ज्येष्ठामपि सुचेतनां विहाय सुदर्शनाभिवाद्या 'नास्ति मातृसमो गुरुः' इति वचनात् ।

सौवीरराज—पुत्र ! सुदर्शना को प्रणाम करो ।

कुन्तिभोज—सुचेतना को त्याग कर सुदर्शना को प्रणाम करना उचित नहीं है ।

नारद—इसका कारण है ।

दोनो—ऐसा ही करो ।

अविमारक—भवति नमस्कार करता हूँ ।

सुदर्शना—पुत्र कुरङ्गी के साथ चिरञ्जीवी हो आज ही मैंने पुत्र का सुख प्राप्त किया है । (रोती है)

कुन्तिभोजः—

इमां तु बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीं
सम्प्रस्नवद्दुग्धपयोदयुग्माम् ।
अवेक्षितां मातरमप्रकाश्य
धात्रीत्वमेवैति सुचेतना मे ॥ २० ॥

नारदः—अलमतिस्नेहेन । प्रविशतु कन्यापुरं सुचेतना सुचेतना सुदर्शना सुदर्शना च सभार्येण पुत्रेण ।

कुन्तिभोजः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि । [यद् भगवानाज्ञापयति ।]

अन्वयः—वाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीम् संप्रस्नवद्दुग्धपयोदयुग्माम् इमाम् मातरम् अवेक्षितां अप्रकाश्य सुचेतना धात्रीत्वमेव इति मूर्त्तिरिति शेषः ।

व्याख्या—इमां त्विति-वाष्पेण = आनन्दाश्रुणा आर्द्रे=पूर्णे, कुतूहले = संकौतुके अक्षिणी यस्याः सा तथोक्ताम्, सम्प्रस्नवद्दुग्धम् = प्रेम्णा प्रस्नवद् दुग्धं प्रक्षरत्पयः यस्मात् तादृशं पयोदयुग्मम् = स्तनयुग्मं यस्याः सा ताम् तथोक्ताम् इमां दृश्यमानां, अवेक्षितां = इदानीं दृष्टिपथमागतां, मातरम् = अविमारकस्य जननीम्, अप्रकाश्य = अप्रकटय्य सुचेत्वियम् धात्रीत्वम् एव एति प्राप्नोति इति तना मे निश्चय इति शेषः ।

भावः—प्रेमप्लुतनेत्रत्वात् प्रस्नुतपयोधरतया चैव ।
सुदर्शनेयं माता त्वं धात्रीति सुचेतने सत्यम् ॥ २० ॥

सुचेतना = सुबुद्धिः, सुदर्शना = सुन्दरी, विशेषणपदार्थः इतरे नामनी । विसृज्यताम् = गन्तुमनुज्ञायताम् । सन्निहितः = विवाहे समुपस्थितः ।

कुन्तिभोज—वाष्पपूर्ण तथा कुतूहलपूर्ण नेत्रवाली एवं दुग्ध टपकाने वाले स्तनों से युक्त इस सुदर्शना को अप्रकाशित करके वस्तुतः सुचेतना धात्री का ही कार्य करनेवाली है ॥ २० ॥

नारद—विशेष स्नेह प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है सुबुद्धि सुचेतना एवं सुन्दरी सुदर्शना स्त्री युक्त पुत्र के साथ कन्यापुर में जायें ।

कुन्तिभोज—आप की जो आज्ञा ।

सुदर्शना—जो आपकी आज्ञा ।

नारदः—अचिरेण सौवीरराजो विसृज्यतां स्वदेशगमनाय। जयवर्मणे सुमित्रा प्रदीयतां काशिराज्ञे। त्वमपि सन्निहितो भव।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि।

नारदः—कुन्तिभोज! किमन्यत् ते प्रियमुपहरामि।

कुन्तिभोजः—भगवान् यदि मे प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि।

गोब्राह्मणानां हितमस्तु नित्यं
सर्वप्रजानां सुखमस्तु लोके।

नारदः—सौवीरराज! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि।

सौवीरराजः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि।

इमामुदीर्णार्णवनीलवस्त्रां
नरेश्वरो नः पृथिवीं प्रशास्तु॥ २१॥

(भरतवाक्यम्)

अन्वयः—गोब्राह्मणनां नित्यं हितम् अस्तुः लोके सर्वप्रजानां सुखम् अस्तु। इमाम् उदीर्णार्णवनीलवस्त्रं पृथ्वीं नः राजसिंहः प्रशास्तु।

व्याख्या—गोब्राह्मणानाम्, नित्यम् = सदा हितम् = कल्याणमस्तु। लोके = भुवने सर्वप्रजानाम् = सर्वेषां जनानाम्, सुखम् = आनन्दोऽस्तु — उदीर्णार्णवनीलवस्त्राम् = उद्वेल्लिताः अर्णवाः समुद्रा एव नीलं वस्त्रं

नारद—शीघ्र सौवीरराज को अपने देश में जाने की आज्ञा दो, काशीराज जयवर्मा को सुमित्रा को दो। उस काल में तुम भी रहना।

कुन्तिभोज—अनुगृहीत हुआ।

नारद—कुन्तिभोज! मैं और तुम्हारा क्या प्रिय करूँ।

कुन्तिभोज—यदि आप प्रसन्न हैं तो इससे दूसरा हमको क्या चाहिये। गौओं और ब्राह्मणों का कल्याण हो सभी प्रजाओं को सुख हो गया।

नारद—सौवीरराज! तुम्हारा कौन प्रिय करूँ।

सौवीरराज—यदि आप सन्त हैं तो इससे बढ़कर दूसरा मेरा का प्रिय हो सकता है हमारे नराधिप इस सारी नील समुद्रवसना भूमि का पालन करें॥ २१॥

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २२ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

षष्ठोऽङ्कः।

यस्याः सा तथोक्ताम्, चतुःसागरवेष्टितामित्यर्थः, इमाम् पृथ्वीम् = धरित्रीम्, नः = अस्माकम्, नरेश्वरः = राजा, प्रशास्तु = पालयतु ।

अन्वयः— गावः अरजसः भवन्तु, परचक्रम् प्रशाम्यतु, नः राजसिंहः, इमाम् कृत्स्नां महीम् प्रशास्तु ॥ २२ ॥

व्याख्या—अरजस इति—गावः = इन्द्रियाणि, अरजसः = निरस्तरजसः सत्त्वगुणयुक्ता भवन्तु = सन्तु—परचक्रम् = शत्रुसमूहः, प्रशाम्यतु = वैर-रहितः भवतु, नः=अस्माकम्, राजसिंहः = नरेश्वरः इमाम् = पुरो दृश्यमानां, कृत्स्नां = समग्रां, भुवम् = पृथ्वीं प्रशास्तु = पालयतु ।

इति महाकविभासकृते अविमारके रायोपाह्वेन सांकृत्यायनेन डाक्टरगङ्गा-सागरशर्मणा कृता गङ्गाभिधा टीका संपूर्णा ।

इति षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

हमारी इन्द्रियाँ रजोगुण रहित सात्विक हो, शत्रुमण्डल शान्त हो। राजसिंह समस्त भूतल का पालन करें ॥ २२ ॥

इति षष्ठोऽङ्कः ।

परिशिष्टम्-१

सूक्तिग्रन्थेषु निर्दिष्टानि भासपद्यानि

सदुक्तिकर्णामृते

दग्धे मनोभवतरौ बालाकुचकुम्भसंभृतैरमृतैः ।
त्रिवलीकृतालवाला जाता रोमावली वल्ली ॥

विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशांपति-
र्गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः ।
अभिनववधूरोषस्वादुः करीषतनूनपा-
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः ॥

प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् ।
उन्मादस्मितरोमलज्जितरसैर्गौर्या कथञ्चिच्चिराद्-
बद्धः स्त्रीवचनात्प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥

शार्ङ्गधरपद्धतौ

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं
ग्राह्यः स्वभावललितो विकटश्च वेषः ।
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः ॥

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः
शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवा कृतज्ञः ।
तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥

कपोले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी सङ्कलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा ।
आपाण्डुरक्षामकपोलभित्तावनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ॥
दयिताबाहुपाशस्य कुतोऽयमपरो विधिः ।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ॥

सुभाषितावल्याम्

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः ।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने
हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ॥
कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुखप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि ।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे ।
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे रतम् ॥
कृतकक्रुतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं नेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥
दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ।
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ॥

सूक्तिमुक्तावल्याम्

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
तदपि सकलं चारुस्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ।

परिशिष्टम्—२

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१ नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।।

जिसमें देवताओं, द्विजों, राजादि की अशीर्वचन युक्त स्तुति हो वह नान्दी होती है। यह बारह या आठ पदों की होती है और मङ्गलवाची शङ्ख, चक्र, पद्म का उल्लेख होता है।

२ प्रस्तावना—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ।।

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है और उसी की प्रस्तावना भी संज्ञा है।

३ सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढ़ः सूत्रधार इवोदितः ।।

तथा—

नाटयस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ।।

नाट्योपकरण—वस्तु, नेता तथा रस ये सूत्र कहे जाते हैं उस नाट्योपकरण को धारण करनेवाले को सूत्रधार कहते हैं। दूसरे लक्षणानुसार नेता अथवा कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा पिरोनेवाला रङ्गप्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

४ प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है ।

५ नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह को नेपथ्य कहा जाता है ।

६ विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो आदावङ्कस्य दर्शितः ।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

नाटक में हो गयी या होने वाली घटनाओं का यह सूचक होता है । यह नाटक के कथांश को संक्षिप्त करने के लिये प्रयुक्त होता है । यदि इसमें मध्यम कोटि के पात्र हों तो यह शुद्ध विष्कम्भक होता है और यदि इसमें मध्यम और नीच कोटि के पात्र प्रयुक्त हो तो संकीर्ण कहा जाता है ।

७. प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र होते हैं और भाषा प्राकृत होती है । यह दो अङ्कों के बीच में प्रयुक्त होता है और अन्य विशेषतायें विष्कम्भक की ही होती है ।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की वस्तु नहीं होतीं उसे स्वगत कहते हैं ।

९. प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ।

जो सभी के सुनने के लिये होता है उसे प्रकाश कहते हैं ।

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि के द्वारा जो हास्य उत्पन्न करने वाला, कलह प्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता हो उसे विदूषक कहते हैं। उसके नाम कुसुम, वसन्त आदि होते हैं।

११. नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोगों का रञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञा-कला-मान से युक्त, शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्र दृष्टि वाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारण के भेद से तीन प्रकार की होती है। यथासंभव वह नायक के गुणों से युक्त होती है।

१३. अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

१४. प्रकरण—

भवेत् प्रकरणं वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥

प्रकरण का कथानक लौकिक एवं कविकल्पनाप्रसूत होता है। इसका प्रधान रस शृङ्गार होता है और नायक विप्र, अमात्य या वणिक् होता है।

परिशिष्टम्–३

अविमारके छन्दांसि लक्षणानि च

१. **अनुष्टुप्**—पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरुं विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ।।

तथा—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।

अनुष्टुप् में ८–८ अक्षरों के चार चरण होते हैं जिसमें प्रत्येक चरण का पाँचवा अक्षर लघु तथा छठाँ गुरु होता है। दूसरे तथा चौथे का सातवाँ अक्षर लघु तथा प्रथम एवं तृतीय का गुरु होता है।

२. **उपजाति**—यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के सम्मिश्रण से बनती है। इन दोनों छन्दों के चरण में ११–११ अक्षर होते हैं। दोनों के लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) **इन्द्रवज्रा**—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

जिस छन्द में दो तगण एक जगण एवं दो गुरु वर्ण हों वह इन्द्रवज्रा है।

(२) **उपेन्द्रवज्रा**—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

उपेन्द्रवज्रा में एक जगण, एक तगण, एक जगण, दो गुरु होते हैं।

(३) **पुष्पिताग्रा**—

अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

इसमें विषम चरणों में २ नगण, १ रगण, १ यगण तथा १२ वर्ण हो एवं समपाद में १ नगण, एक जगण, १ रगण, १ गुरु तथा १३ वर्ण हों वह पुष्पिताग्रा वृत्त होता है।

(४) **मालिनी**—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

इसमें प्रत्येक चरण में १५–१५ वर्ण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में २ नगण, १ मगण, २ यगण होते हैं। इसमें ८,७ पर यति होती है।

(५) **वंशस्थ**—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।

इसके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण होते हैं तथा १ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण होते हैं।

(६) **वसन्ततिलका**—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

इसके प्रत्येक चरण में १४–१४ वर्ण तथा १ तगण, १ भगण, २ जगण एवं २ गुरु होते हैं।

(७) शार्दूलविक्रीडित—

सूर्याश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

इस छन्द में प्रत्येक चरण में १९–१९ वर्ण होते हैं तथा १ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण तथा १ गुरु होते हैं । १२ और ७ पर यति होती है । उदा० २।११

(८) शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी भोगिलोकैः ।

इसमें प्रत्येक चरण में ११–११ वर्ण तथा १ मगण, २ तगण तथा २ गुरु होते हैं एवं ४ तथा ७ वर्णों पर यति होती है । उदा० १।८

(९) शिखरिणी—रसैरीशैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

प्रत्येक चरण में १७–१७ वर्ण हैं तथा १ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं तथा ६ एवं १२ वर्णों पर यति होती है ।

(१०) स्रग्धरा—

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

इसमें प्रत्येक चरण में २१–२१ वर्ण होते हैं तथा १ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण हो तथा तीन वार सातवें वर्ण पर यति होती है । उदा० १।१

(११) दण्डक—

यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः ।

प्रत्येक चरणों वर्णों की संख्या समान परन्तु २६ से अधिक, प्रारम्भ में दो नगण होते हैं । उदा० ५।६

(१२) प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

प्रत्येक चरण में १३–१३ वर्ण तथा १ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण एवं १ गुरु होते हैं । ३ और १० वर्णों पर यति होती है । उदा० १।८

(१३) पृथ्वी—जसौ जसजला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी ।

प्रत्येक चरण में १७–१७ वर्ण होते हैं तथा १ जगण. १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं । ८, ९ वर्णों पर यति होती है । उदा० २।६

(१४) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

प्रत्येक चरण में ११–११ वर्ण एवं १ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु होते हैं । पादान्त में यति होती है । उदा० २।९

परिशिष्टम्—४

अविमारकान्तर्गतानि सुभाषितानि

१. कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् । १।२

२. विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्या भवन्ति । १।२—३

३. जामातृसंपत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥ १।३

३. निष्परिहारा व्यापदः । १।५—६

४. अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः ॥ १।५—६

५. कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् । १।५—६

६. सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्त्तव्यम् । १।९—१०

७. न भृत्यदूषणीया राजानः । १।९—१०

८. अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानाम् । १।११—१२

९. अहो महद्भारो राज्यं नाम । १।११—१२

१०. मनस्तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते
प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते ।
चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा । २।४

११. कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः । २।७—८

१२. अथवा हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति । १।९—१०

१३. सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम् । १।९—१०

१४. एकः परगृहं गच्छेत् द्वितीयेन तु मन्त्रयेत् ।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः ।। २।१०

१५. प्रियनिवेद्यानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति । ३।१

१६. भोः कष्टं तारुण्यं नाम । कुतः

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं, बुद्धि शुभां सुविदुषामवशीकरोति ।।३।१

१७. के रक्षन्ति रक्षितात्मानम् । ३।१०–११

१८. यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिद्ध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ।। ३।१२

१९. अट्टालकप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्नाः भवन्ति । ३।१३–१४

२०. तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति । ३।१५

२१. स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति । ४।१

२२. न तथा रत्नमादाय सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकांक्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ।। ४।१४

२३. को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम् । ४।२१–२२

२४. कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् । ४।१–२

२५. प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ।। ४।५

२६. न हि घृतवचनेन पित्तं नश्यति । ४।५–६

श्लोकानुक्रमणिका

	सर्ग	श्लो.
अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैर्	४	४
अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीम्	२	१
अनुपमबलवीर्यरूपवन्तम्	६	४
अबहुपुरुषपक्षपेत्यशौर्यं	३	११
असितजलदवृन्दैर्मिश्रसन्दिग्धशृङ्गो	४	९
अहं द्विनेत्रो न सहस्रनेत्रो	३	१८
आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां	३	१०
इमां तु वाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीं	६	२०
इष्टं चेदेकचित्तानां	४	७
इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसभाः	१	२
उच्चं हर्म्यं सन्निरुद्धाश्च जालास्	३	५
उत्क्षिप्तं सानुकम्पं सलिलनिधिजलाद्	१	१
उरः स्तनटटालसं जघनभारखिन्ना तनुः	२	६
उष्णं श्वसिति तन्वङ्गी	५	३
एकः परगृहं गच्छेदं	२	१०
एतन्नरेन्द्रभवनं निशि जातशङ्को	४	२२

	सर्ग	श्लो.
एवमेव महाभागे	६	१२
कन्यापुरात् कथमपीह विनिर्गतं मे	४	१
कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषाद्	३	२५
कामाहतः कुमतिभिः सचिवैर्गृहीतः	१	११
किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकालदृष्टो	६	१
किमत्र चित्रं विततः पयोदाः	४	६
क्षमया जय विप्रेन्द्रान्	६	१७
गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे	६	१०
गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया	३	३
गो ब्राह्मणानां हितमस्तु नित्यम्	६	२१
गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः	४	२१
चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव बुद्धिर्	६	२
छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथंश्चित्	१	६
जलदगहनमुज्झतीववेगाद्	४	१२
जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूप	५	६
जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी	४	२०

	सर्ग	श्लो
जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा	१	३
तस्या भयाकुलितदृष्टिविषं-मनोज्ञं	२	७
तानस्तु मन्दो विशद प्रयुक्तो	३	६
तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः	३	४
दग्धाः स्फुलिङ्गनिकरैर्निपतन्ति वृक्षाः	४	८
दत्ता या विधिना पूर्वं	६	१४
दिव्यं स्वभावं समुपागतोऽस्मि	४	१६
दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः	३	६
दृष्टिर्न तृप्यति परिष्वजतीव-साङ्गं	३	१७
दृष्टिस्तदा प्रभृति नेच्छति रूपमन्यद्	२	२
दृष्ट्वा तदानीं गजसंभ्रमे मां	६	१५
दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं	१	७
धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवपतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया	१	१२
नगरपरिचितोऽहं रक्षिणोज्ञातसारात्	३	२
न तत्र कर्त्तव्यमिहास्ति लोके	१	६
न तथा रत्नमासाद्य	४	१४
न तेन बुद्धिर्मम दूषणीया	५	५
न त्वं प्रिये मम नवासि मनोऽभियोगात्	३	१६
न दृश्यते तत्र भवान् सपुत्रः	१	१०
न भाषसे वृत्तमुपैषि रोषं	६	५
निर्व्याजं परिचयवृद्धरागां	४	३
नेत्रे वाष्पपरिप्लुते करधृतौ व्यावल्गमानौ स्तनौ	३	२०
पिता कुरङ्ग्या भूपालो	६	१३
पुरे गृहे वापि पुरा सुखोषितैर्	४	२३
पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता	२	१२
प्रच्छन्न रूपस्त्वशनिः कथञ्चित्	४	१५
प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं	२	३
प्रतिसिद्धं प्रयत्नेन	२	४
प्रपदशनिना यथा गिरीन्द्रो	६	६
प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं	१	५
प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमितास्नातं पुनर्मानसे	४	१०
बहुत्वाद् दूरसंस्थोऽपि	१	४
वाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठं	३	७
ब्रह्मर्षिणा प्ररुष्टेन	६	२२
भवन्त्वरजसो गावः	६	२२
मितगुणमिह कुन्तिभोजसैन्यः	२	११
यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः	६	१६
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः	३	१२

	सर्ग	श्लो.
यदि च विभवरूपज्ञान-सत्त्वादयः स्युर्	२	५
यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं	६	६
तावत् प्रच्छन्नरूपेण	६	८
संचरन्ति गगने वनिता-सहायाः	४	१३
यो मे पुत्रगतः शोको	६	३
रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं	३	१
रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा	५	१
लिम्पन्ति रूक्षा वनाः सिक-ताग्निचूर्णैः	४	५
वातोद्धूताग्रकेशः सलिलधर-दरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः	४	१६
विद्यावशानां तु भवद्विधा-नाम्	४	१७
विपुलमपि मितोपमं विभा-गाद्	३	१३
विरचितवरवेषदर्शनीयो	६	१८
वेदैः पितामहमह परि-तोषयामि	६	११
व्यामृष्य सूर्यतिलको वित-तोडुमालो	२	१३
व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रिता-वतंसो	१	८
व्योमार्णवोर्मिसदृशा निन-दन्ति मेघाः	५	७
शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धिर्	६	१६
शैलेन्द्राः कलभोपमाः जल-धयः क्रीडातटाकोपमाः	४	११
श्रुत्वा तु राज्ञो गृहसंविधानं	२	८
सख्यं मम प्रति निवेदयं मामिमां च	४	१८
सतत परिचितो मनोभि-योगाद्	५	४
संपीड्यते परिजनेन शनैर्व-देति	३	८
सव्ये करे समुपवेश्य मुखं सुदीनं	५	२
हंसाः स्वपन्ति मणिरत्न-शिलातलेषु	३	१६
ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्	४	२

डॉ० गङ्गासागर राय की कृतियाँ

मौलिक ग्रन्थ

१—महाकवि भवभूति (स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, म० म० मिराशी, पं० बलदेव उपाध्याय आदि विद्वानों द्वारा प्रशंसित तथा तदुत्तर (१९६५) एतद्विषयक समस्त अनुसंधान ग्रन्थों द्वारा उपयुक्त)

२—वैदिक आस्थान, ३—पौराणिक आस्थान, ४—Vedic Śākhās (Under print), ५—अलंकारपीयूष ।

हिन्दी अनुवाद

१—काव्यमीमांसा (संप्रति तृतीय संस्करण)

२—बाल रामायण (डा० रामकरण शर्मा, पं० बलदेव उपाध्याय, पं० बदरीनाथ शुक्ल, डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी इत्यादि से प्रशंसित तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत ।)

३—शांख्यायनब्राह्मण—(डा० दाण्डेकर, पं० पट्टाभिराम शास्त्री आदि द्वारा प्रशंसित)

४—वामनपुराण (अन्यों के साथ)

संस्कृत टीका एवं हिन्दी टीका सहित

१—चन्द्रालोक, २—नीतिशतक (अंग्रेजी अनुवाद भी), ३—अविमारक (भासकृत), ४—अभिषेक (भासकृत), ५—बालचरित (भासकृत), ६—हरविजय (प्रथम सर्ग), ७—वेणीसंहार ८—मुद्राराक्षस, ९—पंचतंत्र (अपरीक्षितकारक), १०—रघुवंश त्रयोदश–चतुर्दश सर्ग, ११—कर्पूरमंजरी, १२—बाल भारत

अंग्रेजी अनुवाद

१—कूर्म पुराण (संयुक्त रूप से)

संपादन

१—बालरामायण

२—मानस खण्ड स्कन्द पुराण

Editor of journals

Editor : 1. Vidya mandir Patrika, Fort Ramnagar

Associate Editor 1. Purāṇam

2. Dhrupad Annual

Asstt Editor 1. Hindutva (Discountinued)

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२८८

महाकविभासप्रणीतं

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्

('गङ्गा' संस्कृतटीका-हिन्दी अनुवाद-भूमिका-
परिशिष्टादि-समन्वितम्)

टीकाकार : सम्पादकश्च

डा० गङ्गासागर रायः

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक
पोस्ट बाक्स नं० ११३९
के. ३७/११६, गोपालमन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी–२२१००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : श्रीजय मुद्रणालय, वाराणसी
संस्करण : प्रथम वि० संवत् २०५१
मूल्य : रु० २५-००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रंथ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल पाठ एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ३३३४४५

प्रधान शाखा
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ३२०४१४

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
288

PRATIJÑAYAUGANDHARĀYAṆAM

OF

BHĀSA

(With Sanskrit Commentary, Hindi Translation, Introduction, Appendices etc.)

Edited and Commented
By

Dr. GANGĀ SĀGAR RAI
M. A., Ph. D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI–221 001

© Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi

Phone : 333445

First Edition : 1994

Branch Office—
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
Chowk (Opposite Chitra Cinema)
VARANASI–221001
Phone : 320414

वक्तव्य

भास नाटक चक्र के नाटकों के टीकाक्रम में यौगन्धरायण का यह संस्करण पाठकों के सामने उपन्यस्त है। भास के नाटक अपनी सरलता, सहजता, नाटकीयता और काव्यगुण प्रकर्ष के कारण शताब्दियों से सामाजिकों और काव्यरसपिपासुओं का हृदयावर्जन करते आ रहे हैं और उनका यह गुण अद्यावधि अक्षुण्ण बना हुआ है अतः इनका पुनः पुनः प्रकाशन और प्रचार होता रहा है। इस टीका में पं० हीरामणि मिश्र ने हमारी सहायता की है। प्रूफ संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा का सहयोग भी पूर्ववत् प्राप्त हुआ है। भूमिका लेखन में चि० संजय कुमार राय ने हमारी सहायता की है। एतदर्थ इन सज्जनों का उपकार भार ख्यापित करता हूँ। चौखम्बा संस्कृत संस्थान के स्वामी श्री मोहन दास जी गुप्त तथा उनके चिरञ्जीवि राजेन्द्र जी ने बड़े उत्साह और अध्यवसाय से ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। मेरे मित्र प्रो० देवेन्द्र कुमार राय का स्नेह आगन्तुक विपत्तियों के परिहार में सदैव सुलभ रहता है। एतदर्थ उनका भी आभार ज्ञापित करता हूँ। इत्यलम्।

काशी

गुरुपूर्णिमा २०५१ — गंगासागर राय

२२।७।९४

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन है। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक लहराई है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व का चरम परिपाक होता है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार; सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों एवं विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत-साहित्व के नाट्य-जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियाँ

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास मणि के समान नाट्य-जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा हुआ एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूपके बारे में लोगों को जानकारी नहीं थीं। सबसे पहले १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य में तञ्जौर पुस्तकालय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं। उसको उन्होंने प्रकाश में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था।

इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाट्य-साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे। महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यशवाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्त्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः'।

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभापण्डित बाणभट्ट नें हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले, तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षचरित।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता हैं।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि-परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्यपति राज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलन मित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार

है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैलाकर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्राप्त किया है ।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारिअन्दे अ आणन्दो ॥

—गउडवहो ।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास की कविताकामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

—प्रसन्नराघव १.२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में भास के काव्यगुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

दण्डी—अवन्तिसुन्दरी ।

(७) नाट्यदर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है ।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः..... ....।"

(८) शारदातनय (१२ वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है ।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः ।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनवभारती में किया है।

क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

—नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोशटीकासर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराजविजय' टीका में भास के विष्णुधर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का 'विष्णुधर्म' नाटक अभी अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के गाल में समाविष्ट होती हुई केवल सूक्ति मात्र ही रह गई और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये।

भास का जीवनवृत्त

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करनेवाले महाकवि भास का जीवन-वृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्मकथा लिखने की परम्परा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान बताया है। महाकवि भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पतिचरणानुगामिनी पत्नी के पति एवं सन्तानप्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—'धर्मो रक्षति रक्षितः'।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति।।

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

'चकारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः' ।

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः गलन्ति ॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्य्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्का राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—

हमारे राजा ससागरा उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्णकुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्षस्थानीय हैं। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करनेवाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये? जबकि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुलपरम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरंजक इन नाटकों का क्या? सुमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त हैं'। विद्वानों ने नाटकों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा साम्राज्य-विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था, फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर

मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने देवनागरी लिपि में उद्धृत सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग विदेशी आक्रमणकारियों को दिया। जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल के गाल में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो हस्त-लेखों की खोज की है वह देवनागरीलिपि में नहीं हैं। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ नहीं थीं।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा उरुभङ्ग के हस्तलेख मिले, इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पर लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ अभिषेक तथा प्रतिमानाटक कीं हस्तप्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त कीं कोई पूर्ण प्रति नहीं प्राप्त हो सकी। यह भीं संभव हो सकता है कि यह कर्णभारम् का अग्रिम अंश हो।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनूस्क्रिप्टस् लाइब्रेरी, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्न-

वासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्नलिखित हैं—

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (२) अविमारक (३) स्वप्नवासवदत्त
(४) प्रतिमा नाटक (५) मध्यमव्यायोग (६) पञ्चरात्र
(७) अभिषेक (८) दूतवाक्य (९) दूतघटोत्कच
(१०) कर्णभार (११) उरुभङ्ग (१२) बालचरित
(१३) चारुदत्त

गोण्डलनिवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया। बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करनेवाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रामाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एक कर्तृत्व

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रतिपाद्य भास के १३ नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पाई जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगलपाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः–उदयनवन्दुमवर्णां·····’
—स्वप्नवासवदत्त ।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो ···· ····प्रतिज्ञायौ० । इत्यादि ।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में ‘प्रस्तावना’ के स्थान पर ‘स्थापना’ शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध मे जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारीं प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत-वाक्य में राजसिंह राजा के एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गई है जिसका शासन हिमालय से विन्ध्य एवं पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक है।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥
—स्वप्न० ६-१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य ।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाटय साहित्य परम्परा में नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नामसाम्य पाया जाता है।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभासित वाक्यों (पाठों) का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाटय में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाटय निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाटयनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ हीं निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताकास्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन राजा उपयुक्त होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' वन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता हैं कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ हैं। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर है।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों को खण्डित किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्रनामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पाई जातो है। जैसे—अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। वालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के वीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पाई जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वरतन्त्री का साधक वताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"

—अविमारक ४।२

(ख) 'तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि'।

—वाल० १।३

(२४) मृत्यु के वाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यश रूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई। 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते' (पञ्चरात्र १, २५)

'हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते' (कर्ण० १७)

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

इन नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटक के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करनेवाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० बी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे, ये सभी नाटकों को भासकृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज, डा० बार्नेट ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भासकृत नहीं मानते।

तृतीय वर्ग—डा० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल के रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(क) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल में प्राप्त होना।

(ख) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(ग) रीति ग्रन्थों में जो 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(घ) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि स्वप्नवासवदत्ता एवं प्रतिज्ञा नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इस आधार पर चाक्यारों की प्रामाणिकतो सिद्ध होती है।

चाक्यारों के रचना की अप्रामाणिकता

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजनशक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो

गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्वन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(क) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल भी उसके अभाव का कारण हो सकता हैं। इसके साथ ही यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ख) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ ही यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(ग) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्वन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हों एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्वन्ध' शव्द का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

पल्लव द्वितीय नरसिंह वर्मन् या तेन मारन के किसी सभापण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि रखा था अतः "राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्वन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शव्द हैं जो दक्षिण में या दाक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राजसभाओं में रहता तो अपनी कृतियों में अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताव्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, आदि,

औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन्, आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई। भास के नाटकों की प्रामाणिकता के सम्वन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटकों की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में साक्ष्य लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

अग्नि-परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को विलकुल अप्रामाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक चाक्यार, पल्लवनरेश का सभापण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रामाणिक स्वीकारकरता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भासरचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भासरचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भासकृत नहीं है।

विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय

संस्कृत साहित्य के नाटच जगत् को आलोकित करनेवाले महाकवि भास के समय-निर्धारण में विद्वानों में मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय के सम्वन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की

दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शती में मानने वाले विद्वान् भासनाटकचक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तःसाक्ष्य एवं वहिःसाक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ईस्वी सन् चतुर्थ शतक के बीच का स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में ही प्राप्त हुए हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मतों की अप्रामाणिकता

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हो तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था, इसलिए भास के नाटक-चक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमानाटक में अभिषेक-संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गई है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख

हैं—अवन्ती, वत्स, काशी मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, वंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने जो लङ्का दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है। भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र, मलय, चित्रकूट, मेरु, मन्दिर, क्रौञ्च, कैलास आदि का वर्णन किया है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक-कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

भास की शैली

महाकवि भास के नाटकों की शैली संस्कृत नाटचजगत् में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। भास ने अपनी शैली के माध्यम से 'गागर में सागर, भरने वाली उक्ति चरितार्थ की है। इनकी छोटी से छोटी उक्तियों में भावगाम्भीर्य एवं रसपेशल भावों की व्यञ्जना अपना विशेष महत्त्व रखती है।

इनके लम्बे एवं क्लिष्ट पद काव्य की दृष्टि से भले ही उपयोगी हों परन्तु इनके सरल एवं छोटे पदों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। भास के नाटक में प्रयुक्त भाषा एवं शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय संस्कृत लोकव्यवहार की भाषा रही होगी।

भास के नाटकों में आलङ्कारिक शैली का नितान्त अभाव है, भास ने अपने

---

१. ए० एम० पी० अय्यरकृत 'भास' पृ० ७, यही मत डा० पुसालकर का भी है।

नाटकों में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा जैसे सरस और सरल अलङ्कारों का प्रयोग किया है। भास के नाटकों के पात्रों की भाषा एवं शैली इतनी प्रभावात्मक तथा अर्थगाम्भीर्य से युक्त है कि सहज ही दर्शकों के हृदय (मन) को अपनी ओर खींच लेती है। संक्षिप्त शब्दों के द्वारा ही भास ने भावों की अभिव्यक्ति अच्छे ढंग से की है। जैन—'अनुक्त्वैव वनं गताः। —प्रतिमा २।९६

इस प्रकार की संक्षिप्त शैली के द्वारा भास ने राम-लक्षण सीता के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति की है। भास के नाटकों में प्रभावशाली शैली के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—प्रतिज्ञा नाटक में महासेन अपनी पत्नी अङ्गारवती से वासवदत्ता के वर के सम्वन्ध में वातचीत कर रहा है। उसी समय कञ्चुकी आकर उदयन का नाम लेता है।

इसी प्रकार अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह सूचित करता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम-लक्ष्मण का वध हो गया, अव तुम्हें कौन मुक्त करायेगा? उसी समय एक राक्षस आकर कहता है कि 'राम'। इस प्रकार की उक्तियों के प्रयोग द्वारा लेखक दर्शक एवं पाठक के हृदय में आलोडन पैदा कर देता है।

भास की शैली प्रसादगुण युक्त है, परन्तु वीररस के वर्णन में यह ओज का भी प्रदर्शन करती है। भास शृङ्गार एवं वीररस की व्यञ्जना में सफल हैं। जैसे—

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः॥

—स्वप्न० ४।१।

उस समय उज्जयिनी में जाने पर और अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता की इच्छा के अनुसार देखकर मेरे अनिर्वचनीय अवस्था में पड़ने पर कामदेव ने अपने पाँचों बाणों से मेरे ऊपर प्रहार किया। आज भी उन बाणों से मेरा चित्त बिद्ध

ही है। फिर भी (पद्मावती से विवाह होने पर मैं) विद्ध हो गया हूँ। कामदेव पाँच बाणों से ही युक्त है तो फिर उसने छठाँ बाण कहाँ से मारा है ?

चलविलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षी,
भ्रमरमुखविदष्टां किञ्चिदुत्कृष्य मालाम् ।
असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी,
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः ॥

—उरुभंग २६।

जिनका मुकुट चंचल और कम्पित हो रहा हो, जिनके नेत्र क्रोध के कारण लाल और विशाल हो गये हैं भ्रमरों के द्वारा जिसका रस चूस लिया गया है ऐसी माला को कुछ खींच कर और शरीर पर लटकते हुए नीले और ढ़ीले वस्त्र को सम्भालते हुए वलदेव जी ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे कि परिवेष (मण्डल) से युक्त चन्द्रमा पृथ्वी पर अवतीर्ण हो गया हो।

नाटक का संक्षिप्त कथानक—

महाकवि भास के द्वारा विरचित प्रतिज्ञायौगन्धरायण एक उत्कृष्ट नाटक है। यह चार अङ्कों में विभक्त है। इसमें वत्सदेशीय नरेश राजा उदयन को प्रद्योत के द्वारा बन्दी बनाया जाना तथा यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा तथा कुशल नीति-व्यवहारों के द्वारा वत्सनरेश उदयन के मुक्त होने एवं साथ में प्रद्योत पुत्री वासबदत्ता के अपहरण की घटना का वर्णन है।

प्रथम अङ्क

नान्दी के बाद सूत्रधार तथा नटी रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं। नटी सूत्रधार से कहती है कि रात में मैंने बुरे स्वप्न देखें हैं इसलिए कुशल जानने के लिए मेरे मायके (पितृगृह) किसी को भेज दो। सूत्रधार कहता है कि यौगन्धरायण की भांति इस पुरुष को मैं भेज रहा हूँ। इसके बाद वत्सराज उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण सालक के साथ मञ्च पर उपस्थित होता है। वह सालक से बात चीत करते हुए कहता है वत्सराज उदयन वेणुवन के समीप गहन वन के बीच नागवन को कल चले जायेगें। यौगन्धरायण वत्सराज उदयन

के जाने से पूर्व ही सालक को पत्र एवं रक्षासूत्र के साथ वत्सराज उदयन के पास भेजना चाहता है। इसी समय विजया उपस्थित होती है। यौगन्धरायण विजया से कहता है कि लेख (पत्र) और रक्षासूत्र जल्दी से लाओ। यौगन्धरायण सालक से मार्ग के सम्बन्ध में बात करने लगता है तथा वह कहता है कि हमने सुना है कि वत्सराज उदयन को प्रद्योत कपटपूर्वक छलना चाहता है तथा वह आश्चर्य व्यक्त करता है कि प्रद्योत से इतनीबड़ी होने पर भी सेना वत्सराज से भयभीत है।

उसी समय निर्मुण्डक आकर यह सूचना देता है कि उदयन के साथ रहने वाला अंगरक्षक हंसक आया है। हंसक के अकेले आने की सूचना पाकर यौगन्धरायण घबड़ाता है और कहता है मेरी बुद्धि इस समय शङ्कित हो रही है कि मुझे प्रिय या अप्रिय क्या सुनना पड़ेगा। हंसक आकर यौगन्धरायण से बताता है कल सुबह ही स्वामी (उदयन) नागवन को चले गये तथा वहां बन्दी बना लिये गये। यौगन्धरायण हंसक से पूछता है कि स्वामी किस प्रकार पकड़े गये? बुद्धिमान् रुमण्वान् और घुड़सवार सैनिक कहां थे? क्या संपूर्ण सेना शत्रुओं के द्वारा वशीभूत कर ली गयी या दुर्गम कानन में तितर-बितर हो गयी, या शत्रुओं के वेग को न सह सकने के कारण ध्वस्त हो गयी ? हंसक बताता है कि यदि सम्पूर्ण सेना के साथ स्वामी रहते तो यह घटना नहीं होती। वह बताता है कि स्वामी थोड़ी रात शेष रहने पर थोड़ी सी सेना के साथ नागवन को गये। जितनी दूर बाण फेंकने पर जा सकता है उतने ऊँचे सूर्य के चढ़ जाने पर मदगन्धीर पर्वत एक कोस रह गया तो हाथियों का भयङ्कर समूह दिखाई दिया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सरोवर के पंक से निकला हुआ तथा उस पर मैनसिल का आधा काम किया हो। जब सेना ध्यानपूर्वक देख रही थी उसी समय इस अनर्थ को करने वाला कोई पैदल व्यक्ति स्वामी के पास आया। तब स्वामी ने सौ स्वर्ण मुद्रा देकर उस क्रूर की पूजा की और कहा कि गजलक्षण शास्त्र में इस प्रकार के नीले रंग के श्रेष्ठ हाथी का वर्णन पढ़ा है। अतः आप इस गज समूह के लिए सावधान हों। मैं उस हाथी को अपनी वीणा की सहायता से पकड़ूंगा। हंसक यौगन्धरायण से बताता है कि रुमण्वान् ने स्वामी को रोकते हुए कहा कि आपको ऐरावत ऐसे दिग्गजों को पकड़ना असम्भव

नहीं। परन्तु दूसरे देश में रक्षा कठिनाई से होती है। सीमा प्रान्त के रहने वाले दुष्ट हैं। इसलिए केवल पैदल सेना को इस यूथ की देखरेख में छोड़ सब लोग साथ चलेगें। स्वामी को अकेले नहीं जाना चाहिए। परन्तु स्वामी ने रुमण्वान् को शपथ देकर तथा 'नील बलाहक' नामक हाथी से उतर कर 'सुन्दर पाटल' नामक अश्व पर चढ़ कर अपने साथ थोड़े पैदल सैनिक लेकर वे चले गये। वे वहां पहुँच कर घोड़े से उतर कर देवताओं को प्रणाम किया और हाथ में वीणा ली। उसी समय उस हाथी के पेट में से अस्त्रधारी योद्धा निकले जिनका अगुवा उसका महावत था। उसे देखते ही वे समझ गये और उन्होंने कहा कि यह सब प्रद्योत का कपट है। तुम सब मेरे पीछे आओ। मैं इस समय शत्रु के कपट को अपने पराक्रम से शान्त कर दूँगा। यह कह कर स्वामी ने शत्रु की सेना में प्रवेश किया।

उन्होंने अत्यन्त पराक्रमपूर्वक सम्पूर्ण दिन युद्ध किया और शत्रुओं का संहार किया। परन्तु सायङ्काल अश्व के धराशायी होकर मर जाने पर महाराज उदयन भी मूर्छित होकर गिर पड़े। उनको शत्रु सैनिकों ने बाँध लिया और पीड़ित करने लगे। वे तब तक पीड़ित करते रहे जब उन्हें चेतना न आयी। उनको चेतना आने पर वे सब यह कहते हुए कि इसने भाई, पिता, सुहृद् का वध किया है उन्हें घेर लिये। उसमें से एक उदयन को मारने के लिए उद्यत होता है। हाथ में तलवार लेकर वह मारने के लिए दौड़ा। परन्तु पृथ्वी के रक्त से सिक्त होने के कारण उसका पैर फिसल गया और वह गिर पड़ा। उसी समय प्रद्योत का मन्त्री शालङ्कायन जिनको उदयन ने बरछे के प्रहार से मूर्छित कर दिया था यह कहता हुआ कि ऐसा मत करो; वहां आया तथा उदयन को बन्धन से मुक्त कराया। वह नाना प्रकार के शान्ति वचनों को कह कर उन्हें पालकी में बैठा कर उज्जयिनी ले गया। हंसक के इन कथनों को सुन कर यौगन्धरायण कहता है कि यह अनर्थ हो गया। तथा वह कहता है कि बन्दी किये हुए पुरुष का सत्कार हो या निरादर हो, वह हमेशा लज्जित ही रहता है। यौगन्धरायण प्रतिहारी से कहता है कि इस घटना को माता से जाकर निवेदन करो। हंसक यौगन्धरायण को यह भी बताता है कि जब मैं स्वामी के साथ जाने लगा तो शालङ्कायन ने कहा कि जाकर यह वृत्तान्त कौशाम्बी में कहो ?

जब मैं स्वामी की प्रदक्षिणा करके चलने लगा तो स्वामी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया और बहुत कुछ कहने की इच्छा रखते हुए भी उन्होंने केवल यही कहा कि—'जाओ यौगन्ध··· ···' यौगन्धरायण से मिलो ।

यह सुनकर यौगन्धरायण कहता है कि स्वामी का अन्न खाकर न चुकाऊँ ? स्वामी मुझे अन्य वेष में शत्रु राजा के नगर में, कारागार में तथा वन में अपने समीप ही पायेगें । और वैभव काल में भी अपने समीप ही पायेगें । इसी समय प्रतिहारी आकर राजमाता का सन्देश यौगन्धरायण को सुनाती हुई कहती है उन्होंने कहा कि सर्वप्रथम तुम मेरे पुत्र के मित्र तदुपरान्त मन्त्री हो । मैं यही चाहतीं हूँ कि मेरे पुत्र को ला दो । यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है कि राहु से ग्रसित चन्द्रमा के समान पकड़े गये स्वामी को यदि मैं मुक्त न करा दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं । इसी समय भगवान (द्वैपायन व्यास) आते हैं और अपना वस्त्र छोड़कर तथा राज्य कुल के अभ्युदय का आशीर्वाद देकर चले जाते हैं। व्यास के द्वारा छोड़े गये वस्त्र को यौगन्धरायण धारण करता है। उस वस्त्र के प्रभाव से वह अपना स्वरूप बदल लेता है । उसी समय प्रतीहारी यौगन्धरायण से आकर कहती है कि स्वामी की माता पुत्र को देखने की इच्छा व्यक्त है । यौगन्धरायण कहते हैं कि मैं अभी आता हूँ । आप शान्तिगृह में मेरी की प्रतीक्षा कीजिए ।

द्वितीय अङ्क

इस अङ्क में प्रद्योत की राजधानी का वर्णन है। प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता को मांगने के लिए अनेक राजाओं के प्रस्ताव आ रहे हैं।

सर्वप्रथम कञ्चुकी रंगमञ्च पर आता है और वह यह बताता है कि काशी नरेश के यहाँ से जैवन्ति दूत होकर आएं हैं । अतः अन्य दूतों की अपेक्षा इनका अधिक सत्कार होना चाहिए । वह यह भी कहता है कि प्रतिदिन भिन्न राजकुलों से दूत आ-जा रहे है परन्तु महासेन न तो किसी से स्वीकार करते है न अस्वीकार । अथवा इस कन्या का विवाह दैवाधीन है । वासवदत्ता जिसकी स्त्री होने वाली है उसका दूत अभी तक नहीं आया । इसलिए राजा प्रद्योत उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । कञ्चुकी राजा महासेन के पास जाता है और

बताता है कि जैवन्ति का यथोचित आदर सत्कार करके वैठाया गया। महासेन कञ्चुकी से वासवदत्ता के विवाह के सम्वन्ध में राय विचार पूछता है तथा महासेन वर के सम्वन्ध में कहता है कि मैं चाहता हूँ कि वर अच्छे कुल में उत्पन्न, दयावान, मृदु तथा वलवान् हो, एवं सुन्दर हो। वह पराक्रम-शाली हो, क्योंकि नारियों की रक्षा हमेशा होनी चाहिए। कन्या के लिए सर्वगुण सम्पन्न वर पिता के प्रयत्न से उपलब्ध होता है शेष वातें दैवाधीन हैं।

वासवदत्ता के विवाह के सम्वन्ध में वात करने के लिए महासेन महारानी को वुलवाता है। रानी के आने पर महासेन उससे वासवदत्ता के सम्वन्ध में पूछता है कि वह कहां है? वह बताती है कि वासवदत्ता उत्तरा नाम वाली वैतालिका के पास नारदीय वीणा सीखने गई है। जव महासेन उसके वीणा के प्रति रुझान के सम्वन्ध में पूछता है तो राजमहिषी वताती हैं कि उसकी सखी काञ्चन माला वीणा का अभ्यास कर रही थी। उसी को देख कर इसको सीखने की अभिलाषा जागृत हुई। रानी महासेन से एक वीणा शिक्षक की मांग करती हैं। महासेन रानी से वासवदत्ता के विवाह के सम्वन्ध में वात-चीत करते हैं तथा यह वताते हैं कि मगध, काशी, मिथिला, सूरसेन देश के अधिपति कन्या ग्रहण के इच्छुक हैं परन्तु किसे दिया जाय, यह वताओ? इसी समय सहसा कञ्चुकी आकर कहता है कि वत्सराज! यह सुन कर राजा सतर्क होते हैं। कञ्चुकी अपने इस अक्रम वचन के लिए क्षमा माँगता है और निवेदन करता है कि आपके मन्त्री शालङ्कायन ने वत्सराज को वन्दी वना लिया है। इस प्रिय सन्देश को सुन कर प्रद्योत को सहज ही विश्वास नहीं होता है तथा वह कहता है कि मैं इस वात को उसी प्रकार से नहीं स्वीकार कर सकता जिस प्रकार 'मन्दराचल' पर्वत हाथ से घुमाया गया यह असत्य है तथा उसके मन्त्री यौगन्धरायण की कूटनीतिक मन्त्रणाएं आज भी हमारे कानों में गूंज रही हैं।

परन्तु जब कञ्चुकी विश्वास दिलाते हुए कहता हैं कि पहले मैं वृद्ध दूसरे ब्राह्मण एवं आज तक मैंने महासेन के सम्मुख झूठ नहीं वोला। तव जाकर उसे विश्वास होता है। राजा कञ्चुकी से कहते हैं कि राजकुमारों का यथोचित

सत्कार कर वत्सराज को अन्दर लाओ तथा राजा यह भी निर्देश देते हैं कि राजकुमार के दर्शन से किसी को वंचित न किया जाय क्योंकि अपनें पराक्रम के कारण प्रसिद्ध मेरे शत्रु को लोग उस तरह देखें जैसे यज्ञ के लिए वधे हुए सिंह को देखते हैं जिसका क्रोध भीतर ही छिपा रहता है। प्रद्योत तथा रानी दोनों वत्सराज के वन्दी वना कर लाये जाने की खबर से प्रसन्न होते हैं तथा कहते हैं कि इस प्रकार का शुभ संवाद पहले कभी नहीं सुनने को मिला। रानी कहती है कि वैवाहिक सम्बन्ध के लिए अनेक राजाओं ने अपनो दूत भेजा परन्तु इसने नहीं भेजा। प्रद्योत कहता है कि यह महासेन के गौरव को नहीं मानता तो फिर सम्वन्ध की क्या वात है और तृण समूह में फेंकी हुई आग के समान सम्पूर्ण पृथ्वी को जलाता हुआ मेरा शासन इसके देश में नहीं चलता। प्रद्योत से रानी परोक्ष रूप से वासवदत्ता के लिए उदयन को उपयुक्त वर कहती हैं। इसके वाद कञ्चुकी आता है और राजा से निवेदन करता है कि शालङ्कायन ने वत्सराज की प्रिय घोषवती नामक श्रेष्ठ वीणा आपके पास भेजी है और उस वीणा को प्रद्योत को देता है।

प्रद्योत उस वीणा को लेकर सोचता है कि इसे किसे दिया जाय। मेरा ज्येष्ठ पुत्र गोपालक अर्थशास्त्र को जानने वाला है और उससे छोटा व्यायाम का प्रेमी है और गान विद्या में उसकी रुचि नहीं है। अतः यह वीणा वासवदत्ता को दी जाय। रानी प्रद्योत से कहती हैं कि वासवदत्ता वीणा पाकर और उन्मत हो जायेगी। प्रद्योत कहता हैं कि खेलने दो अभी वह बच्ची है। ससुराल में यह सुलभ नहीं हो सकता। महासेन कञ्चुकी से कहता है कि वत्सराज के घावों का ठीक ढंग से उपचार तथा उसका उचित सत्कार होना चाहिए। उसके इच्छा के अनुकूल ही कार्यों को करना चाहिए, बीते हुए युद्ध की चर्चा नहीं करनी चाहिए तथा जम्हाई अथवा छींक आने पर आशीर्वादात्मक वचन का प्रयोग तथा समयानुसार पूजा सामग्री का प्रबन्ध होना चाहिए तथा धूप से बचने के लिए मयूरयष्टि नामक महल से हटाकर मणिमय भाम में ठहराओ। रानी प्रद्योत से वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में कहती हैं कि मेरी लड़की अभी छोटी है इसलिए शीघ्रता मत कीजिए। इसके बाद रानी चली जाती है। तथा प्रद्योत चिन्ता करते हुए सोचता है कि पहले तो इसके अभिमान के कारण मेरी

शत्रुता थी, इसके यहां आने पर मैं तटस्थ हो गया। परन्तु युद्ध में व्यग्र और आपद् ग्रस्त तथा संशय में पड़े हुए इसको सुनकर मैं चिन्तित हो गया।

तृतीय अङ्क

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में वत्सराज का विदूषक अपना वेष बदल कर महासेन प्रद्योत की राजधानी में दिखाई पड़ता है। जो अपने लड्डुओं को खोजता है। यौगन्धरायण ने, उन्मत्तक का वेष बनाया है और रुमण्वान् श्रमणक का वेष धारण किये है। विदूषक के लड्डुओं को उन्मत्तक ने लिया है। विदूषक कहता है हे उन्मत्तक मेरा मोदक लाओ। उन्मत्तक कहता है कि कैसा मोदक। ये मोदक विशेष सामग्री से बने हुए, राजगृह से खरीदे तथा समय से सुखे हुए मुझे मिले हैं। विदूषक कहता है कि मेरा मोदक लौटा दो उसी पाथेय के सहारे मैं आचार्य के घर जाऊँगा। उन्मत्तक कहता है कि मैं इसे खाकर सौ योजन जाऊँगा। ये आपस में साङ्केतिक भाषा में बात करते हैं। उसी समय रुमण्वान् (श्रमणक) के वेष में वहां आता है। तीनों आपस में बात करते हैं और मध्याह्न काल के समय तीनों आपस में मन्त्रणा करने के लिए निर्जन अग्निगृह में जाते हैं। यौगन्धरायण विदूषक से पूछता है कि स्वामी (उदयन) से तुम्हारी भेंट हुई। वह कहता है कि हा भेंट हुई; और वहुत देर तक उन्होंने रोका था। क्योंकि वे चतुंदशी पूजन के लिए स्नान कर रहे थे। यौगन्धरायण स्वामी की स्थिति की चिन्ता करते हुए कहता है कि जिनको पूजा करने के बाद मङ्गल वचन और नगाड़े की आवाज सुनाई पड़ती थी वहीं अब वेड़ियों की झङ्कार सुननी पड़ रही है।

यौगन्धरायण (उन्मत्तक) वसन्तक से कहता है कि स्वामी से जाकर पुनः मिलो और उनसे कहो कि आपकी यहां से मुक्ति का सारा उपाय कर लिया गया है। आप यहां से भाग कर एक ही दिन में अपने राज्य में पहुँच जायेंगे। परन्तु विदूषक (वसन्तक) यह वतलाता है कि यह कार्य पूर्ण नहीं होगा क्योंकि कालाष्टमी के दिन वासवदत्ता शिविका पर सवार होकर कारागार के द्वार के आगे भगवती 'यक्षिणी' के स्थान पर देवता पूजन के लिए गई। तव राजा उदयन कारागार के रक्षक शिवक नामक कर्मचारी को प्रसन्न कर कारागार के द्वार पर आये और उन्होंने वासवदत्ता को देखा तथा अपने बन्धन को प्रमदवन समझ कर वे कामातुर हो गये और उन्होंने कहा है कि

कौशाम्बी अकेले न जाकर वासवदत्ता के साथ जाना है। यौगन्धरायण कहता है कि बहुत हँसी की बात है कि स्वामी को अकाल और परदेश में काम-वासना सता रही है। विदूषक कहता है कि हम लोगों ने यथाशक्ति उदयन को छुड़ाने का प्रयत्न किया। अब हम लोगों को उसे छोड़ कर चल देना चाहिए। परन्तु यौगन्धरायण कहता है कि ऐसा मत कहो दुःख एवं काम से पीड़ित मित्र की बात को मान कर समयानुसार उसे छोड़ना नहीं चाहिए। विदूषक यौगन्धरायण से कहता है कि यदि आप चाहते हैं तो कारागार से राजा उदयन और अन्तःपुर से वासवदत्ता दोनों का हरण कर लें। यौगन्धरायण दूसरी प्रतिज्ञा करता है कि—"जिस प्रकार हाथी कमल वल्लरी को सहज ही तोड़ देता है और सुभद्रा को अर्जुन लेकर भागे थे उसी प्रकार यदि राजा तथा वासवदत्ता का हरण न कर लें तो मैं यौगन्धरायण नहीं और यदि उस घोषवती वीणा को, नलागिरी हाथी, विशाल नेत्रों वाली वासवदत्ता तथा राजा (वत्सराज) को हर कर कौशाम्बी न ले जाऊँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। उसी समय दोपहर समाप्त होने के कारण जन कोलाहल मार्गों पर बढ़ने लगता है। रुमण्वान् कहता है अग्निगृह से हम लोगों को पृथक्-पृथक् मार्गों से जाना चाहिए। यौगन्धरायण कहता है कि हम लोगों के समूह का भेदन न करके शत्रु का भेदन करना चाहिए। हमें अपने कार्य में तत्पर रहना चाहिए। वे सब इधर-उधर चले जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क

गात्रसेवक को खोजते हुए भट आता है। गात्रसेवक भद्रवती नामक हाथी का सेवक है और यह वत्सराज का गुप्तरूपधारी चर भी है। गात्रसेवक मदिरा पीकर उन्मत्त हुए का अभिनय करते हुए आता है और बड़-बड़ाता (प्रलाप करता) है कि मदिरा से जो मस्त हो जाते हैं वे धन्य हैं। जो सुरा में स्नान करते हैं और जो सुरा पीकर मर जाते हैं वे भी धन्य हैं तथा जो पारिवारिक कार्यों में कष्ट को सहते हैं और सुरापान नहीं करते वे मूर्ख हैं। परिवार के भरण-पोषण के अतिरिक्त यमलोक में और कोई दुःख है इसमें मुझे सन्देह है। भट गात्रसेवक से पूछता है कि भद्रवती हाथी नहीं दिखाई दे रही है और तुम नशे में होकर घूम रहे हो। गात्रसेवक भट से बताता है कि

मैंने भद्रवती के अंकुश, अर्धचन्द्रमाला, घण्टा, कशा तथा भद्रवती को भी वन्धक रख दिया हूँ। उसी समय कोलाहल होता है तो गात्रसेवक भट से कहता है कि मैं जानता हूँ कि भद्रावती मदिरा वेचने वाली के घर को तोड़ कर भाग रही है। इसी समय कोलाहल की आवाज स्पष्ट होती है और ज्ञात होता है कि वत्सराज वासवदत्ता को लेकर भाग गये। इसी समय गात्रसेवक अपना असली रूप प्रकट करता है कि हम लोग यौगन्धरायण के द्वारा अपने-अपने स्थान पर नियुक्त गुप्तचर हैं। इसके बाद युद्ध छिड़ता है और यौगन्धरायण वन्दी बनाया जाता है। दो भट जन कोलाहल को शान्त कराते हुए वताते हैं कि यौगन्धरायण ने एक मुहूर्त तक सेना के वेग को सहन किया। परन्तु सुन्दर नामक हाथी के दांत में मारने से उसकी तलवार टूट गई और वह वन्दी वना लिया गया।

यौगन्धरायण को वन्दी वनाये जाने का शोक या लज्जा नहीं है वल्कि वह अपने को और अधिक गौरवान्वित महसूस कर रहा है क्योंकि उसने अपने प्रतिज्ञा के अनुसार अपने कार्यों में सफलता पाई है। भट जव लोगों को मार्ग से हटाते हुए कहता है कि आप लोग पहले से ही यौगन्धरायण को देख चुके हैं। तव यौगन्धरायण कहता है कि पहले ये लोग मेरे कृत्रिम वेष तथा निन्दित रूप को देखे हैं परन्तु अव ये लोग मेरे सुन्दर कर्मों को देखें। भट यौगन्धरायण से कहता है कि मन्त्री का आदेश है आपको शस्त्रागार में ठहराया जाय क्योंकि यह स्थान गोपनीय है। यह सुनकर यौगन्धरायण कहता है कि यह कितनी हास्यास्पद बात है कि जव वत्सराज को कैद कर सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए थी उस समय अमात्य वर्ग सो रहा था और अब रत्न के चले जाने पर चौकसी वरत रहा है। यौगन्धरायण को शस्त्रागार में ठहराया जाता है और उससे मिलने के लिए प्रद्योत का अमात्य भरतरोहक वहां जाता है। भरतरोहक के सारे प्रश्नों का वह जवाव देता है। जव भरतरोहक कहता है कि धोखा देकर वत्सराज को भगाकर अपने को वीर समझते हो। तव यौगन्धरायण कहता है कि पहले तुम लोगों ने कृत्रिम हाथी के छल से स्वामी को बन्दी बनाया। भरतरोहक जब कहता है कि वत्सराज उदयन ने वासवदत्ता को अपनी शिष्या बनाया

और उसका हरण कर लिया। तब यौगन्धरायण कहता है कि भरत कुलोत्पन्न बलवान वत्सराज किसी कन्या को बिना स्त्री बनाये क्या शिक्षा दे सकता हैं! जब भरतरोहक कहता है कि युद्ध में बन्दी वत्सराज का हम लोगों ने वध नहीं किया तो यौगन्धरायण कहता है कि इसी कारण से महासेन का भी वध नहीं किया गया। इसी समय कञ्चुकी वहां पर आता है और यौगन्धरायण से कहता है तुम्हारे अपकार को अपकार नहीं समझता हूँ। मेरा गुण से विरोध नहीं है। इस स्वर्ण रचित पात्र को पुरस्कार स्वरूप ग्रहण करो। यौगन्धरायण उसे अस्वीकार करते हुए कहता है कि धिक्कार है, मैंने जिन घरों को जलाया है और मन्त्रियों का हृदय आज भी ठण्ढे नहीं हो रहे हैं। महासेन की ओर से मेरी यह पूजा की जा रही है। अपराधी की पूजा तो केवल वध है। सहसा महल में बाजों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। भरतरोहक कञ्चुकी को पता लगाने के लिए भेजता है। वह लौटकर आकर बताता है कि वासवदत्ता की शोकाग्नि में महारानी अङ्गारवती महल से कूदकर प्राण त्याग करना चाहती थीं। परन्तु महासेन ने उससे यह कहा कि तुम्हारी पुत्री वासवदत्ता का विवाह क्षात्र धर्म के अनुसार हुआ है इसलिए चित्रफलक के द्वारा उन दोनों का विवाह कर दो। जब यौगन्धरायण यह सुनता है कि महासेन ने इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार कर लिया तो वह उपहार को ग्रहण कर लेता है। भरतरोहक यौगन्धरायण से पूछता है कि महासेन तुम्हारा क्या प्रिय करें तो यौगन्धरायण कहता है कि महासेन मेरे ऊपर प्रसन्न हैं इससे अधिक मुझे क्या चाहिए। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण—

महाकवि भास ने नाटक का नामकरण वत्सराज उदयन के महामन्त्री यौगन्धरायण की प्रतिज्ञाओं के आधार पर किया है। यौगन्धरायण को जब यह ज्ञात होता है कि कपटपूर्वक नकली हाथी के छल से अवन्तिराज महासेन ने उदयन को बन्दी बना लिया है तो वह प्रतिज्ञा करता है कि 'राहु से ग्रसित चन्द्रमा के समान शत्रुओं से पकड़े गये स्वामी को यदि मुक्ति न दूँ तो मैं यौगन्धरायण नहीं, इस प्रतिज्ञा के आधार पर वह वत्सराज उदयन को महासेन के यहाँ से भागने का सारा प्रबन्ध कर देता है। परन्तु विदूषक तथा रुमण्वान्

के द्वारा यौगन्धरायण को यह जब मालूम होता है कि उदयन महासेन की पुत्री वासवदत्ता को साथ लेकर भागना चाहता है तो यौगन्धरायण दूसरी बार पुनः प्रतिज्ञा करता है कि—'जिस प्रकार कमलवल्ली को हाथी सहज ही तोड़ डालता है। सुभद्रा को अर्जुन लेकर भागे, उसी प्रकार वासवदत्ता का हरण न कर लूं तो मैं यौगन्धरायण नहीं, और यदि घोषवती वीणा, नलागिरि हाथी, विशाल नेत्रों वाली वासवदत्ता तथा वत्सराज को हर कर (कौशाम्बी) न ले जाऊँ तो मैं यौगन्धरायण नहीं।

महाकवि भास ने यौगन्धरायण की इन्हीं प्रतिज्ञाओं के आधार पर नाटक का नामकरण प्रतिज्ञा यौगन्धरायण किया।

नाटकीय कथा का आधार—

उदयन तथा वासवदत्ता की प्रेम कहानी को उज्जयिनी के लोग आपस में कहते थे। इसका वर्णन कालिदास ने मेघदूत में इस प्रकार किया है—'प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्' सम्भवतः भास ने इसी लोककथा को आधार बना कर उसमें यथेच्छ परिवर्तन और परिमार्जन करके नाटकीय कथा का सृजन किया हो। वैसे वत्सराज उदयन का वर्णन गुणाढ्य की वृहत्कथा मञ्जरी और सोमदेव के कथा सरित्सागर में भी मिलता है। सम्भवतः वृहत्कथा मञ्जरी और कथासरित्सागर में जो वर्णन है वही लोककथा में प्रचलित हो और भास उसी को अपने कथा का आधार बनायें हों। उदयन की कथा इस समय इतनी प्रचलित रही होगी कि विभिन्न नाटककारों ने उसका वर्णन अपने-अपने ढंग से किया हो। उन्मत्त वासवदत्ता, वीणा वासवदत्ता और रत्नावली भी इसी प्रकार नाटच कृतियां हैं।

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण—

उदयन—महाकवि भास पात्रों के चरित्राङ्कन में सिद्धहस्त है। इनके पात्र नाटक में भार स्वरूप न होकर उसे सजीवता प्रदान करते हैं और नाटकीय प्रवाह को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं।

उदयन वत्सदेश का राजा है। उसका जन्म भरत वंश में हुआ है। वह अत्यन्त सौन्दर्यशाली तथा गुणसम्पन्न व्यक्ति है। वीणा बजाने की कला में

यह सिद्धहस्त हैं। इसके वीणा वादन की ख्याति देशान्तर तक है तथा यह प्रजा वत्सल भी है। प्रद्योत इसके गुणों की तथा स्वाभिमान की चर्चा करता हुआ कहता है—

उत्सेकयत्येनं प्रकाशराजर्षिनामधेयो वेदाक्षरसमवायप्रविष्टो भारतो वंशः। दर्पयत्येनं दायाद्यागतो गान्धर्वो वेदः। विभ्रमयत्येनं वयस्सहजं रूपम्। विस्रम्भत्येनं कथममुत्पन्नोऽस्य पौरानुरागः।

अर्थात् वेदों में जिसको चर्चा हुई है ऐसे भरत वंश में उत्पन्न तथा अपने कुल के अनुसार प्राप्त संगीत विद्या इसके अभियान को वढ़ा रही है तथा इसका प्रजावत्सल होना इसको वहुत वड़ा विश्वास दिलाता है।

उदयन जिस प्रकार वीणा वजाने में निपुण है उसी प्रकार उसमें शौर्य तथा पराक्रम भी कूट-कूट कर भरा है। वह अपने वीणा को लेकर प्रद्योत के माया गज को वशीभूत करना चाहता है। परन्तु उस कृत्रिम गज में से सैनिक प्रकट होते हैं तो विचलित नहीं होता है। वल्कि अपने अनुयायियों से यह कहता है कि मैं शत्रु प्रद्योत के इस कपट को अभी शान्त कर देता हूँ। ऐसा कहता हुआ निर्भीकतापूर्वक शत्रु की सेना में प्रवेश कर जाता है। और सम्पूर्ण दिन शत्रु की सेना का संहार करता है और अश्व के मारे जाने और स्वयं अत्यन्त चोट खाकर गिरने पर ही बन्दी वनाया जाता है।

महासेन उदयन की निर्भीकता के सम्वन्ध में कहता है कि वह महासेन शब्द को कुछ नहीं समझता है—'महासेनशब्दमपि न गणयति'।

उदयन की शासन व्यवस्था ऐसी सुदृढ़ है कि महासेन के बल पौरुष युक्त सेना का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। महासेन स्वयं कहता है कि—

अग्निः कक्ष इवोत्सृष्टो दहतु कार्त्स्न्येन मेदिनीम्।
अस्य मे शासनं दीप्तं विषयान्तेऽवसीदति ॥ २।९९

अर्थात् तृण समूह में फेंकीं हुई अग्नि के समान सम्पूर्ण पृथ्वीं को जलाता हुआ भी मेरा शासन इसके देश में नहीं चलता।

महाराज उदयन दृढ़ निश्चयी भी हैं। जब प्रद्योत के कपट गज को वे पकड़ने के लिए अकेले जाना चाहते हैं तब उन्हें रुमण्वान् मना करता है परन्तु उसे अपनी शपथ देकर अकेले चला जाते हैं तथा जब विदूषक महासेन के यहां से भागने के लिए कहता है तो वे कहते हैं कि वासवदत्ता को साथ लेकर जाऊँगा। वह अपने कौशल तथा यौगन्धरायण के कूटनीतिक चालों से अपने कार्यों में सफल भी होते हैं। महाकवि भास के चरित्राङ्कन की यह अत्यन्त सफलता है कि पात्र को रंगमञ्च पर उपस्थित न करके भी कथा सूत्र को उसी में पिरो दिया है।

यौगन्धरायण—

यह वत्स नरेश उदयन का प्रधान सेनापति तथा मित्र है। यह अत्यन्त ही बुद्धिमान् और नीति निपुण है। इसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपने स्वामी के लिए यह समर्पित है। स्वामी के हित के लिए वह अपने प्राणों की बलि भी देने लिए तैयार रहता है। यौगन्धरायण के ऊपर उदयन का इतना विश्वास है कि बन्दी बनाये जाने पर अपने सेवक हंसक से कहता है कि जाकर यौगन्धरायण से मिलो। यह सुनकर कि स्वामी ने कहा है कि यौगन्धरायण से मिलो। यौगन्धरायण कहता है कि—

पुरुषान्तरितं मां द्रक्ष्यति स्वामी,
रिपुनृपनगरे वा बन्धने वा वने वा
समुपगतनाशः प्रेत्य वा तुल्यनिष्ठम्।
जितमिति कृतबुद्धि वञ्चयित्वा नृपं तं
पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतः श्लाघनीयम् ॥ १।१४

अर्थात् अन्य वेष में रहते हुए भी मैं स्वामी के साथ शत्रु के नगर में, वन में, कारागार में तथा मरने पर स्वर्गलोक में और अपने बुद्धि कौशल से शत्रु पर विजय प्राप्त करने पर भी हर अवस्था में स्वामी मुझे अपने पास ही पायेगें।

उदयन की माता को भी यौगन्धरायण पर इतना अधिक विश्वास है कि

वह कहती हैं कि पहले तुम मेरे पुत्र के मित्र तथा वाद में मन्त्री हो, इसलिए मेरे पुत्र को ला दो।

प्रथममेव मे वत्सस्य वयस्यः पश्चादमात्य आनयस्व मे पुत्रकं पुत्रक इति'

यौगन्धरायण अपने स्वामी की मुक्ति के लिए प्रतिज्ञा करता है—

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव ।
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः ॥ १।१६

अर्थात् राहु से ग्रसित चन्द्रमा के समान शत्रुओं से पकड़े गये स्वामी को यदि मुक्त न करा दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।

जब विदूषक के द्वारा उसे यह ज्ञात होता है कि उदयन बन्दी अवस्था से मुक्त होकर अकेले नहीं बल्कि वासवदत्ता को साथ में लेकर जाना चाहते हैं तो वह दूसरी प्रतिज्ञा करता है कि—

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव ।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ॥ ३।८

अर्थात् जिस प्रकार हाथी कमलवल्ली को सहज ही हरण कर लेता है और सुभद्रा का हरण अर्जुन किये थे। उसी प्रकार यदि राजा वासवदत्ता को न हर लें तो मैं यौगन्धरायण नहीं। और—

यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम् ।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः ॥ ३।९

अर्थात् उस (वीणा) को, नलागिरि हाथी, विशाल लोचनवाली वासवदत्ता तथा राजा (उदयन) को हर कर कौशाम्बी न ले जाऊँ तो मेरा यौगन्धरायण नाम नहीं।

यौगन्धरायण अपनी प्रतिज्ञा में सफल होता है तथा नाटककार ने इसके प्रतिज्ञा के आधार पर ही नाटक का नामकरण किया है। यौगन्धरायण के बुद्धि कौशल को उसके शत्रु भी स्वीकार करते हैं तथा उससे भय खाते हैं। जब महासेन से कञ्चुकी निवेदन करता है कि उदयन पकड़ा गया तो महासेन

उससे पूछता है कि क्या यौगन्धरायण मर गया ? और जब कञ्चुकी कहता है कि नहीं। तब महासेन कहता है वत्सराज नहीं पकड़ा गया होगा। यौगन्धरायण इतना वड़ा बुद्धि कौशल में प्रवीण है कि सारी उज्जयनी को अपने गुप्तचरों से भर देता है। वह एक वीर योद्धा भी है। उदयन जब वासवदत्ता को लेकर भाग जाता है और यौगन्धरायण जब असली वेश धारण कर महासेन के सैनिकों से युद्ध के लिए सन्नद्ध होता है उस समय उसके स्वरूप को देख कर गात्रसेवक कहता है—

निशितविमलखड्गः संहृतोन्मत्तवेषः
कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः।
विरचितबहुचीरः पाण्डराबद्धपट्टः
सतडिदिव पयोदःकिञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः ॥ ४।३

अर्थात् यौगन्धरायण का स्वरूप इस समय इस प्रकार है तेज चमकती हुई तलवार लिये हुए, उन्मत्तों का वेश त्याग कर सुन्दर वस्त्रों को धारण कर वायें हाथ में तलवार को धारण किये हुए सफेद पगड़ी बाँधे है। जो विद्युत युक्त मेघ के समान और उसमें चन्द्रमा की कान्ति कुछ मालूम पड़ रही है।

यौगन्धरायण वीरता पूर्वक लड़ता है और तलवार के टूट जाने पर वह बन्दी बनाया जाता है। परन्तु बन्दी वनाये जाने का उसे जरा भी दुःख नहीं है क्योंकि वह जिस कार्य में लगा था उसमें सफल हो गया। वह कहता है कि—

रिपुगतमपनीय वत्सराजं ग्रहणमुपेत्य रणे स्वशस्त्रदोषात्।
अयमहमपनीतभर्तृदुःखो जितमिति राजकुले सुखं विशामि ॥४।५

अर्थात् शत्रु के यहाँ से वतसराज को छुड़ाकर, तलवार के टूटने पर वन्दी हुआ। मैं स्वामी के कष्ट को समाप्त कर और यह समझ कर कि मेरी विजय हुई, मैं राजकुल में प्रवेश कर रहा हूँ।

और—

वैरं भयं परिभवं च समं विहाय
कृत्वा नयैश्च विनयैश्च शरैश्च कर्म।

शत्रोः श्रियं च सुहृदामयशश्च हित्वा
प्राप्तो जयश्च नृपतिश्च महांश्च शब्दः ॥ ४।६

अर्थात् मैंने, वैर, भय, अपमान सबका परित्याग कर नीति, विनय और बाणों का सहारा लेकर शत्रु के राजश्री को और मित्र के अपकीर्ति को हटा कर जय प्राप्त किया है तथा अपने राजा और 'महान्' शव्द की उपाधि भी पाया है।

वन्दी अवस्था में भी उसे भय नहीं है वह भरतरोहक के आक्षेपों का तर्क युक्त ढङ्ग से उत्तर देता है। उसके गुणों के कारण ही महासेन का कञ्चुकी उसे उपहार देते हुए कहता है—

कारणैर्बहुभिर्युक्तैः कामं नापकृतं त्वया।
गुणेषु न तु मे द्वेषो भृङ्गारं प्रतिगृह्यताम् ॥ ४।२१

अर्थात् अनेकों कारणों से तुम्हारे अपकार को अपकार नहीं समझता। मेरा गुण से विरोध नहीं है अतः इस उपहार को स्वीकार करो।

महासेन—

महासेन प्रद्योत उज्जयिनी के शक्तिशाली और प्रतापी राजा है। इनके पास इत्तनी वड़ी सेना है कि उस सेना के ही कारण इन्हें महासेन कहा जाता है। इनके आधिपत्य को वत्सराज उदयन नहीं स्वीकार करता है। इसी कारण महासेन उससे अप्रसन्न रहते हैं। परन्तु महासेन उदयन के गुणों से प्रभावित है। तथा उसकी चर्चा भी निःसङ्कोच पूर्वक रानी से करते है।

महासेन के चरित्र में दयालुता तथा सहृदया की भावना भरी पड़ी है। जब उसका शत्रु उदयन वन्दी बनाकर लाया जाता है तो उसका वध न करवा कर उसके घावों की मलहम-पट्टी करने का निर्देश देता है और कहता है कि—

'अस्य सर्वदर्शनमविमुक्तसत्कारमवगन्तव्यम्। आकारसूचिता अस्य प्रीतयो विज्ञेयाः। अतिक्रान्तविग्रहाश्रिताः कथा न कथयितव्यः। क्षुतादिप्रयोगेष्वाशिषोऽभिधेयाः। कालसंवादिना स्तवेनार्च्यः।

अर्थात् इसका सब प्रकार से सत्कार करना। इसके भाव को देखकर समझ लेना कि यह क्या चाहता है। वीती हुए घटनाओं (युद्ध) कीं चर्चा मत करना। छींक आने पर स्वस्ति वाचन और समय से उसके पूजा की व्यवस्था की जाय।

उदयन की स्थिति पर चिन्तित होते हुए महासेन कहता हैं—

पूर्वं तावद् वैरमस्यावलेपादानी-
तेऽस्मिन् स्यात् तु मध्यस्थता मे ।
युद्धक्लिष्टं संशयस्थं विपन्नं
श्रुत्वा त्वेनं संशयं चिन्तयामि ॥ २।१४

अर्थात् पहले अभिमान के कारण इससे वैर था। परन्तु यहां वन्दी होकर आने पर मैं तटस्थ हो गया। परन्तु युद्ध में पीड़ित तथा आपत्तिग्रस्त इसको देखने पर मैं चिन्तित हो गया। यह महासेन के चरित्र की विशेषता ही है कि वह अपने शत्रु के प्रति भी इतना सोचता है।

महासेन एक पत्नी परायण पति भी है। वह अपनी पत्नी से पुत्री वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में राय लेता है तथा वह अपने पुत्रों और पुत्री को प्रेम भी करता है। वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध मैं वह रानी से कहता है—

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥ २।७

अर्थात् कन्या कों किसी वर के हाथ न देने से लज्जा लगती है और देने पर मन दुःखी होता है। इस प्रकार धर्म और स्नेह के वीच पड़ी माताओं को वड़ा कष्ट होता है।

वासवदत्ता के लिए वह किस प्रकार का वर चाहता है इसके सम्बन्ध में कहता है—

कुलं तावच्छ्लाध्यं प्रथममभिकाङ्क्षे हिं मनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान् ।
ततो रूपे कान्ति न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः ॥ २।४

अर्थात् वर अच्छे कुल में उत्पन्न, दयावान् तथा वीर हो । वह सौन्दर्यवान् हो, यह गुण के लिए नहीं बल्कि स्त्री समाज के भय से तथा वह पराक्रमशाली भी हो क्योंकि नारी की रक्षा हमेशा होनी चाहिए ।

महासेन परिस्थितियों से घबड़ाता नहीं है वल्कि उसका समाधान ढूढ़ लेता है । जब वत्सराज उदयन वासवदत्ता का अपहरण कर भाग जाता है और महासेन की रानी अङ्गारवती इस घटना से दु:खित होकर महल से कूद कर अपना प्राण त्याग करना चाहती हैं उस समय महासेन समस्या का समाधान करते हुए रानी से कहता है कि तुम्हारी पुत्री वासवदत्ता का विवाह क्षात्र धर्म के अनुकूल हुआ है और चित्र फलक के सहारे उदयन और वासवदत्ता दोनों का विवाह कर देता है ।

महासेन ब्राह्मणों के प्रति भी निष्ठावान् है । वह मानता है कि ब्राह्मण कभी झूठ नहीं बोलते हैं । जव वत्सराज उदयन के बन्दी बनाये जाने की सूचना लेकर कञ्चुकी आता है तो महासेन उसकी बातों पर विश्वास नहीं करता है परन्तु जब कहता है कि—वृद्धोऽस्मि ब्राह्मणः खल्वहम् । न महासेनसमीपेऽनृतमभिहितपूर्वम्' तब वह सहज ही में विश्वास लेता है ।

निष्कर्षतः महासेन के चरित्र में वीरता, दयालुता, प्रसन्नता आदि गुण देखने को मिलते हैं ।

रुमण्वान्

रुमण्वान् वत्सराज उदयन का मन्त्री है । यह हमेशा उदयन के सुख-दुःख

में साथ रहने वाला है। यह अत्यन्त ही प्रतिभा तथा बुद्धि-कौशल-सम्पन्न व्यक्ति है। यह अवसर पर बुद्धि से काम लेता है। महाराज उदयन के साथ यह भी वन में गया था। यौगन्धरायण से जब हंसक यह आकर बताता है कि महाराज उदयन बन्दी बना लिये गये तो वह पूछता है कि—इदानीमनुत्पन्न कार्यंपण्डितो रुमण्वान् क्व गतः' अर्थात् अवसर से पूर्व ही बुद्धिमानी से काम करने वाला रुमण्वान कहां था।

रुमण्वान् उचित सलाह देता है। जब वत्सराज उदयन हाथी को वश में करने के लिए अकेले जाना चाहते हैं तो वह उन्हें मना करते हुए कहता है कि—'न खलु ते ऐरावणादीनामपि··· .... गन्तव्यमिति'।

आपको ऐरावत के समान हाथियों को पकड़ना असम्भव नहीं है। किन्तु दूसरे देश में रक्षा कठिनाई से होती है। सीमा प्रान्त के रहने वाले दुष्ट हैं इसलिए पैदल सेना को इस यूथ की देख-रेख में छोड़ कर हम सभी को साथ में चलना चाहिए। आपको अकेले नहीं जाना चाहिए। यौगन्धरायण उसके सलाह को सुनकर कहता है कि मैं इस प्रकार की स्वामिभक्ति को उत्तम समझता हूँ। 'एवमप्यवक्तव्यां स्वामिभक्तिमिच्छामि।' उदयन को महासेन के यहां से मुक्ति दिलाने हेतु यह अपना स्वरूप बदल कर महासेन के राज्य में रहता है और अग्निगृह में यौगन्धरायण और विदूषक के साथ गुप्त मन्त्रणा भी करता है।

विदूषक (वसन्तक)

यह वत्सराज उदयन का मित्र और सेवक है। यह भी हमेशा उदयन के हित चिन्तन में लगा रहता है। परन्तु इसमें धैर्य की मात्रा कम है। यह बन्दी अवस्था में उदयन से मिलता है और यौगन्धरायण कें कूटनीतिक चालों के आधार पर उनसे मुक्त होने की बात कहता है परन्तु जब उदयन का यह विचार कि वह वासवदत्ता को साथ में लेकर जायेगे सुनता है तो वह थोड़ा खिन्न होता है और यौगन्धरायण से कहता है कि हम लोगों नें प्रयास और

प्रयत्न किया। परन्तु वह यदि अकेले नहीं जाना चाहते हैं तो हम लोगों को उन्हें छोड़ कर चल देना चाहिए। परन्तु यौगन्धरायण उससे कहता है कि इस प्रकार मत कहो। यह सुन कर विदूषक यौगन्धरायण से कहता है कि यदि आप उदयन को मुक्त कराना चाहते हैं तो वासवदत्ता और उदयन दोनों का हरण कर लो। उसी समय यौगन्धरायण दूसरी प्रतिज्ञा करता है।

वासवदत्ता—

वासवदत्ता महासेन प्रद्योत तथा अङ्गारवती की पुत्री है। बाल्यकाल से ही इसको संगीत कला में रुचि थी और यह वीणा वादन की कला सीखती है। यह वत्सराज उदयन की परिणीता होने के कारण उनकी पत्नी है। यह सती-साध्वी पतिपरायण स्त्रीं है तथा यह हमेशा अपने पति के मंगल की कामना करती है।

अङ्गारवती—

यह महासेन की धर्मपत्नी हैं। यह पतिपरायण स्त्री हैं। इसके चरित्र में एक आदर्श भारतीय ललना का गुण भरा है। यह समय से गृहस्थ धर्म के अनुकूल अपने स्वामी को अपनी राय भी देती है। वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में यह महासेन कहती है कि वासवदत्ता को उसी को दीजिए जिसको देकर सन्ताप न करना पड़े—'न सन्तप्यामहे, तत्र दीयताम्' इसका हृदय में वात्सल्य रस भी पूर्ण रूप से भरा है। यह वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में महासेन से कहती है कि इसका विवाह करना मुझे स्वीकार है परन्तु स्नेहाधिक्य के कारण वियोग मुझको कष्ट दे रहा है—'अभिप्रेतं मे प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति।'

यह महासेन से पूछती है कि वासवदत्ता के विवाह के लिए किस वर को चुना है? जब महासेन कहते हैं कि अभी निश्चित नहीं हुआ है तब वह कहती है कि अभी जल्दी मत करिये मेरी लड़की अभी छोटी है—'अलमिदानीं त्वरित्वा। बाला मे दारिका।' यह वत्सराज उदयन के गुणों पर लुब्ध है और

वासवदत्ता के लिए उन्हें उपयुक्त वर मानती है। परन्तु जब उसे यह ज्ञात होता है कि उदयन ने वासवदत्ता का हरण कर लिया तो स्नेहाधिक्य के कारण वह अपना प्राणोत्सर्ग करने के लिए उद्यत होती है और जब महासेन उसे समझाते हुए चित्रफलक के सहारे उदयन और वासवदत्ता का विवाह करते हैं तब वह प्रसन्न होती है। निष्कर्षतः अङ्गारवती एक पतिपरायणा साध्वी एवं वात्सल्य रस से पूर्ण नारी है।

समीक्षण—

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण भास के तेरह नाटकों में से एक सफल नाटक है। महाकवि भास ने इस नाटक का सृजन उस समय किया जब उनकी लेखन कला पूर्ण प्रौढ़ि पर थी। यह नाटक चार अङ्कों में विभक्त है। नाटक के नाम-करण का आधार नाटक के एक पात्र की प्रतिज्ञाओं पर अवलम्बित है। नाटक में नाटकीय कथा का विन्यास, पात्रों का चरित्र-चित्रण, संवाद शैली सभी का प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है। नाटकीय कथा का विन्यास और पात्रों का आपस में संवाद इतना सुन्दर तथा सुरुचि पूर्ण ढंग से हुआ है कि पाठक या दर्शक इससे ऊबता नहीं बल्कि उसका कुतूहल आगे का संवाद जानने के लिए बढ़ता ही जाता है। कथा भाग की शीघ्रता को प्रकट करने के लिए इसमें सूच्यांश का अधिक प्रयोग हुआ है। जैसे—उदयन के बन्दी बनाये जाने का वृत्तान्त तथा वासवदत्ता के हरण का वृत्तान्त। पात्रों के संवाद के समय अपने प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा किसी अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति करा कर ये अपनी लेखन कला का परिचय देते हुए पाठकों के सामने एक नया वातावरण उपस्थित कर देते हैं। जैसे—महासेन प्रद्योत अपनी रानी अङ्गारवती से विभिन्न देशों के राजाओं का नाम बताकर पूछते हैं कि इसमें से वासवदत्ता किसे दी जाय। उसी समय सहसा कञ्चुकी प्रवेश करता है और कहता है कि 'वत्सराज'। वस्तुतः वह कहना यह चाहता है कि वत्सराज उदयन बन्दी बना लिया गया।

पात्रों के चरित्राङ्कन में भी भास सफल हैं इनके नाटक के पात्र नाटक में भार स्वरूप न होकर नाटक को जीवन्तता और गति प्रदान करते हैं।

वत्सराज उदयन अत्यन्त ही उच्चकोटि का कलाप्रेमी तथा सौन्दर्यशाली राजा है। जिसकी ख्याति देश-देशान्तर तक फैली हुई है। वहीं यौगन्धरायण अत्यन्त ही बुद्धिमान् तथा नीतिज्ञ है। यह बहुत बड़ा स्वामिभक्त है अपनी स्वामिभक्ति के कारण ही यह प्रतिज्ञा करता है—और उसमें सफल होता है। प्रद्योत भी गुणग्राही और दयालु है।

नाटक के पात्रों में स्वामिभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी है। यौगन्धरायण कहता है कि प्रत्येक अवस्था में मैं स्वामी के साथ ही रहूँगा।

रिपुनृपनगरे वा बन्धने वा वने वा
समुपगतविनाश प्रेत्यः वा तुल्यनिष्ठम्।
जितमिति कृतबुद्धि वञ्चयित्वा नृपं तं
पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतः श्लाघनीयम्॥ १।१४

अर्थात् शत्रु के नगर में, कारागार, वन, मृत्यु होने पर स्वर्ग में पराजय और विजय होने पर हमेशा मुझे अपने पास ही पायेंगे।

और—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
४।२

सेवक स्वामी के कार्य को ही अपनी सफलता मानता है इसके लिए उसे कोई भी कष्ट उठाना पड़े उसके लिए वह सहर्ष तैयार रहता है। यौगन्धरायण जब बन्दी होता है तब वह कहता है कि—

वैरं भयं परिभवं च समं विहाय
कृत्वा नयैश्च विनयैश्च शरैश्च कर्म।
शत्रोः श्रियं च सुहृदामयशश्च हित्वा
प्राप्तो जयश्च नृपतिश्च महांश्च शब्दः॥ ४।६

मैंने शत्रुता, भय एवं अपमान का परित्याग कर नीति एवं विनय से, बाणों से शत्रु के कीर्ति तथा मित्र के अपकीर्ति को दूर हटाकर जय प्राप्त किया और 'महान्' शब्द की उपाधि भी पाई। नाटक में मानसिक मनः स्थिति के वर्णन की अधिकता है। कन्यादान करने के पश्चात् माता की वे कष्ट का वर्णन इस प्रकार है—

अदत्तेत्यागता चिन्ता दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः। २.७

अर्थात् कन्या का दान न करने पर लज्जा आती है और करने पर दुःख होता है। इस प्रकार धर्म और स्नेह के बीच में पड़ कर माताओं को बहुत कष्ट होता है।

वत्सराज उदयन के बन्दी बनाये जाने पर महासेन सोचता है कि—

पूर्वं तावद् वैरमस्यावलेपा-
दानीतेऽस्मिन् स्यात् तु मध्यस्थता मे।
युद्धक्लिष्टं संशयस्थं विपन्नं
श्रुत्वा त्वेनं संशयं चिन्तयामि ॥ २.१४

अर्थात् पहले तो मेरा वैर था परन्तु यहां बन्दी होकर आने पर मैं तटस्थ हूँ तथा इसके विपत्तिग्रस्त होने से चिन्ता में पड़ गया हूँ।

कारागार में पड़े हुए उदयन जब वासवदत्ता के प्रति प्रेम प्रकट करते हैं उस समय यौगन्धरायण कारागार का वर्णन करते हुए कहता है—

शक्ता दर्पयितुं स्वहस्तरचिताभूमिः कटप्रच्छदा
पर्याप्तो निगलस्वनश्श्रणयोः कन्दर्पमालम्बितुम्।
क श्रुत्वा न भवेद्धि मन्मथपटुः प्रत्यक्षतो बन्धने
रक्षार्थंपरिगण्यमानपुरुषै राजेति शब्दायनम् ॥ ३.६

अर्थात् जिस पृथ्वी पर अपने हाथ से बनाई हुई चटाई पर (सोना) हो वह मद उत्पन्न करने में समर्थ है। जिसके पैरों की आवाज कामोद्दीपन कर सकती है। कारागार में अपने रक्षार्थ नियुक्त पुरुषों से 'राजा' शब्द से सम्बोधित होकर कौन पुरुष कामातुर होगा ?

नाटक में सैनिक के वीर वेष का भी चित्रण किया गया है—

निशितविमलखड्गः संहृतोन्मत्तवेषः
कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः ।
विरचितवपुचीरः पाण्डराबद्धपट्टः
सतडिदिव पयोदः किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः ॥ ४।३

अर्थात् यह तेज चमकती हुई तलवार लिए हुए, अपने स्वरूप को परिवर्तित कर बांयें हाथ में तलवार लिये हुए नाना प्रकार के वस्त्रों को धारण कर सफेद पगड़ी बांधे विद्युत युक्त मेघ के समान जिसमें चन्द्रमा दिखाई पड़े लग रहा है।

युद्ध का वर्णन भी देखने को मिलता है—

हत्वा गजान् सगजिनः सहयांश्च योधा-
नक्षौहिणीमति विगाह्य बलान्मुहूर्तम् ।
नागेन्द्रदन्तमुसलाहतभग्नबाहु-
र्भ्रष्टायुधोऽस्मि न निवृतपदोऽभियातः ॥ ४।४

क्षण भर में ही गजों तथा हाथियों वाली अक्षौहिणी सेना को मार कर तथा छिन्न-भिन्न कर और हाथी के दांत से चोट खाकर हथियार टूट जाने पर भी यह पीछे हटकर शत्रु से लड़ने रुका।

भास के नाटकों में एक तरफ राजनीतिक और कूटनीतिक चालें तथा

युद्ध का वर्णन है वहीं दूसरीं ओर संगीत कला का भी वर्णन है। वीणा के गुणों का एक सुन्दर उदाहरण देखा जा सकता है—

श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता
करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री ।
ऋषिवचनगतेव मन्त्रविद्या
गजहृदयानि बलाद्वशी करोति ॥ २।१२

अर्थात् कानों को सुख देने वाली विभिन्न प्रकार के रागों को निकालने वाली, नख के अग्रभाग से जिसके तार बजाये जाते हैं ऐसी वीणा ऋषियों के वचन के अन्तर्गत मन्त्रविद्या के समान हाथियों के हृदय को अपने वश में कर लेती है।

काव्यकला की दृष्टि से भी यह नाटक सफल है और इस नाटक में सूक्तियों का प्राचुर्य है। उदाहरण के लिए कुछ निम्न लिखित हैं—

(१) सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् । १।४
(२) भूमिर्भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति । १।९
(३) मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति । १।१८
(४) नीते रत्ने भाजने को विरोधः । ४।११ इत्यादि।

नाटक के पात्र

पुरुष पात्र

सूत्रधार	—प्रयोग प्रबन्धक
यौगन्धरायण (उन्मत्तक)	—वत्सराज का मित्र
रुमण्वान् (श्रमणक)	—वत्सराज का द्वितीय मन्त्री
विदूषक (वसन्तक)	—वत्सराज का मित्र
हंसक	—वत्सराज के साथ में रहने वाला सेवक
सालक	—यौगन्धरायण का अनुचर और सन्देशवाहक
निर्मुण्डक	—यौगन्धरायण का भृत्य
ब्राह्मण	—यौगन्धरायण का मित्र
भट	—महासेन का भृत्य
गात्रसेवक	—भद्रावती नामक हाथी का महावत (यौगन्धरायण का गुप्तचर)
प्रद्योत (महासेन)	—उज्जयिनी का राजा
भरतरोहक	—महासेन का प्रधानमन्त्री
बादरायण	—प्रद्योत (महासेन) के राजमहल का कर्मचारी
साधारणौ	—महासेन के अनुचर

स्त्री पात्र

नटी	—सूत्रधार की पत्नी
अङ्गारवती	—महासेन की रानी
विजया	—वत्सराज की प्रतीहारी

डा० गंगासागर राय की कृतियां

मौलिक ग्रन्थ

१. महाकवि भवभूति (स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य, म० म० मिराशी, आचार्य बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों से प्रशंसित तथा बहुशः उद्धृत), २. वैदिक आख्यान, ३. पौराणिक आख्यान, ४. अलङ्कार पीयूष, ५. Vedic Śākhās

हिन्दी अनुवाद

१. बालरामायण (डा० रामकरण शर्मा, आचार्य बलदेव उपाध्याय, आचार्य पट्टाभिराम शास्त्री आचार्य बदरीनाथ शुक्ल प्रभृति विद्वानों से प्रशंशित तथा उत्तर प्रदेश संस्कृत, अकादमी से पुरस्कृत), २. काव्यमीमांसा, ३. शाङ्खायन ब्राह्मण (डा० आर०एन० दाण्डेकर, आचार्य बलदेव उपाध्याय, आचार्य पट्टाभिराम शास्त्री प्रभृति विद्वानों से प्रशंसित तथा उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत), ४. वामन पुराण, ५. शाङ्खायन गृह्य सूत्र (नारायणकृत भाष्य से संयुक्त) ६. याज्ञवल्क्य स्मृति ।

संस्कृत-हिन्दी टीका सहित

१. नीति शतक (अँग्रेजी अनुवाद भी), २. चन्द्रालोक, ३. वेणीसंहार, ४. मुद्राराक्षस, ५. मृच्छकटिक, ६. कर्पूरमञ्जरी, ७. बालभारत, ८. रघुवंश (त्रयोदश-चतुर्दश सर्ग), ९. पञ्चतन्त्र (अपरीक्षित कारक), १०. अविमारक ११. अभिषेक, १२. प्रतिमा नाटक, १३. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १४, चारुदत्त, १५. बालचरित, १६. स्वप्नवासवदत्ता, १७. मालतीमाधव ।

अंग्रेजी अनुवाद

१. कूर्मपुराण, २. नीतिशतक ।

संपादन

१. बालरामायण, २. मानस खण्ड, ३. श्लोकवार्तिक, ४, अष्टाविंशत्युपनिषद, ५. वासिष्ठी लिङ्गपुराण।

पत्रिकाओं का संपादन

१. पुराणम् (सहसम्पादक), २, हिन्दुत्व (सहायक सम्पादक), ३. ध्रुपद वार्षिकी (सहसम्पादक), ४. विद्या मन्दिर पत्रिका।

शोधपत्र

५० के लगभग अँग्रेजी में शोधपत्र तथा हिन्दी में अनेकों निबन्ध।

॥ श्रीः ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

पातु वासवदत्तायो महासेनोऽतिवीर्यवान् ।
वत्सराजस्तु नाम्ना सशक्तिर्यौगन्धरायणः ॥ १ ॥

॥ श्रीमङ्गलमूर्त्तये नमः ॥

कारुण्यामृतसंपूर्णौ भक्तानामभयप्रदौ ।
काशीपुरीश्वरौ वन्दे कामितार्थप्रसिद्धये ॥ १ ॥
वाणीविनायकौ वन्दे वन्दे व्यासं महामतिम् ।
मदीयोऽयं समारम्भः निर्विघ्नं च यथा भवेत् ॥ २ ॥
सरस्वतीहासभूतो भासनामा महाकविः ।
प्रतिज्ञायौगन्धरेति यद्रूपकमरीरचत् ॥ ३ ॥
करोमि विवृतिं तस्य लघ्वीं मितपदाक्षराम् ।
गङ्गासागररायोहम् विदुषां तोषहेतवे ॥ ४ ॥

अथ तत्र भवान् वाग्देवीहासभूतो भासः प्रतिज्ञायौगन्धरायणं नाम नाटकं प्रणेतुमिच्छन् भूमिकामारचयति—नान्द्यन्ते तत इत्यादि । तत्र तावन्नाटकलक्षणम् ।

'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्द्धयादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः ॥ १ ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।

इत्यादि साहित्यदर्पणोक्तलक्षणलक्षितम् ज्ञेयम् । प्रतिज्ञायौगन्धरायणं प्रतिज्ञाभिः प्रतीतो यौगन्धरायणः यस्मिन् तत् प्रतिज्ञायोगन्धरायणमिति ।

नाटकस्य प्रारम्भे हि विघ्नविघातैकप्रयोजनम् मङ्गलं नितरामावश्यकं नाटकीयरचनानियमप्राप्तं च कर्त्तव्यम् प्रथमनुद्दिशन् कविर्नान्दीमिति समारब्धवान् । तत्र नान्दीलक्षणम् साहित्यदर्पणे विश्वनाथः—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति सञ्ज्ञिता ॥

एवंभूताया नान्द्या अन्ते । यद्वा नन्दिरानन्दस्तस्या इयं नान्दी गीतवाद्यवादनादिरूपा क्रिया तस्या अन्ते अवसाने । प्रकृतनाटके वाद्यनादनरूपैव नान्दी ग्राह्या—

दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्मा नासूश्च नान्द्यपि इति वैजयन्ती । सा चोपलक्षणम् वाद्यन्तराणामपि । ततः स्थानात् नेपथ्यादिति यावत् । अथवा ततः नान्दीविधानाव्यवहितोत्तरकाल इति यावत् । 'सार्वविभक्तिकेभ्यस्तसिल्' इत्यनुशासनात्तसिल् प्रत्ययस्य सप्तम्यर्थाश्रयणे न दोषः । प्रविशति सूत्रधारः स च नाटकीयपदार्थानुष्ठानसंविधानकादिकार्यनिर्वाहकुशलो भवति तल्लक्षणम्—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इहोदितः ॥ इति

सूत्रधार इति—सूत्रधारः सूत्रयतीति तदर्थः । सूत्रधारेण स्थापकेन वा वस्त्वादिनिर्देशः कार्यं इति नाटकनियमस्यावश्यकताभ्युपगम्यत्वेन 'सूत्रयेद्वस्तुबीजं वा मुखपात्रमथापि वा' इत्युक्तदिशा प्रधानपात्रनामधेयसूचनपुरःसरं मङ्गलं निबध्नन् कविः पदविन्यासकौशलेन सूत्रधारद्वारा पात्रोपक्षेपरूपं वस्त्वंशनिर्देशं समाचरति—पातु वासवदत्तायेति—

अन्वयः—वासवदत्तायः अतिवीर्यवान् तु नाम्ना वत्सराजः सशक्तियौगन्धरायणः महासेनः (वः) पातु । ॥ १ ॥

व्याख्या—पात्विति—वासवदत्तायः वासवाय इन्द्राय दत्तः अयः सुविजयरूपश्शुभावहो विधिर्लाभो वा येन सः । सेनापत्येऽभिषिक्तो भगवान् कार्त्तिकेयः तारकासुरं निहत्य इन्द्राय विजयश्रियं प्रदत्तवान्' इयं कथा पुराणेषु द्रष्टव्या । अतिवीर्यवान् अतुलितपराक्रमशाली तु नाम्ना वत्सराजः वत्सः बालश्चासौ राजा चेति वत्सराजः । सशक्तियौगन्धरायणः शक्तिरायुधविशेषस्तया सह वर्त्तते इति सशक्ति

(माङ्गलिक गाना-बजाना हो जाने के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—तारकासुर का वध कर इन्द्र को विजयश्री प्रदान करनेवाले

(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये । इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअह्मि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! गीयतां तावत् किञ्चिद् वस्तु । ततस्तव गीत-

शक्तिधारकः चासौ यौगन्धरायणः युगन्धरस्य मिथुनरूपधारिणो भगवतश्शिवस्यापत्यं पुमान् यौगन्धरायणः शिवपुत्रः । अथवा युगन्धरः पर्वतविशेषः साल्वायतनो देशविशेषो वा । तस्येदं योगन्धरम् तदेव अयनं यस्य सः यौगन्धरायणः युगन्धरक्षेत्रे हि तत्र भगवान् कार्त्तिकेयः प्रतिष्ठितो वर्त्तते । महासेनः स्कन्दः षडाननः कार्त्तिकेयो वा । वः युष्मान् नाटकावलोकनकुतूहलेनागतान् भवतः सामाजिकान् पातु रक्षतु । कवेः पदरचनाचातुर्यविधया वासवदत्ता-महासेन-वत्सराज-योगन्धरायणानां मुख्यपात्राणां सूचनादत्र मुद्रालङ्कारः । 'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः' इति तल्लक्षणम् ।

नेपथ्याभिमुखमिति नटानां वेषरचनादिस्थलम्' कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते' तदभिमुखम् सम्मुखम् अवलोक्य दृष्ट्वा । आर्ये इति इदं पत्नीं प्रति संबोधनपदम् । 'पत्नी चार्येतिसंभाष्या' इति भरतः । इतस्तावदिति इह तावदागम्यतामित्यर्थः । किञ्चिदिति यत्किमपि तवाभिरुचितम् । ततः तव गानान्तरम् । गीतप्रसादिते गीतेन हर्षिते । रङ्गे रङ्गमञ्चे । प्रकरणम् नाटककथासंदर्भविशेषमारभामहे । वचनं श्रुत्वापि मौनीभूतां नटीं चिन्ताकुलितामिवालक्ष्याह—आर्ये किमित्यादि । ननु गीयते 'ननु' शब्दः प्रश्नार्थः । त्वया गीयते न वा गीयतेइति भावः । स्वप्ने स्वप्नाव-

---

महाबलशाली शक्ति नामक अस्त्रविशेष को धारण करनेवाले, बाल्यावस्था में ही सेनापत्य पद पर अभिषिक्त होनेवाले अत एव महासेन भगवान् शिव के पुत्र कार्त्तिकेय आप सभी की रक्षा करें ।

(पुनः परिक्रमा कर नेपथ्य की ओर देखते हुये) आर्ये ! यहाँ तों आओ।

(नटी प्रविष्ट हो कर)

नटी—आर्य यह मैं आ गई ।

सूत्रधार—आर्ये ! तुम किसी प्रकार का गाना आरम्भ करो । तुम्हारी संगीत-

प्रसादिते रङ्गे वयमपि प्रकरणमारभामहे। आर्ये। किमिदं चिन्त्यते। ननु गीयते ?

नटी—अज्ज मए सिविणे ञ्आदिकुलस्स अस्सत्थं विअ दिट्ठं। ता इच्छामि अय्येणं कुसलविञ्ञाणणिमित्तं कञ्चि पुरुसं पेसिदुं। [अद्य मया स्वप्ने ज्ञातिकुलस्यास्वास्थ्यमिव दृष्टम्। तदिच्छाम्यार्येण कुशलविज्ञाननिमित्तं कञ्चित् पुरुषं प्रेषयितुम्।]

सूत्रधारः—बाढम्।

पुरुषं प्रेषयिष्यामि व्यक्तमात्महिते क्षमम्।

(नेपथ्ये) सालक! सज्जस्त्वम् ?

सूत्रधारः— **पुरुषं प्रेषयत्येष यथा यौगन्धरायणः॥ २॥**

स्थायाम् ज्ञातिकुलस्य पितृवंशस्य बान्धवजनस्य वा अस्वास्थ्यम् अकल्याणं चिन्ताजनकमपशकुनम्। तेन कारणेन इच्छामि अभिलषामि कुशलविज्ञाननिमित्तम् कुशलादिविज्ञातुम् कञ्चित् पुरुषम् भृत्यम् इतः यत्किमपि पुरुषम् प्रेषयितुम् गमयितुम्।

हे सालक सज्जस्त्वम् मदाज्ञापरिपालनाय सन्नद्धस्त्वम् किम्।

अन्वयः—आत्महिते क्षमं पुरुषं प्रेषयिष्यामि। एष यौगन्धरायणः यथा पुरुषं प्रेषयति।

व्याख्या—एषः पुरोवर्त्ती यौगन्धरायणः यथा व्यक्तमात्महिते क्षमं पुरुषं प्रेषयति तथाहमपि पुरुषं प्रेषयामीति पूर्वार्धेन सम्बन्धः॥ २॥

लहरी से जब इन दर्शकों का समाज प्रसन्न हो जायगा तो हम अपने अभिनय का आरम्भ करेंगे। आर्ये! तुम तो कुछ सोच-सी रही हो। बताओ गाती क्यों नहीं ?

नटी—आर्य। आज मैंने स्वप्न में अपने जाति एवम् कुल के लोगों का अनिष्ट देखा है। इसलिये मैं चाहती हूँ कि उसका कुशलक्षेम जानने के लिये वहाँ किसी पुरुष को भेजें।

सूत्रधार—बहुत अच्छा! जो मेरी भलाई करने में सर्वथा समर्थ हो ऐसे किसी बुद्धिमान् पुरुष को भेजूंगा।

(नेपथ्य में) सालक! क्या तुम जाने के लिये तैयार हो।

सूत्रधार—यौगन्धरायण जिसप्रकार आत्महितपरायण, स्वार्थकुशल व्यक्ति को भेजना चाहता था उसी प्रकार मैं भी ऐसे पुरुष को भेज रहा हूँ।

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः सालकेन सहं)

यौगन्धरायणः—सालक ! सज्जस्त्वम् ?

सालकः—अय्य ! अह इं । [आर्य ! अथ किम् ।]

यौगन्धरायणः—महान् खल्वध्वा गन्तव्यः ।

सालकः—महत्तरेण सिणेहेण अय्यं उवचिट्ठामि । [महत्तरेण स्नेहेनार्यमुपतिष्ठे ।]

निष्क्रान्तौ—एवं भाविनं पात्रप्रवेशं संसूच्य कृतकार्यो नटीसूत्रधारौ रङ्गान्निर्गतावभूतामिति—स्थापनेति—सूत्रधारकृतः प्रस्तावोऽयम् प्रारप्स्यमानस्य कथावस्तुनः स्थापनात् स्थापनेत्युच्यते नाटचशास्त्रकारैः । अस्याः प्रस्तावना आमुखमित्येतदपि नामान्तरम् । तथा च साहित्यदर्पणे विश्वनाथकविराजः—

नटीविदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।

अथ किमिति अङ्गीकारार्थमिदं वचनमहं सज्जोऽस्मीत्यर्थः । अध्वा मार्गः । खलु निश्चयार्थकमव्ययपदम् । उपतिष्ठे नियोगार्थमुपस्थित एवास्मि । महत्तरेण सातिशयेन । स्नेहेन प्रेम्णा । अयं भावः सातिशयप्रेम्णा सेवितुकामोहं भवन्तमुपस्थितः न तु भूरिभूतिलाभार्थम् भवेन्नामाध्वातिदुर्गमः । तत्रस्थमापतितं सर्वं दुःखं सोढ्वापि जिगमिषाम्येवेत्यर्थः । सौहार्दम् सुहृदो भावः सौहार्दम् दृढमित्रता ।

(दोनों चले जाते हैं)

॥ स्थापना समाप्त ॥

(सालक के साथ यौगन्धरायण का प्रवेश)

यौगन्धरायण—सालक ! क्या तुम तैयार हो ।

सालक—आर्य ! मैं तो तैयार बैठा हूँ ।

यौगन्धरायण—बहुत लम्बा मार्ग तय करना होगा ।

सालक—मैं तो बड़े प्रेम से आर्य की सेवा करने के लिये उपस्थित हूँ ।

यौगन्धरायणः—हन्त यास्यति बलवान्, यस्य सौहार्दम् । कुतः,

स्निग्धेष्वासज्यं कर्म यद् दुष्करं स्याद्
यो वा विज्ञाता सत्कृतानां गुणानाम् ।
क्रीतं सामर्थ्यं यस्य तस्य क्रमेण
दैवप्रामाण्याद् भ्रश्यते वर्धते वा ॥ ३ ॥

अथ वेणुवनाश्रितेषु गहनेषु नागवनं श्वः प्रयाता स्वामी प्रागेनं सम्भावयितव्यः ।

अन्वयः—स्निग्धेषु यः सत्कृतानां गुणानां विज्ञाता वा तत्र दुष्करं कर्म आसज्यम् क्रमेण क्रीतम् यस्य तस्य सामर्थ्यम् दैवप्रामाण्याद् भ्रश्यते वा पूज्यते वा ॥ ३ ॥

व्याख्या—स्निग्धेष्विति—यत् कर्म दुष्करम् दुःखेन साधयितुं शक्यम् स्यात् भवेत् तत् कर्म स्निग्धेषु स्नेहिजनेषु आसज्यम् भारत्वेनारोपणीयम् । स्नेहवानेव नियोक्तुः कार्यम् स्वकार्यनिर्विशेषं मत्वा तत्कार्यमनुतिष्ठति । दुष्करकर्मणः आसज्जनस्थानं प्रसङ्गादन्यदप्याह—यः सत्कृतानां आदरणीयानां गुणानाम् लोकहितानां फलानाम् उदर्काणां विज्ञाता विशेषज्ञः तत्रापि स्वदुष्करं कर्म आसज्यमिति पूर्वेण संबन्धः । गुणज्ञ एव स स्वस्मिन् समर्पितस्य कर्मणः उत्तरदायित्वं सुष्ठु निभालयति । क्रमेण औचित्येन न्यायेन क्रीतम् नियोक्त्रा आयत्तीकृतम् यस्य तस्य स्निग्धगुणज्ञयोः मध्ये एकतरस्य सामर्थ्यम् कर्मकौशलम् दैवप्रामाण्याद् नियोक्तुः भाग्यवशात् भ्रश्यते साध्यकर्मफलाच्च्यवते, वर्धते फलेन युज्यते वा ॥ ३ ॥

गहनेषु घोराटवीषु वेणुवनाश्रितेषु नर्मदातीरस्थवंशवृक्षाश्रितेषु यद् नागवनम्

यौगन्धरायण—यह प्रसन्नता की बात है कि जिसमें स्वामी के प्रति अगाध स्नेह है वह बलवान् अवश्य जायगा । क्योंकि—

जो कर्म क्लेशसाध्य हो वह उसे सौंप देना चाहिये जो या तो स्निग्ध हो वा सत्कारों के गुणों को जानता हो । उन दोनों में से किसी एक पर कार्य का भार सौंप देने से नियोक्ता के भाग्य अथवा दुर्भाग्य पर उस कार्य की कुशलता का असफल होना या सफल होना निर्भर है ।

वेणुवन के समीपस्थ घनघोर वन के मध्य में स्थित नागवन को कल स्वामी चले जायेंगे । उनके वहाँ जाने से पहले तुम्हें वहाँ जाकर सूचित कर देना चाहिये ।

सालकः—अय्य ! लेहो खु मं ओवज्झइ, जहिं आअत्तं कय्यसरीरं। [आर्य ! लेखः खलु मामपवहति, यस्मिन् आयत्तं कार्यशरीरम् ।]

यौगन्धरायणः—विजये !

(प्रविश्य)

विजया—अय्य इअम्हि। [आर्य ! इयमस्मि ।]

यौगन्धरायणः—विजये ! त्वर्यतां लेखः प्रतिसरा च ।

विजया—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्ता)

नागानां गजानां वनम् अरण्यम् गजवहुलं वनमित्यर्थः । श्वः प्रयाता श्वः प्रयास्यति । स्वामी वत्सराजः । प्रागेव संभावयितव्यः नागवनप्रयाणकालात् पूर्वमेव द्रष्टव्यः । अयं भावः त्वया एतावता वेगेन गन्तव्यम् यथा ततः नागवनार्थम् प्रस्थानात् पूर्वमेव स्वामी दृश्यो भवेत् । कार्यशरीरम् कार्यस्य स्वामिने विज्ञाप्यस्यार्थस्य शरीरम् स्वरूपम् यस्मिन् आयत्तम् यत्राधीनम् । स लेखः मामपवहति सत्वरगमने शिथिलयति विलम्बं करोति वा । अयं भावः गन्तव्यलेखग्रहणप्रतीक्षाकृत एव मम प्रस्थानविलम्बः अतः शीघ्रं मे लेखो दातव्यः येनाहं त्वरिततरं प्रस्थास्ये । लेखः पत्रम् । प्रतिसरा हस्ते धार्यं रक्षासूत्रम् । एते द्वे अपि वनवासगताय वत्सराजाय प्रेषयितुमिष्टे । तत्र प्रतिसराप्रेषणम् गमनात् समुदाचारिकम् । त्वर्यताम् शीघ्रता विधीयताम् । दृष्टपूर्वः इतः पूर्वम् कदापि दृष्टो न वा । श्रुतपूर्वः पूर्वं श्रुत इति श्रुतपूर्वः । एतदपि इदमपि । मेधाविलक्षणम् प्रज्ञावतश्चिह्नम् ।

सालक—आय ! यह लेख मुझे जाने में विलम्ब कर रहा है जिसके अधीन मेरा सारा कार्य हैं ।

यौगन्धरायण—विजये !

(प्रवेश कर)

विजया—आर्य ! मैं यह हूँ ।

यौगन्धरायण—विजये ! लेख (पत्र) और रक्षासूत्र कहाँ हैं ? शीघ्रता करो ।

विजया—आर्य ! ऐसा ही करूँगी (शीघ्र चली जाती है)

यौगन्धरायणः—अथ दृष्टपूर्वस्त्वयैष पन्थाः ।

सालकः—णहि, सुदपुरुवो । [नहि श्रुतपूर्वः ।]

यौगन्धरायणः—एतदपि मेधाविलक्षणम् । भोः ! वनगजप्रच्छादित-शरीरं नीलहस्तिनमुपन्यस्य प्रद्योतः स्वामिनं छलयितुकाम इति प्रवृत्ति-रुपगता नः । अपीदानीं स्वामिनो बुद्ध्यतिक्रमो न स्यात् । अहो नु खलु वत्सराजभीरुत्वं प्रद्योतस्य । व्यक्तीकृतमसामर्थ्यमक्षौहिण्याः ।

कुतः—

व्यक्तं बलं बहु च तस्य न चैककार्यं
सङ्ख्यातवीरपुरुषं च न चानुरक्तम् ।

वनगजप्रच्छादितशरीरम् वनगजैः समन्तात्संस्थितैः अरण्यहस्तिभिः प्रच्छा-दितम् अतिमात्रतिरोहितं शरीरम् यस्य स तम् । नीलहस्तिनम् नोलवर्णवनगजम् उपन्यस्य रचयित्वा । प्रद्योतः उज्जयिनीनरेशाभिधः स्वामिनम् वत्सराजम् छल-यितुकामः वञ्चनमभिलषति इति प्रवृत्तिः वार्त्ता नः अस्माकम् उपगता संप्राप्ता गुप्तचरैरिति शेषः । अनेन कपटव्यवहारेण उज्जयिनीनरेशः वत्सराजमुदयनं छलयिष्यतीति गुप्तचरैर्मया वार्त्ता श्रुतेत्यर्थः । इदानीम् अस्मिन्काले स्वामिनः वत्सराजस्य बुद्ध्यतिक्रमः बुद्धिविपर्यासः बुद्धिवैपरीत्येन छल वागुरापतनम् न भवेत् न स्यात् । अहो नु खलु वत्सराजभीरुत्वम् प्रद्योतस्य संत्रासः । अक्षौहिण्याः सेनायाः असामर्थ्यम् निर्वलत्वम् । व्यक्तम् प्रकटितम् ।

अन्वयः—तस्य बलम् बहु इति व्यक्तम् किन्तु एककार्यं न (इत्यपि

यौगन्धरायण—सालक ! क्या तुमने वह रास्ता देखा है ।

सालक—नहीं । पर सुना तो है ।

यौगन्धरायण—यह भी बुद्धिमान् जनों के लक्षण हैं । चारों ओर से वनगजों से छिपा कर एक नीले हाथी का कृत्रिम आकार खड़ा कर प्रद्योत स्वामी को छलना चाहता है । ऐसा समाचार हमें मालूम हुआ है । भगवान् करें कि स्वामी की बुद्धि प्रतिकूल न हो । प्रद्योत स्वामी से इतना भयभीत हो रहा है यह बड़े आश्चर्य की बात है । ऐसा करने से उसकी अक्षौहिणी सेना की असमर्थता प्रकट हो गई । क्योंकि—

व्याजं ततः समभिनन्दति युद्धकाले
सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् ।। ४ ।।

(प्रविश्य)

विजया—लेहो खु अअ। पडिसरा सव्ववहूजणहत्थादो तुवारीअदित्ति भट्टिमादा आह। [लेखः खल्वयम्। प्रतिसरा सर्ववधूजनहस्तात् त्वर्यंत इति भर्तृमाता आह।]

व्यक्तम्) संख्यातवीरपुरुषम् अस्ति किन्तु अनुरक्तं न अस्ति (इत्यपि व्यक्तम्) ततः युद्धकाले व्याजं समभिनन्दति, अनुरागम् ऋते सर्वम् सैन्यम् कलत्रम् इव। ४।

व्याख्या—व्यक्तमिति—तस्य प्रद्योतस्य बलम् सैन्यम् बहु अधिकम् भवति, किन्तु एकं कार्यम् स्वामिसेवामात्रम् कार्यम् यस्य तत् तादृशम् च न भवति। संख्यातवीरपुरुषम् संख्याताः संख्यानयोग्याः परिमिताः प्रख्याताः इत्यर्थः वीरपुरुषाः योद्धारः यस्मिन् तत् तथाभूतम् च भवति परन्तु अनुरक्तम् स्वामिनि अनुरागपरम् न भवति ततः तस्मात्कारणात् युद्धकाले संग्रामसमये व्याजम् नीलहस्त्युपन्यासरूपं कपटप्रयोगम् न तु युद्धम् समभिनन्दति आश्रयति अपरिमितबलसत्त्वेऽपि वीरैर्युतेऽपि बलयुद्धमुपेक्ष्य कपटाश्रयेण ज्ञायते यत् तस्य बलम् सर्वथा गुणहीनम् वर्त्तते इति भावः। गुणहीनता चानुरागाभावाज्जायते इत्याह सर्वमिति—अनुरागम् स्वामिनि स्नेहम् ऋते अभावे सर्वम् सैन्यम् कलत्रम् स्त्रीजनम् इव योद्धुमशक्यत्वाद्विजयसंपादनेऽकिञ्चित्करमित्यर्थः ।। ४ ।।

प्रतिसरा रक्षार्थम् हस्ते निबन्धनयोग्यम् सूत्रम्। सर्ववधूजनहस्तात् सर्वेषां

यह बात तो मालूम ही है कि उसकी सेना बहुत अधिक है पर यह भी विदित है कि वह अपने स्वामी के कार्य में रुचि नहीं रखती। उसके अन्य भी कार्य हैं। यह भी मालूम है कि उसकी सेना में परिगणित (प्रख्यात) वीर हैं पर यह भी ज्ञात है कि वे अपने स्वामी में अनुराग नहीं रखते। इसीलिये तो वह संग्राम के समय (कृत्रिम नील हाथी की झूठी कल्पना कर) कपट का प्रयोग करना चाहता है। प्रेम के बिना सारी सेना स्त्री के समान युद्ध में अकिञ्चित्कर है।

(विजया प्रविष्ट होकर)

विजया—आर्य ! यह लेख हैं। प्रतिसरा (रक्षासूत्र) सभी वधुओं के हाथ से स्पर्श करा कर शीघ्र ही भेज रही हूँ ऐसा राजमाता ने कहा है।

यौगन्धरायणः—विजये ! विज्ञाप्यतां तत्रभवत्यै—सर्ववधूजनहस्त-युक्ता वा एका वा प्रतिसरा दीयतामिति ।

विजया—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्ता)

(प्रविश्य)

निर्मुण्डकः—सुहं अय्यस्स । [सुखमार्यस्य]

यौगन्धरायणः—कथं निर्मुण्डकः ?

निर्मुण्डकः—अय्य ! एसो भट्टिपादमूलादो ओवट्ठिइओ हंसओ आसदो । [आर्य ! एष भर्तृपादमूलादौपस्थितिको हंसकः आगतः ।]

यौगन्धरायणः—कथं हंसक एकः प्राप्त इति । सालक ! विश्रम्यता-मिदानीं मुहूर्तम् । त्वरिततरं वा यास्यति सविश्रमे वा ।

वधूजनानाम् पुरन्ध्रीजनानाम् हस्ताद् । त्वर्यते शीघ्रमनुष्ठीयते सर्ववधूजनहस्तैः स्पर्शं कारयित्वा मङ्गलविधानार्थं प्रतिसरा शीघ्रतया प्रेषयिष्यते इति राजमाता आह उक्तवती ।

विज्ञाप्यताम् निवेद्यताम् । सर्ववधूजनहस्तयुक्ता सर्वेषां वधूजनानां हस्तैः युक्ता संस्पृष्टा । एका वा वधूजनहस्तस्पर्शं विना केवलेत्यर्थः । भर्तृपादमूलात् स्वामिचर-णसकाशात् औपस्थितिकः उपस्थितिमर्हतीति औपस्थितिकः सर्वदासन्निधानस्थिति-योग्यः । एकः केवलः त्वरिततरम् शीघ्रातिशीघ्रम् । स्वामिना राज्ञा अविरहितपूर्वः

यौगन्धरायण—विजये ! तत्र भवती से जाकर निवेदन करो कि सब वधुओं के हाथों से संस्पृष्ट अथवा कोई एक दूसरा ही रक्षासूत्र दें ।

विजया—आर्य ! बहुत अच्छा । (इतना कहकर चली जाती है)

(निर्मुण्डक का प्रवेश)

निर्मुण्डक—आर्य ! का मङ्गल हो ।

यौगन्धरायण—निर्मुण्डक ! तू कैसे ?

निर्मुण्डक—आर्य ! सदैव स्वामी के सन्निधान में रहनेवाला यह हंसक वहीं से आया हुआ है ।

यौगन्धरायण—क्या बात है जो हंसक अकेला आया । सालक ! क्षणभर विश्राम करो । फिर शीघ्रता से चले जाना अथवा विश्राम करना ।

सालकः—अय्य ! तह [आर्य ! तथा] (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—निर्मुण्डक ! प्रवेश्यतां हंसकः ।

निर्मुण्डकः—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—स्वामिनाविरहितपूर्वो हंसक एकः प्राप्त इति साविग्नमिव मे मनः कुतः—

यथा नरस्याकुलबान्धवस्य गत्वान्यदेशं गृहमागतस्य ।
तथा हि मे सम्प्रति बुद्धिशङ्का श्रोष्यामि किन्नु प्रियमप्रियं वा ॥ ५ ॥

पूर्वं न कदापि विरहितः तत्सेवां परित्यज्य न कदापि पृथग्भूत इत्यर्थः । साविग्नम् उद्वेगयुतम् ।

अन्वयः—अन्यदेशं गत्वा गृहम् आगतस्य आकुलबान्धवस्य नरस्य यथा किम् सुप्रियं अप्रियं वा श्रोष्यामि इति बुद्धिशङ्का भवति तथा मे संप्रति अप्रियं प्रियं वा श्रोष्यामीति बुद्धिशङ्का भवति ।। ५ ।।

व्याख्या—यथेति—अन्यदेशम् देशान्तरं गत्वा प्रस्थाय, गृहम् आगतस्य आकुलबान्धवस्य आकुलाः कुटुम्बवार्त्तानिवेदनार्थं संविग्नाः समुत्सुका वा बान्धवा यस्य तस्य यथा येन प्रकारेण किं प्रियं श्रोष्यामि अप्रियं वा श्रोष्यामि इत्येवंरूपा बुद्धिशङ्का बुद्धिसंदेहः भवति तथा तेन प्रकारेण मे मम संप्रति अधुना प्रियं वा इष्टं वा अप्रियं वा अनिष्टं वा किन्तु श्रोष्यामि इति बुद्धिशङ्का मनसि संदेहः जायते इत्यर्थः ।। ५ ।।

सालक—आर्य ! अच्छा (ऐसा कह कर चला जाता है)

यौगन्धपरायण—निर्मुण्डक ! हंसक को बुलाओ ।

निर्मुण्डक—आर्य ! अच्छा (कह कर जाता हैं)

यौगन्धरायण—हंसक तो स्वामी को छोड़कर कभी अलग नहीं होता था । यह अभूतपूर्व ही है कि जो यह अकेला आया । इसलि येमेरा मन व्याकुल हो रहा है क्योंकि—

जिस प्रकार विदेश से घर लौटे हुए मनुष्य की बुद्धि अपने व्यग्र बन्धु परिवारों द्वारा प्रिय अथवा अप्रिय समाचार जानने के लिये सशङ्कित रहती है उसी प्रकार मेरी भी बुद्धि इस हंसक द्वारा स्वामी के विषय में प्रिय अथवा अप्रिय समाचार जानने के लिये शङ्कित हो रही है—

(ततः प्रविशति हंसको निर्मुण्डकश्च ।)

निर्मुण्डकः—एदु एदु अय्यो । [एत्वेत्वार्यः ।]

हंसकः—कहिं कहिं अय्यो । [कुत्र कुत्रार्यः ।]

निर्मुण्डकः—एसो अय्यो चिट्ठइ, उवसप्पदुणं । [एष आर्यस्तिष्ठति उपसर्पत्वेनम् ।] (निष्क्रान्तः)

हंसकः—(उपसृत्य) सुहं अय्यस्स । [सुखं आर्यस्य]

यौगन्धरायणः—हंसक ! न खलु गतः स्वामी नागवनम् ।

हंसकः—अय्य । हिज्जो एव्व गदो भट्टा [आर्य ! ह्य एव गतो भर्ता ।]

यौगन्धरायणः—हन्त निष्फलमनुप्रेषणम् । छलिताः स्मः । अथास्ति प्रत्याशा, अथवा अद्यैव प्राणा मोक्तव्याः ।

अनूर्जिता न ऊर्जिता नातिमहती इत्यनूर्जिता । विज्ञातम् अवगतम् । स्वामी वत्सराजः कथं गृहीतः शत्रुभिरिति शेषः । महान् खलु भारः दुःसाध्यवैररूपो भारः । निस्तीर्णः साधितः । अद्य प्रभृति अद्यारभ्य वत्सराजसचिवानाम् वत्सराजामात्यानाम् प्रतिष्ठितम् निष्पन्नम् प्रख्यातम् वा असमार्थ्यम् अयोग्यता । लोकेषु प्रथितम् यद् वत्सराजमन्त्रिणः अयोग्या अकर्मण्याश्चेति भावः । अनुत्पन्नकार्यपण्डितः अनुत्पन्ने भाविनि कार्ये कर्त्तव्यविधौ पण्डितः निपुणः भाविविधौ सर्वथा विचारशीलः । क्व गतः कुत्रागच्छत् । अश्वारोहणीयम् सादिवलम् ।

(हंसक तथा निर्मुण्डक का प्रवेश)

निर्मुण्डक—आर्य ! आइये, इधर आइये ।

हंसक—कहाँ हैं कहाँ हैं आर्य ?

निर्मुण्डक—आर्य यहाँ पर हैं आप उनके पास जाइये। (ऐसा कह कर चला जाता है)

हंसक—(समीप जाकर) आर्य का कुशल हो।

यौगन्धरायण—हंसक ! स्वामी नागवन तो नहीं गये ?

हंसक—स्वामी तो कल ही चले गये ।

यौगन्धरायण—अफसोस ! तब तो भेजना व्यर्थ है । हम सब छले गये । क्या कुछ आशा है । अथवा आज ही प्राण छोड़ देना है ।

हंसकः—धरदि खु दाव भट्टा। [धरते खलु तावद् भर्ता।]

यौगन्धरायणः—धरते तावदित्यनूर्जिता विपत्तिरभिहिता। गृहीतेन स्वामिना भवितव्यं ननु।

हंसकः—सुट्ठु अय्येण विण्णादं गहीदो भट्टा। [सुष्ठु आर्येण विज्ञातम्। गृहीतो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—कथं गृहीतः स्वामी। हन्त भोः। महान् खलु भारः प्रद्योतस्य भाग्यैर्निस्तीर्णः। अद्य प्रभृति वत्सराजसचिवानां प्रतिष्ठितमसामर्थ्यमयशश्च। इदानीमनुत्पन्नकार्यपण्डितो रुमण्वान् क्व गतः। इदानीमश्वारोहणीयं क्व गतम्। कुतः—

स्निग्धं च सौहृदहृतं च कुलोद्गतं च
व्यायामयोग्यपुरुषं च गुणार्जितं च।

अन्वयः—स्निग्धं च सौहृदहृतं च कुलोद्गतम् च व्यायामयोग्यपुरुषं च गुणार्जितं च सर्वम् अश्वारोहणीयम् (अन्यच्च सर्वविधम्) परैः क्रीतम् किम् गहनदुर्गतया प्रनष्टम् किम् (यद्वा) युद्धे अतिभारतया समस्तम् विपन्नम् किम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—स्निग्धमिति—स्निग्धम् स्वामिनि अनुरागवन्तम् सौहृदहृतम् सुहृदः भावः सौहृदम् तेन हृतम् स्वामिस्नेहवशीकृतम्। कुलोद्गतम् कुले उद्गतम् जातम् प्रशस्तकुलोत्पन्नम् व्यायामयोग्यपुरुषम् व्यायामः शारीरिकायासः तत्र योग्याः शक्ताः ये पुरुषाः सादिनः यस्मिन् तत् तथाभूतम्। गुणार्जितम् गुणैः अश्व-

---

हंसक—स्वामी अभी तक जीवित हैं।

यौगन्धरायण—स्वामी जीवित हैं तब तो बहुत बड़ी विपत्ति नहीं कहा। किन्तु स्वामी अवश्य पकड़े गये होंगे।

हंसक—आर्य ने भलीभाँति समझ लिया। स्वामी अवश्य ही पकड़े गये हैं।

यौगन्धपरायण—स्वामी किस प्रकार पकड़े गये। तब तो प्रद्योत के भाग्य ने अपना बहुत बड़ा भार उतार दिया। आज से वत्सराज के अमात्यों की निर्बलता और अपकीर्त्ति प्रतिष्ठित हो गई। अच्छा। बताओ उस समय भविष्यद्रष्टा रुमण्वान् कहाँ था ? इतना ही नहीं उस समय घुड़सवारों की सेना कहाँ थी ?।

स्नेह करने वाले, सौहार्द भाव संपन्न, कुलीन, परिश्रमशील एवं गुणों से आकृष्ट

क्रीतं परैर्गहनदुर्गतया प्रनष्टं
युद्धे समस्तमतिभारतया विपन्नम् ॥ ६ ॥

हंसकः—जइ समग्गजोहबलपरिवारो भवे भट्टा, ण एसो दोसो भवे। [यदि समग्रयोधबलपरिवारो भवेद् भर्ता नैष दोषो भवेत् ।]

यौगन्धरायणः—कथमसमग्रयोधबलपरिवारो नाम स्वामी !

हंसकः—सुणादु अय्यो । [शृणोत्वार्यः ।]

यौगन्धरायणः—अध्वश्रान्तो भवान् । आस्यताम् ।

हंसकः—अय्य ! तह । (उपविश्य) सुणादु अय्यो । सावसेसपच्चू-

परिचर्योपयोगिनैपुण्यलक्षणैः निमित्तेन अर्जितम् संगृहीतम् अश्वारोहणीयम् एवं भूत-मन्यत् वा सर्वविधम् राजसहायभूतम् । परैः शत्रुभिः क्रीतम् दानाद्युपायेन स्वायत्तीकृतम् किम् अथवा गहनदुर्गतया गहनस्य घोरारण्यस्य दुर्गतया दुर्गमतया हेतुना प्रनष्टम् इतस्ततो विध्वस्तम् किम् । अथवा युद्धे संग्रामे समस्तम् अतिभारतया शत्रुसैन्यप्रतिरोधाक्षमतया विपन्नम् विध्वस्तम् किम् ॥ ६ ॥

असमग्रयोधबलपरिवारः न अविद्यमानः समग्राणाम् योधानाम् बलम् परिवारो यस्य सः असमग्रयोधबलपरिवारः समस्तयोधबलपरिवारविहीनः । अध्वश्रान्तः अध्वना मार्गगमनजन्येन श्रमेण श्रान्तः क्लान्तः । आस्यताम् उपविश्यताम् साव-शेषः सावशिष्टः प्रत्यूषः प्रभातकालः यस्यां सा तस्याम् रजन्याम् निशायाम् वाहन-

---

होने वाले हमारे सैनिक क्या शत्रुओं के द्वारा दानादि उपायों के द्वारा वशीभूत कर लिये गये । अथवा घनघोर वन में प्रविष्ट होने के कारण जहाँ तहाँ तितर बितर हो गये । अथवा शत्रुओं के मार का भार पड़ जाने से युद्ध में धव के सब मार डाले गये ?

हंसक—यदि स्वामी अपने समग्र सैनिकों के साथ होते तो इस प्रकार का अनर्थ हो ही नहीं पाता ।

यौगन्धरायण—स्वामी अपने समग्र सैनिकों के साथ क्यों नहीं थे ?

हंसक—आर्य सुनें ।

यौगन्धरायण—आप रास्ता चलने के कारण थके हैं, अतः बैठ जाइये ।

हंसक—(बैठकर) आर्य की जैसी आज्ञा । अच्छा आप सुनिये । जब प्रातः काल होने में कुछ समय शेष था और जब सवारी से चलने योग्य सुखदायक

रअणीए वाहणसुहाए वेलाए यालुआतित्थेण णइं णम्मदं तरिअ वेणुवणे कलत्तं आवासिअ छत्तमत्तपरिच्छदेण गजजूहविमद्दजोग्गेण बलेण मग्गमदअणीए वोहीए णाअवणं पआदो भट्टा। [आर्य ! तथा। शृणोत्वार्यः सावशेषप्रत्यूषायां रजन्यां वाहनसुखायां वेलायां वालुकातीर्थेन नदीं नर्मदां तीर्त्वा वेणुवने कलत्रमावास्य छत्रमात्रपरिच्छदेन गजयूथविमर्दयोग्येन बलेन मार्गमदन्या वीथ्या नागवनं प्रयातो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

हंसकः—तदो इसुक्खेवमत्तोत्थिदे सुय्ये एत्तिसमत्ताणि विअ जोअणाणि गच्छिअ कोसमत्तेण विअ मदअंधीरपव्वदं अणासादिअ तडाअपङ्कुक्खित्तं अद्धणिम्मिदसिलाकम्मं विअ विसमदंसणं दिट्ठं णोणअजूहं। [ततो इषुक्षेपमात्रोत्थिते सूर्ये एतावन्मात्राणीव योजनानि गत्वा क्रोशमात्रेणेव मद-

---

सुखायाम् वाहनानाम् अश्वादीनाम् सुखं आनन्दम् यस्यां सा तस्याम् वेलायाम् समये वालुकातीर्थेन सिकतायुतेन नद्यवतारेण, कलत्रम् स्त्रीजनम् आवास्य संस्थाप्य छत्रमात्रपरिच्छदेन छत्रमात्रम् आतपत्रमेव परिच्छदः उपकरणं यस्य तेन। गजयूथविमर्दयोग्येन गजयूथानां हस्तिसमूहानाम् विमर्दः आखेटः तस्य योग्येन अर्हेण बलेन सैन्येन। मार्गमदन्या मृगाणां समूहम् मार्गम् तन्मदयति हर्षयतीति मार्गमदनी तया। वीथ्या मार्गेण यथा नागवनम् नागानाम् हस्तिनाम् वनम् अरण्यम् भर्त्ता स्वामी प्रयातः ययौ।

रात्रि की वेला हो रही थी उस समय स्वामी बालुका पूर्ण घाट से नर्मदा नदी पार कर समीपस्थ वेणु वन में स्त्रियों को ठहरा कर हाथी के शिकार करने में दक्ष अपनी थोड़ी सी सेना जिनके हाथ में छत्र के अतिरिक्त कुछ न था—उसे लेकर मृगों को आनन्दित करने वाले मार्ग से नागवन की ओर चल पड़े।

यौगन्धरायण—तब तब।

हंसक—तब जितनी दूर बाण फेंकने पर जा सकता है—उतने ऊँचे सूर्य के चढ़ जाने पर (हाथ के अंगुलियों के संकेत से बताता है कि इतना) योजन चले जाने पर जब मद गन्धीर पर्वत मात्र एक कोस रह गया उसके उधर ही हाथियों का भयङ्कर समूह दिखाई पड़ा जो सरोवर के कीचड़ से सद्यः निकलने के कारण

गन्धीरपर्वनमनानाद्य तटाकपङ्कोत्क्षिप्तम धंनिर्मितशिलाकर्मेव विषमदर्शनं दृष्टं नो नागयूथम् ।]

यौगन्धरायण:—ततस्ततः ।

हंसक:—तदो णिज्झाअन्तीसु सेणासु ससुप्पण्णसतङ्कापिण्डिदे तस्सि जूहे इमस्स अणत्थस्स उप्पादओ कोच्चि पदादी भट्टारं एव्व उवट्ठिदो । [ततो निध्यायन्तीषु सेनासु समुत्पन्नशङ्कापिण्डिते तस्मिन् यूथेऽस्यानर्थस्योत्पादकः कश्चित् पदातिः भर्तारमेवोपस्थितः ।]

यौगन्धरायण:—तिष्ठ । इतः क्रोशमात्रे मल्लिकासालप्रच्छादितशरीरो नखदन्तवर्जमेकनीलो हस्ती मया दृश्यत इत्युक्तवान् ननु ।

हंसक:—कह परिण्णादं खु एदं अय्येण । जागत्ति खु समुप्पणो अअ दोसो । [कथं परिज्ञातं खल्वेतदार्येण । जाग्रति खलु समुत्पन्नोऽयं दोषः]

इषुक्षेपमात्रोत्थिते प्रक्षिप्तइषुर्यावद्दूरं गच्छति तावदन्तरं इषुक्षेपमात्रम् तावदुत्थिते उपर्यागते सति सूर्ये अङ्गुल्या निर्देशेन संसूचयन्नाह एतावन्मात्राणीव एतावन्त्येवेति एतावन्मात्राणि अनासाद्य अप्राप्य क्रोशमात्रम् ततोर्वागेवेत्यर्थः । तटाकपङ्कोत्क्षिप्तम् तटाकपङ्कात् सरोवरकर्दमात् उत्क्षिप्तम् निर्गतम् अर्धनिर्मित-शिलाकर्मेव अर्धे शरीरार्द्धे देहैकदेशे वा निर्मितम् रचितम् शिलाकर्म मनःशिला-

---

ऐसा भयङ्कर मालूम पड़ रहा था मानो मैनसिल के लेप से उसका आधा अङ्ग लिप्त कर दिया गया हो ।

यौगन्धरायण—तब फिर क्या हुआ ?

हंसक—फिर जब हमारे सैनिक उधर देखने लगे उसी समय समस्त हाथियों का झुण्ड भय से सिकुड़ सा गया । और इन सब अनर्थों का करने वाला कोई पैदल व्यक्ति स्वामी के पास आया ।

यौगन्धरायण—अच्छा तुम ठहरो । तुम निश्चित रूप से यही कहना चाहोगे कि उस पदाति ने स्वामी से कहा कि यहाँ से कोस भर की दूरी पर मल्लिका तथा सालवृक्ष से आच्छादित शरीर वाला एक नीला हाथी जिसका केवल नाखून तथा दाँत दिखाई पड़ रहा है मैंने देखा है ।

हंसक—आपने यह बात कैसे जान ली । आप जैसे जागरूक लोगों के रहते अन्त में ऐसा अनर्थ हो ही गया ।

यौगन्धरायणः—हंसक ! जाग्रतोऽपि बलवत्तरः कृतान्तः । ततस्ततः ।

हंसकः—तदो सुवण्णसदप्पदाणेण तं णिसंसं पडिपूजिअ भट्टिणा उत्तं–अत्थि एसो चक्कवट्ठी हत्थी णीलकुवलअतणूणाम हत्थिसिक्खाए पठिदो। ता अप्पमत्ता होह तुम्हे इमस्सिं जूहे । गअं तं अहं वीणादुदीओ आणेमि त्ति । (ततः सुवर्णशतप्रदानेन तं नृशंसं प्रतिपूज्य भर्त्रोक्तम्—अस्त्येष चक्रवर्ती हस्ती नीलकुवलयतनुर्नाम हस्तिशिक्षायां पठितः । तद् अप्रमत्ता भवत यूयमस्मिन् यूथे । गजं तमहं वीणाद्वितीय आनयामीति ।)

लेपो यस्य तत् तथाभूतम् इव देहलग्नस्य पङ्कस्य श्वेतत्वे उत्प्रेक्ष्यमाणा मनःशिला शब्दतः ग्राह्या । मनःशिला हि गिरिप्रभवो धातुविशेषः उच्चावचवर्णः । विषमदर्शनम् भीषणस्वरूपम् नागयूथम् हस्तिसमूहम् ।

निव्यायन्तीषु निरीक्षमाणासु सेनासु । समुत्पन्नशङ्कापिण्डिते समुत्पन्नया सेनानिरीक्षणसंजातया शङ्कया भयेन पिण्डिते संहृत्य संस्थिते । अस्यानर्थस्य स्वामिनः विपत्तेः । उत्पादकः कारणभूतः ।

मल्लिकासालप्रच्छादितशरीरः मल्लिकया लताविशेषेण सालेन वृक्षविशेषेण च प्रच्छादितम् प्रावृतं शरीरं यस्य सः । नखदन्तवर्णम् नखदन्तमात्रदृश्यमित्यर्थः । एतत् शत्रुचिकीर्षितं छलनम् । जाग्रति सावधाने सतर्के वा । जाग्रतोऽपि वलवत्तरः कृतान्तः जागरूकः सन् कुर्वाणादपि पुरुषार्थात् भवितव्यता बलवतीत्यर्थः ।

नृशंसम् क्रूरं वञ्चकं पापं वा । प्रतिपूज्य संतोष्य । भर्त्रा स्वामिना चक्रवर्त्ती हस्ती हस्तिसम्राडित्यर्थः नीलकुवलयतनुः नीलकमल इव शरीरम् हस्तिशिक्षायाम् गजलक्षणशास्त्रे पठितः वर्णित इत्यर्थः । तद् यूयम् अस्मिन् यूथे गजसमूहे अप्रमत्ताः सावधानाः भवत । गजं तम् तादृशम् नीलहस्तिनम् अहम् उदयनः वीणा द्वितीया यस्य सः वीणासहायः आनयामि । वीणावादनसहायेन आनयामि । न

यौगन्धरायण—हंसक ! इस प्रकार की सावधानी करने पर भी भवितव्यता उससे बलवान् जो है । अच्छा आगे क्या हुआ ।

हंसक—तब स्वामी ने सौ स्वर्ण मुद्रा प्रदान कर उस नृशंस को प्रशंसा कर कहा—अवश्य ही गज शास्त्र में इस प्रकार के नीले कमल के समान वर्ण वाला हाथी चक्रवर्त्ती होता है ऐसा हमने पढ़ा है । (फिर उन्होंने सैनिकों से कहा कि)

गन्धीरपर्वतमनानाद्य तटाकपङ्कोत्क्षिप्तम र्धनिर्मितशिलाकर्मेव विषमदर्शनं दृष्टं नो नागयूथम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ।

हंसकः—तदो णिज्झाअन्तीसु सेणासु ससुप्पण्णसतङ्कापिण्डिदे तस्सि जूहे इमस्स अणत्थस्स उप्पादओ कोच्चि पदादी भट्टारं एव्व उवट्ठिदो । [ततो निध्यायन्तीषु सेनासु समुत्पन्नशङ्कापिण्डिते तस्मिन् यूथेऽस्यानर्थस्योत्पादकः कश्चित् पदातिः भर्तारमेवोपस्थितः ।]

यौगन्धरायणः—तिष्ठ । इतः क्रोशमात्रे मल्लिकासालप्रच्छादितशरीरो नखदन्तवर्जमेकनीलो हस्ती मया दृश्यत इत्युक्तवान् ननु ।

हंसकः—कह परिण्णादं खु एदं अय्येण । जागत्ति खु समुप्पणो अअ दोसो । [कथं परिज्ञातं खल्वेतदार्येण । जाग्रति खलु समुत्पन्नोऽयं दोषः]

इषुक्षेपमात्रोत्थिते प्रक्षिप्तइषुर्यावद्दूरं गच्छति तावदन्तरं इषुक्षेपमात्रम् तावदुत्थिते उपर्यागते सति सूर्ये अङ्गुल्या निर्देशेन संसूचयन्नाह एतावन्मात्राणीव एतावन्त्येवेति एतावन्मात्राणि अनासाद्य अप्राप्य क्रोशमात्रम् ततोर्वागिवेत्यर्थः । तटाकपङ्कोत्क्षिप्तम् तटाकपङ्कात् सरोवरकर्दमात् उत्क्षिप्तम् निर्गतम् अर्धनिर्मित-शिलाकर्मेव अर्धे शरीरार्द्धे देहैकदेशे वा निर्मितम् रचितम् शिलाकर्म मनःशिला-

---

ऐसा भयङ्कर मालूम पड़ रहा था मानो मैनसिल के लेप से उसका आधा अङ्ग लिप्त कर दिया गया हो ।

यौगन्धरायण—तब फिर क्या हुआ ?

हंसक—फिर जब हमारे सैनिक उधर देखने लगे उसी समय समस्त हाथियों का झुण्ड भय से सिकुड़ सा गया । और इन सब अनर्थों का करने वाला कोई पैदल व्यक्ति स्वामी के पास आया ।

यौगन्धरायण—अच्छा तुम ठहरो । तुम निश्चित रूप से यही कहना चाहोगे कि उस पदाति ने स्वामी से कहा कि यहाँ से कोस भर की दूरी पर मल्लिका तथा सालवृक्ष से आच्छादित शरीर वाला एक नीला हाथी जिसका केवल नाखून तथा दाँत दिखाई पड़ रहा है मैंने देखा है ।

हंसक—आपने यह बात कैसे जान ली । आप जैसे जागरूक लोगों के रहते अन्त में ऐसा अनर्थ हो ही गया ।

यौगन्धरायणः—हंसक ! जाग्रतोऽपि बलवत्तरः कृतान्तः। ततस्ततः।

हंसकः—तदो सुवण्णसदप्पदाणेण तं णिसंसं पडिपूजिअ भट्टिणा उत्तं—अत्थि एसो चक्कवट्ठी हत्थी णीलकुवलअतणूणाम हत्थिसिक्खाए पठिदो। ता अप्पमत्ता होह तुम्हे इमस्सिं जूहे। गअं तं अहं वीणादुदीओ आणेमि त्ति। (ततः सुवर्णशतप्रदानेन तं नृशंसं प्रतिपूज्य भर्त्रोक्तम्—अस्त्येष चक्रवर्ती हस्ती नीलकुवलयतनुर्नाम हस्तिशिक्षायां पठितः। तद् अप्रमत्ता भवत यूयमस्मिन् यूथे। गजं तमहं वीणाद्वितीय आनयामीति।)

लेपो यस्य तत् तथाभूतम् इव देहलग्नस्य पङ्कस्य श्वेतत्वे उत्प्रेक्ष्यमाणा मनःशिला शब्दतः ग्राह्या। मनःशिला हि गिरिप्रभवो धातुविशेषः उच्चावचवर्णः। विषमदर्शनम् भीषणस्वरूपम् नागयूथम् हस्तिसमूहम्।

निध्यायन्तीषु निरीक्षमाणासु सेनासु। समुत्पन्नशङ्कापिण्डिते समुत्पन्नया सेनानिरीक्षणसंजातया शङ्कया भयेन पिण्डिते संहृत्य संस्थिते। अस्यानर्थस्य स्वामिनः विपत्तेः। उत्पादकः कारणभूतः।

मल्लिकासालप्रच्छादितशरीरः मल्लिकया लताविशेषेण सालेन वृक्षविशेषेण च प्रच्छादितम् प्रावृतं शरीरं यस्य सः। नखदन्तवर्णम् नखदन्तमात्रदृश्यमित्यर्थः। एतत् शत्रुचिकीर्षितं छलनम्। जाग्रति सावधाने सतर्के वा। जाग्रतोऽपि वलवत्तरः कृतान्तः जागरूकः सन् कुर्वाणादपि पुरुषार्थात् भवितव्यता बलवतीत्यर्थः।

नृशंसम् क्रूरं वञ्चकं पापं वा। प्रतिपूज्य संतोष्य। भर्त्रा स्वामिना चक्रवर्त्ती हस्ती हस्तिसम्राडित्यर्थः नीलकुवलयतनुः नीलकमल इव शरीरम् हस्तिशिक्षायाम् गजलक्षणशास्त्रे पठितः वर्णित इत्यर्थः। तद् यूयम् अस्मिन् यूथे गजसमूहे अप्रमत्ताः सावधानाः भवत। गजं तम् तादृशम् नीलहस्तिनम् अहम् उदयनः वीणा द्वितीया यस्य सः वीणासहायः आनयामि। वीणावादनसहायेन आनयामि। न

यौगन्धरायण—हंसक ! इस प्रकार की सावधानी करने पर भी भवितव्यता उससे बलवान् जो है। अच्छा आगे क्या हुआ।

हंसक—तब स्वामी ने सौ स्वर्ण मुद्रा प्रदान कर उस नृशंस को प्रशंसा कर कहा—अवश्य ही गज शास्त्र में इस प्रकार के नीले कमल के समान वर्ण वाला हाथी चक्रवर्त्ती होता है ऐसा हमने पढ़ा है। (फिर उन्होंने सैनिकों से कहा कि)

यौगन्धरायणः—अथ कथमुपेक्षितस्तदानीं स्वामी रुमण्वता ।

हंसकः—णहि णहि । पसादिअ भट्टा अमच्चेण विण्णाविदोणहु दे एलावणादोणं वि दिसागआणं गहणं ण सम्भावणीअं । अविदु दुराक्खदाए पच्चन्तवासी जणो । ता पदादिमत्ताहिट्ठिदं इमं जूहं करिअ सव्व एव्व गच्छामो. ण इकाइणा सामिणा गन्तव्वं त्ति । (नहि नहि । प्रसाद्य भर्तामात्येन विज्ञापितः—न खलु ते एरावणादीनामपि दिग्गजानां ग्रहणं न सम्भावनीयम् । अपि तु दुरारक्षतयासन्नदोषाणि विषयान्तराणि । तत्र निर्लज्जो निरभिजनः प्रत्यन्तवासी जनः । तत् पदातिमात्राधिष्ठितमिदं यूथं कृत्वा सर्व एव गच्छामः, नैकाकिना स्वामिना गन्तव्यमिति ।)

तत्र सैन्यसहायापेक्षा । भवता ऐरावणादीनां दिग्गजानां ग्रहणं न संभावनीयम् इति न खलु अवश्यं ग्रहीतुं शक्यते इत्यर्थः । दुरारक्षतया दुःखेन आरक्षितुं शक्यानि दुरारक्षाणि तेषां भावस्तत्ता तया । आसन्नदोषाणि आसन्नाः दोषाः विपत्तयः येषु तानि सन्निहितानर्थानि विषयान्तराणि अन्यदेशाः । प्रत्यन्तवासी जनः प्रत्यन्तः म्लेच्छदेशः तत्र वसतीति प्रत्यन्तवासी म्लेच्छदेशवासी स चासौ जनश्च । निरभिजनः दुष्कुलीनः आचाररहितः । पदातिमात्राधिष्ठितम् पत्तिसैन्याधीनम् । सर्वे गजयूथविनियुक्तपदात्यरिक्ताः सर्वे इत्यर्थः । नैकाकिना असहायेन । महाजनसम-

---

आप लोग इस गज समूह के लिये सावधान रहें । मैं अकेले उस हाथो को वीण, की एकमात्र सहायता से यहाँ लाऊँगा ।

यौगन्धरायण—उस समय रुमण्वान ने स्वामी को ऐसा करते देख उपेक्षा क्यों की ।

हंसक—नहीं नहीं उपेक्षा नहीं की । अमात्य ने उस समय विनय पूर्वक स्वामी से कहा—आप के लिये ऐरावत जैसे दिग्गज हाथियों का पकड़ना असंभव नहीं । किन्तु अन्य देश होने के कारण यहाँ सुरक्षा संभव नहीं है । ऐसे स्थान विपत्ति से संकुल होने के कारण भयावह भी होते हैं । इसके अतिरिक्त इन म्लेच्छ देशों के निवासी बड़े निर्लज्ज होते हैं । वे दुष्ट तो होते ही हैं । इसलिये पैदल सेना को इस यूथ को देख रेख में रख कर हम लोग भी आपके साथ चलेगें । अतः ऐसे स्थान में स्वामी को एकाकी नहीं जाना चाहिये ।

यौगन्धरायणः—अपि महाजनसमक्षमेवमुक्तः स्वामी रुमण्वता। एवमप्यवक्तव्यां स्वामिभक्तिमिच्छामि। ततस्ततः।

हंसकः—तदो अत्तजीविदणिद्दिट्ठेण सवहेण णिवारिअ अमच्चं णीलवलाहआदो हत्थिणो ओदरिअ सुन्दरपाडलं णाम अस्सं आलुहिअ अणद्धागए सुय्ये त्रिसदिमत्तेहि पदादिहि सह पआदो भट्टा। (तत आत्मजीवितनिर्दिष्टेन शपथेन निवार्यामात्यं नीलवलाहकाद् हस्तिनोऽवतीर्य सुन्दरपाटलं नामाश्वमारुह्यानर्धागते सूर्ये विंशतिमात्रैः पदातिभिः सह प्रयातो भर्ता।)

यौगन्धरायणः—विजयाय। हा धिक् स्नेहात् पूर्ववृतान्तो नावेक्षितः। ततस्ततः।

हंसकः—तदो दिउणं विअ अद्धाणं गच्छिअ सोललुक्खच्छाआए

क्षम् महाजनानां साधुजनानाम् समक्षम् सम्मुखम्। अवक्तव्याम् निन्दारहिताम् इच्छामि स्वीकरोमि। आत्मजीवितनिर्दिष्टेन आत्मनः स्वस्य जीवितम् जीवनम् तेन निर्दिष्टं तेन। अहम् स्वजीवितेन शपे यदि भवन्तः मया सह गच्छेयुरित्येवं रूपेणेत्यर्थः। निर्वार्य निषिध्य, अनर्धागते न अर्धम् अनर्धम् यथा स्यात्तथा आगते अर्धादपि न्यूनेऽभ्युदिते किञ्चिन्मात्रोदिते इत्यर्थः। स्नेहात् हस्तिग्रहणावेशप्रेम्णः। पूर्ववृत्तान्तः शत्रुपराभववृत्तः। नावेक्षितः न स्मृतः द्विगुण-

---

यौगन्धरायण—यदि महाजनों के समक्ष रुमण्वान् ने ऐसा कहा होता तो अच्छा होता फिर भी मैं इस प्रकार की स्वामिभक्ति को निर्दोष समझता हूँ। अच्छा इसके आगे क्या हुआ?

हंसक—तब अपने जीवन का शपथ देते हुए स्वामी ने अमात्य को मना कर दिया। फिर नील बलाहक नामक हाथी से उतर कर सुन्दर पाटल नामक अश्व पर सवार होकर आधे से भी कम सूर्य के उदय होते-होते केवल बीस पैदल सैनिकों के साथ स्वामी ने वहाँ के लिये प्रस्थान कर दिया।

यौगन्धरायण—विजय के लिये। हाय धिक्कार है जो उन्होंने हाथी पकड़ने के लोभ में आकर पूर्व घटना का स्मरण नहीं किया। अच्छा तब आगे क्या हुआ?

हंसक—तब दूनी चाल से चलते हुए स्वामी ने सौ धनुष की दूरी पर दिव्य

सवण्णणट्ठणीलदाए परुब्भासिदेहि असरीरविणिक्खित्तेहि विअ दन्तजुअलेहि सूइदो धणुसदमत्तेण विअं दिट्ठो सो दिव्ववारणपडिच्छन्दो। [ततो द्विगुणमिवाध्वानं गत्वा सालवृक्षच्छायायां सावर्ण्यनष्टनीलतया प्रोद्भासिताभ्यामशरीरविनिक्षिप्ताभ्यामिव दन्तयुगलाभ्यां सूचितो धनुःशतमात्रेणेव दृष्टः स दिव्यवारणप्रतिच्छन्दः।]

यौगन्धरायणः—हंसक! अस्मत्परिताप इत्युच्यताम्। ततस्ततः।

हंसकः—तदो भट्टिणा ओदरिअ अस्सादो आअमिअ देवदाण पणामं करिअ गहीदा वीणा। तदो पिट्ठदो एक्ककिदणिच्चओ विअ महन्तो कण्ठीरवो समुप्पणो। [ततो भर्त्रावतीर्याश्वादागम्य देवतानां प्रणामं कृत्वा गृहीता वीणा। ततः पृष्ठत एककृतनिश्चय इव महान् कण्ठीरवः समुत्पन्नः।]

यौगन्धरायणः—कण्ठीरव इति। ततस्ततः।

मिवाध्वानम् अतिसत्वरम्। सावर्ण्यनष्टनीलतया सावर्ण्येन समानवर्णेन नष्टः विविच्यागृहीतः नीलः देहस्य नीलगुणो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया सालवृक्षच्छायायाः सावर्ण्येन नष्टनीलतया। प्रोद्भासिताभ्याम् प्रदीप्ताभ्याम्। अशरीरविनिक्षिप्ताभ्याम् शालशाखान्यस्ताभ्याम् दिव्यवारणप्रतिच्छन्दः नीलहस्तिप्रतिरूपः। एककृतनिश्चयः एकम् समानम् यथा भवति तथा कृतः निश्चयः फलाध्यवसायो यस्य

हाथी के प्रतिरूप उस कृत्रिम नीले वर्ण के हाथी को देखा। साल वृक्ष के पत्तों से समान वर्ण होने के कारण उसका नीला रङ्ग उसमें छिप गया था। वह बिना शरीर के ही चमकीले लगाये गये शाखाओं के द्वारा दो दाँतों से युक्त हाथी जैसा सूचित हो रहा था।

यौगन्धरायण—हंसक! हम लोगों को दुःख देनेवाली घटना का वर्णन करो। फिर क्या हुआ।

हंसक—तब स्वामी ने अश्व से उतर कर देवताओं को प्रणाम किया और हाथों में वीणा ले ली। उसी समय पीछे से एक बहुत बड़ा सिंह दिखाई पड़ा।

यौगन्धरायण—सिंह? फिर तब क्या हुआ?

हंसकः—तदो कण्ठीरवपरिण्णाणणिमित्तं परिवुत्ता अ वअं। महामत्तोत्तराउहोआहिट्ठिदो पच्चुग्गदो सो किदअहत्थी। [ततः कण्ठीरवपरिज्ञाननिमित्तं परिवृत्ताश्च वयम्। महामात्रोत्तरायुधीयाधिष्ठितः प्रत्युद्गतः स कृतकहस्ती।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

हंसकः—तदो णामगोत्तग्गहणेन समस्सासिह कुलवुत्तजणं सव्वहा पज्जोदप्पओओ एसो, अणुगच्छह मं, अहं दाणि परस्स उवण्णासं विसमारम्भं परक्कमेण समीकरोमि त्ति भणिअ भट्टा पविट्ठो एव्व तं परबलं। [ततो नामगोत्रग्रहणेन समाश्वास्य कुलपुत्रजनं सर्वथा प्रद्योतप्रयोग एषः, अनुगच्छत माम्, अहमिदानीं विषमारम्भं परस्योपन्यासं पराक्रमेण समीकरोमीति भणित्वा भर्ता प्रविष्ट एव तत् परबलम्।]

सः तथाभूत इव। एवं चैककालावच्छेदेन एकफलावच्छिन्नव्यापारप्रेरितेन इव अग्रे नीलहस्ती पृष्ठतश्च कण्ठीरवः सिंह इति द्वयोः समकालिकाविर्भाव इत्यर्थः। कण्ठीरवपरिज्ञाननिमित्तम् सिंहान्वेषणनिमित्तमित्यर्थः। परिवृत्ताः। निवृत्ताः। महामात्रोत्तरायुधीयाधिष्ठितः महामात्रोत्तरैः प्रधानानुसरद्भिः आयुधीयैः शस्त्रधारकैः अधिष्ठितः न अभ्यन्तरस्थः। कृतकहस्ती कृत्रिमनीलगजः। प्रत्युद्गतः सम्मुखं दृष्टः। नामगोत्रग्रहणेन एकैकस्य नाम गोत्रं चोच्चार्य स्वाभिमुखीकरणार्थम् संबोध्येत्यर्थः। कुलपुत्रजनम् आत्मसहायभूतमभिजात्यपुरुषवर्गम् प्रद्योतप्रयोगः प्रद्योतरचितकपटजालः! अनुगच्छत अनुसरत। विषमारम्भम् अनर्थजातम्। परस्य शत्रोः उपन्यासम् छद्मना विरचितम्। समीकरोमि शमयिष्यामि। परबलम् शत्रुसैन्यमध्ये इत्यर्थः।

हंसक—तदनन्तर सिंह का पता लगाने के लिये सभी लौट पड़े। उधर मुख्य सेनापति का अनुसरण करने वाले अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित योद्धा गण उस लौहमय हाथी के पेट से निकलते हुए दिखाई पड़े। जिससे ज्ञात हो गया कि यह हाथी कृत्रिम हैं।

यौगन्धरायण—हाथी कृत्रिम है?

हंसक—तब स्वामी ने अपने कुलीन अनुयायियों का नाम तथा गोत्र उच्चारण कर उन्हें संबोधित करते हुए कहा यह सब प्रद्योत का कपटजाल है। तुम

यौगन्धरायणः—प्रविष्ट इति। अथवा ननु स्थाने,

व्रीलितो वञ्चनां प्राप्य मानी सत्त्वमुपाश्रितः।
शूरश्चैकाथनस्थश्च किमन्यत् प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

ततस्ततः।

अन्वयः—वञ्चनां प्राप्य व्रीडितः मानी सत्त्वमुपाश्रितः शूरः एकायनश्च अन्यत् किम् प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

व्याख्या—वञ्चनां प्राप्य विप्रलब्धः, व्रीलितः लज्जितः मानी अभिमानशीलः सत्त्वमुपाश्रितः धीरः शूरः वीरः एकायनः एकस्मिन्नेव अयने शत्रुप्रतीकाररूपे निश्चये दृढप्रतिज्ञः। अन्यत् शत्रुसैन्यप्रवेशातिरिक्तम् किम् कीदृशं कर्म प्रतिपद्यते कर्त्तुम् शक्यते।

व्याख्या—आत्मच्छन्दानुवर्तिना स्वाभिप्रायानुसारिणा। आत्माभिप्रायात् स्वविचारात्। परवलस्य शत्रुसैन्यस्य। अतिबहुलतया आधिक्येन हेतुना। अति-प्रयुज्यमानव्यायामः स्वशक्तितोप्यधिकक्रियमाणायासः। विषण्णनष्टसर्वपरिजनः विषण्णाः विषादं गताः नष्टाश्च सर्वे परिजनाः सर्वे रक्षकाः यस्य सः एकाकिना असहायेन। भर्त्रैव स्वामिना एव रक्ष्यमाणः संपाल्यमानः। अनुवद्धदिवसपरिश्रान्तः अविरतयुद्धपरिखिन्नः। बहुप्रहारनिपतिततुरगः बहुप्रहारेण अत्यधिकप्रहरणेन निपतितः तुरगो यस्य सः। ताम्यत्सूर्यदारुणायाम् ताम्यन् अस्तं गच्छन् सूर्यो यस्यां सा ताम्यत्सूर्या सा चासौ दारुणा भयावहा तस्याम् वेलायाम् काले। मोहम् मूर्च्छाम्। गतः प्राप्तः। भर्त्ता स्वामी।

सभी मेरा अनुसरण करते हुए आओ, मैं आपत्ति से परिपूर्ण शत्रु के इस कपट-जाल को पराक्रम से विनष्ट कर दूंगा। ऐसा कह कर वे शत्रुओं की सेना में घुस गये।

यौगन्धरायण—क्या कहते हो ? शत्रुसेना में घुस गये। अथवा ठीक ही किया—

शत्रु के द्वारा छले जाने के कारण लज्जित मानी, शूर वीर महाराज इस एक लक्ष्य को छोड़ और कर ही क्या सकते थे ?

अच्छा आगे फिर क्या हुआ ?

हंसकः—तदो कीलाअमाणो विअ अत्तच्छन्दाणुवत्तिणा सुन्दरपाडलेण अस्सेण अत्ताभिप्पाआदो वि अहिअं पहरन्तो आदिबहुकदाए परबलस्स अदिप्पउज्जमाणवाआमो विसण्णणट्ठसव्वपरिजणा मए एक्काइणा, णहि, णहि भट्टिणा एव्व रक्खिअमाणो अणुबद्धदिवसजुद्धपरिस्सन्तो बहुप्पहारणिपडिअतुरओ तम्माअमाणसुय्यदारुणाए वेलाए मोहं गदो भट्टा।
[ततः क्रीडन्निवात्मच्छन्दानुवर्तिना सुन्दरपाटलेनाश्वेनात्माभिप्रायादप्यधिकं प्रहरन् अतिबहुकतया परबलस्यातिप्रयुज्यमानव्यायामो विषण्णनष्टसर्वपरिजनो मयैकाकिना, नहि नहि, भर्त्रैव रक्ष्यमाणोऽनुबद्धदिवसयुद्धपरिश्रान्तो बहुप्रहारनिपतिततुरगस्ताम्यत्सूर्यदारुणायां वेलायां मोहं गतो भर्ता ।]

यौगन्धरायणः—कथं मोहमुपगतः स्वामी । ततस्ततः ।

हंसकः—तदो जहासत्तिसण्णिहिदगहणुप्पाडिदाहि अविण्णा अमाण जादीहि कक्कसाहि लदाहि पाकिदो विअ सरोरअन्तणादो पहरिसिदो

यथाशक्ति शक्तिमनतिक्रम्येति यथाशक्ति । सन्निहितगहनोत्पाटिताभिः सन्निहितात् समीपस्थात् गहनात् वनात् उत्पाटिताभिः उत्खाताभिः । अविज्ञातजातिभिः अविज्ञायमाना अपरिचीयमाना जातिः यासां ताः ताभिः । कर्कशाभिः कठिनाभिः दृढाभिः प्राकृत इव सामान्यजन इव। शरीरयन्त्रणात् देहबन्धनात्। प्रर्षितः प्रपीडितः स्वामी परभटैरिति शेषः ।

हंसक—तब अपनी रुचि के अनुसार चलने वाले सुन्दर पाटल नामक अश्व से क्रीड़ा जैसे करते हुए स्वामी अपनी कल्पना से भी परे शत्रुसैन्य का अधिकाधिक रूपेण वध करते हुए उधर शत्रु सैन्य की अधिकता इधर शत्रुओं पर प्रहार के कारण अत्यन्त भार पड़ने से दिन भर निरन्तर युद्ध करते हुए समस्त सैन्य परिवार के नष्ट ही जाने से दुःखी हो केवल अकेले मुझसे रक्षित रहते हुए अथवा मुझसे नहीं स्वयम् अपनी रक्षा करते हुए बहुत प्रहार से जर्जरित अपने घोड़े के मर जाने के कारण सूर्यास्त की दारुणवेला में रणभूमि में मूर्च्छित हो गये ।

यौगन्धरायण—क्या कहते हो स्वामो मूर्च्छित हो गये । फिर इसके बाद क्या हुआ ?

हंसक—तब शत्रु के भटों ने समीपस्थित वन से जिनकी जाति की पहचान

भट्टा। [ततो यथाशक्तिसन्निहितगहनोत्पाटिताभिरविज्ञायमानजातिभिः कर्कशाभिर्लताभिः प्राकृत इव शरीरयन्त्रणात् प्रधर्षितो भर्ता ।]

यौगन्धरायणः—कथं प्रधर्षितः स्वामी ।

पीनांसस्य विकृष्टपर्वमहतो नागेन्द्रहस्ताकृते-
श्चापास्फालिकरस्य दूरहरणाद् बाणाधिकारोपिणः ।
विप्राभ्यर्चयितुः श्रमेषु सुहृदां सत्कर्तुरालिङ्गनै-
र्न्यस्तं तस्य भुजद्वयस्य वलयस्थानान्तरे बन्धनम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—पीनांसस्य विप्रकृष्टपर्वमहतः नागेन्द्रहस्ताकृतेः चापास्फालिकरस्य दूरहरणात् वाणाधिकारोपिणः विप्राभ्यर्चयितुः सुहृदां श्रमेषु आलिङ्गनैः सत्कर्तुः तस्य भुजद्वयस्य वलयस्थानान्तरे वन्धनम् न्यस्तम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—पीनांसस्य विप्रकृष्टपर्वामहतः विप्रकृष्टानि दूरस्थितानि पर्वाणि शरीरसंधयः तत्कारणात् महतः विशालशरीरस्यव्यायामसुपुष्टग्रन्थिना प्राप्तोच्चयस्य । नागेन्द्रहस्ताकृतेः नागेन्द्रस्य गजेन्द्रस्य हस्त इव आकृतिर्यस्य सः तस्य गजशुण्डाकारस्य चापास्फालिकरस्य चापास्फालिनौ धनुर्व्यापारशीलौ करौ यस्य सः धनुषि प्रत्यञ्चासंधाननिपुणस्य, दूरहरणात् धनुषःविप्रकर्षणात् वाणाधिकारोपिणः वाणानाम् अधिकम् आरोपयितुं शीलम् अस्येति वाणाधिकसंधानपरस्य विप्राभ्यर्चयितुः ब्राह्मणार्चनपरस्य सुहृदाम् कृतकर्मणाम् श्रमेषु श्रमसाध्येषु कर्मसु कार्येषु आलिङ्गनैः श्लेषैः सत्कर्त्तुः आदरदानतत्परस्य तस्य तादृशस्य भुजद्वयस्य वलयस्य स्थानान्तरे वलयस्याग्राभागे प्रकोष्ठे इत्यर्थः वन्धनम् न्यस्तम् सन्निवेशितम् ।

असंभव हैं ऐसी दृढ़ लताओं को उखाड़ कर उससे सामान्य मनुष्य की भाँति स्वामी के शरीर को बाँध दिया, जिससे स्वामी बहुत पीड़ित हो गये ।

यौगन्धरायण—स्वामी कैसे पीड़ित हो गये ?

मोटे कन्धेवाले, दूरस्थ शरीर की संधियों के होने से अत्यन्त लम्बे कद वाले, हाथी के शुण्ड के समान आकार, वाले, धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ानेवाले, धनुष को दूर तक खींच कर उससे अधिकाधिक बाण संधान करने वाले ब्राह्मणों की अर्चना करने वाले तथा सुहृदों के श्रम से प्रसन्न होकर उनका आलिङ्गन द्वारा सत्कार करने वाले इस प्रकार के उनके दोनों हाथों के प्रकोष्ठ भाग में बन्धन जो था उसी से वे पीड़ित हुए अच्छा !

अथ कस्यां वेलायां प्रत्यागतप्राणः स्वामी ?

हंसकः–अय्य ! अवसिदावलेवेसु पावेसु। [आर्य ! अवसितावलेपेषु पापेषु।]

यौगन्धरायणः—दिष्ट्या ! शरीरं धर्षितं न तेजः। ततस्ततः।

हंसकः—तदो पच्चाअदप्पाणं दाणि भट्टारं पेक्खिअ अणेण मम भादा हृदो अणेण मम पिदा अणेण मम सुदो मम वअस्सो त्ति अञ्ञहा भट्टिणो परक्कमं वण्णअन्ता सव्वदो अभिद्दुदा दे पावा [ततः प्रत्यागतप्राणमिदानीं भर्तारं प्रेक्ष्यानेन मम भ्राता हतोऽनेन मम पितानेन मम सुतो मम वयस्य इति अन्यथा। भर्तुः पराक्रमं वर्णयन्तः सर्वतोऽभिद्रुतास्ते पापाः]।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

हंसकः—अण्णं च दाणि अच्चरिअं। अञ्ञोञ्ञाणुणएण तहिं एक्को ववसिदो अकय्यं कत्तुं। सो दक्खिणाहिमुहं परिवत्तिअ भट्टारं समरवा-

---

व्याख्या—प्रत्यागतप्राणः प्रत्यागताः प्राणाः यस्य स तथोक्तः चेतनायुक्तः इत्यर्थः। अवसितावलेपेषु अवसितः परिसमाप्तः अवलेपः अविनयः येषां तेषु पापेषु क्रूरेषु। दिष्टया इत्यानन्दसूचकमव्ययपदम्। धर्षितम् परिभूतम्। तेजः शौर्यम् ओजः। प्रत्यागतप्राणम् लब्धसंज्ञम्। प्रेक्ष्य दृष्ट्वा। वयस्यः मित्रम् सर्वतः चतुर्दिक्षु अभिद्रुताः प्रधाव्याभिमुखमागताः। अन्योन्यानुनयेन परस्परं त्वं कुरु इति

स्वामी को चेतना किस समय आई ?

हंसक—आर्य ! जब उन पापियों का अविनय पूर्ण व्यवहार समाप्त हो गया तब स्वामी को चेतना हुई।

यौगन्धरायण—यह प्रसन्नता को बात है कि उन नृशंसों ने स्वामी के शरीर को ही पीड़ित किया। उनका शौर्य नष्ट नहीं किया।

हंसक—तदनन्तर जब स्वामो को चेतना आई तो उन्हें देखकर उन पापियों में से किसी ने कहा इसने मेरे भाई का वध किया है, किसी ने कहा इसने मेरे पता का वध किया है, किसी ने कहा इसने मेरे लड़के का वध किया है, किसी ने कहा इसने मेरे मित्र का वध किया है आदि इस प्रकार स्वामी के पराक्रम का वर्णन करते हुए लोगों ने दौड़कर उन्हें चारों ओर से घेर लिया।

यौगन्धरायण—फिर तब क्या हुआ ?

हंसक—इसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी। एक दूसरे को घृणित

आमसंखोहिदाणि णिरुवआरं संखिविअ केसाणि पोडिअ करेण करवालं पहार-वेगं उप्पादइदुकामो आधावन्तो। [अन्यच्चेदानीमाश्चर्यम्। अन्योन्यानुनयेनात्रैको व्यवसितोऽकार्यं कर्तुम्। स दक्षिणाभिमुखं परिवर्त्य भर्तारं समरव्यायामसंक्षोभितान् निरुपचारं संक्षिप्य केशान् पीडयित्वा करेण करवालं प्रहारवेगमुत्पादयितुकाम आधावन्।]

यौगन्धरायणः—हंसक! वृत्तान्तं तावदाधारय, यावदहमुच्छ्वसामि।

हंसकः—तदो लुहिलपडलपिच्छिलाए भूमीए सो णिसंसंओ सएणवेएण ओघट्टिदचलणो पडिहदारम्भो हदो पटिदो। [ततो रुधिरपटलपिच्छिलायां भूमौ स नृशंसः स्ववेगेनावघट्टितचरणः प्रतिहतारम्भो हतः पतितः।]

प्रार्थनावाक्येन। अकार्यम् निन्दितम्। व्यवसितः समुद्यतः। दक्षिणाभिमुखम् उत्तानशायिनम् परिवर्त्य दक्षिणाभिमुखं कृत्वा समरव्यायामसंक्षोभितान् निरन्तरयुद्धेन परिचालितान् निरुपचारम् प्रसाधनभूषादिरहितम् केशान् संक्षिप्य संहृत्य करवालम् खड्गम् प्रहारवेगम् प्रहारस्य वेगम् उत्पादयितुं कामः यस्य सः मारणार्थमित्यर्थः आधावन्। आधारय किञ्चित्क्षणं विरम। उच्छ्वसामि अन्तर्मुखेन श्वासं गृह्णामि मदुच्छ्वासग्रहणानन्तरं शेषं वृत्तं कथयेत्यर्थः। रुधिरपटलपिच्छिलायाम् रुधिरसमूहचिक्कणायाम् भूमौ पृथिव्याम्। स्वेन वेगेन स्वेन जवेन अवघट्टितचरणः स्खलितपादः प्रतिहतारम्भः प्रतिहतः विनष्टः आरम्भः प्रयत्नः यस्य सः तथोक्तः। हतः पतितः भग्नाशो जातः पतितश्च।

कार्य के लिये प्रेरित करने पर उनमें से एक इस प्रकार के अनर्थ को करने के लिये उद्यत हुआ। सर्वप्रथम उसने स्वामी का मुख पलटकर दक्षिण पार्श्व में घुमाया। फिर उनके केशों को जो युद्ध के कारण प्रसाधनादि उपचारों से रहित होने के कारण इधर उधर बिखरे हुए थे उन्हें उपसंहृत कर हाथ में तलवार लेकर वार करने की इच्छा से दौड़ता हुआ स्वामी पर झपटा।

यौगन्धरायण—हंसक! क्षण मात्र के लिये यहीं रुक जाओ। मुझे थोड़ा उच्छ्वास ले लेने दो।

हंसक—फिर तो रुधिर समूह से लथपथ उस चिकनी पृथ्वी पर वह पापी अपने ही दौड़ने के वेग से पैर फिसल जाने के कारण ऐसा गिरा कि उसकी सारी आशा ही भग्न हो गई। (और वह वहीं ढेर हो गया)।

यौगन्धरायणः—पतितः पाप एषः भोः।

परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता।
भूमिर्भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति ॥ ९ ॥

हंसकः—तदो भट्टिणा पुढमं कुन्तप्पहारजणिदमोहो सालङ्काअणो णाम पज्जोदस्स अमच्चो 'मा खु मा खु साहसं' त्ति भणिअ तं देसं उवट्ठिदो। [ततो भर्त्रा प्रथमं कुन्तप्रहारजनितमोहः शालङ्कायनो नाम प्रद्योतस्यामात्यो 'मा खलु मा खलु साहसमि'ति भणित्वा तं देशमुपस्थितः।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

अन्वयः—परचक्रैः अनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता रक्षिता भूमिः आपन्नम् भर्त्तारम् परिरक्षति ॥ ९ ॥

व्याख्या—परचक्रैः शत्रुसैन्यैः अनाक्रान्ता आक्रमणरहिता धर्मसङ्करवर्जिता वर्णाश्रमसंबन्धिनाम् सङ्करेण व्यामिश्रेण वर्जिता रहिता वत्सराजस्य शासने कोऽपि कस्याप्यन्यस्य धर्मं नाचरतीत्यर्थः रक्षिता पालिता भूमिः पृथ्वी आपन्नम् संकटापन्नम् भर्त्तारम् स्वामिनम् वत्सराजम् परिरक्षति पूर्वमुदयनेन पालिता पृथ्वी तदुपकारे कृते सति प्रत्युपकारौचित्येन सर्वतोभावेन स्वयमपि आपन्नावस्थायां तम् परिरक्षतीत्यर्थः।

भर्त्रा स्वामिना प्रथमम् पूर्वम् कुन्तप्रहारजनितमोहः कुन्तस्य प्रासस्य प्रहारेण आघातेन जनितः समुत्पन्नः मोहः मूर्च्छा यस्य सः। साहसम् अनुचितम्। भणित्वा उक्त्वा उपस्थितः प्राप्तः।

यौगन्धरायण—यह पापी गिर गया।

शत्रुओं की सेना के द्वारा सर्वथा आक्रमण एवम् धर्म के साङ्कर्य से रहित इस प्रकार दोनों से सुरक्षित वसुन्धरा ने घोर संकटावस्था में पड़े हुये अपने स्वामी की कृतज्ञतापूर्वक रक्षा जो की।

हंसक—उस समय प्रद्योत का मन्त्री जिसका नाम शालङ्कायन था और जिसे स्वामी ने सर्वप्रथम युद्ध में भाले के प्रहार से मूर्च्छित कर दिया था वह यह कहता हुआ कि ऐसा दुःसाहस मत करो ऐसा दुःसाहस मत करो स्वामी के पास आकर उपस्थित हो गया।

यौगन्धरायण—तब फिर क्या हुआ ?

हंसकः—तदो तक्कालदुल्लहं पणामं करिअ सरीरअन्तणादो तेण मोइदो भट्टा। [ततस्तत्कालदुर्लभं प्रणामं कृत्वा शरीरयन्त्रणात् तेन मोचितो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—विमुक्तः स्वामी। साधु भोः शालङ्कायन ! साधु। अवस्था खलु नाम शत्रुमपि सुहृत्त्वे कल्पयति। हंसक ! व्यसनात् किञ्चिदुच्छ्वसितमेव मे मनः अथ किं प्रतिपन्नं तेन साधुना।

हंसकः—तदो तेण अय्येण अणेअं सोवआरं सन्तिवअणं भणिअ गाढबहुप्पहारदाए असमत्थो वाहणासणत्ति खन्धसअणं आरोविअ उज्जइणि एव्व णीदो भट्टा। [ततस्तेनार्येणानेकं सोपचारं शान्तिवचनं भणित्वा गाढबहुप्रहारतयासमर्थो वाहनासन इति इति स्कन्धशयनमारोप्योज्जयिनीमेव नीतो भर्ता।]

तत्कालदुर्लभम् तस्मिन् काले एतावत्परिभवावसरे, दुर्लभम् दुःखेन प्राप्तुं शक्यम्। शरीरयन्त्रणात् देहबन्धनात् मोचितः पृथक्कृतः। विमुक्तः बन्धनरहितः स्वामी भर्त्ता। अवस्था परिस्थितिः। सुहृत्त्वे मैत्रीभावे कल्पयति संप्रेरयति। व्यसनात् आपत्तेः। किं प्रतिपन्नम् किं व्यवसितम्। साधुना सज्जनेन। तेनार्येण उत्तमेन शालङ्कायनेन। सोपचारम् विनययुक्तम्। भणित्वा उक्त्वा। गाढबहु प्रहारतया गाढा दृढा वहवः अधिकाः प्रहारा अभिघाताः तेषां भावस्तत्ता तया। वाहनासने अश्वासने अश्वाद्युपवेशने असमर्थः सर्वथाशक्यः। स्कन्धशयनम् स्कन्धवाहनम् शयनीयम् शिबिकायाम् यत्रोपवेशनं शयनं च सुलभं भवति तत्र आरोप्य उपवेश्य उज्जयिनोम् तन्नामिकां प्रद्योतस्य राजधानीम्। नोतः अनीयत।

हंसक—तब ऐसे काल में दुर्लभ प्रणाम कर उसने स्वामी को शरीर के बन्धन से मुक्त किया।

यौगन्धरायण—स्वामी मुक्त कर दिये गये। धन्य हो शालङ्कायन तुम धन्य हो, परिस्थिति कभी कभी शत्रु को भी मित्र बना देती है। हंसक ! अब मेरा मन व्यसन से कुछ जीवित होता हुआ जैसा प्रतीत हो रहा हैं। इसके अनन्तर उस सज्जन पुरुष ने फिर क्या किया ?

हंसक—तदनन्तर वह विनय युक्त नाना प्रकार के शान्ति वचन कह कर गहरे आघात से अश्वादि वाहनों पर बैठने में सर्वथा असमर्थ स्वामी को कन्धे से

यौगन्धरायणः—नीतः स्वामी। एष सोऽनर्थः,

एतत् तद्व्यङ्गमस्माकमेव सोऽतिमनोरथः।
प्रद्योतस्य मनस्वित्वात् स्वामी दुःखेषु वर्तते १०॥

अथ च,

कथमगणितपूर्वं द्रक्ष्यते तं नरेन्द्रः
कथमपुरुषवाक्यं श्रोष्यते सिद्धवाक्यः।
कथमविषयवन्ध्यं धारयिष्यत्यमर्षं
प्रणिपतति निरुद्धः सत्कृतो धर्षितो वा॥ ११॥

अन्वयः—एतत् तत् अस्माकम् व्यङ्गचम् एषः सः प्रद्योतस्य। अतिमनोरथः। मनस्वित्वात् स्वामी दुःखेषु वर्त्तते॥ १०॥

एतत् तत् अस्माकम् व्यङ्गचम् अपमानजनिका त्रुटिः। एषः सः अनर्थः प्रद्योतस्य अतिमनोरथः सातिशयं वाञ्छितार्थः। मनस्वित्वात् स्वामी दुःखेषु वर्त्तते व्यसनानि अनुभवति।

अन्वयः—नरेन्द्रः अगणितपूर्वं तं कथं द्रक्ष्यते। सिद्धवाक्यः अपरुषवाक्यं कथं श्रोष्यते। अविषयवन्ध्यम् अमर्षम् कथं धारयिष्यति निरुद्धः सत्कृतः धर्षितः वा कथम् प्रणिपतति॥ ११॥

व्याख्या—नरेन्द्रः नृपतिः अगणितपूर्वम् अवज्ञातपूर्वम् तं प्रद्योतम् कथं द्रक्ष्यतेलोकयिष्यति। सिद्धवाक्यः अमोघवचनः सः अपुरुषवाक्यम् क्लीवचनम् कापुरुषोचितम् वा वचनम् कथं श्रोष्यते। अविषयवन्ध्यम् अविषये वन्ध्यम् अदेशे

ढोई जाने वाली शिविका में जिसमें लेट कर भी जाया जा सकता है बैठाकर उज्जयिनी की ओर ले गया।

यौगन्धरायण—स्वामी को ले गया। यह अनर्थ हुआ।

यही हम लोगों के द्वारा सब से बड़ी त्रुटि हुई, और यह अनर्थ ही प्रद्योत के मनोरथ को सिद्ध करने वाला हुआ। स्वामी अपनी मनस्विता के कारण ही संकटावस्था में जा फँसे।

राजा पूर्व में जिसे सर्वथा नगण्य समझता था उसे अब अपनी दृष्टि से किस प्रकार सामने देखेगा। सर्वथा माङ्गलिक शब्दों को श्रवण करने वाला अब वह

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! एसा पडिसरा । [आर्य ! एषा प्रतिसरा ।]

यौगन्धरायणः—

एतानि तान्यापतितानि काले भाग्यक्षयान्निष्फलमुद्यतानि।
तुरङ्गमस्येव रणे निवृत्ते नीराजनाकौतुकमङ्गलानि ॥ १२ ॥

मातापित्रादौ बन्धनीयम् अमर्षम् क्रोधम् शत्रुविषये कथं धारयिष्यति । निरुद्धः बन्दीकृतः, सत्कृतः समादृतः धर्षितः तिरस्कृतः वा कथं प्रणिपतति शत्रौ नम्रीण--भवति ।

अन्वयः—रणे निवृत्ते तुरङ्गमस्य नीराजनाकौतुकमङ्गलानि इव उद्यतानि एतानि तानि भाग्यक्षयात् काले निष्फलं आपतितानि ।

व्याख्या—रणे युद्धे निवृत्ते परिसमाप्ते तुरङ्गमस्य अश्वस्य नीराजनाकौतुक-मङ्गलानि नीराजना अरात्तिकाख्यम् शान्तिपौष्टिकं युद्धात् प्राक् कर्त्तव्यं यत् कर्म तदेव कौतुकम् उत्सवः तस्य मङ्गलानि दीपपुष्पादीनि मङ्गलद्रव्याणि इव उद्यतानि एतानि तानि प्रतिसरादिमङ्गलवस्तूनि भाग्यक्षयात् दुर्दैववशात् काले प्राप्ते समये निष्फलम् मोघं यथा भवति तथा आपतितानि जातानि ।। १२ ॥

स्थाप्यताम् अन्यत्र निधीयताम् । एतत् स्वामिवृत्तम् । नैतच्छक्यम् परिहर्त्तुम् न शक्यम् अवश्यं निवेदनीयमित्यर्थः तत्र भवत्यै पूज्यतमायै राजमात्रे । खल्वसि अन्वर्थनामा भवसि ।

किस प्रकार कायरों के वचन को सुनेगा । अविषय (अकारण) में कभी न होने वाले अपने क्रोध को वह शत्रु को सामने देख कर किस प्रकार सहन करेगा; इतना ही नहीं वह शत्रु के बन्दीगृह में रहकर अथवा उससे सत्कार पाकर अथवा उससे धर्षित होकर किस प्रकार उसे प्रणाम करेगा ।

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य यह रही प्रतिसरा ।

यौगन्धरायण—युद्ध समाप्त हो जाने पर जिस प्रकार घोड़ों की नीराजना के लिये लाई गई माङ्गलिक सामग्रियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, उसी प्रकार भाग्य के विनष्ट हो जाने से समय पर लाई गई भी ये सभी माङ्गलिक वस्तुयें व्यर्थ हो गईं ।

प्रतीहारी—अय्य ! इमा पडिसरा। [आर्य इयं ! प्रतिसरा।]

यौगन्धरायणः—विजये ! स्थाप्यताम्।

प्रतीहारी—किं त्ति भट्टिमादरं णिवेदेमि। [किमिति भर्तृमातरं निवेदयामि।]

यौगन्धरायणः—विजये ! एवमेतत्।

प्रतीहारी—किं एदं। [किमेतत्।]

यौगन्धरायणः—इदम्।

प्रतीहारी—भणादु भणादु अय्यो भणादु। [भणतु भणत्वार्यो भणतु]।

यौगन्धरायणः—अथवा नैतच्छक्यं परिहर्तुम्। निवेदयिष्याम्यत्रभवत्यै। विजये ! स्थिरीक्रियतामात्मा। (कर्णे) एवमिव।

प्रतीहारी—हा।

यौगन्धरायणः—विजया खल्वसि।

प्रतीहारी—एसा गच्छामि मन्दभाआ। [एषा गच्छामि मन्दभागा।]

यौगन्धरायणः—विजये न खलु त्वयात्रभवत्यै गृहीतः स्वामीति

प्रतीहारी—आर्य ! यह रही प्रतिसरा।

यौगन्धरायण—विजये अब इसे रख दो।

प्रतीहारी—तो राजमाता से जाकर क्या निवेदन करूँ।

यौगन्धरायण—विजये ! ऐसा जाकर कहना।

प्रतीहारी—वह किस प्रकार ?

यौगन्धरायण—विजये ! इस प्रकार से।

प्रतीहारी—आर्य कहें निः संकोच कहें।

यौगन्धरायण—अथवा इसमें कुछ भी छिपाना ठीक नहीं है स्वामी की माता से सारी बात निवेदन करूँगा। विजये ! अब सावधान हो जाओ और अपने मन को दृढ़ करो (कान में) ऐसा इस प्रकार हो गया।

प्रतीहारी—हाय !

यौगन्धरायण—अरे तुम्हारा नाम तो विजया है।

प्रतीहारी—तो मैं मन्दभागिनी जा रही हूँ।

यौगन्धरायण—विजये ! तुम जाकर एकाएक स्वामी की माता से यह निवेदन

सहसा निवेदयितव्यम्। स्नेहदुर्बलं मातृहृदयं रक्ष्यम्।

प्रतीहारी—कहं दाणि णिवेदेमि। [कथमिदानीं निवेदयामि।]

यौगन्धरायणः—शृणु—

पूर्वं तावद् युद्धसम्बद्धदोषाः
प्रस्तोतव्या भावना संशयानाम्।
सन्दिग्धेऽर्थे चिन्त्यमाने विनाशे
रूढे शोके कार्यतत्त्वं निवेद्यम्॥ १३॥

प्रतीहारी—घत्तिस्सं। [ग्रहीष्यामि।] (निष्क्रान्ता।)

यौगन्धरायणः—हंसक! त्वमिदानीं स्वामिना किं न गतः।

अन्वयः—पूर्वं तावद् संशयानाम् भावनाः युद्धसम्बद्धदोषाः प्रस्तोतव्याः पुनः संदिग्धे अर्थे विनाशे चिन्त्यमाने रूढे शोके कार्यतत्त्वम् निवेद्यम्॥ १३॥

व्याख्या—यौगन्धरायणः इदानीं राजमात्रे निवेदनविधिम् प्रतिहारीं प्रति संबोधयति पूर्वमिति—पूर्वम् सर्वप्रथमम् संशयानाम् भावनाः सदेहानाम् भावनाः युद्धसंबन्धदोषा; युद्धजन्यानर्थाः प्रस्तोतव्याः प्रस्तुतीकरणीयाः। पुनः संदिग्धे अर्थे संदेहयुक्तपदार्थे विनाशे चिन्त्यमाने शोके रूढे सति दुःखावेगे उपस्थिते सति कार्यतत्त्वम् मुख्यं निवेदनीयम् कार्यम् भर्त्ता गृहीत इत्येवं रूपम् निवेद्यम् कथनीयमित्यर्थः॥ १३॥

मत करना कि वे पकड़े गये हैं। यतः माता का हृदय पुत्रस्नेह से दुर्बल होता है अतः उसकी रक्षा करना भी कर्त्तव्य है।

प्रतीहारी—तो किस प्रकार जाकर निवेदन करूँ।

यौगन्धरायण—अच्छा सुनो—

सर्वप्रथम संशय को उत्पन्न करने वाले युद्ध के अनर्थों का वर्णन करना। संदिग्ध वस्तु में विनाश की चिन्ता से जब शोक की लहर मन में उठने लगे तब मुख्य कार्य (स्वामी का पकड़ा जाना) निवेदन करना।

प्रतीहारी—आर्य! ऐसा ही क्यों करती हूँ (ऐसा कहकर वहाँ से चली जाती है)

यौग०—अच्छा हंसक! तुम इस समय स्वामी के साथ क्यों नहीं गये?

हंसकः—अय्य ! ववसिदो खु अहं अत्ताणं अणुग्गहिदुं सालङ्काअणेण णिउत्तो-गच्छ इमं वुत्तन्तं कोसम्बीए णिवेदेहि त्ति। [आर्य ! व्यवसितः खल्वहमात्मानमनुग्रहीतुं सालङ्कायनेन नियुक्तः—गच्छेमं वृत्तान्तं कोशाम्ब्यां निवेदयेति।]

यौगन्धरायणः—किन्नु खल्विदानीं निराशमनुसारं कर्तुकामः उताहो स्निग्धपुरुषसन्निकर्षं परिहरति।

हंसकः—अहइं। [अथ किम्]

यौगन्धरायणः—स स्वकं विस्मयादात्मानमाविष्करोति, उत सर्वारम्भसिद्धौ रमणोयं भवति। अथ मामन्तरेण स्वामी न किञ्चिदाह।

व्यवसितः चेष्टितः। अनुग्रहीतुम् स्वाम्यनुगमनेनात्मानं कृतकृत्यं कर्त्तुम्। नियुक्तः आदिष्टः। निराशम् स्वामिनो जीवनविषये इति शेषः। स्निग्धपुरुषसन्निकर्षम् हितावहभृत्यस्य सान्निध्यम् परिहरति दूरीकरोति। यदि नाम हितचिन्तकभृत्यो तेन न पृथक् क्रियेत तदा संभाव्यते चैतत् स्वामी स्वभृत्यमुखेन किञ्चित् चेष्टामारभेत्। विस्मयात् दर्पात् स्वकम् कारकम् कार्यम् आत्मानम् आविष्करोति प्रथयति। उत अथवा सर्वारम्भसिद्धौ सर्वारम्भस्य सर्वविधस्वामिग्रहणरूपस्वकीयोद्यमस्य सिद्धौ परिपूर्णे रमणीयम् भवति चारुतरं भवति एतद् वार्त्ताप्रेषणम् किम् प्रद्योतसचिवो हीदानीम् स्वामिग्रहणेन संसिद्धमनोरथो जातः अधुना तद्ग्रहणवार्त्ताप्रेषणलीलया क्रीडति किमित्याशयः यौगन्धरायणस्य।

हंसक—आर्य ! मैं उस समय अपने को अनुगृहीत करने के लिये स्वामी के साथ जाने को समुद्यत था किन्तु शालङ्कायन ने मुझे आदेश दिया कि तुम जाओ और यह सब समाचार कौशाम्बी में निवेदन करो।

यौगन्धरायण— क्या उसने स्वामी की रक्षा की ओर से निराश करने के लिये ऐसा कहा अथवा कोई भी प्रेमी सेवक इनके सन्निकट न रहे इसलिये।

हंसक—और क्या कहा जा शकता है।

यौग०—तो क्या वह इस प्रकार के आश्चर्यपूर्ण स्वकीय वञ्चनात्मक कार्यों से अपने को प्रसिद्ध करने के लिये अपना वृत्त प्रकाशित करना चाह रहा है अथवा मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया इसलिये स्वामी के ग्रहण की वार्त्ता भेजकर उससे

हंसकः—अय्य ! अत्थि, पदक्खिणीकरअन्तो भट्टारं अन्तज्जलावगढाए दिट्ठीए वहुकं सन्दट्ठुकामेण विअ म्हि भट्टिणा उत्तो गच्छ। जोअन्ध- [आर्य ! अस्ति, प्रदक्षिणीकुर्वन् भर्तारमन्तर्जलावगाढया दृढया बहुकं सन्देष्टुकामेनेवास्मि भर्त्रोक्तः—गच्छ यौगन्ध० । (इत्यर्धोक्ते तिष्ठति ।)

यौगन्धरायणः— स्वैरमभिधीयताँ, स्वामिवाक्यमेतत् ।

हंसकः—जोअन्धराअणं पेक्खेहि त्ति । [यौगन्धरायणं प्रेक्षस्वेति ।]

यौगन्धरायणः—मा तावत् । सर्वसचिवमण्डलमतिक्रम्यैको यौगन्धरायणो द्रष्टव्य इत्याह ।

हंसकः—अहइं । [अथ किम् ।]

यौगन्धरायणः—तेन हि अनर्हप्रतिक्रियमनिर्विष्टभर्तृपिण्डमनुपकृत-

---

मामन्तरेण मामुद्दिश्य । अन्तर्जलावगाढया अश्रुपूर्णया दृष्टया नेत्रेण वहुलम् अत्यर्थम् स्वैरम् निः संकोचम् यथा स्यात्तथा अभिधीयताम् कथ्यताम् । सर्वसचिवमण्डलम् सर्वेषाम् निखिलानाम् सचिवानाम् अमात्यानाम् मण्डलम् समूहम् समस्तमन्त्रिवर्गमित्यर्थः । अतिक्रम्य विहाय अनर्हप्रतिक्रियम् प्रतिक्रियार्हं कर्म विनैव, अनिविष्टभर्तृपिण्डम् भर्तृपिण्डानृण्यमकृत्वा, अनुपकृतराजसत्कारम् राजसत्कारस्य कृतज्ञ-

---

आनन्दित होने के लिये ऐसा कर रहा है । अच्छा हंसक ! स्वामी ने मेरे विषय में कुछ नहीं कहा ।

हंसक—आर्य ! अवश्य कहा । जब मैं स्वामी की प्रदक्षिणा कर रहा था तब उन्होंने अपनी डबडबाई आँखों से बहुत संदेश भेजने की इच्छा करते हुए भी इतना ही—कहा : जाओ यौग० (इतना आधा वाक्य कहकर मौन हो जाता है) (नाम लेना अनुचित समझता है)

यौगन्धरायण—सङ्कोच त्यागकर कहो तुम तो स्वामी का संदेश कह रहे हो।

हंसक—(जाकर यौगन्धरायण से मिलो)

यौगन्ध०—ऐसी बात मत कहो । क्या समस्त मन्त्रिवर्ग को छोड़कर केवल मेरे लिये ही कहा कि यौगन्धरायण से जाकर मिलो ।

हंसक—और क्या ?

यौगन्धरायण—तो हंसक तुम्हीं बताओ क्या मेरे स्वामी शत्रु की प्रतिक्रिया

राजसत्कारं यदि खलु मां द्रष्टव्यं मन्यते स्वामी।

हंसकः—वाहं। [बाढम्।]

यौगन्धरायणः—पुरुषान्तरितं मां द्रक्ष्यति स्वामी,

रिपुनृपनगरे वा बन्धने वा वने वा
समुपगतविनाशः प्रेत्य वा तुल्यनिष्ठम्।
जितमिति कृतबुद्धिं वञ्चयित्वा नृपं तं
पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतां श्लाघनीयम्॥ १४॥

तामकृत्वा खलु निश्चयेन द्रष्टव्यम् निरीक्षणोयम्। पुरुषान्तरितम् परिगृहीतान्यपुरुषवेशम्।

अन्वयः—रिपुनृपनगरे वा बन्धने वा वने वा समुपगतविनाशः तुल्यनिष्ठम् प्रेत्य जितमिति कृतबुद्धिम् तं नृपं वञ्चयित्वा अधिगतराज्यः श्लाघनीयम् मां पार्श्वतः द्रक्ष्यति॥ १४॥

व्याख्या—रिपुनृपनगरे शत्रुभूपपुर्याम् वा वन्धने कारागृहे वा वने अरण्ये वा समुपगतविनाशः समुपगतः संप्राप्तः विनाशः अदर्शनं यस्य सः तुल्यनिष्ठम् समानावस्थम् प्रेत्य वा मरणं प्राप्य वा जितमिति कृतबुद्धिम् छलेन वत्सराज जितवानस्मीति बुद्धया मन्यमानम् तं नृपं प्रद्योतराजानम् वञ्चयित्वा उपायैश्छलयित्वा अधिगतराज्यः संप्राप्तराज्यः स्वामी श्लाघनीयम् प्रशंसास्पदम् मां यौगन्धरायणम् पार्श्वतः स्वपार्श्वे द्रक्ष्यति अवलोकयिष्यति।

किये बिना, पिण्ड से उद्धार हुए बिना, इतने दिनों तक सत्कार का उचित बदला चुकाये बिना ही निश्चित रूप से मुझे देखना उचित समझते हैं।

हंसक—हाँ।

यौग०—तो दूसरे पुरुष के रूप में मुझे स्वामी देख सकते हैं। वे मुझे शत्रु रूप उस राजा के नगर में अथवा कारागृह में अथवा वन में अथवा मर जाने पर स्वयं भी मुझे मरे हुए के रूप में इस प्रकार जहाँ कहीं भी रहेंगे मुझे वहीं अपने साथ देखेंगे। इस समय जो प्रद्योत स्वामी को छल कर अपने को विजयी मान रहा है मैं अपने जीवित रहते उसे हरा कर स्वामी को राजपद पर पुनः समासीन करा कर तब उनके प्रशंसा योग्य पार्श्व में निवास करूँगा। फिर तो स्वामी मुझे इस रूप से देखेंगे।

(नेपथ्ये)

हा हा भट्टा ! [हा हा भर्तः !]

यौगन्धरायणः—

एष शोकप्रतीकारो यथाशक्ति निवेद्यते ।
एतत् स्त्रीभिरसामर्थ्यं मन्त्रिणामनुवर्ण्यते ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! भट्टिमादा । [आर्य भर्तृमाता ।]

यौगन्धरायणः—किं किम् ?

प्रतीहारी—आह—

यौगन्धरायणः—किमिति ।

अन्वयः—एष शोकप्रतीकारः यथाशक्ति (मया) निवेद्यते । स्त्रीभिः एतत् मन्त्रिणाम् असामर्थ्यम् अनुवर्ण्यते ॥ १५ ॥

व्याख्या—एषः पूर्वोक्तशोकप्रतीकारः शोकस्य दुःखस्य प्रतीकारः वैरनिर्यातनोपायः यथाशक्ति स्वशक्त्यनुसारं निवेद्यते मयेति शेषः । स्त्रीभिः योषिद्भिः एतत् मन्त्रिणाम् सचिवानाम् असामर्थ्यम् निर्बलत्वम् अनुवर्ण्यते प्रतिपाद्यते । मया तु शक्त्यनुसारेण वैरनिर्यातनोपायः पूर्वम् निवेदितः । किन्तु अधुना स्त्रीभिः विलप्य मन्त्रिणाम् अशक्तित्वम् प्रतिपाद्यते इत्यर्थः ।

(नेपथ्य में)

हा स्वामिन् ! हा स्वामिन् !

यौग०—यही शोक को दूर करने का उपाय है जिसे मैं यथाशक्ति निवेदन कर रहा हूँ । किन्तु ये स्त्रियाँ तो अपने विलाप के द्वारा हम मन्त्रियों की अशक्तता प्रकट कर रही हैं ॥ १५ ॥

(प्रतीहारी प्रवेशकर)

प्रतीहारी—आर्य ! स्वामी की माता ।

यौग०—क्या क्या ?

प्रतीहारी—उन्होंने कहा है ।

यौग०—क्या कहा है ?

प्रतीहारी—एवंविहस्स सुहिज्जणेण परिगहीदस्स वच्छराअस्स अअं वुत्तन्तो ! किं सक्कं कत्तुं अन्तरेण विहाणं। ता सम्माणिअ सुहिज्जणं समत्थिअदु। जो खु दाणिं सङ्कटेसु वा ण विसीददि, विसमगदो वा ण पय्यवचिट्ठदि, वञ्चिदो वा ण णिब्वेदं गच्छदि, पडिघादेसु वा पाणा ण समुज्झदि, सो खु बुद्धिमन्तो पुच्छिज्जइ पढमं एव्व मे वच्छस्स वअस्सो पच्चा पमच्चो आणेदु मे पुत्तअं पुत्तओ त्ति। [एवंविधस्य सुहृज्जने परिगृहीतस्य वत्सराजस्यायं वृत्तान्तः। किं शक्यं कर्तुमन्तरेण विधानम्। तत् सम्मान्य सुहृज्जनं समर्थ्यताम्। यः खल्विदानीं सङ्कटेषु वा न विषीदति, विषमगतो वा न पर्यवतिष्ठते, वञ्चितो वा न निर्वेदं गच्छति, प्रतिघातेषु वा प्राणान् न समुज्झति, स खलु बुद्धिमान् पृच्छ्यते प्रथममेव मे वत्सस्य वयस्यः पश्चादमात्य आनयतु मे पुत्रकं पुत्रक इति।]

यौगन्धरायणः—अहो नु खल्वत्रभवत्या राजवंशश्रितं धीरवाक्यमभि-

व्याख्या—सुहृज्जनैः परिगृहीतस्य युक्तस्य। विधानमन्तरेण वैरनिर्यातनोपायं विना। समर्थ्यताम् कर्तव्यं निश्चीयताम् विषीदति विषादं न गच्छति, विषमगतः विषादं प्राप्तः न पर्यवतिष्ठते हतोत्साहस्सन् निरुद्योगं न तिष्ठति। दुःखापनयनाय सततं चेष्टते इत्यर्थः। वञ्चितः छलितः निर्वेदम् ग्लानिम्। प्रतिघातेषु निपद्यमानेषु। प्राणान् न समुज्झति न त्यजति। पृच्छ्यते आकार्यते जिज्ञासा विषयीक्रियते। वयस्यः सखा। अमात्यः मन्त्री अत्रभवत्या पूज्यया राजमात्रा। राजवंशाश्रितम् राजकुलव्यवहारोचितम् धीरवाक्यम सत्त्वसंपन्नवचनम्। अभि-

---

प्रतीहारी—यदि सुहृज्जनों से संयुक्त वत्सराज का यह समाचार है तो इस विषय में उपाय के अतिरिक्त क्रिया ही क्या जा सकता है। तो सुहृज्जनों को लेकर वस्तुतत्त्व का निश्चय करो। तुम तो सङ्कटावस्था में भी विषाद नहीं प्राप्त करते। अथवा होने पर भी चुपचाप नहीं बैठते। अथवा किसी से वञ्चना प्राप्त कर भी ग्लानि नहीं करते। अतः मैं तुम जैसे बुद्धिमान् से जिज्ञासा करती हूँ मेरे पुत्र के तुम सर्वप्रथम मुख्य मित्र हो, अमात्य तो बाद में हो, अतः हे पुत्र ! चाहे जैसे हो मेरे पुत्र को ला दो।

यौग०—अहो ! इन राजमाताने अपने वंश की मर्यादा के अनुकूल धैर्यपूर्वक

हितम् । अत्रभवत्या सम्भावनां पूजयामि । विजये ! आपस्तावत् ।

प्रतीहारी—अय्य ! तह । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आवो । [आर्य ! तथा । इमा आपः ।]

यौगन्धरायणः—आनय (आचम्य) विजये ! किमाह तत्रभवती ।

प्रतीहारी—आणेदु मे पुत्तअं पुत्तओ त्ति । [आनयतु मे पुत्रकं पुत्रक इति]

यौगन्धरायणः—हंसक ! किमाह स्वामी ।

हंसकः—जोअन्धरायणं पेक्खेहि त्ति । [यौगन्धरायणं प्रेक्षस्वेति ।]

योगन्धरायणः—विजये !

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव ।
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः ।। १६ ।।

हितम् उक्तम् । संभावनाम् आशंसाम् पूजयामि अनुमोदयामि ।

अन्वयः—राहुणा चन्द्रमा इव यदि स्वामी शत्रुबलग्रस्तः यदि राजानं न मोचयामि तदा यौगन्धरायणः न अस्मि ।। १६ ।।

व्याख्या—राहुणा तन्नामकेन ग्रहेण चन्द्रमा सोम इव यदि स्वामी शत्रुबलग्रस्तः शत्रुसैन्यगृहीतः यदि एतादृशमपि राजानम् न मोचयामि तदा यौगन्धरायणः न भवामि ! राहुग्रस्तश्चन्द्रो यथा त्वरितं मुक्ति लभते तथा स्वस्वामिनम् अहं

बातें कहीं हैं । मैं उनके इस प्रकार की आशंसा की प्रशंसा करता हूँ । विजये ! जल तो लाओ ।

प्रतीहारी—(निकलकर पुनः प्रविष्ट होकर) आर्य ! यह जल है ।

यौग०—लाओ । (आचमन कर) विजये ! राजमाता ने क्या कहा ?

प्रतीहारी—हे पुत्र ! मेरे पुत्र को ला दो ।

यौग०—अच्छा हंसक ! स्वामी ने क्या कहा ?

हंसक—यौगन्धरायण से जाकर मिलो ।

यौगन्धरायण—विजये ।

राहु से ग्रस्त चन्द्रमा जिस प्रकार शीघ्र ही मुक्त हो जाता है उसी प्रकार मैं शत्रुओं से पकड़े गये स्वामी को यदि न छुड़ा लूं तो मैं यौगन्धरायण नहीं ।। १६ ।।

प्रतीहारी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्ता ।)

(प्रविश्य)

निर्मुण्डकः—अय्य ! अच्छरिअं णिव्वुत्तं । भट्टिणो सन्तिणिमित्तं उवट्ठिअभोअणं वम्हणजणं पेक्खिअ केण वि किल उन्मत्तवेसधारिणा बह्मणेण उच्चं हसिअ उत्तं—सेरं सेरं अण्हन्तु भवन्तो अब्भुदअं खु इमस्स राअउलस्स भविस्सदि त्ति । तदो वअणसमआलं एव्व अदंसणं गदो । [आर्य ! आश्चर्यं निर्वृत्तम् । भर्तुः शान्तिनिमित्तमुपस्थितभोजनं ब्राह्मणजनं प्रेक्ष्य केनापि किलोन्मत्तवेषधारिणा ब्राह्मणेनोच्चं हसित्वोक्तं—स्वैरं स्वैरमश्नन्तु भवन्तः, अभ्युदयः खल्वस्य राजकुलस्य भविष्यतीति ततो वचनसमकालमेवादर्शनं गतः ।]

यौगन्धरायणः—अपि सत्यम् ।

(ततः प्रविशति ब्राह्मणः)

ब्राह्मणः—इमेऽत्रभवता परिगृहीता आत्मप्रयोजनोत्सृष्टाः परिच्छद-

---

शीघ्रं मोचयामीत्यर्थः । निर्वृत्तम् निष्पन्नम् । शान्तिनिमित्तम् दुरिष्टशमनार्थम् उपस्थितभोजनम् उपस्थितम् परिवेषितं भोजनं येभ्यः तम् तादृशम् ब्राह्मणजनम् ब्राह्मणगणम् प्रेक्ष्य अवलोक्य उन्मत्तवेषधारिणा उन्मत्तस्य वेषं धरति तच्छीलः तेन, स्वैरम् स्वच्छन्दं यथेष्टं वा अश्नन्तु अदन्तु भवन्तः । खलु निश्चयेन । वचनसमकालमेव कथनान्तरमेव अदर्शनम् अन्तर्धानम् गतः जातः ।

इमे मद्धस्तगताः अत्रभवता परिगृहीताः धारिताः । आत्मप्रयोजनोत्सृष्टा

प्रतीहारी—ऐसा ही हो (कहकर निकल जाती है) ।

(प्रवेश कर)

निर्मुण्डक—आर्य ! यह आश्चर्यजनक घटना घटी । शान्ति के निमित्त भोजनार्थ आये हुए ब्राह्मण जनों को देखकर उन्मत्त के जैसा वेष बनाये हुए किसी ब्राह्मण ने अट्टहास करते हुए कहा—आप लोग धीरे-धीरे भोजन करें । अवश्य ही अब इस राजवंश का अभ्युदय होनेवाला है । इतना कहकर वह अन्तर्हित हो गया ।

यौग०—क्या यह सत्य है ?

(तदनन्तर ब्राह्मण का प्रवेश)

ब्राह्मण—उस उन्मत्त ने आवश्यक वस्त्र धारण कर लेने के पश्चाद् जिन

विशेषाः। एभिः प्रच्छादितशरीरो भगवान् द्वैपायनः प्राप्तः।

यौगन्धरायणः—एवं, द्वैपायनः प्राप्तः।

ब्राह्मणः—बाढम्।

यौगन्धरायणः—तेन हि पश्यामस्तावत्।

ब्राह्मणः—पश्यतु भवान्।

यौगन्धरायणः—कथमन्यद् रूपमिव मे संवृत्तम्। हन्त भोः! गतोऽस्मि स्वामिसन्निकर्षमेव। इदानीं ममोपदेशार्थमिवोत्सृष्टाः।

उन्मत्तसदृशो वेषो धारितस्तेन साधुना।
मोचयिष्यति राजानं मां च प्रच्छादयिष्यति॥ १७॥

आत्मप्रयोजनं स्वकीयमर्थं परिधानरूपम् तस्य निष्पन्नतया उत्सृष्टाः परित्यक्ताः। परिच्छदविशेषाः आच्छादनयोग्योपकरणानि संवृत्तम् निष्पन्नम्। स्वामिसन्निकर्षम् स्वामिनो वत्सराजस्य सन्निकर्षम् सकाशम् ममोपदेशार्थम् इमानि परिच्छदानि परिधाय यथेच्छम्' इत्येवंरूपोपदेशाय इव उत्सृष्टाः संत्यक्ताः।

अन्वयः—तेन साधुना उन्मत्तसदृशः वेषः धारितः (अयं वेषः) राजानं मोचयिष्यति मां प्रच्छादयिष्यति च॥ १७॥

व्याख्या—तेन साधुना द्वैपायनेन। उन्मत्तसदृशः उन्मत्तानुरूपः वेषः धारित कारितः। स वेषः राजानम् वत्सराजम् मोचयिष्यति बन्धनादुन्मुक्तं करिष्यति।

आच्छादनीय वस्त्रों को छोड़ दिया था उन्हें आपने ग्रहण कर लिया।

अब वस्त्रों से अपने शरीर को ढँक कर भगवान् वेदव्यास पधारे हुए हैं।

यौगन्धरायण—सचमुच द्वैपायन पधारे हुए हैं।

ब्राह्मण—हाँ।

यौगन्धरायण—तब तो उन्हें चल कर देखूं।

ब्राह्मण—अवश्य देखें।

यौग०—अरे! यह मेरा रूप क्यों दूसरा हो गया। भाई यह बड़े आश्चर्य की बात हुई मैं तो स्वामी के सन्निधि में पहुँच गया हूँ। मालूम होता है मुझे उपदेश देने के लिये ही उन्होंने ये परिच्छद (आच्छादनार्ह वसन) छोड़ रखे थे।

उस साधु ने मेरा वेष उन्मत्त के जैसा बना दिया। अवश्य ही मेरा यह वेष

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! भट्टिमादा आह—इच्छामि पुत्तअं पेक्खिदुं त्ति। [आर्य ! भर्तृमात्राह—इच्छामि मे पुत्रकं प्रेक्षितुमिति।]

यौगन्धरायणः—अयमहमागच्छामि। आर्य ! शान्तिगृहे मां प्रतीक्षस्व।

ब्राह्मणः—बाढम्। (निष्क्रान्तः।)

यौगन्धरायणः—हंसक। विश्रम्यतामिदानीम्।

हंसक—अय्य ! तह। [आर्य ! तथा।] (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—विजये ! गच्छाग्रतः।

प्रतीहारी—अय्य ! तह। [आर्य ! तथा।]

यौगन्धरायणः—भो !

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।

मां प्रच्छादयिष्यति निगूहयिष्यति। तेनाहं प्रच्छन्नो भूत्वा यथेष्टं विचरामीत्यर्थः ॥ १७ ॥

अन्वयः—मथ्यमानात् काष्ठात् अग्निः जायते। खन्यमाना भूमिः तोयम् ददाति। सोत्साहानां नराणाम् (किमपि) असाध्यं नास्ति। मार्गारब्धाः सर्व-

---

राजा को मुक्त करेगा। और मुझे छिपायेगा भी ॥ १७ ॥

(प्रतीहारी प्रवेश कर)

प्रतीहारी—आर्य ! राजमाता ने कहा है कि पुत्र को देखना चाहती हूँ।

यौग०—यह मैं आ ही रहा हूँ। आर्य ! शान्तिगृह में मेरी प्रतीक्षा करो।

ब्राह्मण—ठीक है (इतना कह कर चला जाता है)

यौगन्धरायण—तो हंसक ! इस समय तुम भी विश्राम करो।

हंसक—आर्य ! ऐसा ही करूँगा। (कहकर चला जाता है)

यौग०—विजये ! आगे चलो।

प्रतीहारी—आर्य ! ऐसा ही करती हूँ।

यौग०—अरे ! अतिशय रगड़ करने पर काठ से भी आग उत्पन्न होती है।

सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥ १८ ॥

(निष्क्रान्तः)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

●

यत्नाः फलन्ति ॥ १८ ॥

व्याख्या—मथ्यमानात् संघर्षणात् काष्ठात् अग्निः पावकः जायते प्रादुर्भवति । खन्यमाना विदार्यमाणा भूमिः पृथ्वी तोयम् सलिलम् ददाति । सोत्साहानाम् उत्साह युक्तानाम् नराणाम् किमपि असाध्यम् असंभवम् नास्ति । मार्गारब्धाः मार्गेण समुचितेन पथा आरब्धाः प्रस्तुताः सर्वयत्नाः सर्वोपायाः फलन्ति फलं ददति ।

अङ्कलक्षणम् यथा—अङ्क इति रूढ शब्दो भावैश्च रसैश्च रोहत्यर्थान् नाना-विधानयुक्तो यस्मात्त स्माद् भवेदङ्कः ।

यथार्थस्य समाप्तिर्यस्य च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्कः सदावगन्तव्यः ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायणे प्रथमाङ्कस्य विवृतिः समाप्ता ॥

●

क्रमशः खनने पर पृथ्वी से भी जल निकलने लगता है। इस जगत् में उत्साही मनुष्यों के लिये कोई भी कार्य असंभव नहीं। उचित ढंग से आरम्भ किये गये सभी उपाय फलवान् होते हैं ॥ १७ ॥

(निकल जाते हैं)

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के प्रथम अङ्क की भाषा टीका समाप्त ।

●

द्वितीयोऽङ्कः

(तता प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—आभीरक ! अभीरक ! गच्छ महासेनवचनात् प्रतीहार-रक्षकं ब्रूहि—एष काशिराजोपाध्याय आर्यजैवन्तिरद्य दौत्येन प्राप्तः। अस्य सामान्यदूतसत्कारं पृष्ठनः कृत्वा सुखमिव निवेश्यताम् । यथा चातिथिसत्कारं जानीयात् तथा प्रयतितव्यम् इति। भोः! एवं नामा-हन्यहनि गोत्रानुकूलेभ्यः राजकुलेभ्यः कन्याप्रदानं प्रति दूतसम्प्रेषणा

व्याख्या—महासेनवचनात महती सेना यस्य सः महासेनस्तस्य वचनात् आदेशात् । प्रतीहारस्य द्वारस्य रक्षकम द्वारपालमित्यर्थः । काशिराजोपाध्यायः काशिराजस्य उपाध्यायः अध्यापकः दौत्येन दूतकर्मणा प्राप्तः समागतः । पृष्ठतः कृत्वा वर्जयित्वा । सर्वसाधारणदूतसत्कारं विहाय विशेषदूतमिव सत्कारम् सत्क्रियाम् विधाय यथा येन प्रकारेण अतिथिसत्कारं विजानीयात् अनुमोदेत प्रयतितव्यम् व्यवसितव्यम् । एवम् नाम=एवमेव अहनि अहनि प्रतिदिनम् । गोत्रानुकूलेभ्यः उत्तमोत्तमगोत्रोत्पन्नेभ्यः राजकुलेभ्यः राजवंशेभ्यः । दूतसंप्रेषणादूतानां प्रेषणम् । कन्याग्रहणार्थम् उत्तमोत्तमकुलीना राजानः स्वान् दूतान् प्रेषयन्ति परन्तु महासेनः प्रद्योतः । प्रत्याचष्टे प्रत्याख्याति । अनुगृह्णीते अङ्गीकरोति । किन्तु

(इसके अनन्तर कञ्चुकीय का प्रवेश)

काञ्चुकीय—आभीरक आभीरक ! महासेन की ओर से प्रतीहारी से जाकर कहो कि ये काशिराज के उपाध्याय आर्य जैवन्ति दूत बनकर आये हुए हैं । तो सामान्य दूत की तरह इनका सत्कार न कर विशेष रूप से इनका सत्कार कर सुखपूर्वक ठहरावें । इतना ही नहीं इन्हें यह ज्ञान भी हो जाय कि अतिथि-सत्कार किस प्रकार किया जाता है एतदर्थं भी तुम्हें प्रयत्न करना चाहिये । भाई ! इस प्रकार प्रतिदिन उत्तम उत्तम गोत्र वाले राजवंशों के यहाँ से कन्या से विवाह करने के लिये दूतों का आवागमन हो रहा है किन्तु महासेन न तो उन्हें मना ही करते है और न उनसे विवाह करने की बात ही करते हैं । यह क्या बात है ?

वर्तते। न खलु महासेनः कश्चिदपि प्रत्याचष्टे, न चाप्यनुगृह्णीते। किन्नु खल्विदम्। अथवा दैवमत्र कन्याप्रदानेऽधिकृतम्। कुतः,

व्यक्तं न तावत् समुपैति तस्य दूतो वधूत्वे विहिता हि यस्य।
ततो नरेन्द्रेषु गुणान् नरेन्द्रो न वेत्ति जानन्नपि तत्प्रतीक्षः॥ १॥

अये ! संलीयमानान्तःपुरचरः सनाथीभवत्ययं देशः। अये ! अयं महासेनः य एष।

दूर्वाङ्कुरस्तिमितनीलमणिप्ररोहैः
पीताङ्गदैः परिगतैः परिणीवितांसः।

खल्विदम्, एतदनुचितमित्यर्थः। अथवा अत्र कन्याप्रदानविषये परिणयः दैवम्। अधिकृतम् भाग्याधीनम्।

अन्वयः—यस्य वधूत्वे सा विहिता तस्य दूतः तावत् न समुपैति इति व्यक्तम्। अतः तत्प्रतीक्षः नरेन्द्रः नरेन्द्रेषु गुणान् जानन्नपि न वेत्ति॥ १॥

व्याख्या—यस्य वधूत्वे विहिता यस्य भार्याभवितुमर्हतीयं वासवदत्ता तस्य वरस्य दूतः तावद् अद्यावधि न समुपैति नैवायाति, इति व्यक्तम् सुस्पष्टम्। ततः तस्मात्कारणात् तत्प्रतीक्षः तदवलोकनपरः नरेन्द्रः प्रद्योतः नरेन्द्रेषु राजगणेषु गुणान् शौर्यादीन् जानन्नपि न वेत्ति न जानाति।॥ १॥

संलीयमानान्तःपुरचरः संलीयमानाः गुप्तरूपेणावस्थिताः अन्तःपुरचराः अन्तःपुरगूढपुरुषाः यस्मिन् स तथोक्तः। सनाथीभवति सान्निध्यं भवति।

अन्वयः—दूर्वाङ्कुरस्तिमितनीलमणिप्ररोहैः परिगतैः पीताङ्गदैः परिणीवि-

---

अथवा कन्या के विवाह में भाग्य ही सब कुछ है। क्योंकि—

वासवदत्ता जिसकी भार्या होनेवाली है उसका दूत अभी तक नहीं आया है यह बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रही है। क्योंकि यह राजा इन राजाओं में रहनेवाले गुणों को जानता हुआ भी अभी तक अनजान-सा बना हुआ है॥ १॥

अरे ! यह स्थान तो छिपे हुए अन्तःपुरचारी गुप्तचरों से सर्वथा सनाथीकृत है। अरे यही तो महासेन हैं जो यह—

दूब के अङ्कुर के समान सर्वथा चिकने नीलमणियों से जड़े हुए सुवर्णनिर्मित कङ्कणों के धारण करने से विशाल कन्धे से ये युक्त हैं। जिस प्रकार कार्त्तिकेय घने

अस्माद् घनात् कनकतालवनैकदेशा-
न्निर्धावतः शरवणादिव कार्त्तिकेयः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति राजा सपरिवारः ।)

राजा—

मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणुं नरेन्द्रा
मुकुटतटविलग्नं भृत्यभूता वहन्ति ।

तांसः (एष महासेनः) अस्माद् घनात् कनकतालवनैकदेशात् शरवणात् कार्त्तिकेय इव निर्धावितः ॥ २ ॥

व्याख्या—दूर्वाङ्कुरस्तिमितनीलमणि प्ररोहैः दूर्वाङ्कुरा इव स्तिमिताः स्निग्धाः चिक्कणाः नीलमणिप्ररोहाः नीलरत्नाङ्कुराः येषु तैः परिगतैः परितः ! समाविष्टैः पीताङ्गदैः स्वर्णनिर्मितकेयूरैः परिणीवितांसः परिणीवितः परिवृंहित अंसो स्कन्धो यस्य सः । घनात् सान्द्रात् कनकतालवनैकदेशात् कनकस्य चम्पकस्य तालस्य च तयोः वनम् तस्य एकदेशात् एकभागात् शरवणात् कार्त्तिकेय इव निर्धावितः समागच्छति ।

विष्कम्भकलक्षणं यथा—वृत्तर्वत्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात्स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

अन्वयः—नरेन्द्राः भृत्यभूताः इव मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणुं मुकुटतटविलग्नं

सरपत के वनों से निकल कर दौड़ रहे थे उसी प्रकार यह भी चम्पक और ताड़ वृक्ष से संयुक्त घने वन के एक भाग से निकलकर इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥ २ ॥

(इतना कहकर कञ्चुकी चला जाता है)

॥ विष्कम्भक ॥

(अपने परिवार के साथ राजा का प्रवेश)

राजा—मेरे अश्वों के खुरों से उठी हुई धूलि अपने मुकुटों में धारण किये

न च मम परितोषो यन्न मां वत्सराजः
प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्तः ॥ ३ ॥

बादरायण !

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महासेनः।

राजा—निवेशितो जैवन्तिः।

काञ्चुकीयः—निवेशितोऽनुरूपतश्च सत्कृतः।

राजा—न्याय्यं कृतं राजवंश्यगुणाभिलाषिणा। समागतानां युक्तः

वहन्ति। किन्तु एतावता अपि मम परितोषः न च। यत् गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्तः वत्सराजः मां न प्रणमति ॥ ३ ॥

व्याख्या—नरेन्द्राः राजानः भृत्यभूताः सेवका इव मम प्रद्योतस्य हयखुरभिन्नम् अश्वखुरचूर्णम् मार्गरेणुम् मुकुटतटविलग्नम् किरीटदेशगतम् वहन्ति धारयन्ति। मम पृष्ठानुगमनं कुर्वन्तीत्यर्थः। किन्तु एतावता गौरवेण मम परितापः। शान्तिः न च। यत् यस्मात् कारणात् गुणशाली प्रशस्तगुणयुक्तः कुञ्जरज्ञानदृप्तः हस्तिलक्षणज्ञानाभिमानी वत्सराजः उदयनः मां न प्रणमति प्रह्वीभवति ॥ ३ ॥

निवेशितः संस्थापितः। राजवंश्यगुणाभिलाषिणा राजवंशे भवः राजवंश्यः स चासौ गुणश्च तमभिलषति तच्छीलः राजकीयगुणपक्षपातपरेण भवता न्याय्यम् उचितम् कृतम् विहितम्। समागतानाम् अभ्यागतानां पूजया दानमानादिसत्कारेण प्रतिग्रहः स्वागतः युक्तः उचितः। परच्छन्देन पराभिप्रायप्रतीक्षया तिष्ठति। अयं

हुए ये राजा लोग भृत्य की भाँति मेरा अनुसरण कर रहे हैं। किन्तु इतने पर भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है क्योंकि हस्तिशास्त्र का विशेषज्ञ गुणशाली वत्सराज अभी तक मुझे प्रणाम नहीं करता है। अच्छा बादरायण। (बादरायण का प्रवेश)

कञ्चुकीय—महासेन की जय हो।

राजा—जीवन्ति को उचित आवास दिया गया।

कञ्चुकीय—उचित आवास तो दिया ही। उनके अनुरूप सत्कार भी किया।

राजा—राजवंश के गुणों को चाहने वाले आपने अच्छा किया। अभ्यागत

पूजया प्रतिग्रहः। अथ सर्वोऽपि कन्याप्रदानं प्रति पृष्टश्चेत् परच्छन्देन तिष्ठति। (काञ्चुकीयमवलोक्य) बादरायण! वक्तुकाममिव त्वां लक्षये।

काञ्चुकीयः—न खलु किञ्चित्। कन्याप्रदानं प्रति समुत्पन्नोऽभिमर्शः।

राजा—अलमलं परिहृत्य। सर्वसाधारणो ह्येष विधिः। अभिधीयताम्।

काञ्चुकीयः—महासेन! एषा मे विवक्षा—एवं नामाहन्यहनि गोत्रानुकुलेभ्यो राजकुलेभ्यः कन्याप्रदानं प्रति दूतसम्प्रेषणा वर्तते। न च महासेनः कञ्चिदपि प्रत्याचष्टे, न चाप्यनुगृह्णीते किन्तु खल्विदमिति।

भावः—कन्यापाणिग्रहणार्थं पृष्टः सन् सचिवादिः स्वाभिप्राय लेशमात्रमपि न प्रकटयति, किन्तु ममाभिप्रायं विज्ञातुमिच्छया तिष्ठतीति भावः। अभिमर्शः विचारः। अलमलं परिहृत्य स्वविचारो न गोपनीयः। यद्वक्तुकामोऽसि तत् कथय तत्र संकोचो न कर्त्तव्य इति भावः। सर्वसाधारणो ह्येष विधिः कन्यापरिणयविषये सर्वैरपि स्वाभिप्रायः स्वच्छन्दतया प्रकटनीयः। इत्यर्थः। विवक्षा वक्तुमिच्छा

जनों की पूजा तथा सत्कार द्वारा स्वागत करना ही चाहिये। यदि मैं कन्या वासवदत्ता के परिणय के विषय में जिस किसी से पूछता हूँ तो वे सभी अपना विचार प्रकट नहीं करते केवल दूसरे का ही अभिप्राय जानना चाहते हैं।

(कञ्चुकी की ओर देखकर)

बादरायण! मालूम होता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो?

कञ्चुकीय—महाराज और कुछ नहीं। कन्या के विवाह के विषय में एक विचार उत्पन्न हुआ है।

राजा—तो उसे गुप्त क्यों रखते हो? इस विषय में तो सर्वसाधारण जनों को भी नहीं छिपाना चाहिये। कहो।

कञ्चुकीय—महासेन! मैं यही कहना चाहता हूँ कि इसी प्रकार प्रतिदिन ही उत्तमोत्तम गोत्र वाले राजवंशों के यहाँ से कन्या के विवाह के विषय में दूतों का आना जाना जारी है। किन्तु महासेन न तो उनका प्रत्याख्यान करते हैं और न अनुमोदन ही करते हैं। यह क्या बात है?

राजा—बादरायण ! एवमेतत्। अतिलोभाद् वरगुणानामतिस्नेहाच्च वासवदत्तायां न शक्नोमि निश्चयं गन्तुम्।

कुलं तावच्छ्लाघ्यं प्रथममभिकाङ्क्षे हि मनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्।
ततो रूपे कान्ति न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः ॥ ४ ॥

विवक्षा। अतिलोभात् उत्तमोत्तमवरप्राप्तिकामात् वरगुणानाम् वरगुणविषये अतिस्नेहाच्च अत्यादराच्च।

अन्वयः—हि प्रथमम् तावत् मनसा श्लाध्यं कुलम् अभिकाङ्क्षे ततः सानुक्रोशम् एष गुणा मृदुः बलवान् ततः रूपकान्तिम् न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात् अपि (एतदिच्छामि) ततः वीर्योदग्रम् वरमिच्छामि, हि युवतयः न परिपाल्या इति न ॥ ४ ॥

व्याख्या—कन्यावरवरणविषये वरस्य गुणान् प्रस्तौति प्रद्योतः—

हि निश्चयेन प्रथमम् आदौ तावत् मनसा चित्तेन (वरस्य) श्लाध्यम् प्रशंसार्हम् कुलम् वंशम् अभिकाङ्क्षे कामये। ततः सानुक्राशम् अनुक्रोशेन सहितम् अनुकम्पायुतम् कामये हि यत् एष दयात्मकः गुणः मृदुरपि कोमलवृत्तिरपि बलवान् प्रबलो भवति ततः तदनन्तरम् रूपे आकृतौ कान्तिम् द्युति शोभां छविं वा इच्छामि एतच्च न खलु गुणतः एतच्च सौन्दर्ययुक्तस्य रूपस्य गुणेषु गणना वर्त्तते न खलु एतावता रूपसंपन्नं वरमिच्छामि किन्तु स्त्रीजनभयादपि तादृशं वरमिच्छामि यतः। स्त्रियः सौन्दर्ययुक्तं वरमभिनन्दन्ति 'कन्या वरयते रूप'मिति अभियुक्तोक्तेः। ततः वीर्योदग्रम् वीर्येण शौर्येण ओजसा पराक्रमेण च उदग्रम् समुन्नतम् वरमिच्छामि स्त्रीणां परिपाल्यत्वान्निर्वीयं वरं नेच्छामीत्याह हि यतः युवतयः न परिपाल्या इति न किन्तु सर्वतोभावेन परिपाल्या एवेत्यर्थः।

राजा—बादरायण ! तुम जैसा कह रहे हो बात वैसी ही है। अत्यन्त उत्कृष्ट वर प्राप्ति के लोभ से तथा वर में वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त स्नेह से वासवदत्ता के विवाह के विषय में अभी तक निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ।

सर्वप्रथम तो मैं वर का उत्तम प्रशंसित कुल चाहता हूँ इसके पश्चात् चाहता कि वह सानुकोश (दयावान्) हो 'क्योंकि यह गुण मृदु होते हुए भी श्रेष्ठ है।

काञ्चुकीयः—महासेनं वर्जयित्वा न हीदानीमेते गुणाः क्वचिदेकस्था दृश्यन्ते ।

राजा—अतः खलु चिन्त्ये ।

कन्यायाा वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।
भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ॥ ५ ॥

दुहितुः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः । तस्माद् देवीं तावदाहूयताम् ।

अन्वयः—कन्यायाः वरसम्पत्तिः प्रायः पितुः प्रयत्नतः भवति । शेषं भाग्येषु आयत्तम् । च दृष्टपूर्वम् अन्यथा न भवति ॥ ५ ॥

व्याख्या:—कन्यायाः कमनीयत्वात् कन्या तस्याः परिणययोग्यायाः वरसम्पत्तिः वरोपलब्धिः पितु; जनकस्य प्रयत्नतः प्रयासतः भवति । शेषम् वरप्राप्त्यतिरिक्तम् स्रक्चन्दनताम्बूलादिभोगम्' भाग्येषु नियतिषु आयत्तम् अधीनम् । दृष्टपूर्वम् आलोचितपूर्वम् पूर्वमिदं करणीयं न वेति विविच्य संपादितं कर्म अन्यथा निष्फलं न भवति ॥ ५ ॥ दुहितुः कन्यायाः प्रदानकाले परिणयावसरे दुःखशीलाः दुःखस्वभावयुक्ताः आहूयताम् आकार्यताम् ।

तदनन्तर वर के रूप में कान्ति और सौदर्य चाहता हूँ, ऐसा केवल गुण के कारण ही नहीं चाहता किन्तु स्त्रियाँ भी ऐसा चाहती है कि उन्हें सुन्दर वर मिले इसलिये उनका भी भय है । इसके बाद पराक्रमशील भी वर चाहता हूँ क्योंकि पराक्रम के द्वारा ही स्त्रियाँ सुरक्षित रखी जा सकती हैं ।

कञ्चुकीय—तो महासेन को छोड़कर इतने समुदित गुण एक में मिलना संभव नहीं है ।

राजा—इसीलिये तो मैं चिन्तित हो रहा हूँ !

पिता के प्रयास से कन्या को वर की प्राप्ति होती है किन्तु वर के अतिरिक्त उसके स्रक् चन्दनादि उपभोग की प्राप्ति कन्या के भाग्य पर निर्भर है । फिर जो भी काम भली भाँति देख-सुनकर किया जाता है वह निष्फल नहीं होता ॥ ५ ॥

एक बात और है कन्या के विवाह के विषय में मातायें दुःखी ही रहती हैं । इसलिये प्रथम देवी (रानी) को बुलाओ ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः । (निष्क्रान्तः)

राजा—भोः काशीराजदूतसम्प्रेषणेन वत्सराजग्रहणार्थं गतं शालङ्कायनं प्रति गता मे बुद्धिः । किन्तु खल्वद्यापि वृत्तान्तं न प्रेषयति स ब्राह्मणः ।

कामं या तस्य सा लीला तवैवानुगतं मनः ।
ये त्वस्य सचिवाः सर्वे यत्नमास्थाय ते स्थिताः ॥ ६ ॥

(ततः प्रविशति देवी सपरिवारा ।)

देवी—जेदु महासेणो । [जयतु महासेनः ।]

राजा—आस्यताम् ।

अधुना एकसम्बन्धिज्ञानमपरसंबन्धिज्ञानं स्मारयतीति न्यायेनाह काशिराजेति काशिराजदूतसप्रेषणेन काशिराजेन यद् दूतस्य प्रेषणं तेन वत्सराजग्रहणार्थम् उदयनवशीकर्त्तुम् । गता संप्राप्ता ।

अन्वयः—या सा तस्य लीला तत्रैव मनः कामम् अनुगतम् । परन्तु ये अस्य सचिवाः सर्वे यत्नम् आस्थाय स्थिताः ।

व्याख्या—या सा प्रसिद्धा तस्य वत्सराजस्य लीला गजाखेटरूपा क्रीडा तत्रैव तस्यामेव क्रीडायाम् तस्य मनः चित्तम् कामम् यथेष्टम् अनुगतम् संलग्नमस्ति । तु परन्तु ये अस्य सचिवाः अमात्याः सहचरा वा सन्ति ते सर्वे यत्नम् उपायम् आस्थाय आश्रित्य स्थिता इत्यनेन ज्ञायते यत् वत्सराजसहचरा मन्त्रिणश्च स्वकार्ये अप्रमत्ताः स्वामिभक्ताश्च सन्ति ॥ ६ ॥

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । कहकर चला जाता है ।

राजा—अरे काशिराज के दूत प्रेषण के सबंध से मुझे वत्सराज के ग्रहण के लिये शालङ्कायन की याद हो आई है । ऐसी क्या बात हैं जो उस ब्राह्मण ने आज तक समाचार भी नहीं दिया ।

ऐसे तो उस वत्सराज का मन अपने प्रिय आखेट से भलीभांति लग गया है उधर उसके मन्त्री भी नाना प्रकार के उपायों के द्वारा (उसके संरक्षण में) वहीं लगे हुए हैं ॥ ६ ॥

(तदनन्तर परिवार सहित रानी का प्रवेश)

देवी—महासेन सर्वोत्कृष्ट रूप में विद्यमान रहें ।

राजा—महारानी बैठिये ।

देवी—जं महासेणो आणवेदि । (उपविशन्ति) । [यन्महासेन आज्ञापयति]

राजा—वासदत्ता क्व ?

देवी—उत्तराए वेदालि आए सआसे वीणं सिक्खिदुं णारदीअं गआ आसी । [उत्तराया वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत् ।]

राजा—कथमुत्पनोऽस्या गन्धर्वेऽभिलाषः ।

देवी—केण वि किल उग्घादेण कञ्चणमालं वीणाजोमां करअन्ति पेक्खिअ सिक्खिदुकामा आसी । [केनापि किलोद्धातेन काञ्चनमालां वीणा-योग्यां कुर्वंतीं प्रेक्ष्य शिक्षितुकामासीत् ।]

राजा—सदृशं बाल्यस्य ।

देवी—महासेणं वि किं विण्णविदुकामा म्हि । [महासेनमपि किमपि विज्ञापयितुकामास्मि ।

राजा—किमिति ।

उत्तरायाः वैतालिक्याः उत्तरानाम्न्या प्रातःकालीनस्तुतिपाठेन प्रबोधकर्त्र्याः 'वैतालिका बोधकरा' इति कोशात् । सकाशं समीपे । नारदीयपद्धतिविशिष्टाम् । शिक्षितुम् जिज्ञासितुम् । गान्धर्वे संगीतविद्यायाम् । अभिलाषः अभिरुचिः । उद्घातेन प्रसङ्गप्राप्तेन; काञ्चनमालाम् तन्नाम्नीं वासवदत्तासखीम् । वीणायोग्याम् वीणावादनाभ्यासपराम् । बाल्यस्य शैशवस्य । सदृशम् अनुरूपम् । विज्ञापयितु-

---

देवी—जैसी महाराज की आज्ञा । (बैठ जाती हैं)

राजा—इस समय वासवदत्ता कहाँ पर है ?

देवी—उत्तरा नाम की वैतालिकी के पास वीणा पर नारदीय पद्धति का गान सीखने गई हैं ।

राजा—गान-विद्या में उसकी अभिरुचि किस प्रकार हुई ?

देवी—किसी प्रसङ्गवश काञ्चनमाला को वीणा का अभ्यास करते देख. उसे भी सीखने की इच्छा उत्पन्न हो गई ।

राजा—यह तो उसके बाल्यावस्था के अनुरूप ही है ।

देवी—मैं भी महाराज से कुछ निवेदन करना चाहती हूँ ।

राजा—वह क्या ?

देवी—आअय्यं इच्छामि त्ति। [आचार्यमिच्छामीति ।]

राजा—उपस्थितविवाहकालायाः किमिदानीमाचार्येण । पतिरेवैनां शिक्षयिष्यति ।

देवी—हं एसो दाणि मे दारिआए काल्हो । [हम् एष इदानीं मे दारिकायाः कालः]

राजा—भोः ! नित्यं प्रदीयतामित्यस्माननुरुध्य किमिदानीं सन्तप्यसे ।

देवी—अभिप्पेदं मे पदाणं । विओओ मं सन्तावेदि ! अह कस्स उण दिण्णा । [अभिप्रेतं मे प्रदानम् । वियोगो मां सन्तापयति । अथ कस्मै पुनर्दत्ता ।]

राजा—न तावन्निश्चयो गम्यते ।

कामा निवेदनाभिलाषिणी । आचार्यम् आचरति आचारयति वा तम् । शिक्षकम् उपस्थितविवाहकालायाः उपस्थितः संप्राप्तः विवाहस्य परिणयस्य कालः समयो यस्याः सा तस्याः । इदानीम् आचार्येण किम् आचार्यस्यावश्यकता नास्तीत्यर्थः । शिक्षयिष्यति ज्ञानं दास्यति । हम् इदमव्ययम् रोषभाषणे अनुनये च । 'हमिति रोषभाषणेऽनुनयेऽपि चेति क्रियाकलापे । दारिकायाः कालः न विवाहकाल इत्यर्थः । नित्यम् प्रतिदिनम् प्रदीयताम् कन्यादानं योन्यतमाय वरायेति शेषः इति अस्मान् उपरुध्य आग्रहपूर्वकं संप्रार्थ्य इदानीम् अधुना संतप्यसे किम् शोकाकुला जाताऽसि किम् ।। ७ ।।

देवी—एक आचार्य चाहती हूँ।

राजा—जब इसका विवाहकाल उपस्थित ही है तो आचार्य की क्या आवश्यकता ? इसका पति ही आचार्य बन कर इसे सिखायेगा ।

देवी—हूँ, आप यह क्या कह रहे हैं, अभी तो इसके लड़कपन का समय है ।

राजा—अभी तक तुम नित्य ही इसके विवाह का अनुरोध किया करती थी अब क्यों परिताप करती हो ?

देवी—लड़की का विवाह तो मुझे भी अभीष्ट है। विवाह हो जाने पर इसका वियोग मुझे संताप उत्पन्न कर रहा है। अच्छा आपने इसको किसे देने का निश्चय किया है ?

राजा—अभी तक तो कुछ निश्चय नहीं कर पाया हूँ ।

देवी—इदाणिं पि ण दाव। [इदानीमपि न तावत्।)

राजा—

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः॥ ७॥

सर्वथा श्वसुरपरिचरणसमर्थे वयसि वर्तते वासवदत्ता। एष चापरः काशिराजोपाध्याय आर्यजैवन्तिरद्य दौत्येन प्राप्तो विलोभयति मां चारित्रेण। (आत्मगतम्) न किञ्चिदाह। अश्रुपूर्वा व्याकुला कथं निश्चयं गमिष्यति। भवतु, निवेदयाम्यस्यै। (प्रकाशम्) श्रूयन्तेऽस्मत्सम्बन्धप्रयोजनागता राजानः।

मे मम कन्याप्रदानम् अभिप्रेतम् इष्टम्। संतापयति व्यथयति। न तावन्निश्चयो गम्यते अद्यावधि वरो न निश्चित इत्यर्थः।

अन्वयः—(कन्या) अदत्ता इति लज्जा आगता. दत्ता इति मनः व्यथितम्-धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ताः मातरः दुःखिताः भवन्ति खलु॥ ७॥

व्याख्या—कन्या अदत्ता न दत्तेत्यदत्ता योग्यतमाय वराय न प्रदत्ता अपरिणीतेत्यर्थः इति हेतोः लज्जा व्रीडा आगता भवतीति शेषः। दत्ता परिणीता इति मनः व्यथितम् भवति दत्ता सुखं प्राप्स्यति न वेत्याशङ्कया कन्यावियोगचिन्तया वा हृदयं नितरां व्यथते। एवं धर्मस्नेहान्तरे अदत्ते दशपूर्वान् दशापरान् पुरुषानात्मनश्च पवित्रीकरणरूपो धर्मो न प्राप्यते दत्ते तु जातवियोगात् तदुपरिलालनप्रीणनादिस्नेहो न कर्त्तुं पार्यते इति स्नेहाकुलता एवमुभयोरन्तरे मध्ये न्यस्ताः निक्षिप्ताः मातरः दुःखिताः भवन्ति खलु निश्चये। श्वसुरपरिचरणसमर्थे

देवी—क्या अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ ?

राजा—कन्या का विवाह न करने पर लाज आती है, और विवाह कर देने पर मन दुःखी रहता है। विशेष कर मातायें एक ओर तो कन्यादान न करने से धर्म नहीं, दूसरी ओर कन्यादान कर देने पर उनसे स्नेह का दुःख, इस प्रकार दोनों के मध्य में स्थित हो दुःख का अनुभव करती हैं॥ ७॥

फिर भी वासवदत्ता सब प्रकार से श्वशुर के सेवा योग्य तो हो ही गई है। दूसरी बात यह है कि इसी निमित्त काशिराज के उपाध्याय जैवन्ति दूत बन कर

देवी—किं दाणि वित्थरेण। जहिं दइअ ण सन्तप्पामो, तहिं दीअदु।
[किमिदानीं विस्तरेण। यत्र दत्त्वा न सन्तप्यामहे, तत्र दीतयात्।]

राजा—अहो महान् खलु लीलाभिहितो दुःखविस्तर इदानीं पश्चादुपालम्भनं श्रोतुम्। तस्माद् देवी तावन्निश्चयं गच्छतु। श्रूयताम्—

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो
वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः।

श्वशुरसेवायोग्ये वयसि अवस्थायाम्। विलोभयति मां चारित्रेण स्वसद्व्यवहारेण लोभयति आकृष्टं करोतीत्यर्थः। अश्रुपूर्वा रोदमाना वर्त्तते कथम् निश्चयं गमिष्यति करिष्यति। किमिदानीम् विस्तरेण उक्त्वा अलं खलु न संतप्यामहे न व्यथामहे तत्र दीयताम् कन्यादानमिति शेषः, अहो इत्याश्चर्ये महान् खलु दुःखविस्तरः दुःखप्रपञ्चः। इदानीम् अधुना लीलाभिहितः साधारणेन उक्तः अनयेदानीम् सारल्येन ममोपरि कन्यावरान्वेषणरूपो महान् भारो न्यस्तः यदि मम निर्णीतो वरः कन्यां प्रति कदाचिद् वैरस्यं प्रदर्शयेत्तर्हि एतस्या उपालम्भवचनं मयावश्यं श्रोतव्यं भवेदत इयमेव वरनिश्चयं करोत्विति प्रद्योतस्याभिप्रायः तदेवाह श्रूयतामिति—

अन्वयः—मागधः काशिराजः अङ्गो वा सौराष्ट्रः मैथिलः शूरसेनः अस्मत्संबद्धः। एते नानार्थैः गुणैः मां लोभयन्ते एतेषां (मध्ये) कः तव पात्रतां याति॥ ८॥

व्याख्या—मागधः मगधानां राजा मागधःमगध ाधिपः काशिराजः अङ्गः वा अङ्गाधिपः वा सौराष्ट्रः सौराष्ट्राधिपो वा मैथिलः मिथिलानरेशो वा शूरसेनः शूर-

आये हैं। काशिराज अपने चरित्र से मुझे आकृष्ट कर रहे हैं। (पुनः स्वगत) इतने पर भी यह रानी कुछ बोल नहीं रही है। यह तो अभी आँसू बहाती हुई व्याकुल हो गई। फिर निश्चय क्या करेगी? अच्छा जो हो इससे निवेदन तो करूँ। (प्रकट) सुनते हैं हमसे संबंध करने के लिये बहुत से राजा आ रहे हैं।

देवी—इस समय बहुत विस्तार से ऐसा कहने का क्या प्रयोजन? जहाँ देने पर हम लोगों को पश्चात्ताप न करना पड़े वहाँ दीजिये।

राजा—अहाः इसने तो बड़ी सरलता से कह दिया किन्तु इस समय इसने

एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां
कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा ॥ ८ ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—वत्सराजः ।

राजा—किं वत्सराजः ।

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु प्रसीदतु महासेनः । प्रियवचननिवेदनत्वरयाः क्रमविशेषो नावेक्षितः ।

सेनाधिपः वा अस्मत्संवद्धः एषु प्रत्येकः मया संवद्धः अस्ति । एते राजानः नानार्थैः अनेकविधैः प्रयोजनैः गुणैः कुलशीलवयोरूपविद्याशौर्यादिभिः मां लोभयन्ते समाकृष्टाः कुर्वन्ति । एतेषाम् पूर्वोक्तानां नृपतीनां मध्ये कः तव पात्रतां कन्याग्रहणरूपयोग्यताम् याति प्राप्नोति त्वं स्वकन्यायैकं वरं समभिलषसि ॥ ८ ॥

क्रमविशेषो नावेक्षित इति अयं भावः कन्यापरिणयार्थं नानादेशनरेशानां निर्दिश्यमाने नामप्रसङ्गे तत्क्रममनवेक्ष्य मया मध्ये एव वत्सराजपदमुच्चारितम् तेन क्रमभङ्गो जात इति विशिष्टः क्रमः नावेक्षित इति भावः । प्रियवचनपरिहार्या प्रियवचनेन परिहार्या परितः मनसो ह्रियते यस्या सा मनोहरतयावश्यं श्रावयितव्येत्यर्थः । स्वैरम् निर्भयम् उच्यताम्,कथ्यताम् । नप्ता पौत्रकः । गन्धर्ववित्ताकः संगीतशास्त्रज्ञः । उपरतः मृतः ।

मेरे ऊपर महान् दुःख का प्रपञ्च लाद दिया । क्योंकि ऐसा करने से मुझे बाद में उपालम्भ प्राप्त होगा, इसलिये इस विषय में देवी स्वयम् निश्चय करें । सुनिये ।

मगधराज, काशीनरेश, अङ्गाधिप, सौराष्ट्रनरेश अथवा मिथिलापति अथवा शूरसेन के राजा; ये सभी तो हमारे सम्बन्धी लगते हैं जो अनेक प्रयोजन वाले गुणों से मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, अब तुम्हीं बताओ इनमें कौन-सा राजा तुम्हारे कन्याग्रहण का पात्र है ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकीय—वत्सराज !

राजा—क्या कहा वत्सराज !

कञ्चुकी—महासेन प्रसन्न हों, महासेन प्रसन्न हों। मैंने शुभवचन के निवेदन की शीघ्रता से क्रम विशेष का विचार नहीं किया ।

राजा—प्रियवचनमिति ।

देवी—(उत्थाय) जेदु महासेणो । [जयतु महासेनः ।]

राजा—(सहर्षम्) प्रियवचनपरिहार्या हि देवी । आस्यताम् ।

देवी—जं महासेणो आणवेदि । [यद् महासेन आज्ञापयति ।] (उपविशति ।)

राजा—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, स्वैरमभिधीयताम् ।

काञ्चुकीयः—(उत्थाय) तत्रभवतामात्येन शालङ्कायनेन गृहीतो वत्सराजः ।

राजा—(सहर्षम्) किमाह भवान् ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवतामात्येन शालंकायनेन गृहीतो वत्सराजः ।

राजाः—उदयनः ।

काञ्चुकीयः—अथ किम् ।

राजा—शतानीकस्य पुत्रः ।

काञ्चुकीयः—दृढम् ।

राजा—क्या कहते हो प्रियवचन ।

देवी—(उठ कर) महासेन सर्वोत्कृष्ट रहें ।

राजा—(हर्ष के साथ) देवी भी प्रियवचन से अपने मन को प्रसन्न रखें। अच्छा बैठिये ।

देवी—महासेन की जैसी आज्ञा । (बैठ जाती हैं)

राजा—उठो उठो निर्भय होकर कहो ।

कञ्चुकीय—(उठ कर) तत्रभवता शालङ्कायन नें वत्सराज को बन्दी बना लिया है ।

राजा—(सहर्ष) क्या कहा आपने ?

काञ्चुकीय—श्रीमान् आमात्य शालङ्कायन द्वारा वत्सराज बन्दी बना लिया गया ।

राजा—क्या उदयन ।

कञ्चुकी—हाँ और क्या ?

राजा—क्या शतानीक पुत्र उदयन ।

कञ्चुकीय—हाँ वही ।

राजा—सहस्रानीकस्य नप्ता ।

काञ्चुकीयः—स एव ।

राजा—कौशाम्बीशः ।

काञ्चुकीयः—सुव्यक्तम् ।

राजा—गान्धर्ववित्तकः ।

काञ्चुकीवः—एवं ब्रुविन्त ।

राजा—वत्सराजो ननु ।

काञ्चुकीयः—अथ किं, वत्सराजः ।

राजा—अथ किमुपरतो यौगन्धरायणः ।

काञ्चुकीयः—न खलु, कौशाम्ब्यां किल ।

राजा—यद्येवं, न गृहीतों वत्सराजः ।

काञ्चुकीयः—श्रद्धत्तां महासेनः ।

राजा—सहस्रानोक का पौत्र ।

कञ्चुकीय—वही ।

राजा—क्या कौशाम्बी नरेश ।

कञ्चुकीय—निश्चित वही ।

राजा—क्या संगीत विद्या का विद्वान् जो है ।

कञ्चुकीय—लोग कहते तो ऐसे ही हैं ।

राजा—क्या जो वत्सराज है वही ।

कञ्चुकीय—हाँ वत्सराज ही तो ।

राजा—क्वा यौगन्धरायण मर मया ।

कञ्चुकीय—नहीं वह तो इस समय कौशाम्बी में है ।

राजा—यदि ऐसी बात है तो वत्सराज पकड़ा नहीं गया ।

कञ्चुकीय—महासेन मेरी बात पर विश्वास करें ।

राजा—

न श्रद्दधाम्युदयनग्रहणं त्वयोक्तं
व्यावर्तनं करतलैरिव मन्दरस्य ।
यस्याहवेषु रिपवः कथयन्ति शौर्यं
यौगन्धरायणमतानि च नः स्वनन्ति ॥ ९ ॥

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महासेनः । वृद्धोऽस्मि ब्राह्मणः खल्वहम् । न महासेनसमीपेऽनृतमभिहितपूर्वम् ।

राजा—आ अस्त्येतत् । अथ कः प्रियदूतः शालङ्कायनेन प्रेषितः ।

अन्वयः—त्वया उक्तम् उदयनग्रहणम् करतलैः मन्दरस्य व्यावर्त्तनम् इव न श्रद्दधामि । रिपवः यस्य आहवेषु शौर्यं कथयन्ति । यौगन्धरायणमतानि च नः स्वनन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—त्वयोक्तम् उदयनग्रहणम् उदयनवशीकरणम् करतलैः हस्तैः मन्दरस्य तन्नामकस्य पर्वतस्य व्यावर्त्तनम् चक्रवद्भ्रामणम् इव न श्रद्दधामि न विश्वसिमि । रिपवः अरयः यस्य उदयनस्य आहवेषु युद्धेषु शौर्यं पराक्रमं कथयन्ति । यौगन्धरायणमतानि योगन्धरायणमन्त्रणानि गुप्तसम्मतानि वा नः अस्माकम् (कर्णयोः) स्वनन्ति शब्दायन्ते ॥ ९ ॥

अनृतम् असत्यम् । अभिहितपूर्वम् पूर्वोक्तम् । जवातिशययुक्तेन अतिवेगगामिना

राजा—तुम्हारे द्वारा कहीं हुई उदयन के पकड़े जाने की बात का मैं उसी प्रकार विश्वास नहीं करता—जिस प्रकार मन्दराचल को हाथ से उठाकर घुमाने की बात अविश्वसनीय है । शत्रु लोग भी जिसके शौर्य की प्रशंसा करते हैं, जिसके मन्त्री यौगन्धरायण की मन्त्रणा कर्णकुहरों में अब भी झङ्कृत होतां हैं भला उस उदयन को कौन पकड़ सकता है ।

कञ्चुकीय—महासेन प्रसन्न हों एक तो मैं वृद्ध, दूसरे निश्चित रूप से ब्राह्मण जो ठहरा इसके अतिरिक्त महासेन के समीप कभी असत्य भाषण भी नहीं किया ।

राजा—अच्छा, ऐसी बात है । शालङ्कायन ने कौन-सा प्रिय दूत-भेजा है ।

काञ्चुकीयः—न पुरुषः । जवातिशययुक्तेन खररथेन वत्सराजमग्रतः कृत्वा स्वयमेवामात्यः प्राप्तः ।

राजा—एवं प्राप्तः । हन्त भोः ! अद्य विमुक्तसन्नाहा सुखं विश्राम्यत्वक्षौहिणी । अद्यप्रभृति प्रच्छन्नकृतदूतसम्प्रेषणा अशङ्किताः स्थास्यन्ति राजानः ! एष समासः—अद्यास्मि महासेनः ।

देवी--किं अमच्चेण आणीदो । [किममात्येनानीतः ।]

राजा--अथ किम् ।

देवी--एदण्णिमित्तं कस्स वि ण दिस्सामो वासवदत्तं । [एतन्निमित्तं कस्मा अपि न दित्सामो वासवदत्ताम् ।]

खररथेन तीक्ष्णरथेन । हन्त भोः हर्षजनकमव्ययपदम् । विमुक्तसन्नाहा विमुक्तः परित्यक्तः सन्नाहः कवचः यया सा । सुखं विश्राम्यत्वक्षौहिणी—उदयनग्रहणेन सर्वे शत्रवः मद्वशगा जाताः इति युद्धप्रसङ्गो नोदेष्यत्यतः सुखम् सानन्दम् विश्रामं करोत्वियमक्षौहिणी सेनेत्यर्थः । अद्यारभ्य अद्यप्रभृति प्रच्छन्नकृतदूतसंप्रेषणा प्रच्छन्नं गुप्तं यथा स्यात्तथा कृता दूतसंप्रेषणा यैः ते वत्सराजभयात् । प्रच्छन्नरूपेण ये राजानः मत्समीपं दूतं प्रेषयन्ति ते राजानः अशङ्किताः निर्भयाः स्थास्यन्ति भविष्यन्ति । एष समासः निष्कर्षः । यदद्य महासेन इत्यन्वर्थनामा संवृत्तोऽस्मीति भावः ।

कञ्चुकी—दूत बन कर कोई अन्य पुरुष नहीं आया है, बल्कि स्वयं अमात्य शालङ्कायन ही अतिशीघ्रगामी तेज रथ पर चढ़ कर वत्सराज को अपने आगे किये हुए यहाँ आये हुए हैं ।

राजा—अच्छा इस प्रकार से आ गये हैं । तब तो बड़े हर्ष की बात हुई । मेरी अक्षौहिणी सेना आज कवच उतारकर सुखपूर्वक विश्राम करे । आजसे प्रच्छन्न रूप से मेरे पास अपने दूत भेजने वाले राजागण निःशङ्क निवास करेंगे । अब निष्कर्ष यह रहा कि मैं अन्वर्थरूप में महासेन हो गया ।

देवी—क्या अमात्य उसे ले आये हैं ?

राजा—और क्या ?

देवी—इसी कारण तो मैं किसी अन्य को वासवदत्ता का दान देना नहीं चाहती थी ।

राजा—युद्धावर्जितशत्रुः खल्वेष मम। बादरायण! शालङ्कायनः क्व?

काञ्चुकीयः—आहितो भद्रद्वारे।

राजा—गच्छ। भरतरोहकं ब्रूहि—कुमारविधिविशिष्टेन सत्कारेण वत्सराजमग्रतः कृत्वा प्रवेश्यताममात्य इति।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः।

राजा—एहि तावत्।

काञ्चुकीयः—अयमस्मि।

राजा—वत्सराजदर्शने कश्चिन्नोत्सारयितव्यः।

शत्रुं पश्यन्तु मे पौराः श्रुतपूर्वं स्वकर्मभिः।
सिंहमन्तर्गतामर्षं यज्ञार्थमिव संयतम्॥ १०॥

कौमारविधिविशिष्टेन कौमारस्य विधिः राजकुमारस्यानयने यो विधिः यादृशः नियमस्तद्विशिष्टेन सत्कारेण संमानेन। न उत्सारयितव्यः नापसारितव्यः।

अन्वयः—पौराः स्वकर्मभिः श्रुतपूर्वम् मे शत्रुम् यज्ञार्थम् संयतम् अन्तर्गतामर्षं सिंहम् इव पश्यन्तु॥ १०॥

व्याख्या—पौरा पुरे भवाः पौराः नगरनिवासिनो जनाः स्वकर्मभिः स्वपराक्रमैः श्रुतपूर्वम् प्राक प्रसिद्धि प्राप्तम् मे शत्रुम् मदीयमरिम् यज्ञार्थम् यज्ञप्रयोजनार्थम् संयतम् बद्धम् अन्तर्गतामर्षम् अन्तर्गतम् अन्तःस्थितम् अमर्षम क्रोधं यस्य स

राजा—यही मेरा शत्रु है जो युद्ध में जीत लिया गया है। अच्छा वादरायण इस समय शालङ्कायन कहाँ पर है।

कञ्चुकीय—महाराज के भद्रद्वार पर स्थित हैं।

राजा—कञ्चुकि जाओ और भरतरोहक से कहो कि राजकुमार के अनुरूप सत्कार की विधि से वत्सराज को आगे कर अमात्य भीतर लावें।

कञ्चुकी—जैसी महासेन की आज्ञा।

राजा—कञ्चुकी! एक वात और सुनो।

कञ्चुकी—मैं यही हूँ।

राजा—वत्सराज के दर्शन में किसी को कोई बाधा मत पहुँचाना। अपने पराक्रम से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले इस मेरे शत्रु को पुरवासी लोग भली प्रकार

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः। (निष्क्रान्तः।)

देवी—बहूणि अब्भुदआणि इमस्सि राअउले अणुभूदाणि। ण खु अहं ईदिसं पीदिजोग्गं महासेणस्स सुमरामि। [बहवोऽभ्युदया अस्मिन् राजकुलेऽनुभूताः। न खल्वहमीदृशं प्रीतियोग्यं महासेनस्य स्मरामि।]

राजा—अहमप्येतादृश प्रीतिविशेषं न श्रुतपूर्वं स्मरामि, यथा गृहीतो वत्सराज इति।

देवी—वच्छराओ णं। [वत्सराजो ननु।]

राजा—अथ किम्।

देवी—बहूणि सम्बन्धप्पओअणागदाणि राअउलाणि सुदाणि। एदिणा ण पेसिदपुरुवो पुरुसो। [बहूनि सम्बन्धप्रयोजनागतानि राजकुलानि श्रुतानि। एतेन न प्रेषितपूर्वः पुरुषः।]

तत् सिंहम् इव पश्यन्तु अवलोकयन्तु। १०। अस्मिन् राजकुले राजवंशे बहवः अनेके अभ्युदयाः ऐश्वर्यपूर्णकार्याणि अनुभूताः अवलोकिताः, प्रीतियोग्यम् प्रीत्यर्हं हर्षार्हम् कार्यम्। स्मरामि ध्यायामि। संबन्धप्रयोजनागतानि संबन्धार्थं समागतानि। न प्रेषितपूर्वः अनेन दूतः पूर्वं न प्रेषितः। न गणयति तिरस्करोति। अपण्डितः

देखें। जो यज्ञ में बलि देने के लिये बँधे हुए सिंह जैसा दिखाई पड़ रहा है और जिसका क्रोध भीतर ही भीतर छिपा हुआ है॥ १०॥

कञ्चुकी—जैसी महासेन की आज्ञा (बाहर निकल जाता है।)

देवी—इस राजकुल में होनेवाली अनेक उत्कर्ष की घटनायें मैंने देखी हैं। किन्तु उन घटनाओं में आज जैसी होने वाली महासेन की प्रीति मैंने कभी नहीं देखी।

राजा—हमें भी इस प्रकार के आनन्दजनक सुखद संवाद को सुनने का अवसर पूर्व में कभी प्राप्त हुआ हो ऐसा स्मरण नहीं आता—जैसा आज वत्सराज के ग्रहण का शुभ समाचार मुझे आनन्दित कर रहा है।

देवी—यही वत्सराज हैं।

राजा—और क्या ?

देवी—ऐसे तो संबंध के लिये आये हुए बहुत से राजकुलों का नाम सुना है किन्तु इसने तो किसी को दूत बना कर आज तक नहीं भेजा।

राजा--देवि ! महासेनशब्दमपि न गणयति, किं सम्बन्धमभिलषति ।

देवी--ण गणेदि । किं बालो अपण्डिदो वा । [न गणयति । किं बालः अपण्डितो वा ।]

राजा—बालः, न त्वपण्डितः ।

देवी—किण्णु हु एणं उस्सेअअदि । [किन्तु खल्वेनमुत्सेकयति ।]

राजा—उत्सेकयत्येनं प्रकाशराजर्षिनामधेयो वेदाक्षरसमवायप्रविष्टो भारतो वंशः । दर्पयत्येनं दायाद्यागतो गान्धर्वो वेदः । विभ्रमयत्येनं वयस्सहजं रूपम् । विस्रम्भत्येनं कथमप्युत्पन्नोऽस्य पौरानुरागः ।

मूर्खः । प्रकाशराजर्षिनामधेयः यशसा प्रकाशानि प्रसिद्धि गतानि राजर्षीणां नामधेयानि यस्मिन् वंशे सः । उत्सेधयति सगर्वं करोति । वेदाक्षरसमवायप्रविष्टः वेदे वेदरूपे अक्षरसमवाये प्रविष्टः प्रतिपाद्यतया प्रसिद्धि गतः । यस्य उज्ज्वलं यशः प्रतिपादितं वर्त्तते इत्यर्थः । भारतो वंशः एनम् उत्सेकयति दर्पयति । दायाद्यागतो दायः कुलधनम् आद्यः भोज्यवस्तु तस्मादागतः दायाद्यागता यद्वा दायाद्यात् वंशपरम्परातः आगतः समुपलब्धः । गान्धर्वो वेदः सङ्गीतम् एनं दर्पयति । वयस्सहजम् तारुण्यावस्थया सहैव जातम् रूपम् सौन्दर्यम् । विभ्रमयति विभ्रमो विलासः

राजा—जब यह मेरे महासेन शब्द को कुछ नहीं समझता तो सम्बन्ध तो दूर की बात है ।

देवी—यदि वह ऐसा नहीं समझता तो क्या निरा बालक है अथवा निरा मूर्ख है ।

राजा—बालक तो है पर मूर्ख कदापि नहीं ।

देवी—तब इसे किस बात का गर्व है ।

राजा—जिस वंश में अनेक प्रशस्त कीर्त्तिवाले राजर्षि उत्पन्न हुए हैं, वेद के अक्षरों द्वारा जिसकी चर्चा है ऐसा भरत वंश ही इसे अभिमानी बना रहा है । वंश परम्परा से प्राप्त होने वाली संगीत विद्या भी इसके अभिमान में मुख्य कारण है । अवस्था के अनुसार होने वाली सुन्दरता भी इसके इस प्रकार के विभ्रम (विलास) को प्रेरित कर रही है । अकारण होने वाला पुरवासियों का अनुराग भी इसे विश्वस्त बना रहा है ।

देवी—अभिलषणीआ । वरगुणा। कस्स वामदाए दोषो संवृत्तो [अभिलषणीया वरगुणाः। कस्य वामतया दोषः संवृत्तः।]

राजा—देवी ! किमिदानीमस्थाने विस्मितासि ।

पश्य—

अग्निः कक्ष इवोत्सृष्टो दहत् कात्स्न्र्येन मेदिनीम् ।
अस्य मे शासनं दीप्तं विषयान्तेऽवसीदति ॥ ११ ॥

(प्रविश्य)

तदर्थं प्रेरयति। कथमप्युत्पन्नः अकारणं सञ्जातः पौरानुरागः प्रजावात्सल्यम् एनम् विस्रम्भयति विश्वासयति। वरगुणाः वरेषु ये गुणाः वरगुणाः अभिलाषणीयाः वाञ्छनीयाः सन्ति। कस्य गुणस्य वामतया प्रातिकूल्येन दोषः संवृत्तः दूषणं प्राप्तम्। अस्थाने अनुचिते विस्मिता आश्चर्यचकिता असि ।

अन्वयः—कक्षे उत्सृष्टः अग्निः इव कात्स्न्र्येन मेदिनीं दहत् दीप्तम् मे शासनम् अस्य विषयान्ते अवसीदति ।। ११ ।।

व्याख्या—कक्षे तृणगुल्मे उत्सृष्टः प्रक्षिप्तः अग्निः इव कात्स्न्र्येन कृत्स्नस्य भावः कात्स्न्र्यम् तेन सर्वतोभावेन मेदिनीं पृथ्वीं दहत् भस्म कुर्वत् दीप्तम् प्रज्वलितम् मे शासनम् आज्ञा निदेशो वा अस्य उदयनस्य विषयान्ते जनपदसीमायाम् अवसीदति प्रतिहतो भवति। ममाज्ञा सर्वथाऽप्रतिहता—किन्त्वेकोऽयं वत्सराजः तां तिरस्करोति। एतदेवास्मिन् दूषणमिति भावः।। ११ ।।

यथाज्ञाप्रयुक्तसत्कारम् आज्ञामनतिक्रम्येति यथाज्ञा यथाज्ञया प्रयुक्तं सत्कारं यथा स्यात्तथा प्रविष्टः। भरतकुलोपभुक्तम्भरतकुलपरिपालितम् द्रष्टव्यम् दृष्टिप्रियम्। प्रतिग्राहयितव्यः प्रदातव्यः। जयमङ्गलम् जयमङ्गलकर्तृकम् वीणारत्नम् प्रतिगृहीतम् अङ्गीकृतम् ।

देवी—तब तो वाञ्छित वर-गुणों से यह युक्त है। किन्तु किसकी प्रतिकूलता से वे गुण अब दोष बन गये हैं ?

राजा—देवि तू फिर इस विषय में आश्चर्यचकित क्यों हो रही हो। देखो तृण समूह में प्रक्षिप्त हुई अग्नि के समान समस्त पृथ्वी को भस्म करता हुआ मेरा उद्दीप्त शासन केवल इसी राजा के राज्य की सीमा,में प्रविष्ट नहीं हो पा रहा है।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

काञ्चुकीयः—जयतु महासेनः ! यथाज्ञाप्रयुक्तसत्कारं प्रविष्टःशालङ्कायनः । स तु विज्ञापयति–इदं भरतकुलोपभुक्तं वत्सराजकुले द्रष्टव्यं घोषवती नाम वीणारत्नम् । महासेवनः प्रतिग्राहयितव्य इति । (वीणां दर्शयति ।)

राजा—प्रतिगृहीतं जयमङ्गलम् (वीणां गृहीत्वा) इयं सा घोषवती नाम । यैषा,

श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री ।
ऋषिवचनगतेव मन्त्रविद्या गजहृदयानि बलाद्वशीकरोति ॥ १२॥

अन्वयः—श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री या ऋषिवचनगता मन्त्रविद्या इव बलाद् गजहृदयानि वशीकरोति ॥ १२ ॥

व्याख्या—श्रुतिसुखमधुरा श्रुतिसुखेन कर्णानन्दकरेण मधुरा मनोहारिणी स्वभावरक्ता स्वभावेन रक्ता स्वभावरागशीला करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री करजानां मुखैः नखाग्रैः उल्लिखितम् उल्लेखनम् उपरि संस्पशनम् तेन अग्रघृष्टा अग्रे घर्षणं प्राप्ता तन्त्री यस्या सा ऋषिवचनगता महर्षीणां अन्तःकरणे वचनरूपेण प्रादुर्भूता मन्त्रविद्या मन्त्रशास्त्रम् इव बलात् हठात् गजहृदयानि हस्तिनामन्तःकरणानि वशीकरोति आवर्जयति ॥ १२ ॥

समरावजितानाम् समरे संग्रामे अवजितानाम् वशीकृतानाम् रत्नानाम् मणीनाम् इष्टजनसंभोगः प्रियजनकृतोपभोगः प्रीति प्रेम प्रसन्नताम् ।

कञ्चुकी—महासेन की जय हो । आपके आदेशानुसार सत्कार से युक्त होकर शालङ्कायन पधारे हुए हैं । और उन्होंने निवेदन किया है कि भरतवंशियों के द्वारा उपयुक्त वत्सराज कुल में दर्शनीय यह घोषवती नाम की श्रेष्ठ वीणा है, इसे महासेन को समर्पित करो (वीणा दिखाता है) ।

राजा—मैंने जय मङ्गलकारी इस वीणा रत्न को स्वीकार कर लिया । (वीणा लेकर) यही वह घोषवती नाम की वीणा है जो कानों को सुख देने के कारण अत्यन्त मनोहर हैं, स्वभावतः राग उत्पन्न करती हैं, किं बहुना नख के अग्रभाग के स्पर्श करते रहने के कारण जिसके तार घिसे हुए हैं, जो ऋषियों के अन्तःकरण से उद्भूत मन्त्रविद्या की तरह हाथियों के चित्त को बरवस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है ॥ १२ ॥

राजा—भोः ! समरावर्जितानां रत्नानामिष्टजनसम्भोगः प्रीतिमुत्पादयति ।

अर्थशास्त्रगुणग्राही ज्येष्ठो गोपालकः सुतः ।
गान्धर्वद्वेषी व्यायामशाली चाप्यनुपालकः ॥ १३ ॥

क्व नु खल्वियं सुन्यस्ता भवेत् ? देवि! वासवदत्ता वीणामुपक्रान्ता ननु ?

देवी—आम् ।

राजा—तेन हि इयमस्यै प्रदीयताम् ।

देवी—वीणाप्पदाणेण भूओ वि उन्मत्ता व चिट्ठदि । [वीणाप्रदानेन भूयोऽप्युन्मत्तेव तिष्ठति ।]

अन्वयः—मम ज्येष्ठः सुतः गोपालकः अर्थशास्त्रगुणग्राही वर्त्तते । अस्य अनुपालकः व्यायामशाली अपि गान्धर्वद्वेषी अस्ति ॥ १३ ॥

व्याख्या—मम ज्येष्ठः सुतः गोपालकः एतन्नामा अर्थशास्त्रगुणग्राही राजनीतिशास्त्रस्य गुणग्राहकः वर्त्तते । एतेन संगीतविद्यागुणग्राहको न वर्त्तते इति ध्वन्यते तस्मै वीणाप्रदानेन न किमपि फलम् । अथ तदनन्तरं जातस्य ततः कनिष्ठस्य विषये ब्रवीति अनुपालक इति अनुपालकः एतन्नामा कनिष्ठः सुतः व्यायामशाली मल्लविद्यायां निपुणः । अपि गान्धर्वद्वेषो संगीतविद्यायामरसिकः अस्ति ॥ १३ ॥

राजा—अरे समर में जीते हुए रत्नों को यदि अपने प्रियजन उपभोग करें तो उससे अपार हर्ष होता है ।

किन्तु मेरा जेठा लड़का गोपालक है वह तो अर्थशास्त्र (राजनीति) के गुणग्रहण में अपनी अभिरुचि रखता है । उससे छोटा अनुपालक व्यायाम में अभिरुचि रखता हैं । उसे सङ्गीत विद्या से द्वेष है ॥ १३ ॥

तो फिर इस वीणा को किसके पास रखूं । देवि ! वासवदत्ता ने तो वीणा का अभ्यास प्रारम्भ किया है ?

देवी—हाँ ।

राजा—तब तो यह घोषवती उसी को दो ।

देवी—वीणा के देने से तो वह और भी उन्मत्त हो जायगी ।

राजा—क्रीडतु क्रीडतु। नैतत् सुलभं श्वशुरकुले। बादरायण! क्व सा?

काञ्चुकीयः—अमात्येन सहोपविष्टा।

राजा—अथ वत्सेष्वधिकृतः।

काञ्चुकीयः—आहितविनयत्वात् पादयोरङ्गे तस्य बहुप्रहारत्वाच्च स्कन्धवाह्येन शयनीयेन मध्यमगृहे प्रवेशितः।

राजा—हा धिग्! बहुप्रहारः। एष इदानीं निरुपस्कृतस्य तेजसो दोषः। नृशंसः खल्वस्मिन् काल उपेक्षितवान्। बादरायण! गच्छ। भरतरोहकं ब्रूहि—क्रियतामस्य व्रणप्रतिकर्मेति।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः।

राजा—अथवा एहि तावत्।

काञ्चुकीयः—अयमस्मि।

चरणयोः पादयोः आहितविनयत्वात् आहितः विनयस्य भावस्तस्मात् सन्निवेशितनिगडत्वात् बहुप्रहारत्वात् अतिशयघातस्य कारणात् प्रवेशितः संस्थापितः। निरुपस्कृतस्य अप्रतिहतस्य तेजसः दोषः। नृशंसः क्रूरः कालः। दुरदृष्टः। 'अधिक्षेपाप-

---

राजा—खेलने दो, खेलने दो, श्वशुरकुल में इस प्रकार की क्रीडा सुलभ नहीं होगी। अच्छा बादरायण! बताओ वह इस समय है कहाँ?

कञ्चुकीय—वह अमात्य के साथ बैठी है।

राजा—अच्छा वत्सराज का क्या किया?

कञ्चुकीय—पैर में बेडी डालने के कारण एवं समस्त अङ्गों में चोट लगने के कारण पालकी में बैठाकर उन्हें मध्यम गृह में ठहरा दिया गया है—

राजा—हाय! धिक्कार है जो इतना प्रहार किया गया। यह तो उसके उत्कृष्ट तेज के दोष से हुआ है। काल भी बड़ा नृशंस है जिसने इस पर इतना प्रहार होते देख इसकी उपेक्षा की। अच्छा बादरायण! भरतरोहक से जाकर कहो कि उसके घावों की चिकित्सा करें।

कञ्चुकी—जैसी महासेन की आज्ञा।

राजा—अच्छा इधर आओ सुनो।

कञ्चुकी—मैं यह आया।

राजा—अस्य सर्वदर्शनमविमुक्तसत्कारमवगन्तव्यम्। आकारसूचित अस्य प्रीतयो विज्ञेयाः। अतिक्रान्तविग्रहाश्रिताः कथा न कथयितव्याः। क्षुतादिप्रयोगेष्वाशिषोऽभिधेयाः। कालसंवादिना स्तवेनार्च्यः।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महासेनः। पथ्येव कृतव्रणप्रतिकर्मा वत्सराजः। अकालस्तावदिदानी द्वितीयस्य प्रतिकर्मण इति। मध्याह्नमारोहति दिवाकरः।

मानादेः प्रयुक्तस्य परेण यत्। प्राणात्ययेप्यसहनं तत्तेजः समुदाहृतम्॥' इति लक्षणात्। उपेक्षितवान् उपेक्षां कृतवान्। व्रणप्रतिकर्म व्रणचिकित्सा अस्य वत्सराजस्य सर्वदर्शनम् सर्वेक्षणम् अविमुक्तसत्कारम् बहुमानपुरःसरम् अवगन्तव्यम् ज्ञात्वा सफलयितव्यम् अस्य दृष्टेरुपरोधो न कर्त्तव्यः। यद् यद् इच्छेत्तत्सर्वम् बहुमानपुरस्सरम् अस्य दृष्टिसमक्षे स्थापनीयमित्यर्थः। यद्वा दृशेर्ज्ञानार्थकत्वात् यद् ज्ञातुमिच्छेत्तदुपस्थातव्यमित्यर्थः। आकारसूचिता आकारेण आकृत्या सूचिता संज्ञापिताः प्रीतयः प्रीतिविषयाः विज्ञेयाः। विज्ञाय पूरणीयाः। इङ्गितमात्रेण प्रीतिविषयं विज्ञाय तदुपस्थापनेन प्रसन्नः कर्त्तव्य इत्यर्थः।

अतिक्रान्तविग्रहाश्रिताः अतिक्रान्तं व्यतीतं यद् विग्रहं युद्धं तस्य आश्रिता कथा वार्त्ता न कथयितव्या न वक्तव्या। क्षुतादिप्रयोगेषु क्षुतादिक्रियमाणेषु आशिषः शतं जीव सहस्रं जीवेत्यादिरूपाः अभिधेयाः वक्तव्याः कालसंवादिना कालानुसारेण जागरणादिसमये स्तवेन गुणादिवर्णनेन अर्च्यः अभिनन्दनीयः। पथि एव मार्गे एव। कृतव्रणप्रतिकर्मा कृतं व्रणस्य प्रतिकर्म चिकित्सितम् यस्य सः। अकालः समयो ना-

---

राजा—इसे जो चाहे, वह सब सत्कारपूर्वक दिखाना। इसकी आकृति देखकर इसके प्रिय पदार्थों को उपस्थित करना। बीते हुए युद्ध की चर्चा कदापि मत करना। इसको जब जम्हाई अथवा छींक आवे 'शतं जीव सहस्रं जीव' आदि आशीर्वादात्मक शब्दों का प्रयोग करना। समयानुसार जागने पर इसके गुणों का वर्णन करते हुए स्तुतिपूर्वक प्रशंसा करना।

कञ्चुकीय—जैसी महासेन की आज्ञा। (निकल कर पुनः प्रविष्ट होकर) महासेन की जय हो। वत्सराज के व्रण की चिकित्सा मार्ग में ही संपन्न कर दी गई। अभी दूसरी बार मलहम पट्टी का समय नहीं हुआ है। अरे यह तो सूर्य ऊपर चढ़ आया है मध्याह्न का समय आ गया।

राजा—अथ कस्मिन् प्रदेशे वीरमानी ?

काञ्चुकीयः—मयूरयष्टिमुखे ।

राजा—हा धिग्, अनाश्रयणीयः खल्वयं देशः। आतपप्रातिकूल्यार्थं मणिभूमिकायां प्रवेशयेत्याज्ञापय ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) यदाज्ञप्तं महासेनेन तत् सर्वमनुष्ठितम् । अमात्यस्तु भरतरोहको महासेनं द्रष्टुमिच्छति ।

राजा—व्यक्तं न रोचते तस्मै वत्सराजसत्क्रिया। अस्यैष नीतेः परिश्रमः । अहमेवैनमनुनयामि ।

देवी—किं सम्बन्धो णिच्चिदो ? [किं सम्बन्धो निश्चितः ।]

राजा—न तावन्निश्चयो गम्यते ।

भूत् द्वितीयस्य द्वितीयवारं संपादनस्य व्रणचिकित्सितस्य । वीरमानी वीरेषु मानी मानशीलः । अनाश्रयणीयः आश्रयानर्हः । आतपप्रातिकूल्यार्थम् आतपवारणार्थम् मणिभूमिकायाम् मणिजटितकक्षायाम् । व्यक्तम् स्फुटम् । अनुनयामि अनुकूलं करोमि ।

राजा—तो तुमने उस वीराग्रगण्य मानी को कहाँ रखा है ।

कञ्चुकी—मयूरयष्टि के अगले भाग में ।

राजा—वह स्थान इस समय रहने योग्य नहीं है अतः धूप के निवारण के लिये मणिजटित भूभाग वाले स्थान में रखने के लिये कहो ।

काञ्चुकीय—महासेन की जैसी आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश कर) महासेन की जैसी आज्ञा थी वह सब कर दिया गया । मन्त्री भरतरोहक महासेन का दर्शन करना चाह रहे हैं ।

राजा—यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो रहा है कि वत्सराज की इस प्रकार की सत्क्रिया उसे अच्छी नहीं लग रही हैं। उसीकी नीति के परिश्रम का फल हैं (जो वत्सराज पकड़ा गया) अब मैं ही उसे अनुकूल करूँगा ।

देवी—क्या सम्बन्ध निश्चित हुआ ?

राजा—अभी तक तो कुछ निश्चय नहीं कर सका ।

देवी—अलं दणि तुवरिअ । बाला मे दारिआ । [अलमिदानीं त्वरित्वा । बाला मे दारिका ।]

राजा—यदभिरुचितं भवत्यै । प्रविशत्वभ्यन्तरम् ।

देवी—जं महासेणो आणवेदि । (निष्क्रान्ता सपरिवारा ।) [यन्महासेन आज्ञापयति ।]

राजा—(विचिन्त्य)

पूर्वं तावद् वैरमस्यादलेपा-
दानीतेऽस्मिन् स्यात् तु मध्यस्थता मे ।
युद्धक्लिष्टं संशयस्थं विपन्नं
श्रुत्वा त्वेनं संशयं चिन्तयामि ॥ १४ ॥

अन्वयः—पूर्वं तावद् अस्य अवलेपाद् मम वैरम् आसीत् । अस्मिन् आनीते तु मे मध्यस्थता स्यात् । एनम् युद्धक्लिष्टम् संशयस्थं विपन्नं श्रुत्वा चिन्तयामि । १४ ।

व्याख्या—पूर्वम् तावद् ग्रहणात्पूर्वम् अस्य अवलेपाद् संजातगर्वात् मम वैरम् विरोध आसीत् अस्मिन् वत्सराजे अत्रानीते सति मे मध्यस्थता, नापि प्रीतिः नापि द्वेषः इत्येवंरूपौदासीन्यम् स्यात् भवेत् । किन्तु युद्धक्लिष्टम् संग्रामपीडितम् विपन्नम् ग्रहणजन्यां विपत्तिम् प्राप्तम् । संशयम् जीवनविषये इति शेषः श्रुत्वा निशम्य चिन्तयामि शोचामि ॥ १४ ॥

द्वितीयाङ्कस्य टीका समाप्ता ।

देवी—बहुत शीघ्रता मत कीजिये । अभी तो मेरी लड़की बालिका है ।

राजा—जैसी आपकी रुचि । अच्छा । अब भीतर चलिये ।

देवी—जैसी महासेन की आज्ञा । (परिचारक एवं परिचारिकाओं के साथ भीतर जाती है ।)

राजा—(विचार करते हुए) पहले तो अभिमान के कारण मेरी इससे शत्रुता थी । अब जब वह पकड़ कर यहाँ लाया गया है तो राग द्वेष से रहित हो मुझे तटस्थ रहना चाहिये । परन्तु युद्ध के कारण जो इस पर प्रहार कर क्लेश दिया गया और जिससे इसके जीने के विषय में मुझे संदेह हो रहा है ऐसी विपन्न इसकी हालत सुनकर मैं चिन्तित हो रहा हूँ ॥ १४ ॥

(निष्क्रान्तौ ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

(देवी और राजा दोनों चले जाते हैं)

द्वितीय अङ्क की भाषा टीका समाप्त ।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति डिण्डिकवेषो विदूषकः ।)

विदूषकः—(निरूप्य) भो ! देवउलपीठिआए मम मोदअमल्लअं णिक्खिविअ दक्खिणामासआणि गणिअ बन्धिअ पडिणिवुत्तो दाणिमोदअमल्लअं ण पेक्खामि । (विचिन्त्य) आ ! एकमोदंअपरित्तोसिदो ण दाव ओलग्गो मं अणुसरदि । उच्चदाए पाआरस्स अगई कुक्कुराण । अक्खदभत्तदाए अलोहणीअं पहिआणं । आदु अपि णं खाआमि । भोदु ओग्गारइस्सं दाव अहं । ही ही वुड्ढो विअ सूअरबत्थी सुद्धवादं एव्वउग्गिरामि । अहव लोहिदकच्चाअणीए केरअं मम केरअं त्ति करिअं त्ति करिअ सिवेण पडिहत्थीकिदं भवे । (निरूप्य) जदि वि एसो बह्मआरी बहुकेहि रूवेहि अविणअं करेदि । भोदु पेक्खिस्सं दाव अहं । भो । एदं खु मम मोदअमल्लअं सिवस्स पादमूले चिट्टइ । जाव णं गह्णामि । देहि भट्टा ! देहि मे मोदअमल्लअं । भट्टा ! तुवं वि मम चोरोसि । अविहा । आलिहिदं खु मम मोदअमल्लअं संदावतिमिरेण सुट्ठु ण पेक्खामि । भोदु पमज्जिस्सं दाव अहं । ही ही साहु ले चित्तअर ! भाव ! साहु । जुत्तलेहदाए वण्णाणं जह जह पमज्जामि, तह तह उज्जलदरं होइ । भोदु, उदएण पमज्जिस्सं । कहि णु हु उदअं ? इदं सोहणं सुद्धतडाअ । अहं विअ सिवो वि दाव एदस्सि मदअमल्लए णिरासो होदु । [भोः ! देवकुलपीठिकायां मम मोदक-

---

डिण्डिकवेषः विकृतवेषभाषणादिना जनस्य हास्यं जनयन् यो हि भिक्षामर्जयति स डिण्डिक इत्युच्यते तस्य इव वेषो यस्य सः ।

देवकुलपीठिकायाम् देवकुलस्य शिवालयस्य । पीठिकायाम् अलिन्दे । मोदक-

---

(तदनन्तर डिण्डिक वेष में विदूषक का प्रवेश)

टिप्पणी—(जो विकृत वेप धारण करने से एवम् विकृत भाषण से मनुष्यों को हँसाता हुआ भीख माँगता है उसे डिण्डिक कहते हैं)

विदूषक—(अच्छी तरह देख कर) अरे शिवालय के चबूतरे पर मैं अपना

मल्लकं निक्षिप्य दक्षिणामाषकान् गणयित्वा बद्ध्वा प्रतिनिवृत्त इदानीं मोदकमल्लकं न प्रेक्ष्ये। आ! एकमोदकपरितोषितो न तावदवलग्नो मामनुसरति। उच्चतया प्राकारस्यागतिः कुक्कुराणाम्। अक्षतभक्ततयालोभनीयं पथिकानाम्। अथवा अप्येनं खादामि। भवतु, उद्गरिष्यामि तावदहं। ही ही वृद्ध इव सूकरबस्तिः शुद्धवातमेवोद्गिरामि। अथवा लोहितकात्यायन्याः सम्बन्धि मम सम्बन्धीति कृत्वा शिवेन प्रतिहस्तीकृतं भवेत्। यद्यप्येष ब्रह्मचारी बहुकैः रूपैरविनयं करोति। भवतु, प्रेक्षिष्ये तावदहम्। भोः! एष खलु मम मोदकमल्लकः शिवस्य पादमूले

मल्लकम् मोदकाः तन्नामकमिष्ठान्नविशेषाः तैर्युक्तं मल्लकम् पात्रम्। निक्षिप्य संस्थाप्य दक्षिणामाषकान् दक्षिणायां लब्धान् माषकान् माषपरिमाणकान् सुवर्णभागान् गणयित्वा संख्याय (पटाञ्चले) बद्ध्वा प्रतिनिवृत्तः प्रत्यागतः मोदकमल्लकम् अपूपपात्रम्। न प्रेक्षे नावलोकयामि। महासेनपक्षे अस्यायमर्थः—देवकुलपीठिकायाम् देवस्य महासेनस्य कुलपीठिकायाम् वंशपीठिकायाम् वासवदत्तायामित्यर्थः। मम मोदकमल्लकम् प्रियश्रेष्ठम् वत्सराजम् निक्षिप्य अर्पयित्वा दक्षिणामाषकान् गणयित्वा वत्सराजप्रदत्तानि संदेशवाक्यानि ज्ञात्वा बुद्ध्वा मनसि स्थिरीकृत्य प्रतिनिवृत्तोऽहम्—इदानीम् मोदकमल्लकम्—मोदकस्य संतोषस्य वासवदत्ताहरणरूपस्य कार्यस्य मल्लकम् निर्वहणसमर्थम् पात्रम् यौगन्धरायणे मन्त्रार्थम् कृतसमयं न पश्यामीत्यभिप्रायः। अवलग्नः अवसक्तः मोदकखादनासक्तः मोदकानयनवेलायाम् तदाशया पथि सङ्गतः वा भिक्षुकः। प्राकारस्य आवरकस्य

मोदक रखकर दक्षिणा में पाये गये सुवर्णखण्डों को गिनकर उसे पोटली में बाँध कर चला गया था पर लौटने पर अपने लड्डुओं को नहीं देख रहा हूँ। वह भिक्षु भी जो एक लड्डू खाकर संतुष्ट हो गया था और मेरे पीछे-पीछे लगा था अब मेरा अनुसरण नहीं कर रहा है। इस शिवालय के प्राकार तो बहुत ऊँचे हैं जिससे कुत्तों का आना संभव नहीं। इन पथिकों के पास खाने के लिये पर्याप्त भोजन-सामग्री है ही इसलिये वे भी इसे नहीं ले सकते। अथवा हो सकता है कि कहीं मैंने ही इन्हें न खा डाला हो। यदि ऐसी बात है तो अभी उगलता हूँ। अरे ही ही। उगलने पर तो फूले हुए सूअर के पेडू से जिस प्रकार केवल वायु निकलती है उसी प्रकार कीं शुद्ध वायु ही निकल रही हैं। अथवा रक्तचामुण्डा सम्बन्धी वस्तुओं को अपनी वस्तु समझकर कहीं शङ्कर ने ही उसे

तिष्ठति। यावद् एनं गृह्णामि। देहि भर्तः। देहि मे मोदकमल्लकम्। भर्तः! त्वमपि चोरोऽसि। अविधा! आलिखितं खलु मम मोदकमल्लकं सन्तापतिमिरेण सुष्ठु न प्रेक्ष्ये। भवतु, प्रमार्जिष्यामि तावदहत्। ही ही साधु रे चित्रकर! भाव! साधु। युक्तलेखतया वर्णानां यथा यथा प्रमार्ज्मि, तथा तथोज्ज्वलतरं भवति।

उच्चतया कुक्कुराणाम् शुनकानाम् अगतिः आगमनाभावः। अक्षतभक्ततया पर्याप्तभोजनतया अलोभनीयम् लोभाशक्यत्वम् पथिकानाम् पान्थानाम्। आभ्यन्तरार्थः—प्राकारस्य प्राकारतुल्यस्य यौगन्धरायणस्य उच्चतया प्रणीतत्वेन हेतुना कुक्कुराणाम्—श्वतुल्यानाम् महासेनसचिवानाम् अगतिः उपायाभावः। यौगन्धरायणं निगृहीतुमिति शेषः। अतो महासेनसचिवैः स विज्ञाय गृहीत इति शङ्काया नावकाशः। अक्षतभक्ततया भोगोपभोगवस्तुसंपन्नतया पथिकानाम् नित्यं संचरणशीलानाम् चाराणामित्यर्थः अलोभनीयम् स्वामिसकाशात् प्राप्तव्यं किमपि नास्ति एवञ्च पूर्णकामता। अहङ्कारग्रस्ततया महासेनसचिवैः विज्ञाय गृहीतो भविष्यति इति आशङ्काया अनवकाशः। अथवा पथिकानाम् अस्मद्भृत्यानाम् गूढचारिणाम् अक्षतभक्ततया स्वाम्यनुरागेण हेतुना अलोभनीयम् शत्रुपक्षसकाशात् स्पृहणीयं

न ले लिया हो। यह ब्रह्मचारी भी तो अनेकानेक रूपों से ढिठाई करता रहता है। अच्छा जो हो तब तक इसका पता लगाऊँ। अरे भाई मोदक तो शिवजी के चरणों के पास ही हैं तो इन्हे ले लूं। ऐ स्वामी, मेरा मोदक दो, मेरा मोदक दो! तुम भी चोर ही निकले। चित्र से विचित्र लगने के कारण सूर्यरश्मि की चकाचौंध में मैं इन्हें ठीक से नहीं देख पा रहा हूँ। तब मैं इन्हें ढूंढुंगा। ही ही धन्य! इसमें रङ्ग इस प्रकार से भरे गये हैं कि जैसे जैसे साफ करता हूँ वैसे वैसे अधिक सफेद होता जा रहा है। अच्छा, अब जल से साफ करूँगा। तो जल कहाँ है। यह शुद्ध जल से परिपूर्ण सरोवर हैं, तो मेरी तरह महादेव जी भी इस लड्डू से निराश हो जावें।

द्वितीय अर्थ—विदूषक—अरे भाई! इस शिव-चबूतरे के पास मैं यौगन्धरायण को छोड़कर भली प्रकार संदेश को सुनकर पुनः उसे मन से स्थिर कर लौटकर आने पर देखता हूँ कि यहाँ पर यौगन्धरायण नहीं है। यौगन्धरायण के पीछे पीछे चलने वाला वह रुमण्वान् भी मेरे सन्निकट नहीं है। फिर यौगन्धरायण इतना

भवतु, उदकेन प्रमार्जिष्यामि। कुत्र न खलूदकम्। इदं शोभनं शुद्धतटाकम्। अहमिव शिवोऽपि तावद् एतस्मिन् मोदकमल्लके निराशो भवतु।]

किमपि नास्ति। तेनास्मदीयैः भृत्यैः परलोभप्रदूषितैः यौगन्धरायणो ग्राहित इति नाशङ्कनीयम्। अथवा अपि एनम् मोदकमपि खादामि भक्षितवान् किम् इति बाह्योऽर्थः। अथवा अहमेव प्रमादयुक्तं वचनमभिधाय यौगन्धरायणं नाशितवानिति आभ्यन्तरार्थः। उद्गरिष्यामि तावद् उदरात् बहिः करिष्यामीति बाह्यार्थः। प्रमादयुक्तवचनमालोचयिष्यामीति आभ्यन्तरार्थः। ही शब्दो हर्षे। वृद्धः आध्मातः। सूकरवस्तिः वराहमूत्राशय इवेत्यर्थः। शुद्धवातम् मोदकगन्धशून्यम् वायुमेव उद्गिरामि निस्सारयामीति बाह्योऽर्थः। केवलं शुद्धवाक्यमेव उद्गिरामि 'उक्तवानिति आभ्यन्तरार्थः।

लोहितकात्यायन्या लोहितकात्यायनी चामुण्डा तस्याः सम्बन्धि तन्मन्दिरलब्धत्वात्तदीयमित्यर्थः। मम सम्बन्धीति कृत्वा स्वपरिचारदैवतस्वामिकम् द्रव्यं मदीयमिति मत्वा। लोहितप्रतिहस्तीकृतं भवेत् स्वहस्तगतं कृतं स्यात्। द्वितीयार्थः। लोहितकात्यायन्या सम्बन्धि वासवदत्तायाः सम्बन्धि वत्सराजम् रूपम्

सावधान रहने वाला है कि कुत्ते के समान नीच महासेन के सचिवों का उससे कुछ लगने वाला नहीं जो उसे पकड़ सकें। निरन्तर पथिक के समान सञ्चरण करने वाले महासेन के गुप्तचरों द्वारा उसका पकड़ना संभव नहीं, क्योंकि सर्वविघपूर्ण होने से उसे कोई लुभा नहीं सकता। हमारे पक्ष के गुप्तचर अपने स्वामी में इतने अनुरक्त हैं कि वे शत्रुपक्ष के द्वारा दिये गये भुलावे में नहीं आ सकते इसलिये शत्रु के द्वारा लोभ में पड़कर उन्होंने यौगन्धरायण को पकड़वा दिया हो ऐसी भी बात नहीं। तो क्या मैंने ही प्रमादयुक्त सलाह देकर उसको विनष्ट कर दिया ? अच्छा, अपने प्रमादयुक्त वचनों पर विचार करूँगा। नहीं नहीं, मैंने तो उससे ठीक-ठीक शुद्ध-शुद्ध ही वचन कहे थे। अथवा वासवदत्ता की अत्यन्त प्रिय वस्तु वत्सराज ही तो मेरे राजा हैं, उन्हें किसी प्रकार छुड़ाकर कौशाम्बी ले चलना है इस मन्त्रणा को उन्होंने अप्रधान समझ लिया जो चले गये। अथवा बहुत से लोग नाना प्रकार के वेश बनाकर विघ्न डालते रहते हैं इसलिये कहीं उन्होंने हो यौगन्धरायण का अपहरण तो नहीं किया। अच्छा, जब तक यौगन्धरायण नहीं आते तब तक यहीं शिवार्चन करते हुए प्रतीक्षा करूँ, क्योंकि वासवदत्ता के सहित वत्स–

वस्तु मम संबन्धीति कृत्वा मद्वश्यमनायामेव कौशाम्बीं नेतुं शक्यमिति मत्वा मोदकं प्रियं कर्त्तुम् संकेतितपूर्वम् कौशाम्वीप्रयाणविषयम् मंत्रणाकर्म प्रति हस्तीकृतं भवेत्। यद्यप्येष ब्रह्मचारी। यद्यपि। एकस्मिन् देवालये प्रतिष्ठितः गणेशः एष ब्रह्मचारी ब्रह्म चरतीति ब्रह्मचारी। बहुकैः रूपैः अनेकप्रकारैः अविनयं दुर्वृत्तं मोदकापहाररूपम् करोति कृतवान्। भवतु प्रेक्षिष्ये तावदहम्। द्वितीयोऽर्थः शिवस्य अर्चनां करिष्यामीति। यावत् कालं यौगन्धरायणः न आगमिष्यति तावत्कालं प्रतीक्षिष्यामीत्यर्थः। मोदकमल्लकः शिवस्य पादमूले तिष्ठति। मोदकमल्लकवासवदत्तासहितवत्सराजहरणरूपम् शिवस्य यौगन्धरायणस्य पादमूले तिष्ठति यौगन्धरायणैकसाध्यत्वात्तदधीनमित्यर्थः। एनं गृह्णामि इति स्पष्टार्थः। द्वितीयोऽर्थः वासवदत्तासहितवत्सराजपलायनरूपाभिलाषः पूर्णो भवेत् इत्येवं याचनां करोमि।

अविधा इति खेदे। दुःखसूचकमव्ययपदम्। आलिखितम् आलेख्ये चित्रेऽर्पितम्—नतु सत्यम्। संतापतिमिरेण संताप एव तिमिरं तेन उग्रतापाभिघातजनितेन चक्षुर्जडिम्ना। प्रमार्जयिष्यामि करेणाभिमृश्य शोधयिष्यामि।

ही ही शब्दः हर्षसूचकः। चित्रकर आलेख्यशिल्पिन्। वर्णानाम् शुक्लनीलादीनाम्। युक्तलेखतया पर्याप्तनिवेशितया हेतुना यथा यथा प्रमार्ज्मि तथा तथा उज्ज्वलवर्णम् भवति। द्वितीयार्थः—हे चित्रकर! अद्भुतनीतिप्रयोगकुशल यौगन्धरायण युक्तलेखतया यथार्हं प्रणयनतया। वर्णानाम् प्रकाराणाम् त्वदीयविविधकार्यविधानानाम्। प्रमार्ज्मि सारासारतां च विवेचयामि। उज्ज्वलतरम् सारतरम्। उदकेन प्रमार्जिष्यामि स्पष्टोऽर्थः। द्वितीयार्थः—उदकव्याजेन इदं सूचयति यत् क्वचित् कश्चिज्जले आत्मानं गोपयित्वा मम गोपनीयवचनं शृणोति न वेति भावः। शोभनतटाकम् विशुद्धं निर्मलं जलम्। द्वितीयोऽर्थः अथ च जनसान्निध्यदोषरहितम्। तटाकं यस्मिन् तद्यथा। शोभनम् मङ्गलकरम्। अहमिव भवतु

राज का हरण तो यौगन्धरायण के द्वारा ही किया जा सकता है। इसलिये शिवजी से प्रार्थना करूँगा कि हे प्रभो! तुम वासवदत्तासहित वत्सराज को मुझे दो, मुझे दो। तुम इस चोरी को करा सकते हो। अरे, यह वासवदत्ता के सहित वत्सराज का चित्र है जो सूर्यरश्मि के चकाचौंध से अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ता। तो हाथ से साफकर इसे देखूँ। धन्य हो अद्भुत चित्रकार यौगन्धरायण! धन्य हो जो अद्भुत वर्णों के प्रयोग से इसप्रकार की रचना किये हो। मैं जैसी-जैसी सूक्ष्मदृष्टि

(नेपथ्ये)

मोदहा ! मोदहा । हहह । [मोदकाः ! मोदकाः ! हहह ।]

विदूषकः—अविहा ! एसो उन्मत्तओ मम मोदअमल्लअं गह्लिअ हसमाणो फेणायमाणमलिणवरिसारच्छोदअं विअ इदो एव्वाहावइ । चिट्ठ चिट्ठ उन्मत्तअ ! चिट्ठ । इमिणा दंडकट्ठेण सीसं दे भिन्दामि । [अविघा ! एष उन्मत्तको मम मोदकमल्लकं गृहीत्वा हसमानः फेनायमानमलिनवर्षारथ्योदकमिवेत एवाधावति । तिष्ठ तिष्ठोन्मत्तक । तिष्ठ । अनेन दण्डकाष्ठेन शीर्षं ते भिनद्मि ।]

द्वितीयार्थः शिवोऽपि यौगन्धरायणोऽपि एनस्मिन् मोदकमल्लके वासवदत्तारहितवत्सराजहरणे निराशो भवतु । त्यक्ताभिलाषो भवतु ।

गृहीत्वा अपहृत्य । रथ्योदकमिव प्रतोलीजलं यथा । इत एव अत्रैव । आधावति द्रुतमागच्छति । द्वितीयार्थः उन्मत्तकः उन्मत्तकसदृशः यौगन्धरायणः । मोदकमल्लकम् मम प्रियतरं मन्त्रावसरं गृहीत्वा अपहृत्य । वाह्योऽर्थः स्पष्ट एव । आभ्यन्तरार्थं । मोदकाः मन्त्राः अज्ञातार्थे कप्रत्ययः ।

से इसके सारासार का विवेचन करता हूँ, वैसे वैसे ये सर्वथा निर्दोष दिखाई पड़ रहे हैं । कहीं ऐसा तो नहीं कि वह कहीं इस जल में छिपकर मेरी बात सुन रहा हो । अच्छा, उस निर्जन स्थान के पास चलता हूँ । जिस प्रकार मैं उसके लिये निराश हो रहा हूँ उसी प्रकार वह भी वासवदत्तासहित वत्सराज के हरण में निराश हो रहा होगा ।

(नेपथ्य में)

(वाह्यार्थ—) मोदक ! मोदक ! ह ह ह ।

विदूषक—यह उन्मत्तक मेरे मोदक को लेकर हँसता हुआ वर्षा के समय गली के गन्दे फेनयुक्त जल के समान इधर ही आ रहा है । उन्मत्तक ! ठहरो ठहरो इसी डण्डे से तुम्हारा सिर फोड़ता हूँ ।

आभ्यन्तरार्थ—विदूषक—यह उन्मत्तक मुझसे मन्त्रणा का समय जान कर मलिन वेप में इधर ही आ रहा है। उन्मत्तक ! यहीं ठहरो । अब मैं दण्डविधान से युक्त तुम्हारी मन्त्रणा जानना चाहता हूँ ।

(ततः प्रविशत्युन्मत्तकः ।)

उन्मत्तकः—मोदआ ! मोदआ ! अहह । [मोदकाः ! मोदकाः ! हहह ।]

विदूषकः—भो उन्मत्तअ ! आणेहि मम मोदअमल्लअं । [भोः उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम् ।]

उन्मत्तकः—किं मोदआ । कहिं मोदआ । कश्श मोदआ । किं इमे मोदआ उज्झन्ति, आदु पिणज्झन्ति, उदाहो खज्जन्ति । [किं मोदकाः ? कुत्र मोदकाः ? कस्य मोदकाः ? किमिमे मोदका उज्झ्यन्ते । अथवा पिनह्यन्ते उताहो खाद्यन्ते ।]

विदूषकः—ण खज्जन्ति ण खज्जन्ति ण उज्झन्ति अ । [न खाद्यन्ते न खाद्यन्ते नोज्झ्यन्ते च ।]

उन्मत्तकः—एसा खु मम रसणा खाइदुकामा लिङ्गाणि करेदि । [एषा खलु मम रसना खादितुकामा लिङ्गानि करोति ।]

कस्य मोदकाः अस्मत्स्वामिनः । आत्मनि गुरौ च बहुत्वम् । मोदकः कस्य किं सम्बन्धी । किमस्माकम् वश्य उत परवश्यः ? परवश्यत्वपक्षे आह—मोदकः स्वामि-प्रत्ययार्थे धार्यमाणा वेषाः किम् उज्झ्यन्ते फलनैराश्यात् । किं त्यज्यन्ते अथवा किं पिनह्यन्ते । यावत्फलोदयं किं बध्यन्ते । फलाशाबीजं किञ्चिदस्ति किमित्यभिप्रायः । उताहो किं खाद्यन्ताम् किं हन्यन्ताम् । अर्थात् स्वामिमोचनवामचेष्टिताः शत्रवः ।

उन्मत्तक इति बाह्योऽर्थः स्पष्ट एव । मम रसना बुद्धिः खादितुकामा हन्तु-कामा । लिङ्गानि जिघांसु चिह्नानि करोति । इति आभ्यन्तरोऽर्थः ।

(तदनन्तर उन्मत्तकवेष में यौगन्धरायण का प्रवेश)

उन्मत्तक—बाह्यार्थ—मोदक ! ह ह ह । कैसे मोदक ? क्या अभी तक मोदक अज्ञात ही है क्या ?

विदूषक—ऐ उन्मत्तक ! मेरा मोदक लाओ ।

उन्मत्तक—कैसे लड्डू ? कहाँ के लड्डू ? किसके लड्डू ? क्या ये लड्डू फेंके जायँगे अथवा बाँधे जायँगे अथवा खाये जायँगे ।

विदूषक—ये लड्डू न खाये जायँगे न त्यागे जायँगे ।

आभ्यन्तरार्थ—ये वेष न तो त्यागे जायँगे और न विनष्ट किये जायँगे ।

उन्मत्तक—(बाह्यार्थ) मेरी जीभ तो खाने की इच्छा से अपना लक्षण

विदूषकः—भो उन्मत्तअ ! आणेहि मम मोदअमल्लअं। मा परकेरए सिणेहं करिअ ओवज्झेहि। [भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम्। मा परकीये स्नेहं कृत्वा अववध्यस्व।]

उन्मत्तकः—के के मं वज्झन्ति ? मोदआ खु मं रक्खन्ति। [के के मां वध्यन्ति? मोदकाः खलु मां रक्षन्ति।]

णेवच्छविसेसमण्डिदा पीदिं उवदेदुं उवट्ठिआ।
लाअगिहे दिण्णमुल्लिआ कालवसेण मुहुत्तदुब्बला ॥ १ ॥

विदूषक इति आभ्यन्तरोऽर्थः। मोदकमल्लकम् मन्त्रावसरम् आनय देहि। वृत्तान्ततत्त्वं ते निवेदयामि इति। परकीये वत्सराजे पराधीने सति। यथानिश्चितं तत्कौशाम्बीप्रयाणाय निवेशं कृत्वा शत्रुबद्धो मा भव।

उन्मत्तक इति मोदकाः स्थानस्थानेषु स्थापिताः नियुक्ताः। छद्मचारिणः गुप्तपुरुषाः वत्सराजभटाः वा रक्षन्ति रक्षिष्यन्ति मद्बन्धनोद्यतेभ्यः शत्रुभ्य इति आभ्यन्तरोऽर्थः।

प्रकट कर रही हैं।

उन्मत्तक—मन्त्रणा मन्त्रणा ह ह ह

आभ्यन्तरार्थ—मेरी बुद्धि को तो शत्रुओं को विनष्ट करने जैसे लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं।

विदूषक—(वाह्यार्थ)—ऐ उन्मत्तक ! मेरे मोदक लाओ। दूसरे की वस्तु में स्नेह करके मत फँसो।

(आभ्यन्तरार्थ) यौगन्धरायण मुझे अपनी सलाह दो। मैं चाहता हूँ कि किसी प्रकार के उपाय से वत्सराज को बन्धन से मुक्त किया जाय। इस प्रयत्न में ऐसा न हो कि तुम्हीं शत्रुओं से बाँध लिये जाओ।

उन्मत्तक—(बाह्यार्थ) कौन कौन मुझे बाँध सकते हैं मोदक मेरी रक्षा करेंगे ही (आभ्यन्तरार्थ) मुझे कोई बाँधने वाला नहीं है। मैंने स्थान-स्थान पर अपने गुप्तचर नियुक्त कर दिये है जो समय पर मेरी शत्रुओं से रक्षा करेंगे।

[नेपथ्यविशेषमण्डिताः प्रीतिमुपदातुमुपस्थिताः ।
राजगृहे दत्तमूल्याः कालवशेन मुहूर्त्तदुर्बलाः ॥]

अन्वयः—नेपथ्यविशेषमण्डिताः राजगृहे दत्तमूल्याः कालवशेन मुहूर्त्तदुर्बलाः मोदका मम प्रीतिमुपदातुम् उपस्थिताः ।

व्याख्या—नेपथ्यविशेषैः अलङ्कारविशेषैः गुलमचणकनालिकेरादिभिरुपस्करभेदैः मण्डिताः अलङ्कृताः पूरितोदराः । राजगृहे दत्तमूल्याः दत्तं मूल्यं येषां ते दत्तमूल्याः दत्त्वा गृहीताः न तु चोरिताः । कालवशेन समयाधीनतया मुहूर्त्तदुर्बलाः क्षणेन नीरसां मूहूर्त्ताधिककालपरिवासमसहमानाः । मोदकाः मम प्रीतिम् तृप्तिम् उपदातुम् उपस्थिताः मम करे प्राप्ताः इति बाह्योऽर्थः ।

आभ्यन्तरोऽर्थः—नेपथ्यविशेषमण्डिताः बधिरपङ्गुमूकादिभिन्नभिन्नवेषालङ्कृताः । राजगृहे दत्तमूल्याः मया स्वामिना च दत्तभोग्याः वत्सराजगृहे । अतएव प्रीतिम् सन्तोषम् आनन्दं दा उपदातुम् जनयितुम् उपस्थिता उज्जयिन्यामेव गूढरूपेण संस्थिताः ।

मोदकाः स्वामिसेवकाः कालवशेन कालानुसारेण मुहूर्त्तदुर्बलाः मुहूर्त्तम् कियन्तम् कालम् दुर्बलाः अप्रकाशमानशौर्याः सन्ति परन्तु समये स्वसामर्थ्यं अवश्यमेव प्रकटयन्ति । मम स्वामिनश्च रक्षां करिष्यन्तीत्यर्थः ।

विदूषक—यौगन्धरायण मुझे अपनी मन्त्रणा दो ।

उन्मत्तक—किस विषय में मन्त्रणा करूँ । किसके सम्बन्ध में मन्त्रणा करूँ अपने वशवाली मन्त्रणा करूँ या परवशवाली मन्त्रणा करूँ । परवश के विषय में तो जिन वेषों को हम लोगों ने परवश हो धारण किया हैं, क्या फल प्राप्ति की निराशा से उन वेशों को त्याग दिया जाय ? अथवा यदि फलको आशा हो तो फलनिष्पत्ति पर्यन्त उन्हे धारण किये रहें । अथवा स्वामी को मुक्त कराने में बाधक शत्रुओं को विनष्ट कर दिया जाय ।

(वाह्यार्थ) विशेष सामग्रियों—चना, नारियल से बने हुए राजगृह से खरीदे हुए किन्तु समय के कारण सूखे हुए मोदक मेरी रक्षा के लिये पर्याप्त है ।

(आभ्यन्तरार्थ) वधिर पङ्गु मूक आदि विभिन्न वेषों को धारण किये हुए

विदूषकः—भो उन्मत्तअ ! आणेहि मम मोदअमल्लअं । इमिणा पच्चएण उवज्झाअलउलं गन्तव्वं । [भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम् । अनेन प्रत्ययेनोपाध्यायकुलं गन्तव्यम् ।]

उन्मत्तकः—मए विं इमिणा पच्चएण जोअणसदं गन्तव्वं । [मयाप्यनेन प्रत्ययनेन योजनशतं गन्तव्यम् ।]

विदूषक इति—मम मोदकमल्लकम् आनय । अनेन मोदकेन प्रत्ययेन हेतुना । अर्थात् पाथेयेन उपाध्यायकुलम् आचार्यगृहम् इति बाह्योऽर्थः । आभ्यन्तरार्थः—उन्मत्तक ! यौगन्धरायण ! मम मोदकं मन्त्रावसरं देहि । अनेन प्रत्ययेन भवता सह मन्त्रयित्वा कर्त्तव्यपथं निश्चित्य च उपाध्यायकुलम् स्वामिवासस्थानं गन्तव्यम् । स्वामिने मन्त्रार्थम् निवेदयितुम् । तस्मान्मन्त्राय त्वरस्वेत्यभिप्रायः । उन्मत्तक इति—बाह्यार्थः स्फुटः । मयापि स्वामिसंहितेन लक्षणया मत्स्वामिनापि अनेन प्रत्ययेन मदुल्लिखितपूर्वेण रन्ध्रेण उपायेन योजनशतम् योजनशतविप्रकृष्टम् कौशाम्वीनगरम् गन्तुम् शक्यम् इति भावः ।

आभ्यन्तरोऽर्थः—पूर्वमन्त्ररीत्या कार्याणि साधयितुं किं ते दिव्यशक्तिरस्ति ? वाह्योऽर्थः स्पष्ट एव ।

हमारे द्वारा तथा स्वामी के द्वारा पर्याप्त वेतन पाने वाले गुप्तचर वत्सराज की रक्षा के लिये इस उज्जयिनी में ही गूढ़ रूप से ही स्थित हैं जों समय के प्रभाव से अभी गुप्त हैं, काल प्राप्त होने पर हमारी तथा वत्सराज की रक्षा वे अवश्य करेंगे ।

विदूषक—(बाह्यार्थ) ऐ उन्मत्तक ! मेरा मोदक दो । इसी पाथेय की सहायता से तो मैं आचार्य के घर जाऊँगा ।

आभ्यन्तरार्थ—यौगन्धरायण ! मुझे मन्त्रणा का अवसर दो । इसी विश्वास से तो मैं तुम्हारे साथ मन्त्रणा कर अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर स्वामी से मन्त्रणा का संवाद कहने के लिये उनके पास जाना चाहता हूँ । इसलिये मन्त्रणा की शीघ्रता करो ।

उन्मत्तक—(वाह्यार्थ) मुझे भी इसी लड्डू के सहारे सौ योजन जाना है ।

(आभ्यन्तरार्थ) इसी मन्त्रणा के आधार पर तो मुझे भी स्वामी को लेकर कौशाम्बी जो यहाँ से सैकड़ों योजन दूर है जाने की इच्छा है ।

विदूषकः—किं एलावणे तुवं ? [किमैरावणस्त्वम् ।]

उन्मत्तकः—आम एलावणे अहं । ण हु दाव देवलाजो मं आशणं आलुहदि । शुदं च मया पादपाशिएहि इन्दे वज्झ त्ति । धाराणिअलेहि विज्जुम्मईहि कशाहि तालिअ वाउब्भामेण परिब्भमन्तेण भिन्दीअदि मेहबन्धणं । [आम् ऐरावणोऽहम् । न खलु तावद् देवराजो मामासनमारोहति । श्रुतं च मया पादपाशिकैरिन्द्रो बद्ध इति । धारानिगलैः विद्युन्मयीभिः कशाभिस्ताडयित्वा वातोद्भ्रामेण भिद्यते मेघबन्धनम् ।]

विदूषकः—भो उम्मत्तअ ! ण तुवं मम दहस्सिसि, विलविस्सं दाव अहं । [भो उन्मत्तक ! न त्वं मम दास्यति, विलपिष्यामि तावदहम् ।]

विदूषक—(वाह्यार्थं) क्या तुम ऐरावत हो जो सौ योजन चले जाओगे ।

(आभ्यन्तरार्थ) क्या पूर्वमन्त्रणा के अनुसार अपना कार्य सिद्ध करने के लिये तुममें दिव्यशक्ति है जो कौशाम्बी जाना चाहते हो ।

उन्मत्तक—(बाह्यार्थ) हाँ । मैं ऐरावत हूँ किन्तु देवराज इन्द्र मेरी सवारी नहीं करते । मैंने सुना है कि क्षुद्र आयुध धारण करने वालों ने इन्द्र को बाँध लिया है । मैं जलवृष्टि को रोकने वाले बिजली के समान चमकीले कोड़ों से मार-मार कर उससे वायु पैदा कर मेघबन्धन को ढीला कर दूँगा ।

(आभ्यन्तरार्थ) हाँ मैं वत्सराज का किङ्कर हूँ किन्तु वे मुझे इस इस कार्य के लिये आज्ञा नहीं देते । सुनता हूँ कि क्षुद्र शालङ्कायनादिकों ने मेरे स्वामी वत्सराज को बाँध लिया है; अतः मैं भी शत्रु सेना की प्रतिकार करने वाले बिजली के समान सहसा आविर्भूत होने वाले कशा के समान कड़े अपनी सेनाओं के प्रच्छन्न भटों द्वारा शत्रु सेना का भेदन कर स्वामी को बन्धन से छुड़ाऊँगा ।

विदूषक—(वाह्यार्थं) अरे उन्मत्तक ! यदि तुम मेरा मोदक नहीं दोगे तो विलाप करूँगा ।

(आभ्यन्तरार्थ) यदि तुम अकेले मुझ से सलाह नहीं करोगे और रुमण्वान् की प्रतीक्षा करोगे तो मैं उसे बुलाऊँगा ।

उन्मत्तकः—विलव विलव विक्कोस वा विलव। [विलप विलप विक्रोश वा विलप।]

विदूषकः—अब्बम्मणं भो! अब्बम्मणं। [अब्रह्मण्यं भो! अब्रह्मण्यम्।]

उन्मत्तकः—अहं विलविस्सं। इन्दे वज्झे भो! इन्दे वज्झे भो! [अहमपि विलपिष्यामि। इन्द्रो वद्धो भोः! इन्द्रो वद्धो भोः!।]

विदूषकः—अब्बम्मणं। भो! अब्बम्मणं। [अब्रह्मण्यं भोः! अब्रह्मण्यम्।]

(नेपथ्ये)

मा भाआहि मा भाआहि ब्रह्मणाउस! मा भाआहि। [मा विभीहि मा विभीहि ब्राह्मणोपासक! मा विभीहि।]

विदूषकः—(सहर्षम्) आअदे चन्दे समाअदाणि सव्वणक्खत्ताणि। अघं ब्रह्मणभावं। ईहामत्तएण समणएण अभअं दीअदि। [आगते

उन्मत्तक—(वाह्यार्थ) विलाप करो। विलाप करो। विक्रोश और विलाप करो।

(आभ्यन्तरार्थ) पुकारो-पुकारो और जोर से पुकारो।

विदूषक—अधर्म अधर्म।

उन्मत्तक—मैं भी विलाप करूँगा इन्द्र (वत्सराज) बाँधा गया इन्द्र बाँधा गया।

विदूषक—अधर्म। अधर्म।

(नेपथ्य में)

(वाह्यार्थ) ऐ ब्राह्मणभक्त! मत डरो मत डरो मत डरो।

(आभ्यन्तरार्थ) मैं तुमसे सलाह करने आ रहा हूँ।

विदूषक—(वड़े हर्ष के साथ) चन्द्र के आने से सभी नक्षत्र आ गये। ब्राह्मणत्व ही शोक का हेतु हैं। श्रमणक तो अपने कार्य के अनुसार अभय दे रहा हैं।

(आभ्यन्तरार्थ) यहाँ रुमण्वान् का वेष धारण किये हुये है। जीवों पर

चन्द्रे समागतानि सर्वनक्षत्राणि। अघं ब्राह्मणभावः। ईहामात्रकेण श्रमणकेनाभयं दीयते।]

(ततः प्रविशति श्रमणकः।)

श्रमणकः—मा भाआहि मा भाआहि ब्रह्मणाउस ! मा भाआहि। के के इह, किं कय्यं विलवन्दि। [मा विभीहि मा विभीहि ब्राह्मणोपासक ! मा विभीहि। के के इह, किं कार्यं विलपन्ति।]

विदूषकः—अविहापडिहारक्खअउत्तिखु समणओ अणुहोदि। भो समणअ ! भअवं ! एसो उन्मत्तओ मम मोदअमल्लअं गहणिअ ण देदि। [अविधा प्रतिहाररक्षकवृत्ति खलु श्रमणकोऽनुभवति। भोः श्रमणक ! भगवन् ! एष उन्मत्तको मम मोदकमल्लकं गृहीत्वा न ददाति।]

श्रमणकः—मोदअं पेख्खामिव दाव। [मोदकं प्रेक्षे तावत्।]

उन्मत्तकः—पेक्खदु पेक्खदु शमणअ ! भवं [प्रेक्षतां प्रेक्षतां श्रमणक ! भवान्।]

श्रमणकः— थु थु [थु थु।]

दया करना ही उसका काम है। विदूषक कहता है कि दयालु श्रमणक जब आ गया तो हम सभी आ गये। मैं अकेला ब्राह्मण क्या कर सकता हूँ।

(तदनन्तर श्रमणक वेषधारी रुमण्वान् का प्रवेश)

श्रमणक—मत डरो मत डरो ऐ ब्राह्मण भक्त मत डरो यहाँ कौन-कौन और किस कार्य के लिये विलाप कर रहे हैं।

विदूषक—यह श्रमणक तो द्वारपाल की वृत्ति का अनुभव कर रहा है। हे श्रमणक ! हे भगवन् यह उन्मत्तक बहुमूल्य मोदक लेकर अब दे नहीं रहा है।

श्रमणक—(वाह्यार्थं) अच्छा मोदक देखूँ।

(आभ्यन्तरार्थं) मैं भी सलाह लेने के लिये आया हूँ।

उन्मत्तक—श्रमणक ! ये हैं मोदक आप देखिये आप देखिये।

श्रमणक—थू-थू।

विदूषकः—हद्धि उन्मत्तअस्स इत्थे ईहामत्तएण समणएण थुथूकिदा अधण्णस्स मम मोअदा दिट्ठपुरुवा एव्व संवुत्ता। [हा धिग् उन्मत्तकस्य हस्ते ईहामात्रकेण श्रमणकेन थुथूकृता अधन्यस्य मम मोदका दृष्टपूर्वा एवं संवृत्ता।]

श्रमणकः- भो उन्मत्तआउस ! णीआदेहि णीआदेहि एदाणि मोदआणि कत्थूलिआफेणपण्डराणि बहुपिट्ठसमिद्धकोमलाणि णिट्ठाणिआ सुरा विअ महुराणि। मा दे खाईदाणि खअं उत्पादन्ति। [भो उन्मत्तकोपासक ! निर्यातय निर्यातय एतानि मोदकानि कस्थूलिकाफेनपाण्डराणि बहुपिष्टसमृद्धकोमलानि निष्ठानिताः सुरा इव मधुराणि। मा ते खादितानि क्षयमुत्पादयन्तु।]

विदूषकः—अविहा मोदआणि त्ति करिअ कण्डिललड्डुआ मे पडि-

विदूषक—(बाह्यार्थ) हाय बड़े दु:ख की बात है कि मुझ भाग्यहीन के मोदक को जिन्हें उन्मत्तक ने अपने हाथ में रखे थे इस श्रमणक ने थू-थू कर अशुद्ध कर दिया। इस कारण अब वे पूर्व में मात्र देखे ही गये। खाने योग्य नहीं रहे।

(आभ्यन्तरार्थ) अब मुझसे बढ़ कर कोई धन्य नहीं है। मेरे द्वारा पूर्व में ज्ञात स्वामी के सन्देश को श्रमणक ने भी अनुमोदित कर दिया।

श्रमणक (बाह्यार्थ)—हे उन्मत्तक के भक्त फेंको फेंको इन मोदकों को। ये मोदक पाला और फेन की तरह सफेद हैं, तथा अनेक पिसी हुई तण्डुलादि के चूर्ण से निर्मित भी हैं; दध्यादि निर्मित शिखरन से युक्त सुरा के समान हैं इसके खाने से तुम्हें क्षय का रोग हो जायगा।

(आभ्यन्तरार्थ) हे यौगन्धरायण ! तुम विदूषक के कथनानुसार ऐसी मन्त्रणा या उपाय बताओ जो अनिष्ट की आशङ्का से रहित चिर परीक्षित बहुफलदायी एवं क्लेश से रहित हो। जिसे तुमने अकेले अपनी बुद्धि के सहारे निश्चित किया हो और जिससे अपने लोगों का कोई अहित न हो।

विदूषक—(बाह्यार्थ) हाय मैंने लड्डू खाने की इच्छा से मदिरा बनाने वाले उन्मत्तक के लड्डुओं की प्रतीक्षा की।

चिछदा । [अविधा मोदका इति कृत्वा कण्डिलल‍ड्डुका मे प्रतीष्टाः ।]

श्रमणकः—उन्मत्तआउस ! णीआदेहि णीआदेहि । जदि ण णीआदेसि एवं सवेमि । [उन्मत्तकोपासक ! निर्यातिय निर्यातिय । यदि न निर्यातयसि, त्वां शपामि ।]

उन्मत्तकः—पशीदद्रु पशीदद्रु शमअण भअवं । मा खु मा खु मं शविदं । गह्ण गह्ण । [प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु श्रमणक ! भगवन् ! मा खलु मा खलु मां शप्तुम् । गृहाण गृहाण ।]

श्रमणकः—ब्रह्मणाउस पेक्ख पेक्ख मम प्पभावं । [ब्राह्मणोपासक ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व मम प्रभावम् ।]

विदूषकः—एसो उन्मत्तओ एदेण ईहामत्तएणसमणएण उज्झिदं सावं

(आभ्यन्तरार्थ) मैं मन्त्री का यह शुभ समाचार कहने गया था कि कौशाम्बी चलना चाहिये । पर स्वामी ने मुझ से कहा है कि अभी प्रतीक्षा करो क्योंकि वासवदत्ता को भी लेकर चलना है । यह स्वामी का आदेश मैंनें स्वीकार कर लिया यह एक समस्या हो गई ।

श्रमणक—(बाह्यार्थ) हे उन्मत्तकोपासक ! दे दो, दे दो । यदि नहीं दोगे तो तुम्हें शाप दूँगा ।

(आभ्यन्तरार्थ) उन्मत्तक ! यदि मन्त्रणा के लिये अवसर न दोगे तो तो तुम्हारी बुराई होगी ।

उन्मत्तक—(बाह्यार्थ) प्रसन्न हों, प्रसन्न हों भगवन् ! मुझे शाप न दीजिये लीजिये-लीजिये ।

(आभ्यन्तरार्थ) आप प्रसन्न रहें । मेरी बुराई न हो इसलिये मन्त्रणा का आरम्भ कीजिये ।

श्रमणक—(बाह्यार्थ) हे ब्राह्मणोपासक ! मेरा प्रभाव देखो ।

(आभ्यन्तरार्थ) मेरी निग्रहानुग्रहशक्ति देखो ।

विदूषक—(बाह्यार्थ) यह उन्मत्तक तो श्रमणक को इच्छा मात्र से शाप देने का विचार करते देख मोदक को अपनी फैली हुई अङ्गु-

पेक्खिअ मोदअमल्लअं भीदभीदं अग्गङ्गुलिआए पसारिदाए ठाविअ चिट्ठई। भो उन्मत्तअ ! अणेहि मम मोदअल्लअं। [एष उन्मत्तक एतेनेहामात्रकेण श्रमणकेन उज्झितं शापं प्रेक्ष्य मोदकमल्लकं भीतभीतमग्राङ्गुल्यां प्रसारितायां स्थापयित्वा तिष्ठति। भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम्।]

श्रमणकः—एदु एदु भवं। एदेहि मोदएहि मं सोत्थि वाअइस्ससि। [एतु एतु भवान्। एतैर्मोदकैर्मां स्वस्ति वाचयिष्यसि।]

विदूषकः—ही ही ममकेरएहिं सोत्थि वाएमि। मए वि कोडुम्बिअस्स हत्थादो पडिग्गहग्गहीदाणि। ताणि भवदो वि उवाअणं भविस्सदि। सो वि समिद्धो होदु। एसो उन्मत्तओ अग्गिगिहं अहिमुदो गच्छइ। ट्ठिदो मज्झल्लो। पुब्वल्ले वि दाव अअं देसो सुञ्ञो भविस्सदि। जांव अहं वि

व्याख्या—विदूषकेति ही शब्दः सन्तोषे। कौटुम्बिकस्य गृहस्थस्य। प्रतिग्रहगृहीतानि प्रतिग्रहरूपेण लब्धानि। स कौटुम्बिकः गृहस्थः। समृद्धः कृतार्थः। एष उन्मत्तकः स्थितः निष्पन्ना। मार्गगेहे पुरोवर्त्तिनि गृहे।

लियों के अग्रभाग पर रख कर बैठा हुआ है। अच्छा उन्मत्तक मेरे लड्डू लाओ।

(अभ्यन्तरार्थ) यह यौगन्धरायण रुमण्वान् की वार्तो का सम्मान करते हुये मन्त्रणा देने के लिये अङ्गुलि के अग्रभाग पर रखे हुये के समान तैयार बैठा है।

श्रमणक—(बाह्यार्थ) यहाँ आओ। मैंने चुराये हुये मोदकों को तुम्हें दिखा दिया। अब इन्हें उपहार रूप में मुझे देकर क्या स्वस्ति कहलवाना चाहोगे।

(आभ्यन्तरार्थ) अब इन स्वामी के सन्देशो को ले जाकर मुझे प्रसन्न करो।

विदूषक—(बाह्यार्थ) अपने मोदकों से तुम्हारे द्वारा स्वस्ति कहलाऊँगा। मैंने भी किसी कुटुम्बी गृहस्थ के यहाँ से इन्हें प्रतिग्रह रूप में प्राप्त किया है। वे आपके लिये उपहार हो जायेंगे वह गृहस्थ भी समृद्ध रहे।

इमाणि दक्खिणामासअणि मग्गगेहे णिक्खिविअ गच्छामि। एकस्स शाडिआए कय्यं अवरस्स मुल्लेण। [ही ही मदीयैः स्वस्ति वाचयामि। मयापि कौटुम्बिकस्य हस्तात् प्रतिग्रहगृहीतानि। तानि भवतोऽप्युपायनं भविष्यति। सोऽपि समृद्धो भवतु। एष उन्मत्तकोऽग्निगृहमभिमुखो गच्छति। स्थितो मध्याह्नः। पूर्वाह्णेऽपि तावदयं देशः शून्यो भविष्यति। यावदहमपीमान् दक्षिणामाषकान् मार्गगेहे निक्षिप्य गच्छामि। एकस्य शाटिकया कार्यमपरस्य मूल्येन।]

आभ्यन्तरोऽर्थः—मदीयैः मन्मनोगुप्तैः सन्देशैः। स्वस्ति वाचयिष्यामि प्रीणयिष्यामि। ते सन्देशाः मया स्वामिसकाशात् प्रतिग्राह्यद्रव्यवत् प्रीतिपूर्वं गृहीताः। श्रुताश्च। मन्मुखादुपहारपदार्था इव तव प्रमोदावहा भविष्यन्ति। समृद्धो भवतु अस्मत्स्वामी युवयोरुभयोरनुकूलवृत्त्या निर्विघ्नसंसिद्धमनोरथो भवतु। इमान् दक्षिणामाषकान् स्वामिसंदेशान् मार्गगृहे मार्गाणाम् उपयनानां गेहे निकेतनभूते। अर्थात् सर्वप्रकारप्रवीणे यौगन्धरायणे इत्यर्थः। निक्षिप्य त्यक्त्वा। अहमपि इमं सन्देशं यौगन्धरायणाय निवेद्य गच्छामीत्यर्थः। एकस्य शाटिकया दक्षिणमाषकाः आत्मप्रयोजनाय रक्षणीया इति। अप्रस्तुतप्रशंसा-भङ्ग्याह—एकस्य शाटिकया वस्त्रेण कार्यम्। शाक्यभिक्षोः बुभुक्षोः मोदकेन प्रयोजनम्। अतो मोदकं दास्यामि न रक्षिष्यामि। अपरस्य मम दक्षिणामाषकैः सन्देशैः प्रयोजनम् अतः तान् रक्षितुमिच्छामि इत्यर्थः।

(आभ्यान्तरार्थ) तो मैं सन्देश को ले जाकर उन्हें प्रसन्न करूँगा इन सन्देशों को प्रतिग्राह्य द्रव्य की भाँति मैंने प्रीतिपूर्वक ग्रहण किया है और सुना भी है। ये उपहार पदार्थ के समान स्वामी को प्रिय होंगे। हमारे स्वामी आप दोनों के इस प्रकार के आचरण से निर्विघ्नतापूर्वक अपना मनोरथ सिद्ध करें।

यह उन्मत्तक तो अग्निगृह के सामने जा रहा है। मध्याह्न की वेला हो गई। ऐसे तो मध्याह्न के पहले भी यह स्थान शून्य ही रहता है।

(बाह्यार्थ) मैं भी दक्षिणा में प्राप्त इन सुवर्ण के टुकड़ों को मार्ग वाले घर में रख कर जाता हूँ। एक को (खरीदने वाले को) साड़ी की आव-

(सर्वे अग्निगृहं प्रविशन्ति ।)

यौगन्धरायणः—वसन्तक ! शून्यमिदमग्निगृहम् ।

विदूषकः—आम भो ! सुञ्ञं खुद इदं । [आम् भोः ! शून्यं खल्विदम् ।]

यौगन्धरायणः—तेन हि परिष्वजेतां भवन्तौ ।

उभौ—बाढम् । (परिष्वजेते)

यौगन्धरायणः—भवतु भवतु । तुल्यपरिश्रमौ भवन्तौ । आस्तां भवान् । भवानप्यास्ताम् ।

(सर्वे उपविशन्ति)

यौगन्धरायणः—वसन्तक ! अपि दृष्टस्त्वया स्वामी—

आभ्यन्तरोऽर्थः—एकस्य स्वामिनः शाटिकया वासवदत्तया कार्यं प्रयोजनम् । अपरस्य यौगन्धरायणस्य स्वामिना प्रयोजनम् ।

श्यकता है तो दूसरे को (बेचने वाले को) मूल्य से प्रयोजन रहता है ।

(आभ्यन्तरार्थ) अब मैं भी स्वामी का सन्देश यौगन्धरायण से निवेदन कर जाता हूँ । एक को वासवदत्ता से प्रयोजन है तो दूसरे यौगन्धरायण को स्वामी से प्रयोजन है ।

(सभी अग्निगृह में प्रवेश करते हैं)

यौग०—वसन्तक ! यह अग्निगृह तो सूना है ।

विदूषक—हाँ । यह तो निश्चय ही शून्य है ।

यौग०—तब तुम दोनों मेरा आलिङ्गन करो ।

दोनों—ठीक है (ऐसा कह कर दोनों आलिङ्गन करते हैं)

यौग०—अच्छा ठीक है ठीक है । आप लोगों ने समान रूप से परिश्रम किया है । आप बैठें । आप भी बैठें ।

दोनों—अच्छा ।

(बैठ जाते हैं)

यौग०—वसन्तक ! क्या तुमने स्वामी को देखा ?

विदूषकः—आम भो ! दिट्ठो तत्तभवं। [आम् भोः ! दृष्टस्तत्रभवान् ।]

यौगन्धरायणः—हन्त भोः अतिक्रान्तयोगक्षेमा रात्रिः । दिवस इदानीं प्रतिपाल्यते ।

अहः समुत्तीर्य निशा प्रतीक्ष्यते
शुभे प्रभाते दिवसोऽनुचिन्त्यते ।
अनागतार्थान्यशुभानि पश्यतां
गतं गतं कालमवेक्ष्य निर्वृतिः ॥ २ ॥

व्याख्या—यौगन्धरायणेति—अतिक्रान्तयोगक्षेमा अतिक्रान्तः अतीतः योगक्षेमः अनर्थं विना देहयात्रा यस्यां सा । दिवसः दिनम् । प्रतिपाल्यते प्रतीक्ष्यते सुसम्पन्नयोगक्षेमः भवति न वेत्यनुचिन्त्यते ।

अन्वयः—अहः दिनम् समुत्तीर्य निशा प्रतीक्ष्यते । शुभे प्रभाते दिवसः अनुचिन्त्यते अनागतार्थानि अशुभानि पश्यताम् गतं गतं कालम् अवेक्ष्य निर्वृतिः भवति ॥ २ ॥

व्याख्या—अहः दिनम् समुत्तीर्य विना दिवसमतिवाह्य निशा रात्रि प्रतीक्ष्यते प्रतिपाल्यते । शुभे कल्याणकरे प्रभाते प्रत्यूषे दृष्टे सति दिवस अनुचिन्त्यते शुभं भवति न वेत्येवं रूपेण सन्दिह्यते । अनागतार्थानि भविष्यत्कालसम्बन्धीनि अशुभानि अनिष्टानि पश्यताम् चिन्तयताम् अस्माकं गतं गतं कालम् अवेक्ष्य मङ्गलमयमतीतं स्मृत्वा निर्वृतिः सुखं भवति ।

व्याख्या—तुल्येऽपि कालविशेषे रात्रिन्दिवं समाने सत्यपि निशैव रात्रिरेव बहुदोषा अनर्थबहुला बन्धनेषु कारागारेषु ।

विदूषक—हाँ ! तत्रभवान् से भेंट किया ।

यौग०—बड़े खेद की बात है कि रात्रि सकुशल बीत गई । अब दिन की प्रतीक्षा की जा रही है कि किस प्रकार व्यतीत होगा ।

जब दिन सकुशल बीत जाता है तो रात की प्रतीक्षा की जाती है कि किस प्रकार बीतेगी । पुनः सकुशल प्रभात होनें पर दिन की चिन्ता होने

रुमण्वान्—सम्यग् भवानाह। तुल्येऽपि कालविशेषे निशैव बहुदोषा बन्धनेषु। कुतः,

व्यवहारेष्वसाध्यानां लोके वा प्रतिरज्यताम्।
प्रभाते दृष्टदोषाणां वैरिणां रजनी भयम् ॥ ३ ॥

यौगन्धरायणः—वसन्तक! स्वामिना सह कथितं ननु?

विदूषकः—आम भो! चिरं एव्व च म्हि तत्तहोद ओवज्झो। अज्ज चउद्दसी ण्हाअमाणो पडिवालिदो अ। [आम् भोः! चिरमेव चास्मि तत्रभवतावबद्धः। अद्य चतुर्दशीं स्नायमानः प्रतिपालितश्च।]

अन्वयः—व्यवहारेषु असाध्यानां वा लोके प्रतिरज्यताम् प्रभाते दृष्ट-दोषाणां वैरिणां रजनी भयम् ॥ ३ ॥

व्याख्या—व्यवहारेषु कार्येषु असाध्यानाम् निर्णेतुमशक्यानाम् ईदृशं हृदय-मिति असम्प्रधारणीयहृदयानामित्यर्थः। वा लोके जने अप्रतिरज्यताम् उदासीन-त्वाज्जने निःस्नेहानाम् प्रभाते दृष्टदोषाणां परिज्ञातचर्याच्छलानां वैरिणाम् शत्रूणाम् पुंसाम् रजनी रात्रिः भयम् प्राणसङ्कटकारणम् भवति।

व्याख्याः—स्वामिना सह कथितं ननु, स्वामिना सह ते वार्त्तालापो जातः। अस्मत्सन्देशः स्वामिने त्वया निवेदितः किमु इत्यभिप्रायः। तत्र-

---

लगती है। भविष्य के अनिष्टों की चिन्ता करने वालों को शान्ति तो बीते हुये सकुशल काल के स्मरण से ही प्राप्त होती है।

रुमण्वान्—आपने उचित बात कही। रात्रि और दिन दोनों के एक समान होने पर भी कारागार में रात्रि ही अधिक कष्टदायक होती है क्योंकि दैनिक कार्य में जिनके हृदय का पता नहीं चलता और जो संसार के अन्य लोगों से विरक्त से रहते हैं ऐसे लोगों के द्वारा दिन में किये जाने वाले छलों का पता जब लग जाता है तो ऐसे शत्रुओं को रात अधिक भयदायक होती है कि कहीं छद्म से मेरा भी कोई वध न कर दे।

यौग०—वसन्तक! क्या स्वामी से तुम्हारी बातचीत हुई?

विदूषक—हाँ स्वामी बहुत काल तक रोक रखा था। चतुर्दशी के पूजन के लिये स्नान करते रहने के कारण मैंने भी देर तक उनकी प्रतीक्षा की।

यौगन्धरायणः—स्नातः स्वामी ?

विदूषकः—ण्हादो अत्तभवं । [स्नातोऽत्रभवान् ।]

यौगन्धरायणः—कृतं देवकार्यम् ?

विदूषकः—आम भो ! पणाममत्तेण पूइदा देवदा । [आम भोः प्रणाममात्रेण पूजिता देवताः ।]

यौगन्धरायणः—एतामपि बहुमतामवस्थां प्राप्तः स्वामी । कुतः,

स्नातस्य यस्य समुपस्थितदैवतस्य
पुण्याहघोषविरमे पटहा नदन्ति ।
तस्यैव कालविभवात् तिथिपूजनेषु
दैवप्रणामचलिता निगलाः स्वनन्ति ॥ ४ ॥

भवता स्वामिना अवबद्धः वार्त्तालापरूपेण अवरुद्धः अस्मि । स्नायमानः प्रतिपालितश्च स्नायमानः पूजोद्देशेन शरीरशौचम् क्रियमाणः प्रतीक्षितः ।

अन्वयः—स्नातस्य यस्य समुपस्थितदैवतस्य पुण्याहघोषविरमे पटहा नदन्ति । कालविभवात् तस्यैव तिथिपूजनेषु दैवप्रणामचलिताः निगमाः स्वनन्ति ॥ ४ ॥

व्याख्या—स्नातस्य विशुद्धगावस्य यस्य राज्ञः समुपस्थितदैवतस्य देवोद्देश्येन सपर्यां विदधानस्य पुण्याहघोषविरमे पूजाङ्गपुण्याह कर्मावसाने पटहा भेर्यः नदन्ति स्वनन्ति कालविभवात् कालमाहात्म्यात् तस्यैव राज्ञः तिथिपूजनेषु चतुर्द्दश्यादितिथिमुद्दिश्य विशेषदेवपूजनकालेषु दैवप्रणामचलिताः पूजाकाले इष्टदेवप्रणामार्थमितस्ततोऽनुकम्पमानाः निगलाः निगडा स्वनन्ति शब्दायन्ते ।

यौग०—क्या स्वामी ने स्नान किया ?

विदूषक—हाँ तत्रभवान् ने स्नान किया ।

यौग०—क्या देवताओं की पूजा की ?

विदूषक—हाँ केवल प्रणाममात्र से देवताओं की पूजा की ।

यौग०—क्या स्वामी इस प्रकार की स्थिति में हो गये हैं ? स्नान कर देवताओं की पूजा के लिये उपस्थित होने पर जिनके पुण्या-

रुमण्वान्—भवत इदानीं प्रयत्न उचितं तिथिसत्कारमानेष्यति स्वामिनः।

यौगन्धरायणः—वसन्तक! गच्छ भूयः स्वामिनं पश्य। विज्ञाप्यतां च स्वामी—या सा प्रयाणं प्रतीह प्रस्तुता कथा, तस्याः श्वः प्रयोगकाल इति। कुतः स्थानावगाह्यवसशय्याभागेष्वाश्रयेषूपन्यस्तौषधिव्याजो

व्याख्या—उचितम् पूर्ववत्पुण्याहवाचनकालिकं पटहध्वनिम्। तिथिसत्कारम् तिथिनिमित्तमुद्दिश्य क्रियमाणपूजनम्।

प्रयाणं कौशाम्बीं प्रतीतिशेषः। स्थानावगाहनयवसशय्याभागेषु आश्रमेषु स्थानं आवासः यत्र नलागिरिस्तिष्ठति। अवगाहनम् स्नानम् यत्र स्नाति, यवसम् यत्र नलागिरिस्तृणादिकमश्नाति, शय्या यत्र शयनं करोति। तासां भागास्तेषु। उपन्यस्तौषधीव्याजः उपन्यस्तः संस्थापितः औषधिव्याजः औषधिरूपं छद्म यस्य सः। मन्त्रौषधिनियमसम्भृतः मन्त्रौषध्योः नियमेन सम्भृतः कृतपोषणः। पुराणकर्मव्यामोहितः पुराणे प्राचीने कर्मणि व्यामोहितः सम्भ्रान्तः। रोषप्रतिकूलः रोषे जाते प्रतिकूलः प्रतीपव्यवहारः। शालासन्निकृष्टम् गजावास-

---

हवाचन हो जाने के उपरान्त नगाड़े बजते थे, अब काल के प्रभाव से उन्हीं की तिथि को उपलक्ष कर विशेष पूजन के समय भी बेड़ियों के खनखनाहट के शब्द होते हैं।

रुमण्वान्—अच्छा! अब आपका प्रयत्न स्वामी की तिथियों पर किये जाने वाले पूजा के महोत्सव को पुनः प्रतिष्ठित करेगा।

यौग०—तो वसन्तक जाओ। स्वामी से पुनः मिलो। और उनसे कहो कि आपके यहाँ से चलने के विषय में जो बातचीत चल रही है उसके कार्य रूप में प्रयोग करने का समय कल ही है। नलगिरि के रहने स्नान भोजन और शय्या वाले स्थान पर छलपूर्वक औषधि रख दी गई है और मन्त्र एवं औषधि के नियमों से उसे भली प्रकार पुष्ट कर दिया गया है। जिससे वह नित्य की भाँति पागल हो सकता है। वायु के अनुसार उसके समीप में दिया जाने वाला धूप भी तैयार है। दूसरे हाथी का गजमद जो उसे प्रतिकूल में रोष पैदा करने

नलागिरिर्मन्त्रौषधिनियमसम्भृतः पुराणकर्मव्यामोहितः। अनुकूलमारुत-मोक्तव्यः सज्जितो धूपः। रोषप्रतिकूलोऽस्य सज्जितः प्रतिगजमदः। शालासन्निकृष्टमल्पसाधनं गृहमादीपयितुमग्नित्रासित्वाद् वारणानाम्। गजपतिचित्तोद्भ्रमणार्थं देवकुलेषु स्थापिताः शङ्खदुन्दुभयः। तेन नादेन सर्वसाधनपरिगतशरीरेणावश्यं श्वःप्रद्योतेन स्वामी शरणमुपगन्तव्यः। ततः स्वामिना शत्रोरनुमतेनैव बन्धनान्निष्क्रम्य सहव्यापन्नां घोषवतीं हस्तगतां कृत्वा नलागिरिः स्वाधीनः कर्तव्यः ततो व्यवस्थितासनस्तदानीं स्वामी नलगिरौ।

स्थानसमीपम्। सर्वसाधनपरिगतशरीरेण पूर्वोक्तमन्त्रौषधिधूपप्रतिगजमद गजशालासन्नगृहप्रदीपनादिसाधनयुक्तेन। शरणम् गृहम्। व्यवस्थितासनः व्यवस्थितम् संस्थितम् आसनं येन सः।

वाला है वह भी सज्जित कर लिया गया है। हस्तिशाला के समीप का घर भी जलाने के लिये अग्नि के साधनों से युक्त कर लिया गया है क्योंकि आग से हाथी वहुत डरते हैं। हाथी को पागल वनाने के लिये देवालय में शङ्ख और नगाड़े रख दिये गये हैं। तव उन शब्दों को सुन कर अपने शरीर की रक्षा के साधनों से युक्त हुआ प्रद्योत कल आपके शरण में जावेगा। फिर स्वामी शत्रु की आज्ञा से वन्धन से निकल कर घोषवती को जो उनके साथ ही विपत्ति में पड़ी हुई हैं अपने हाथ में लेकर नलगिरि को अपने वश में कर लेंगे। और नलगिरि पर सवार होकर स्वामी अपना पीछा करने वाली शत्रुसेना को आते देख उसे मन के समान वेग से शीघ्रतापूर्वक भगा कर विन्ध्यगिरि समेत समस्त वन को पार कर सिंहों की गर्जना समाप्त होने के पहले-पहले एक ही दिन में वन्धनावस्था, वन से पार होने की अवस्था तथा नगर में पहुँचने की अवस्था इस प्रकार तीन अवस्थाओं को पार कर जिस प्रकार हाथी के छल से पकड़े गये थे उसी प्रकार हाथी के छल से मुक्त होने की नीति का निर्वाह करेंगे।

सेनाभिर्मनसानुबद्धजघनं कृत्वा जवे वारणं
सिंहानामसमाप्त एव विरुते त्यक्त्वा सविन्ध्यं वनम् ।
एकाहे व्यसने वने स्वनगरे गत्वा त्रिवर्णां दशां
येनैव द्विरदच्छलेन नियतस्तेनैव निर्वाह्यते ॥ ५ ॥

इति ।

रुमण्वान्—वसन्तक ! किमिदानीं चिन्त्यते ?

विदूषकः—एव्वं चिन्तेमि महन्तो खु भवदो पयदो विवज्जिस्सिदि त्ति । [एवं चिन्तयामि महान् खलु भवतः प्रयत्नो विपत्स्यतः इति ।]

उभौ—न खलु वयं विज्ञातारः ।

विदूषकः—अहं पुठमं पच्चा भवन्तो । [अहं प्रथमं पश्चाद् भवन्तो ।]

अन्वयः—सेनाभिः मनसानुवद्धजघनं वारणं जवे कृत्वा सिंहानाम् विरुते असमाप्ते एव सविन्ध्यं वनं त्यक्त्वा एकाहे व्यसने वने नगरे त्रिवर्णां दशां गत्वा येनैव द्विरदच्छलेन नियतः तेनैव निर्वाह्यते ॥ ५ ॥

व्याख्याः—सेनाभिः प्रस्थितं स्वामिनमनुधावद्भिः जिघृक्षुभिः प्रद्योत-सैनिकैः मनसानुवद्धजघनम् मनसा मनोवेगसञ्चालनेन अनुवद्धजघनम् अनुसृत-पृष्ठं वारणं हस्तिनं जवे वेगं कृत्वा ग्रहीतुं यतमानाऽपि शत्रुसेना यथाकथमपि पृष्ठलग्नं न भवेत्तथा वेगपूर्वकं सञ्चालनं कृत्वेत्यर्थः । सिंहानां विरुते असमाप्ते एवम् सविन्ध्यं वनम् । विन्ध्यगिरिसहितमरण्यं त्यक्त्वा पारं कृत्वा एकाहे एकस्मिन्नेव दिवसे व्यसने वने नगरे इति त्रिवर्णाम् दशाम् शत्रुबन्धनावस्थां वनप्रयाणावस्थां नगरप्रवेशरूपामिति त्रित्वप्रकारामवस्थां गत्वा सम्प्राप्य येनैव द्विरदच्छलेन हस्तिछद्मना नियतः शत्रुवशं गतः तेनैव हस्तिछद्मना निर्वाह्यते विमुच्यते ॥ ५ ॥

रुमण्वान्—तो वसन्तक ! इस समय क्या सोच रहे हो ?

विदूषक—यह सोच रहा हूँ कि आपका यह महान् प्रयत्न सिद्ध नहीं होगा ।

दोनों—हमलोगों को तो इसके कारण का पता नहीं है ।

विदूषक—पहले तो हम जानेंगे, आप लोग वाद में ।

यौगन्धरायणः—अथ किं कृता कार्यविपत्तिः ?

विदूषकः—वच्छराअस्स अण्णकय्यदाए । (वत्सराजस्यान्यकार्यतया ।)

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

विदूषकः—सुणह भवन्तो । (शृणुतां भवन्तौ)

उभौ—अवहितौ स्वः ।

विदूषकः—जा सा कालट्ठमी अदिक्कन्दा, तहिं तत्तहोदी वासव-

अन्यकार्यतया अन्यकार्यस्य भावस्तत्ता तया अतिरिक्तकार्यतया । कालाष्टमी कालीदेव्याः पूजनं यस्यां क्रियते सा तिथिविशेषा । अतिक्रान्ता व्यतीता । धात्रीद्वितीया धात्री एव द्वितीया सहगामिनी यस्याः सा अवघट्टिते-प्रणालीप्रस्रुतसलिलविषमम् अवघट्टितायाः अवरुद्धाया प्रणाल्याः जलमार्गात् प्रस्रुतैः अभिष्यन्दमानैः सलिलैः जलैः विषमम् दुर्गमम् । राजमार्गम् राजपथम् । परिहृत्य त्यक्त्वा देवकार्यम् देवपूजनम् कर्त्तुं गतासीत् । आभ्यन्तरबन्धनपरि-रक्षकम् कारागृहाभ्यन्तरस्थरक्षकम् । पुरुषस्कन्धपरिवर्त्तनस्थितायाम् पुरुषाणां शिविकावाहिनाम् यत् स्कन्धपरिवर्त्तनम् श्रमपरिहारामंसविनिमयः तस्मिन् स्थितायाम् वर्त्तमानायाम् । प्रकामम् यथेष्टम् । प्रमदवनम् क्रीडोद्यानं सम्भाव्य मत्वा । रागलीलाम् कामचेष्टाम् । समुत्पन्नाभिलाषः उपजातरागः । एतेन स्वामिना । यथासमर्थिता समर्थना तत्समर्थितकौशाम्बीप्रयाणप्रस्तावविधिः । अवमानविशेषः तत्कन्यकाहरणरूपपरिभवः चिन्त्यते विचिन्त्यते । अवमानस्य स्वकीयमानस्य अपरिचितम् निष्क्रयम् । अन्विष्यामि गवेषयामि ।

यौग०—कार्य किस कारण से असफल होगा ?

विदूषक—वत्सराज के अन्य कार्य में आसक्त हो जानें के कारण ।

यौग०—सो कैसे ?

विदूषक—तो आप लोग सुनें ।

दोनों—हम लोग सावधान हैं ।

विदूषक—जो कालाष्टमी वीत गई । उस दिन राजकुमारी वासवदत्ता

दत्ता णाम राअदारिआ धत्तीदुदीआ कण्णआदंसणं णिद्दोसंत्ति करिअ अवणीदकंचुआए सिविआए ओघट्टिपणालीपस्सुदसलिलविसमं राअ-मग्गं परिहरिअ जं तं बन्धणदुवारस्स अग्गदो भअवदीए जक्खिणीए ट्टाणं, तस्सि देवकय्यं कत्तु गआ आसा। (या सा कालाष्टमी अतिक्रान्ता, तस्यां तत्रभवती वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्रीद्वितीया कन्यकादर्शनं निर्दोषमिति कृत्वाऽपनीतकञ्चुकायां शिविकायामवघट्टितप्रणालीप्रस्नुतसलिल-विषमं राजमार्गं परिहृत्य यत्तद् वन्धनद्वारस्याग्रतो भगवत्या यक्षिण्याः स्थानं, तस्मिन् देवकार्यं कर्तुं गतासीव् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

विदूषकः—तदो तत्तभवं तं दिअसं अब्भन्तरबन्धणपरिरक्खअं सिवअं णाम राअदासं अणुमाणिअ बन्धणदुवारे णिक्कन्तो। [ततस्तत्र भवान् तं दिवसमभ्यन्तरवन्धनपरिरक्षकं शिवकं नाम राजदासमनुमान्य वन्धन-द्वारे निष्क्रान्तः ।]

उभौ—ततस्ततः ?

विदूषकः—तदो पुरुसक्खन्धवरिवट्टणट्ठिदाए सिविआए पकामं दिट्ठा सा राअदारिआ। [ततः पुरुपस्कन्धपरिवर्तनस्थितायां शिविकायां

अपनी धाई को साथ लेकर कन्यकादर्शन निर्दोष होता है इसलिये परदा रहित शिविका में वैठ कर नाली का जल प्रवाह रुक जाने से दुर्गम राजमार्ग छोड़कर कारागार के सामने से है और जिसके पास ही यक्षिणी का स्थान है वहाँ पूजा करने के लिये गई थीं।

यौग०—तव क्या हुआ ?

विदूषक—तव स्वामी कारागार के अन्दर रक्षा करने वाले शिव नामक राजकर्मचारी को प्रसन्न कर कारागार के द्वार पर आये।

दोनों—तव क्या हुआ ?

विदूषक—इसके वाद जव पालकी ढोने वाले कँहार अपना कन्धा वदलने के लिये जव एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर पालकी रख रहे थे उसी समय स्वामी

प्रकामं दृष्टा सा राजदारिका ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

विदूषकः—किं तदो तदो त्ति । बन्धणं दाणिं पमदवणं सम्भाविअ पउत्तो राअलीलं कर्तुं । [किं ततस्तत इति ? बन्धनमिदानीं प्रमदवनं संभाव्य प्रवृत्तो रागलीलां कर्तुम् ।]

यौगन्धरायणः—न खलु तां प्रति समुत्पन्नाभिलाषः स्वामी ?

विदूषकः—भो संघआरिणो अणत्थ त्ति ईदिसं एव्व । [भोः ! सञ्चारिणोऽनर्था इतीदृशमेव ।]

यौगन्धरायणः—सखे ! रुमण्वन् ! स्थिरीक्रियतामात्मा । अनेनैव वेषेण जरा गन्तव्या ।

विदूषकः—भो ! अहं च एदेण उत्तो—भणेहि जोअन्धराअणस्स जहसमत्थिदा समत्थणा ण रोअदे मे । समाणे गमणे पज्जोदस्स अवमाणविसेसो चिन्तीअदि । मा कामप्पधाण त्ति मं अवमण्णेहि । अवमाणस्स अवजिदिं अण्णेसामि त्ति । [भोः ! अहं चैतेनोक्तः—भण यौगन्ध-

---

ने राजकुमारी को अच्छी तरह देखा ।

यौग०—तब क्या हुआ ?

विदूषक—बार-बार 'तब क्या हुआ तब क्या हुआ क्या करते हो ? उस कारागार को प्रमदवन समझ कर राजा कामचेष्टा करने लगा ।

यौग०—क्या उसे देख कर स्वामी को उसके प्रति अनुराग तो नहीं उत्पन्न हो गया ?

विदूषक—अरे भाई ! विपत्ति अकेले नहीं आती । वह अपने साथ कुछ और लेकर आती है । बात तो जैसी कहते हो वैसी ही हुई ।

यौग०—मित्र रुमण्वान् ! मन को स्थिर करो । ऐसा करते-करते ही हम लोगों को बुढ़ापा आ जायगी ।

विदूषक—और सुनो स्वामी ने मुझसे कहा कि यौगन्धरायण से जाकर कहो कि तुम्हारी मन्त्रणा मुझे पसन्द नहीं आई । ऐसे कौशम्बी तो जाना ही

रायणाय यथासमर्थिता समर्थना न रोचते मे। समाने गमने प्रद्योतस्यावमान-विशेषश्चिन्त्यते। मा कामप्रधान इति मामवमन्यस्व। अवमानस्यापचितिमन्वि-यामीति।]

यौगन्धरायणः—अहो शत्रुजनापहास्यमभिधानम्। अहो निरपत्र-पता खलु बुद्धेः! अहो सुहृज्जनसन्तापकारणम्! अदेशकाले ललितं कामयते स्वामी कुतः,

शक्ता दर्पयितुं स्वहस्तरचिता भूमि कटप्रच्छदा
पर्याप्तो निगलस्वनश्चरणयो कन्दर्पमालम्बितुम्।

व्याख्या—अहो इति खेदे। शत्रुजनापहास्यम् शत्रुवर्गोपहसनीयम्। निरपत्रपतानिर्लज्जता। सुदृज्जन सन्ताप कारणम् सुदृज्जनानाम् मित्रवर्गाणाम् सन्तापकारणम् दुःखजनकम्। अदेशकाले अदेशे विरुद्धस्थाने अकाले वन्धना-पस्थायाम् कारागारे। ललितम् स्त्रीरागम् कामचेष्टां वा कामयति अभि-लषति।

अन्वयः—स्वहस्तरचिता कटप्रच्छदा भूमिः दर्पयितुं शक्ता। चरणयोः निगलस्वनः कन्दर्पम् आलम्बितुम् पर्याप्तः। बन्धने रक्षार्थम् परिगण्यमान पुरुषैः राजेति शब्दायनम् श्रुत्वा कः मन्मथपटुः न भवेत्।

व्याख्या—स्वहस्तरचिता स्वस्य हस्ताभ्यां रचिता निर्मिता। कटप्रच्छदा

है पर मैं तो प्रद्योत का जिसमें अपमान हो वैसा सोच रहा हूँ मुझे कामी जान कर मेरा अपमान मत करो। मैं तो अपने अपमान का वदला लेने को सोच रहा हूँ।

यौग०—अहा! यह कैसी शत्रुजनों के हँसी की वात! बुद्धि की इस निर्लज्जता को धिक्कार है। मित्रों को दुःख देने वाली ऐसी बात पर शोक है जो स्वामी आदेश काल में इसप्रकार अपनी कामविलास की भावना अभि-व्यक्त कर रहे हैं।

क्योंकि पृथ्वी जिस पर अपने हाथ से वनाई गई चटाई का विछावन मात्र है वह मद उत्पन्न करने में समर्थ हो सकती है। पैरों में पड़ी हुई वेड़ियों

कः श्रुत्वा न भवेद्धि मन्मथपटुः प्रत्यक्षतो बन्धने
रक्षार्थं परिगण्यमानपुरुषैराजेति शब्दापनम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—भो ! दंसिदो सिणेहो। णिव्विट्टं पुरुसआरं। साहु उज्झिअ णं गच्छामो। [भोः ! दर्शितः स्नेहः। निर्दिष्टः पुरुषकारः। साधूज्झित्वैनं गच्छामः।]

यौगन्धरायणः—वसन्तको भवान् ननु। वसन्तक ! मा मैवम्।

परित्यजाम सन्तप्तं दुःखेन मदनेन च।
सुहृज्जनमुपाश्रित्य यः कालं नावबुध्यते ॥ ७ ॥

तृणमयास्तरणा भूमिः पृथ्वी दर्पयितुं मदायितुं शक्ता समर्था। चरणयोः निगलस्वन अयोमय शृङ्खलाशब्दः कन्दर्पम् कामम्। अवलम्बयितुम् पर्याप्तः। बन्धने कारागृहे रक्षार्थम् परिगण्यमानपुरुषैः रक्षाकर्मणि नियुक्तैः प्रद्योतः कर्मचारिभिः राजेति राजा इति लज्जाकरमिति शेष शब्दापनम् आह्वानम् श्रुत्वा आकर्ण्य कः निगडितः शब्दः हि निश्चये मन्मथपटुः कामातुरः न भवेत् सर्वोऽपि भवेत् इत्युपहासे अत्र काकुः। वस्तुतः न कोऽपि भवेदिति वाच्यार्थः। यद्यस्मत्स्वामी तादृशे बन्धने कामातुरो भवति तदयुक्तमिति भावः स्नेहः स्वामिभक्तिरूपानुरागः। पुरुषकारः पौरुषः। निर्दिष्ट यावद्बुद्धिबलोदयः विहितः उज्झित्वा संपरित्यज्य।

अन्वयः—यः सुहृज्जनम् उपाश्रित्य कालम् नावबुध्यते (तादृशम्) दुःखेन मदनेन च सन्तप्तं स्वामिनम् त्यजाम (किम्)।

के शब्द कामोद्दीपन के लिए पर्याप्त हैं। किन्तु कारागार में अपनी रक्षा के लिए नियुक्त पुरुष के द्वारा राजा शब्द से सम्बोधित होने पर भला कौन पुरुष कामातुर होगा।

विदूषक—भाई ! हम लोगों ने अपना स्नेह प्रदर्शित कर दिया। और अपना पौरुष भी लगा चुके। अब इनको छोड़ कर चल देना चाहिये।

यौग०—अरे आप वसन्तक हो वसन्तक ! तुम ऐसी बात मत कहो। क्या जो मित्र वर्गों के आश्रित होकर समयानुसार कार्य नहीं करता, कारागार के दुख एवं कामाभिलाष से सन्तप्त है उसे त्याग देना उचित होगा।

विदूषकः—एव्वं एव्व जरं गलिस्सामो। [एवमेव जरां गमिष्यामः।]

यौगन्धरायणः—तन्ननु श्लाघ्यम्।

विदूषकः—सिलाघणीओ भवे, जादि लोओ जाणादि। [श्लाघनीयं भवेद्, यदि लोको जानाति।]

यौगन्धरायणः—न नः कार्यं लोकेन स्वामिप्रियार्थोऽयमारम्भः।

विदूषकः—सो वि दाव ण जाणादि। [सोऽपि तावन्न जानाति।]

यौगन्धरायणः—काले ज्ञास्यति।

विदूषकः—कदमो दाणि सो कालो। [कतम इदानीं स कालः।]

व्याख्या—यः उदयनः सुहृज्जनम् मित्रवर्गम् उपाश्रित्य संगत्य कालम् उचितानुचितम् नावबुध्यते न जानाति तादृशम् दुःखेन वन्धनरूपविपत्या मदनेन कामेन सन्तप्तम् पीडितम् स्वामिनम् त्यजाम किम् न कदापीति भावः। यदि कालानुगुणं कर्म कर्त्तुं न जानाति तत्र तादृशम् दुःखमेव हेतुः।

आरम्भसिद्धिः कौशाम्बीप्रयाणप्रयत्नफलम्। तादृशः कार्याकार्यविचारज्ञः। निर्यातयतु अपहरतु। इह वसन्तकनिर्दिष्टे उभे कार्ये। द्रष्टव्यम् भवता विचारणीयम्। न तूदासीनतया स्थातव्यमिति भावः। उभयम् उपर्युक्तं कार्यद्वयम् साधनीयम् सिद्धयर्थं प्रयतितव्यम्।

विदूषक—तव तो इसी उपाय से करते-करते हमलोग बूढ़े हो जायँगे।

यौग०—यह प्रशंसा की ही बात है।

विदूषक—यदि लोग जान लें तव तो यह प्रशंसा की बात हो सकती है।

यौग०—हमें संसार से क्या प्रयोजन? हमारे कार्य तो स्वामी के प्रसन्न करने के लिये है।

विदूषक—वह भी तो इसे नहीं जानते।

यौग०—समय पड़ने पर वे जानेंगे।

विदूषक—वह समय पता नहीं कब आयेगा।

यौगन्धरायणः—यदेयमारम्भसिद्धिः ।

विदूषकः—तदो तादिसो भवं बन्धणादो राआणं अन्तेउरादो राअदारिअं उभे णिय्यादेदु । [ततस्तादृशो भवान् बन्धनाद्राजानमन्तःपुराद्राजदारिकामुभे निर्यातयतु ।]

रुमण्वान्—इह भवता द्रष्टव्यम् ।

यौगन्धरायणः—उभयमिति । वाढम् । इयं द्वितीया प्रतिज्ञा—

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव ।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ॥ ८ ॥

अपि च,

यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम् ।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः ॥ ९ ॥

अन्वयः—सुभद्राम् गाण्डीवी इव पद्मलताम् नाग इव आयतलोचनाम् ताम् चैव नृपं चैव न आहरामि तदा यौगन्धरायणः न अस्मि ।

व्याख्या—सुभद्राम् तन्नाम्नीं श्रीकृष्णभगिनीम्, गाण्डीवी गाण्डीवम् नाम धनुः अस्ति अस्येति गाण्डीवी अर्जुन इव, पद्मलताम् कमलवल्लीम् नाग इव गज इव आयतलोचनाम् विशालनयनाम् ताम् वासवदत्ताम् नृपं स्वस्वामिनमुदयनं न आहरामि न निर्यातयामि यद्वा तां घोषवतीं वीणाम् तं नलगिरिहस्तिनं च प्रद्योत सकाशात् नापहरामि तदा यौगन्धरायण न अस्मि न भवेयम् ।

व्याख्या—परिवृत्तदिवसः परिणतम् दिनम् प्राचीतः प्रतीच्यभिमुखं निवृत्तं

यौग०—जब हम लोगों का कार्य सिद्ध हो जायगा ।

विदूषक—तो यदि आप कार्य सिद्ध करना चाहते हैं तो कारागार से राजा का एवम् अन्तःपुर से वासवदत्ता का अपहरण करें ।

रुमण्वान्—इस बात पर आपको विमर्श तो करना चाहिये ।

यौग०—दोनों को ही । अच्छा यह मेरी दूसरी प्रतिज्ञा है—

जिस प्रकार अर्जुन सुभद्रा को हर ले गये जिस प्रकार हाथी कमल वल्ली

(कर्णं दत्त्वा) अये शब्द इव । ज्ञायतां शब्दः ।

विदूषकः—भो ! तह । (निष्क्रम्य प्रविश्य) भो ! प डउत्तदिवस-विस्सम्भेण अविरलं सञ्चरन्तो जणो दीसइ । किं दाणिं करम्ह ? [भोस्तथा । भोः ! परिवृत्तदिवसविस्रम्भेणाविरलं सञ्चरन् जनो दृश्यते । किमिदानीं कुर्मः ?]

रुमण्वान्—तेन हि चतुर्द्वारमग्निगृहं भिद्यतां नः सङ्घातः ।

यौगन्धरायणः—न न । अभिन्नो नः सङ्घातः । भिद्यतामरिसंघातः । स्वकार्यमनुष्ठीयताम् ।

उभौ तह । [तथा] (निष्क्रान्तौ ।)

दिनमित्यर्थः । अपराह्णो जात इति भावः । विस्रम्भेण विश्वसतया आतपोष्म-न्यूनतया अविरलम्—यथा स्यात्तथा वाहुल्येन संचरन् गच्छन् जनः दृश्यते अवलोक्यते ।

भिद्यताम् विश्लिष्य गमनं विधीयताम् । संघातः समुदायः । अरिसंघातः शत्रुसमूहः । स्वकार्यम् अग्निगृहान्निःसृत्य स्वामिसमीपगमनरूपं कार्यम् ।

को तहस नहस कर देता हैं उसी प्रकार मैं प्रद्योत विशाल नेत्रा वासवदत्ता को तथा जेल से राजा को, अथवा घोषवती वीणा को एवं नलगिरि हाथी का हरण न करूँ तो यौगन्धरायण नहीं ।। ८-९ ।।

(कान लगा कर अरे कुछ आवाज हो रही, इसका पता लगाओ)

विदूषक—अच्छा (वाहर जाकर फिर प्रवेश कर) मध्याह्न का समय बीत जाने से धूप सन्ताप कम हो जाने के कारण अव लोग चलने फिरने लग गये तो अव क्या करना चाहिये ।

रुमण्वान—अव इस अग्निगृह से परस्पर पृथक पृथक् होकर हम लोगों को चार रास्तों से चलना चाहिये ।

यौग०—नहीं नहीं । हम सभी तो एक हैं । भेद तो शत्रु समुदाय में होना चाहिये हमें अपना-अपना कार्य करना चाहिये ।

दोनों—वहुत अच्छा । कह कर चले जाते हैं ।

उन्मत्तकः—ही ही चन्दं गिलदि लाहू। मुञ्च मुञ्च चन्दं। यदि ण मुंचेशि, मुहं दे पाडिअ मुञ्चावइहं। एशे एशे दुठ्ठअश्शे परिब्भट्टे आअच्छदि। एशे ऐशे उप्पवहीहिआअं। जाव णं आलुहिअ बलिं भक्खिस्सं ऐशे एशे च दालअभट्टा ! मं तालेह। माखु माखु मं तालेह। किं भणाशि-अम्हाणं किं पि णच्चेहि त्ति। दक्खह दक्खह दालअभट्टा। एशे दालअभट्टा पुणो वि मं तालेह इट्टिआहिं। मा खु मा खु तालेह। तेण हि अहं पि तुम्हे तालेमि। [ही ही चन्द्रं गिरति राहुः। मुञ्च मुञ्च चन्द्रम्। यदि न मुञ्चसि, मुखं ते पाटयित्वा मोचयिष्यामि। एष एष दुष्टाश्वः परिभ्रष्टः आगच्छति। एष एष चतुष्पथवीथिकायाम्। यावदेनमारुह्य बलिं भक्षयिष्यामि। एते एते दारकभर्तारः ! मा ताडयथ। मा खलु

('ही ही चन्द्रमित्यारभ्य····· ····मां ताडयत' पर्यन्तग्रन्थस्य वाह्यार्थः स्पष्ट एव।

आभ्यन्तरार्थः--राहुः प्रद्योतः चन्द्रम् चन्द्रवंशजातमुदयनम् गिरति परिभवति यदि न मुञ्चसि स्वेच्छया न त्यजसि तदा ते मुखं पाटयित्वा बलादाकृष्य मोचयिष्यामि मुक्तं करिष्यामि। दुष्टाश्व प्रद्योतः परिभ्रष्टः सन्मार्गादिति शेषः छलप्रयोगात्। चतुष्पथवीथिकायाम् चतुष्पथवीथिकावत् काश्चिदस्वत्वम् अपरि-

---

उन्मत्तक—(वाह्यार्थ) ही ही चन्द्रमा को राहु निगल रहा है चन्द्रमा को छोड़ो यदि नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारा मुँह फाड़ कर छुड़ा लूँगा। यह दुष्ट घोड़ा वन्धन तोड़ कर मार्ग से नहीं चलता; लो यह तो चौराहे वाली गली में आ गया। तो इस पर सवार होकर बलि का भक्षण करूँगा। ये मालिक लड़के ये लड़के मुझे मार रहे हैं, मुझे मत मारो मुझे मत मारो। क्या कहते हो कुछ नाच करो। बालक स्वामियों देखो। ये मालिक लड़के फिर भी तुम लोग छड़ी से मुझे मार रहे हो। मत-मत मारो। मैं भी उसी छड़ी तुम लोगों को मारूँगा—

(आभ्यन्तरार्थ) यह प्रद्योत वत्सराज को पराभूत कर रहा है। अरे प्रद्योत तू वत्सराज को शीघ्र छोड़ो, यदि स्वेच्छा से नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारा मुँह फाड़ कर उसे छुड़ा लूँगा। अरे यह प्रद्योत तो छल कपट का व्यवहार

मा खलु मां ताडयथ। किं भणथ—अस्माकं किमपि नृत्येति। पश्यत पश्यत दारकभर्तारः! एते दारकभर्तारः! पुनरपि मां ताडयथ यष्टिभिः। मा खलु मा खलु ताडयथ। तेन ह्यहमपि युष्मान् ताडयामि।]

(निष्क्रान्तः।)

इति तृतीयोऽङ्कः।

णीतत्वात् अप्राप्तायाम् तत्कन्यायां वासवदत्तायां विषये। एनं प्रद्योतम् आरुह्य न्यक्कृत्य वासवदत्ताहरणेन परिभूयेत्यर्थः वलिम्। पूजापहारवत् प्रियम् कौशीम्बीप्रयाणम् भक्षयिष्यामि साधयिष्यामि। दारकभर्त्तारः दारकाश्च ते भर्त्तारः।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणे तृतीयोऽङ्कस्य विवृतिः समाप्ता॥

अपनाये हुये सन्मार्ग से च्युत हो गया है, तो अवश्य ही चौराहे पर खड़ी रहने वाली इसकी कन्या वासुमती के हरण द्वारा इसको धिक्कारते हुये तथा इसे पराभूत करते हुये पूजोपहार के समान प्रिय कौशाम्वी प्रयाण करूँगा। मूर्ख प्रद्योत! देखो जो मुझे मारेंगे मैं उन्हें मारूँगा जो जैसा मेरे साथ व्यवहार करेगा मैं भी उसके वैसा ही व्यवहार करूँगा।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के तीसरे अङ्क की भाषा टीका समाप्त।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः—को कालो अहं भट्टिदारिआए वासवदत्ताए उदाए कीलिदुकामाए भद्दवदीपरिचारअं गत्तसेवअं ण पेक्खामि । भाव पुप्फवन्तअ ! गत्तसेवअं ण पेक्खसि कि भणासि-एसो गत्तसेवओ काण्डिलसुण्डिगीणीए गेहं पविसिअ सुरं पिबदि त्ति । गच्छदु भावो । (परिक्रम्य) इदं कण्डिलसुण्डिलगिणीए गेहं । जावण सद्दावेमि । भो गत्तसेवअ ! गत्तसेवअ ! [कः कालोऽहं भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया उदके क्रीडितुकामाया भद्रवतीपरिचारकं गात्रसेवकं न प्रेक्षे । भाव पुष्पदन्तक ! गात्रसेवकं न प्रेक्षसे ? किं भणसि-एष गात्रसेवकः कुण्डिलशौण्डिक्या गेहम् । यावदेनं शब्दापयामि । भो गात्रसेवक ! गात्रसेवक !!]

व्याख्या:—भर्तृदारिकायाः भर्त्तुः स्वामिनः दारिका पुत्री तस्याः उदके जले । क्रीडितुकामायाः क्रीडितुं कामो यस्याः सा तस्याः । भद्रवतीपरिचारकम् भद्रवत्याः परिचारकम् भद्रवती हस्त्यारोहकम् । कुण्डिलशौण्डिक्याः शुण्डं मद्यं पण्यमस्येति शौण्डिकी कुण्डिला चासौ शौण्डिकी तस्याः तन्नाम्न्याः मद्यविक्रयिण्याः । गेहम् गृहम् । शब्दापयामि आह्वयामि । भाव इति सम्बोधनपदम् । पानागारात् मद्यपानगृहात् । सुरुष्टेन सम्यक्क्रुद्धेन । अमृतमल्लकेन अमृतस्य मद्यस्य मल्लकं पात्रम् तन । स्नुषा पुववधूः । रज्यति रागं करोति

(तदनन्तर भट का प्रवेश)

भट—जलक्रीडा के लिये उत्सुक अपने स्वामी को कन्या वासवदत्ता की हथिनी भद्रवती के महावत जिसका नाम गात्रसेवक है कितनी देर से नहीं देख पा रहा हूँ । भाई पुष्पदन्तक ! तुमने क्या कहीं गात्रसेवक को देखा है ? क्या कहते हो ? यह गात्रसेवक तो कुण्डिला नामक मद्य विक्रयिणी के घर में है । तो अब इसे पुकारता हूँ । अरे गात्रसेवक ! अरे गात्रसेवक । !

(नेपथ्ये)

को दाणिं एसो एत्थ राअममग्गे 'गत्तसेवअ ! गत्तासेवअ !' त्ति मं सद्दावेदि। [क इदानीमेषोऽत्र राजमार्गे गात्रसेवक ! गात्रसेवकेति मां शब्दापयति।]

भटः—एसो गत्तसेवओ सुरं पिबिअ पिबिअ हसिअ हसिअ मदिअ मंदिअ जवापुप्फं विअ रत्तलोअणो इदो एव्व आअच्छदि। एदस्स पुरदो ण चिट्ठिस्सं। [एष गात्रसेवकः सुरां पीत्वा पीत्वा हसित्वा हसित्वा मदित्वा मदित्वा जपापुष्पमिव रक्तलोचन इत एवागच्छति। एतस्य पुरतो न स्थास्यामि।] (निवृत्य स्थितः।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो गात्रसेवकः।)

गात्रसेवकः—को दाणिं एसो एत्थ राअमग्गे गत्तसेवअ ! गत्त-

श्वशुरेऽपीत्यर्थः। मद्यपानरता वधूः लोकलज्जां सदाचारं च विहाय एतादृशी विवेकहीना भवति यत् स्वश्वशुर मपि दृष्ट्वा कामार्त्ता जायते इत्याशयः। दण्डोद्यता दण्डाय उद्यता दंडोद्यता दंडनिग्रहार्थमुद्युक्ता। श्वशुरे सकाशं स्नुषां दृष्ट्वा श्वश्रूः तां निगृहीतुमुद्यता भवतीत्यर्थः।

(नेपथ्य में)

वह कौन है जो मुझे इस राजमार्ग पर से गात्रसेवक ! गात्रसेवक ! कह कर पुकार रहा है।

भट—यही तो गात्रसेवक है जो वारम्वार सुरा पी रहा है वारम्बर हँस रहा है। अरे यह तो मद्यपान की मस्ती में झूमता हुआ जपापुष्प के समान लाल-लाल आँखें किये इधर ही आ रहा है। तो मैं इस समय इसके आगे खड़ा नहीं रहूँगा।

(लौट कर बैठ जाता है)

(तदनन्तर उक्त वेष में गात्रसेवक का प्रवेश)

गात्रसेवक—अरे यह कौन है जो मुझे इस समय राजमार्ग से

सेवअ ! त्ति मं सद्दावेदि। पाणागारादो णिक्कन्तो दिट्ठ म्हि मम सुसुरेण सुरुट्ठेण। अमुदअमल्लएण घिवमरिअलोणरूशिदे मंशखण्ड मुहे पक्खित्ते अ। णुसा रज्जइ पीदा जइ। अत्ता णं दण्डुज्जुआ होइ।

धण्णा सुराहिं मत्ता धण्णा सुराहि अणुलित्ता।
धण्णा सुराहि ण्हादा धण्णा सुराहिं संजविदा॥ १॥

अधण्णा अत्तणो पुत्तदाराणं कट्ठं पिट्ठं सुणन्ता। जे मूढा णरा सुसमिद्धा सुरातटाअं ण जोजअंति। ता जाणे जमलोऐ वा णरअं अत्थि ण त्थि अ।

[क इदानीमेषोऽत्र राजमार्गे गात्रसेवक ! गात्रसेवक ! इति मां शब्दापयति। पानागारान्निष्क्रान्तो दृष्टोऽस्मि मम श्वशुरेण सुरुष्टेन। अमृतमल्लकेन घृतमरिचलवणरूषितो मांसखण्डो मुखे प्रक्षिप्तश्च। स्नुषा रज्यति पीता यदि। श्वश्रूर्ननु दण्डोद्यता भवति।

अन्वयः—१. सुराभिः मत्ताः धन्याः। सुराभिः अनुलिप्ताः धन्याः। सुराभिः स्नाताः धन्याः। सुराभिः संज्ञापिताः धन्या इति शेषः।

व्याख्या—सुराभिः मद्यपानैः मत्ताः प्रमत्ताः धन्याः कृतकृत्याः। सुराभिः अनुलिप्ताः शरीरे कृतलेपनाः धन्याः प्रशंसार्हाः। सुराभिः स्नाताः कृतस्नानाः धन्याः सुकृतिनः। सुराभिः संज्ञापिताः प्रमापिताः धन्याः लब्धजन्मसाफल्याः।

व्याख्याः—मूढाः अविवेकिनः अज्ञाः। सुसमृद्धाः आढ्यतराः। पिष्टम् निरन्तरम्। कष्टम् कष्टकारकम् शृण्वन्तः सन्तः। सुरातटाकम् मद्यपूर्णम् स्थानविशेषम्। न योजयन्ति आत्मानमिति शेषः। ते अधन्याः अकृतार्थाः।

गात्रसेवक ! ओ गात्रसेवक कह कर पुकार रहा है। मद्यशाला से निकलते हुये मुझे मेरे क्रोधी श्वशुर ने देख लिया। अभी-अभी मद्यपात्र हाथ में लिये घी और मरीच से युक्त मांस खण्ड मैंने अपने मुँह में डाला है। इस मद्य को पी कर पतोहू भी अपने श्वशुर को देख कामासक्त हो जाती है जिससे रुष्ट होकर उसे दण्ड देने के लिये उद्यत हो जाती है।

धन्याः सुराभिर्मत्ता धन्याः सुराभिरनुलिप्ताः ।
धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभि संज्ञापिताः ॥ १ ॥

अधन्या आत्मनः पुत्रदाराणां कष्टं पिष्टं शृण्वन्तो ये मूढा नराः सुसमृद्धाः सुरातटाकं न योजयन्ति । ततो जाने यमलोके वा नरकोऽस्ति नास्ति च ।

भटः—(उपसृत्य) भो गत्तसेवअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि। भट्टिदारिआए वासवदत्ताए उदए कीलिदुकामाए भद्दवदी ण दिस्सदि। तुमं दाव मत्तो एत्थ आहिण्डसि। [भो गात्रसेवक ! कः कालस्त्वामन्विष्यामि । भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया उदके क्रीडितुकामाया भद्रवती न दृश्यते । त्वं तावन्मत्तोऽत्राहिण्डसे ।

गात्रसेवकः—जुज्जइ। सा अ ण मत्ता, सो पुरुषो वि मत्तो, अहं वि

जाने वेद्मि । आहिंडसे यतस्ततो विगाहसे । सा हस्तिनी । राजकुले राजभवनसमीपे, भद्रपीठिकाम् वासवदत्तावाहनभूतां भद्रवतीमित्यर्थः । न निष्क्राम्य अनीत्वा । आहिण्डे भ्रमामि । मा संरम्भेण क्रोधेन अलम् ।

जो लोग मद्य पीकर उन्मत्त हो जाते हैं वे कृतकृत्य हैं शरीर में सुरा को लेप करने वाले भी धन्य हैं। सुरा से स्नान करने वाले भी मनुष्य सुकृती हैं वहुत क्या सुरा पी लेने पर जो लोग मार डाले जाते हैं वे भी धन्य हैं।

अधन्य तो वे हैं जो धनाढय होकर भी अपने स्त्री और पुत्र के कष्टों को रात दिन सुनते हुये भी सुरा सरोवर में स्नान नहीं करते । यमलोक में नरक है कि नहीं इसमें तो सन्देह है पर वे तो यहीं स्त्री-पुत्र के कष्टों को सुनते हुये नरक भोग लेते हैं ।

भट—(समीप जा कर) अरे गात्रसेवक । कितने समय से मैं तुम्हें खोज रहा हूँ । जलक्रीडा के लिये उत्सुक राजकुमारी वासवदत्ता की हथिनी भद्रवती दिखाई नहीं देती और तुम नशे में चूर होकर यहाँ घूम रहे हो ।

गात्रसेवक—यह तो उचित ही है वह हथिनी भी मस्त है । वह पुरुष

मत्तो, तुमं वि मत्तो, सव्वं मत्तसमं होइ। [युज्यते। सा च ननु मत्ता, स पुरुषोऽपि मत्तोऽहमपि मत्तः, त्वमपि मत्तः, सर्वं मत्तसमं भवति।]

भटः—सव्वं दाव चिट्ठदु। राअउले भद्दपीठिअं णणिक्कमिअ कुदो अअं आहिण्डदि त्ति। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। राजकुले भद्रपीठिकां न निष्क्राम्य कुतोऽयमाहिण्डत इति।]

गात्रसेवकः—इदो आहिण्डामि, एत्थ पिवामि, एदेण पिवामि, मा संरम्भेण। किं करीअदु। [इत आहिण्डे, अत्र पिवामि, एतेन पिवामि, संरम्भेण किं क्रियताम् ?

भटः—हिज्जउ असम्बन्धप्पलावो। सिग्घं भद्दवदिं पवेसेहि। [भवत्वसम्बन्धप्रलापः। शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय।]

गात्रसेवकः—पविसदु पविसदु भद्दवदी। अंधो मए भद्दवदीए अङ्कुसं आढत्तं। [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती। अन्धो मया भद्रवत्या अङ्कुशमाहितम् ?]

व्याख्या—प्रविशतु प्रविशतु स्वयमेव प्रवेशं करोतु न तु तामहं प्रवेशयामीत्यर्थः। तत्र हेतुमाह—अन्धो इति भयसूचकमव्ययपदम्। अहितम् न्यासीकृतम् निःस्वेन मया मद्यमूल्यदानार्थम् निक्षेपरूपेण स्थापितमित्यर्थः। अङ्कुशरहिता हस्ती मया प्रवेशयितुमशक्येति भावः। क्षुरप्रमाला अर्धचन्द्र-

---

भी मस्त है मैं भी उन्मत्त हूँ। तुम भी मदोन्मत्त हो। इस समय तो सभी उन्मत्त जैसे हो रहे हैं।

भट—अच्छा इस समय उन बातों को छोड़ों राजमहल के समीप भद्रवती को न ले जा कर तुम यहाँ क्यों घूम रहे हो ?

गात्रसेवक—इधर घूम रहा हूँ। यहाँ पीता हूँ। और इसके साथ सुरा पीता हूँ। क्रोध मत करो कहो क्या करूँ ?

भट—यह व्यर्थ का बकवाद छोड़ो। शीघ्रतापूर्वक भद्रवती को ले चलो।

गात्रसेवक—भद्रवती प्रवेश करो ! प्रवेश करो। मैंने उसका अंकुश बन्धक के रूप में जो रख दिया है।]

भटः—सभावविणीदाऐ भद्दवदीए अङ्कुसेण किं कय्यं ? गच्छ, सिग्घं भद्दवदि पवेसेहि। [स्वभावविनीताया भद्रवत्या अङ्कुशेन किं कार्यम् ? गच्छ शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय।]

गात्रसेवकः—पविसदु पविसदु भद्दवदी। अंघो मए भद्दवदीए खुरप्पमाला आढत्ता। [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती। अङ्घो मया भद्रवत्याः क्षुरप्रमालाऽऽहिता।

भटः—पुप्फबन्धिआए भद्दवदीए खुरप्पनमालाए किं कय्यं ? सिग्घं भद्दवदि पवेसेहि। [पुष्पवन्ध्याया भद्रवत्या क्षुरप्रमालया किं कार्यम् ? शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय।]

गात्रसेवकः—पविसदु पविसदु भद्दवदी। अंघो मए भद्दवदीए घण्टा आढत्ता ! [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती। अङ्घो मया भद्रवत्या घण्टाहिता।]

भटः—उदए कीलिदुकामाए भद्दवदीए घण्टाए किं कय्यं ? सिग्गं भद्दवदिं पवेसेहि। [उदके क्रीडितुकामाया भद्रवत्या घण्टया किं कार्यम् ? शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय।]

माला अहिता आधीकृता वन्धकीकृता पुष्पवन्ध्यायाः पुष्पैः बद्धम् योग्याः पुष्पवन्ध्या तस्या पुष्पैरपि अलङ्करणयोग्यायाः।

भट—भद्रवती स्वभाव से विनयशील है। अतः उसे अंकुश की आवश्यकता नहीं है जाओ। शीघ्रता से भद्रवती को लाओ।

गात्रसेवक—भद्रवती प्रवेश करे। अरे मैंने तो उसकी अर्धचन्द्रमाला भी वन्धक में रख दी है।

भट—भद्रवती के गले में फूल की माला भी वाँधी जा सकती है उसे अर्धचन्द्रमाला की आवश्यकता नहीं है अतः उसे शीघ्र ले चलो।

गात्रसेवक—भद्रवती प्रवेश करे। भद्रवती प्रवेश करे। मैंने तो भद्रवती के घण्टे को भी वन्धक रख दिया है।

भट—जल क्रीडा की इच्छा करने वाली भद्रवती को जल में घण्टे की क्या आवश्यकता शीघ्र भद्रवती को ले चलो।

गात्रसेवकः—पविसदु पविसदु भद्दवती। अंघो मए भद्दवदीए कसिअं आढत्त। [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती। अङ्को मया भद्रवत्या कशिका आहिता।]

भटः—कसिएण किं कय्यं ? सिग्घं भद्दवदि पवेसेहि। कशिकया किं कार्यम् ? शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय।]

गात्रसेवकः—पविसदु पवसदु भद्दवदी। अंघो। [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवतीं। अङ्को।]

भटः—किं अंघो ? [किम् अङ्को ?]

गात्रसेवकः—अँघो मए। [अङ्को मया ?]

भटः—किं तुए। [किं त्वया ?]

गात्रसेवकः—अंघो भद्द। [अङ्को भद्र।]

भटः—किं भद्दति। [किं भद्रेति।]

गात्रसेवकः—अंघो भद्दवदी। [अङ्को भद्रवती।]

भटः—किं भद्दवदी। [किं भद्रवती ?]

गात्रसेवकः—भद्दवदी पि आढत्ता। [भद्रवत्यप्याहिता।]

गात्रसेवक—भद्रवती प्रवेश करे। प्रवेश करे। मैंने तो उसके चाबुक भी बन्धक कर दिया है।

भट—उसे कोड़े की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ले चलो।

गात्रसेवक—भद्रवती प्रवेश करे। भद्रवती प्रवेश करे। अरे!

भट—अरे क्या ?

गात्रसेवक—अरे मैंने।

भट—अरे तुमने क्या ?

गात्रसेवक—अरे भद्र ?

भट—भद्र ! क्या ?

गात्रसेवक—अरे भद्रवती ?

भट—भद्रवती क्या ?

गात्रसेवक—भद्रवती को भी बन्धक रख दिया।

भटः—ण तुवं एत्थ अवरज्झो। कण्डिलसुण्डिकिणी खु अवरज्झा जा राअवाहणं गण्हिअ सुरँदेदि। [न त्वमपराद्धः कण्डिलशौण्डिकी खल्वपराद्धा, या राजवाहनं गृहीत्वा सुरां ददाति।]

गात्रसेवकः—अँघो मए उत्तं—मा मूलविद्धिं विणासेहि त्ति। [अंघो मयोक्तम्—मूलवृद्धिं विनाशयेति।]

भटः—हं सद्दो विअ। [हं शब्द इव]

गात्रसेवकः—अँघो जाणामि, जाणामि कण्डिलंसुण्डिकिणीए गेहं

मूलवृद्धिं मा विनाशय—मूलस्य। मूलधनस्य मह्यं प्रदत्तमद्यमूलस्य वृद्धिम् कुसीदं मा विनाशाय अहम् त्वं मूलधनस्थाने निक्षेपरूपेण धृतायां भद्रवत्याम् तदर्थे कुसीदरूपेण नित्यम् धनं दास्यामि यथा ते वृद्धया आयो भवेत्। मूलधनस्य च नाशो न स्यादिति भावः।

नोट—अतः परं 'हं शब्द इव' इति पदेन कविः वासवदत्तामादाय वत्सराजः पलायते इति वक्तुं प्रक्रमते। गात्रसेवकः इमं वृत्तं जानन्नपि अन्धो जानामि' जानामि इत्यादिना तं निगूहितुं प्रयतते—

भट—तो इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। मदिरा बेचने वाली कण्डिला का अपराध है, जो राजकीय वाहन को बन्धक के रूप में रख कर मदिरा वेचती है।

गात्रसेवक—अरे उससे मैंने यह भी कह दिया है कि तू अपनी मूलधन वृद्धि (सूद) का विनाश मत करो।

भट—हैं यह शब्द जैसा सुनाई पड़ रहा है।

गात्रसेवक—अरे ! मैं समझ गया। समझ गया। कण्डिला नामक मद्य-विक्रयिणी के घर को गिरा कर भद्रवती भाग रही है।

(नोट—अव इसी से सूचित हो रहा है कि वत्सराज वासवदत्ता को लेकर भाग रहा है। जिसके कारण कोलाहल हो रहा है)—गात्रसेवक भी जो वत्सराज का गुप्तचर है समझ रहा है कि वासवदत्ता को लेकर वत्सराज

भिन्दिअ भद्ददी पला अदि। [अङ्गो जानामि जानामि, कण्डिलशौण्डिक्या गेहं भित्वा भद्रवती पलायते।]

भटः—किं भणासि ? (आकाशे) एसो भट्टा वच्छराओ वासवदत्तं गण्हिअ णिग्गदो त्ति। [किं भणसि ? एष भर्ता वत्सराजो वासवदत्तां गृहीत्वा निर्गत इति।]

गात्रसेवकः—(सहर्षम्) अविघ्नमस्तु स्वामिनः।

भटः—पिव पिव। अज्ज वि तुमं मत्तो आहिण्डेहि। [पिव पिव। अद्यापि त्वं मत्त आहिण्डस्व।]

गात्रसेवकः—आः को मत्तः, कस्य वा मदः, वयं खल्वार्ययौगन्धरायणेन स्वेषु स्वेषु स्थानेषु स्थापिताश्चारपुरुषाः। यावदहमपि सुहृज्ज-

---

व्याख्या—पलायते पलायनं करोति। अविघ्नम् मङ्गलम्।

नोट—अधुना गात्रसेवकः 'अविघ्नमस्तु' इति ग्रन्थेन स्वं रूपम् प्रकटयन् संस्कृतां वाणीं प्रयुङ्क्ते या मध्यमपात्रानुकूलतया उचितैवेति।

भाग रहा है इसीलिए यह शोरगुल हो रहा है सच्ची बात छिपाने के लिये ही उसने अब तक ऐसा किया।

भट—क्या कहते हो ? (ऊपर की ओर देखते हुये) स्वामी वत्सराज वासवदत्ता को लेकर भाग गये।

गात्रसेवक—(सहर्ष) स्वामी का मङ्गल हो।

नोट—अब यहीं से गात्रसेवक अपने को प्रगट करने के लिये संस्कृत भाषा का प्रयोग प्रारम्भ कर रहा है।

भट—पीओ पीओ और अब तुम मस्त होकर भ्रमण करो।

गात्रसेवक—अहा ! कौन पागल है। किसको नशा हुई है ?। हम लोग तो गुप्तचर हैं, जिन्हें आर्य यौगन्धरायण ने तत्तत्स्थानों पर नियुक्त किया है। अच्छा अब मैं अपने मित्रजनों को भी इस बात से सचेत करा दूँ। अरे ये तो

नस्य संज्ञां करोमि। एते ते सुहृदो निरोधमुक्ता इव कृष्णसर्पा इतस्ततो निर्धावन्ति। भोः भोः सुहृदः! श्रृण्वन्तु भवन्तः—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥ २॥

क्व नु खल्वार्ययौगन्धरायण? (विलोक्य) अये अयमत्र भवान् आर्ययौगन्धरायणः 'य एषः,

---

अन्वयः—यः भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्धयेत् तत् तस्य सलिलैः सुपूर्णम् दर्भकृतोत्तरीयम् सुसंस्कृतम् नवं शरावम् माभूत्। स नरकं गच्छेत्।

व्याख्याः—यः पुरुष भर्तृपिण्डस्य स्वामिनः अन्नस्य कृते अर्थे न युद्धयेत् युद्धं न कुर्यात् तत् तस्मात् कारणात् तस्य अनिष्कृतभर्तृपिण्डस्य कृतघ्नस्येत्यर्थः सलिलैः जलैः सुपूर्णम् परिपूर्णम् दर्भकृतोत्तरीयम् दर्भैः कृतम् कुशैः सम्पादितम् उत्तरीयम् आवेष्टनं यस्य तत्। सुसंस्कृतम् मन्त्रैरभिमन्त्रितम् नवम् नूतनम् शरावम् मृन्निर्मितम् पात्रम् माभूत् स न प्राप्नुयादित्यर्थः। नरकं गच्छेत् यायादित्यर्थः।

(अयम् श्लोकः कौटिलीयार्थशास्त्रेऽपि दृश्यते। तेन ज्ञायते भासकविः

वही मित्र लोग हैं जो कि कारागार से मुक्त होकर कृष्णसर्प की भाँति इधर उधर दौड़ लगा रहे हैं। अरे अरे मित्रों तुम लोग सुनो सुनो—

जो अपने स्वामी के द्वारा दिये गये अन्न का बदला न चुका कर कृतघ्नता करे और उसके लिये युद्ध न करे उसे जल से परिपूर्ण मन्त्रों से अभिमन्त्रित तथा दर्भ से परिवेष्टित नये शराव (मिट्टी का विशेष पात्र) श्राद्ध में न प्राप्त हों। और वह नरक में जावे॥ २॥

तो आर्य यौगन्धरायण कहाँ पर हैं? (देख कर) अरे यौगन्धरायण तो यहीं हैं—

जो इस समय तेज धार वाली चमचमाती तलवार लिये हुये हैं, उन्मत्त वेष त्याग चुके हैं। स्वर्णजड़ित ढाल अपने बायें हाथ का अग्रभाग डाले

निशितविमलखड्गः संहृतोन्मत्तवेषः
कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः ।
विरचितबहुचीरः पाण्डराबद्धपट्टः
सतडिदिव पयोदः किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः ॥ ३ ॥

अहो महत् प्रवृत्तं युद्धम् ।

हत्वा गजान् सगजिनः सहयांश्च योधा-
नक्षौहिणीमतिविगाह्य बलान्मुहूर्तम् ।

कौटिल्यादपि पूर्वम् जात आसीत् ।)

अन्वयः—निशितविमलखड्गः संहृतोन्मत्तवेषः कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः विरचितबहुचीर पाण्डरावद्धपट्टः सतडित् पयोद इव किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः पयोद इव ॥ ३ ॥

व्याख्या—निशितविमलखड्गः निशितः तेजितः विमलः निर्मलः खड्गः कृपाणः यस्य सः । संहृतोन्मत्तवेषः संहृतः संधारित उन्मत्तस्य प्रमत्तस्य वेशो येन सः । कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः कनकरचिते सुवर्णमये चर्मणि फलके व्यग्रः व्यापृतः वामाग्रहस्तो यस्य सः । विरचितबहुचीरः विरचितानि शरीरे धृतानि वहूनि अनेकविधानि चीराणि वस्त्रखण्डानि येन सः । पण्डराबद्धपट्टः पाण्डरः धवलः आवद्धः पट्टः उष्णीषपट्टः शिरोवेष्टनं येन सः । सतडित् सविद्युत् किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः किञ्चित् ईषद् उद्गीर्णः उदितः चन्द्रो यस्मिन् । पयोद इव मेघ इव दृश्यते इति शेषः ।

अन्वयः—सगजिनः गजान् सहयान् योधान् हत्वा अक्षौहिणीम्

हुये हैं । जो अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण कर शिर पर सफेद पगड़ी बाँधे हुये कुछ-कुछ प्रकट रूप में दिखाई पड़ रहा है चन्द्रमा जिसमें ऐसे विद्युत् युक्त मेघ के समान दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ३ ॥

अरे यह तो घमासान युद्ध छिड़ गया ।

आर्य यौगन्धरायण पीलवानों के सहित हाथियों का एवम् घोड़ों के सहित योधाओं का वध कर मुहूर्त्तमात्र में बलपूर्वक शत्रु की अक्षौहिणी सेना को

नागेन्द्रदन्तमुसलाहतभग्नबाहु-
भ्रंष्टायुधोऽपि न निवृत्तपदोऽभियातः ॥ ४ ॥

हा धिग्, ग्रहणमुपगतः खल्वार्ययौगन्धरायणः !! यावदहमप्यार्य-यौगन्धरायणस्य प्रत्यन्तरीभविष्यामि। (निष्क्रान्तः)

भटः—किं णु एदं पाआरतोरणवज्जं सव्वं कोसम्बी खु इदं। होदु

अतिविगाह्य नागेन्द्रदन्तमुशलाहतभग्नबाहुः भ्रष्टायुधः अपि न निवृत्तपदः अभियातः।

व्याख्या—सगजिनः गजिना आधोरणेन सहितः सगजी तान्। गजान् हस्तिनः। सयहान् अश्वसहितान् योधान् वीरान् (च) हत्वा मारयित्वा अक्षौहिणीम् अक्षौहिणी संख्याविशिष्टाम् सेनाम् अतिविगाह्य अतिशयेन आहिण्डय नागेन्द्रदन्तमुशलाहतभग्नवाहुः नागेंद्रस्य गजराजस्य दन्तमुशलेन आहतः अभिहतः अतएव भग्नः वाहुः यस्य सः। भ्रष्टायुधः हस्तच्युतप्रहरणः न निवृत्तपदः अपश्चात्पदः अभियातः शत्रुसंमुखं प्राप्तः।

हा धिक्-हा कष्टम्। ग्रहणमुपगतः शत्रुवशे सञ्जातः। प्रत्यन्तरी भविष्यामि। प्रत्यासन्नी भविष्यामि प्राकारतोरणवर्जम् प्राकारं च तोरणं च प्राकार-तोरणे ताभ्याम् वर्जम् प्रावरणबहिर्द्वारहितम्।

प्रवेशकलक्षणं यथा—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्तया नीचपात्रप्रयोजितः।

तहस-नहस कर मुशल के समान मोटे हाथी दाँत के धक्के से चोट खाकर हाथ के टूट जाने से अस्त्र के गिर जाने पर भी पीछे की ओर नहीं मुड़ रहे हैं और शत्रु के सम्मुख जाते हुये दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ४ ॥

किन्तु हाय बड़े खेद की बात है कि शत्रुओं के द्वारा पकड़ लिये गये। तो मैं भी इनके समीप चलूंगा। (ऐसा कह कर चला जाता है)

भंट—अरे यह क्या! प्राकार और तोरण के बिना यह उज्जयिनी

इधं वुत्तन्तं अमच्चस्य णिवेदेमि। [किन्नु खल्वेतत् । प्राकारतोरणवर्जं सवं कौशाम्बी खल्विदं । भवत्विमं वृत्तान्तममात्याय निवेदयामि ।]
(निष्क्रान्तः ।)

इति प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशतः साधारणौ ।)

उभौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह। [उत्सरतोत्सरतार्या ! उत्सरत ।]

प्रथमः—अंघो कण्ठस्स दीअमाणस्स ण उच्चं विरमदि। [अङ्गो कण्ठस्य दीर्यमाणस्य नोच्चं विरमति ।]

द्वितीयः—अंघो भट्टि दारिआए वासवदत्ताए अवणअणविब्भमदाए वरुवन्तस्स मे वअणं कोच्चि ण सुणादि। अंघो ! किं भणहं—किण्णिमित्त

व्याख्या—उत्सरत दूरं गच्छत। अङ्गो इति खेदे। कण्ठस्य गलस्य। दीर्यमाणस्य उच्चाह्वानकरणादत्यायासमनुभवतः। उच्चम् समुन्नतं जनकलकलम्। न विरमति न्यक्कर्तुं न प्रभवति। भर्तृदारिकायाः स्वामिपुत्र्याः। अपनयनविभ्रमतया अपनयनेन अपहरणेन उत्पन्नो यः विभ्रमः

कौशाम्बी हो गई। तो जाकर यह सारा वृत्तान्त अमात्य से निवेदन करूँ।

(ऐसा कह कर चला जाता है)

प्रवेशक समाप्त ॥

(तदनन्तर दो सामान्य भटों का प्रवेश)

दोनों—आप लोग हट जाइये हट जाइये।

प्रथम—कण्ठ फाड़ कर चिल्लाने से भी ऊँचा यह जन-कोलाहल शान्त नहीं हो रहा है।

दूसरा—ओह ! राजकुमारी वासवदत्ता के अपहृत हो जाने से ऐसी भ्रान्ति फैल चुकी है कि जोर-जोर से चिल्लाने पर भी मेरी बात कोई नहीं

उस्सारणा वत्तदि त्ति। गहीदो अय्यजोअन्धराअणो। किं भत्ताह—कहं गहीद त्ति। सुणन्तु अय्या। अय्यजोअन्धराअणेण असिदुदीएण अक्खोहिणीए अग्गवेगो मुहुत्ताअं धारिदो। विजयसुन्दरस्स हत्थिणो दन्तन्तचोदिदो असी विवण्णो। असिदोसेण गहीदो, ण पुरुषदोसेण। [अङ्गो भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया अपनयनविभ्रमतया विरुवतो मे वचनं कश्चिन्न शृणोति। अङ्गो ! किं भणत–किन्निमित्तमुत्सारणा वर्तत इति। गृहीत आर्ययौगन्धरायणः। किं भणत–कथं गृहीत इति। शृण्वन्त्वार्याः–आर्ययौगन्धरायणेनासिद्वितीयेनाक्षौहिण्या अग्रवेगो मुहूर्तं धारितः। विजयसुन्दरस्य हस्तिनो दन्तान्तचोदितोऽसिर्विपन्नः। असिदोषेण गृहीतो, न पुरुषदोषेण।]

प्रथम—अंघो अप्पमत्ता होह तुम्हे। पाआरतोरणवज्जं सव्वं कौसम्बीं खु इअं। [अङ्गो अप्रमत्ता भवत यूयम् प्रकारतोरणवर्जं सर्वं कौशाम्वी खल्वियम्।]

भ्रान्तिः तस्य भावस्तया हेतुना विरुवतः उच्चाह्वानं कुर्वतः। असिद्वितीयेन खड्गसहायेन। अग्रवेगः प्रवलाक्रमणजन्यजवः। धारितः मर्षितः। असिदोषेण खड्गविनाशकारणेन। गृहीतः शत्रुवशीभूतः। न पुरुषदोषेण न तु पौरुषहीनत्वादि दोषेण।

सुन पा रहा है। क्या कहते हो किसलिये लोगों को हटाया जा रहा है ? आर्य यौगन्धरायण जो पकड़ लिये गये हैं क्या कहते हो ? कैसे पकड़े गये ? तो सुनिये—आर्य यौगन्धरायण ने एक मुहूर्त्त (दो घड़ी) पर्यन्त केवल अपनी तलवार के सहारे अक्षौहिणी सेना के प्रथम आक्रमण के वेग का सामना किया। विजय सुन्दर नामक हाथी के दाँत पर वार करने से उनकी तलवार टूट गई इसलिये वे तलवार के टूट जाने से शत्रु के वशीभूत हो गये न कि पौरुष हीनता अथवा पुरुषता के कारण।

प्रथम—अरे भाई तुम लोग सावधान हो जाओ। यह उज्जयिनी तो प्राकार और तोरण के बिना कौशाम्बी हो गई।

उभौ—ओदरदु ओदरदु अय्यो ओदरदु। [अवतरत्ववतरत्वार्योऽवतरतु ।] (ततः प्रविशति यौगन्धरायणः बद्धबाहुः फलकशयनेनानीयमानः ।)

यौगन्धरायणः—अयमहमवतरामि ।

रिपुगतमपनीय वत्सराजं
ग्रहणमुपेत्य रणे स्वशस्त्रदोषात् ।
अयमहमपनीतभर्तृदुःखो जितमिति
राजकुले सुखं विशामि ॥ ५ ॥

अन्वयः—अयम् अहम् रिपुगतम् वत्सराजम् अपनीय रणे स्वशस्त्रदोषात् ग्रहणमुपेत्य अपनीतभर्त्तृदुःखः जितमिति (बुध्वा) राजकुले सुखं विशामि ।

व्याख्या—अयम् अहं यौगन्धरायणः रिपुगतम् शत्रुहस्तप्राप्तम् वत्सराजम् उदयनम् अपनीय कारागारादुन्मोच्य रणे युद्धे स्वशस्त्रदोषात् स्वखड्गभङ्गदोषेण ग्रहणम् शत्रुवशताम् उपेत्य सम्प्राप्य अपनीतभर्तृदुःखः अपनीतम् निवारितम् भर्त्तुः स्वस्वामिनः दुःखम् व्यथाम् येन सः । जितम् मम जयः सिद्धः इति बुद्धचा राजकुले राजभवने सुखम् सहर्षम् यथा स्यात्तथा विशामि प्रविशामि ।

दोनों—उतरिये । आर्य उतरिये ।

(हाथों में बेड़ी पड़ी हुई पटरे पर सुलाकर
लाये गये यौगन्धरायण का प्रवेश)

यौगन्धरायण—यह मैं उतर रहा हूँ ।

मैं—शत्रु के वशीभूत वत्सराज को छुड़ा कर युद्ध में अपनी तलवार के टूट जाने से शत्रु के द्वारा पकड़ लिया गया अब अपने स्वामी वत्सराज का दुःख दूर कर अपनी विजय मानता हुआ राजकुल में सुखपूर्वक प्रविष्ट हो रहा हूँ ॥ ५ ॥

अरे भाई स्त्री-रहित पुरुष का वन जाना भी सुखकारक है अपना मनोरथ पूर्ण हो जाने पर दुर्भाग्य से होने वाली असफलता भी कहीं अच्छी होती है निरन्तर धर्म का अर्जन करने वाले पुरुष की मृत्यु भी रमणीय तट पर होती

भो। ! सुखं खलु निष्कलत्राणां कान्तारप्रवेशः, रमणीयतरः खलु प्राप्तमनोरथानां विनिपातः; अपश्चात्तापकरः खलु सञ्चितधर्माणां मृत्युः । मया हि,

वैरं भयं परिभवं च समं विहाय
कृत्वा नयैश्च विनयैश्च शरैश्च कर्म ।
शत्रोः श्रियं च सुहृदामयशश्च हित्वा
प्राप्तो जयश्च नृपतिश्च महांश्च शब्दः ॥ ६ ॥

निष्फलत्राणाम् स्त्रीरहितानाम् कान्तारप्रवेशः अरण्यगमनम् । यथा— तस्य कृते गृहम् तथा वनमुभयोः साम्यात् । प्राप्तमनोरथानाम् प्राप्तः संलब्धः मनोरथः मनोऽभिलाषो येन तेषाम् विनिपातः दैववशादसाफल्यम् । रमणीयतरः शोभनः प्रशस्तो वा सञ्चितधर्माणाम् सञ्चितः समुपार्जितः धर्मो यैः ते तेषाम् उपार्जितपुण्यानाम् ।

अन्वयः—वैरं भयं परिभवं च समं विहाय नयैः विनयैः शरैः च कर्म कृत्वा शत्रोः श्रियं सुहृदां अयशः च हित्वा जयः नृपतिः महान् शब्दश्च प्राप्तः ।

व्याख्या—वैरम् विरोधम् भयम् त्रासम् परिभवं अवमानं च समम् सहैव विहाय सन्त्यज्य, नयैः नीतिभिः, विनयैः क्षान्त्यादिभिः, शरैः बाणैः च कर्म कृत्वा सम्पाद्य शत्रोः वैरिणः श्रियम् राजलक्ष्मीम् सुहृदाम् मित्राणाम् अयशः अपकीर्त्तिम् च हित्वा दूरीकृत्य जयः विजयः प्राप्तः नृपतिः वत्सराजः (प्राप्तः) महान् इति शब्दश्च प्राप्तः ।

है-- मैं शत्रुता, भय और अपमान इन सभी को एक साथ ही छोड़ कर नीति-विनय तथा बाण के द्वारा पराक्रम प्रदर्शित कर शत्रु की राज्यश्री तथा मित्रों के अपमान को दूर कर विजय तो प्राप्त किया ही वत्सराज को प्राप्त किया और महान् शब्द भी ॥ ६ ॥

उभौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह। [उत्सरतोत्सरतार्याः उत्सरत।]

यौगन्धरायणः—मद्दर्शनाभिलाषी जनो न कश्चिदुत्सारयितव्यः।

पश्यन्तु मां नरपतेः पुरुषाः ससत्त्वा
राजानुरागनियमेन विपद्यमानम्।
ये प्रार्थयन्ति च मनोभिरमात्यशब्दं
तेषां स्थिरीभवतु नश्यतु वाभिलाषः ॥ ७ ॥

उभौ—उत्सरह उत्सरह। किं दुम्हेहि ण दिट्ठपुरुवो अय्यजोअन्धराअणो ! [उत्सरतोत्सरत। किं युष्माभिर्न दृष्टपूर्व आर्ययौगन्धरायणः ?]

अन्वयः—राजानुरागनियमेन विपद्यमानं, मां ससत्त्वाः नरपतेः पुरुषाः पश्यन्तु। ये जना मनोभिः अमात्यशब्दं प्रार्थयन्ति तेषाम् अभिलाषः स्थिरीभवतु वा नश्यतु।

व्याख्या—राज्ञि यः अनुरागः भक्तिः तस्य नियमेन विधानेन विपद्यमानम् आपद्ग्रस्तम् मां ससत्त्वाः धीराः नरपतेः राज्ञः प्रद्योतस्य पुरुषाः अधिकारिणः प्रजावर्गो वा मां यौगन्धरायणं पश्यन्तु अवलोकयन्तु। ये जनाः पुरुषाः मनोभिः चित्तैः अमात्यपदम् मन्त्रिणः स्थानम् प्रार्थयन्ति वाञ्छन्ति तेषाम् अभिलाषः स्पृहा स्थिरीभवतु नश्यतु वा।

दोनों—आप लोग हट जावें हट जावें।

यौग०—मेरे दर्शन की इच्छा रखने वाला कोई भी पुरुष रास्ते से न हटाया जाय।

प्रद्योत के कर्मचारी पुरुष जो धैर्यशील हैं वे राजभक्ति के कारण आपत्ति से ग्रस्त मुझे देखें कि जो लोग मन से अमात्य पद की अभिलाषा करते हैं उनकी अभिलाषा या तो पूरी होती है अथवा नष्ट होती है।

दोनों—अरे भाई हटो हटो। क्या तुम लोगों ने इससे पूर्व आर्य यौगन्धरायण को नहीं देखा है ?

यौगन्धरायणः—दृष्टः पूर्वं, न त्वेवम् । मम हि,

उन्मत्तच्छन्नवेषस्य रथ्यासु परिधावतः ।
अवगीतमिदं रूपं कर्म सम्प्रति दृश्यते ॥ ८ ॥

(प्रविश्य)

भटः—अय्य ! पिअं दे णिवेदेमि । गहीदो किल वच्छराओ ।
[आर्य ! प्रियं ते निवेदयामि । गृहीतः किल वत्सराजः ।]

यौगन्धरायणः—नैतदस्ति ।

चिरमरिनगरे निरोधमुक्तः स
किल वनान्युपलभ्य भद्रवत्या ।

अन्वयः—उन्मत्तछन्नवेषस्य रथ्यासु परिधावतः मम इदं अवगीतम् रूपम् कर्म सम्प्रति दृश्यते ।

व्याख्या—उन्मत्तछन्नवेषस्य उन्मत्तकारणेन छन्नम् निगूढं वेषो रूपं यस्य स तस्य । रथ्यासु प्रतोलीषु परिधावतः इतस्ततो वेगेन गच्छतः मम इदं रूपं अवगीतम् निन्दितं रूपम् कर्म सम्प्रति दृश्यते ।

अन्वयः—चिरम् अरिनगरे निरोधमुक्तः भद्रवत्या वनानि उपलभ्य प्रयातः

यौग०—पूर्व में देखे तो हैं किन्तु इस प्रकार नहीं । मेरा तो उस समय उन्मत्त वेष धारण करने के कारण मेरा असली रूप छिपा हुआ था जब मैं गलियों में इधर-उधर दौड़ता रहता था अतः इन लोगों ने मेरे उस निन्दित रूप को ही देखा । किन्तु इस समय मेरे सुन्दर कर्म देखें ।

(भट प्रवेश कर)

भट—हे आर्य ! मैं आप से प्रियवचन निवेदन करने आया हूँ कि वत्सराज पकड़ लिये गये ।

यौग०—ऐसा हो नहीं सकता ।

बहुत काल पर्यन्त शत्रु के नगर में रह कर फिर कारागार से मुक्त हुये हमारे स्वामी भद्रवती के द्वारा एक निमेष मात्र से अनेक योजन की चाल से

ग्रहणमुपगमिष्यति प्रयातो
निमिषितमात्रगतेषु योजनेषु ॥ ९ ॥

भद्र ! कथं गृहीत इति श्रुतम् ?

भटः—अणुसारिअ णलागिणि गहीदो किलो । [अनुसार्य नलागिरिणा गृहीतः किल ।]

यौगन्धरायणः—अस्ति वाहनसामर्थ्यम् असमायुक्तस्तु सः ।

गजस्याधोरणायुक्तो जवो भवति शिक्षया ।
विमुक्तं वत्सराजेन क एनं वाहयिष्यति ॥ १० ॥

निमिषितमात्रगतेषु योजनेषु ग्रहणम् उपगमिष्यति किल ।

व्याख्या—चिरम् अरिनगरे शत्रुनगरे निरोधमुक्तः कारागारादुन्मुक्तः भद्रवत्या वनानि विन्ध्यारण्यानि उपलभ्य आपाद्य प्रयातः निमिषितमात्रगतेषु निमेषमात्रातीतेषु योजनेषु गतेषु ग्रहणम् वन्धनम् उपगमिष्यति किल ? अर्थात् न गमिष्यति ।

अनुसार्य पश्चाद् गमयित्वा नलागिरिणा तन्नामकेन हस्तिना ।

असमायुक्तः नैव सम्यक् शिक्षितः ।

अन्वयः—गजस्य जवः आधोरणायुक्तः भवति । शिक्षया विमुक्तम् एनम् वत्सराजेन सह कः वाहयिष्यति ।

व्याख्या—गजस्य हस्तिनः जवः स वेगगमनम् आधोरणयुक्तः हस्तिपको-

चलते हुये विन्ध्य के घोर जङ्गलों में पहुँच गये होंगे । फिर वे कैसे पकड़े जा सकते हैं ! तुमने किससे सुना कि वे पकड़ लिये गये ।

भट—नलागिरि के द्वारा पीछा करा कर उन्हें पकड़ लिया गया ।

यौग०—क्या उनमें यह सामर्थ्य है । वाहन में इतनी सामर्थ्य तो तब आती है जब वह शिक्षित हो किन्तु वह (नलागिरि तो अच्छी तरह शिक्षित भी नहीं है ।)

क्योंकि हाथी में दौड़ने का वेग महावत से होता है फिर शिक्षा से रहित उस हाथी को वत्सराज के साथ कौन भगा सकता है ? ॥ १० ॥

भटः—अय्य ! अमच्चो आह—आउहागारे चिट्ठदु किल अय्यो। पुरुसगुत्तो अअं देसो त्ति। [आर्य ! अमात्य आह—आयुधागारे तिष्ठतु किलार्यः। पुरुषगुप्तोऽयं देश इति ।]

यौगन्धरायणः—अहो हास्यमभिधानम् ।

अग्निं बद्ध्वा वत्सराजाभिधानं
यस्मिन् काले सर्वतो रक्षितव्यम् ।
तस्मिन् काले सुप्तमासीदमात्यै
र्नीतेरत्ने भाजने को निरोधः ॥ ११ ॥

त्पादितः भवति । शिक्षया विमुक्तम् शिक्षया रहितम् एनम् वत्सराजेन सह भद्रवती वाह्यतेति शेषः । कः वाहयिष्यतिः कः नेष्यति चालयिष्यति ।

पुरुषगुप्तः आगन्तुकेभ्यः वाह्यपुरुषेभ्यः रक्षित इत्यर्थः ।

अन्वयः—वत्सराजाभिधानम् अग्निम् वध्वा यस्मिन् काले रक्षितव्यम् तस्मिन् काले अमात्यैः सुप्तम् आसीत् । (इदानीम्) रत्ने नीते भाजने कः निरोधः ।

व्याख्या—वत्सराजाभिधानम् वत्सराजनामकम् अग्निम् अग्निमिव तेजस्विनम् बद्ध्वा वशीकृत्य यस्मिन् काले समये सर्वतो रक्षितव्यम् सर्वप्रकारेण रक्षणीयम् आसीत् तस्मिन् काले अमात्यैः मन्त्रिवर्गैः सुप्तम् निश्चेष्टम् अकर्मण्यम् आसीत् रत्ने नीते अपहृते भाजने कः निरोधः किं सावधानतया ?

अक्षीणाम् विश्रान्तम् । व्यक्तम् अवश्यम् ।

भट—आर्य ! अमात्य ने कहा है कि आप शस्त्रागार में ठहरे । यह स्थान आगन्तुकों से सर्वथा गुप्त है (अर्थात् लोग वहाँ नहीं जा सकते ।

यौग०—अहो ! यह वात तो हास्यास्पद है ।

अग्नि के समान पराक्रमी वत्सराज को बाँध लेने पर जिस समय सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिये थी उस समय तो अमात्य वर्ग सो रहा था। अब रत्न के चोरी चले जाने पर मात्र शेष वचे पात्र की रक्षा करने से क्या लाभ ? ॥ ११ ॥

(परिक्रम्य)

भटः—इदं आउहागारं पविसदु अय्यो । [इदमायुधागारम् । प्रविशत्वार्यः ।]

(प्रविश्य)

भटः—अमच्चो आह-अवणीअदु बन्धणं त्ति ! [अमात्य आह-अपनीयतां बन्धामिति ।]

यौगन्धरायणः—अक्षीणं मां कुरु । व्यक्तं भरतरोहको मां द्रष्टुमिच्छति । अहमपि तावद् भरतरोहकं द्रष्टुमिच्छामि ।

मद्वाक्यैः परिखिद्यमानहृदयं रोषात् प्रमत्ताक्षरैः
प्रारब्धे नयच्छलेष तुलितं तुल्याधिकारोज्झितम् ।

अन्वयः—रोषात् प्रमत्ताक्षरैः मद्वाक्यैः परिखिद्यमानहृदयम् नयच्छलेषु प्रारब्धेषु तुलितम् तुल्याधिकारोज्झितम् । शास्त्रविनिःसृतैः सूक्तैः रहितम् बुद्धया अधिकम् वञ्चितम् अपक्रियाविनिहतं शूरम् इव व्रीलया अधोमुखम् भरतरोहकम् (द्रष्टुम् इच्छामि) ।। ११ ।।

व्याख्या—रोषात् स्वामिच्छलननिमित्ताज्जातोधात् प्रमत्ताक्षरैः उद्धतैः,

---

(भट परिक्रमा कर)

भट—यही आयुधागार है । आर्य इसी के भीतर चलें ।

(भट का पुनः प्रवेश)

भट—अमात्य ने कहा है किवेड़ी हटा दो ।

यौग०—मुझे स्वस्थ कहो । भरत रोहक अवश्यक मुझसे मिलना चाह रहे हैं और मैं भी भरत रोहक से मिलना चाहता हूँ ।

रोष के कारण मेरें द्वारा कहे गये परुषाक्षरों से जिसका हृदय अब भी पारितप्यमान है जो कूटनीति के प्रयोग में समान रूप से कपट की तुला पर चढ़ कर भी मुझ से घट कर ही निकला । जिसे वहिस्पत्यादि शास्त्रों में

सूक्तैः शास्त्रविनिश्चतैर्विरहितं बुद्ध्याधिकं वञ्चितं
द्रष्टुं मल्लमपक्रियाविनिहतं व्रीलादिवाधोमुखम् ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशति भरतरोहकः ।)

भरतरोहकः—क्वासौ क्वासौ यौगन्धरायणः ?

अवसितनिजकार्यं वञ्चनैर्दुर्निरीक्षं
कथमिव परिभाषे भर्तुरर्थे विपन्नम् ।

मंदवाक्यैः मदीयवचनैः परिखिद्यमानहृदयम् सन्तप्यमानचित्तम् दुःखिनमित्यर्थः नयच्छलेषु कूटनीतिषु प्रारब्धेषु उपक्रान्तेषु सत्सु तुलितम् तुलया धृतम् निर्धारितच्छलप्रयोगसामर्थ्यमित्यर्थः । तुल्याधिकारोज्झितम् तुल्येन समानेन अधिकारेण आरम्भेण उज्झितम् रहितम् मदीयप्रयुक्तछलनारम्भापेक्षया तदीयच्छलनारम्भो न्यूनतर इति भावः । शास्त्रविनिश्चतैः नीतिशास्त्रविनीर्णीतैः सूक्तैः रमणीयोपदेशैः विरहितम् हीनम् बुद्धया अधिकम् वञ्चितम् यावदहं तेन वञ्चितः ततोप्यधिकम् मया सवञ्चित इति भावः । अपक्रियाविनिहतम् अपक्रियया अपकारेण विनिहतम् प्रतिदृतम् मल्लम् शूरम् इव यथा व्रीलाव् लज्जातः अधोमुखम् अवाङ्मुखम् अवनतमुखं वा न तु स्वसम्मुखम् भरतरोहकम् द्रष्टुमिच्छामीति शेषः ।

अन्वयः—अवसितनिजकार्यम् वञ्चनैः दुर्निरीक्षम् भर्तुः अर्थे विपन्नम्

विहित सदुपदेशों का ज्ञान तक नहीं है । बहुत क्या जो मेरे बुद्धि के प्रयोग द्वारा अधिकाधिक ठगा गया और जो अपने प्रयत्न के निष्फल हो जाने से लज्जा के कारण अधोमुख लिये शूरवीर के समान हो रहा है उस भरतरोहक से मिलने की मेरी भी इच्छा है ॥ १२ ॥

(तदतन्तर भरतरोहक का प्रवेश)

भरतरोहक—कहाँ है कहाँ है वह यौगन्धरायण ?

जिसने वञ्चना के द्वारा अपना कार्य पूरा कर लिया है इसलिये मेरे द्वारा दुःखी मन से निरीक्षणीय हैं; जो अपने स्वामी के कार्य के लिये इस प्रकार

चिरमवनतकायं चापि निर्युक्तमन्त्रं
भुजगमिव सरोषं धर्षितं चोच्छ्रितं च ॥ १३ ॥

भटः—अय्यजोअन्धराअणो अय्यं पडिवालअन्तो आउहागारे चिट्ठइ। [आर्ययौगन्धरायण आर्यं प्रतिपालयन् आयुधागारे तिष्ठति ।]

भरतरोहकः—भवतु भवतु।

मन्त्रित्वे वञ्चितो ह्येष सव्याजं नीलहस्तिना।
प्रत्यादेष्टुं स तद्वैरं मामिदानीं प्रतीक्षते ॥ १४ ॥

चिरम् अवनतकार्यम् निर्युक्तमन्त्रं सरोषं भुजगम् इव धर्षितम् उच्छ्रितम् च एनम् कथम् इव परिभाषे।

व्याख्या—अवसितनिजकार्यम् सुसंपादितम् निजम् स्वीयम् कार्यं प्रयोजनम् येन स तम्। वञ्चनैः छलनैः दुर्निरीक्षम् दुःखेन द्रष्टुम् शक्यम् भर्तुः स्वामिनः अर्थे कारणेन विपन्नम् विपद्ग्रस्तम् चिरम् अवनतकार्यम् अवनतम् कार्यं यस्य स तम्। निर्युक्तमन्त्रम् निर्युक्तः प्रयुक्तः मन्त्रो यस्य स तम् भुजगपक्षे यस्मै तमिति विशेषः। सरोषम् क्रोधसहितम् भुजगम् सर्पम् इव धर्षितम् परिभूतम् उच्छ्रितम् समुन्नतम् एनं यौगन्धरायणम् कथमिव केन प्रकारेण परिभाषे उपालभे। सर्वप्रकारेण श्लाघनीयो यौगन्धरायण नोपालम्भार्हं इति भावः।

अन्वयः—मया मन्त्रित्वे एष सव्याजम् नीलहस्तिना वञ्चितः। स इदानीम् तद् वैरं प्रत्यादेष्टुम् मां प्रतीक्षते।

के आपत्ति से ग्रस्त है जो इस समय पराजित होकर भीं मन्त्र प्रयुक्त ग्रहण से पराभूत किन्तु क्रोध से अपना शिर ऊँचा किये हुये सर्प के समान हो रहा है (अतः मैं किस प्रकार उसे उपालम्भ हूँ। वह तो सर्वथा श्लाघनीय है) ॥१३॥

भट—ये आर्य यौगन्धरायण शस्त्रागार में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भरत रोहक—अच्छा अच्छा।

मेरे द्वारा अपने मन्त्रित्व काल में नीले हाथी के कपट प्रयोग से गाठ

भटः—अय्य ! एसो अमच्चो । [आर्य ! एषोऽमात्यः ।]

भरतरोहकः—(उपगम्य) भो यौगन्धरायण !

यौगन्धरायणः—भोः !

भटः—अहो सरस्स गम्भीरदा ! अय्यस्य एकक्खरेण पूरिदो अयं देशो !! [अहो स्वरस्य गम्भीरता ! आर्यस्यैकाक्षरेण पूरितोऽयं देशः !!]

भरतरोहकः—(उपविश्य) भोः ! यौगन्धरायण इत्यशरीराण्यक्षराणि श्रूयन्ते । दिष्टया भवान् दृश्यते ।

यौगन्धरायणः—दिष्टया भवान् दृश्य इति । पश्यतु भवान् माम्,

व्याख्या—मया मन्त्रित्वे मन्त्रिणः कार्ये विषये वा एष यौगन्धरायणः सव्याजम् सकपटम् नीलहस्तिना छद्मविरचितनीलगजेन वञ्चितः प्रतारितः । स यौगन्धरायणः इदानीम् अधुना तद् वैरम् मदीयप्रयुक्तवञ्चन मूलकं विरोधम् प्रत्यादेष्टुम् प्रतीकारं कर्त्तुम् माम् प्रतीक्षत प्रतीक्षमाणः तिष्ठतीति भावः ।

गया है कदाचित् उसी वैर का बदला लेने के लिये इस समय मेरी प्रतीक्षा कर रहा है ॥ १४ ॥

भट—आर्य ! ये अमात्य हैं ।

भरत रोहक—(समीप जाकर) अरे यौगन्धरायण !

यौग०—अरे ।

भट—(मन में) अहा कितना गम्भीर स्वर है । आर्य के इस एक ही शब्द से समस्त स्थान व्याप्त हो गया ।

भरत रोहक—(बैठ कर) ऐ ! अभी तक यौगन्धरायण का नाम ही सुन रखा था पर शरीर के दर्शन नहीं हुये थे । आज भाग्य से आपके स्वरूप का भी दर्शन हो गया ।

यौग०—भाग्य से आप के भी दर्शन हो गये । आप मुझे देखें ।

एवं रुधिरदिग्धाङ्गं वैरं नियममास्थितम् ।
गुरोरवजितं हत्वा शान्तं द्रौणिमिव स्थितम् ॥१५॥

भरतरोहकः—अहो छलेनागतगजारम्भस्यात्मसम्भावना !!

अन्वयः—वैरम् नियमम् आस्थितम् रुधिरदिग्धाङ्गम् गुरोः अवजितम् हत्वा शान्तं द्रौणिमिव स्थितम् (माम् भवान् पश्यतु) ।

व्याख्या—वैरम् वीरस्यायं वैरस्तम् वीरसम्बन्धिनम् नियमम् व्रतम् समुदाचारं वा आस्थितम् संस्थितम् रुधिरदिग्धाङ्गम् रुधिरेण शोणितम् दिग्धम् अनुलिप्तम् अङ्गम् शरीरावयवं यस्य स तम् । गुरो स्वजनकस्य अवजितम् अवजेतारम् हत्वा वधं कृत्वा शान्तम् द्रौणिम् अश्वत्थामानम् इव स्थितम् एवं भूतं माम् भवान् पश्यतु इति शेषः ।

व्याख्या—छलेन कपटेन । आगतगजारम्भस्य आगतः प्राप्तः गजारम्भः

वीरव्रत का पालन करने वाले रुधिर से लथपथ शरीर वाले मुझे आप इस समय अपने पिता को पराजित करने वाले धृष्टद्युम्न का वध कर शान्त हुये अश्वत्थामा के समान देखें ।

भरतरोहक—धोखा देकर हाथी द्वारा वत्सराज को भगा कर अपने

टिप्पणी—यह कथा महाभारत के द्रोणपर्व में मिलती है कि जब पुत्रशोक से विह्वल द्रोणाचार्य ने अपना शस्त्र त्याग दिया । तब द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने जाकर अपनी तलवार से द्रोणाचार्य का शिर काट लिया । पुनः महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाने पर जब पाण्डवों की सेना जिसमें धृष्टद्युम्न भी था विश्राम कर रही थी उसी समय द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने अपने पिता का बदला लेने के लिये धृष्टद्युम्न को शस्त्र से न मारकर नखों के द्वारा विदीर्ण कर उसका वध कर अपने क्रोध को शान्त किया । (द्र० द्रोणपर्व)

यौगन्धरायणः—किं छलेनेति। तत् पुनरिदानीं युक्तम्।

या सा मल्लिकसालवृक्षरचिता नागाश्रिता वञ्चना
बद्धः सेवितवान् हि नो नरपतिर्बाहूपधानां क्षितिम्।

गजद्वारकः आरम्भः भद्रवतीनामक हस्तीद्वारा वत्सराजहरणप्रयत्नः येन स तस्य तव आत्मसम्भावना स्वकीयशौर्यंमन्यता अहो आश्चर्यंकरम्।

अन्वयः—या मल्लिकसालवृक्षरचिता नागाश्रिता सा वञ्चना तव् किं युक्तम्? बद्धः नः नरपतिः बाहूपधानां क्षितिं सेवितवान् (तव् किं युक्तम्) राज्ञः वारणनिग्रहे परिचयात् वीणाश्रिता वञ्चना (किं युक्तम्) भवता पूर्वमेव (छलम्) प्रस्तुतम् (अहं तु पश्चात्) यामि (अत्र) मम अपराधो नैव।

व्याख्या—या मल्लिकसालवृक्षरचिता मल्लिका युक्ते सालवृक्षे रचिता निर्मिता नागाश्रिताः नीलहस्तिसम्बन्धिनी सा प्रसिद्धा वञ्चना छलम् यया वत्सराजो भवता वञ्चितः तव् किं युक्तम्। बद्धः ग्रहणं प्राप्तः नः अस्माकम् नरपतिः राजा बाहूपधानाम् बाहुरेव उपधानम् उपबर्हः यस्यां सा तादृशीम् क्षितिम् भूमिम् सेवितवान् अध्यशेत तव् किं युक्तम्। हि यतः राज्ञः वत्सराजस्य वारणनिग्रहे हस्तिनो वशीकरणविद्यायां परिचयात् सम्प्राप्त-कौशलात् वीणया हस्तिवशीकरणकौशलमसोढ्वा वीणाश्रिता वीणापहरण-

---

पराक्रम का बखान करते हो। यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हें लज्जा नहीं आती।

यौग०—छल की चर्चा क्यों करते हो। क्या तुम्हारा छल करना ठीक था। मल्लिका से युक्त सालवृक्ष में जो कृत्रिम नीले हाथ की रचना कर जिस प्रकार वत्सराज को धोखा दिया गया क्या वह ठीक था। हमारे महाराज ने आपके बन्धन में पड़ कर पृथ्वी पर हाथों के तकिये के सहारे शयन किया, क्या वह ठीक था? हाथियों को वश में करने की विद्या में निपुण हमारे महाराज

राज्ञो वारणनिग्रहे परिचयाद् वीणाश्रिता वञ्चना
पूर्वं प्रस्तुतमेव यामि भवता नैवापराधो मम ॥ १६ ॥

भरतरोहकः—भो यौगन्धरायण ! यदग्निसाक्षिकं महासेनस्य दुहितरं शिष्यां प्रतिगृह्य अदत्तापनयनं कृतं युक्तेयं भोस्तस्करप्रवृत्तिः ?

यौगन्धरायणः—मा मा भवानेवम्। विवाहः खल्वेष स्वामिनः।

भरतानां कुले जातो वत्सानामूर्जितः पतिः।
अकृत्वा दारनिर्देशमुपदेशं करिष्यति ॥ १८ ॥

लक्षणापक्रिया कृता तत् किं युक्तम्। भवता पूर्वं छलनं कृतम् तदुत्तरं मया कृतमित्याह भवता पूर्वम् प्रथमम् एवं छलं प्रस्तुतम् प्रक्रान्तम् तदनन्तरमहं यामि अनुकरोमि। अत्र मम अपराधो नैव। महासेनस्य दुहितरम् कन्याम् वासवदत्ताम् अग्निसाक्षिकम् परिकल्प्य शिष्यतां प्रतिगृह्य अदत्तापनयनम् दानं विनैवापहरणं कृतम् भो इयं तस्य तस्करप्रवृत्तिः चौर्यवद् व्यवहारः युक्तं किमिति शेषः।

अन्वयः—भरतानाम् कुले जातः वत्सानाम् अर्जितः पतिः दारानिर्देशम्

की वीणा छीनकर जो वञ्चना की गई क्या वह ठीक थी। इस प्रकार कपट का प्रयोग प्रथम आपके पक्ष से हुआ, मैंने तो मात्र उसका अनुकरण ही किया। फिर आप ही सोचिये इसमें हमारा कोई अपराध था ?

भरतरोहक—अच्छा यौगन्धरायण ! अग्नि को साक्षी देकर महासेन की कन्या वासवदत्ता को शिष्य बना कर उसका जिस प्रकार अपहरण किया गया क्या चौर्य कर्म उचित है—

यौग०—ऐसा मत कहिये।

भरत कुल में उत्पन्न उसमें भी प्रतापी वत्सराज क्या किसी प्रौढ युवती कन्या को बिना अपनी स्त्री बनाये शिक्षा प्रदान कर सकता है ?

भरतरोहकः—अद्यापि महासेनेन प्रयुक्तसत्कारो वत्सराजः । तदिदानीं किं नावेक्षते ?

यौगन्धरायणः—मा मा भवानेवम् ।

यदस्य चाज्ञां कुरुते नलागिरिः
स शिक्षितानां वचनेषु तिष्ठति ।

अकृत्वा उपदेशं करिष्यति (किम्) ।

व्याख्या—भरतानाम् कुले वंशे जातः समुत्पन्नः वत्सानाम् अर्जितः प्रतापसम्पन्नः पतिः वत्सराज इत्यर्थः दारानिर्देशम् पत्नीत्वेन पाणिग्रहणम् अकृत्वा असम्पाद्य उपदेशम् करिष्यति किमिति काक्वा न करिष्यतीत्यर्थः । वत्सराजः प्रौढां तादृशीं कन्यां पत्नीत्वेन ग्रहणं विना नाध्यापयेत् लोकापवादभयादिति ।

अन्वयः—यत् नलागिरिः अस्य आज्ञां कुरुते सः शिक्षितानां वचनेषु तिष्ठति ततः स्वशरीररक्षणे सुहृदां जीवितुम् यशः प्रदातुं च महासेनेन वत्सराजः मुक्तः ।

व्याख्या—इदानीं वत्सराजस्य मोचनं महासेनेन यत्कृतं तत्तस्य सत्कारार्थं न कृतम् किन्तु स्वार्थमभिप्रेत्यैव कृतमित्यत आह—यत् यस्मात् कारणात् नलागिरिः एतन्नामा हस्ती अस्य वत्सराजस्य आज्ञां कुरुते पालयति स शिक्षितानाम् हस्तिशास्त्रे निष्णातानाम् विदुषाम् वचनेषु तिष्ठति वचनान्य-

---

भरतरोहक—आज तक महासेन ने जिस प्रकार वत्सराज का सत्कार किया है, क्या यह बात भुलाई जा सकती है—

यौग०—नहीं नहीं आप ऐसा न कहें—

नलागिरि वत्सराज की आज्ञा का पालन करता है इसमें एक ही कारण है कि वह हस्तिशास्त्रविशारदों के ही वश में रहना चाहता है । महासेन ने

ततो विमुक्तः स्वशरीररक्षणे
यशः प्रदातुं सुहृदां च जीवितम् ॥ १८ ॥

भरतरोहकः—यद्येवं, नलागिरिग्रहणार्थं विमुक्तश्चेद्, न पुनर्बद्धस्ते स्वामी ।

यौगन्धरायणः—नेति पश्यत्युपक्रोशभयात् ।

भरतरोहकः—अपरोक्षराज्यव्यवहारो भवानिति ब्रवीति समरावर्जितेषु शत्रुषु किमाह शास्त्रम् ?

नुवर्त्तते । ततः तस्मात् कारणात् स्वशरीररक्षणे स्वशरीररक्षणार्थम् सुहृदाम् जीवितम् जीवनम् यशः प्रतिष्ठां प्रदातुं च महासेनेन वत्सराजो विमुक्तः ।

उपक्रोशभयात् उपक्रोशः जुगुप्सा निन्दा वा तस्य भयात् लोकापवादभयात्—आत्मनः सुहृज्जनस्य च रक्षितारमयं पुनर्निबध्नाति कृतघ्नोऽयम् इति लोकापवादभयादित्यर्थः अपरोक्षराजव्यवहारः अपरोक्षः प्रत्यक्षीजातः राज्यव्यवहारो यस्य स साक्षात्कृत राज्यतन्त्रः सर्वथा राजनीतिज्ञो भवानित्यर्थः । समरावजितेषु युद्धे पराभूतेषु ।

इसीलिये अपने शरीर की रक्षा के लिये मित्रों की जान बचाने के लिये तथा यश प्रदान करने के लिये वत्सराज को जेल से विमुक्त किया ।

भरतरोहक—यदि ऐसी वात है तो नलागिरि के पकड़ने के लिये छोड़े गये तुम्हारे स्वामी पुनः क्यों नहीं पकड़े गये ?

यौग०—ऐसा पुनः इसलिये नहीं किया गया कि इससे लोक में अपकीर्त्ति होती ।

भरतरोहक—आपको समस्त राज्यव्यवहार का प्रत्यक्ष है फिर भी ऐसी वातें कहते हैं, भला सोचिये युद्ध–क्षेत्र में पकड़े गये शत्रु के प्रति शास्त्र का क्या आदेश है ?

यौगन्धरायणः—वधः ।

भरतरोहकः—वधार्हो वत्सराजश्चेत् किमस्माभिः स सत्कृतः ?

यौगन्धरायणः—एतदवेक्ष्य खलु यदस्य शरीरं नापहृतम् ।

भरतरोहकः—एतदपि सम्भाव्यं मन्यते स्वामी ।

यौगन्धरायणः—कः संशयः ?

हस्तप्राप्तो हि वो राजा रक्षितस्तेन साधुना ।
न ह्यनारुह्य नागेन्द्रं वैजयन्ती निपात्यते ॥ १९ ॥

भरतरोहकः—भवतु भवतु । महासेनस्य प्रतिकूलं कृत्वा सौशाम्बीं

अन्वयः—हस्तप्राप्तः हि वः राजा तेन साधुना रक्षितः हि नागेन्द्रम् अनारुह्य वैजयन्ती न निपात्यते ।

व्याख्या—हस्तप्राप्तः हस्तग्राह्यः वशीभूता इत्यर्थः वः राजा युष्माकम्

यौग०—वध ।

भरतरोहक—यदि वत्सराज वध के योग्य थे तो भी हम लोगों ने उनका क्या सत्कार नहीं किया ?

यौग०—यही विचार कर तो हमलोगों ने महासेन को जीवित छोड़ दिया ।

भरतरोहक—क्या तुम्हारे स्वामी ऐसी सम्भावना किये थे ?

यौग०—इसमें भी क्या कोई सन्देह है ?

महासेन को हस्तगत कर लेने पर भी उन महात्मा ने महासेन की रक्षा ही की । भला आप ही सोचें नागेन्द्र पर चढ़े विना क्या उसके ऊपर की पताका हस्तगत की जा सकती है ? अर्थात् महासेन को हराये विना क्या वासवदत्ता का हरण सम्भव था ?

भरतरोहक—अच्छा इस वात को यहीं समाप्त कर देते हैं । महासेन के

प्रति का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—अहो हास्यमभिधानम् !

भवतां चाग्रतो यातः शेषकार्येषु का कथा।
समूलं वृक्षमुत्पाट्य शाखाश्छेत्तुं कुतः श्रमः ॥ २० ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकोयः—(कर्णे) एवमिव।

स्वामी महासेनः तेन साधुना महात्मना रक्षितः न मारितः। हि यतः नागेन्द्रम् अनारुह्य वैजयन्ती पताकां न निपात्यते हस्तगता न क्रियते। न हि महासेनम् वशीकरणं विना वासवदत्ताहरणं सम्भाव्यंते इति भावः ॥ १९ ॥

अन्वयः—भवतां चाग्रतो यातः शेषकार्येषु का कथा। समूलं वृक्षमुत्पाट्य शाखाः छेत्तुम् श्रमः कुतः ॥ २० ॥

व्याख्या—भवतां अग्रतः पुरःसरः यातः सम्प्राप्तोहम्। ये मयापकृता ये च मां सद्योवद्धमिच्छन्ति तादृशानां युष्माकम् समक्षे निर्भयोऽहम् एकाकी सम्प्राप्त इत्यर्थः। शेषकार्येषु का कथा कौशाम्वीप्रमाणे तु भवतां किं करोमीति कथैव नास्तीत्यर्थः। समूलं मूलसहितं वृक्षम् उत्पाटच शाखा छेत्तुम् विनाश-

---

प्रतिकूल इस प्रकार कार्य कर जो तुम्हारे स्वामी कौशाम्वी चले गये तो आगे के विषय में तुम्हारा क्या विचार है ?

यौग०—अरे यह तो वड़ी उपहास्यास्पद वात हुई।

मैं तो आप लोगों के सामने ही हूँ। अव शेष वातों के विपय में क्या सोच विचार करना है जव वृक्ष ही उखाड़ कर फेंक दिया गया तो शाखा काटने में कौन सा परिश्रम है ?

(कञ्चुकी प्रवेश कर)

कञ्चुकी—(कान में) इस प्रकार से।

भरतरोहकः—प्रकाशमुच्यताम् ।

काञ्चुकीयः—

कारणैर्बहुभिर्युक्तैः कामं नापकृतं त्वया ।
गुणेषु न तु मे द्वेषो भृङ्गारः प्रतिगृह्यताम् ॥ २१ ॥

यौगन्धरायणः—हा धिक् ।

यितुं श्रमः कुतः कथं भवेत् महाकार्यनिर्वाहिणो मम क्षुद्रकार्यसाधने नास्ति कोऽप्यायास इत्यर्थः ।

अन्वयः—त्वया कामम् बहुभिः युक्ते कारणैः मम न अपकृतम् । तु गणेषु मे द्वेषः । (अतः) भृङ्गारः प्रतिगृह्यताम् ।

व्याख्या—त्वया कामम् प्रकामं यथेष्टं वा बहुभिः कारणैः मम न अपकृतम् । बहुविधम् कपटं प्रयुक्तवतापि भवता अनेकैः कारणैः ममोपकार एव कामम् विहित इत्यर्थः । त्वया कृतं वत्सराजविमोचनम् कटकन्यायाः हरणं च सर्वं त्वदपकृतम् उपकारमेवाहं मन्ये इत्यर्थः ।

गुणेषु मम द्वेष न । गुणैकपक्षपातिनो वयमिति भावः । भृङ्गारः कनकरचितः पात्रविशेषः प्रतिगृह्यताम् उपानयनरूपतया स्वीक्रियताम् ।

भरतरोहक—स्पष्ट रूप से कहो ।

कञ्चुकीय—बहुविध उचित कारणों से मैं ऐसा समझता हूँ कि तुमने मेरा कुछ भी अपकार नहीं किया । मेरा तुम्हारे गुण से कोई भी विरोध नहीं है । अतः उपायन रूप में इस भङ्गार (स्वर्णरचित पात्र विशेष) को स्वीकार करो ।

यौग०—इस उपायन के लिये धिक्कार है ।

गृहा न निर्वान्ति मया प्रदीपिता-
स्तथैव तावद्धृदयानि मन्त्रिणाम् ।
इयं तु पूजा मम दण्डधारिणः
कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः ॥ २२ ॥

(नेपथ्ये हाहाकारः क्रियते)

भरतरोहकः—अये,

को नु खल्वेष सहसा प्रासादाग्राद् विनिःसृतः ।
श्येनपक्षाभिमृष्टानां कुररीणामिव ध्वनिः ॥ २३ ॥

अन्वयः—मया प्रदीपिता गृहा (अद्यापि) न निर्वान्ति तथैव मन्त्रिणाम् हृदयानि अपि तावत् (न निर्वान्ति)। दण्डधारिणः पूजा (तु न योग्या) हि कृतापराधस्य वधः (उचितः) सत्कृतिः न उचितः ।

व्याख्या—मया प्रदीपिताः साधुक्षिताः गृहा (अद्यापि) न निर्वान्ति न शाम्यन्ति । तथैव मन्त्रिणाम् महासेनामात्यानां हृदयानि तावन्न शाम्यन्ति । दण्डधारिणः आक्रामकस्य मम महासेनसकाशादियं पूजा उपहारप्रदानरूपा तु न योग्या नोचिता। हि यतः कृतापराधस्य अपराधिन पुरुषस्य वधः प्राणदण्डः उचितः सत्कृतिः सत्कारः पूजा वा नोचिता इति भावः ।

अन्वयः—श्येनपक्षाभिमृष्टानां कुररीणां ध्वनिः इव क एष (ध्वनिः)

मेरे द्वारा जलाये गये घरों की आग और मन्त्रियों के हृदय का सन्ताप अब तक बुझा नहीं है। मैंने जो इस प्रकार से आक्रमण किया हैं इसलिये महासेन द्वारा मेरी यह पूजा उचित नहीं। क्योंकि अपराधी का वध करना उचित होता है, पूजा नहीं।

(नेपथ्य में हाहाकार का शब्द होता है)

भरतरोहक—अरे यह क्या ?

बाज पक्षी के पङ्खों से कुचली गई कुररी पक्षी के समान यह सकरुण

भोः ! ज्ञायतां शब्दः ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) एषा तत्रभवत्यङ्गारवती शोकाभिभूतहृदया प्रासादाच्छरीरं विमोक्तुकामा महासेनेनाभिहिता यथा—क्षत्रधर्मेणोद्दिष्टस्ते दुहितुर्विवाहः । किमिदानीं हर्षकाले सन्तप्यसे तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्, इति । तत्र हि,

> स्त्रीजनेनाद्य सहसा प्रहर्षव्याकुलक्रमा ।
> क्रियते मङ्गलाकीर्णा सवाष्पा कौतुकक्रिया ॥ २४ ॥

प्रसादाग्रात् विनिःसृतः ।

व्याख्या—श्येनपक्षाभिमृष्टानाम् श्येनस्य पक्षिविशेषस्य पक्षैः पतत्रैः अभिमृष्टानाम् संमर्द्दितानाम् कुररीणाम् ध्वनि इव क एष ध्वनिः सहसा प्रासादाग्रात् प्रासादाग्रभागात् विनिःसृतः निर्गतः ।

अन्वय —स्त्री जनेन अद्य प्रहर्षव्याकुलक्रमा मङ्गलाकीर्णा सवाष्पा कौतुकक्रिया सहसा क्रियते ।

ध्वनि राजप्रासाद के अग्रभाग से सहसा क्यों होने लगी ?

अरे भाई ! इस शब्द का पता तो लगाओ ।

कञ्चुकीय—जैसी आर्य की आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश कर) रानी अङ्गारवती शोक से विह्वल होकर राजमहल के अग्रभाग से कूदकर अपना प्राणत्याग करना चाहती थी पर महासेन ने उन्हें समझाया कि तुम्हारी पुत्री वासवदत्ता का विवाह क्षात्रधर्म के अनुसार हो चुका है इसलिये चित्रफलकस्थ वत्सराज और वासवदत्ता दोनों का विवाह कर दो । इसीलिये—

आनन्दातिरेक से किंकर्त्तव्यमूढ़ स्त्रीवर्गों का समुदाय अश्रुपूरित नेत्रों के

यौगन्धरायणः—एवं सम्बन्धं मन्यते महासेनः। तेन ह्यानीयतां भृङ्गारः।

काञ्चुकीयः—गृह्यताम्। (उपनयति)

भरतरोहकः—भो यौगन्धरायण ! किं ते भूयः प्रियमुपहरति महासेनः।

यौगन्धरायणः—यदि मे महासेनः प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि।

(भरतवाक्यम्)

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥ २५॥

व्याख्या—स्त्रीजनेन योषितां वर्गेण अद्य इदानीम् प्रहर्षव्याकुलाक्रमा प्रहर्षेण आनन्दातिरेकेण सम्भिन्नः कर्त्तव्यतामूढो वा क्रमः यस्याः सा। मङ्गला-कीर्णा मङ्गलैः पुष्पचन्दनकुङ्कुमहरिद्रादिभिः मङ्गलद्रव्यैः आकीर्णा व्याप्ता सवाष्पा अश्रुपूरिता कौतुकक्रिया विवाहकुतूहलविधिः सहसा अतर्कितं क्रियते अनुष्ठीयते।

अन्वयः—गावः अरजसः भवन्तु परचक्रम् प्रशाम्यतु नः राजसिंह अपि इमाम् कृत्स्नां महीम् प्रशास्तु।

साथ-साथ हरिद्रादि द्रव्यों से परिपूर्ण उनदोनों के विवाह की विधि का अनुष्ठान सम्पन्न कर रहा है।

यौग०—अच्छा तो महासेन को भी यह सम्बन्ध स्वीकार है। अच्छा भृङ्गारक लाओ।

कञ्चुकीय—लीजिये (ले जाता है)

भरतरोहक—यौगन्धरायण ! अव महासेन तुम्हारा क्या प्रिय करें।

यौग०—यदि महासेन मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे अधिक मुझे क्या चाहिये।

(भरतवाक्यम्)

गायें सुखपूर्वक निवास करें। शत्रुओं की सेना एवं उनके द्वारा किया

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

इति प्रतिज्ञानाटिकावसिता ।

•

व्याख्या—गावः धेनवः अरजसः सुखिनो भवन्तु । परचक्रम् शत्रुसैन्यम् प्रशाम्यतु प्रशान्तो भवतु । नः राजसिंहः अपि इमाम् कृत्स्नां सम्पूर्णां महीं वसुन्धराम् प्रशास्तु शासनं करोतु ।

•

जाने वाला कपट व्यवहार शान्त हो जावे और हमारे राजसिंह इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का शासन करें ।

(सब चले जाते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

५ ४ ० २

इषुवेदाभ्रयुग्माब्दे वैक्रमीये सुवत्सरे ।
फाल्गुनस्यामले पक्षे तृतीया भृगुवासरे ॥
समाप्तिमगमट्टीका मयैषा विहिता यतः ।
प्रीत्यै भूयाद्भगवतो भवानीविश्वनाथयोः ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवार्पणमस्तु ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक सुभाषितानि

सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् ।। १-४

परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता ।
भूमिभर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति ।। १-९

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ।। १-१८

कन्याया वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।
भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ।। २-५

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिता खलु मातरः ।। २-६

व्यवहारेष्वसाव्यानां लोके वा प्रतिरज्यताम् ।
प्रभाते दृष्टदोषाणां वैरिणां रजनी भयम् ।। ३-३

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।। ४-२

□

भास की प्रशस्तियाँ

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्ट : हर्षचरित, १।१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौवन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेव : प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।
(कालिदास : मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाटचदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाटचशास्त्रपर अभिनवगुप्त की टीका)

※

परिशिष्टम्-१

नाटकीयविशिवस्तुष्टलक्षणानि

१. नान्दो—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादसभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥

नान्दो में देव-द्विजनृपादि की स्तुति होती है। यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है।

२. प्रस्तावना-आमुख—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥

सूत्रधार के साथ नट-नटी, पारिपार्श्विक नाटकीय कथानक के निर्देश से सम्बद्ध विचित्र कथनोपकथों को करते हैं तो यह आमुख होता है। उसी को प्रस्तावना भी कहते है।

३. सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः॥

तथा—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण—वस्तुनेता तथा रस-ये सूत्र कहे जाते हैं। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित करने—पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

४. प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

५. नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

६. विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। हय कथांश को संक्षिप्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर सङ्कीर्ण होता है।

७. प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषः विष्कम्भके यथा॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृत भाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अङ्कों के वीच में होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती है।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं।

९. प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात्।

जो बातें सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है।

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुवेषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि से हास्योत्पादक, कलह प्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है। उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं।

११. नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसंमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञा-कला-मान-युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी शास्त्र दृष्टि वाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार को होती है। यथा सम्भव यह नायक के गुणों से युक्त होती है।

१३. अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नानाविधानों से युक्त होता है। इससे अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

□

प्रतिज्ञायौगन्धरायणश्लोकानुक्रमणिका

	अं.	श्लो. सं.
अग्नि बद्ध्वा वत्स	४	११
अग्निः कक्ष इवो	२	,,
अदत्तेत्यागता	,,	६
अर्थशास्त्रगुण	,,	१३
अवसितनिज	४	,,
अस्मत्सम्बद्धो	२	८
अहः समुत्तीर्य	३	२
उन्मत्तच्छन्नवेषस्य	४	८
उन्मत्तसदृशो	१	१७
एतत् तन्न्यङ्गम्	,,	१०
एतानि तान्यपि	,,	१२
एवं रुधिर	४	१५
एष शोकप्रती	१	,,
कथमगणित	,,	११
कन्या	२	५
कामं या तस्य	,,	६.
कारणैर्बहुभिर्	४	२१
काष्ठादग्निर्जायते	१	१८
कुलं तावच्छ्लाघ्यं	२	४
को नु खल्वेष	४	२३
गृहा न निर्वान्ति	,,	२२
चिरमरिनगरे	,,	९
णेवच्छविसेस	३	१
दुर्वाङ्कुरस्तिमि	२	२

	अं.	श्लो. सं.
घण्णा सुराहि	४	१
नवं शरावं	,,	२
न श्रद्धाभ्युदय	२	९
निशित विमल	४	३
परचक्रैरना	१	९
परित्यजाम	३	५
पश्यन्तु मां नराः	४	६
पातु वासवदत्ता	१	१
पीनां सस्य विक्र	,,	८
पुरुषं प्रेष	,,	२
पूर्वं तावद् युद्ध	,,	१३
पूर्वं तावद् वैर	२	१४
भवतां चाग्रतो	४	२०
भवन्त्वरजसो	,,	२५
भारतानां कुले	,,	२७
मद्वाक्यै॰ परि	४	१२
मन्त्रित्वे वञ्चितो	४	१४
मम हयखुर	२	३
यथा नरस्थाकु	१	५
यदस्य चाज्ञां	४	१८
यदि तां चैव	३	९
यदि शत्रुबल	१	१६
या सा मल्लिक	४	,,
रिपुगतमपनीय	,,	५

	अं.	श्लो. सं.
रिपुनृपनगरे	१	१४
वैरं भयं परि	४	६
व्यक्तं न तावत्	२	१
व्यक्तं बलं	५	४
व्यवहारेष्वसाध्यानां	३	३
व्रीलितो वञ्चनो	१	७
शक्ता दर्शयितुं	३	५
शत्रुं पश्यन्तु	२	१०

	अं.	श्लो. सं.
श्रुतिसुखमधुरा	,,	१२
सुभद्रामिव	३	८
सेवाभिर्मनसा	,,	४
स्त्री जने नाद्य	४	२४
स्नातस्य यस्य	३	४
स्निग्धं च सौ	१	६
स्निग्धेष्वासज्यं	,,	३
हत्वा गजान्	४	४
हस्त प्राप्तो	,,	१९

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२९६

महाकविभासविरचितम्

स्वप्नवासवदत्तम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च

डॉ. गङ्गासागर रायः

सर्वभारतीय काशिराज न्यासस्थः

दुर्ग रामनगर, वाराणसी

Rastriya Sanskrit Samsthanam
Deemed University
Rajiv Gandhi Campus, Sringeri
LIBRARY
15142

चौखम्भा संस्कृत भवन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्रकाशक :
चौखम्भा संस्कृत भवन
संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल पुस्तकों के प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : +९१-५४२-२४२०४१४
टेलीफैक्स : +९१-५४२-२४००७५५
E-mail : c_sktbhawan@yahoo.com

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
© चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्करण : तृतीय, वि०सं० २०६६
मूल्य : रु० ७५.००

वितरक :
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)

मुद्रक : श्रीगोकुलेश प्रेस, वाराणसी, मित्तल आफसेट, वाराणसी

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
296

SVAPNAVĀSAVADATTAM

OF

BHĀSA

[*With 'Gangā Sanskrit' and 'Hindi' Commentaries, Introduction and Appendices*]

Edited and Commented
By
Dr. Ganga Sagar Rai, M.A., Ph.D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
VARANASI-221001 (INDIA)

Publisher

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Sanskrit, Ayurveda & Indological Publishers & Distributors

Post Box No. 1160

Chowk, Opp. Chitra Cinema, (Bank of Baroda Building)

Varanasi-221001 (India)

Telephone : +91-542-2420414

Telefax : +91-542-2400755

E-mail : c_sktbhawan@yahoo.com

Third Edition : 2009

© Chaukhambha Sanskrit Bhawan

All Rights Reserved

Distributor

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Post Box No. 1160

Chowk, (Opp. Chitra Cinema)

Varanasi-221001 (India)

Printed at : Sri Gokulesh Press, Varanasi, Mittal Offset, Varanasi

निवेदन

भासनाटकचक्र की टीका और भाषानुवाद शृङ्खला में 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं। यह भास का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक प्रचलित नाटक होने से भासनाटकचक्र का शीर्षस्थानीय रूपक है। आशा है कि भास के अन्य अवशिष्ट नाटकों की टीकायें भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर सकेंगे और तदुपरान्त भास के विषय में एक साङ्गोपाङ्ग परिचयात्मक अध्ययन भी दें सकेंगे। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे, परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता है। वे प्रकाशन के साथ ही संपूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणि मिश्र ने सहायता की है और मुद्रण संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थ इनका मैं अधमर्ण हूँ। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं, उनके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। टीका में जिन पूर्ववर्ती टीकाकारों से सहायता मिली है, उनके प्रति भी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसके प्रकाशन में चौखम्भा संस्कृत संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरञ्जीवि श्री राजेन्द्र जी ने जो तत्परता दिखाई है तथा धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय के प्रति धन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी
माघी पूर्णिमा २०५४ वि०
११ फरवरी, १९९८ ई०

गङ्गासागर राय

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक प्रसारित की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व चरम परिपाक होता है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत-साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियां

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्यमणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य के तञ्जौर पुस्तका-

लय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाशन में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाटक साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्न उल्लेख लिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभा पण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास को संस्कृत के य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैला कर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारि अन्दे अ अवन्दो।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविता कामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥

—प्रसन्नराघव १।२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्ति सुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तः मुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्य दर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः…… ……॥"

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक

के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है ।

(९) भोजदेव ने 'श्रृङ्गार प्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्तो पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः ।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनवभारती में किया है ।

'क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।'

—नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका ।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है ।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का विष्णु धर्म नाटक अभी तक अनुपलब्ध है ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के अन्तराल में समाविष्ट हुई तथा केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूव ये नाटक लुप्त हो गये थे ।

भास का जीवनवृत्त

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवनवृत्त आज तिमिराच्छन्न है । अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी । भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं । पठन-पाठन की तत्कालीन प्रचलित परिपाटी के अनुसार भास का ब्राह्मण होना भी स्वतः सिद्ध है । भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान उन्होंने बताया है । भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पति चरणानुगा-

मिनी पत्नी के पति एवं पितृभक्त सन्तान के प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—'धर्मो रक्षति रक्षितः' के वे अनुयायी थे।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।'

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धा सर्वयत्नाः फलन्ति॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्न-वासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्य्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—हमारे राजा ससागर उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्ण-कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज

संस्कृत-साहित्य के नाटय जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के

नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुल परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरञ्जक इन नाटकों का क्या ? सौमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त ही हैं। विद्वानों ने नाटकों के विलुप्त होने के कारणों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था। फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने विदेशी आक्रमणकारियों को देवनागरी लिपि में लिखित सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग दिया जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियां काल की चपेट में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो भास के नाटकों के हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियां भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ सुगम नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूत घटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्ण

भार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पत्र लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ से अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक की हस्त प्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति यहीं प्राप्त हो सकी।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्न लिखित हैं—

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायण	२. अविमारक	३. स्वप्नवासवदत्ता
४. प्रतिमा नाटक	५. मध्यम व्यायोग	६. पञ्चरात्र
७. अभिषेक	८. दूत वाक्य	९. दूत घटोत्कच
१०. कर्णभार	११. ऊरुभङ्ग	१२. बाल चरित
१३. चारुदत्त		

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया।

बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाशित भास के तेरह नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—उदयनवेन्दुसवर्णा।

—स्वप्नवासवदत्ता।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो····प्रतिज्ञायौ०।

इत्यादि।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत

वाक्य में राजसिंह राजा के सागर पर्यन्त एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसके हिमालय और विन्ध्य दो कुण्डल हैं।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

—स्वप्न० ६–१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा में नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता हैं।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभासित वाक्यों का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाट्य शास्त्र में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य' यहां निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—जब महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त वर होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्स-राज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये—श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर हैं।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पदों या वाक्यों को खण्डित या पूर्ण किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्र नामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिखायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए 'निवेद्यतां-निवेद्यतां महाराजाय।' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वतन्त्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"—अविमारक ४।२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि।"—बाल १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते"।—पञ्चरात्र १।२५

"हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते"—कर्ण० १७

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। भास के नाटकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० बी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज,

डा० बार्नेट–ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत नहीं मानते हैं।

तृतीय वर्ग—डॉ० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(अ) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल से प्राप्त होना।

(ब) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(स) रीति ग्रन्थों में 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(द) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्न-वासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इसी आधार पर चाक्यारों की रचना प्रामाणिक सिद्ध होती है।

चाक्यारों की रचना की अप्रामाणिकता ?

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजन शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो गई? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(अ) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता असिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल पुथल भी उसके अभाव

का कारण हो सकता है। इसके साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ब) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(स) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हो एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(द) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

कुछ लोगों का मत है कि पल्लव द्वितीय नरसिंह बर्मन या तेन मारन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि राजसिंह रखा था, अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसोटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राज सभाओं में रहता तो अपनी कृतियों अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख को परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्व

घोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्र वर्मन् आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटको की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में उल्लिखित मत प्रामाणिक रूप से लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि-परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक, चाक्यार, पल्लव नरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भास रचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भास कृत नहीं है। विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय

संस्कृत-साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय निर्धारण में विद्वानों में भी मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध

में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४००० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शदी में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास के नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ई० सन् चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं। इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मत की अप्रामाणिकता

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हों तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमा नाटक में अभिषेक

संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख हैं—अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, बंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने लङ्का, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है।

भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन मुख्यतः किया। अन्य स्थानों का वर्णन प्रकरणोपात्त है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

---

१. ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास' पृ० ६ यही मत डा० पुसालकर का भी है। द्र० भास : ए० स्टडी।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का संक्षिप्त कथानक

महाकवि भास के नाटकों में यह नाटक सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह छः अङ्कों में विभक्त है। घटना क्रम की दृष्टि से यह प्रतिज्ञायौगन्धरायण का परवर्ती भाग है तथा इसके कथानक का आधार वत्सराज उदयन का चरित्र है। नाटकीय कथावस्तु इस प्रकार है—

प्रथम अङ्क में मङ्गलाचरण के बाद सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है। वह सब की मंगल कामना करते हुए कहता है कि उदय कालीन चन्द्र के समान वर्ण वाले, मदिरा सेवन से निर्बल, कमल सदृश कोमल तथा वसन्त ऋतु के समान मनोहर बलराम की भुजाएं आप लोगों की रक्षा करें। उसी समय नेपथ्य में 'हटिये—हटिये, शब्द सुनाई पड़ता है। उस शब्द को सुन कर वह कहता है कि अच्छा मैं जान गया कि राजकुमारी पद्मावती का अनुसरण करने वाले मगधेश्वर के सेवकों से तपोवन में रह रहे सब लोग ढिठाई से हटाये जा रहे हैं। उसके पश्चात् तपोवन का दृश्य है। यौगन्धरायण परिव्राजक के वेष में तथा वासवदत्ता अवन्ति देश की स्त्री के वेष में दिखाई पड़ती हैं। मगध नरेश दर्शक की माता तपोवन में निवास कर रही हैं, उन्हीं से मिलने के लिए मगधेश्वर की बहन पद्मावती आ रही है। इसीलिए उसके संरक्षक लोगों को हटा कर मार्ग खाली करा रहे हैं। तपोवन में निःसारण की क्रिया को देख कर यौगन्धरायण को आश्चर्य होता है, वह सोचता है कि तपोवन में रहने वाले कन्दमूल फलों से सन्तुष्ट सम्मान के योग्य और वल्कल धारण करने वाले जनों को भी नगर के समान भयभीत किया जा रहा है। यौगन्धरायण से वासवदत्ता पूछती है कि कौन हटा रहा है? तब वह कहता है कि जो धर्म से अपने को हटा रहा है। वासवदत्ता पूछती है कि क्या मैं भी हटाई जाने वाली हूँ तब यौगन्धरायण कहता है कि इसी तरह अपरिचित देवता भी तिरस्कृत होते हैं। वासवदत्ता इस प्रकार के तिरस्कार भाव को देख कर खेद प्रकट कर रही है। परन्तु यौगन्धरायण उसे सान्त्वना देते हुए कहता है कि समय के क्रम से जगत् की परिवर्तनशील भाग्य पङ्क्ति पहिए के तीलियों के

समान ऊपर-नीचेचलती है। आपको इस प्रकार से चलना अभीष्टथा, फिर पति उदयन के अभ्युदय से श्लाघ्य रूप से उसी तरह गमन करेंगी। इसी समय मगधराज का काञ्चुकीय वहाँ आता है और भटों को निःसारण क्रिया से विरत करते हुए कहता है कि तपोवन में रहने वालों से कठोर वचन का प्रयोग मत करो, क्योंकि ये तपोवन वासी शहर में होने वाले तिरस्कारों को छोड़ने के लिए हीं तपोवन में आकर रहते हैं।

पद्मावती अपने सखियों और दासी के साथ आती है। वह तपोवन के तापसियों का अभिवादन तथा राजमाता का दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करती है। पद्मावती के रूप और यौवन को देख कर एक तापसी दासी से पूछती है कि ऐसी सुन्दर आकृति वाली को क्या कोई राजा वरण नहीं करता? दासी बतलाती है कि उज्जयिनी के प्रद्योत नामक राजा ने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है। पद्मावती तपोवन वासियों को दान देना चाहती है। उसकी आज्ञा से काञ्चुकीय घोषणा करता है कि किसे क्या अभीष्ट है? किसे कलश का प्रयोजन है? कौन तपस्वी वस्त्र चाहता है? अध्ययनार्थ व्रत को समाप्त करने वाला कौन सा स्नातक गुरु दक्षिणा देना चाहता है? जिसको जो वस्तु अभीष्ट हो उसे वह कहे। वहां के तपस्वियों में कोई भी याचना नहीं करता परन्तु यौगन्धरायण आगे बढ़ कर याचना करता है कि राजकुमारी कुछ समय तक मेरी बहन को अपने संरक्षण में रखें। इनके पति परदेश में गये हुए हैं। मुझे धन से काम नहीं है इसी तरह न भोगों से और न वस्त्रों से ही काम है, मैंने जीविकोपार्जन के लिए गेरुवा वस्त्र नहीं पहना है। 'विदुषी और धर्म प्रचार को देखने वाली यह राजकुमारी मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती है।' पद्मावती का परिचर पहले उस भार को वहन करने में उत्सुकता नहीं प्रकट करती बल्कि ढील प्रदर्शित करता है परन्तु पद्मावती अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर उसे अपने पास रखना स्वीकार कर लेती है। यौगन्धरायण वासवदत्ता को राजकुमारी पद्मावती को सौंपता है तथा वह मन में सोचता है कि आधा बोझ उतर गया। जैसा मन्त्रियों के साथ निश्चय किया था, वैसा ही परिणाम होगा। तब महाराज के फिर प्रतिष्ठित

सिंहासन पर आरुढ़ होने पर महारानी वासवदत्ता को सौंपने पर मेरी साक्षिणी ये मगध राजकुमारी पद्मावती होगी क्योंकि—जिन पुष्पक आदि सिद्धों ने पहले ही राजा उदयन की आने वाली विपत्ति को सूचित किया था। उसे हम लोगों ने प्रत्यक्षतः देख लिया। अब उन्होंने पद्मावती महाराज की महारानी होगीं ऐसा कहा है। उन्हीं वचनों के विश्वास से आज मैंने पद्मावती के हाथों वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखा। क्योंकि भाग्य परीक्षित सिद्ध जनों के वाक्यों का उल्लङ्घन नहीं करता, अर्थात् सिद्ध जन की वाणी मिथ्या नहीं होती है।

इसी समय एक ब्रह्मचारी आता है। वह आश्रम में प्रवेश करता है परन्तु तपस्वी जनों के अलावा स्त्रियों को देख कर आश्चर्य तथा सङ्कोच करता है। काञ्चुकीय उससे कहता है कि आप निर्भय प्रवेश करें क्योंकि आश्रम स्थान सब लोगों के लिए है। यौगन्धरायण ब्रह्मचारी से परिचय पूछता है कि आप कहाँ से आये है? कहाँ जाना है? और कहाँ रहते हैं? ब्रह्मचारी बतलाता है कि मैं राजगृह से आया हूँ। वेद का अध्ययन करने के लिए वत्सराज के राज्य में लावाणक नामक ग्राम है, वहां रहता था। यौगन्धरायण पूछता है कि अध्ययन के समाप्ति की पूर्व ही आप क्यों चले आये? ब्रह्मचारी बताता है कि वहाँ पर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी है। उस ग्राम में वत्सराज उदयन अपनी प्राण प्यारी पत्नी वासवदत्ता तथा अमात्यों के साथ ठहरे हुए थे। एक दिन जब वे शिकार खेलने के लिए निकले तब उनके आवास में आग लग गई। वत्सराज उदयन की पत्नी वासवदत्ता उसमें जल कर मर गई और उनको बचाने का प्रयास करते हुए मन्त्री यौगन्धरायण भी उसी आग में जल गया। जब राजा शिकार से लौटे तब उस वृत्तान्त को सुन कर महारानी और यौगन्धरायण के वियोग में सन्तप्त होकर उसी आग में प्राण छोड़ने की इच्छा से उद्यत हुए। तब मन्त्रियों ने बहुत यत्न पूर्वक उन्हें रोका। तब राजा वासवदत्ता के शरीर में पहने गये जलने से बचे आभूषणों का आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गये। यह कथन सुन कर अवन्तिका (वासवदत्ता) रो उठती है। ने यौगन्धरायण

कहता है कि मेरी बहन अवन्तिका स्वभाव से दयालु है इसलिए रो रही है। आगे ब्रह्मचारी बतलाता है कि राजा उदयन अपने पत्नी के वियोग में इतना अधिक शोक सन्तप्त हैं कि चकवा भी चकवी के वियोग में उतना दुःखित नहीं रहता है। वह स्त्री वासवदत्ता धन्य है जिसका पति उसे इतना असाधारण प्रेम करता है। पति के प्रेम से वह जलने पर भी नहीं जली है। यश: शरीर में से जीवित है। आगे वह कहता है कि राजा को सम्भालने के लिए उनके मन्त्री रुमण्वान कठोर परिश्रम कर रहे हैं क्योंकि भोजन करने में राजा के सदृश हैं, निरन्तर रोने से दुबले मुख वाले राजा के समान दुःख का अनुभव कर रहे हैं। शरीर में स्नान आदि संस्कारों को करते हुए, अनेक यत्नों से राजा की दिन-रात सेवा करते हैं। राजा प्राण छोड़ दें तो तत्क्षण उनकी भी मृत्यु हो जायेगी। राजा उस स्थान पर हमेशा विलाप-प्रलाप किया करते थे कि वासवदत्ता के साथ उस स्थान पर हसाँ, इस स्थान पर बातचीत की, यहाँ पर उनके साथ था, यहाँ पर उनके साथ सोया था, इसलिए मन्त्री लोग बड़े यत्न पूर्वक उस ग्राम से उन्हें लेकर चले गये राजा के चले जाने पर वह गाँव नक्षत्र और चन्द्रमा से रहित आकाश के समान सौन्दर्यहीन हो गया। तब मैं वहाँ से निकला हूँ। यह वृत्तान्त सुना कर ब्रह्मचारी चला जाता है योगन्धरायण भी राजकुमारी पद्मावती की आज्ञा लेकर चला जाता है।

द्वितीय अङ्क में पद्मावती और वासवदत्ता कन्दुक क्रीड़ा करती हुई दिखलाई पड़ती है। वासवदत्ता, पद्मावती के साथ हास-परिहास भी करती है, वह पद्मावती को महासेन की होने वाली बहू कहती है। वासवदत्ता बतलाती है कि उज्जयिनी के प्रद्योत नाम के राजा हैं। उनकी सेना के परिमाण से "महासेन" ऐसा नाम हुआ है। इसी समय चेटी कहती है कि राजकुमारी पद्मावती उसके साथ सम्बन्ध नहीं चाहती हैं यह गुणवान् तथा दयालु वत्सराज उदयन को चाहती हैं। वासवदत्ता मन में सोचती है कि इसी प्रकार मैं भी उन्मत्त हो गई थी। चेटी कहती है कि यदि राजा उदयन कुरूप हों तो? वासवदत्ता कहती है कि नहीं वे सुन्दर हैं। पद्मावती

वासवदत्ता से पूछती है कि आप कैसे जानती हैं कि वत्सराज उदयन सुन्दर है। वासवदत्ता कहती है कि उज्जयिनी के लोग ऐसा ही कहते हैं। उसी समय धात्री आती है और कहती है कि पद्मावती वत्सराज उदयन को दे दी गयी। अचानक इस प्रकार के समाचार को सुन कर वासवदत्ता के भावनाओं को आघात लगता है और सहसा यह कह देती है कि अच्छा नहीं हुआ, तत् क्षण अपने मनोवेगों पर काबू पा जाती है और जब धात्री पूछती है कि क्यों आप ऐसा कह रही है तो वह कहती है कि पहले वह अपने स्त्री के प्रति इतना आसक्त तथा उन्मत्त था, और अब विरक्त हो गया है। वासवदत्ता यह भी पूछती है कि क्या आर्यपुत्र ने स्वयं पद्मावती का वरण किया? धात्री बतलाती है कि नहीं वे किसी कार्यवश यहा आये थे, उनकी कला निपुणता, अवस्था और रूप को देख कर महाराज ने उन्हें पद्मावती को सौंपा। यह सुन कर वासवदत्ता मन में सोचती है कि आर्यपुत्र दोषी नहीं है। उसी समय एक चेटी आकर कहती है कि आर्या जल्दी करें आज ही मंगल मुहूर्त हैं। वासवदत्ता मन में सोचती है कि यह जैसे–जैसे जल्दबाजी करती हैं, वैसे–वैसे मेरे हृदय को अन्धा बना रही हैं। धात्री के साथ सभी चली जाती है।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में मानसिक द्वन्द्व में उलझी हुई चिन्तातुर वासवदत्ता दिखायी पड़ती है। वह मन ही मन अपने भाग्य तथा विधाता के विधान के सम्बन्ध में सोचती है। वह आज बहुत दुःखित है कि पतिदेव भी दूसरी के हो गये। मैं अभागिन आर्यपुत्र के देखने की अभिलाषा से अपने प्राणों को धारण किये हुए हूँ। मुझसे तो वह चकवी धन्य है जो परस्पर में बिछुड़ने पर नहीं जीती है। उसी समय फूलों को लिए हुए एक दासी आती है और कहती है कि आर्ये अवन्तिके, मैं बहुत समय से आप को ढूढ़ रही हूँ क्योंकि हमारी मालकिन ने कहा है कि आप महाकुल में उत्पन्न, स्निग्धा और निपुण हैं इसलिए आप इस विवाह की माला को गूँथे। वासवदत्ता मन में सोचती है कि देव कितना निष्ठुर है कि माला भी मुझे ही गूँथनी पड़ रही है। वासवदत्ता दासी से पूछती है कि तुमने दामाद (आर्य-

पुत्र) को देखा है ? वह कैसे हैं ? दासी बतलाती है कि ऐसा सुन्दर पुरुष मैंने पहले कभी नहीं देखा था, वे धनुष और बाण से रहित कामदेव के समान हैं। वासवदत्ता माला गूँथती है और उसमें लगने वाले जड़ियों के सम्बन्ध में दासी से पूछती है। एक जड़ी के सम्बन्ध में जब दासी बतलाती है कि यह सौभाग्य करने वाली है तो वासवदत्ता कहती है कि इसे मेरे तथा पद्मावती के लिए बार-बार गूँथना चाहिए, परन्तु जब दूसरी जड़ी के सम्बन्ध में दासी बतलाती है कि यह सौत का मर्दन करने वाली है तब वासवदत्ता कहती है कि इसे नहीं गूँथना चाहिए क्योंकि उसकी पत्नी मर गई हैं। उसी समय दूसरी दासी प्रवेश करती है और कहती है आर्या जल्दी करें। माला लेकर दोनों दासी चली जाती हैं। वासवदत्ता सोचती हैं आर्यपुत्र दूसरी के हो गये। शय्या पर लेट कर नींद आ जाती तो इस दुःख को कुछ भुलाती।

चतुर्थ अङ्क में प्रसन्नचित्त विदूषक रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ता है, वह उदयन के विवाह के सम्पन्न हो जाने की सूचना देता है। वह कहता है कि भाग्य से वत्सराज उदयन के अभीष्ट विवाह मङ्गल जो सुन्दर कार्य देख लिया। कौन जानता था कि राज्य अपहरण और वासवदत्ता दाह रूपी सङ्कट के भँवर में डूब कर फिर निकल आयेंगें। इस समय महल में रहते हैं, अन्तःपुर की वावलियों में स्नान करते हैं। मीठे और कोमल खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं। अप्सरा के सहवास से रहित देवभूमि विशेष के निवास को मैं भी अनुभव कर रहा हूँ। इसके अनन्तर पद्मावती और अवन्तिका वेश धारिणी वासवदत्ता शेफालिका गुच्छों का अवलोकन करने के लिए अन्तःपुर के वगीचे में आती हैं, उसके साथ में चेटी भी है। वासवदत्ता पद्मावती से पूछती है कि सखि ! आपको पति उदयन प्रिय हैं ? पद्मावती इस प्रश्न का उत्तर यह कह कर देती है कि आर्ये ! यह मैं नहीं जानती हूँ, परन्तु आर्यपुत्र के बिना उत्कण्ठित हो जाती हूँ। पद्मावती अवन्तिका वेश-धारणी वासवदत्ता से यह पूछती है कि जैसे मुझे आर्यपुत्र प्रिय हैं क्या उसी प्रकार वासवदत्ता को भी प्रिय हैं ? वासवदत्ता के मुख से स्वभावतः

यह निकल जाता है कि इससे भी अधिक प्रिय थे। पद्मावती तुरन्त पूछती है कि तुम्हें यह कैसे ज्ञात है ? वासवदत्ता कहती है कि यदि ऐसा न होता तो वह आत्मीय जनों को क्यों छोड़तीं ? वे इस प्रकार परस्पर वार्त्तालाप कर रहीं हैं उसी समय विदूषक के साथ उदयन वहां पहुँचते हैं। उसे देख कर पद्मावती तथा वासवदत्ता वासन्तीलता मण्डप में छिप जाती हैं। उदयन विदूषक के साथ वहीं शिलातल पर बैठ जाता है और वहां की छटा का अवलोकन करने लगता है। उसी समय विदूषक राजा से पूछता है कि आपको उस समय की महारानी वासवदत्ता तथा इस समय की पद्मावती इन दोनों में कौन ज्यादा प्रिय हैं ? पहले तो वत्सराज उदयन इस प्रश्न का उत्तर देने में आनाकानी करते हैं परन्तु जब विदूषक यह विश्वास दिलाता है कि आप निःसङ्कोच बताएं मैं किसी से नहीं कहूँगा; तब वत्सराज उदयन कहते हैं कि रूप, गुण, उत्तम चरित्र और प्रीति विशेष से पद्मावती मुझे बहुत अच्छी लगती है परन्तु वह वासवदत्ता में आकृष्ट मेरे मन को आकृष्ट नहीं कर पाती है। यह सुन कर वासवदत्ता को परम प्रीति होती है और मन ही मन कहती है कि आपने इस विरह रूप दुःख का पारितोषिक दे दिया और राजा की उदारता की पद्मावती भी प्रशंसा करती है। अब उदयन भी विदूषक से पूछता है कि तुम्हें अधिक प्रिय कौन है ? विदूषक कहता है कि वासवदत्ता मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। पद्मावती भी युवती, सुन्दरी, क्रोध और अहङ्कार न करने वाली मृदुभाषी और उदार हैं। यह भी दूसरा महान् गुण है। वासवदत्ता आर्य वसन्तक कहाँ गये ? ऐसा कह कर स्निग्ध भोज्य-पदार्थों से मुझे ढूंढ़ती थीं। राजा उदयन अनजाने में ही कहता है कि मैं वासवदत्ता से कहूँगा। विदूषक उसे बताता है कि वासवदत्ता का बहुत पहले ही स्वर्गवास हो गया। उदयन को सहसा वासवदत्ता के मृत्यु का स्मरण हो जाता है और वह उसके वियोग में रोने लगता है। विदूषक उदयन से कहता है कि आप अपने को सम्भालें। राजा उदयन कहते हैं कि तुम मेरी अवस्था को नहीं जानते क्योंकि—दृढ़ मूल वाला प्रेम छोड़ना कठिन है। बारम्बार याद करने से दुःख नया हो जाता है। परन्तु

यह लोक स्थिति है, जो कि यहाँ पर आँसू बहा कर चित्त प्रियजन के ऋण से उन्मुक्त होकर नैर्मल्य को प्राप्त होता है। विदूषक उदयन के आसुओं से आर्द्र मुख को धोने के लिए जल लेने चला जाता है, उसी समय उपयुक्त अवसर पाकर वासवदत्ता भी वहाँ से चली जाती है। पद्मावती अब उदयन के पास जाती है। उदयन बहाना बनाते हुए पद्मावती से कहता है कि शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान सफेद वायु से उड़ायें गये काश पुष्प के पराग से मेरे मुख में अश्रुपात हुआ है। राजा उदयन मन में सोचता है कि नव-विवाहिता यह युवती सच्ची बात सुन कर दुःखित होगी। यद्यपि यह बाला पूर्ण रूप से धैर्यवाली है परन्तु स्त्री स्वभाव से कातर होती है।

पञ्चम अङ्क में ज्ञात होता है कि पद्मावती शिर की वेदना से दुःखित हैं। यह समाचार पद्मिनिका मधुरिका से बताती है और मधुरिका इस समाचार को वासवदत्ता को बताने जाती है। जिससे आकर वह मनोहर कहानियों के द्वारा राजकुमारी पद्मावती की शिरोवेदना को दूर करेंगी। पद्मिनिका इस समाचार को उदयन से बतलाने जाती हैं, मार्ग में विदूषक मिल जाता है, वह विदूषक को बताती है कि इस समय राजकुमारी पद्मावती सिर की वेदना से व्यथित हैं आप इस समाचार को राजा से निवेदन करें। विदूषक जाकर यह समाचार उदयन से कहता है और समुद्र गृह में जल्दी चलने के लिए कहता है। उदयन कहता है कि सौन्दर्य-सम्पत्ति और गुणों से युक्त प्रिया पद्मावती को पाकर मेरा पूर्व शोक कम हुआ था, परन्तु इस समाचार को सुन कर दुःख का अनुभव कर रहा हूँ। उदयन समुद्र गृह में जाता है और वहां जाकर देखता है कि पद्मावती अभी वहां नही आई है। वह वहीं शैय्या पर लेट कर पद्मावतो की प्रतीक्षा करने लगता है और विदूषक उसे कहानी सुनाता है। कहानी सुनते-सुनते उसे नींद आ जाती है और विदूषक भी प्रवारक (चादर) लेने के लिए वहां से चला जाता है। उसी समय अवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता वहां पर आती है वह उदयन को सोता देख कर समझती है कि पद्मावती ही सोयी हैं और वह भी उसके पार्श्व में लेट जाती है। राजा उदयन स्वप्न में वासवदत्ता का नाम लेकर

पुकारने लगते हैं तब वासवदत्ता को पता लगता है कि यह पद्मावती नहीं बल्कि उदयन हैं। वह वह कुछ समय तक वहां पर रहती है और स्वप्नावस्था में उदयन द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर भी देती है और कोई देख न ले इस भय से वह वहां से चली जाती है। जाते समय वह वत्सराज उदयन की नीचे लटकती बांह को ऊपर उठा देती है। उसके जाते ही उदयन की नींद टूट जाती है और वह स्वप्नावस्था में ही उसका पीछा करता है परन्तु पार्श्व भाग से ठोकर लगने के कारण गिर जाता है। उसी समय वहां विदूषक आ जाता है उदयन उसे बताता है कि वासवदत्ता जीवित है। वह शैय्या पर सोये हुए मुझे जगाकर चली गयी, वासवदत्ता जल गई ऐसा कथन कह कर रुमण्वान् नामक मन्त्री ने मुझे ठगा है। विदूषक कहता है कि यह असम्भव है। आपने उन्हें स्वप्न में देखा है, उदयन कहता है कि यह स्वप्न है तो न जागना भाग्य की बात है अथवा यह भ्रान्ति है तो बहुत समय तक मुझे भ्रान्ति ही होती रहे। उनके इस प्रकार के वार्तालाप के समय मगधराज का काञ्चुकीय वहां पर आता है और कहता है कि आपके मन्त्री रुमण्वान् बड़े सेनासमूह के साथ आरुणि को मारने के लिए आए हुए हैं और मगधराज की सेना भी विजय के अङ्गभूत हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैन्य के साथ उन्हीं का अनुगमन कर रही है। इसलिए आप तैयार हो जाइये। राजा उदयन कहते हैं अच्छी बात है मैं अभी समुद्र के समान युद्ध में भयङ्कर कर्म में निपुण उस आरुणि शत्रु को मारता हूँ।

षष्ठ अङ्क में महासेन का काञ्चुकीय रैभ्य तथा महारानी अङ्गारवती से भेजी गई आर्या वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाय उदयन से मिलने के लिए आती है। प्रतीहारी के द्वारा यह भी सूचना मिलती है कि किसी व्यक्ति ने नर्मदा नदी के किनारे, कुशों की झाड़ी में घोषवती नामक वीणा पायी थी। जिसकी ध्वनि को सुन कर महाराज उस व्यक्ति के पास गये और उससे वीणा ले लिए, और उस वीणा को लेकर वासवदत्ता को याद कर विलाप कर रहे हैं। राजा उदयन विदूषक से बात करते समय भी बहुत दुःखित हैं वह कहते हैं कि बहुत समय से सोये हुए मेरे अभिलाषा को

वीणा ने जगा दिया। जिसे घोषवती वीणा प्रिय थी, उस महारानी वासवदत्ता को नहीं देख रहा हूँ। उसी समय प्रतीहारी आकर उदयन को यह बताता है कि महासेन के यहां रैभ्य नामक काञ्चुकीय तथा वसुन्धरा नामक धात्री आपसे मिलने के लिए आये हैं। उदयन पद्मावती के साथ उनसे मिलता है। महासेन की महिषी अङ्गारवती का सन्देश सुनाते हुए धात्री वसुन्धरा कहती है कि महारानी कहती हैं – 'मेरे और महासेन के लिए जैसे गोपाल और पालक हैं वैसे ही पहले ही सोचे गये आप दामाद हैं। इसलिए आप उज्जयिनी में लाये गये। आपको अग्नि के साक्ष्य बिना ही वीणा सिखाने के बहाने से कन्या दी गई। अपनी अधीरता के कारण विवाह संस्कार के पूर्व ही आप चले गये। तब हम लोगों ने चित्रफलक के द्वारा तुम दोनों की शादी कर दी। यह चित्रफलक आपके पास भेजा गया है, इसे देख कर आप धैर्य धारण करें। उस चित्र फलक को देख कर पद्मावती कहती है कि ऐसी आकृति वाली एक स्त्री मेरे यहां है जिसे एक ब्राह्मण ने अपनी बहन कह कर न्यास के रूप में मेरे यहां रखा था, उनके पति प्रवास में है इसलिए वह परपुरुष को नहीं देखती है। उदयन कहता है कि जब वह ब्राह्मण की बहन है तो निश्चित ही दूसरी स्त्री होगी क्योंकि संसार में परस्पर रूप की समानता देखी जाती है।

इसी समय अपना न्यास लौटाने ब्राह्मण (यौगन्धरायण) आ जाता है, वासवदत्ता वहां पर बुलायी जाती है, अवन्तिका नामधारिणी वासवदत्ता को देखते ही धात्री वसुन्धरा उसे पहचान जाती है और राजकुमारी वासवदत्ता कह कर सम्बोधित करती है। उसके बाद वासवदत्ता का घूंघट हटाया जाता है और सभी लोग उसे पहचान जाते हैं। वासवदत्ता को छिपाने के अपराध के कारण यौगन्धरायण महाराज उदयन के पैरों पर गिर कर अपराध क्षमा हेतु प्रार्थना करता है। राजा उदयन उसे उठाते हैं। पद्मावती भी वासवदत्ता के साथ सदाचार के व्यवहार का उल्लङ्घन करने के कारण उसके चरणों में गिर कर प्रणाम करती है। वासवदत्ता उसे उठा कर सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देती है और अपने को स्वयं

अपराधी कहती है। वत्सराज उदयन यौगन्धरायण से इस प्रपञ्च के रहस्य का कारण पूछते हैं, यौगन्धरायण बताता है कि—पुष्पक, भद्र आदि ज्योतिषियों ने कहा था कि "पद्मावती महाराज की रानी होगी" अतएव यह परिणय और मगधराज की सहायता से खोयो वत्सभूमि की प्राप्ति, दोनों ही कार्य सम्पन्न हो गये। यौगन्धरायण कहता है कि वासवदत्ता जीवित है यह सुसमाचार सुनाने के लिए काञ्चुकीय रैभ्य तथा धात्री वसुन्धरा को शीघ्र महासेन के पास लौट जाना चाहिए, परन्तु उदयन कहते हैं कि यह प्रिय संवाद सुनाने के लिए हम सभी लोग वासवदत्ता तथा पद्मावती के साथ चलेगें। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण

इस नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' राजा उदयन के द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन तथा वार्तालाप पर आधारित है। रूपक के दस भेदों 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक नामक भेद के अन्तर्गत आता है। नाटक में घटित किसी विशेष घटना के आधार पर ही नाटक का नाम होना चाहिए—

"नामकार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्।"

(साहित्यदर्पण, ६।१४८)

प्रस्तुत नाटक के पञ्चम अङ्क में उदयन को यह सूचना मिलती है कि पद्मावती शीर्ष वेदना से पीड़ित होकर समुद्र गृह में है। वह उससे मिलने के लिए समुद्र गृह में जाता हैं परन्तु पद्मावती को वहां न पाकर उदयन वहीं पद्मावती की शैय्या पर बैठ जाता है और थोड़ी देर बाद नींद आने पर उसी शैय्या पर सो जाता है। इसी समय पद्मावती से मिलने के लिए वासवदत्ता भी वहां पर आती है और वह चादर ओढे उदयन को सोया देख कर समझती है कि पद्मावती सोयी है इसलिए वासवदत्ता भी उसके पार्श्व में लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता और उससे बात करता है। वासवदत्ता उदयन को पहचान कर कुछ बात तो अवश्य करती

है परन्तु तुरन्त वहां से चली जाती है। राजा उदयन भी सहसा उठ कर उसके पीछे दौड़ता है परन्तु दरवाजे पर ठोकर लगने के कारण गिर जाता है। यह घटना बड़ी ही सरस, मार्मिक एवं हृदयावर्जक है।

महाकवि भास की उच्च कल्पना शक्ति प्रस्तुत नाटक में देखने को को मिलती है। एक व्यक्ति स्वप्नावस्था में बोल रहा है और दूसरा जाग्रत-अवस्था में उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहा है कवि ने पद्मावती के शीर्ष वेदना के माध्यम से उदयन तथा वासवदत्ता का मिलन कराया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार नाटक का नामकरण 'पद्मावती–परिणय' अथवा 'उदयनोदय' होना चाहिए। परन्तु सरसता, मञ्जुलता एवं कल्पना की को विलक्षणता स्वप्न दृश्य में ही है जो इस नाटक का प्राण है। इसलिए कहा जा सकवा है कि नाटक का प्रस्तुत नाम यथार्थ तथा सहृदयहृदयावर्जक होने से सार्थकता का प्रतिपादक है।

नाटक का आधार

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के समान 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कथा का आधार उदयन से सम्बन्धित लोक कथा है। कथा प्रसिद्ध यह है कि यौगन्धरायण ने उदयन को चक्रवर्ती सम्राट् बनाने के निमित्त वासवदत्ता दाह की झूठी अफवाह फैलाया और पद्मावती के साथ उदयन का परिणय करा दिया। परन्तु नाटककार महाकवि भास ने प्रचलित लोक–कथा में परिवर्तन किया है। नाटककार ने आरुणि से पदाक्रान्त कौशाम्बी की रक्षा के निमित्त वासवदत्ता–दाह की झूठी अफ़वाह का कथानक बनाया है। स्वप्न वाला दृश्य भी लोक कथा में प्रचलित नहीं है। इस प्रकार भास ने अपनी नवीनोद्भावना शक्ति के द्वारा प्रचलित लोक कथा को एक नया कलेवर प्रदान कर नाटक को स्थापित दिया है।

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

महाकवि भास पात्रों के चरित्राङ्कन में सिद्ध हस्त हैं। इनके नाटकीय

पात्र नाटक में भार स्वरूप न होकर नाटक कोजीवन्तता प्रदान करते हैं। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण द्रष्टव्य है—

उदयन

प्रस्तुत नाटक का नायक उदयन है। उसके चरित्र में अनुपम सौन्दर्य अद्वितीय कला, कोमल हृदय, अगाध प्रेम आदि गुणों का मञ्जुल समन्वय है। धीर ललित नायक के सभी गुण इसके चरित्र में विद्यमान है। साहित्य-दर्पणकार के अनुसार धीर ललित नायक—निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्'' होता है। ये सभी गुण उसमें हैं। उदयन के रूप की प्रशंसा सभी लोग समान रूप से करते हैं। द्वितीय अङ्क में वासवदत्ता उसे दर्शनीय कहती है—("दर्शनीय एव" द्वितीय अङ्क) उसके सौन्दर्य के सम्बन्ध में तो चेटी यहाँ तक कहती है कि इससे पहले मैं ऐसा पुरुष नहीं देखी थी—"आर्ये भाणामि तावत् नेदृशो दृष्टपूर्व" (तृतीय अङ्क) तथा उसे धनुष-बाण रहित कामदेव के समान कहती है—'शक्यं भणितुं शरचाप-हीन कामदेवः इति।' (तृतीय अङ्क)

उदयन वत्सदेश का राजा है। वह वीणा वादन में इतना निपुण है कि उसकी प्रसिद्ध सर्वत्र फैली हुई है। वह वासवदत्ता से इतना अधिक प्रेम करता है कि उसके जलने का समाचार सुनने पर अपने प्राणोत्सर्ग के लिए उद्यत हो जाता है परन्तु उसके मन्त्री उसे रोकते हैं—

"राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनित सन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामाऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।"

(प्रथम अङ्क)

उदयन के विरहावस्था का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी कहता है—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १।१२

अर्थात् इस समय राजा के समान (पत्नी के विरह दु:ख को सहने में असमर्थ) चकवे नहीं है। श्रेष्ठ स्त्रियों से बिछुड़े हुए और भी (राम आदि भी) वैसे (उदयन के समान) नहीं है । वह स्त्री धन्य है जिसे पति उस तरह असाधारण प्रेम करता हो । पति के प्रेम से वह जलने पर भी नहीं जली है, कीर्ति शरीर से जीवित है ।

उदयन के हृदय में पद्मावती के प्रति भी प्रेम है परन्तु वासवदत्ता की स्मृति उसे सदैव बनी रहती है । पद्मावती–परिणय के अनन्तर भी विदूषक के पूछने पर कहता है कि रूप–गुण से पद्मावती मुझे अच्छी लगती है परन्तु वासवदत्ता में आकृष्ट मेरे मन को वह आकृष्ट नहीं कर पा रही है । उदयन के हृदय की दुर्बलता पूरे नाटक में झलकती है वह वासवदत्ता के लिए हमेशा रोता–तड़पता है ।

उदयन के चरित्र में प्रशासनिक क्षमता की कमजोरी झलकती है । वह बार–बार शत्रुओं के आक्रमण से पराजित होता है, राज्य का सम्पूर्ण भार मन्त्रियों के ऊपर छोड़ देता है । इस प्रकार राजा का प्रेम में उन्मुक्त होकर कि कर्तव्यविमूढ़ होना उचित नहीं है ।

उदयन के चरित्र में इन कमजोरियों के होते भी शौर्य भाव दिखलायी पड़ता है । पञ्चम अङ्क में जब उसे यह सूचना मिलती है कि आपके मन्त्री रुमण्वान् ने आरुणि पर आक्रमण कर दिया है और उनकी सहायता के लिए मगध नरेश की सेना तैयार है तो वह भी उद्यत हो जाता है और कहता है—

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णं तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ ५।१२

अर्थात् हाथी और घोड़ों से पार किये गये और बिखरे हुए बाण रूप भयङ्कर तरङ्गों से भययुक्त महान् समुद्र के समान युद्ध में भयङ्कर कर्म में निपुण उस आरुणि नाम के शत्रु को मारता हूँ ।

वह बड़ों तथा गुरुजनों का सम्मान करता है । जब महासेन तथा

अङ्गारवती के यहां से आया ब्राह्मण एवं धात्री सन्देश सुनाते हैं तो वह 'क्या आज्ञा है' कह कर खड़ा हो जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उदयन के चरित्र में धीर ललित नायक के सभी गुण विद्यमान है परन्तु साथ ही उसे शौर्य तथा बड़ों के प्रति शिष्टाचार का गुण भी विद्यमान है।

वासवदत्ता

प्रस्तुत नाटक की नायिका वासवदत्ता है। उसके चरित्र मे उदारता, महत्ता, शील, संयम, धैर्य और प्रेम का सम्मिश्रण कूट-कूट कर भरा है। महाकवि भास ने वासवदत्ता के चरित्र-चित्रण के माध्यम से एक ऐसे भारतीय ललना का चित्रण किया है जो पतिव्रता रमणियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है। उसका सब कुछ पति पर ही अवलम्बित है, पति के सुख में ही अपना सुख तथा दुःख में अपना दुःख मानती हैं पति के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग देती है। उदयन के प्रेम में आसक्ति है परन्तु वासवदत्ता का प्रेम त्याग, बलिदान एवं कर्त्तव्य बोध पर आश्रित है। वह उदयन के हित के लिए यौगन्धरायण को योजना को स्वीकार कर कुछ समय के लिए उदयन से अलग हो जाती है। वासवदत्ता उज्जयिनी नरेश महासेन प्रद्योत की पुत्री बन्दी अवस्था में उदयन के रहते समय उसका परिचय हुआ और यही परिचय प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया, और प्रेम की अधीरता के कारण उदयन वासवदत्ता को लेकर पलायन कर जाता है जबकि महासेन दोनों को परिणय सूत्र में बांधने ही वाले थे।

वासवदत्ता गुण ग्राहिणी है वह दूसरे के गुणों की प्रशंसा दिल खोल कर करती है। वह पद्मावती के रूप की प्रशंसा करती हुई कहती है—

अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।'

पद्मावती के यहां रहती हुई भी वह हमेशा अपने शील का परिचय देती है, उदयन के साथ पद्मावती का विवाह हो जाने पर न तो वह अपने

पर नाराज होती है और न ही पद्मावती से सौतियाडाह या (ईर्ष्या) करती है। जब उदयन का पद्मावती से विवाह होता है और उस समय विवाह की माला को वासवदत्ता को गूँथना पड़ता है तब भी वह अपने धैर्यशीलता को न छोड़ कर माला गूंथती है तथा देवता को निर्दय कहती है—

अहो ! अकरुणा खल्वीश्वराः।

(तृतीय अङ्क)

वासददत्ता धीरा वर्ग की नायिका है। सदैव अपने पति उदयन की मङ्गल कामना करती रहती है, तथा पति परायण धर्म का पालन करते हुए सदैव पर पुरुष दर्शन का निषेध करती है। वह उदयन के मुख से अपनी प्रशंसा सुन कर फूले न समाती है। यह सब कुछ होते हुए भी 'आर्य-पुत्रोऽपि परकीयः संवृतः' का स्मरण रह-रह कर उसे खल जाता है, परन्तु विरहावस्था में कभी भी वह अपने कर्त्तव्य मार्ग से च्युत नहीं होती है।

पद्मावती

पद्मावती मगध नरेश दर्शक की बहन है। वह अत्यन्त सौन्दर्यशाली, उदार तथा विनम्र है। उसके रूप की प्रशंसा करती हुई वासवदत्ता कहती है—

"अभिजनानुरूपं खल्वस्था रूपम्।"

उदयन उसके रूप को प्रशंसा करते हुए कहता है—

"पद्मावती बहुमता मम रूप शील माधुर्यैः। ४।४

विदूषक तो उसमें सभी गुण देखता है। उसके शब्दों में तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कार, मधुर भाषिणी और उदार हैं—

"तत्र भवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया, (अकोपना) अनहङ्कारा, मधुर वाक् सदाक्षिण्या।"

(चतुर्थ अङ्क)

उसके मधुर वाणी की प्रशंसा करती हुई वासवदत्ता कहती है—

"नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा ।"

पद्मावती धर्मप्रिय, उदारमना तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागरूक रहने वाली है। वन में सभी के अभीष्ट को पूरा करने की घोषणा करती है। जब यौगन्धरायण वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखे जाने का प्रस्ताव रखता है और उस प्रस्ताव को स्वीकार करने में कञ्चुकी आना कानी करने लगता है तब अपने द्वारा की गई घोषणा को ध्यान में रखती हुई वह तुरन्त उसे स्वीकार कर लेती है। वह वासवदत्ता को माता-पिता के समान अपने संरक्षण में रखती है और उसके प्रति व्यवहार सहेलियों जैसा करती है। वह हमेशा ध्यान रखती है कि वासवदत्ता को कोई कष्ट न हो। वासवदत्ता परपुरुष दर्शन का वर्जन करती है जिसके कारण वह उदयन के पास नहीं जाती है। वह संवेदनशील भी है। जब ब्रह्मचारी उदयन की शोकावस्था तथा मूर्छा का वर्णन करता है तो वह दुःखी हो जाती है।

पद्मावती बुद्धिमती नारी है। जब विदूषक उदयन से पूछता है कि वासवदत्ता औरपद्मावती में कौन अधिक प्रिय हैं तो उदयन कहता है कि नहीं बताऊँगा, परन्तु जब विदूषक पुनः पूछता है तो वह कहता है कि यह इतने से भी नहीं समझा। उसमें दम्भ जरा भी नहीं है, बल्कि वह विनयशीलता की प्रति मूर्ति है। जब उसे ज्ञात होता है कि यह वासवदत्ता है तो वह उनके प्रति किये गये अपने पूर्व व्यवहारों के लिए क्षमा मांगते हुए पैरों पर गिर पड़ती हैं।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि उदयन की दोनों पत्नियां आदर्श गुणों वाली हैं।

यौगन्धरायण

यौगन्धरायण उदयन का मन्त्री है। वह राजनीतिज्ञ, विवेकशील, तथा

व्यवहार कुशल है। वह कर्त्तव्यनिष्ठता की देदीप्यमान मूर्ति है। सम्पूर्ण नाटक का घटनाक्रम उसी को धुरी मान कर चल रहा है। उसके चरित्र में राज्य-भक्ति तथा स्वामी की भक्ति का भाव भरा है। राज्य के प्रति उदासीन, विलासी तथा कलाप्रिय राजा उदयन का उत्कर्ष एवं मङ्गल-निष्पादन सरल कार्य नहीं हैं। परन्तु वह अपने बुद्धि-कौशल के द्वारा अपनी योजना में सफल होता है। वह केवल राजा की हां में हां मिलाने वाला नहीं बल्कि राजा के हित के निमित्त वासवदत्ता को अलग करने जैसा दुःसाहसिक कार्य भी कर बैठता है।

यौगन्धरायण बुद्धि-कौशल पूर्ण व्यक्ति है। उदयन को वासवदत्ता से अलग करना तथा पद्मावती के साथ उदयन का विवाह, मगध राज की सहायता से आरुणि द्वारा अपहृत अपने राज्य को वापस लेने आदि कार्य उसके बुद्धि-कौशल के ही परिचायक हैं। स्वामिभक्ति की भावना उसमें इतनी भरी हुई है कि ज्योतिषियों के मुख से उसने सुन रखा है कि पद्मावती उदयन की पत्नी होगी। इतने से ही वह उसे अपना मानने लगा है—

भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता।

जब खोयी हुई वत्स भूमि पर पुनः आधिपत्य कर लेता है और वास-वदत्ता भी मिल जाती है तो वह उदयन के पैरों पर गिर कर क्षमा याचना करता है। जब उदयन इस सारे प्रपञ्च का कारण पूछते हैं तो वह कहता है कि कौशाम्बी की रक्षा, अपहृत राज्य की प्राप्ति तथा पद्मावती का विवाह आदि ही कारण है। धन्य है उसकी स्वामिभक्ति।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यौगन्धरायण राज्य का अत्यन्त विश्वसनीय, कर्मठ, प्रकृष्ट बुद्धि सम्पन्न, कूटनीति में पटु, कर्त्तव्यनिष्ठ, राज्यभक्त तथा स्वामिभक्त सेवक आदि गुणों से युक्त आदर्श अमात्य है।

विदूषक (वसन्तक)

विदूषक वत्सराज उदयन का मित्र है। यह नटखट, विनोदी, अल्पज्ञ तथा भोजनभट्ट है। उसे अपने भोजन का हमेशा ध्यान रहता है। वह

उदयन से कहता है कि स्निग्ध भोज्य पदार्थों के द्वारा वासवदत्ता मुझे ढूंढती थी—

"स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद् गच्छति वासवदत्ता कुत्र न खलु गत आर्य वसन्तक इति।"

मगध राज के यहां सुन्दर-सुन्दर खाद्य पदार्थों को खाने से वह बीमार पड़ जाता है।

विदूषक का ज्ञान कम है तथा उसकी स्मरण शक्ति भी कमजोर है। समुद्र गृह में वह उदयन को कहानी तो सुनाना प्रारम्भ करता है परन्तु उसे यह पता नहीं कि ब्रह्मदत्त नाम नगर का है या व्यक्ति का। दूसरों के प्रेम को समझना तथा उसे बढ़ावा देना तो उसे आता है।

समीक्षण

महाकवि भास के द्वारा विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' उनकी नाट्य कला की सर्वोत्तम परिणति है। नाटकीय संविधान, कथोपकथन, उनका पात्रों का सजीव चित्रण तथा चरित्राङ्कन, प्राकृतिक वर्णन, भाषा-शैली, रसोन्मेष आदि सभी दृष्टियों से यह नाटक पूर्ण सफल है। नाटक में स्वप्न वाला दृश्य तो नाटक का प्राण ही है। उस दृश्य को देख कर दर्शक भास के व्यक्तित्व एवं उच्च कल्पना शक्ति तथा कला कौशल से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। धीर ललित नायक उदयन यदि प्रेम के प्रति आत्यन्तिक समर्पण का प्रतीक बन कर सहृदय-हृदय को आकृष्ट करता है तो उसी प्रेम की बलिवेदी पर न्योछावर होने वाली वासवदत्ता त्याग एवं तपस्या का उदाहरण प्रस्तुत करती है। एक तरफ नीतिज्ञ यौगन्धरायण अपने बुद्धि कौशल के द्वारा लोगों को आश्चर्य चकित करता है तो दूसरी ओर पद्मावती अपने सहजता से लोगों को प्रभावित करती है। यह भास की चरित्र-चित्रण निपुणता का उत्कृष्ट निदर्शन है।

महाकवि भास भावुक कवि हैं। उनके लघु विस्तारी वाक्यों में जितना

सरस पद-विन्यास प्रभावित करता है, उतने ही भाव भी रसाप्लावित करते हैं। मानवहृदय की भाव दशाओं का चित्रण करने में महाकवि भास सिद्ध हस्त है। वे विरह व्याकुल उदयन की मनोव्यथा का वर्णन ब्रह्मचारी के मुख से करवाते हैं। देखिए—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १।१२

अर्थात्—

इस समय राजा के समान दुःखित चकवे भी नहीं है। श्रेष्ठ स्त्रियों से बिछुड़े हुए (राम आदि भी) उदयन के समान नहीं हैं। वह स्त्री धन्य है जिसे पति इस तरह प्रेम करता है। वह स्त्री जलने पर भी नहीं जली, अपने कीर्ति रूप से जीवित है।

इसी प्रकार का मार्मिक वर्णन उदयन स्वयं करता है। जब उसे घोषवती नामक वीणा मिल जाती है तब उसे वासवदत्ता का वियोग असह्य जान पड़ने लगता है। वह वीणा को उलाहना देते तथा अपनी मर्म दना व्यक्त करते हुए कहता है कि—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ ६।१

तथा—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ।। ६।२

तथा—

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ।। ६।३

अर्थात्

बहुत समय से सोये हुए मेरी अभिलाषा को वीणा ने जगा दिया। जिसे घोषवती वीणा प्रिय थी उस महारानी वासवदत्ता को नहीं देख रहा हूँ।

भास ने नाटक में प्राकृतिक दृश्यों का भी बड़े ही सुन्दर, सजीव हृदयावर्जक एवं मनोहारी ढंग से वर्णन किया गया है। तपोवन का वर्णन द्रष्टव्य है—

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ।। १।१२

अर्थात्—

अपने स्थान के विश्वास से निर्भय मृग विश्वस्त होकर चर रहे हैं। सभी वृक्ष फूल और फलों से समृद्ध शाखाओं से युक्त होकर दया से रक्षित हैं। कपिला गायें बहुत दिखाई पड़ रहीं है। दिशाएं भी खेत वाली नहीं हैं अर्थात् चतुर्दिक् वन्य प्रदेश ही है। धूआं चारों तरफ बहुत फैला हुआ है, इसलिए निश्चय ही यह तपोवन है।

सन्ध्याकाल का वर्णन देखिए—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ।। १।१६

अर्थात्—

पक्षिगण घोसलों में चले गये हैं। तपस्विगण स्नानार्थं जल में प्रविष्ट हो गये हैं। प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है। धुआँ जंगल में फैल रहा है। दूर से गिरे हुए ये सूर्य भी किरणों को इकट्ठा कर रथ को मोड़ कर धीरे-धीरे अस्त पर्वत की चोटी में प्रवेश कर रहे हैं।

नाटक में छन्दों तथा अलङ्कारों का प्रयोग भी समुचित रूप में हुआ है। पात्रों का संवाद भी नाटक में भार स्वरूप न होकर कथानक की जीवंतता को बनाये रखता है। नाटक में प्रयुक्त छोटे-छोटे संवाद-वाक्य भी नाटक की अभिनेयता में वृद्धि करते हैं। नाटक में सर्वत्र सूक्तियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। ये सूक्तियां इतनी हृदयग्राही, मार्मिक एवं सार्वभौम हैं कि पाठक के हृदय पर बरवस अपना स्थान बना लेती हैं। नाटक का प्रधान रस शृङ्गार है। उदयन और वासवदत्ता की दृष्टि से विप्रलम्भ शृङ्गार का ही प्राधान्य है। शृङ्गार के अतिरिक्त उत्साह तथा शिष्ट हास्य भी दिखलाई पड़ता है। मनुष्य की विभिन्न मनोदशाओं-चिन्ता, स्मृति, शङ्का, सम्भ्रम आदि का भी वर्णन प्रशस्त रूप से हुआ है। भाषा सरल तथा प्रवाहमयी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाकवि भास का यह नाटक नाट्य कला की सभी दृष्टियों से सफल है तथा संस्कृत नाट्य जगत् का एक शिखर स्थानीय रत्न है।

स्वप्नवासवदत्ते पात्राणि

पुरुष-पात्र

राजा—वत्सदेश का राजा उदयन ।
यौगन्धरायण—उदयन का मुख्यमन्त्री ।
रुमण्वान्—उदयन का दूसरा मन्त्री ।
विदूषक—वसन्तक नामक उदयन का मित्र ।
ब्रह्मचारी—लावाणक ग्राम का निवासी छात्र ।
प्र० काञ्चुकीय—मगध के राजप्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।
द्वि० काञ्चुकीय—उज्जयिनी के राज प्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।
सम्भाषक, भट—पद्मावती के भृत्य ।

स्त्री-पात्र

वासवदत्ता—उदयन की प्रथम पत्नी, गुप्त वेश में यही अवन्तिका है ।
पद्मावती—मगधराज दर्शक की बहन, उदयन की द्वितीय पत्नी ।
तापसी—मगधराज के तपोवन में रहने वाली तपस्विनी ।
अङ्गारवती—प्रद्योत की रानी, वासवदत्ता की माता ।
मधुकरिका—पद्मावती की सखी एवं परिचारिका ।
पद्मिनिका— ,, ,, ,,
धात्री—पद्मावती की उपमाता ।
वसुन्धरा—वासवदत्ता की उपमाता (धात्री) ।
विजया—वत्सराज की प्रतिहारी ।

भास की प्रशस्तियां

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्टः हर्षचरित, ११२)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ वन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हरिश्चन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेव : प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकिपुत्रादीनां प्रबन्धान-
तिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ
बहुमानः ।
(कालिदासः मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिला
तलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाट्यदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका)

श्लोकानुक्रमणिका

पद्य	अं० श्लो०
अनाहारे	१ १४
अनेन परिहासेन	४ ५
अस्य स्निग्धस्य	६-१३
अहमवजितः	६.८
इमां सागर	६-१९
इयं बाला	४ ८
उदयं	१ १
उपेत्य नागेन्द्र	५-१३
ऋज्वायतो च	४.२
ऋज्वायतां हि	५ ३
कः कं शक्तो	६-१०
कस्यार्थः	१ ८
कातराः	६ ७
कामेनोज्जयिनीम्	४ १
कार्यं नैवार्थैर्	१.९
किं नु सत्य	६.१७
किं वक्ष्यतीति	६.४
खगा वासोपेताः	१.१२
गुणानाम्	४-९
चिरप्रसुप्तः	६-३
तीर्थोदकानि	१.६
दुःखं त्यक्तुं	४.६
धीरस्याश्रम	१-३

पद्य	अं० श्लो०
निष्क्रामन्	५-७
नैवेदानीम्	१.१३
पद्मावती नर	१ ११
पद्मावती बहु	४-४
परिहरतु भवान्	१-५
पूर्वं त्वयाप्युप	१ ४
पृथिव्याम्	६.६
प्रच्छाद्य राज	६-१५
प्रद्वेषो बहु	१-७
बहुशोऽप्युप	५ ६
भारतानाम्	६.१६
भिन्नास्ते	५-१२
भृत्यैर्मगध	१.२
मधुमदकला	४.३
महासेनस्य	६-११
मिथ्योन्मादैश्च	६ १८
यदि तावदयम्	५-९
यदि विप्रस्य	६ १४
योऽयम्	५-११
रूपश्रिया	५ २
वाक्यमेतद्	६ १२
विस्रब्धम्	१-१२

पद्य	अं० श्लो०	पद्य	अं० श्लो०
शय्या नाऽवनता	५ ४	षोडशान्तःपुर	६-९
शय्यायामवं	५ ८	सम्बन्धि	६ ५
शरच्छशाङ्क	४·७	सविभ्रमो ह्ययम्	१-१५
श्रुतिसुख	६·१	सुखमर्थो भवेत्	१·१०
श्रोणीसमुद्वहन	६·२	स्मराम्यवन्त्याधिपते	५ ५
श्लाघ्या भवन्ति	५-१	स्वप्नस्यान्ते	५ १०

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

'गङ्गा' संस्कृत हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

नमो मङ्गलरूपाय प्रत्यूहव्यूहभेदिने ।
हेरम्बायैकदन्ताय भवानीसूनवे नमः ॥ १ ॥
स्वप्नवासवदत्तायाः भासनाम्नो महाकवेः ।
रचितायाः नवा टीका गङ्गानाम्नी विधीयते ॥ २ ॥

अथ तत्र कविकुलकीर्त्तिप्रकाशकरो महाकविर्भासः लोकानुरञ्जनाय 'वासवदत्ताख्यं' नाटकमारभमाणः स्थापनामुपस्थापयति नान्द्यन्ते तत इत्यादिना । तत्र तावन्नाटकं नाम—

'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्ध्यादिगुणवधुक्तं नानाविभूतिभिः ॥ १ ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः ।

(नाटक में होनें वाले मङ्गलाचरण (नान्दी) के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—तत्काल उदय होते हुये चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त,

इत्यादिसाहित्यदर्पणोक्तलक्षणलक्षितं ज्ञेयम् । प्रारम्भे हि विघ्न-विघातैकप्रयोजनं मङ्गलं नितरामावश्यकं नाटकीयरचनानियमप्राप्तं च कर्त्तव्यमुद्दिशन् कविर्नान्दीं सूचयति तत्र का नाम नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

नन्दयति हर्षयति देवानिति नान्दी सा च स्तुतिरूपेत्यर्थः । तस्या अन्ते अवसाने नान्दीविधानानन्तरमित्यर्थः । नान्द्यां च नेपथ्ये एवावसितायां ततः तस्मात्स्थलात् नेपथ्यादिति यावत् अथवा ततो नान्दीविधानानन्तराव्यवहितो-त्तरकाल इति । तसिल्प्रत्ययस्य सार्वविभक्तिकत्वात् सप्तम्याश्रयणम् । कस्यात्र प्रवेश इत्याकाङ्क्षायामाह सूत्रधार इति सूत्रधारः प्रधाननटः । सूत्रं नाटक-बीजं तद् धारयति वहति उपन्यस्यतीति व्याख्यानात् । तल्लक्षणं यथा—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात्सबीजकम् । रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इहोदितः ॥ इति सूत्रयेद्वस्तु बीजं वा इत्युक्तदिशा प्रधानपात्रम् । तत्र मङ्गलं निबध्नन् ग्रन्थर्निर्विघ्नसमाप्तिकामः कविः पादविन्यासकौशलेन सूत्रधारद्वारा पात्रोपक्षेपरूपं वस्त्वंशनिर्देशात्मकं मङ्गलं समाचरति उदयेति—

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्ताबलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ बलस्य भुजौ त्वाम् पाताम् ॥ १ ॥

व्याख्या—उदयनवेति–उदयनवेन्दुसवर्णौ उदये उदयकाले यो नवो नूतनः बाल इति यावत् इन्दुः चन्द्रः तेन समानौ सदृशौ वर्णौ ययोस्तौ, आसवदत्ता-बलौ आसवेन मद्येन दत्तम् उत्पादितं अबलं बलाभावो अलसता याभ्यामेवं भूतौ मद्यपानजनितशैथिल्यभाजौ पद्मावतीर्णपूर्णौ पद्मस्य कमलस्य अवतीर्ण-मवतारः तेन पूर्णौ, वसन्तकम्रौ वसन्त इव कम्रौ मनोहरौ वसन्त इव

मदिरापान से शिथिलता को प्राप्त, कमल के समान कोमल तथा वसन्त ऋतु के सदृश सौन्दर्यपूर्ण बलराम की भुजायें आप सभी सामाजिक जनों की रक्षा करें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापन-व्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

शोभाकरावित्यर्थः । बलस्य बलरामस्य भुजौ बाहू त्वाम् सामाजिकवर्गम् पाताम् रक्षताम् ॥ १ ॥

अत्र कवेः पदरचनाचातुर्यविधया उदयनवासवदत्ता-पद्मावती-वसन्तकानां मुख्यपात्राणां सूचना दत्ता । मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—

सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ।

आर्याच्छन्दः तल्लक्षणं यथा—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या । इति

इदानीं सूत्रधारः प्रधानपात्रनामधेयसूचनसहचरितं मङ्गलं निबध्य प्रकृत-नाटकीयवस्तुसूचनोपक्रमं प्रतिजानान आह—एवमिति—आर्यमिश्रान् कुलशीला-चार्यगुणसम्पन्नान् सामाजिकान् । एवम् इत्थं निवेदयामि विज्ञापयामि । नाटकावलोकनकौतूहलेन समुपस्थितानां सामाजिकानां हृदयमभिधास्यमान-विषयानुरञ्जयामीत्यर्थः । तदानीमेव नेपथ्ये कमपि शब्दविशेषमनुनिशम्य तदर्थं जानन्नपि अज्ञानमभिनयति अये इति आश्चर्याभिधानसूचकमव्ययपद-मिदम् । किन्नु खलु किं कारणम् किं नामेदं वा । मयि सूत्रधारे विज्ञापनव्यग्रे निवेदनोन्मुखे । सामाजिकान् प्रति कथावस्तुविज्ञापयितुं मनसि कृतविचारे सतीत्यर्थः । शब्द इव श्रूयते कुतोऽपि कोऽपि ध्वनिरिवाकर्ण्यते । अङ्ग भोः पश्यामि जानामि दृशेर्ज्ञानार्थकत्वादयमर्थः । कुतः कीदृशोऽयं शब्द इति निश्चिनोमीत्यर्थः ।

आप सभी सामाजिक सज्जनों से मैं निवेदन करता हूँ । अरे ! यह मेरे निवेदन करने के लिए उद्यत होते ही यह शब्द जैसा सुनाई पड़ रहा है । अच्छा इसका पता लगाता हूँ ।

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २ ॥

नेपथ्ये शब्दाकाग्माह—उत्सरतेत्यादि—नेपथ्ये वेशपरिवर्त्तनस्थाने आर्याः श्रेष्ठाः उत्सरत अपसरत अस्मात्स्थानादिति शेषः । मध्येमार्गं भवद्भिः न स्थातव्यमित्युत्सारणकारणम् । तदेवाह भवतु विज्ञातमिति—

अन्वयः—स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः मगधराजस्य भृत्यैः तपोवनगतः सर्वः जनः धृष्टम् उत्सार्यते ॥ २ ॥

व्याख्या—भृत्यैरिति—स्निग्धैः स्नेहपूर्णैः आप्तैर्विश्वस्तैरित्यर्थः । कन्यानुगामिभिः कन्यायाः पद्मावत्याः कुमार्याः अनुगामिनः अनुचराः तैः । मगधराजस्य मगधदेशाधीश्वरस्य भृत्यैः सेवकैः भटैरिति यावत् तपोवनगतः तपोवने आश्रमे गतः प्राप्तः सर्वः निखिलः बालवृद्धादिः जनः मानवः धृष्टम् निःशङ्कं यथा स्यात्तथा उत्सार्यते दूरीक्रियते मध्यमार्गादिति शेषः ॥ २ ॥

उत्सारणायां धृष्टत्वकारणम् प्रभुनिवेशवर्त्तित्वमस्वातन्त्र्यं च भटानाम् । पद्मावतीसौकर्यपूर्वकप्रवेशार्थमुत्सारणं भटैः क्रियमाणं युज्यते तदर्थमेवायं शब्दः श्रूयमाणोऽस्तीत्याशयः सूत्रधारस्य । अनुष्टुप् वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।

हटिये हटिये महाशयगण ! हटिये ।

सूत्रधार—अच्छा मालूम हो गया । राजकुमारी पद्मावती के अनुसरण करने वाले मगधेश्वर के स्नेहयुक्त सेवक तपोवन में रहने वाले सभी लोगों को धृष्टतापूर्वक हटा रहे हैं ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(प्रविश्य)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः । उत्सरत ।]

निष्क्रान्त इति–भाविनं पात्रप्रवेशं संसूच्य सूत्रधारो रङ्गस्थलान्निर्गतोऽभूदिति भावः ।

स्थापनेति–प्रारप्स्यमानस्य कथावस्तुनः स्थापनात् प्रस्तावनापरपर्याया स्थापनेत्यभिधीयते । सा प्रस्तावनापरपर्याया । आमुखमपि एतस्या नामान्तरम् । तल्लक्षणं यथा—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥ १ ॥
चित्रैः वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥ २ ॥

अन्यत्रापि—

विधेयेंथैव संकल्पो मुखतां प्रतिपद्यते ।
प्रधानस्य प्रबन्धस्य तथा प्रस्तावना मता ॥ २ ॥

उत्सारणं कुर्वतो भटद्वयस्य प्रवेशं प्रतिपादयति—प्रविश्येति भटौ योद्धारौ ।

(सूत्रधार जाता है)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

(दो सिपाहियों का प्रवेश)

दोनों सिपाही—हटो ! हटो ! भाइयो ! हटो ।

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण आवन्तिका-
वेषधारिणी वासवदत्ता च)

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।

तत इति–उत्सारणवाक्यानन्तरम् । परिव्राजकवेषः परिव्राजकस्येव वेषो यस्य सः काषायवस्त्रधारिसंन्यासिसदृशवेषवानित्यर्थः । अवन्तिकावेषधारिणी अवन्तीदेशोद्भवया स्त्रिया सदृशं वेषं गृहीतवतीत्यर्थः । वासवदत्ता तन्नाम्नी प्रद्योतकन्या उदयनमहिषी प्रविशति ।

कर्णं दत्वेति–कर्णं शब्दानुसारिदिशोऽभिमुखं कृत्वा अवहितः सन्नित्यर्थः । पुनस्तच्छब्दश्रवणमभिनीयाह—कथमिति । हन्त शान्तेऽस्मिन्नाश्रमपदे तपस्विनामुत्सारणमनुचितमिति भावः ।

अन्वयः—धीरस्य आश्रमसंश्रितस्य वसतः वन्यैः फलैः तुष्टस्य मानार्हस्य वल्कलवतः जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते । भोः उत्सिक्तः विनयात् अपेत् पुरुषः चलैः भाग्यैः विस्मितः अयं कः निभृतम् इदं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ॥ ३ ॥

व्याख्या—धीरस्येति–धीरस्य गम्भीरस्य स्थिरचित्तस्य इन्द्रियसुखोपभोगरहितस्य आश्रमसंश्रितस्य आश्रमं तपोवनम् संश्रितस्य वसतः निवासं कुर्वतः वन्यैः अरण्यैः फलैः कन्दमूलादिभिरपीति शेषः तुष्टस्य सन्तुष्टस्य मानार्हस्य मानं सत्कारं तदर्हस्य तद्योग्यस्यादरणीयस्य वल्कलवतः वल्कलमस्यास्तीति वल्कलवान् तस्य वृक्षत्वक्परिवसानस्य जनस्य तापसलोकस्य

(तभी साधु वेषधारी यौगन्धरायण एवम् अवन्ती देश की
स्त्री का वेशधारण करने वाली वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(कान लगा कर) अरे क्यों ? यहाँ भी हटाया जा रहा है ?

आश्रम निवासी वन में कन्दमूल फलों से सन्तुष्ट, सम्मान के

उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

त्रासः कष्टम् समुत्पाद्यते उद्भाव्यते । भोः हे भटाः ! उत्सिक्तः गर्वितः विनयात् नम्रतायाः अपेतपुरुषः हीनो जनः समुद्धतभृत्यः चलैः चञ्चलैः अस्थिरैः परिवर्त्तिभिरित्यर्थः भाग्यैः ऐश्वर्यशालित्वरूपैः विस्मितः वि-विशेषेण स्मितः गर्वितः अयं कः को नाम प्रभुः निभृतम् शान्तम् इदं तपोवनम् तापसाश्रमम् आज्ञया आदेशेन ग्रामीकरोति अग्रामं ग्रामं करोतीति ग्रामीकरोति ग्रामरूपतां सम्पादयतीत्यर्थः । एष तु किं प्रभुः यः साम्प्रतमैश्वर्यमदेन आत्मानं विस्मृत्य मदान्धः सन्नस्मिन् सुशान्ते आश्रमपदे तपस्विनामुत्सारणरूपामनुचितामाज्ञां सम्पाद्याश्रमं दूषयतीति भावः । शार्दूलविक्रीडितंछन्दः । तल्लक्षणं यथा-सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३ ॥

तपस्विनामुत्सारणमनुचितं मन्यमाना तत्सोढुमशक्नुवती वासवदत्ता तादृशः पुरुषः कः इति जिज्ञासया वदति आर्य इति भवति पूज्ये । आत्मानम् स्वम् । य इति तपस्विनामुत्सारणं धर्मविरुद्धं कार्यमत एतादृशानुचितकार्यकारी पुरुषः धर्मादात्मानं पातयतीत्यर्थः । तादृशोद्योगस्य पापफलकत्वात् । वक्तुकामा वक्तुं कामो यस्या सा वक्तुमभिलाषिणी नास्मि । धर्मात्प्रच्युतस्तादृशोत्सारणकारीति मदीयकथनस्य नायमभिप्रायः । किन्तु अयम् कदाचित्मानपि नोत्सारयेदिति शङ्कयैव कथयामीति भावः । भवतीति-अनिर्ज्ञातानि अविज्ञातानि दैवतानि देवा अपि अवधूयन्ते तिरस्क्रियन्ते । अपरिचितानां स्वरूपतोऽज्ञातानाम् देवानामप्यनादरो भवति भवत्याः का कथेत्यर्थः । घृनान्यवेषायाः भवत्याः स्वरूपतोऽज्ञानात् एतादृशोऽनादरः सम्भाव्यते इति भावः ।

योग्य, वल्कलधारी जनों में भय पैदा किया जा रहा है । भला ऐसा कौन है जिसके सेवक इतने उद्धत है और जो अभिमान के वशीभूत हो अपने अस्थिर भाग्यों पर घमण्ड कर रहा है तथा शान्त इस तपोवन को तपस्वियों से हटने की आज्ञा देते हुये गाँव जैसा बना रहा है ॥ ३ ॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सारइदव्वा होमि त्ति । [आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि देवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभव । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः] ।

यौगन्धरायणः—'भुक्तोज्झित' एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

अय्येति-गमनपरिखेदादप्यधिकं परिखिद्येऽहमधुनाऽमुनापमानेनेत्यर्थः । भुक्तोज्झित इति प्रभृ भुक्तः पश्चादुज्झित इति अनुभूय परित्यक्त इति भावः । भवत्या हि पूर्वमयमुत्सारणाज्ञाप्रदानरूपो विषयः अनुभूतः साम्प्रतं कार्य-

---

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायण—आर्ये ! जो धर्ममार्ग से अपने को हटा रहा है ।

वासवदत्ता—आर्य ! मैं ऐसा नहीं कहना चाहती । क्या मैं भी इसी तरह हटाई जाऊँगी ।

यौगन्धरायण—आर्ये ! अपरिचित होने पर देवता भी तिरस्कृत होते हैं तुम्हारी क्या कथा ?

वासवदत्ता—आर्य ! मुझे चलने का परिश्रम वैसा खेद उत्पन्न नहीं करता जैसा कि यह हटाये जाने का तिरस्कार ।

यौगन्धरायण—आपको तो यह विषय (हटा कर चलने जैसा) पहले

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥ ४ ॥

विशेषेण प्रच्छादितस्वरूपया परित्यक्तः । अतः साम्प्रतमनाद्रियमाणेति चिन्तया नात्मावमावनीय इत्यर्थः ।

अन्वयः—पूर्वं त्वया अपि एवम् गतम् अभिमतम् आसीत् पुनः भर्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यसि । कालक्रमेण परिवर्त्तमाना जगतः भाग्यपङ्क्तिः चक्रारपङ्क्तिः इव गच्छति ॥ ४ ॥

व्याख्या—पूर्वमिति–पूर्वम् पूर्वस्मिन्काले स्वनगरावस्थानसमये उज्ज-यिन्यां कौशाम्ब्यां वा त्वयापि एवम् एतादृशम् गतम् प्रस्थितम् मार्गे भटकर्तृकोत्सारणसहितमिति शेषः अभिमतम् अभीष्टम् आसीत् । पुनः भूयः भर्त्तुःअभिमतं शत्रुवशीकृतराज्यस्य उदयनस्य विजयेन सम्पत्स्यमानराज्यप्राप्तिरूपलक्षणेन श्लाघ्यम् परिजनैः प्रशंसनीयं यथा स्यात्तथा गमिष्यसि यास्यसि । पूर्वं नगरे वसन्ती भवती राज्यसुखमनुभवन्ती परिजनाचरितसमुदाचारा स्वेच्छया यथा गतासीत्तथैवाग्रेऽपि पत्यौ विजयश्रिया समलङ्कृते सतीत्यमेव गमनसुखमनुभविष्यसीति भावः । इदानीं कार्यगौरवाद् वेषान्तर स्वीकृतिरूपं दशाविशेषमधिगता परिभवमात्मनः सम्भाव्य मा खेदमावहत्विति भावः तदेव

से भी अनुभूत है । किन्तु कार्य–गौरव के कारण आजकल यह छूट गया है । फिर भी इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।

पहले आपको भी इसी प्रकार (हटा कर चलने) से मार्ग–गमन अभीष्ट था । पति की विजय हो जाने पर सेवकों से श्लाघनीय हो भविष्य में पुनः भी उसी प्रकार गमन करेंगी । क्योंकि काल के हेर-फेर से इस जगत् की परिवर्त्तनशील अदृष्ट परम्परा रथ के पहिये की अरों की भाँति ऊपर और नीचे के क्रम में बदलती रहती है ॥ ४ ॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

समर्थयत—कालक्रमेणेति कालक्रमेण समयानुसारं परिवर्त्तमाना विभिन्नरूपतां गच्छन्ती जगतो लोकस्य भाग्यपङ्क्तिः अदृष्टपरम्परा चक्रारपङ्क्तिः चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणां पङ्क्तिः इव श्रेणिरिव गच्छति यथा चक्रगतानि अराणि रथगत्या उपर्यधो गच्छन्ति एवमेव जनस्य शुभान्यशुभानि चादृष्टगत्या समयानुसारम् विपरिवर्तन्ते इति भावः । अत्र पूर्वार्धप्रतिपादितस्य विशेषस्य उत्तरार्धप्रतिपादितेन सामान्येनार्थेन समर्थनादर्थान्तरन्यासः तल्लक्षणं यथा—

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि ।

....तदार्थान्तरन्यासः । वसन्ततिलका वृत्तम् तल्लक्षणं यथा उक्ता वसन्ततिलकातभजा जगौ ग इति ।। ४ ।।

उत्सरत दूरम् गच्छत ।

तत्र इति—तपस्विजनोत्सारणं वारम् वारमाचरन्तौ अविवेकिनौ भटौ वारयिष्यतः कञ्चुकीयस्य प्रवेशमाह—कञ्चुकीयः राज्ञो भृत्यविशेषः तल्लक्षणं यथा—

'ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते मताः ॥'

एष च राज्ञः सन्निधावन्तःपुरे वा वर्त्तमानो वेत्रधरो प्रायो यत्र तत्र नाटकेषु वृद्धरूप एवोपवर्ण्यते । सम्भषकः पूर्वोक्तयोरुत्सारयतोरेकतरस्य

दोनों सिपाही—हटो । लोगो हटो ।

(तदनन्तर कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—सम्भषक ! मत हटाओ । मत हटाओ । देखो तुम राजा

परिहरतु भवान् नृपापवादं,
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥ ५ ॥

नाम । न खलु न खलु द्वौ नञौ निषेधदाढर्यबोधनार्थम् खलु निश्च-यार्थे । तपस्विजनोत्सरणमिदं सर्वथाऽनुचितम् । कार्यादस्माद्विरम । पश्य विचारय ।

अन्वयः—भवान् नृपापवादं परिहरतु । आश्रमवासिषु परुषं न प्रयोज्यम् । मनस्विन एते नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति ॥ ५ ॥

व्याख्या—परिहरत्विति–भवान् सम्भषकनामधेयः । नृपापवादम् नृपस्य अपवादस्तम् राजनिन्दाकारणम् । परिहरतु दूरीकरोतु । राज्ञि कलङ्कोप-पादयितुं न नाम भवतैवं चेष्टितव्यमित्यर्थः । अनुचितमिदं प्रवर्त्तमानमुत्सारण-कार्यम् । एतेन राजनिन्दा सम्भाव्यते अनौचित्यमेवाह आश्रमवासिषु तपस्वि-जनेषु परुषं रूक्षं क्रूरं वा वाक्यमिति शेषः न प्रयोज्यम् प्रयोक्तुं न युक्तम् । मनस्विनः प्रशस्तमानसाः एते तपस्विनः नगरपरिभवान् नगरसम्भाविता-नवमानान् विमोक्तुं परिहर्त्तुं वनम् अरण्यम् तपोवनरूपम् अभिगम्य सम्प्राप्य वसन्ति निवासं कुर्वन्ति । शान्तचित्ता एते नगरे सम्भावितेभ्योऽवमानेभ्य आत्मानं मोचयितुं तपोवनमाश्रिताः यद्यत्रापि तादृशी तिरस्क्रिया क्रियते चेत्तदा ते क्व गच्छेयुरिति विचार्य उत्सारणरूपेण परुषव्यवहारेण नैते कदर्थनीयाः । एतदनुचितकार्याचरणं न श्रेयस्करमिति गूढोऽर्थः । काव्यलिङ्गालङ्कारः— 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' । इति तल्लक्षणं । पुष्पिताग्रावृत्तम् तल्लक्षणं यथा—

की निन्दा मत कराओ । इन आश्रमवासियों से इस प्रकार का रूक्ष व्यवहार करना उचित नहीं । क्योंकि ये प्रशस्त मन वाले तपस्वी लोग नगर में होने वाले परिभव (अपमानों) को त्याग करने के लिये ही तो वन में आकर निवास करते हैं ॥ ५ ॥

उभौ—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पाव-स्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

'अयुजिनयुगरेफतो यकारो युजि च नजो जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ ५ ॥

उभाविति—द्वावपि भटौ तथा तेन प्रकारेण भवता यदुक्तं तदेव युक्त-मिति तथैव कुर्वः । नृपापवादपरिहारार्थम् । गच्छावः इति भावः । निष्क्रान्तौ निर्गतौ ।

कञ्चुकीयोपदेशेन भटयोर्निर्गमनानन्तरं कञ्चुकीयस्य वैदुष्यं प्रशंसति यौगन्धरायणः हन्तेति—हन्त इति हर्षे । सविज्ञानम् विशिष्टज्ञानसहितम् । दर्शनम् ज्ञानं बुद्धिर्वा । वत्से सम्बोधनपदम् । बालिके तावद् वाक्यालङ्कारे । एनम् कञ्चुकिनम् । उपसर्पावः समीपं गच्छावः । यौगन्धरायणसूचित-मुत्सर्पणं स्वीकुर्वती वासवदत्ताह—आर्येति । उत्सर्पणार्थमहं सन्नद्धैव । उपसृत्य समीपं गत्वा । भो महाशय । उत्सारणा । किं कृता केन कारणेन विहिता भोः तपस्विन् हे तापस ।

दोनों सिपाही—आर्य ! ठीक कहते हैं ।

(ऐसा कह दोनों सिपाही चले जाते हैं)

यौगन्धरायण—हर्ष का विषय है कि इस कञ्चुकीय की बुद्धि विज्ञान से परिपूर्ण है । तो बेटी ! इसके पास चलना चाहिये ।

वासवदत्ता—आर्य ! अच्छा !

यौगन्धरायण—(समीप जाकर) भाई ! यह हटाना किस लिये है ?

कञ्चुकी—हे तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राज-

---

यौगन्धरायणः—आत्मगतम् (स्वगतम्) अयम् एष आलापः । आत्मगतमित्यस्य लक्षणं यथा—'अश्राव्यं स्वगतं मतम्' अश्रावणीयो स्वमानसीयो विचारः इत्यर्थः । खलु निश्चयार्थकम् । गुणवान् प्रशस्तगुणयुक्तः । श्लिष्यते । सम्बध्नाति । मदीयमिमं वेषं दृष्ट्वा एतेन प्रयुक्तं तपस्विपदं यद्यपि प्रशस्तगुणयुक्तमेव तथापि तादृशेन यथार्थ्यगुणेन परिचयाभावादयथार्थ्यसंन्यासिनो मे मनसि एतत्सम्बोधनमवकाशं न लभते । अत्र श्लिषेरात्मनेपदम् चिन्त्यम् । यद्वा कर्मकर्त्तरि तत्प्रयोगात् कथमपि समाधेयम् ।

भोः श्रूयतामिति—कञ्चुकीयस्य वाक्यमिदम् । भोः महाशय । यौगन्धरायणस्य कृते सम्बोधनमिदम् । श्रूयताम् श्रवणार्थं दत्तावधानेन भूयताम् । यदर्थमिदमुत्सारणं क्रियते इति शेषः । एषा पुरोवर्त्तमाना गुरुभिरभिहितनामधेयस्य गुरुभिः मातापित्रादिभिः अभिहितनामधेयस्य अभिहितं कथितं नामधेयं नाम यस्य तस्य । भगिनी स्वसा । नाम प्रसिद्धौ । नः अस्माकम् । महाराजमातरम दर्शकजननीम् । अनुज्ञाता आज्ञप्ता । राजगृहम् राजभवनम् । यास्यति गमिष्यति । आश्रमपदे आश्रमस्थाने वासः अभिप्रेतः

यौगन्धरायण—(आप ही आप) इसके द्वारा सम्बोधित तपस्विन् शब्द से किया गया यह वार्त्तालाप अवश्य ही आदरणीय हैं किन्तु अभ्यास न होने के कारण मेरे मन को अच्छा नहीं लगता ।

कञ्चुकी—महाशय सुनिये ! गुरुजनों के द्वारा जिनका नाम दर्शक रखा गया है जो हम लोगों के महाराज हैं, उन्हीं की बहन ये पद्मावती हैं । ये आश्रम में रहने वाली हमारे महाराज की माता महादेवी से मिल कर उनकी आज्ञा ले पुनः राजगृह (राज प्रासाद) में लौट जायेंगी । किन्तु

गृहमेव यास्यति । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः । तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ ६ ॥

उद्दिष्टः तत्र भवन्त इत्यग्रिमेण श्लोकेन योजनीयम् । दर्शकनाम्नोऽस्माकं महाराजस्य भगिनीयं पद्मावती नाम । सा च महाराजमातरम् सन्दर्श्य ततोऽनुज्ञां लब्ध्वा स्वकीयं राजभवनं गमिष्यति । तेन हेतुना अद्याश्रमे निवासं कर्त्तुमिच्छतीति भावः ।

अन्वयः—तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् तपोधनानि वनात् स्वैरम् नयन्तु । हि धर्मप्रिया नृपसुता धर्मपीडां न इच्छेत् । एतत् अस्याः कुलव्रतम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—तीर्थेति—तद् भवन्तः तत् तस्मात् कारणात् भवन्तः तपस्विनः तीर्थोदकानि तीर्थस्य नद्यादेरुदकानि जलानि । समिधः पलाशतरोः खण्डानि काष्ठानि । कुसुमानि पुष्पाणि । दर्भान् कुशान् । तपोधनानि तपसे साधनभूतानि द्रव्याणि स्वैरं स्वच्छन्दं उपनयन्तु आनयन्तु । हि यस्मात्कारणात् धर्मप्रिया धर्मानुरागिणी नृपसुता राजपुत्री पद्मावती । तपस्विषु तपस्विजनेषु विषये । धर्मपीडां धर्मबाधां धर्मविघ्नं वा न इच्छेत् न

आज इनको इसी आश्रम में निवास करना अभीष्ट है—अतएव आप तपस्वीगण—

तीर्थजल, समिधायें, फूल और कुशा इन सभी तपस्या की सामग्रियों को जङ्गल से अपने इच्छानुसार ले आवें । राजपुत्री तपस्वियों के धर्म कर्म में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालना चाहतीं । यह उनका वंश-परम्परागत व्रत है ॥ ६ ॥

यौगन्धरायणः—(स्वगतम्) एवम् ! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः—

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥ ७ ॥

वाञ्छेत् । एतत् इदम् अस्याः पद्मावत्याः । कुलव्रतम् वंशानुष्ठानम् । अस्तीति शेषः । कुलक्रमागतं मुनिजनतपोऽभिरक्षणव्रतं पालयन्त्या धर्मेऽनुरागं वहन्त्याः पद्मावत्याः तापसजनतपोविघ्नोपरोधभूतोऽभिलाषो भवद्भिः पूरणीयस्तीर्थोदकाद्याहरणेनेत्यर्थः । काव्यलिङ्गालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् । एतयोर्लक्षणं प्रागुक्तमेव ॥ ६ ॥

कञ्चुकीयसूचितस्वरूपां पद्मावतीमालोच्य यौगन्धरायणः तत्स्वरूपं मनसा निर्दिशति एवमिति कञ्चुकीयेन यदेतदुत्सारणं प्रतिपाद्यते तदेतत्सर्वथा सम्भाव्यते । एषा सेति—इयं हि स्वामिनो भर्त्तुरुदयनस्य भार्या भविष्यतीत्थं पुष्पकभद्रादिभिः आदेशिकैः दैवज्ञैः सिद्धपुरुषैः वा आदिष्टा संसूचिता राजमहिष्याः पदमनुभविष्यन्ती सेयं पद्मावती विद्यते इति संक्षिप्तोऽर्थः । ततः तस्मात्कारणात् ।

अन्वयः—प्रद्वेषः बहुमानं वा सङ्कल्पात् उपजायते । भर्तृदाराभिलाषित्वात् मे अस्यां महती स्वता ॥ ७ ॥

व्याख्या—प्रद्वेषः द्वेषातिशयः, बहुमानः अत्यादरः वा सङ्कल्पात् मानसो-

---

यौगन्धरायण—(आप ही आप) ऐसा । तो यही मगधेश्वर की राजकुमारी पद्मावती हैं, जिन्हें पुष्पक एवं भद्र प्रभृति सिद्धों ने या ज्योतिषियों ने 'ये महाराज उदयन की महारानी होंगी' ऐसी घोषणा की है । इस कारण—

किसी के प्रति द्वेष अथवा अनुराग मन के सङ्कल्प (भावना) द्वारा

वासवदत्ता—(स्वगतम्) राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जइ । [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च ।)

त्पन्नाद्भावात् उपजायते उद्भवति । भर्तृदाराभिलाषित्वात् भर्त्तुः स्वामिनः उदयनस्य दारा भर्तृदारा इत्यभिलाषः स्पृहा अस्यामस्तीति तस्य भावस्त स्मात् 'मम स्वामिनो भार्या इयं भूयादिति स्पृहाशालित्वात् मे मम यौगन्धरायणस्य अस्यां पुरोदृश्यमानायां पद्मावत्याम् महती स्वता महती आत्मीयता । यस्य पुरुषस्य चित्ते यद्विषये यादृशो भाव उत्पद्यते स तद्विषये तद्भावानुसारेणैव तं द्वेष्टि बहुमन्यते वेति नियमानुसारेण मम मनसि पद्मावतीं प्रति इयं राजमहिषी भवतु' इति भर्तृदाराभिलाषित्वात् राजमहिषीत्वकारणेन महती प्रीतिः सम्पद्यते इति भावः ॥ ७ ॥

कञ्चुकीयसूचितं पद्मावत्याः परिचयं श्रुत्वा वासवदत्ता मनसि चिन्तयति–राजदारिका राजकुमारी । अत्र अस्यां पद्मावत्याम् भगिनिकास्नेहः भगिन्येव भगिनिका तस्याः स्नेहः भगिनीतुल्यः स्नेहः राजकुमार्या वासवदत्तायाः पद्मावत्यां राजकुमार्यां भगिनीप्रेम सम्भवत्येवेति तुल्यता । अस्यां मे भगिनीप्रेमापि वर्त्तते तदर्थमादरविशेषो ममेति वासवदत्तोक्तेरभिप्रायः ।

साम्प्रतं पद्मावत्या आश्रमप्रवेशमाह–ततः प्रविशतीति । सपरिवारा

उत्पन्न होता है । इसीलिये हमारे स्वामी उदयन की धर्मपत्नी होंगी इस प्रकार की अभिलाषा करने से इनमें मेरी अधिक आत्मीयता हो रही है ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—(आप ही आप) 'राजकुमारी' यह शब्द सुन कर इसमें बहन जैसा स्नेह मुझे उत्पन्न हो रहा है ।

(इतने में पद्मावती सखियों एवं प्रधान दासी के साथ प्रवेश करती हैं)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्समपदं पविसदु। [एत्वेतु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु।]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी।)

तापसी—साअदं राअदारिआए। [स्वागतं राजदारिकायाः]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ। अभिजणाणुरूव खु से रूवं। [इयं सा राजदारिका। अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्]

परिवारेण सहिता सपरिवारा। चेटी दासी। यद्यपि चेटयपि परिवारान्तर्गता तथापि प्रधानपरिचारिकाबोधनार्थं चेटीपदं पृथक् उपात्तम्। स्वामिन्याः मार्गप्रदर्शनरूपं चेटयाः प्रधानकर्त्तव्यं निर्दिशन्नाह एत्वेत्विति आगच्छतु आगच्छतु। भर्तृदारिका राजकुमारी। राजकुमारी आगच्छतु दृश्यमानेऽस्मिन्नाश्रमपदे प्रविशत्वित्यर्थः। प्रकृतोपयोगिनमुपविष्टायास्तापस्याः प्रवेशं सूचयति तत इत्यादि। राजकुमार्याः पद्मावत्या आगमने वृद्धायाः तापस्याः अभ्युत्थानाद्याचारप्रदर्शनमनुचितमित्याह—उपविष्टेति। पद्मावतीकृतं शुभागमनमभिनन्दन्ती तापस्याह—स्वागतमिति स्वागतम् शुभागमनम्। पद्मावत्याः सुरूपतां दृष्ट्वा वासवदत्तायाः हृद्गतं भावं संसूचयति कविः इयमिति—इयम् समीपवर्त्तिनी। सा प्रसिद्धा राजदारिका। अभिजनानुरूपम् अभिजनस्य अनुरूपम् वंशसदृशम्। खलु निश्चयेन। रूपम् सौन्दर्यम्। यथास्याः कुलं

दासी—आइये! आइये! राजकुमारी। इस आश्रम में प्रवेश कीजिये।

(बैठी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी—राजकुमारी का स्वागत है।

वासवदत्ता—(आप ही आप) यह वही राजकुमारी हैं। इनका सौन्दर्य भी कुल के अनुरूप ही है

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अहिदिजणस्स सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामाऽतिथिजनस्य स्वकं गेहम् ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्ताऽस्मि । अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीताऽस्मि ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) ण हि रूव एव्व, वाआ वि खु से महुरा । [न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

प्रशस्तम् तथास्या रूपमपि प्रशंसार्हं भवतीति भावः । तापसीमुद्दिश्य आर्यं श्रेष्ठे पूजनीये वन्दे नमस्करोमि इयं पद्मावती तत्र भवतीं तापसीमुद्दिश्य नमस्करोतीति भावः । चिरमिति चिरञ्जीव दीर्घायुर्भव । इयं हि कृतप्रणामां पद्मावतीं प्रति आशीर्वचनं तापस्याः । पुनः अतिथियोग्यसत्कारप्रदर्शनार्थं कथयति प्रविशेत्यादि । हर्षार्थं प्रविशपदे द्विरुक्तिः । जाते वत्से । स्वकं गेहम् आत्मगेहसदृशम् । चिरायुर्भव स्वगृहनिर्विशेषे अस्मिन्तपोवने प्रवेशं कुरु इति तापसीवाक्यार्थः ।

भवतु भवतु अस्तु अस्तु । उपचारप्रदर्शनं नावश्यकमिति भावः । अनेन बहुमानवचनेन अनेनाधिकसत्कारवाक्येन । अनुगृहीता अनुग्रहयुक्ता । पद्मावतीं दृष्ट्वा वासवदत्ता स्वमनसि प्रशंसति—न हीत्यादि रूपम् एव सौन्दर्यमात्रम् न हि । वाक् वाणी अपि । न केवलं रूपमस्याः मनोहरम् किन्तु वचन—

पद्मावती—आर्ये ! मैं अभिवादन करती हूँ ।

तापसी—चिरञ्जीव ! आओ बेटी आओ । तपोवन तो अतिथियों का अपना घर है ।

पद्मावती—'अच्छा ! अच्छा ! आर्ये ! मैं विश्वस्त हूँ । आपके इस सत्कारयुक्त वचन से अनुगृहीत हो गई ।

वासवदत्ता—(आप ही आप) इनका केवल सौन्दर्य ही प्रशस्त नहीं वाणी भी मधुर है ।

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोवि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

चेटी—अस्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जणीए। सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि। [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एदा अ अत्तणीआ दाणि संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानी संवृत्ता।]

मप्येतदीयं प्रशंसार्हमिति भावः। इदानीं पद्मावतीविवाहोपयिकं प्रकृत्यर्थमवतारायितुमिच्छन् कविस्तापसीमुखेन चेटीं प्रति प्रश्नरूपेण प्रस्तौति—भद्रे इति–भद्रे कल्याणि! इमाम् पुरोदृश्यमानाम्। तावद् वाक्यालङ्कारे। भद्रमुखस्य कल्याणमुखस्य प्रियदर्शनस्य। महाराजदर्शकस्येति भावः। भगिनिकाम् अनुकम्पार्हां पद्मावतीमित्यर्थः। न वरयति पत्नीत्वेन न इच्छति किमिति काकुः। केनचिद्राज्ञा सह पद्मावत्याः विवाहसम्बन्धविषयो वार्त्तालापः न प्रचलति किम्। चेटी उत्तरयति–अस्तीति उज्जयिन्याः तन्नामनगर्याः। दारकस्यपुत्रस्य। कारणात् हेतोः। दूतसम्पातम् दूतः सन्देशहरस्तस्य सम्पातम् सम्प्रेषणम्। करोति सम्पादयति। स्वपुत्रेण सह पद्मावत्याः विवाहसम्बन्धं स्थापयितुं स दूतप्रेषणं करोतीति भावः। प्रद्योतराजपुत्रेण सह सम्पत्स्यमानं विवाहसम्बन्धमनुमोदमाना वासवदत्ता स्वमनस्याह। भवतु भव-

---

तापसी—कल्याणि ! क्या शुभ आकृति वाले महाराज दर्शक की इन बहन को कोई राजा वरण नहीं करता ?

दासी—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने अपने पुत्र के लिये दूत भेजा है।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अच्छा अच्छा ! यह तो अब आत्मीय हो गई।

तापसी—अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि । [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य । उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते ।]

पद्मावती—अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं ? अभिप्पेदप्पदाणेन तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति । [आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् ? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति ?]

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या । भो भोः आश्रमवासिनस्तप

त्विति—हर्षसूचनार्थं द्विरुक्तिः । एषा पद्मावती । आत्मीया स्वकीया । भ्रातृसम्बन्धस्य भावित्वादिति शेषः । पूर्वोक्तं चेटीवचो निशम्य सानन्दं तापस्याह—अर्हेति अर्हा योग्या । उभे द्वे राजकुले दर्शकप्रद्योतवंशौ । महत्तरे अतिप्रशंसनीयतरे । इति श्रूयते आकर्ण्यते । श्रवणपथं गच्छतीति भावः । निजोद्वाहप्रसङ्गश्रवणेन सञ्जातलज्जा पद्मावती तापसीचेट्योः प्रचलितं वार्त्तालापमपवार्य निजागमनप्रयोजनं प्रस्तुत्य कञ्चुकीयम् प्रति कथयति आर्य इति । मुनिजनः तापसजनः । आत्मानम् स्वम् । अनुग्रहीतुम् अनुग्रहीतां कर्त्तुम् । अभिप्रेतप्रदानेन अभीष्टपदार्थवितरणेन । उपनिमन्त्र्यताम् निमन्त्रितः क्रियताम् । तपस्विजनं स्वस्वाभीप्सितार्थकथने प्रवर्त्तयतु भवान् । अहमात्मानमनुग्रहीतुम् तेषामभीष्टवितरणं करिष्यामीति भावः । पद्मावतीवचोऽनुसारं कञ्चुकीयस्य प्रवृत्तिं तदुद्योगं च प्रकटयति कविः—यदभिप्रेतमित्यादि । भवत्या

तापसी—इस राजकुमारी की इस प्रकार की आकृति अधिक आदर के योग्य है । दोनों ही राजवंश प्रशस्त हैं ऐसा सुना जाता है ।

पद्मावती—आर्य ! क्या आपने किसी ऐसे तपस्वी को देखा जो मेरे द्वारा दी गई वस्तु को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत करे । मुझे तपस्विजनाभीष्ट वस्तु दान करनी है । अतः आप इन तपस्विजनों को आमन्त्रित करें कि यहाँ पर कौन क्या चाहता है ।

कञ्चुकी—आपकी जैसी इच्छा है वैसा ही करूंगा । हे हे आश्रम

स्विनः ! शृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भे-
णोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।

भर्तृदारिकया अभिप्रेतम् अभीष्टम् । शृण्वन्तु आकर्णयन्तु । अत्र भवती माननीया राजपुत्री । विस्रम्भेण विश्वासेन । उत्पादितविस्रम्भा जनित-विश्वासा । धर्मार्थम् पुण्याचरणार्थम् । अर्थेन दातव्यवस्तुरूपेण हेतुना । उपनिमन्त्रयते उपनिमन्त्रणं करोति । आश्रमप्रवेशसमये तापस्या समा-चरितेन पूर्वेण सत्कारेण जातविश्वासा राजकुमारी पद्मावती भवन्मनोरथम् पूरयितुं धर्माचरणबुद्ध्या भवतस्तपोधनान् निजाभिलषितप्रकाशनाय प्रवर्त्तयति । अतः स्वाभिलाषं प्रकटयितुं प्रसीदन्तु भवन्त इति ।

अन्वयः—कस्य कलशेन अर्थः ? कः यथानिश्चितं वासः मृगयते ? दीक्षां पारितवान् (कः) पुनः गुरोः यद् देयं भवेत् किम् इच्छति ? इह धर्मा-भिरामप्रिया नृपजा आत्मानुग्रहम् इच्छति । यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तद् वदतु । अद्य कस्य किं दीयताम् ? ॥ ८ ॥

व्याख्या—कस्यार्थं इति—कस्य तपस्विनः कलशेन घटेन अर्थः प्रयोजनं वर्त्तते इति शेषः । कः तपस्वी यथानिश्चितम् स्वमनोऽनुकूलम् आश्रमपदा-नुरूपमिति शेषः । वासो वस्त्रं मृगयते अन्विष्यति । कामयते । दीक्षाम् अध्ययनव्रतम् पारितवान् समापितवान् कः स्नातक इति शेषः । पुनः भूयः गुरोः आचार्याय यद् देयम् दातव्यं भवेत् स्यात् तादृशं किं वस्तु इच्छति

निवासी तपस्विजनों ! आप लोग सुनिये सुनिये । यहाँ माननीया मगध राज-कुमारी आप लोगों के द्वारा किये गये स्वागत से विश्वस्त होकर अभीष्ट वस्तु के दान द्वारा धर्मोपार्जन के लिये आप लोगों को आमन्त्रित कर रही है ।

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

यौगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः । (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी ।

वाञ्छति । समापिताध्ययनकृत्यः कस्तपस्वी गुरवे निवेदनीयं गुरुदक्षिणारूपं कियद् द्रव्यमभिलषति ? इह अस्मिन्नाश्रमे धर्माभिरामप्रिया धर्मे अभिरामः अभिरुचिः येषां ते धर्माभिरामाः ते प्रियाः यस्याः सा धर्माभिरामप्रिया प्रियधार्मिकजना इयं राजकुमारी आत्मानुग्रहम् स्वात्मनि अनुकम्पाम् इच्छति कामयते । तापसाभीष्टवितरणेनेति शेषः । अतः यस्य तपस्विनः यद् वस्तु समीप्सितम् समभीष्टम् अस्ति । तद् वस्तु वदतु कथयतु । अद्य अस्मिन्दिने कस्य कस्मै जनायेति शेषः । किम् दीयताम् किं वितीर्यताम् । भवन्तः स्वाभिलषितं निःशङ्कं ब्रुवन्तु । भवदर्थश्रवणानन्तरमियमात्मानमनुग्रहीतुकामाभीष्टं नितरिष्यति । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । लक्षणं तु पूर्वोक्तम् ॥ ८ ॥

उपर्युक्तघोषणां श्रुत्वा लब्धहर्षो यौगन्धरायणः कथयति हन्तेति प्रकाशमित्यनन्तरोक्तेर्वाक्यमिदमात्मगतत्वेनैव प्रयुक्तमवगन्तव्यम् । हन्त ! हर्षे । उपायः युक्तिः मार्गः दृष्टः अवलोकितः । उपस्थितोऽसौ वासवदत्तानिक्षेपयोग्योऽवसर इत्यर्थः । प्रकाशम् सर्वजनश्रावणीयम् । तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—

चाहता है, ऐसा कौन स्नातक है जिसने विधिपूर्वक अपनी शिक्षा समाप्त कर ली है और अब अपने गुरु को दक्षिणा में देने के योग्य उसे किस वस्तु की आवश्यकता है ? इस तपोवन में धार्मिकों के प्रति प्रीति रखने वाली राजकुमारी अपने ऊपर तपस्वियों का अनुग्रह चाहती है। अतः जिसे जो अभीष्ट हों उसे कहे कि आज किसे क्या दिया जाय ॥ ८ ॥

यौगन्धरायण—(मन में) अहा ! उपाय मिल गया । (प्रकट रूप में) महोदय ! मैं अर्थी (याचक) हूँ ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं। [दिष्टचा सफलं मे तपोवनाभिगमनम्।]

तापसी—सन्तुठ्ठतवस्विजणं इदं अस्समपद। आअन्तुएण इमिणा होदव्वं। [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम्। आगन्तुकेनानेन भवितव्यम्।]

काञ्चुकीयः—भो किं क्रियताम्।

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम्। कुतः—

'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्याव्' इति। भोः कञ्चुकीयकृते सम्बोधनमिदम्। अहमर्थी याचकः।

सौभाग्यादुपस्थितमर्थिनं दृष्ट्वा पद्मावती कथयति दिष्टचेति—अर्थिनः प्राप्त्या तपोवनेऽस्मिन्ममागमनमिदमिदानीं सार्थकमभूदित्यर्थः। आश्रमस्थेषु तापसेषु कमप्यर्थिनमनुपलभमाना तापसी ब्रवीति सन्तुष्टमित्यादि—इदमाश्रमपदम् एतत्तपोवनं सन्तुष्टतपस्विजनम् सन्तुष्टस्तपस्विजनो यत्रैतादृशं वर्त्तते। आश्रमस्था इमे केऽपि किमपि नार्थयन्ते अनेन याचकेन आगन्तुकेन देशान्तरादागतेन भवितव्यम्।

काञ्चुकीयः ब्रवीति—भो इति किं क्रियताम् किं विधीयताम्? किं भवतोऽभिमतमस्माभिः साध्यतामिति यौगन्धरायणमर्थिनं प्रति काञ्चुकीयस्य प्रश्नः।

स्वार्थं कथयति यौगन्धरायणः इयमिति इयं मत्समीप वर्तिनी वासवदत्ता

पद्मावती—भाग्य से मेरा इस तपोवन में आना सफल हुआ।

तापसी—इस आश्रम के रहनेवाले सभी तपस्वी सन्तुष्ट हैं। यह (मागनेवाला) कोई आगन्तुक होगा।

कञ्चुकी—महाशय! तो आपकी क्या सेवा की जाय?

यौगन्धरायण—यह हमारी बहन है। इस समय इसके पति विदेश

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै-
र्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः :

मे स्वसा मे भगिनी वर्त्तते। प्रोषितभर्तृकाम् प्रोषितः भर्त्ता यस्यास्ताम् प्रवासोषितपतिकाम्। इमां मत्स्वसारम् अत्र भवत्या माननीयया राजकुमार्या भवत्या पद्मावत्या कञ्चित्कालम् किञ्चित्कालपर्यन्तम्। परिपाल्यमानाम् संरक्ष्यमाणाम्। इच्छामि वाञ्छामि। देशान्तरगतस्य पत्युर्वियोगमनुभवन्तीं दीनां ममैतां भगिनीम् किञ्चित्कालपर्यन्तं भवत्याः समीपे न्यासरूपेण स्थापयितुमहमिच्छामीति भावः। तदेवाग्रे स्पष्टयति—

अन्वयः—(मम) अर्थैः न एव, भोगैः अपि नैव, वस्त्रैः (अपि) न कार्यम्। अहं वृत्तिहेतोः काषायं प्रपन्नो न। धीरा दृष्टधर्मप्रचारा इयं कन्या मे भगिन्याः चरित्रं रक्षितुं शक्ता ॥ ९ ॥

व्याख्या—कार्यमिति–ममेति औचित्यादध्याहरणीयम्। मम यौगन्धरायणस्येत्यर्थः। अर्थैः द्रव्यैः हिरण्यप्रभृतिधनैः। नैव कार्यम् नैव प्रयोजनम्। भोगैः कलशादिभोगपदार्थैरपि न कार्यमिति योज्यम्। वस्त्रैः वसनैः परिधानयोग्यैः न कार्यमिति। अर्थभोगवस्त्रेषु मम नाभिलाष इत्यर्थः। अहं वृत्तिहेतोः जीविकार्थम् काषायम् कषायेण रक्तं वस्त्रं यत् परिव्राजकलिङ्गम् न प्रपन्नः नाङ्गीकृतवान्। एवं तत्तद्धनादिपदार्थेषु स्वस्पृहां निषिध्य पद्मावत्यां स्वाभिमतार्थसिद्धियोग्यतां प्रदर्शयति धीरेति धीरा पण्डिता धैर्यशालिनी वा दृष्टधर्मप्रचारा दृष्टः परिज्ञातः धर्मस्य सत्कर्मणः प्रचारः प्रख्यापनम् यस्याः सा। इयं पुरोदृश्यमाना कन्या कुमारी पद्मावती मे मम भगिन्याः स्वसुः अवन्तिकावेषधारिणीवासवदत्तायाः चरित्रं शीलम् रक्षितुं त्रातुं शक्ता समर्था

गये हुये हैं। इनको कुछ काल पर्यन्त तत्र भवती राजकुमारी अपने संरक्षण में रखें। मैं यही चाहता हूँ। क्योंकि—

न मुझे धन से कोई प्रयोजन है, न भोग से और न वस्त्र से काम है। मैंने जीविका के लिये गेरुआ वस्त्र धारण नहीं किया है (इसलिये जीविका भी नहीं चाहता) किन्तु ये मगध राजकुमारी विदुषी तथा धर्मात्मा हैं इसलिये

धीरा कन्थेयं दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्य योगन्धरायणो ? होदु, अविआरिअ कम्मं ण करिस्सदि। [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ? भवतु अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

अस्तीति शेषः । यतः कारणादियं विदुषी धर्मप्रचारे बद्धादरा राजकुमारी च अतो मद्भगिन्याश्चरितं रक्षितुं समर्था एतस्मात्कारणादहमत्र भवत्या पद्मावत्याः सन्निधौ एनां निक्षेप्तुमिच्छामि अर्थः कलशवस्त्रादिभिश्च मे प्रयोजनं नास्ति । पद्मावत्याः निक्षेपरक्षणक्षमत्वस्य समर्थनादत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वैश्वदेवी नामकं छन्दः । तल्लक्षणं यथा—पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ इति ।

पद्मावत्याः समीपे स्वात्मनिक्षेपरूपं यौगन्धरायणोपस्थापितं प्रस्तावं श्रुत्वा वासवदत्ता स्वगतं वितर्कयति हमिति ।

हमिति प्रश्ने आर्ययौगन्धरायण इह मां निक्षेप्तुकामः निक्षेप्तुं कामो यस्य सः । किमत्र पद्मावत्याः सन्निधौ आर्ययौगन्धरायणः मां निक्षेप्तुमिच्छति भवतु निक्षेपोऽपि ममास्तु । अविचार्य अविमृश्य क्रमं पादविन्यासम् न करिष्यति न विधास्यति । मदीयनिक्षेपरूपेऽस्मिन् विषये आर्ययौगन्धरायणः अविचार्य न कदापि प्रवर्तिष्यते । यौगन्धरायणोपस्थापितस्यार्थस्य सुतरां दुष्करत्वमाकलयन् काञ्चुकीयः पद्मावतीं ब्रवीति भवतीति भवति माननीये हे राजकुमारि ! अस्य अर्थिनः यौगन्धरायणस्य महती गुर्वी व्यपाश्रयणा न्यासस्थापनरूपा याचना ।

मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती हैं। (यही मेरी प्रार्थना है)॥ ९ ॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) ऐं ! आर्य यौगन्धरायण मुझे पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखना चाहते हैं। अच्छा ये बिना सोचें कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगे ।

काञ्चुकीयः—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेत् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ १० ॥

कथं केन प्रकारेण प्रतिजानीमः प्रतिज्ञां कुर्मः । अयमर्थी स्वभगिनीं निक्षिप्य तद्रक्षणार्थी भवत्या आश्रयमिच्छति परं निक्षेपरक्षणस्य सर्वथा दुःखसम्पादनतया एतदभिलाषपूरणं दुःशकमेवातो कथङ्कारमीदृशो दुष्करोऽर्थः प्रतिज्ञातव्य इति भावः । उक्तार्थस्य दुष्करत्वमग्रे द्रढयति—

अन्वयः—अर्थः सुखं दातुं भवेत् । प्राणाः सुखं दातुं भवेयुः । तपः सुखं दातुं भवेत् । अन्यत् सर्वं सुखं दातुं भवेत् । (परम्) न्यासस्य रक्षणं दुःखं भवेत् ॥ १० ॥

व्याख्या—सुखमिति-अर्थः धनम् सुखं सुखपूर्वकम् यथा स्यात्तथा दातुं वितरितुं भवेत् स्यात् । प्राणाः असवः सुखम् आयासरहितं यथा स्यात्तथा दातुं भवेयुरिति । तपः तपःफलम् सुखम् अनायासेन दातुं भवेत् अन्यत् इतरत् सर्वम् निखिलम् सुखं कष्टं विनैव दातुम् वितरितुं भवेत् स्यात् परं न्यासस्य निक्षेपस्य रक्षां पालनम् दुःखम् दुष्करं कर्म । सन्त्येवैतादृशा उदारा ये स्वकीयमर्थं प्राणाः तपांसि च सुखेन दातुं समर्थाः किन्तु तेषामपि कृते न्यासरक्षणकार्यमसम्भवमिति भावः । अतोऽस्माभिरीदृशे दुष्करकर्मणि न प्रवर्त्तितव्यम् । अत्र यौगन्धरायणाभिलाषस्य सर्वथा गरीयस्त्वं दुष्करत्वं च समर्थनादर्थान्तरन्यासः । अनुष्टुप् छन्दः ।

कञ्चुकी—माननीये ! इस संन्यासी की आश्रय प्राप्त करने की प्रार्थना बड़ी कठिन है अतः कैसे प्रतिज्ञा करें क्योंकि—

अर्थ, प्राण, किं बहुना तपस्या का फल प्रदान भी सहज हैं किन्तु किसी न्यास का रक्षण करना कठिन है ॥ १० ॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि विआरिदुं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीय;—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी । [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी ।]

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे ! । [चिरं जीवतु भद्रे !]

यौगन्धरायणाभिलाषपूरणं दुष्करं सम्भाव्य प्रतिज्ञातादर्थात्पराङ्मुखी भवतः काञ्चुकीयस्य विचारं श्रुत्वा प्रतिज्ञाभङ्गमाशङ्कमाना पद्मावती ब्रवीति आर्यं इति-'कः किमिच्छतीति' प्रथममुद्घोष्य 'कस्यार्थः कलशेन' इत्यभिलाषामुद्भाव्य इदानीमर्थिनोऽभिलाषश्रवणानन्तरं तत्रार्थे किमपि विचारयितुम् न युक्तम् अत एष यौगन्धरायणो यादृशमभिलाषं प्रकाशयति आर्यः तदनुतिष्ठतु इति स्पष्टोऽर्थः । 'यतः अङ्गीकृतं सुकृतिनः प्रतिपालयन्ति अतोऽविचारितं भवता तत्र प्रवर्त्तितव्यम् । राजकुमार्या प्रयुक्तं आर्यं इति सम्बोधनं कञ्चुकिनो मानार्थम् वृद्धत्वेन शिष्टाचारसम्मतं च । अनुरूपम् समयधर्मकुलोचितम् अतोऽस्माभिस्थैतव करिष्यते यथा भवत्या उक्तम् इति । स्वात्मनः प्रवृत्तिः तत्रार्थे प्रदर्शिता कञ्चुकिना । चेटी स्वौदार्येण तथा समर्थयन्तीं पद्मावतीं दृष्ट्वाभिनन्दति चिरं जीवेति-सत्यवादिनी सत्यभाषिणी । भर्तृदारिका राजकुमारी चिरं जीवतु दीर्घायुर्भवतात् । तापस्यपि तदुचितं समर्थमाना ब्रवीति-चिरमिति भद्रे कल्याणरूपे । पद्मावति । चिरं जीवतु भवतीति शेषः ।

पद्मावती—आर्य ! कौन क्या चाहता है ऐसी घोषणा कर अब विचार करना अनुचित है । अतः ये जो कहते हैं आप उसे करें ।

कञ्चुकी—यह आपने उचित कहा ।

दासी—इस प्रकार सत्य भाषण करने वाली राजकुमारी दीर्घायु हों ।

तापसी—कल्याणि ! आप बहुत समय तक जीयें ।

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा । (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से उपसर्पात्रभवतीम् ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गई । एषा गच्छामि मन्दभाआ । [का गतिः । एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

काञ्चुकीयः राजकुमारीं पद्मावतीमुद्दिश्य वदति भवतीति भवति मान्ये, तथा तेनैव प्रकारेण करिष्यामीति शेषः । पुनः यौगन्धरायणं प्रति भोः महाशय ! अत्र भवत्या माननीयया राजकुमार्या अभ्युपगतम् न्यासरूपेण भगिनीं स्थापयितुमिच्छतो भवतोऽभिलाषं पूरयितुम् पद्मावत्याः सन्निधौ वासवदत्तानिक्षेपरूपमात्मनः प्रस्तावं सफलमालोक्य स्वकार्यैकदेशस्य सिद्धिमवधार्य यौगन्धरायणः कथयति अनुगृहीतोऽस्मीति श्रीमत्याः पद्मावत्या महाननुग्रहोऽयं मयि यन्मदीयोऽयमभिलाषः तथा सफलीकृत इत्यर्थः । पुनः वासवदत्तामुद्दिश्य वदति वत्से इति—वत्से बालिके अत्र भवतीम् माननीयां पद्मावतीं उपसर्प गच्छ कियत्कालपर्यन्तं निवासार्थमिति शेषः । यौगन्धरायणोक्तम् पद्मावतीसन्निधावुपसर्पणमात्मनः प्राप्तकालमालोक्य वासवदत्ता स्वचेतसि चिन्तयति का गतिरिति । गतिः उपायः । किमन्यत्करणीयमित्यर्थः । मन्दभागा स्वल्पभाग्या सेयमहं पद्मावतीसमीपं गच्छामीति शेषः । गत्यन्तराभावान्मया कर्तव्य-

---

कञ्चुकी—आर्ये ! वैसा ही करता हूँ (समीप जाकर) महाशय ! श्रीमती राजकुमारी ने आपकी भगिनी का संरक्षण स्वीकार कर लिया है ।

यौगन्धरायण—श्रीमती ने मुझे अनुगृहीत किया । वत्से ! राजकुमारी के पास जाओ ।

वासवदत्ता—(आप ही आप) क्या करूँ ? और गति नहीं है ? अब मैं मन्दभागिनी जाती हूँ ।

पद्मावती—भोदु भोदु। अत्तणीआदाणि संवुत्ता। [भवतु भवतु। आत्मीयेदानीं संवृत्ता]

तापसी—जा ईदिसी से आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि। [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि। [सुष्ठु आर्या भणति। अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे।]

मेवेति भावः। पूर्वं प्रियवियोगः अधुना कार्यान्तरं विधातुं गमिष्यतो यौगन्धरायणस्यापि वियोगः इति अल्पभाग्यता वासवदत्तायाः।

स्वसमीपमुपसर्पन्तीं वासवदत्तां विलोक्य पद्मावती कथयति भवत्विति भवतु भवतु आदरार्था द्विरुक्तिः। आत्मीया स्वकीया संवृत्ता सञ्जाता। आदरणीयेयं मामुपसर्पतु। स्वीयजननिर्विशेषं सम्प्रत्येषा मया परिपालयिष्यते इति भावः। तापसी वासवदत्तां प्रति—आह—या इति—अस्याः पद्मावतीमुपगतायाः अर्थिभगिन्या एतस्या इत्यर्थः। या ईदृशी आकृतिः योऽयमीदृशो रमणीयाकारः तेन इयमपि राजदारिका राजकुमारी भवेदिति शेषः। इति तर्कयामि इत्थं कल्पयामि। आकृतिसौन्दर्येण यथा पद्मावत्या राजकन्यात्वं स्फुटं प्रतीयते तथा न्यासरूपेण स्थापितेयमपि आकृतिसौन्दर्यशालित्वात्वाद्राजकन्यैव भवेदित्यर्थः। चेटी तापसीवाक्यं समर्थयति सुष्ठु इति—आर्या पूज्या तापसीति यावत् सुष्ठु भणति समीचीनं युक्तिसङ्गतं वदति। इयमर्थिनः स्वसा अनुभूतसुखा अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतम् सुखं राजकन्योचितमैश्वर्यं यया सा तादृशी विद्यते इति इत्थम् प्रेक्षे पश्यामि अवगच्छामि। अस्या

पद्मावती—अच्छा! अच्छा! अब यह आत्मीय हो गई।

तापसी—जिस प्रकार की इसकी आकृति है उससे यह भी राजकुमारी ही है ऐसा ज्ञात होता है।

दासी—आर्या! ठीक कहती हैं। इन्होंने कभी राजसुख का अनुभव किया है ऐसा मैं समझ रही हूँ।

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य। यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति। ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयती मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति। कुतः—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।

आकारविलोकनेनाहमपि पूर्वमनया राजवैभवसुखमनुभूतमित्यवगच्छामीति भावः। पूज्याया भवत्या वाक्यमनुमोदेहमपीति शेषः।

उचितस्थाने वासवदत्तां निक्षिप्य किञ्चिल्लब्धनिर्वृत्तिर्यौगन्धरायणः मनसि पर्यालोचयति—हन्तेति–हन्त हर्षद्योतकमव्ययपदम्। भोः स्वंप्रति सम्बद्धि वचनम्। भारस्य स्वशिरसि संस्थितस्य भरस्य अर्धम् समांशम् अवसितम्–समाप्तम्। स्वावलम्बितस्य भारस्यायमर्धभागः शिरसोऽवतीर्ण इत्यर्थः। यथा येन प्रकारेण मन्त्रिभिः रुमण्वत्प्रभृतिभिः सह समर्थितं निर्धारितं तथा तेन प्रकारेण परिणमति परिणामं प्राप्नोति। स्वामिनि राज्ञि उदयने प्रतिष्ठिते पूर्ववत् सिंहासनारूढे–तत्र भवतीं माननीयां वासवदत्ताम् उपनयतः स्वामिसमीपं प्रापयतः मे मम मगधराजपुत्री पद्मावती विश्वासस्थानं प्रत्ययहेतुः। स्वामिनि उदयने पुनः सिंहासनाधिरूढे वासवदत्तां तस्मै समर्पयतो मे वासवदत्तायाश्चारित्र्यशुद्धौ मगधराजपुत्री पद्मावती साक्षिभूता सम्पत्स्यते इति भावः। कुतः कस्मात्—

अन्वयः—यैः प्रथमं विपत्तिः प्रदिष्टा अथ पद्मावती नरपतेः महिषी

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहा ! आधा बोझा तो उतर गया। मन्त्रियों के साथ जैसा निश्चय किया गया था ठीक वैसा ही परिणाम होता दिखाई पड़ रहा है। महाराज उदयन के राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो जाने पर महारानी वासवदत्ता को सौंपने के समय साक्षिणी के रूप में ये मगध राजकुमारी पद्मावती मेरा विश्वासपात्र (गवाह) होंगी क्योंकि—

जिन (पुष्पक, भद्र आदि) सिद्धों ने राजा उदयन की (आने वाली)

तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥ ११ ॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः । दृढमस्मि परि-

भवित्री इति प्रदिष्टा इति दृष्टा तत्प्रत्ययात् इदं कृतम् । हि विधिः, सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि व्युत्क्रम्य न गच्छति ॥ १२ ॥

व्याख्या—पद्मावती—यैः पुष्पकभद्रादिभिः सिद्धैः प्रथमम् पूवम् विपत्तिः आपत्तिः शत्रुकर्तृकोदयनराज्यहरणरूपेति भावः । प्रदिष्टा इति दृष्टा प्रत्यक्षमवलोकिता । अथ अनन्तरम् । पद्मावती मगधराजकुमारी नरपतेः राज्ञः उदयनस्येति शेषः महिषी—कृताभिषेका पट्टराज्ञी भवित्री भाविनी इति च प्रदिष्टा आदिष्टा तैरेव सिद्धैरिति शेषः । तत्प्रत्ययात् सिद्धजनवचनविश्वासात् इदं पद्मावतीहस्ते न्यासरूपेण वासवदत्तास्थापनम् कृतम् विहितम्—हि यस्मात्कारणात् विधिः भाग्यम् सुपरीक्षितानि अविसंवादीन्यवितथानीति यावत् सिद्धवाक्यानि सिद्धपुरुषाणां वचनानि उत्क्रम्य उल्लङ्घ्य न गच्छति । भवितव्यतापि अवितथानि सिद्धवाक्यानि अनुसरत्येवेत्यर्थः । अत्र च काव्यलिङ्गालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

इदानीमुदयनविषयकं प्रेम पद्मावत्याश्चित्ते समुत्पादयितुं विरहविधुरां दीनां वासवदत्तां च समाश्वासयितुं प्रियया वियुक्तस्योदयनस्य दशावर्णनव्याजेन कविः ब्रह्मचारिण प्रवेशमाह ततः प्रविशतीति—ऊर्ध्वमवलोक्य आकाशे दृष्टि

विपत्ति की घोषणा की थी उसे हम लोगों ने प्रत्यक्ष देख लिया । उन्हीं लोगों ने यह भी कहा है कि पद्मावती महाराज उदयन की पत्नी होंगी । उसी वचन का विश्वास कर ऐसा (पद्मावती के पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखना) कार्य किया गया है । क्योंकि भाग्य अच्छी तरह से सुपरीक्षित सिद्ध वाक्यों का उल्लङ्घन कर नहीं चलता है ।

(तदनन्तर ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—(ऊपर देखते हुये) मध्याह्न हो गया है । मैं बहुत

श्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथा हि—

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।

दस्त्वेत्यर्थः। मध्याह्नः अह्नो मध्यम् मध्याह्नः इदम् क्रियाविशेषणमिदमव्ययपदम्। विश्रमयिष्ये विश्रामं करिष्यामि। परिक्रम्य इतस्ततः परिभ्रम्य। विश्रामोचितस्थलान्वेषणार्थमिति शेषः। भवतु अस्तु तावत् स्थानोपलब्धि सूचयति दृष्टमिति—दिनस्य मध्यभागो वर्त्तते अधुनैव प्रचण्डांशुकिरणसम्पातसन्तापात् परिभ्रमणपरिश्रमो मां बाधते। कः खल्वत्र विश्रामयोग्यः प्रदेशो भविता यत्र विश्रमिष्ये। अनुमीयते यदत्रैव कुत्रचित् विश्रामयोग्यं तपोवनं भवेत्तदेव आह—

अन्वयः—देशागतप्रत्ययाः अचकिताः हरिणाः विश्रब्धं चरन्ति। दयारक्षिताः सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः। कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम् (सन्ति) दिशः अक्षेत्रवत्यः। हि धूमः वह्न्याश्रयः। अतः इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम् अस्तीति शेषः ॥ १३ ॥

व्याख्या—विस्रब्धमिति अस्मिन् श्लोके अत्र पदमध्याहार्यम् अत्र अस्मिन् तपोवने देशागतप्रत्ययाः आगतः प्रत्ययो येषां ते आगतप्रत्यया देशे आगतप्रत्ययाः निर्बाधस्थानप्राप्तिविश्वासात् अचकिताः निर्भयाः हरिणाः मृगाः विश्रब्धं निःशङ्कं यथा स्यात्तथा चरन्ति। सर्वे वृक्षाः समस्ताः पादपाः पुष्पफलैः पुष्पैः फलैश्च समृद्धविटपाः परिपूर्णशाखावन्तः सन्तः दयारक्षिताः

थक गया हूँ। अब किस स्थान पर विश्राम करूँ (घूम कर) अच्छा। यह स्थान दिखाई पड़ रहा है। इसके चारों ओर तपोवन होना चाहिये। क्योंकि—

उचित स्थान प्राप्त करने के कारण विश्वासयुक्त निर्भय मृग निःशङ्क होकर चर रहे हैं। सभी वृक्ष जिनकी शाखायें पुष्प और फलों से समृद्ध हैं

भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी—यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये ! आश्रमविरुद्धः

सकरुणं पालिताः । कपिलानि पिशङ्गवर्णानि गोकुलधनानि धेनुसमूहैश्वर्याणि भूयिष्ठं प्रचुरं यथा स्यात्तथा सन्तीति शेषः । दिशः ककुभः प्रान्तभूभागाः अक्षेत्रवत्यः क्षेत्राणि विद्यन्तेऽत्रेति क्षेत्रवत्यः न क्षेत्रवत्यः अक्षेत्रवत्यः कृषि-साधनविहीनानि सन्तीति शेषः । अभितः कृषिप्रयोजनानां क्षेत्राणां सर्वथा-भावो वर्तते इति शेषः । हि यस्मात्कारणात् धूमः बह्वाश्रयः बहूनि होमद्रव्याणि आश्रयो यस्य सः हवनीयद्रव्याश्रयशाली । अयमाशयः अत्र हरिणाः निःशङ्कं चरन्ति । वृक्षाः पुष्पफलसमृद्धिशालिनः सुरक्षिताश्च । कपिला गावः भूयस्यः । प्रान्तभूमयश्च क्षेत्रवर्जिताः सर्वतः वहतो धूमस्य सौरभम् तेनास्य स्थलस्य तपोवनत्वे नास्ति संशयलेशोपीति । अत्रेदमनु-मानं वर्णनवैचित्र्याच्चमत्कारमाविष्करोतीत्यनुमानालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १२ ॥

यावत्प्रविशामीति—यावत् वाक्यालङ्कारे । प्रविशामि प्रवेशं करोमि । ब्रह्म-चारिणां प्रवेशयोग्यमेतत्तपोवनमिति शेषः । (प्रविश्य प्रवेशोपक्रमं नाटयित्वा) नागरिकवेषं काञ्चुकीयं दृष्ट्वा पुरः प्रवेष्टुमाशङ्कमान आह—अयेति । एष जनः कञ्चुकीयलक्ष० : । आश्रमविरुद्ध आश्रमानुकूलः नास्ति नूनम्—अतो

दयापूर्वक रक्षित हैं । यहाँ कपिल वर्णों का गो समूह प्रचुर रूप में दिखाई पड़ रहा है । आस-पास की भूमि कृषि से रहित है और धूआँ भी अनेक प्रकार के आश्रयों से अधिकाधिक निकल रहा है इस कारण निश्चय ही यह तपोवन है ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी—तो इसमें प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश करते हुये) अरे ! यह व्यक्ति तो अनुकूल नहीं है । (दूसरी ओर देखते हुये) अथवा यहाँ

खल्वेष जनः (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र निर्दोषमुपसर्पणम् । अये स्त्रीजनः ।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हं ।

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुप-

मयाऽत्र न प्रवेष्टव्यम् पुनः अन्यतः प्रदेशान्तरे विलोक्य दृशं दत्त्वा आश्रमोचितवेषी तापसी प्रभृति तापसलोकोऽपि वर्त्तते अत उत्सर्पणम् प्रवेशं मम निर्दोषम् दोषरहितम् । पुनः पद्मावतीं वासवदत्तां चेटीं च तत्र पश्यन् स्वप्रवेशे सङ्कोचमावहन्नाह अये स्त्रीजन इति ।

सशङ्कं प्रविश्यमानं ब्रह्मचारिणं दृष्ट्वा काञ्चुकीयस्तत्सङ्कोचं दूरीकर्त्तुम् कथयति स्वैरं स्वैरविति—वीप्सेयं प्रवेशशङ्काप्रशमनत्वराभिप्रायिका । स्वैरं स्वच्छन्दम् निःशङ्कमिति यावत् । सर्वजनसाधारणं सकलव्यक्तिसाधारणम् । अवारितप्रदेशेऽस्मिन्नाश्रमे सर्वेषामविचारितं प्रवेशो भवति । अतो भवताऽत्र प्रवेशे कापि शङ्का न कार्येति भावः । प्रविशन्तं ब्रह्मचारिणं दृष्ट्वा परदर्शनाल्लज्जमाना वासवदत्ता तत्प्रवेशे स्वकीयामसम्मतिं सूचयन् कथयति हमिति असम्मतिसूचकश्चायमनुकरणशब्दः । अवन्तिकाया असम्मतिं बुद्ध्वा पद्मावती वितर्कयन्ती ब्रवीति अम्मो इति—अम्मो वितर्कार्थकमव्ययपदम् आर्या—पूज्या अवन्तिका परपुरुषदर्शनम् परिहरति निषेधति । भवतु आस्तां

तपस्वी जन भी रहते हैं, अतः मेरे जाने में कोई दोष नहीं। अरे। स्त्रियां !

कञ्चुकी—आप स्वच्छन्द बेरोक टोक प्रवेश करें। आश्रम तो सर्वजन साधारण के लिये हुआ करता है।

वासवदत्ता—हूँ ।

पद्मावती—हूँ। आर्या (वासवदत्ता) पर पुरुष का दर्शन नहीं करना

रिवालणीओ खु मण्णासो । [अम्मी ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, र परिपालनीयः खलु मन्नयासः ।]

काञ्चुकीय—भोः ! पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथि सत्कारः ।

ब्रह्मचारी— आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

तावद् । सुपरिपालनीयः सुष्ठु रक्षणीयः मन्नयासः मम न्यासः मत्समीपे स्थापितोऽवन्तिकारूपो न्यास इत्यर्थः । प्रविष्टस्य ब्रह्मचारिण आतिथ्यं कर्त्तुमिच्छन् काञ्चुकीयः कथयति भोः इति पदं ब्रह्मचारिणः सम्बोधनात्मकम् । प्रविष्टाः स्म इत्यादरे बहुत्वम् । भवतामुपस्थितेः प्राग् वयमत्रोपस्थिताः । अतोऽत्रस्थैरस्माभिः क्रियमाणमतिथियोग्यं सत्कारमनन्तरोपस्थिताः प्रतिगृह्णन्तु भवन्तोऽभ्यागताः ।

आचम्येति—उपचारप्रदत्तमाचमनं स्वीकृत्येत्यर्थः । गृहीतोपचारः पुनरप्युपचारप्रदर्शनतः काञ्चुकीयं निवारयितुं त्वरमाणो ब्रह्मचारी वदति भवतु भवत्विति नेतोऽधिकस्योपचारस्यावश्यकता वर्त्तते । निवृत्तपरिश्रमः निवृत्तः परिश्रमो यस्य सः विश्रान्तः अस्मि । आतिथ्यं कृतवति काञ्चुकीये स्वागतं पृच्छति यौगन्धरायणः—भोः इति कुतः कस्मात् स्थानात् । क्व कुत्र स्थाने ।

चाहतीं अच्छा ! अपनी इस (अवन्तिका) धरोहर का संरक्षण भली प्रकार होना चाहिये ।

कञ्चुकी—महाशय ! हम लोग पहले से आये हुये हैं । अतः आप अतिथि सत्कार स्वीकार करें ।

ब्रह्मचारी—(आचमन कर) अच्छा अच्छा । अब सत्कार ग्रहण कर चुका । अब मैं विश्रान्त हो गया हूँ ।

यौगन्धरायण—महाशय ! आप कहाँ से आये हैं ? कहाँ जाना है ? और आर्य का निवास स्थान कहाँ पर है ?

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम् ! राजगृहतोऽस्मि ! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा ! लावाणअं णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [हा ! लावाणकं नाम। लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

गन्तव्यम् गमनीयम् । आर्यस्य पूज्यस्य भवतः क्व कुत्र अधिष्ठानम् । निवासस्थानमस्तीति शेषः । कृपयैतत्कथनपरिश्रमोऽङ्गीकर्त्तव्यस्तत्र भवता । पूर्वोक्तप्रश्नस्योत्तरमाह ब्रह्मचारी भोः श्रूयतामिति—श्रूयताम् निशम्यताम् । राजगृहतोऽस्मीति आगत इति शेषः । राजभवनात् समागतोऽहमस्मीत्यर्थः । वत्सभूमौ वत्सदेशे लावाणकं नाम ग्रामोऽस्ति । अथवा अत्र वत्सो इति वत्सराजनामैकदेशग्रहणम् तस्य भूमौ उदयनराज्ये इत्यर्थः । श्रुतेर्विशेषणार्थम् श्रुतेर्विशेषणायेति श्रुतिविशेषणार्थम् श्रुतिरधीतस्याम्नायस्य विशेषणमनुसन्धानपूर्विका विशिष्टा ज्ञानोत्पत्तिस्तदर्थम् । उषितवानस्मि—कृतवासोऽस्मि । श्रुतेः शब्दज्ञानं संपाद्य पुनस्तदर्थज्ञानं विशेषेण सम्पादयितुमुदयनराज्यान्तर्गते लावाणकनाम्नि ग्रामे वासः कृतोऽस्मीत्याशयः ।

लावाणकनामधेयं श्रुत्वा वासवदत्ता स्वमनस्याह—हा कष्टम् लावाणकं तत्रत्यानुभूतवृत्तान्तस्मृतेर्नाटनम् । लावाणकसंकीर्तनेनेति—अनवोऽपि नव इव कृत इति नवीकृतः । लावाणकनामधेयग्रहणेन—प्रियविरहजन्मा प्राचीनोऽपि मदीयः परितापः अधुना भूयो नूतनः संवृत्त इत्यर्थः । अथेति अथ शब्दः

ब्रह्मचारी—महाशय ! सुनिये । राजगृह से आया हूँ वेद के अर्थज्ञान के विषय में अनुसन्धान के लिये वत्सराज के राज्यान्तर्गत जहाँ लावणक नामक गाँव है वहाँ कुछ काल रहा ।

वासवदत्ता—ओह वही लावणक । लावणक नाम के लेने से मेरा सन्ताप फिर नया सा हो गया ।

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता, विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायण—कथमिव ?

प्रश्ने । विद्या लक्षणया विद्याध्ययनक्रिया परिसमाप्ता अवसिता न वा असमाप्ता । ब्रह्मचारी उत्तरयति न खल्विति तावदिति वाक्यालङ्कारे अद्यापि विद्याध्ययनं पूर्णतां न प्राप्तमित्यर्थः ।

यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति यदीति–यदि अनवसिता असमाप्ता तर्हीदानीं ततः प्रत्यागमने किं कारणमिति । ब्रह्मचारी उत्तरयति तत्रेति–तत्र खलु लावणकग्रामे किल । अतिदारुणम् अत्यन्तभीषणम् व्यसनं विपत्तिः संवृत्तम् सञ्जातम् । लावाणकग्रामेऽधुनातिभीषणा विपत्तिः समुपस्थिता अतएवा-समाप्तविद्याध्ययनोऽपि ततः प्रदेशादागतोऽस्मीति भावः । यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति कथमिवेति किं प्रकारकं तद् व्यसनम् । ब्रह्मचारी उत्तरयति—तत्रेति–तत्र लावाणकग्रामे उदयनाख्यो नाम नरपतिः प्रतिवसति । यौगन्धरायणः कथयति श्रूयते इति तत्र भवान् मान्यः उदयनः श्रूयते आकर्ण्यते । सः किम् । तद्विषये किं वृत्तमिति उदयनसम्बद्धक्रियाविषयकोऽयं प्रश्नः । उदयनस्य लावणकग्रामनिवासानन्तरकालिका क्रिया कथनीयेति भावः ब्रह्मचारी

यौगन्धरायण—तो क्या आपका पढ़ना समाप्त हो गया ?

ब्रह्मचारी—अभी नहीं हुआ ।

यौगन्धरायण—यदि पढ़ना समाप्त नहीं हुआ तो क्यों चले आये ।

ब्रह्मचारी—वहां पर बहुत भीषण आपत्ति आ पड़ी ।

यौगन्धरायण—सो कैसे ।

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्र भवानुदयनः । किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

ततोऽग्रिमं वृत्तं संसूचयितुं तस्येति—दृढमभिप्रेता अत्यन्तं प्रिया । किलेति लोकप्रसिद्धौ । अवन्तीश्वरस्य कुमारी वासवदत्ता नाम्नी काचित् उदयनस्य प्रियतमा भार्यासीदिति लोकप्रसिद्धिर्वर्तते इत्यर्थः । यौगन्धरायणः पुनः कथयति भवदुक्तेन भवितव्यम् ततस्ततः अनन्तरमनन्तरमिति प्रश्नः । अग्रिम-वृत्तान्तश्रवणत्वतरया द्विरुक्तिः । तदनन्तरं किं जातमिति भवन्तः सत्वरं कथयन्त्वित्यर्थः । ब्रह्मचारी कथयति—ततस्तस्मिन्निति ततः तदनन्तरं तस्मिन् नृपतौ मृगयानिष्क्रान्ते मृगयार्थं निर्गते सति प्रवृत्तेन लावाणकग्रामस्य दाहेन दग्धाऽभवत्सा वासवदत्ता । अत्र मिथ्याप्रवादमनुसृत्यैव वासवदत्ताया दाहो कथितो वक्ष्यमाणश्चाग्रे यौगन्धरायणस्य दाहः ।

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नाम के राजा रहते हैं ।

यौगन्धरायण—तत्र भवान् उदयन का नाम तो सुना गया है । फिर उनका क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—अवन्ती राज की पुत्री जिसका नाम वासवदत्ता था, वह उनकी पत्नी थी जो उन्हें बहुत प्रिय थी।

यौगन्धरायण—होंगीं । तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—किसी समय जब राजा शिकार खेलने के लिये गये थे उस गाँव में आग लग गई । जिसमें उनकी प्यारी पत्नी जल गई ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं। जीवामि मन्द-भाआ। [अलीकमलीकं खल्वेतत्। जीवामि मन्दभागा।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति। ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-

---

आत्मनो दाहवृत्तान्तं श्रुत्वा रहस्यस्फोटभीत्या वासवदत्ता आत्मगतमाह अलीकमलीकमसत्यमसत्यमिति भृशार्थे द्विरुक्तिः। जीवामि मन्दभागेति-प्रियवियोगेऽप्यनपगतप्राणा हतभाग्या प्राणान् विभर्मीत्यर्थः। वासवदत्ता-दाहानन्तर संवृत्तं वृत्तं श्रोतुम् यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति ततस्तत इति। पुनराग्निवृत्तान्तं प्रकाशयति ब्रह्मचारी ततस्तामिति—ताम् वासवदत्ताम् अभ्यवपत्तुकामः संत्रातुकामः सचिवः मन्त्री यौगन्धरायणः तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः मृतश्च। तदनन्तरमग्निदाहव्यसनाद्वासवदत्तामुद्धतुं यौगन्धरायण-नामधेयो राज्यमन्त्री तत्रैव वह्नौ आत्मानमपातयदिति भावः। यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति ततस्तत इति—अग्रे शेषवृत्तान्तं कथयत्विति भावः। ब्रह्मचारी कथयति ततः प्रतिनिवृत्त इति-तयोर्वृत्तान्तस्तम् यद्वा स चासौ वृत्तान्तश्च

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह बात झूठ है, झूठ है। मैं अभागिनी तो अभी तक जीवित हूँ।

यौगन्धरायण—तब इसके बाद क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब महारानी वासवदत्ता को विपत्ति से बचाने की इच्छा से मन्त्री यौगन्धरायण भी उसी आग में गिर पड़े।

यौगन्धरायण—सच में ही गिर गये। फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर शिकार से लौटे हुये राजा ने इस वृत्तान्त को सुन

ज़नितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामाऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ-साणुक्कोसत्तणं । [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः ।

तस्मिन्निति तद् वृत्तान्तम् तयोः वासवदत्तायौगन्धरायणयोः वियोगजनित-सन्तापः वियोगेन विरहेण जनितो सन्तापः यस्य सः शोकावेगस्य दुःसहत्वेनेति शेषः तस्मिन्नेवाग्नौ तत्रैव दहने निपत्य प्राणपरित्यागे कृतमतिर्नरपतिः अमात्यैः रुमण्वत्प्रभृतिभिः महता यत्नेन अतिप्रयासेनवारितः निवारितः । स्वप्रियावियोगादग्निप्रवेशोद्यतं राजानं निशम्य स्वहृदये वासवदत्ता तं प्रशंसति—जानामीति—आर्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशः अनुक्रोशः दया तेन सहितः सानुक्रोशस्तस्य भावस्तम् दयालुत्वं जानामि जानामि द्विरुक्त्या परिपूर्णं ज्ञानं लक्ष्यते । तत्र भवान् मयि विषये दयालुरस्तीति पूर्णतयावगच्छामि । प्रियाया मे वियोगं सोढुमशक्नुवतस्तस्य तादृशी चेष्टा सम्भवतीति भावः । अग्निप्रवेशान्निवारितस्य तस्य राज्ञः इदानीं कीदृशी चेष्टा वर्तते इति जिज्ञासमानो यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति ततस्ततः इति । ब्रह्मचारी तदुत्तरवृत्तं ततस्तस्या इति तस्या वासवदत्तायाः शरीरोपभुक्तानि देहोपभुक्तानि दाह-

---

कर महारानी एवं महामन्त्री यौगन्धरायण के वियोग से सन्तप्त हो उसी आग में अपने प्राण देने की इच्छा की । तदनन्तर मन्त्रियों ने बड़े यत्न से उन्हें ऐसा करने से रोक लिया ।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र की मुझ पर जैसी दया थी उसे मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर राजा वासवदत्ता के पहने हुये और जलने से बचे आभूषणों को छाती से लगा कर मूच्छित हो गये ।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दाणिं अय्यजोअन्धराअणओ होदु। [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इयं अय्या । [भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।]

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी । ततस्ततः ?

शेषाणि दाहावशिष्टानि आभरणानि आभूषणानि परिष्वज्य आलिङ्ग्य राजा उदयनः मोहमुपगतः मूर्च्छितोऽभूदित्यर्थः । हा इति उदयनस्य दाहः शोच्यते इति भावः । सकामः पूर्णमनोरथः । भर्तृदारिके राजकुमारि ! । आर्या अवन्तिका रोदिति अश्रूणि विमुञ्चति । सानुक्रोशया करुणापरया । यौगन्धरायणः वदति अथ किम् अथ किमिति–एतस्या रोदने एतदेव कारणं सम्भाव्यते पद्मावत्याःकथनं द्रढयितुं द्विरुक्तिः । प्रकृत्या स्वभावेन । सानुक्रोशा दयावती । ततस्ततः अनन्तरमनन्तरम् । शनैः शनैः कालक्रमेण । प्रतिलब्धसंज्ञः प्रतिलब्धः सम्प्राप्तः संज्ञा सम्यग् ज्ञानं चेतना वा येन सः । संवृत्तः संज्ञातः । मूर्च्छितो राजा कियत्कालानन्तरं चेतनां लब्धवानित्यर्थः । दिष्टया अव्ययपदम् भाग्येन ।

सभी—हाय !

वासवदत्ता—(आप ही आप) यौगन्धरायण का मनोरथ पूर्ण हो ।

दासी—राजकुमारी जी ! ये अवन्तिका तो रो रही हैं ।

पद्मावती—दया आ गई होगी ।

यौगन्धरायण—और क्या ? और क्या ? मेरी बहिन स्वभाव से ही बहुत दयालु हैं । अच्छा फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ। मोहं गदो त्ति सुणिअ सूण्णं विअ मे हिअअं। [दिष्टया ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

ध्रियते अवतिष्ठते जीवति । हृदयं मनः । शून्यम् इव चैतन्यरहितमिव । राजा मूर्च्छितोऽभूदिति श्रवणानन्तरमचेतनया मया हृदयशून्ययैव सञ्जातमिति पद्मावत्याः आशयः । एतेन पद्मावत्या मनस्युदयनविषयकः प्रेमाङ्कुरोत्पत्तिर्व्यज्यते । या भावि राजसम्बन्धे कार्यसाधिका भविष्यति । यौगन्धरायणः राज्ञो मूर्च्छापगमनान्तरं अवस्थाविशेषं श्रोतुमुत्कण्ठितो भूत्वा पुनः पृच्छति—ततस्तत इति ब्रह्मचारी राज्ञोऽवस्थाविशेषमाह—ततः स राजा इति—महीतलपरिसर्पणयां सुपाटलशरीरः मह्यास्तलं महीतलं तत्र यत्परिसर्पणम् तेन महीतलपरिसर्पणेन लग्ना ये पासवः तैः पांसुभिः पाटलं शरीरं यस्य सः भूतलपरिवर्तनधूलिश्वेतरक्तदेहः । सहसा अतर्कितम् । किमपि अनिर्वाच्यम् ।

ब्रह्मचारी—इसके अनन्तर धीरे-धीरे राजा होश में आये ।

पद्मावती—भाग्य से वे जीते जागते हैं । 'मूर्च्छित हो गये' ऐसा सुन कर मेरा हृदय तो शून्य मा हो गया ।

यौगन्धरायण—अच्छा ! उसके बाद—

ब्रह्मचारी—इसके अनन्तर राजा पृथ्वी में लोटने लगे जिसके कारण उनका शरीर धूलि समूह से भर गया । फिर एकाएक उठ कर हा प्यारी ! हा वासवदत्ते ! हा अवन्ती राजकुमारी ! हा प्रियशिष्ये ! इत्यादि कह कर बहुत विलाप करने लगे । अधिक क्या कहा जाय ?

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १३ ॥

भूपतिः भूतले परितः सर्पणेन धूलिधूसरकलेवरोऽकस्मादुत्थाय हा वासवदत्तेति अनर्थकं वचो बभासे।

अन्वयः—इदानीं तादृशाः चक्रवाका न एव। स्त्रीविशेषैः वियुक्ता अन्ये अपि तादृशा न एव। सा स्त्री धन्या यां भर्त्ता तथा वेत्ति। हि सा दग्धा अपि भर्तृस्नेहात् अदग्धा ॥ १३ ॥

व्याख्या—नैवेति–इदानीम् अधुना। तादृशाः उदयनसदृशाः। चक्रवाकाः कोकाख्याः पक्षिणः न एव। ये रात्रौ नित्यं भार्यावियोगं सहन्ते तादृशाश्चक्रवाकाऽपि उदयनविरहावस्थासमानकोटितां न गच्छन्तीत्यर्थः चक्रवाकाणां विरहावस्थातोऽभ्यधिकैवास्ति वियोगदुःखस्योदयनस्येति भावः। स्त्रीविशेषैः दमयन्ती-शकुन्तला-सीताप्रभृतीभिः वियुक्ता अन्ये अपि नल-दुष्यन्त–रामादयोऽपीति तादृशाः तत्सदृशाः उदयनसदृशाः पत्नीविरहा-सहिष्णवः न एव नैव सन्ति। सा पूर्वोक्ता स्त्री योषित् वासवदत्तेति भावः धन्या पुण्यवती यां स्त्रियम् भर्त्ता पतिः तथा तेन प्रकारेण वेत्ति जानाति। हि सा स्त्री दग्धा अपि भस्मीकृता अपि भर्तृस्नेहात् स्वप्रियस्य प्रणयात् अदग्धा कीर्त्तिशरीरेण जीवितप्राया एव। अतः पत्युः निरतिशयप्रीतिपात्रभूता स्त्री नूनं कृतकृत्यैवेति भावः। अत्र पूर्वार्धे प्रसिद्धानां चक्रवाकादीनामुपमानानां

इस समय उन राजा के समान चक्रवाक भी जो नित्य रात में प्रिया से वियुक्त रहते हैं दुःखी नहीं है। पक्षियों की बात तो दूर हैं स्त्री विशेष से वियुक्त रहने वाले नल, राम और दुष्यन्त भी वैसे दुखी न रहे होंगे जैसे दुःखी इस समय उदयन हैं। वह स्त्री धन्य हैं जिसे उसका पति इस प्रकार जानता है यद्यपि वह जल गई किन्तु पति प्रेम के कारण

यौगन्धरायणः—अथ भोः! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम्। स हि—

मुपमेयप्रतिपादनात् प्रतीपालङ्कारः। शालिनी छन्दः। तल्लक्षणं यथा शालिन्युक्ता तौ म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः॥ १३॥

विषण्णं राजानं शोचनीयावस्थं श्रुत्वा यौगन्धरायणः ब्रह्मचारिणं पृच्छति—अथेति—अथ प्रश्ने। तु वाक्यालङ्कारे। पर्यवस्थापयितुं प्रकृतिस्थं कारयितुम्। कश्चित् कोऽपि। अमात्यः मन्त्री यत्नवान् न किम्। ब्रह्मचारिन्! राजानं प्रकृतिस्थं विधातुं कश्चिन्मन्त्री यत्नवान्नाभवत् किमिति। ब्रह्मचारी उत्तरयति—अस्तीति—तत्र भवन्तम् राजानमुदयनम्। दृढं गाढं भूयिष्ठमिति यावत्। पर्यवस्थापयितुम् प्रकृतिस्थं कारयितुम्। प्रयत्नवान् प्रयत्नसम्पन्नः। अस्ति स्म अभूत्। श्रीमतं महाराजं प्रकृतिस्थं कर्त्तुं रुमण्वान् नामा कोऽपि सचिवः गाढं प्रयत्नम् तनुतेत्यर्थः। इदानीं रुमण्वतः प्रयत्नं वर्णयति—अनाहारे इति।

जल जाने पर भी वह अभी भी अपने कीर्त्ति शरीर से जीवित जैसी लगती है॥ १३॥

यौगन्धरायण—महाशय! क्या किसी मन्त्री ने राजा को प्रकृति में लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया?

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नाम के महामन्त्री उनको प्रकृति में लाने के लिये दृढ प्रयत्न कर रहे हैं। वे तो—

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

अन्वयः—(स हि) अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः नरपतिं परिचरति। नृपः प्राणान् त्यजति यदि तस्य अपि सद्यः उपरमः ॥ १४ ॥

व्याख्या—(स हि रुमण्वान्नामकः सचिवः) अनाहारे भोजनाभावे तुल्यः सदृशः नृपेणेति शेषः। यदि वासवदत्ताशोकविकलेन राज्ञा भोजनं परित्यक्तम् तदा रुमण्वमतापि राजचिन्तया भोजनं न क्रियते इत्यर्थः। प्रततरुदित क्षामवदनः प्रततेन सन्ततेन अविच्छिन्नेनेति यावत् रुदितेन क्षामं क्षीणं वदनं यस्य सः। राज्ञ इव रुमण्वतोऽपि सततमश्रुपातेन मुखं विच्छायतां गतमिति भावः। नृपति समदुःखं नृपतिना राज्ञा समं तुल्यं दुःखं कष्टं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथा शरीरे देहे संस्कारं मार्जनादिना शरीरस्वच्छतां परिवहन् दधानः सन् राजा यथा कथञ्चित्कष्टाधिक्येन स्वस्नानादि संस्कारमारचयति तथा रुमण्वानपि आवश्यकतातिशयमवेक्ष्य कथं चित्कष्टभूयिष्ठं शरीरसंस्कारमङ्गीकरोतीत्यर्थः। दिवा वा रात्रौ वा अहर्निशमित्यर्थः यत्नैः प्रयत्नैः नरपतिं राजानं परिचरति सेवते। नृपः वासवदत्ताशोकातिशयेन सद्यस्तत्कालं प्राणान् परित्यजति तदा रुमण्वतोऽपि सद्य एव उपरमः मृत्युः जात भविष्यति इति शेषः। सर्वात्मना राजानमनुसरन् रुमण्वान् राजेव कष्ट-

राजा के भोजन न करने पर वे स्वयं भोजन करते। जिस प्रकार निरन्तर रोते रहने के कारण राजा का मुख सूख गया है उसी प्रकार उनका भी मुख मलीन हो रहा है। वह राजा के समान दुःख अनुभव करते हुये शरीर को स्वच्छ करने के लिये बड़े कष्ट से स्नान आदि संस्कार करते हुये अनेक यत्नों से रात दिन राजा की सेवा में लगे रहते हैं यदि राजा शीघ्र

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो। [दिष्टया सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान्। कुतः—

मयं जीवनं बिभर्ति। एवमुदयनसमदुःखसुखावस्थो रुमण्वानपीति भावः। शिखरिणी नामकं छन्दः। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति तल्लक्षणम् ॥ १४ ॥

रुमण्वतो भृशम् परिचर्यया पत्युः समुचितं रक्षणं सम्भावयन्ती वासवदत्ता स्वमनसि कथयति—दिष्टचेति–दिष्टचा दैवेन सौभाग्येनेति यावत्। सुनिक्षिप्तः सुष्ठु निक्षिप्तः। तत्र भवतः मम प्रियतमस्य रक्षा भारोऽग्रम् समयेऽस्मिन् समुचिते स्निग्धे रुमण्वत्यारोपितोऽस्तीति सौभाग्य-मस्माकमित्यर्थः। महतीं राजरक्षांधुरं वहतः रुमण्वतः प्रशंसामुखेन स्वमनसि कथयति यौगन्धरायणः अहो इति–अहो आश्चर्यम् महद्भारम् महतः विशिष्टस्य कार्यस्य भारः धूः तम्। उद्वहति गृह्णाति उत्थापयतीत्यर्थः। रुमण्वतो विस्मयकरोऽयं प्रयत्नः यद् राज्ञो रक्षणसदृशं गुरुतरकार्यभारं सावधानतया-नुतिष्ठतीति भावः। अतः सर्वथा प्रशंसास्पदः सोऽस्तीति भावः। कुत इति तदेवाहाग्रिम श्लोकेन—

अपने प्राणों का परित्याग करे तो उसका भी प्राण गया हुआ समझना चाहिये।

वासवदत्ता—(आप ही आप) भाग्य से इस समय स्वामी अच्छे व्यक्ति के देख रेख में हैं।

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहो रुमण्वान् ने बहुत बड़ा भार सम्भाला है क्योंकि—(वासवदत्ता को पद्मावती के यहाँ निक्षेप रूप में रखने से) मेरा यह भार तो कुछ हल्का हो गया। किन्तु रुमण्वान् का भार बढ़

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥ १५ ॥

(प्रकाशम्) अथ भोः! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा?

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने। इह तया सह हसितम्, इह तया

अन्वयः—हि अयं भारः सविश्रमः। तस्य तु श्रमः प्रसक्तः। हि तस्मिन् सर्वम् अधीनम्। यत्र नराधिपः अधीनः ॥ १५ ॥

व्याख्या—सविश्रम इति—हि यस्मात्कारणात् अयं सन्निकृष्टस्थः भारः धूर्मदीय इति शेषः वासवदत्तारक्षात्मक इति यावत् सविश्रमः विश्रमयुक्तः। पद्मावत्याः समीपे वासवदत्तानिक्षेपेणाहं विश्रान्त इति भावः। तस्य तु रुमण्वतस्तु श्रमः उदयनरक्षारूपः परिश्रमः प्रसक्तः संलग्नः। हि यस्मात्कारणात्—तस्मिन् रुमण्वति सर्वम् सकलम्—अधीनम् आयत्तम् यत्र यस्मिन् रुमण्वति नराधिपः राजा अधीनः आयत्तः। मद्भारापेक्षया रुमण्वतो भारो गुरुतर ससर्वथा प्रशंसार्हं इति भावः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तर न्यासोऽलङ्कारः अनुष्टुप् छन्दः ॥ १· ॥

प्रकाशम् सर्वश्राव्यं यथा स्यात्तथा ब्रूते इति शेषः। अथ अनन्तरं। भोः महाशय। पर्यवस्थापितं प्रकृतावापादितः। विकारपरिहारेण मन्त्रिभिः पूर्वावस्थां प्रापितः किमिति यौगन्धरायणप्रश्नाशयः। ब्रह्मचारी उत्तरयति—तदिदानीमिति—तद् वृत्तम् राजपर्यवस्थापितत्वमिति भावः। न जाने नावगच्छामि। इह अत्र स्थाने तया सह वासवत्तया समम्। हसितम् हासः कृतः। इह तया सह कथितम् भाषितम्। इह तया सह पर्युषितम् स्थितम्

गया है समस्त राज्य भार भी उसी के अधीन रहते हैं—(प्रकाश रूप में) तो क्या इस समय राजा प्रकृतिस्थ कर लिये गये हैं?

ब्रह्मचारी—इस :समय यह बात मैं तो नहीं जानता। 'यहाँ उसके साथ हँसा था, यहाँ उसके साथ बातचीत की थी, यहाँ उसके साथ बैठा था,

सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्। ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः। ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा

इह कुपितम् कोपः कृतः। शयितं शयनं कृतम्। इति विलपन्तम् विलापं कुर्वन्तं राजानम् अमात्यैः मन्त्रिभिः रुमण्यवदादिभिः महता यत्नेन प्रयासेन गृहीत्वा तस्माद् ग्रामाद् अपक्रान्तम् निर्गतम्। ततः तस्माद् ग्रामाद् निष्क्रान्ते राजनि राज्ञो निर्गमनानन्तर मित्यर्थः। प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव प्रोषितानि अस्तं गतानि नक्षत्राणि चन्द्रश्च यस्मात्तादृशो नभ इव आकाश इव। अरमणीयः सौन्दर्यशून्यः स लावणको नाम ग्रामः संवृत्तः सम्प्राप्तः। यथा चन्द्रमसा नक्षत्रैश्च विहीनमाकाशे शोभते तथा मन्त्रिभिः राज्ञा च विरहितस्य लावणक ग्रामस्य शोभा विनष्टाभूदित्यर्थः। इत्येवं लावणक व्यसनवृत्तान्तं सूचयित्वा। यद्यनवसिता विद्या किमयागमनप्रयोजनमिति यौगन्धरायण प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्ब्रह्मचारी कथयति ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मीति। राजाद्यपसरणेन ग्रामस्य निःश्रीकतया तत्र वस्तुमनिच्छया मयापि तस्माद् ग्रामाद् प्रस्थानं कृतम्। एतदेव तत्प्रदेशत्यागेममाभून्निमित्तमित्यर्थः। स खलु इति—

तापसी वदति—गुणवान् प्रशस्त गुणयुक्तः। आगन्तुकेन अतिथिना प्रश-

---

यहाँ रूठा था और यहाँ उसके साथ सोया था, इत्यादि अनेक प्रकार से बहुत विलाप करते हुये उस राजा को लेकर मन्त्री लोग उस गाँव से बाहर चले गये। राजा के चले जाने पर चन्द्रमा और नक्षत्रों से रहित आकाश की भाँति वह गाँव सर्वथा शोभा रहित हो गया। इस कारण मैं भी वहाँ से निकल पड़ा।

तापसी—वे राजा बड़े गुणी मालूम पड़ते हैं जिनकी आगन्तुक भी ऐसी प्रशंसा करता है?

एव्वं पससीअदि। [स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।]

चेटी—भट्टिदारिए! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि। [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती—(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम्। [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्।]

ब्रह्मचारी—आ पृच्छामि भवन्तौ। गच्छामस्तावत्।

स्यते प्रशंसा क्रियते यद्यप्यस्य तापसीवाक्यस्य पथिकोऽयं ब्रह्मचारी यमिमं प्रशंसतीति वाच्योऽर्थः लभते तथापि सर्वथा दयार्द्रहृदयो वरगुणसम्पन्नो राजा नूनं पद्मावतीसम्बन्धयोग्योऽस्तीति व्यङ्ग्यार्थोऽपि ऊहनीयः। तापस्य-भिप्रायमवबुध्य वराभिलाषिणीं पद्मावतीं प्रति तदाशयजिज्ञासया चेट्याह। भर्तृदारिकेति-अपरा अन्या गमिष्यति यास्यति। राजकुमारि ! पद्मावति। किं काचिदन्या योषित् भूपतेरुदयनस्य हस्तगता भविष्यतीति शब्दार्थः। यदि एतादृशेन गुणिनोदयनेन सह कस्याश्चिदन्यस्या योषितः विवाहसम्बन्धो भवेत्तदा सा धन्या भवेदित्याशयः। त्वयैव वरणीयः सर्वथा श्लाघ्यगुणोऽयं राजा कथमपीति व्यङ्ग्यार्थः। गुणिनमुदयनं पतिं प्राप्तुमिच्छन्ती पद्मावती सञ्जातहर्षा सहजलज्जावशात् स्वकीयं भावमपह्नुवाना मनसि चेटीमभि-नन्दति-मम हृदयेनेति एव शब्दो सह शब्देनान्वेति। मम-हृदयेन सहैव मन्त्रितम् विचारितं चेट्येति भावः। पद्मावतीहृदये उदयनरूपवराभिलाष-मुत्पादयितुमुपस्थितो ब्रह्मचारी तदनुरूपमुदयनावस्थाविशेषमुपस्थाप्य कृतकार्यस्ततो गन्तुमिच्छन्नाह आ पृच्छामीति। आ इति स्मरणार्थक-

---

दासी—राजकुमारी जी ! तो क्या और अन्य स्त्री उसके हाथ जायगी (उससे विवाह करेगी)।

पद्मावती—(मन ही मन) इसने मेरे मन के अनुसार ही सोचा।

ब्रह्मचारी—अच्छा ! अब आप दोनों (परिव्राजक वेषधारी यौगन्ध-रायण और कञ्चुकीय) की आज्ञा चाहता हूँ। यह मैं चल रहा हूँ।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये ।

ब्रह्मचारी—तथाऽस्तु ।

(निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्र भवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल !

मव्ययपदम् । पृच्छामि गन्तुमिच्छामि । गमने परिव्राजककञ्चुकीययोर्भवतोरनुज्ञां लब्धुमिच्छामीत्यर्थः । पुनः वृद्धयोः परिव्राजककञ्चुकीययोराशीर्वादगर्भां गमनाज्ञां दर्शयति कविः । अर्थसिद्धये प्रयोजनसाफल्याय । ब्रह्मचारी कथयति—तथास्त्विति तथा तेन प्रकारेण अस्तु भवतु । श्रीमत्सूचितामाज्ञां स्वीकृत्याहं गच्छामीत्याशयः । निष्क्रान्तः प्रस्थानं सूचितं ब्रह्मचारिणः । एवं कृतकार्यो यौगन्धरायणस्ततो गन्तुमुद्यतः । श्रीमत्याः पद्मावत्याः अनुज्ञां गमने लब्धुमिच्छन्नाह—साध्विति साधु समीचीनम् । मद्भगिनीरक्षणं भवत्या स्वीकृतमिति तदर्थमभिनन्दनीया भवतीत्यर्थः । तत्र भवत्या पूज्यया अभ्यनुज्ञातः अनुज्ञां लब्ध्वा गन्तुमिच्छामि । एवं गमनानुमतिं लब्धुमिच्छति यौगन्धरायणे कञ्चुकीयः तमेवार्थं पद्मावतीं प्रति प्रार्थयते—तत्र भवत्येति । आर्यायाः भवत्या अनुमत्या गन्तुमिच्छतेऽस्मै यौगन्धरायणाय भवती गमनानुज्ञां दातुमर्हतीति

दोनों—अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये जाइये ।

ब्रह्मचारी—तथास्तु ।

(चला गया)

यौगन्धरायण—अच्छा ! अब मैं भी तत्र भवती की आज्ञा प्राप्त कर जाना चाहता हूँ ।

कञ्चुकी—(पद्मावती से) आपकी आज्ञा लेकर ये महाशय भी जाना चाह रहे हैं ।

पद्मावती—अय्यस्स भइणिया अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि।
[आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। (काञ्चुकीयमवलोक्य) गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायणः—तथास्तु।

(निष्क्रान्तः)

भावः। आगन्तुकस्य गमनेन तद्भगिनीं विमनायमानां सम्भाव्य तस्मै यौगन्धरायणाय गमनानुज्ञां दातुमनिच्छन्ती पद्मावती ब्रवीति—आर्यस्य भगिनिकेति आर्यस्य पूज्यस्य भगिनिका स्वसृका उत्कण्ठयिष्यते उत्कण्ठिता भविष्यति श्रीमतो दर्शनं विना खिन्ना भविष्यतीत्याशयः। कदाचिदेकाकिन्यै भवतो भगिन्यै नात्र वासो रोचिष्यते इत्येतदेव चिन्तयामीति भावः। साधुजनेति—साधुजनहस्तगता साधुश्चासौ जनश्चेति साधुजनस्तस्य हस्तगता आश्रये संश्रिता इयं मे भगिनी। नोत्कण्ठयिष्यति नोद्विग्ना भविष्यति कञ्चुकीयमिति—कञ्चुकीयं दृष्ट्वा वदतीत्यर्थः। गच्छामस्तावदिति साधयामो वयमिदानीम्। कञ्चुकीयः वदति गच्छत्विति साम्प्रतं भवता गम्यताम् भूयः स्वकीयं दर्शनं दातुमित्यर्थः। तथास्त्विति तथैव भवेत्। साम्प्रतं गच्छामि आ मिष्यामि च पुनर्यथावसरं भवतो दर्शनं कर्त्तुमित्यर्थः। तथास्तु तथा तेन प्रकारेण भवदुक्तानुसारमित्यर्थः। अस्तु भवतु। निष्क्रान्तः निर्गतः।

पद्मावती—आपकी बहन आप के बिना उदास हो जायेंगी।

यौगन्धरायण—अच्छे आदमी के आश्रय में रहने से यह उदास नहीं होगी। (कञ्चुकी को देख कर) तो मैं जाता हूँ।

कञ्चुकी—अच्छा जाइये किन्तु पुनः दर्शन दीजियेगा।

यौगन्धरायण—ऐसा ही हो।

(चला गया)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि ।[जाते, तव सदृशं भर्त्तारं लभस्व ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव अहं । [आर्ये ! वन्दे तावदहम् ।]

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि । [त्वमप्यचिरेण भर्त्तारं समासादय ।]

यौगन्धरायण इति शेषः । समय इति इदानीम् अधुना अभ्यन्तरं पर्णशालाभ्यन्तरं प्रवेष्टु प्रवेशं कर्त्तुम् । समयः कालः । साम्प्रतमत्रावस्थानमयुक्तमतो पर्णशालाभ्यन्तरं गन्तुमयं काल इति भावः ।

काञ्चुकीयवचनानुसारं गन्तुकामा पद्मावती गमनानुमतिं प्राप्तये प्रस्थानकालोचितं प्रणतिभावं तापसीं प्रति दर्शयन्ती आह—आर्ये इति । आर्ये पूज्ये तापसि वन्दे प्रणमामि । वरार्थिनीं पद्मावतीं प्रति सुताभावं वहन्ती वृद्धातापसी समयोचितमाशीर्वचनं ददाति—जाते इति । जाते पुत्रि ।

तव सदृशम् आत्मतुल्यम् । गुणिनं भर्त्तारं पतिम् लभस्व प्राप्नुहि । तत्समीपे न्यासीभूता वासवदत्ताऽपि पद्मावत्या गमनेन सहैव गन्तुमुद्यता तापसीं प्रति शिष्टाचारोचितं प्रणतिं समाचरति आर्ये इति । तावच्छब्दो वाक्यालङ्कारे । आर्ये पूजनीये अहम् गन्तुमुद्यतातोऽभवतीं प्रणमामि । गमनाज्ञा दीयतां मह्यमिति भावः । प्रणामानुकूलमाशिषं तापसी प्रददाति

कञ्चुकी—अब भीतर चलने का समय हो गया ।

पद्मावती—आर्ये ! प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—बेटी ! तुम अपने समान पति प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—तुम भी शीघ्र अपना पति प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि । [अनुगृहीताऽस्मि ।]

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इतो भवति ! सम्प्रति हि—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १६ ॥

त्वमप्यचिरेणेति—अचिरेण शीघ्रम् भर्त्तारम् प्रोषितं स्वपतिं समासादय तत्समागमसुखं लभस्वेत्यर्थः । तामस्याशिषं वासवदत्ता स्वीकरोति—अनुगृहीताऽस्मीति अनुगृहीता कृतानुग्रहा अस्मि भवामि । भवदीयमाशीर्वादवचनं शिरसा प्रतिगृह्णामीत्यर्थः । मार्गप्रदर्शनरूपं स्वकीयं कर्त्तव्यं संवहन् कञ्चुकीय आह—तदागम्यतामिति तत् तस्मात् सायं सन्ध्यासमयसन्निधानात् इत इतः अध्वनः सूचनम् । भवति कुमारि पद्मावति ! आगम्यताम् आगच्छतु भवती । हि यस्मात् कारणात् । सम्प्रति समयेऽस्मिन् ।

अन्वयः—खगाः वासोपेताः । मुनिजनः सलिलं अवगाढः । प्रदीप्तः अग्निः भाति । धूमो मुनिवनं प्रविचरति । दूरात् परिभ्रष्टः असौ रविः अपि संक्षिप्तकिरणः सन रथं व्यावर्त्य शनैः शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ॥ १६ ॥

व्याख्या— खगा इति—खगा पक्षिणः वासोपेताः स्ववासस्थानं (कुलायं) प्राप्ताः । मुनिजनः तपस्विलोकः सलिलं जलम् अवगाढः स्नानार्थं प्रविष्टः । प्रदीप्तः प्रज्वलितः अग्निः अनलः भाति शोभते । आहुतिप्रदानेन प्रदीप्तस्याग्नेः शोभा दर्शनीयाऽस्तीति भावः । धूमः होमजन्यः धूमः मुनिवनम् तपोवनम् प्रवि-

---

वासवदत्ता—अनुगृहीत हुई ।

कञ्चुकी—तो आइये तत्र भवती । इधर से चलिये ।

इस समय तो चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसलों में चली गईं । तपस्वी लोग

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

—:※:—

चरति सर्वत्र व्याप्नोति । दूरात् दूरवर्त्तिनो गगनतलात् परिभ्रष्टः पतितः रविः सूर्यः संक्षिप्तकिरणः संक्षिप्ताः उपसंहृताः किरणा मरीचयो येन सः । तादृशः सन् रथं व्यावर्त्य वेगवतो रथस्य गतिं सन्निरुध्य शनैः क्रमशः अस्त-शिखरम् अस्ताचलस्य चूडाम् प्रविशति गाहते । एभिर्लक्षणैः सायंसन्ध्या-सन्निधौ वर्तते अतो मत्प्रदर्शितं पन्थानमवलम्ब्य पर्णशालाभ्यन्तरं भवत्या गन्तव्यमिति भावः । सन्ध्यासमयस्यानुमानात् तस्य हृदयाकर्षकत्वेन अनुमानालङ्कारः । सन्ध्याकालवर्णनात्स्वभावोक्तिरपि । शिखरिणीवृत्तम् ॥ १६ ॥

निष्क्रान्ताः सर्वे इत्यनेन सर्वेषां निर्गमनमङ्कसमाप्तिश्च प्रसङ्गेऽत्र सूचितम् । अङ्कलक्षणं यथा 'नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदङ्कः । तन्निरुक्तिर्यथा—अङ्क इति रुढशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहत्यर्थान् । साहित्यदर्पणेऽपि-अन्तनिष्क्रान्तनिखिल पात्रोऽङ्क इति कीर्त्तितः ।

॥ इति श्रीस्वप्नवासवदत्तस्य व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

—:※:—

जल में स्नान के लिये प्रविष्ट हो गये । प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है तपोवन में चारों ओर धूँआँ व्याप्त हो रहा है आकाश में बहुत ऊँचाई से गिरते हुये सूर्य अपनी किरणों को समेट कर तथा अपने रथ का वेग रोक कर अब अस्ताचल को जा रहे हैं ॥ १६ ॥

(सब चले गये)

॥ प्रथम अङ्क की भाषा टीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणसि, एषा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति। जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अम्भो ! इअ भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचुलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि। जाव उवसप्पिस्स। [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि,

---

इदानीं प्रथमाऽङ्के पद्मावत्या हृदि सूचितोदयनविषयकाभिलाषस्य परिपोषं सखीसंलापभङ्ग्या प्रकाशयिष्यन् तदनुरूपं चेटयाः प्रवेशं दर्शयति कविः—तत इति—ततः द्वितीयाङ्कस्य प्रारम्भे चेटी दासी प्रविशति रङ्गमञ्चं समागच्छति। प्रविष्टेयं चेटी नामधेयपुरःसरमपरां चेटीं प्रसङ्गानुकूलं वचनमुपन्यस्यति—कुञ्जरिकेति। अत्र वीप्सा त्वरायामामन्त्रणस्य। कुत्र कस्मिन् स्थाने। माधवीलतामण्डपस्य वासन्तीवल्लीमण्डपस्य। पार्श्वतः समीपे। कन्दुकेन क्रीडति खेलति। परिक्रम्य परिभ्रम्य इतस्ततो गत्वेत्यर्थः। अम्मो विस्मयबोधकाव्ययपदम्। उत्क्षतकर्णचूलिकेन उत् ऊर्ध्वम् कृतेन स्थापितेन कर्णचूलेन कर्णाभरणेन। व्यायामसञ्जातस्वेदविन्दुविचित्रितेन व्यायामेन सञ्जाताः ये स्वेदविन्दवः तैः विचित्रितेन। परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन परिश्रान्तेन रमणीयं दर्शनं यस्य तत् तेन। मुखेन आननेन उपसर्पामि समीपं गच्छामि। अत्र एषा इत्यारभ्य क्रीडति पर्यन्तो ग्रन्थः आकाशभावितं

चेटी—कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! राजकुमारी पद्मावती कहाँ हैं ? कहाँ है ? क्या कहती हो राजकुमारी माधवी कुञ्ज के पास गेंद खेलती है ? अच्छा ! राजकुमारी के पास चलूं। (घूमते हुये देख कर) अरे ये राजकुमारी कान के आभूषणों को ऊपर उठाये हुये व्यायाम

एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायाम सञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति ! यावदुपसर्प्स्यामि]

(निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह।)

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ ! [हला ! एष ते कन्दुकः।]

नाम कथ्यते नाटकेषु—तल्लक्षणं दर्पणे 'किं ब्रवीषीति यन्नाटये विना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम्' इति। पूर्वोक्तविशेषण विशिष्टा तत्र भवती पद्मावती कन्दुकक्रीडापरात्रैव समागच्छतीति भावः। निष्क्रान्ता ततः स्थानाद्पगतेत्यर्थः। प्रवेशक इति—तल्लक्षणं दर्पणे यथा—

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा' ॥

वासवदत्तया समं कन्दुकेन क्रीडन्त्याः पद्मावत्याः प्रवेशमाह ततः प्रविशतीति सपरिवारा—चेटीरूपपरिवारयुता। प्रमादेन भूमौ पतितं कन्दुकमपश्यन्त्याः पद्मावत्याः पुरस्तात् कन्दुकं सन्दधाना वासवत्ताह—हला इति—

से उत्पन्न स्वेद-बिन्दुओं से विचित्र एवं थकने से सुन्दर दिखाई पड़ने वाले मुख से उपलक्षित होकर गेंद खेलती हुई इधर ही आ रही हैं तो उनके पास चलूं।

(इतना कह कर वहाँ से चल पड़ती है)

(तदनन्तर गेंद खेलती हुई पद्मावती अपने परिवार और
वासवदत्ता के साथ प्रवेश करती है)

वासवदत्ता—सखि ! यह आपकी गेंद है।

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं। [आर्ये ! भवत्विदानी-मेतावद् ।]

वासवदत्ता—हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता । [हला अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिक-सञ्जातरागो परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।]

हला हे सखि ! अयमस्ति तावकीनो गेन्दुकः गृह्यतां क्रीड्यतां च यथारुचीति भावः । चिरविरचितक्रीडाविशेषेण सञ्जातपरिश्रम पद्मावती तत्र स्वीयामरुचिं प्रदर्शयति—आर्ये इति आर्ये पूज्ये। एतावद् एतत्परिमाणकम् कन्दुकक्रीडनम् भवतु अस्तु पर्याप्तं संवृत्तमिति भावः। अत्रार्थे स्वकीया-मनुमतिं प्रदर्शयन्ती सपरिहासं ब्रूते वासवदत्ता हला इति—

हला हे सखि ! अतिचिरम् बहुकालं यावद् कन्दुकेन क्रीडित्वा क्रीडां कृत्वा कन्दुकेन क्रीडनाद्धेतोः अधिकसञ्जातरागौ अधिकं अत्यन्तम् । सञ्जातः समुत्पन्नः रागः रक्तिमा ययोस्तौ प्रचुरोत्पन्नलोहित्यौ ते तव हस्तौ करौ परकीयौ अन्यदीयौ इव संवृत्तौ सञ्जातौ। अत्र क्रीडित्वाप्रयोगश्चिन्त्यः हेतौ कुत्रापि क्त्वाप्रत्ययस्यानुशासनाभावात् समानकर्तृकस्य क्रियाद्वयस्य चासत्वात्। सहजरागयुक्तौ तव (पद्मावत्याः) करौ चिरतरकन्दुकक्रीडनेना-तितरां सरागौ सञ्जताविति वाच्योऽर्थः। व्यङ्ग्यार्थस्तु—अरुणातिशयशालिनौ ते कराविदानीं स्वकीयौ न स्तः अपि तु परकीयौ संवृत्तौ। परस्य हस्तं गतौ तेन परकीयावन्यदीयाविवेति भावः एतेन पद्मावतीविवाहसमस्यासन्नतां सूचयति। विवाहानन्तरं परायत्तत्वात्कन्दुकेन क्रीडा दुर्लभा भविष्यतीति मनसि कृत्वा चेटी पद्मावतीं पुनः कन्दुकक्रीडायां प्रवर्त्तयन्त्याह क्रीडतु

पद्मावती—आर्ये ! इस समय मात्र इतना ही ।

वासवदत्ता—सखि ! बहुत देर तक गेंद खेलने के कारण लालिमा की अधिकता के कारण तुम्हारे हाथ दूसरों के जैसे हो रहे हैं ।

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ। णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो। [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वर्त्यतां तावत् अयं कन्याभावरमणीयः कालः।]

पद्मावती—अय्ये! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि? [आर्ये! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि?]

वासवदत्ता—णहि णहि! हला! अधिअं सोहदि। अभिदो

क्रीडत्विति–पौनःपुन्ये द्विः प्रयोगः। क्रीडतु क्रीडतु क्रीडां करोतु करोतु कन्याभावरमणीयः कुमारीभावसुन्दरः कालः समयः। निवर्त्यतां समाप्यताम्। न यावत्पाणिग्रहणं सम्पद्यते तावद् भवत्या कन्दुकेन पुनः पुनः क्रीडनीयम्। एतच्च बाल्ये एव अपेक्षितम्। पाणिग्रहणानन्तरं यौवने नापेक्षितमिति चेटयाभिप्रायः। इदानीमात्मानं साकूतमालोकयन्तीमवन्तिकामुद्दिश्य पद्मावती ब्रवीति—आर्ये इति–मामपहसितुमिव ममोपहासं कर्त्तुमिवेति सम्भावना। निध्यायसि किम् पश्यसि किम्। ममोपहासार्थमेव ते मन्निरीक्षणं किमित्यर्थः। पद्मावत्याः शङ्कितं निषेधयन्त्यवन्तिका कथयति—नहि नहीति–नहि नहि–उपहासं कर्त्तुं न पश्यामि। शोभते शोभां प्राप्नोति। त्वन्मुखमिति शेषः। अद्य अस्मिन्दिने। ते तव। वरमुखम् मनोहराननम्। अभित इव सर्वत इव पश्यामि विलोकयामि। त्वन्मुखमिदानीमतीव सौन्दर्ययुक्तं प्रतिभाति–अतः चक्षुःप्रीतये तत्पश्यामि। न परिहसितुमनाः। किञ्च वासवदत्ता वरमुखमित्यत्र प्रश्लेषेण वरस्य परिणेतुः मुखं पश्यामि साक्षा-

---

दासी—राजकुमारी और खेलें और खेलें। कुंवारेपन के इस काल को खेल के आनन्द से सफल बनावें।

पद्मावती—आर्ये! क्यों इस समय मानो मेरी हँसी करने के लिये ही मुझे देख रही हैं?

वासवदत्ता—सखि! नहीं नहीं। आपका (मुख) आज बहुत शोभित हो रहा है। अब मैं तुम्हें आसन्न वर मुख समझती हूं।

बिअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानीं मामपहस ।]

वासवदत्ता—एसह्मि तुह्णीआ भविस्सम्महासेणबहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

त्करोमि यः भवत्याः समीपे एव वर्त्तते इति गूढपरिहासोऽपि सखिभावेनान्तर्गर्भो व्यज्यते । परिहासगर्भामिमामुक्तिमाकर्ण्यं प्रणयरोषान्विता पद्मावती सविलासमवन्तिकां प्रति ब्रवीति—अपेहीति—अपेहि दूरं गच्छ । इदानीम् अधुना । मां । मापहस उपहासं मा कार्षीः सपरिहासं वचो वदन्ती ममान्तिकाद् दूरं गच्छ । नाहन्ते वचनमिदं श्रोतुमिच्छामि । अयं ते परिहासो मह्यं न रोचते इति भावः ।

इदानीं पद्मावत्या हृद्गत दयितं वरं जिज्ञासमानाऽवन्तिका परिहासचातुर्येण स्ववचनोपसंहारं कुर्वती भाविश्वशुरकुलं निर्दिशन्ती प्राह—एषास्मीति—हे भविष्यन्महासेनवधु भविष्यन्ती चासौ महासेनवधूश्च तत्सम्बुद्धौ महासेनस्य स्नुषाभावं गमिष्यन्ति ! एषा इयम् तूष्णीका तूष्णीशीला । अस्मि भवामि । यदि मद्वचनं परिहासं मन्यसे तर्हि । राज्ञो महासेनस्य स्नुषा त्वं भविष्यसि—अर्थात्तत्पुत्रस्ते पतिर्भविष्यतीत्येवं निगद्याद्य मौनमालम्बे । अतः परं न किञ्चिदभिधास्ये इति अवन्तिकाशयः । महासेन इति नवीनतमभश्रुतपूर्वं नाम श्रुत्वा पद्मावती अवन्तिकां पृच्छति—क एष इति—कोऽयं महासेनः ? यस्य

पद्मावती—हटिये । मेरा उपहास मत कीजिये ।

वासवदत्ता—महासेन की वधू होने वाली ! लों यह मैं चुप हो गई ।

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदा णाम। तस्स परिमाणणिव्वुतं णामहेअं महासेणोत्ति। [अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम। तस्य परिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति।]

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रज्जा सह सम्बन्धं णेच्छदि। [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति।]

नामेदानीमुदाहृतवानसि ? तस्य परिचयं मह्यं देहीति। पद्मावतीप्रश्नानुसारं वासवदत्ता महासेनपरिचयप्रदानं अस्तीति प्रस्तौति उज्जयिनीयः उज्जयिन्या अयमुज्जयिनीयः उज्जयिनीसम्बन्धी। तस्य राज्ञः प्रद्योतस्य बलपरिमाण-निर्वृतं बलस्य सेनायाः परिमाणेन महत्त्वरूपेण निर्वृत्तं कृतम्। नामधेयः नाम महासेन इति। उज्जयिन्याः राजा कश्चित्प्रद्योतनामधेयः। तस्य च राज्ञः सेनाया परममहत्त्वपरिमाणेन कारणेन 'महती सेनायस्य' इत्यन्वर्थी महासेन इति नामधेयं कृतं वर्तते इत्यर्थः। विनयवत्याः पद्मावत्याः स्वसम्बन्धविषये स्वयं वक्तुमयुक्तत्वेन तस्याः मनोगतमाकूतं जानती चेटी पूर्वोक्तविवाह-सम्बन्धेऽरुचिं प्रदर्शयन्ती वदति—भर्तृदारिकेति—भर्तृदारिका पद्मावती। तेन पूर्वोक्तेन। राज्ञा नृपेण प्रद्योतपुत्रेण सह समं सम्बन्धम् स्वीकरणरूपं संयोगं न इच्छति नो कामयते। श्रीमती राजकुमारी पद्मावती प्रद्योतराजकुलसम्बन्धं न वाञ्छतीत्यर्थः चेटीवचनं श्रुत्वावन्तिका पृच्छति अथ केनेति। यदि नामेयं राजकुमारी प्रद्योतराजपुत्रेण सह सम्बन्धं नेच्छति तदा केन राज्ञा सह सम्बन्धोऽस्यै रोचते ? प्रियसख्यास्ततो गोपनं न युक्तमिति पद्मावत्याः हृद्गत-मभिलाषं प्रकाशयन्ती अवन्तिकायाः प्रश्नस्योत्तरं समाधत्ते चेटी—अस्तीति—वत्सराजः वत्सदेशानां राजा उदयनः अस्ति। गुणान् सौन्दर्यदयादाक्षि-

---

वासवदत्ता—उज्जयिनी के प्रद्योत नाम के राजा हैं। उनकी सेना का परिमाण अधिक होने के कारण उन्हें महासेन नाम से पुकारा जाता है।

दासी—हमारी राजकुमारी उस राजा के साथ अपना सम्बन्ध नहीं चाहती।

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?]

चेटी—अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम। तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि। [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलति।]

ण्यादीन्। उदयननामधेयस्य वत्सदेशाधिपतेर्गुणेषु लुब्धाऽस्माकं राजकुमारी तमेव भर्त्तारं कामयते इति चेट्यभिप्रायः। चेटीमुखात् स्वपतिरूपेणोदयनमेव वरीतुमिच्छन्तीं पद्मावतीमनुनिशम्य स्वचेतसि चिन्तां नाटयति वासवदत्ता—आत्मगतमिति—आर्यपुत्रं मत्पतिम्। भर्त्तारं पतिम् प्राप्तुमिति शेषः अभिलषति इच्छति। किमियं पद्मावती मत्प्रणयिनमुदयनं स्वपतिं कर्त्तुमिच्छतीति भावः। पुनः मानसे गूढं विचिन्त्य स्वात्मस्वरूपगूहनं कुर्वती प्रच्छन्नरूपा वासवदत्ता तदभिलाषकारणं जिज्ञासन्ती प्रकाशं पृच्छति चेटीम्—केन कारणेनेति—केन गुणेनेयं पुनराकृष्टचेता राजानमुदयनं कामयते इति वासवदत्ताप्रश्नाभिप्रायः। उदयने पद्मावत्यभिलषणीयं गुणमाह चेटी—सानुक्रोश इति—सानुक्रोशः दया तेन सहितः दयालुरुदयनः। पत्यौ दयालुत्वमेव पत्नीप्रेम सम्पादकम् राज्ञो दयालुत्वेन पद्मावती तं कामयतीत्यर्थः। दयालुत्वलक्षणं पत्युर्गुणमभिनन्दन्ती वासवदत्ता स्वमनसि कथयति—जानामि जानामीति—जानामि जानामीत्यत्र द्विरुक्तिः सम्भ्रमप्रदर्शनार्थम्। अहमपि जनः। एवम् इत्थं। उदयनस्य दयालुत्वेन कारणेन उन्मादितः उन्मादं प्रापितः। मया तस्य दयालुत्वं शतशोऽनुभूतम्। तस्य सानुक्रोशत्वकारणेन मादृशोऽपि जनः उन्मत्ततां प्रापितः येन तस्य प्रणयवशगास्मीति भावः।

वासवदत्ता—तब किस राजा से इस समय वे सम्बन्ध करना चाहती हैं ?

दासी—उदयन नाम के वत्सदेश के राजा हैं, राजकुमारी उनके गुणों को चाहती हैं।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि। (प्रकाशम्) केण कारणेण ? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन ?]

चेटी—साणुक्कोसो त्ति। [सानुक्रोश इति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि। अअं वि जण एव्वं उम्मादिदो। [जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः।]

उदयनविषयकाभिलाषं दृढतया परीक्षितुं चेटी पद्मावतीं प्रति पृच्छति—भर्तृदारिके इति—सः पूर्वोक्तः राजा उदयनः विरूपः कुरूपः भवेत् स्यात्। तदा वरिष्यते न वेति शेषः। यदि भवत्याः प्रेमपात्रं राजा रूपहीनः चेत्तर्हि भवत्या वरिष्यते न वा कन्यकाजनस्य दयालुता गुणवत् रूपसौन्दर्यमप्यपेक्षणीयं भवतीति तस्य स्वरूपविषयेऽपि गूढं जिज्ञासते चेटी। चेटीवचनमनुनिशम्य तत्सौन्दर्यगुणाकृष्टा वासवदत्ता तदीयं सौन्दर्यातिशयं निह्नोतुमपारयन्ती सुस्पष्टमाचष्टे—नहि नहीति—निषेधे दार्ढ्यसूचनाय द्विः प्रयोगः। स विरूपो नास्ति किन्तु दर्शनीय एव दर्शनयोग्य एव। पद्मावती वचनं श्रुत्वा भूयः। स्वप्रियविषयकं किमपि प्रियं श्रोतुमिच्छया सोत्कण्ठं पद्मावती वासवदत्तामनुपृच्छति—आर्ये इति—आर्ये अयि माननीये ! कथं त्वं जानासि। केवलं तत्प्रशंसाकरणार्थमेव भवती एवं ब्रवीति—आहोस्वित् सत्यताज्ञापकं किमपि प्रमाणमप्यत्र वर्त्तते इति भावः। पद्मावतीवचनं श्रुत्वा आर्यपुत्रस्वरूप-परिचयप्रदानेनात्मस्वरूपाविष्करणं शङ्कमानावन्तिका स्वमनसि एव चिन्तयति—आर्यपुत्रेति—आर्यपुत्रपक्षपातेन आर्यपुत्रस्य पत्युरुदयनस्य। पक्षपातः प्रेम तेन कारणीभूतेन। समुदाचारः कर्त्तव्यम्। अतिक्रान्तः उल्लङ्घितः।

वासवदत्ता—(मन ही मन) मेरे आर्यपुत्र को पति बनाना चाहती हैं। (प्रकट) किस कारण से ?

दासी—वे सानुक्रोश (दयालु) हैं इसलिये।

वासवदत्ता—(मन ही मन) जानती हूँ। जानती हूँ। यह जन (मैं) भी इसी प्रकार उन्मत्त बनाया गया था।

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

वासवदत्ता—णहि णहि । दसणीओ एव्व । [नहि नहि । दर्शनीय एव ।]

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुव आणासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

आर्यपुत्रे प्रेम्णो महिम्ना मया स्वकर्त्तव्यम् विस्मृतम् । एतत्स्वरूपसौन्दर्यं प्रतिपाद्य मया स्वयमेव स्वस्वरूपं प्रकाशतां नीतमतो महदनुचितं कृतमिति । इत्थं विचारानन्तरं प्रश्नस्योत्तरमुपलभ्याह—भवतु इति—भवतु अस्तु दृष्टम् परिज्ञातम् । आकारगुप्तिसाधनमिति मनसि शेषः इत्येवं । विचार्य प्रकाशं ब्रूते—हलेति—उज्जयिनीयः उज्जयिनीवास्तव्यः । जनः लोकः । मन्त्रयते विचारयति कथयति वा । अवन्तिकयोक्तममुमर्थं पद्मावती समर्थयति युज्यते सम्भाव्यते । एष वत्सराजः । उज्जयिनीदुर्लभः विशालापुरी दुष्प्राप्यः । न खलु नो वर्त्तते इत्यर्थः । सौभाग्यम् सौन्दर्यम् । सर्वजनमनोऽभिरामम् सर्वलोकमनोहरम् । दयालुरुदयनो राजा श्वशुरालयं गतो भवेत् उज्जयिनीवासिनो जनाः तत्सौन्दर्यमालोक्य सर्वतः प्रशशंसुः । तच्छ्रुत्वा तदीयगुणावर्जितस्वान्ता इयं कथयति—अतो नातीवाश्चर्यकरमिति पद्मावत्यभिप्रायः ।

इत्थं पद्मावती चेतसि उदयनविषयकं दृढानुरागं मिथः सखीसंलापेन उत्पाद्य साम्प्रतं तदीयवाग्दानसूचनाभिप्रायेण धात्रीं प्रवेशयति कविः ततः प्रविशतीति ततः उदयनप्राप्तिप्रत्रणपद्मावतीहृदयस्थैर्यपरीक्षणानन्तरम् धात्री उपमाता—प्रविशति प्रवेशं करोति । प्रविष्टा च सा धात्री पद्मावतीविवाह-

---

दासी—राजकुमारी जी ! यदि वे राजा कुरूप हों तो ।

वासवदत्ता—नहीं । नहीं वे तो सुन्दर ही हैं ।

पद्मावती—आर्ये ! आप कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। किं दाणिं करिस्सं? होदु, दिट्ठं। (प्रकाशम्) हला! एव्वं उज्जइणीओ जणो मन्तेदि। [आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। किमिदानीं करिष्यामि? भवतु, दृष्टम्। हला! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते।]

पद्मावती—जुज्जइ। ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो। सव्वजणमणो-

सम्बन्धनिष्पत्तिं प्रकाशयति—जयतु इति—जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्त्तामित्यर्थः। जयत्वकारणमाह—भर्तृदारिके इति—दत्तासि वाग्रूपेण परस्य जातासीत्यर्थः। दातृप्रतिग्रहीत्रोः परस्परमेकवाक्यतापूर्वको वाङ्निश्चयः वाग्दानम्। वासवदत्ता स्वभर्तुरात्मनि तादृशं दृढमनुरागं विचिन्त्य तदीयभार्यान्तरस्वीकरणविषये शङ्कमाना पृच्छति साकूतं धात्रीम्—आर्ये कस्मै इति—आर्ये इति धात्रीं प्रति सम्बोधनम्। आर्ये माण्ये कस्मै पुरुषायेयं प्रतिपादिता। यस्मै इयं प्रदत्ता तस्य नाम निर्देष्टव्यं भवत्येत्यर्थः। उत्तरमाह धात्री—वत्सराजायोदयनायेति—वत्सदेशाधिपतये उदयनाय प्रतिपादितेयमिति भावः। उदयनेति नाम श्रुत्वा वासवदत्ता तत्कुशलं पृच्छति—अथेति—अथ प्रश्नार्थः। कुशली कुशलयुक्तः। वासवदत्ता प्रश्नस्योत्तरं निवेदयति धात्री—कुशली इति—आगतः उपस्थितः राजभवनमिति शेषः। प्रतीष्टा स्वीकृता। उदयनो राजा समयेऽस्मिन् राजभवनं समायातः। आगत्य च वाचा दत्तां पद्मावतीं स्वीकृतवानित्यर्थः। पत्न्यन्तरस्वीकरणेन स्वविषये निःस्नेहत्वसम्भावनया शङ्कमाना वासवदत्ता ब्रवीति—अत्याहितमिति—अत्याहितम् महद्भयम्।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात से मैंने अपने आचार (प्रोषित भर्तृका का नियम) का उल्लङ्घन किया। इस समय क्या कहूँ। अच्छा उपाय दिखाई पड़ गया। (प्रकट) सखि! उज्जयिनी के लोगों का ऐसा ही कहना है।

पद्मावती—यह सम्भव है क्योंकि उदयन उज्जयिनी के लिये दुर्लभ

भिरामं खु शोभग्गं णाम। [युज्यते। न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।]

(ततः प्रविशति धात्री।)

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए! दिण्णासि। [जयतु भर्तृ-दारिका। भर्तृदारिके! दत्तासि।]

वासवदत्ता—अय्ये! कस्स? [आर्ये! कस्मै?]

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स। [वत्सराजायोदयनाय।]

पद्मावतीपरिग्रहोऽयं महदनर्थं कारणं भवेदित्यर्थः। धात्री पृच्छति—किमत्रात्याहितमिति-यदि नामोदयनेन पद्मावती परिगृहीता तदात्र किं भयकारणमित्यर्थः। चातुर्येण रहस्यं गोपयन्ती वासवदत्ता कथयति—न खलु किञ्चिदिति-तथा तेन प्रकारेण ब्रह्मचारिसूचितेन सन्तप्य सन्तापं कृत्वा उदासीनः विरक्तः स्नेहशून्यः भवति अभूत्। अन्यत्तु किमपि भयं नास्ति—एतदेव किल भयं वर्त्तते-यद्राज्ञोदयनेन बहुशः विलप्य इदानीं तद्विस्मृत्य-पद्मावतीं प्रतिगृह्णता नूनम् स्नेहरहितेन वासवदत्तायां सञ्जातमिति विचार्य मया तथोक्तमिति भावः। वासवदत्तया सम्भावितमत्याहितं निषेधन्ती धात्री ब्रवीति—आर्ये आगमप्रधानानीति-आर्ये अयि मान्ये अवन्तिके आगम-प्रधानानि-आगमः शास्त्रवचनं प्रधानं मुख्यो येषु तानि। महापुरुषहृदयानि

नहीं है सौन्दर्य तो वही है जो सभी लोगों के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर ले।

(तदनन्तर धात्री प्रवेश करती है)

धात्री—राजकुमारी की जय हो। राजकुमारी जी! आप दे दी गई।

वासवदत्ता—आर्ये! किसे (दे दी गई)

धात्री—वत्सराज उदयन को।

वासवदत्ता—अह कुसलो सो राआ ? [अथ कुशली स राजा ?]

धात्री—कुसली सो आअदो। तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ। [कुशली स आगतः। तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च।]

वासवदत्ता—अच्चाहिदं ? [अत्याहितम्।]

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ? [किमत्रात्याहितम् ?]

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि। तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि' त्ति। [न खलु किञ्चित्। तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति।]

श्रेष्ठजनचित्तानि सुलभपर्यवस्थानानि सुलभं सुकरं पर्यवस्थानानि विकार-परित्यागद्वारा स्वरूपेणावस्थितिर्येषां तानि भवन्ति जायन्ते। समयमहिम्ना विकृतमानसाः महान्तः स्वीयां पूर्वां प्रकृतिं न कदापि त्यजन्तीत्यर्थः। पुनः स्वविषये तदीयप्रेमदार्ढ्यं परीक्षितुकामा वासवदत्ता धात्रीं पृच्छति—आर्ये इति मान्ये तत्र श्रीमानुदयनः स्वत एव पद्मावतीं याचितवान् किम्। धात्री उत्तरयति—नहि नहीति–अन्यप्रयोजनेन कारणा-न्तरेण। इह राजभवने आगतस्य सम्प्राप्तस्य अभिजनविज्ञानवयोरूपम् अभिजनश्च कुलम् विज्ञानं च वीणावादनरूपम् वयः नूत्नं यौवनम् रूपं सौन्दर्यं चैषां समाहारस्तत्। केनापि कारणेन राजभवने सम्प्राप्तस्योदयनस्य कौलीन्यादि गुणं दृष्ट्वा महाराजो दर्शकः स्वभगिनीं पद्मावतीं तेनाप्रार्थितामपि

वासवदत्ता—अब वे राजा सकुशल हैं।

धात्री—वे सकुशल वहाँ उपस्थित है। उन्होंने राजकुमारी को स्वीकार भी कर लिया है।

वासवदत्ता—बहुत भय है।

धात्री—इसमें महाभय की क्या बात है ?

वासवदत्ता—और कोई भय की बात तो नही। इस प्रकार सन्ताप कर उदासीन जो हो रहे हैं।

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति। [आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।]

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वारिदा ? [आर्ये ! स्वयमेव तेन वारिता ?]

धात्री—णहि णहि। अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णाणवओरूअं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा। [नहि नहि। अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता।]

तस्मै स्वयं सादरं समर्पितवानिति भावः। धात्र्या प्रतिपादितं पद्मावतीप्राप्तिप्रकारमनुनिशम्य तद्विषयिणीं स्वकीयां मानसीं शङ्कामपकुर्वाणा वासवदत्ता ससन्तोषं ब्रवीति एवमिति एवम् इत्थम् अत्र पद्मावतीग्रहणविषये अनपराद्धो निर्दोष इत्यर्थः। प्रार्थनं विनैव स्वयमुपागतां साक्षाल्लक्ष्मीमिव पद्मावतीं प्रतिगृह्णन्नार्यपुत्रः दोषभाजनं नास्तीति भावः। एतावता ग्रन्थेन पद्मावत्या उदयनगतं रतिभावं प्रतिपाद्य उदयनस्यापि पद्मावतीं प्रति-अनुरागविशेषं संसूच्य दम्पत्योरनयोश्चालौकिकं परस्परं प्रेमबीजारोपणं कविना दर्शितम्।

धात्री—आर्ये ! महापुरुषों के हृदय शास्त्र वचन को मुख्य रूप से मानने वाले होते हैं। विकारग्रस्त हो जाने पर भी सुलभतया प्रकृतिस्थ हो जाया करते हैं।

वासवदत्ता—आर्ये ! क्या उन्होने स्वयम् ही पद्मावती का वरण किया ?

धात्री—नहीं नहीं। वे दूसरे कारण से यहाँ आये हुये थे उनके प्रशस्त कुल वीणा वादन रूप प्रशस्त विज्ञान तरुण अवस्था तथा मनोहर रूप को देख कर महाराज ने स्वयं ही उन्हें पद्मावती सौंप दी।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्व ! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ! [एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः ।]

(प्रविश्य)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या। अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि । [त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं । [यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।]

इदानीं विवाहकौतुकं सूचयितुं तदर्थं धात्रीं च त्वरयितुमपरस्याश्चेटयाः प्रवेशमाह कविः—प्रविश्येति । कृतप्रवेशा चेटी ब्रूते त्वरतां त्वरतामिति—अतिशयद्योतनार्था द्विरुक्तिः । अद्य एव अस्मिन्दिने एव । शोभनम् सुन्दरं मङ्गलकार्यानुकूलम् नक्षत्रं तारा । कौतुकमङ्गलं वैवाहिकमङ्गलसूत्रम् । भट्टिनी महाराज्ञी । नूनमद्यतन एव दिवसे मङ्गलकार्यानुकूलं सुन्दरं नक्षत्रं वर्त्तते अतः अस्मिन्नेव दिवसे पद्मावत्याः करे वैवाहिकमङ्गलोचितं मङ्गलसूत्रं बन्धनीयमिति—तदर्थं तत्र कौतुकागारे प्रवेशनीया पद्मावतीत्यस्मदीयस्वामिन्या आदेश इत्यर्थः । पद्मावतीविवाहसमयस्यासन्नत्वं चेटीवचनेन सम्भाव्य

वासवदत्ता—ऐसा ! तब तो आर्यपुत्र इस समय अपराधी नहीं ।

(दूसरी दासी का प्रवेश)

दासी—आर्ये ! शीघ्रता करें शीघ्रता करें । आज ही सुन्दर नक्षत्र है आज ही विवाह कौतुक का मङ्गल सूत्र राजकुमारी को बाँधना है ऐसा हमारी महारानी आज्ञा देती हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) जैसे जैसे यह उतावलापन कर रही है वैसे वैसे मेरे मन को शून्यता की ओर ले जा रही है ।

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ। [एत्वेतु भर्तृदारिका।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति द्वितीयोऽङ्कः।

—:०:—

सपत्नीसमुचितं महामोहं नाटयन्ती वासवदत्ता स्वचित्ते कथयति—अन्धीकरोति अनन्धमन्धं करोतीति अन्धीकरोति शून्यतादशां नयति यावद्यावदियं चेटी धात्रीं त्वरयति तावत्तावन्मदीयं हृदयं विचारशून्यतादशां प्रयातीत्यर्थः। चेटीवचनात्तत्र पद्मावतीं गन्तुं प्रेरयन्ती धात्री ब्रवीति एतु एतु इति। द्विरुक्तिरियं गमनत्वरायामादरे च। राजकुमार्या मन्निर्दिष्टेनाध्वना गम्यतां कौतुकागारमित्यर्थः। रङ्गमञ्चात्सकलानां निर्गमनं दर्शयति कविः निष्क्रान्ता इति। इत्थं पद्मावत्याः कौतुकागारगमनं प्रस्तुत्य द्वितीयस्याङ्कस्य समाप्तिं सूचयति। द्वितीयोङ्क इति—

इति श्रीस्वप्नवासवदत्त व्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः

—:०:—

धात्री—तो राजकुमारी पधारें पधारें।

(सब निकल जाते हैं)

॥ दूसरा अङ्क समाप्त ॥

द्वितीय अंक की भाषाटीका समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहमोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमाबदिं इह आअदह्मि पमदवणं । जाव दाणिं भाअदेअणिब्बुत्तं दुःखं विणोदेमि । (परिक्रम्य) अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो जा उववविसामि । (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअबहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ । ण खु अहं वाणाणि पदित्तजामि । अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ ।

तृतीयोऽङ्क इति । द्वितीयाङ्कसमाप्तेरनन्तरम् तृतीयोऽङ्कः उपक्रम्यते इति शेषः । स्वप्रियतमस्योदयनस्य पद्मावत्या समं विवाहप्रबन्धं निश्चितमवगत्य तद्धेतुकं चिन्तानुभावं नाटयन्त्याः पद्मावती कौतुकमालिकागुम्फने नियोक्ष्यमाणायाः वासवदत्तायाः समुचितं प्रवेशपूर्वकं तन्मनोगतं वितर्कं वर्णयति कविः—विवाहामोदेति–विवाहामोदसंकुले विवाहस्य पद्मावतीपरिणयस्य आमोदः आनन्दः येषां तादृशैः बान्धवजनैः संकुले परिपूर्णे अन्तःपुरचतुःशाले चतुःशालम् हि परस्पराभिमुखीनां शालानां चतुष्टयेन संयुक्तं सदनम् । अन्तःपुरस्य चतुःशालम् तस्मिन् । प्रमदवनम् अन्तःपुरविहारोचितमुद्यानम् । भागधेयनिर्वृत्तम् स्वीयदुर्दैवलब्धम् । दुःखम् आर्यपुत्रविरहजन्य-

---

(तदनन्तर चिन्तित अवस्था में वासवदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाहोत्सव के हर्षोल्लास से परिपूर्ण अन्तःपुर (रनिवास) की चौशाला में पद्मावती को छोड़ कर यहाँ अन्तःपुर की वाटिका में इसलिये आई हूँ कि, किसी प्रकार दुर्भाग्य से उत्पन्न हुये इस दुःख से मन को बहलाऊँ । इन अनर्थ के लिये क्या कहूँ कि इस समय आर्यपुत्र भी दूसरे के हो रहे हैं, अच्छा बैठती हूँ (बैठ कर) चकवी भी धन्य है जो अपने प्रियतम

[विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम् । यावदिदानीं भागधेयनिवृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावत् उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः याऽन्योन्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।]

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी ।)

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इयं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डि-

---

कष्टम् । विनोदयामि अपनयामि । परकीयः अन्यदीयः पद्मावतीपतिरिति भावः । चक्रवाकवधूः कोकभार्या । धन्या पुण्यवती । अन्योन्यविरहिता परस्परवियुक्ता । मन्दभागा अल्पभाग्या । पद्मावतीपरिणयप्रसङ्गेनागत आर्यपुत्रो मम नयनगोचरतां गच्छेदित्याशया जीवामीत्यर्थः । पद्मावती परिणयौपयिकीं मङ्गलस्रजं वासवदत्तया निर्मापयितुमोहमानायाश्चिरं तन्मार्गणं कुर्वत्या गृहीतपुष्पायाश्चेटयाः प्रवेशमाह—तत इति—इदानीं वासवदत्तान्वेषणपरायणायाश्चेटयाः मानसिकं वितर्कमाह—क्व न खलु गतेति—अवन्तिका अवन्तीभवा । अम्मो विस्मयद्योतकमव्ययपदम् । चिन्ताशून्यहृदया ध्याननिर्बोधचित्ता । नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा तुषारावृतेन्दुरेखा । अमण्डितं भद्रकम् अनलङ्कृतमपि रमणीयम् । वेषं नेपथ्यम् । धारयन्ती

से वियुक्त हो जाने पर प्राण त्याग देती है मैं निश्चय ही अपना प्राण इसलिये धारण कर रही हूँ कि आर्यपुत्र के दर्शन होंगे इसी अभिलाषा से अभागिनी बन कर जी रही हूँ ।

(तदनन्तर फूलों को लिये हुये दासी का प्रवेश)

दासी—आर्या अवन्तिका कहाँ चली गईं । (चारों ओर घूम कर और देख कर) अरे ये तो चिन्ता के कारण शून्य होकर कुहरे से आवृत चन्द्रिका के समान अलंकार के न होने पर भी सुन्दर वेष धारण करतीं हुई प्रियङ्गु

दभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उववट्ठिा। जाव उवसप्पामि (उपसृत्य) अय्ये! अवन्तिए! को कालो, तुमं अण्णेसामि। [क्व नु खलु गता आर्या अवन्तिका? अम्भो! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहत-चन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकवेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये! आवन्तिके! कः कालः, त्वामन्विष्यामि।]

वासवदत्ता—किं णिमित्तं? [किं निमित्तम्?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या। [अस्माकं भट्टिनी भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या।]

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम्?

दधती। प्रियङ्गु शिलापट्टके फलिनीपाषाणखण्डे उपविष्टा संस्थिता। उपसर्पामि समीपं गच्छामि। कः कालः कियान् समयः। अतीत इति शेषः। अन्विष्यामि गवेषयामि। बहोः कालादन्विष्यन्ती साम्प्रतमत्र भवतीं दैवयोगात् प्राप्तवत्यस्मि। चेटीं वचनं श्रुत्वा वासवदत्ता पृच्छति—किं निमित्तमिति—मदन्वेषणस्य किं प्रयोजनमित्यर्थः। चेटी उत्तरयति—अस्माकं भट्टिनीति—महाकुलप्रसूता महाकुले प्रसूता उत्कृष्टकुलसम्भूता। स्निग्धा स्नेहसंयुक्ता। निपुणा तत्कार्ये कुशला। कौतुकमालिकाम् विवाहोपयुक्तस्रजम्। गुम्फतु ग्रथ्नातु।

लता के नीचे शिलापट्ट पर बैठी हुई हैं तो इनके पास चलती हूँ (पास जाकर) आर्ये अवन्तिके! कितना समय बीत गया, मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—किसलिये?

दासी—हमारी स्वामिनी कहती हैं कि आप यह कुल प्रसूता है दयालु तथा कार्यकुशल हैं अतः आप ही इस विवाह मालिका को गूँथें।

वासवदत्ता—किसके लिये माला गूँथनी हैं।

चेटी—अम्हाअं भट्टिदारिआए। [अस्माकं भर्तृदारिकायै]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी। अहो अकरुणा खु इस्सरा। [एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो! अकरुणाः खल्वीश्वराः]

चेटी—अय्ये! मा दाणिं अण्णं चिन्तिअ। एसो जामादुओ मणिभूमिए ह्लाअदि। सिग्घं दाव गुह्यदु अय्या। [आर्ये! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा। एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या।]

चेटीवचः श्रुत्वा वासवदत्ता मनसि विचारयति-एतदपीति। एतदपि मालाग्रथनकार्यमपि। मया कर्त्तव्यम् सम्पादनीयम् आसीत्। दैवादद्य मम प्रियः पद्मावत्याः पतिर्भविष्यतीति कथं नाम पारणीयम् मालां ग्रथितुमित्याशयः। अकरुणाः निर्दयाः। खलु निश्चयेन। ईश्वराः देवाः समर्था लोका वा। ममानभिलषितमिदं कार्यं मद् द्वारा सम्पादयितुमिच्छन्तीति ते नूनं स्वकीयां निर्दयतां मयि प्रकटयन्तीति भावः। अवन्तिकां चिन्तयन्तीमभिलक्ष्य चेटी ब्रूते—आर्ये इति। इदानीम् अस्मिन् विवाहकाले। अन्यत् अपरम् विषयान्तरं वा। मा न कालक्षेपः कार्यं इति शेषः। अत्र मा योगे चिन्तयित्वेति क्त्वा-प्रत्ययान्तं पदमपाणिनीयम्। एष समीपस्थः जामाता वरः मणिभूम्यां मणिगृहे स्नायति स्नानं करोति। मङ्गलस्नानान्तरमेव धारणीया मङ्गलमालिकातः सत्वरमेव ग्रथ्यतां भवत्येति चेटयभिप्रायः। दुर्दैवादवसराभावाच्च

दासी—हमारी राजकुमारी के लिये।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अभी मुझे यह भी करना है, अहो समर्थ लोगों में दया नहीं होती।

दासी—आर्ये! इस समय आप सब प्रकार कीं चिन्ता छोड़ देवें। स समय वर मणिगृह में स्नान कर रहे हैं। इसलिये शीघ्र इसे गूँथे।

वासवदत्ता—(आत्मगतम) ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं। (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी—आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ। [आम्, दृष्टो भर्तृदारकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च।]

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो। [आर्ये, भणामि तावन् नेदृशो दृष्टपूर्वः।]

विचारं कर्त्तुमपि न पारयामीत्याहात्मगतम् वासवदत्ता—न खल्विति—अन्यत् विषयान्तरम् चिन्तयितुं विचारयितुं न शक्नोमि—न पारयामि। अतः स्वभर्तृ-विषयकं वृत्तं श्रोतुमुत्कण्ठमाना प्रकटार्थं ब्रूते—हलेति। किमिति—अपि नाम जामातुर्दर्शनं ते जातम्। चेटी उत्तरयति—आमिति—आमिति स्वीकृतिवाचक-मव्ययपदम्। राजकुमार्याः स्नेहादस्मदीयकौतूहलेन च जामातुर्दर्शनसौभाग्यं लब्धमिति चेटयुक्तिः। तद्दर्शने हि राजकुमार्यामस्माकं स्नेहोऽस्मदीयदर्शनो-त्कटाभिलाषश्चेत्युभयं कारणमित्यर्थः। तत्स्वरूपं पृच्छति वासवदत्ता—कीदृशो जामातेति—सुरूपो वा कुरूपो वा सः। अवन्तिकाकौतूहलवर्धनाया-स्पष्टं कथयति चेटी—आर्ये इति—तावच्छन्दो वाक्यालङ्कारे। दृष्टपूर्वः

वासवदत्ता—इस समय मैं कुछ भी नहीं कर सकती (प्रकट) अरी सखि ! क्या तुमने वर को देखा ?

दासी—हां राजकुमारी के स्नेह के कारण तथा स्वयं अपने में उत्पन्न कुतूहल के कारण मैंने जामाता देखा।

वासवदत्ता—बता। जामाता कैसे हैं ?

दासी—आर्यें ! मैं कहती हूँ कि ऐसा पुरुष इससे पहले कभी नहीं देखा था।

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण, भण, किं दर्शनीयः ?]

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो णाम आमदेवो त्ति। [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।]

वासवदत्ता—होतु एत्तअं । [भवत्वेतावत् ।]

चेटी - किण्णिमित्तं वारेसि ? [किं निमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता—अजुत्तं परपुरुससङ्किणणं सोदुम् । [अयुक्तं परपुरुष-सङ्कीर्तनं श्रोतुम् ।]

पूर्वं दृष्ट इति न पूर्वंदृष्ट इति न दृष्टपूर्वः । जामातृसदृशो न कुत्रापि पूर्वं दृष्टोऽभूदित्यर्थः । औत्सुक्यं प्रदर्शयन्ती वासवदत्ता पृच्छति-हला भणेति । श्रवण-त्वरया भणेत्यत्र द्विरुक्तिः । दर्शनीयः द्रष्टुं योग्यः । स्फुटं कथय शीघ्रम् । स किं सुन्दर इत्यर्थः । अवन्तिकाप्रश्ने चेटयुत्तरं ददाति-शक्यमिति । शरचापहीनः बाणकार्मुकरहितः । कामदेवः किल बाणकार्मुकधरो भवति अयं तु ताभ्यां विहीनोऽपि सौन्दर्यातिरेकात्तथात्वेनोपलक्ष्यते इति भावः । चेटया वचनमनुनिशम्य वासवदत्ता ब्रवीति—भवत्वेतावदिति–भवतु अलम् । एतावत् इयत् वर्णनमिति शेषः । पर्याप्तमियत्तत्स्वरूपवर्णनम् । नेतोऽधिकं किमपि वर्णय । इत्थं निषेधयतीमवन्तिकां पृच्छति चेटी—किं निमित्त-मिति–किं निमित्तम् किमर्थं वारयसि निषेधसि । जामातृवर्णनं कुर्वतीं मां किमर्थं निषेधसीत्यर्थः । चेटयाः प्रश्नं समाधत्ते वासवदत्ता—अयुक्तमिति—

वासवदत्ता—सखि ! शीघ्र बता । क्या वो सुन्दर हैं ।

दासी—केवल इतना ही कह सकती हूँ कि वे बाण धनुष के बिना दूसरे कामदेव हैं ।

वासवदत्ता—अच्छा बस । इतना ही । आगे कुछ मत कहो ।

दासी—आप आगे कहने के लिये मना क्यों कर रही हैं ।

वासवदत्ता—इसलिये कि प्रोषितपतिका को परपुरुष का वर्णन सुनना अनुचित है ।

चेटी—तेण हि गुह्यदु अय्या सिग्घं। [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम्।]

वासवदत्ता—इअं गुह्यामि। आणहि दाव। [इयं गुम्फामि। आनय तावत्।]

चेटी—गह्लदु अय्या। [गृह्णात्वार्या।]

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम? [इदं तावदौषधं किं नाम?]

चेटी—अविहवाकरणं णाम। [अविधवाकरणं नाम।]

परपुरुषसंकीर्त्तनम्—अन्यजनवर्णनम्। श्रोतुं आकर्णयितुम् अयुक्तम् अनुचितम्। परपुरुषवर्णनं पतिव्रताभिर्नाकर्णनीयमेतावदेव पर्याप्तं नाधिकं श्रोतुमिच्छामीत्यर्थः। यद्येवं तर्हि न वर्णयिष्यामि। मालिकाग्रथनम् भवत्या सत्वरमेव कार्यमिति कथयति चेटी तेन हीति तेन हेतुना। गुम्फतु ग्रथ्नातु। तत्कार्ये समुद्यता वासवदत्ताह—इयमिति—एषाहं मङ्गलस्रजं गुम्फितुमुद्यतास्मि आनीयतां तदर्थं कुसुमाद्युपकरणमिति भावः। चेटी पुष्पादिसामग्रीं समर्पयति गृह्णात्वार्येति गुम्फनार्थं प्रदत्तेषु पुष्पेषु किमप्यतिरिक्तं वस्तुजातं दृष्ट्वा अवन्तिका पृच्छति—इदमिति। चेटी उत्तरयति अविधवाकरणमिति—अविधवाकरणं वैधव्यानुत्पादकम्। नाम प्रसिद्धौ। बहुशः अनेकशः। गुम्फितव्यम् ग्रथनीयम्। पुनः तादृशं वस्त्वन्तरं दृष्ट्वा प्रकटरूपेण पृच्छति वासवदत्ता इदमिति। चेटी उत्तरं

दासी—इस कारण आर्या शीघ्र ही माला गूँथें।

वासवदत्ता—अभी गूँथ रही हूँ पहले पुष्प तो दो।

दासी—ये हैं फूल। आर्या इसे ग्रहण करें।

वासवदत्ता—(कुछ हटाते हुये देख कर) इस औषध का क्या नाम है।

दासी—यह सौभाग्य उत्पन्न करने वाली है।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुम्हिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ। (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम? [इदं बहुशो गुम्फितव्यं मम च पद्मावत्यै च। इदं तावदौषधं किं नाम?]

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम। [सपत्नीमर्दनं नाम]

वासवदत्ता—इदं ण गुम्हिदव्वं। [इदं न गुम्फितव्यम्।]

चेटी—कीस? [कस्मात्?]

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति।]

ददाति-सपत्नीमर्दनमिति सपत्नीं मर्दयतीदमौषधम्। सपत्नीद्वेषः किमपि कर्तुं न शक्नोतीत्याशयः। पद्मावतीसपत्नीभविष्यन्त्या ममैतेन वस्तुना मर्दनं भविष्यतीति तत्गुम्फनं सहसा निषेधति वासवदत्ता—इदमिति—सपत्नीमदमर्दनं नामेदमौषधं मया गुम्फितुं न युज्यते इत्यर्थः। चेटी पृच्छति—कस्मादिति—एतस्याऽगुम्फने किं कारणम्। वासवदत्ता उत्तरयति—उपरतेति—तस्य उदयनस्य भार्या पत्नी। उपरता मृता। तत् तस्मात्कारणात् निष्प्रयोजनम् निरर्थकम्। उदयनपत्न्याः वासवदत्तायाः मृत्युः सञ्जात इति सपत्न्या अभावादौषधस्यात्र गुम्फने प्रयोजनं किमपि नास्तीति भावः।

वासवदत्ता—(मन ही मन) इसे मेरे तथा पद्मावती के लिये अधिक से अधिक संख्या में गूँथना चाहिये। (प्रकट) अच्छा! इस औषध का क्या नाम है?

दासी—इसका नाम सपत्नीमर्दन है।

वासवदत्ता—तो इसे नहीं गूँथना चाहिये।

दासी—किस कारण से।

वासवदत्ता—इसलिये कि पत्नी मर चुकी है जब सपत्नीं नहीं है तो इसको गूँथना भी बेकार है।

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरतु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि। [त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते।]

वासवदत्ता—अइ! वदामि, गह्ण एदं। [अयि! वदामि; गृहाणैतद्।]

चेटी—सोहणं। अय्ये! गच्छामि दाव अहं। [शोभनम्। आर्ये! गच्छामि तावदहम्।]

मङ्गलस्रङ् निष्पत्तये गतां प्रथमां चेटीं विलम्बं कुर्वतीं विचार्य तां त्वरयितुमपरायाश्चेटया प्रवेशमाह—प्रविश्येति–तदुक्तिमाह त्वरतामिति भृशार्थे द्विरुक्तिः। अविधवाभिः सौभाग्यवतीभिः। अभ्यन्तरचतुःशालम् अभ्यन्तरे अन्तःपुरे यच्चतुःशालम् अन्तःपुरस्थरचितविवाहमण्डपम्। प्रविश्यते प्रविष्टः कार्यते। गुम्फनकार्यं पूरितवती वासवदत्ता ब्रवीति—अयीति—अयि–कोमलामन्त्रणे इदं पदम्। वदामि कथयामि। गृहाणैतद्–मत्कार्यं पूर्णम्। भवतीभिर्गृह्यतामियं स्रक्।

तां मङ्गलस्रजं गृहीत्वा तत्सुंदरतां प्रशंसन्ती ततोजिगमिष्यन्ती द्वितीयचेटयाह—शोभनमिति–भवत्या गुम्फितेयं स्रङ्मनोहारिणी साम्प्रतं गम्यते मयेत्यर्थः। उभे निष्क्रान्ते इति–अनेन द्वयोश्चेटयोरेव ततो निर्गमनं सूच्यते न वासव-

---

(दूसरी दासी का प्रवेश)

दूसरी दासी—आर्या जल्दी करें जल्दी। ये दामाद सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ चतुःशाला के भीतर ले जाये जा रहे हैं।

वासवदत्ता—अरी! मैं तो कह रही हूँ। इसे ले लो।

दासी—बहुत अच्छी माला है। आर्ये! अब मैं इसे लेकर जा रही हूँ।

(उभे निष्क्रान्ते ।)

वासवदत्ता—गदा एसा । अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो ! अविदा ! सय्याए । मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि । [गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपिनाम परकीयः संवृत्तः । अविदा ! शय्यायाँ मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे ।]

(निष्क्रान्तः)

इति तृतीयोऽङ्कः ।

—:*:—

दत्तायाः । विवाहोत्सवे जनसम्मर्दे तस्याः गमनस्यानौचित्यादिति । द्वयोश्चेटयोर्गमनानन्तरं वासवदत्ता मनसि ब्रवीति—गतैषेति अहो अत्याहितम् हन्त कष्टम् आर्यपुत्रोऽपि—मद्भर्त्तापि—परकीयः पद्मावत्याः पतिः संवृत्तः । मयि प्रीतिमानपि साम्प्रतं पद्मावतीप्रिय इति कष्टमिदं कथं सहिष्ये—अतः शय्यामधिशय्य कष्टमिदमपनेष्यामि । यदि दैवान्निद्रामधिगमिष्यामि । दुःखापहन्त्री निद्रैव मे शरणमित्यर्थः । परन्तु सापि मत्कृते दुर्लभेति प्रलपन्ती वासवदत्ता निर्गता । इत्याह—निष्क्रान्तेति । अङ्कसमाप्तिं दर्शयति तृतीयोऽङ्क इति ।

इतिश्री स्वप्नवासवदत्तव्याख्यायाम् तृतीयोऽङ्क ।

—:*:—

(दोनों चली जाती हैं)

वासवदत्ता—अच्छा दासी चली गई । कहो कितने दुःख की बात है कि आर्यपुत्र अब दूसरे के हो गये । तो क्यों न शय्या पर लेट कर ही यदि किसी प्रकार निद्रा आ जाय तो अपने दुःख का अपमोदन करूँ ।

॥ तीसरे अङ्क की भाषा टीका समाप्त ॥

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्तो पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणीं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो

तृतीयाङ्के वत्सराजोदयनस्य पद्मावत्या सह विवाहसम्बन्धः सूचितः । इदानीं परस्परं तयो रतिभावपोषं वासवदत्ताविषयकं प्रणयमप्यनुसूतमुदयनस्य दर्शयिष्यन् तदनुरूपां संवादभङ्गीं घटयितुं सपरिवारपद्मावत्युदयनप्रवेशं च सूचयितुमङ्कारम्भे आदौ विदूषकस्य ततश्चेष्टयाः प्रवेशं दर्शयति कवि—ततः प्रविशतोति विदूषकः—विदूषकः विचित्रवाग् वसन्तादिपदव्यपदेश्यः हास्यरसप्रधानः पात्रविशेषः—अयं च भोजनंप्रियो ब्राह्मणो राज्ञः सुहृत्त्वेनैव सर्वत्र नाटकेषूपवर्ण्यंते—तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥

निष्पन्ने राज्ञो विवाहे विदूषकस्यास्य हर्षो युज्यते एवातो तस्यैव मानसो-

---

(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(हर्ष के साथ) यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने माननीय वत्स राजा उदयन के अभीष्ट विवाह मङ्गल से शोभित काल को देखा । भला कौन ऐसा जानता था कि हम लोग उस प्रकार के राज्यापहरण तथा

सुट्‌ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि । जहतादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि ! भो ! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च । [भोः ! दिष्टया तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः । भोः ! को नामैतज्जानाति–तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति । इदानीं प्रसादेषूष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते । एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्टु

द्गारमाह–सहर्षमिति । दिष्टया दैवेन सौभाग्येनेति यावत् । तत्र भवतः मान्यस्य । अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः अभिप्रेतं यद् विवाहमङ्गलं तेन रमणीयः अभीष्टोद्वाहभद्रसुन्दरः । तादृशे तत्सदृशे महाभयंकरे । अनर्थसलिलावर्तो अनर्थ एव सलिलावर्त्तस्तस्मिन् राज्यापहार लक्षण दुःखाम्भोभ्रमे प्रक्षिप्ताः राज्यापहरणवासवदत्तादाहादिरूपे निपातिताः । पुनः भूयः उन्मङ्क्ष्यामः उन्मुक्ता भविष्यामः । अनर्थसलिलावर्त्तादुन्मज्जनं प्रतिपादयति—इदानीमिति–इदानीम् अधुना । प्रासादेषु राजभवनेषु उष्यते वासः क्रियते । अन्तःपुरदीर्घिकासु अन्तःपुरस्य या दीर्घिकाः तासु शुद्धान्तर्वापीषु स्नायते स्नानं क्रियते । प्रकृतमधुरसुकुमाराणि प्रकृत्यामधुराणि प्रकृतिमधुराणि च तानि सुकुमाराणि स्वभावमिष्टकोमलानि । मोदकखाद्यानि मोदकखाद्यास्तद्रूपाणि लड्डुकादीनि खाद्यानि भोज्यवस्तूनि । खाद्यन्ते भक्ष्यन्ते इति हेतोः नास्ति यत्र आप्सरोभि सहवासो यत्र एतादृशः कुरुवासः उत्तरा कुरवो नाम देवभूमयः तत्र वासः अवस्थानम्

वासवदत्ता के विनाश काल जैसे संकटरूपी जल के भँवर में फेंके जाकर भी पुनः जीवित बच सकेंगे । देखो तो इस समय महलों में निवास करते हैं, अन्तःपुर की बावलियों में स्नान करते है, स्वभावतः मीठे एवं सुकोमल मोदकादि खाद्य पदार्थों को खाते हैं इसलिये यद्यपि यहाँ अप्सरा नहीं हैं फिर भी उत्तरकुरु देवभूमि विशेष, के निवास का अनुभव मुझे हो रहा है । किन्तु एक बहुत बड़ा दोष यही है कि मेरा आहार भलीभाँति पच नहीं रहा है । इतना ही

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि-तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणीं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो

तृतीयाङ्के वत्सराजोदयनस्य पद्मावत्या सह विवाहसम्बन्धः सूचितः । इदानीं परस्परं तयो रतिभावपोषं वासवदत्ताविषयकं प्रणयमप्यनुसूतमुदयनस्य दर्शयिष्यन् तदनुरूपां संवादभङ्गीं घटयितुं सपरिवारपद्मावत्युदयनप्रवेशं च सूचयितुमङ्कारम्भे आदौ विदूषकस्य ततश्चेष्टयाः प्रवेशं दर्शयति कवि—ततः प्रविशतीति विदूषकः—विदूषकः विचित्रवाग् वसन्तादिपदव्यपदेश्यः हास्यरसप्रधानः पात्रविशेषः—अयं च भोजनं-प्रियो ब्राह्मणो राज्ञः सुहृत्त्वेनैव सर्वत्र नाटकेषूपवर्ण्यते—तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥

निष्पन्ने राज्ञो विवाहे विदूषकस्यास्य हर्षो युज्यते एवातो तस्यैव मानसो-

---

(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(हर्ष के साथ) यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने माननीय वत्स राजा उदयन के अभीष्ट विवाह मङ्गल से शोभित काल को देखा । भला कौन ऐसा जानता था कि हम लोग उस प्रकार के राज्यापहरण तथा

सुट्ठ ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि। जहताद-सोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि! भो! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च। [भोः! दिष्टचा तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाह-मङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः! को नामैतज्जानाति—तादृशे वयमनर्थ-सलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति। इदानीं प्रसादेषूष्यते, अन्तःपुर-दीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सर-स्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्टु

दृगारमाह—सहर्षमिति। दिष्टचा दैवेन सौभाग्येनेति यावत्। तत्र भवतः मान्यस्य। अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः अभिप्रेतं यद् विवाहमङ्गलं तेन रमणीयः अभीष्टोद्वाहभद्रसुन्दरः। तादृशे तत्सदृशे महाभयंकरे। अनर्थसलिला-वर्त्ते अनर्थ एव सलिलावर्त्तस्तस्मिन् राज्यापहार लक्षण दुःखाम्भोभ्रमे प्रक्षिप्ताः राज्यापहरणवासवदत्तादाहादिरूपे निपातिताः। पुनः भूयः उन्म-ङ्क्ष्यामः उन्मुक्ता भविष्यामः। अनर्थसलिलावर्त्तादुन्मज्जनं प्रतिपादयति—इदानीमिति—इदानीम् अधुना। प्रासादेषु राजभवनेषु उष्यते वासः क्रियते। अन्तः पुर दीर्घिकासु अन्तःपुरस्य या दीर्घिकाः तासु शुद्धान्तर्वापीषु स्नायते स्नानं क्रियते। प्रकृतमधुरसुकुमाराणि प्रकृत्यामधुराणि प्रकृतिमधुराणि च तानि सुकुमाराणि स्वभावमिष्टकोमलानि। मोदकखाद्यानि मोदकखाद्यास्तद्रूपाणि लड्डुकादीनि खाद्यानि भोज्यवस्तूनि। खाद्यन्ते भक्ष्यन्ते इति हेतोः नास्ति यत्र आप्सरोभि सह-वासो यत्र एतादृशः कुरुवासः उत्तरा कुरवो नाम देवभूमयः तत्र वासः अवस्थानम्

वासवदत्ता के विनाश काल जैसे संकटरूपी जल के भँवर में फेंके जाकर भी पुनः जीवित बच सकेंगे। देखो तो इस समय महलों में निवास करते हैं, अन्तःपुर की बावलियों में स्नान करते है, स्वभावतः मीठे एवं सुकोमल मोदकादि खाद्य पदार्थों को खाते हैं इसलिये यद्यपि यहाँ अप्सरा नहीं हैं फिर भी उत्तरकुरु देवभूमि विशेष, के निवास का अनुभव मुझे हो रहा है। किन्तु एक बहुत बड़ा दोष यही है कि मेरा आहार भलीभाँति पच नहीं रहा है। इतना ही

न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्त्तत इति पश्यामि। भो! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ? (परिक्रयावलोक्य) अह्मो! एसो अय्यवसन्तओ (उपगम्य) अय्य! वसन्तअ! को कालो तुमं

मया अनुभूयन्ते। स्वर्गीयाणि सुखानि सर्वाणि उपलभ्यन्ते इत्यर्थः। एता-दृक्सुखविशेषानुभवेऽपि अतिमात्रभोजनवशादात्मनो दुःखं दर्शयति—एक इति। दोषः विकारः। समुत्पन्न इति शेषः। ममाहारः मद्भुक्तं भोजनम्। सुष्ठु सम्यक्तया न परिणमति परिपाकं न गच्छति। सुप्रच्छादनायाम् सु सुन्दरं कोमलं प्रच्छादनमास्तरणं यत्र तस्याम्। यथा येन वातशो-णितम् वातरक्तनामा रोगविशेषः। अभितः समन्ततः इव यथा वाक्यसौन्दर्यार्थमेतत्पदम्। देहमभिव्याप्येत्यर्थः। वर्त्तते उपस्थितोस्ति। इति एवम् पश्यामि अनुभवामि। आमयपरिभूतम् रोगाक्रान्तम् अकल्यवर्त्तं कल्यवर्त्तः प्रातःभोजनम् नास्ति यत्र तद् च प्रतिर्भोजनाभावः च तेन सुखं आनन्दो न नास्तीत्यर्थः। युज्यते एव तावदीजीर्णग्रस्तस्य भोजनभट्टस्य विदूषकस्या भययुक्तता। स्वस्वामिन्याज्ञया नूतन जामातुः राज्ञः प्रवृत्तिमधि गन्तुमिच्छन्त्यातदर्थं राज्ञो मित्रं विदूषकमविष्यन्त्या साम्प्रतं चेटयाः प्रवेश-मनुरूपं दर्शयति कविः ततः प्रविशतीति—प्रविश्य च चेटी विदूषकदर्शनो-

---

नहीं सुकोमल आस्तरण से युक्त बिछौने पर सोने पर भी निद्रा नहीं आती। अपने चारों ओर वातरक्त की बीमारी जैसा दृश्य देख रहा हूँ। ओह रोगाक्रान्त होने से तथा प्रातःकालिक कलेवा न करने के कारण आनन्द कहाँ—

(तदनन्तर दासी का प्रवेश)

दासी—आर्य वसन्तक कहाँ चले गये (घूम कर इधर उधर देख कर)

अण्णेसामि। [कुत्र नु खलु गतआर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः निमित्तं भद्रे मामन्विष्यसि?]

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किं णिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ? [किं निमित्तं भद्रे ! मम अन्विष्यसि ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति। [अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति]

त्सुकतां प्रकटीकरोति कुत्र न खलु इति। न खलु शब्दो वाक्यपूरणाय। वसन्तक इति विदूषकस्याभिधानम्। आर्य इति तद्विशेषणार्थम्। तदन्वेषणार्थमितस्ततः परिभ्रम्य कुत्रचित् त्स्थाने तं दृष्ट्वा हर्षोक्ति दर्शयति। अहो एष वसन्तक इति। पुनः समीपं गत्वा ब्रवीति आर्य इति कः कालः कियान् समयः व्यतीत इति शेष। त्वामन्विष्यामि चिरादहं भवतोऽन्वेषणे संलग्नास्मीति भावः। एवमात्मनोऽन्वेषणे व्यग्रां चेटीं विलोक्य कारणं पृच्छति विदूषकः किं निमित्तमिति—भद्रे कल्याण शीले किं निमित्तम् किमर्थम्। अन्विष्यसि अन्वेषणं करोषि। अन्वेषणकारणं कथयेत्यर्थः। अन्वेषणकारणमाह चेटी—अस्माकमिति—भट्टिनी अकृताभिषेका राजपत्नी। जामाता दुहितुः पतिः। स्नात अपि किं स्नानं कृतवान्। इदं च त्वत्त एव ज्ञातुं शक्यते अतस्त्वामहमन्विष्यमीत्यर्थः। निजान्वेषणकारणं चेटया जामातृस्नानमुद्दिश्य कृतं

अहाः यह हैं आर्य वसन्तक ! (पुनः पास जाकर) कितनी देर हुई मैं आपको ढूंढ़ रही हूँ।

विदूषक—भद्रे ! मुझे किसलिये ढूंढ़ रही हो ?

दासी—हमारी मालकिन पूछ रही हैं, कि क्या जामाता ने स्नान कर लिया।

विदूषकः—किं णिमित्तं भौदि पुच्छति । [किं निमित्तं भवती पृच्छति ?]

चेटी—किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति । [किमन्यत् सुमनोवर्णक-मानयामीति ।]

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअअं । [स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् ।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ? [किं निमित्तं वारयसि भोजनम् ?]

प्रश्नं च श्रुत्वा विदूषकः प्रश्नयति—किं निमित्तमिति—भवती माननीया किं निमित्तं किमर्थम् पृच्छति। किं प्रयोजनमुद्दिश्यते स्वामिन्या कृतोऽयं प्रश्न इति भावः। चेटी उत्तरयति—किमन्यदिति—अन्यत् किम् वक्ष्यमाणमिदमेव निमित्तम् सुमनोवर्णकम् सुमनश्च वर्णकं चेत्यनयोः समाहारः सुमनः शब्देन पुष्पस्रक् लक्ष्यते। वर्णकशब्देन च चन्दनं गृह्यते। आनयामि आननीयमिति तदर्थः। यदि नाम, जामातुः स्नानं सम्पन्नं चेत्तदा तत्कृते धारणार्थम् पुष्प-स्रक् शरीरे अनुलेपनार्थं च चन्दनं मया आनेतव्ये इति भावः। तत्कथ्यतां याथातथ्येन त्वया। निशम्य चेटीवचनं विदूषक आह—स्नात इति। तत्र भवान् उदयनो भूपतिः। वर्जयित्वा त्यक्त्वा। सञ्जातः स्नानविधिर्भूपते-रुदयनस्य अतस्तदर्थं भोजनं बिना सर्वमानेतव्यमित्यर्थः। अत्रेदं तात्पर्यं-समुपस्थिते सति भूपतेः कृते भोजने विदूषकेणापि तद्भोक्तुं लभ्येत। किन्तु स्वभावतो भोजनप्रियोऽपि अजीर्णरोगग्रस्तोऽयं न तावद्भोजनस्य स्पृहयति। इत्थं किल भोजनानयनं निषेधयन्तं विदूषकं प्रति चेटी तन्निराकरणे कारणं

विदूषक—तुम्हारी महारानी ऐसा किसलिये पूछ रही हैं।

दासी—पुष्पों की माला एवं चन्दनादि अङ्गराग लाना है इसलिये—

विदूषक—तत्र भवान् ने स्नान कर लिया, अतः भोज्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ ले आइये।

दासी—अच्छा आप भोज्य पदार्थों को लाने से क्यों मना करते हैं।

विदूषकः—अघण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खि-परिवट्टो सवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्तः इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

चेटी—ईदिसो होदि। [ईदृश एव भव।]

विदूषकः–गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदी सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ)

जिज्ञासमाना किमर्थं निषिध्यते इति स्वकीयां पृच्छां प्रकटयति किं निमित्त-मिति। स्वकर्तृकेऽस्मिन् भोजनप्रतिषेधे हासकारणं प्रकटयति विदूषकः अधन्यस्य ममेति–अधन्यस्य भाग्यहीनस्य। अक्षिपरिवर्त्त इव परिवर्त्तः परितो भ्रमणं परिवर्त्तनमिति यावत् अक्ष्णोः परिवर्त्तः अक्षिपरिवर्त्तः कुक्षिपरिवर्त्तः उदरविकारः संवृत्तः सञ्जातः। कोकिलानाम् नेत्रपरिवर्त्तनमिव ममापि भुक्तापरिपाकरूपो विकारः साम्प्रतं वरीवर्त्तीत्यत एवाहं भोजनमानेतुं निषेधामि। राजा च नैकाकी भोजनं कुर्यात्। अहं च उपस्थितं भोजनं कथमपि त्यक्तुं न शक्नुयाम्। यथेच्छं भोक्तुमसमर्थोहं ध्रुवं मन्दभाग्योस्मि। विदूषकवचनमनुनिशम्य चेटी सपरिहासं प्रेम्णा ब्रवीति–ईदृश एव भवेति। ईदृशः उदरविकारवान्। भव वर्त्तस्व। विदूषकोऽपि नरपतेः सकाशं जिगमिषन् चेटीं प्राह–गच्छत्विति। तदनन्तरं तयोश्चेटीविदूषकयोस्ततः

विदूषक—कोयलों की आंख में होने वाले शूल की तरह मेरे पेट में भी वात से शूल जो हों रहा है।

दासी—तुम्हें ऐसा ही होता रहे।

विदूषक—अच्छा आप चली जावें। मैं महाराज के पास जा रहा हूँ।

(दोनों उस स्थान से चले जाते हैं)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिका-
वेषधारिणी वासवदत्ता च ।)

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ दमदवणं आअदा ? [किं निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआसुह्मआणि पेक्खामि कुसु-

प्रस्थानं दर्शयति कविः निष्क्रान्ताविति । प्रवेशक इति एतस्य लक्षणं प्रागुक्तम् । अत्र कविः चेटीविदूषकाभ्यामनुदात्तभाषितेन प्रयोजितः वृत्तं वत्सराजविवाहसम्बन्धलक्षणं पत्तिष्यमाणं पुष्पवर्णकाहरणादिरूपं कथांशं च निर्दिष्टवानिति ।

कविरिदानीं भाविघटनानुरूपप्रसङ्गानुरोधेन सपरिवारां पद्मावतीं वास-वदत्तया सह प्रमदवनं प्रवेशयति तत इति । प्रमदवनगतां पद्मावतीं श्रुत्वा चेटी तत्र गमनकारणं पृच्छति—किं निमित्तमिति–किं निमित्तम् किमर्थम् । तस्याः पतिरिदानीमन्तःपुरे वर्त्तते तदागमनमुपेक्ष्य भवती केन कारणेन प्रमदवनं प्रस्थितेति भावः पद्मावती चेटीं प्रत्याह हलेति । हला इति चेटी-कृते सम्बोधनम् । ते प्रसिद्धाः प्रयत्नसंवर्धिता अदूरतो दृश्यमानाः । तावत् वाक्यालङ्कारे । शेफालिका गुल्मकाः शेफालिका हरसिङ्गार परिजात नाम्ना

प्रवेशक

(तदनन्तर सपरिवार पद्मावती एवं अवन्तिका वेषधारिणी
वासवदत्ता का प्रवेश)

दासी—राजकुमारी जी ! आप किसलिये इस अन्तःपुर की वाटिका में पधारी हैं ।

पद्मावती—सखि ! वे हरसिंगार के गुच्छे खिले हैं या नहीं, यही देख रही हूँ ।

मिदाणि वा ण वेत्ति [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।]

चेटी--भट्टिदारिए! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मौतिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं [भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकवलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।]

पद्मावती--हला ! जदि एव्वं किं दाणि विलम्बेसि ? [हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी-तेण हि इमस्सि सिलावट्टुऐ मुहूत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ।

प्रसिद्धाः । गुल्मका गुल्मा एव गुल्मकाः प्रकाण्डरहिताः । कुसुमिताः कुसुमानि पुष्पाणि सञ्जातानि येषां तादृशाः । आर्ये सखि शेफालिका वृक्षेषु इदानीं पुष्पाण्युद्गतानि न वेति पद्मावती प्रश्नाशयः । चेटी तदुत्तरं प्रतिपादयति भर्तृदारिकेति । ते शेफालिका गुल्मकाः । प्रवालान्तरितैः विद्रुमव्यवहितैः । मौक्तिकलम्बकैः मुक्ता एव मौक्तिकानि तेषां लम्बकानि ललन्तिकाभिधाः कण्ठभूषणविशेषाः तत्सदृशैः कुसुमैः आचिताः व्याप्ताः । शेफालिका ध्रुवं विकसिताः सन्ति । पश्य मूले अरुणवर्णानि तदूर्ध्वं च धवलान्येतानि पुष्पाणि खलु प्रवालमिश्रमुक्तामणिनिर्मितकण्ठभूषणसदृशानि लक्ष्यन्ते इति भावः । कुसुमितशेफालिकां श्रुत्वा पद्मावती चेटीं तस्याः पुष्पावचये नियोक्तुमिच्छन्ती ब्रूते—हलेति । यदि शेफालिकाः कुसुमिताः सन्ति तर्हि किमिदानीं विलम्बसे विलम्बं करोषि । अतिशीघ्रं तानि कुसुमान्यवचीयन्तामित्यर्थः । पद्मावती-

---

दासी—राजकुमारी जी ! वे खिल तो गये हैं और बीच-बीच में मूँगे से गूँथी गई मोतियों की माला के समान फूलों से लदे हुये हैं ।

पद्मावती—प्रिय सखि ! यदि ऐसी बात है तो विलम्ब क्यों कर रही हो ।

दासी—तब आप इस पत्थर की चट्टान पर थोड़ी देर के लिये बैठ जाइये मैं शीघ्र ही इन फूलों को एकत्रित कर लेती हूँ ।

जाव अहं वि कुसुमावचअं करोमि [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तक-मुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि]

पद्मावती—अय्ये किं एत्थ उवविसामो ? [आर्ये ! किमत्रोपविशावः ?]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभे उपविशतः)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं ! [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम्]

वचनानुसारं चेटी कुसुमावचयं प्रतिजानीते—तेन हीति-अस्मिन् समीपस्थे शिलापट्टके बृहत्पाषाणफलके मुहूर्त्तकं क्षणमिति यावता कालेन मया कुसुमावचयं कृत्वा गम्यते तावत्कालपर्यन्तं भवत्या राजकुमार्याऽस्मिन् दृषत्फलके उपविश्यतामित्यर्थः । चेटी वचनानुरोधाद् दृषत्फलकोपर्युपवेशनार्थमवन्तिकाया अनुमतिं प्रार्थयते—आर्ये इति । अत्रोपवेशनं किं भवत्यै रोचते इत्यर्थः । अवन्तिका तत्र स्वकीयामनुमितिं प्रकटयति एवं भवत्विति एवम् वाढम् आवाभ्यामुपविश्यतामित्यर्थः ।

अवचितपुष्पा चेटी पद्मावतीमुपगम्य ब्रूते—पश्यत्विति । पश्यत्विति पौनःपुन्ये द्विः प्रयोगः । अर्धमनः शिलापट्टकैः अर्धं मनोगुप्तखण्डैः इव शेफालिका-

---

पद्मावती—आर्ये ! तब क्या हम दोनों यहीं पर बैठें ।

वासवदत्ता—ऐसा ही किया जाय ।

(दोनों बैठती हैं)

दासी—(फूलों को एकत्रित कर) देखिये राजकुमारी जी देखिये आधे भाग में मैनसिल के टुकड़ों की तरह इन हरसिंगार के फूलों से परिपूर्ण मेरी अञ्जुली को ।

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं। पेक्खदु पेक्खदु अय्या [अहो विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या]

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं । [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ?]

पद्मावती—हला ! सा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

कुसुमैः निर्गुण्डीपुष्पैः मे मम अञ्जलिम्—करपुटम् । पश्यतु पश्यतु विलोकयतु विलोकयत्वित्यर्थः ।

चेट्या प्रदत्तानि पुष्पाणि गृहीत्वा पद्मावती तत्सौन्दर्यं प्रशंसन्त्याह—अहो इति । विचित्रता श्वेतरक्तोभयवर्णसौन्दर्यातिशायिता ।

प्रायशः कुसुमान्येकवर्णानि भवन्ति किन्तु एतानि वर्णद्वयवन्तीति नूनम् विस्मयकरत्वमेतेषाम् । पुनः अवन्तिकां प्रदर्शयति पश्यतु पश्यत्वार्येति—पुष्पाणि दृष्ट्वा वासवदत्ता ब्रवीति—अहो इति । दर्शनीयता मनोहरता । अमूनि पुष्पाणि विचित्रसौन्दर्यशालीनि सन्तीति भावः । उभाभ्यां कृतं प्रसूनप्रशंसनं श्रुत्वा पुनः प्रसूनानयनोद्युक्ता चेटी पद्मावतीं पृच्छति भर्तृदारिके इति अवचेष्यामि अवचिनुयामित्यर्थः । राजकन्ये किमिदानीं पुनः प्रसूनावचयं कुर्याम् । चेटीवचनं श्रुत्वा पद्मावती निषेधति—हलेति ।

पद्मावती—(देख कर) वाह ! क्या ही विचित्र ये फूल हैं । आर्या ! आप देखें तो सही ।

वासवदत्ता—ये फूल तो अत्यन्त दर्शनीय हैं ।

दासी—राजकुमारी जी क्या और फूल चुनूँ ।

पद्मावती—नहीं नहीं और मत चुनना ।

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किं निमित्तं वारयसि ?]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिना भवेअं। [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ? [हला प्रियस्ते भर्ता ?]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

मा मेति । द्विरुक्तिः निषेधदार्ढ्यार्थम् । अवचित्य अवचायं कृत्वा मामा परिश्रमं मा कार्षीः । अवन्तिका तन्निषेधकारणं जिज्ञासन्ती ब्रवीति हलेति वारयसि निवारयसि । पद्मावती तन्निषेधे कारणं कथयति—आर्यपुत्रेति—कुसुमसमृद्धिं पुष्पप्रचुरतां सम्मानिता समादृता । सम्भावयेऽहमत्रागतो-मत्प्रियः समन्तात् पुष्पितं प्रमदवनं दृष्ट्वा प्रसन्नः ममादरं कुर्यादित्यर्थः । वासवदत्ता तत्प्रीतेरियत्तां परिच्छेत्तुमिच्छन्ती ब्रवीति हलेति त्वं पतिमेनं प्रेमदृष्टया पश्यसि अपि नाम ते वर्त्तते सहजं प्रेम पत्यौ ? पद्मावती नवोढा-नुरूपलज्जाभावं गोपयन्ती तत्रात्मनः स्वकीयामुत्कण्ठां प्रदर्शयन्ती ब्रवीति न जानामि न वेद्मि । आर्ये आर्यपुत्रो मम प्रीतिपात्रं वर्त्तते न वेति न जानामि किन्तु तद्वियुक्ता पर्युत्सुका भवामि । पद्मावतीवचः श्रुत्वा वास-

---

वासवदत्ता—प्रिय सखि ! क्यों मना करती हो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! यहाँ आकर फूलों की इस बहार को देख कर प्रसन्न होंगे, उससे मैं सम्मानित होऊँगी ।

वासवदत्ता—सखि ! तुम्हें पति प्यारे हैं ।

पद्मावती—आर्ये ! यह तो मैं नहीं जानती किन्तु उनके बिना जी भी नहीं लगता ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खर खु अहं करेमि। इअं वि णाम एवं मन्तेदि। [दुष्करः खल्वहं करोमि। इयमपि नामैव मन्त्रयते।]

चेटी—अभिजाद खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तोति। [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं—प्रियो मे भर्तेति।]

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो। [एकः खलु मे सन्देहः।]

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताएत्ति ? [यथा ममार्यपुत्रस्यथैवार्याया वासवदत्ताया इति।]

वदत्तायाः मानसं वितर्कं वर्णयति कविः दुष्करमिति दुष्करं दुर्विधेयम्। करोमि विदधामि। इयम् एषापि। मन्त्रयते गूढं परिभाषते। पद्मावत्या गूढोक्तेरभिप्रायं प्रशंसनपुरःसरं प्रकाशयति चेटी—अभिजातमिति—अभिजातम् कुलीनतोचितम्। खलु निश्चये। मन्त्रितं कथितम् राजकुमार्या आत्मनः प्रेम पत्यौ यत्प्रकाशितं तत्सर्वथा कुलीनतासदृशमेव। सम्प्रति आत्मनः वासवदत्तायाश्च प्रियविषयां प्रीतिं परिज्ञातुं पद्मावती वदति एक इति। एको मे संशयो वर्तते स चायमपनोद्यस्त्वयेत्यर्थः। कीदृशस्ते संशय इति वासवदत्ता पृच्छति किं किमिति। तत्सूचनार्थं द्विरुक्त्या त्वरयति वासवदत्ता। पद्मावतीसंशयविषयकं स्वकीयप्रष्टव्यमुपस्थापयति—यथेति–यथा यादृशं

वासवदत्ता—(स्वगत) मैं बहुत दुष्कर कर रही हूँ वह भी तो इसी प्रकार कहती है।

दासी—मुझे पति प्रिय हैं ऐसी बात राजकुमारी ने अपनी कुलीनता के अनुकूल ही कहीं।

पद्मावती—आर्ये ! मुझे एक सन्देह है।

वासवदत्ता—वह क्या वह क्या !

पद्मावती—आर्यपुत्र मुझे जैसे प्रिय हैं क्या उसी प्रकार आर्या वासवदत्ता को भी था।

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं। [अतोऽप्यधिकम्।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ? [कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्उत्तपच्चखवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्वं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। एवं तावद् भणिष्यामि। यद्यल्पः स्नेहः सा स्वजनं न परित्यजति।]

मम प्रेम तादृशं तत्परिमाणमेव तद्वर्तते पूज्यायाः तत्र वासवदत्ताया अपि। तस्योत्तरमवन्तिका ब्रूते–अतोपीति। यावत्प्रेम ते पत्यौ वर्तते ततोप्यधिकरूपेण वासवदत्ताया इत्यर्थः। पुनः पृच्छति कथमिति। कथं केन प्रकारेण। तस्यास्तत्र मत्तोऽधिकं प्रेम इति कथं जानासीति भावः। पद्मावतीकृतं प्रश्नमाकर्ण्य स्वस्वरूपप्रकाशनभिया स्वकीयोक्तौ मानसमनुतापमाचरन्ती वितर्कयति वासवदत्ता—हमिति–आर्यपुत्रस्य पत्युः पक्षपातेन प्रेममहिम्ना समुदाचारः मर्यादा अतिक्रान्तः उल्लङ्घितः। एवं विचार्य तस्योत्तरमुपलभ्याह प्रकाशम्–एवमिति। स्वजनम् आत्मीयवर्गम्। न परित्यजति–न परित्यजेदित्यर्थः। यदि तस्याः प्रेम न्यूनं भवेत्तदा सात्मीयवर्गं परित्यज्य तेन सह नागता भवेदित्यर्थः। अतो निश्चितमनुमातुं शक्यते तस्याः समधिकं प्रेम पत्याविति। पद्मावती समर्थयति भवितव्यमिति। एतन्नवदुक्तं सम्भवतीत्यर्थः।

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

पद्मावती—यह तुम कैसे जानती हो।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र में अपना पक्षपात बता कर मैं व्यवहार भूल गई (अथवा मेरा सदाचार सीमा से बाहर हो गया) अच्छा तो इस तरह कहूँगी (प्रकाश) यदि आर्यपुत्र में उसका प्रेम स्वल्प होता तो वह उनके लिये कभी भी अपने आत्मीयजनों का त्याग नहीं करती।

पद्मावती—होदव्वं । [भवितव्यम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति । [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो । [उक्तो ममार्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—तदो किं भणिद ? [ततः किं भणितम् ?]

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घ णिस्ससिअ तुह्णीओ संवुत्ता । [अभणित्वा किञ्चित् दीर्घं निश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

भर्त्तुः वीणावादनकौशलं शिक्षित्वा यथा वासवदत्ता भर्तुर्वल्लभा जाता तथा त्वमपि तत्कौशलशिक्षणेन भर्तुः प्रियपात्रतामधिगन्तुं चेष्टस्वेति—आशयेन—चेटी पद्मावतीमुद्दिश्य ब्रवीति—भर्तृदारिके इति । तत्र भवत्याऽपि भर्ता प्रार्थनीयो यथा वासवदत्ता वीणावादनं शिक्षिता तथा भवताऽहमपि शिक्षणीयास्मीति—कथयेत्यर्थः । पद्मावती तद्विषये स्वकीयां प्रार्थनां सूचयति उक्ता इति । अहं तदर्थमार्यपुत्रं प्रार्थितवतीत्यर्थः । ततस्तेन किमुत्तरितमिति पृच्छति अवन्तिका । तत इति ततः तस्मिन्समये किं किमुत्तरं दत्तम् । अवन्तिका प्रश्नमनुनिशम्य पद्मावती कथयति—अभणित्वेति—तूष्णीकः तूष्णीशीलः । मत्प्रार्थनां श्रुत्वा तदुत्तरं किमप्यनुक्त्वा दीर्घं निःश्वस्य केवलं मौनमालम्बितम् । एतेन वासवदत्तागतशिष्यजनोचितगुणगणस्मरणमहिम्ना

पद्मावती—हो सकता है ।

दासी—राजकुमारी जी ! पति से अच्छे ढंग से कहिये कि मैं भी बीन सीखूंगी ।

पद्मावती—मैंने यह बात आर्यपुत्र से कही थी ।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ।

पद्मावती—बिना कुछ कहे ही वे ऊँची उसास लेते हुये चुप हो गये ।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि ? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमिरअ दक्खिणदाए मम अग्गदो न रोदिदि त्ति । [तर्कयाम्यार्याया: वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

वत्सराजचित्ते विषाद उत्पन्न इति कविनाध्वनित इति भावः । पत्युः तूष्णींभावे कारणं जिज्ञासमाना वासवदत्ता पद्मावत्याः मानसं वितर्कं जिज्ञासती आह—ततस्त्वमिति—भर्तुः कृते दीर्घनिःश्वासे मौनधारणे च कीदृशं तवानुमानमित्यर्थः । पद्मावती स्वमानसं वितर्कं प्रकटयति—तर्कयामिति—गुणान् सौन्दर्यानुरागादीनि । दक्षिणतायाः दक्षिणस्य भावो दक्षिणता तस्याः समरागतायाः । दक्षिणनायकलक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—एष त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथित इति । अहमनुमिनोमि यत् वीणाशिक्षणार्थं मयि प्रार्थिते स वासवदत्तायाः सौन्दर्यमनुरागादिकं स्मृत्वा केवलं मौनमालम्बितवान् नवविवाहितायाः मम मनसि खेदो न भवेदिति नारुदत् । वासवदत्ता धन्या भाग्यवती ।

वासवदत्ता—उस पर तुम क्या अनुमान करती हो ।

पद्मावती—मैं ऐसा अनुमान करती हूँ कि वे आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण कर उदारता के कारण मेरे सामने रोये नहीं ।

वासवदत्ता—(अपने मन में) यदि यह बात हो तो मैं धन्य हो गई ।

(इसके अनन्तर राजा तथा विदूषक का प्रवेश)

विदूषकः—ही । ही । पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं । [ही ही । प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

कामेनोज्जयनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।

विदूषकः—प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं बन्धुजीवस्य कुसुमानि बन्धुजीवकुसुमानि प्रचितानि अवचिचानि पतितानि स्रस्तानि च तानि बन्धुजीवकुसुमानि तेषां विरलपातेन रमणीयं मनोहरम् प्रमदवनम् अन्तःपुरोद्यानम् । इतः अस्माद् स्थानाद् ।

राजा—वयस्य मित्र ।

अन्वयः—तदा उज्जयिनीं गते अवन्तिराजतनयां स्वैरम् दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इषवः पातिताः । (तेन) अद्य अपि तैः हृदयं सशल्यं एव । (इदानीं) भूयश्च वयं विद्धाः । मदनः पञ्चेषुः यदि अयं षष्ठः शरः कत्रं पातितः ? ॥ १ ॥

व्याख्या—कामेनेति—तदा तस्मिन् समये उज्जयिनीम् विशालाभिधां पुरीम् गते सम्प्राप्ते अवन्तिराजतनयाम् अवन्तिराजस्य प्रद्योतस्य तनयाम् कन्यां वासवदत्तां स्वैरम् स्वेच्छं दृष्ट्वा अवलोक्य कामपि अनिर्वचनीयां अवस्थां

विदूषक—ओह ! इकट्ठे होकर गिरे हुये इन दुपहरिया के पुष्पों से विरल रमणीय यह अन्तःपुर का बगीचा है; इधर से पधारें ।

राजा—प्रिय मित्र वसन्तक ! यह मैं आ गया ।

उस समय उज्जयिनी में जाने पर अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता को यथेष्ट रूप में देखने के कारण जब मैं अनिर्वचनीय स्थिति में पहुँच गया तब कामदेव ने अपने पाँचों बाणों से मेरे ऊपर प्रहार किया था जिससे आज भी मेरा चित्त विद्ध ही हैं—आज पद्मावती से विवाह हो जाने पर मैं पुनः

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥ १ ॥

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावीदी लदामण्डव गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअं पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअ गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्टा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसङ्कुलं दापव्वदअं गदा भवे !

परिस्थितिं गते प्राप्ते मयि उदयने कामेन मदनेन पञ्च इषवः पञ्चसंख्याकाः वाणाः पातिताः निपातिताः। एतेन राज्ञः वासवदत्तां प्रति प्रणयातिशयः प्रतिपादितः। अद्य अपि अस्मिन्समयेऽपि तैः कामबाणैः हृदयं चित्तम् मदीयमिति शेषः सशल्यम् कीलकयुक्तम् एव। भूयश्च पुनरपि अस्मिन्काले विद्धाः ताडिताः। एवं च मदनः कामः पञ्चेषुः पञ्चबाणः यदि चेत् अयम् एषः साम्प्रतं षष्ठः शरः वाणः कथम् केन प्रकारेण पातितः प्रेरितः। कामस्य पञ्चबाणत्वं प्रसिद्धम्। इदानीं षष्ठः शरः मयि प्रेरयता तेन स्वनाम्नः निरर्थकत्वं प्रदर्शितमिति भावः ॥ १ ॥

विदूषक—तत्र भवती = माननीय। उताहो = अथवा। असनकुसुमसञ्चितम् = असनानां = सर्जकनामवृक्षविशेषाणां कुसुमानि = पुष्पाणि तैः सञ्चितः व्याप्तः तम्। व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम् व्याघ्रस्य चर्मणा अवगुण्ठितः समाच्छादितः तम्। शिलापट्टकम् प्रस्तरखण्डम्। अधिककटुकगन्धं सप्तच्छदवनम् अधिकः

कामबाण से विद्ध हो गया हूँ। भला कामदेव के तो पांचही बाण थे उसने यह छठा बाण कैसे गिराया ? ॥ १ ॥

विदूषक—माननीया तत्र भवती पद्मावती लता-मण्डप में गई होंगी अथवा सर्ज के फूलों से व्याप्त बाघ के चमड़े से मढ़े हुये के समान दिखाई पड़ने वाले पर्वत तिलक नामक पत्थर की चट्टान पर गई होगी, अथवा तीव्र गन्ध वाले सप्तपर्ण वृक्षों के वन में प्रविष्ट हुई होगी। हो सकता है कि चित्र-लिखित पशु-पक्षियों से परिपूर्ण लकड़ी द्वारा बनाये गये कृत्रिम दारु पर्वत

(ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही ! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअवल-देवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छंति पेक्खदु दाव भवं। [कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत् अथवा आलिखित-मृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान्।]

राजा—वयस्य ! पश्याम्येनाम् !

कटुको गन्धः येषां ते अधिककटुकगन्धाः = प्रकृष्टकटुगन्धयुक्ताः ते च ते सप्तच्छदाः सप्तपर्णनामवृक्षविशेषा. तेषां वनम् विपिनम्। आलिखितमृगपक्षि-सङ्कुलम् आलिखिताः बहुविधं चित्रिता ये मृगपक्षिणः पशुविहगास्तैः सङ्कु-लम् परिव्याप्तम्। दारुपर्वतकम् काष्ठरचितशैलप्रतिकृतिम्। गता याता। अत्र विदूषकेण पद्मावतीस्थितिविषये विकल्पचतुष्टयं प्रदर्शितम्। ही ही प्रमोदसूचकमव्ययपदम्। शरत्कालनिर्मले शरत्कालेन निर्मलम् तस्मिन् = शर-दृतुकृतस्वच्छे। अन्तरिक्षे = आकाशे। प्रसारितवलदेवबाहुदर्शनीया प्रसारितौ विस्तारितौ यौ बलदेवबाहू बलभद्रभुजौ तद्वद्दर्शनीया रमणीया ताम्। समाहितम् = एकाग्रतापूर्वकम्। गच्छन्तीम् प्रयान्तीम्। पश्यतु = अव-लोकयतु।

राजा—एनाम् = सारसपङ्क्तिम्।

नामक स्थान पर गई हो। (ऊपर की ओर देख कर) अहा ! शरद् ऋतु से निर्मल आकाश मण्डल में फैलाई गई बलभद्र की भुजा के समान सुन्दर एवं समाहित चित्त से जाती हुई इन सारस पक्षियों की पङ्क्ति को आप देखें।

राजा—मित्र ! इन्हें देख रहा हूँ।

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥ २ ॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एवं कोकणदमालापण्डररमणीअं

अन्वयः—ऋज्वायतां विरलां नतोन्नतां निवर्त्तनेषु सप्तर्षिवंशकुटिलां निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य अम्बरतलस्य विभज्यमानां सीमामिव एनां सारसपंक्ति पश्यामि ॥ २ ॥

व्याख्या—ऋज्वायतां ऋज्वी चासौ आयता ताम् = सरलदीर्घाम् । विरलाम = क्वचित्त्रटिताम् । नतोन्नताम् नता चासौ उन्नता ताम् निम्नोर्ध्वरूपेण स्थिताम् । सप्तर्षिवंशकुटिलाम् सप्तर्षीणां वंश इव कुटिला ताम् = सप्तर्षिवर्गवक्राम् । निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य निर्मुच्यमानो यः भुजगस्तस्य उदरं तद्वन्निर्मलम् तस्य = कञ्चुकरहितसर्पजठरनिर्मलस्य । अम्बरतलस्य = आकाशस्य विभज्यमानाम् सविहितविभागां सीमाम् मर्यादाम् । इव एनां सारसपङ्क्ति । पश्यामि अवलोकयामि । स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥ २ ॥

चेटी—कोकनदमालापाण्डररमणीयाम् कोकनदानां माला इव पाण्डरा

सीधी और फैली हुई, विरल और ऊँची नीची, दोनों किनारों पर सप्तर्षि मण्डल के समान टेढी, केचुलों को छोड़ देने वाले सर्पोदर के समान निर्मल तथा आकाश मण्डल की सीमा का विभाग करती हुई सारस पङ्क्ति को देख रहा हूँ ॥ २ ॥

दासी—राजकुमारी जी ! कमलों की पङ्क्ति के समान स्वच्छ समाहित होकर उड़ती हुई रमणीय इस सारस पङ्क्ति को देखें। अरे ! यह तो स्वामी आ गये ?

सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति । अम्भो । भट्टा । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम् । अहो ! भर्ता ?]

पद्मावती—हं ! अय्यउत्तो । अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि । ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो । [हम् ! आर्यपुत्रः आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि । तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः ।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवेत् ।]

(तथा कुर्वन्ति)

विदूषकः—तत्तहोदी पद्मावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे । [तत्र भवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

रमणीया च तां = रक्तोत्पलस्रग् इव श्वेतमनोहराम् । समाहितम् = एकाग्रतापूर्वकम् । गच्छन्तीम् = प्रयान्तीम् । एतां = सारसपङ्क्तिं । अहो = आश्चर्यद्योतकमव्ययपदम् । तव कारणात् भवदर्थम् ।

पद्मावती—हम् अनुनयबोधकमव्ययपदम् । तव कारणात् भवदर्थम् आर्यपुत्रदर्शनम् स्वस्वामिप्रत्यक्षीकरणम् ।

वासवदत्ता—एवम् = इत्थम् ।

विदूषकः—निर्गता = निष्क्रान्ता । भवद्दर्शनमकृत्वेति भावः । अपचित कुसुमान् = लूनपुष्पान् । शेफालिकागुच्छान् = निर्गुण्डीस्तवकान् ।

राजेति—विचित्रता = नैकवर्णता ।

पद्मावती—ओह ! यह तो आर्यपुत्र ! आर्ये ! आपके कारण आर्यपुत्र का दर्शन त्याग रही हूँ । इस कारण माधवी लतामण्डप में हम दोनों चले ।

वासवदत्ता—हाँ ! अब यही करना चाहिये । (दोनों वैसा ही करती है)

विदूषक—ज्ञात होता है तत्र भवती पद्मावती यहाँ आकर चली गई हैं ।

Raj... Library ACC No. 15142

राजा—कथं भवान् जानाति।

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं। [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्।]

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य। वसन्तक !

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण जाणामि उज्जइणीये उत्तामि त्ति। [वसन्तकसङ्कीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्त इति।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतिक्षिण्यावहे।

वासवदत्ता-वसन्तकसंकीर्त्तनेन=वसन्तकनामोच्चारणेन।

राजा—अस्मिन् = निकटस्थे, शिलातले = शिलाफलके। आसीनौ = उपविष्टौ।

वसन्तकः—शरत्कालतीक्ष्णः शरच्चासौ कालः तेन तीक्ष्णः = शरत्कालतीव्रः दुःसहः = सर्वथा सोढुमशक्यः। आतपः = धर्मः।

राजा—वाढम् = युक्तम्।

राजा—आप यह कैसे जानते हैं।

विदूषक—आप इस हरसिगार के गुच्छों की ओर देखें जिसमें से फूल तोड़ लिये गये हैं।

राजा—अहो वसन्तक ! ये फूल कितने विचित्र हैं।

वासवदत्ता—(मन ही मन) आर्यपुत्र द्वारा वसन्तक का नाम लेने से मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं पुनः उज्जयिनी में हूँ।

राजा—वसन्तक ! तब तक इस शिलातल पर बैठ कर पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

विदूषकः—भो ! तह। (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकाल-तिक्खो दुस्सई आदवो ता इमं दाव माहवीगण्डवं पविसामि। [भोस्तथा ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः।]

राजा—बाढम्। गच्छाग्रतः।

विदूषकः—एव्वं होदु। [एवं भवतु]

(उभौ परिक्रामतः)

पद्मावती—एवं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ। किं दाणिं करेह्य ? [एवमाकुलं कर्तुकामः आर्यवसन्तकः। किमीदानीं कुर्मः ?]

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीनं ओलम्बलदं ओधूय

विदूषकः—एवं भवतु = मम पृष्ठतः आगच्छतु।

पद्मावती—एवम् = इत्थम्। आकुलं कर्त्तुंकामः = व्यग्रं विधातु-मनाः।

चेटी—मधुकरपरिनिलीनाम्—मधुकरैः परिनिलीना ताम् = भ्रमरपूर्णाम्

विदूषक—'श्रीमन्' ! अब ऐसा ही करना चाहिये। (बैठ कर पुनः उठ कर) ओह ! ओह ! यह तो शरदऋतु का आतप बड़ा तीव्र और असह्य हैं इस लिये समीप के इस वासन्ती लता मण्डप में चलना चाहिये।

राजा—ठीक है। आगे चलो।

विदूषक—यही करता हूँ। (दोनों चल पड़ते हैं)

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! इस लता मण्डप में प्रवेश कर हम लोगों को आकुल करना चाहते हैं। अब क्या करना चाहिये—

दासी—राजकुमारी जी ! भौरों से लदी हुई इस शाखा को जिसके सहारे ये लतायें खड़ी है हिला कर स्वामी को आने से रोकती हूँ।

भट्टारं वारइस्सं। [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलताम-वधूय भर्त्तारं वारयिष्यामि ।]

पद्मावती—एवं करेहि। [एवं कुरु।] (चेटी तथा करोति।)

विदूषकः—अविहा अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [अविहा अविहा, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदो ह्मि। [दास्याः पुत्रैर्मधु-करैः पीडितोऽस्मि।]

राजा—मा मा भवानेवम् ! मधुकरसंत्रासः परिहार्यः।

पश्य—

अवलम्बलताम् = आलम्बनवल्लरीम्। अवधूय = आन्दोलयित्वा भर्त्तारम् = स्वामिनमुदयनम्। वारयिष्यामि = निवारयिष्यामि।

विदूषकः—अविहा अविहा = विषादसूचकमव्ययपदम्। दास्याः पुत्रैः नीचैः। पीडितोऽस्मि = व्यथितोऽस्मि।

राजाः—मा मा भवानेवम् कार्षीरिति शेषः। मधुकरसंत्रासः मधुकराणां संत्रासः = भ्रमरभयम्। परिहार्यः = त्यक्तव्यः।

पद्मावती—अच्छा ! ऐसा ही करो (दासी वैसा ही करती है)

विदूषक—हाय ! हाय ! आप ठहरिये, आप ठहरिये।

राजा—क्यों ? किसलिये।

विदूषक—इन नीच भौंरों से मैं सताया जा रहा हूँ।

राजा—नहीं नहीं। आप ऐसा मत कहें, मत कहें। भौंरों को दुःख देना उचित नहीं।

मधुमदकला मधुकरा मदनार्त्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्ताविमुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

विदूषकः—एव्वं होदु। [एवं भवतु ।]

(उभावुपविशतः ।)

अन्वयः—मधुमदकला मदनार्त्ताभिः प्रियाभिः उपगूढा मधुकराः पादन्यासविषण्णाः वयम् इव कान्ताविमुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

व्याख्या—मधुमदकलाः मधुनः = पुष्परसस्य मदेन मानसविकारविशेषेण कलाः = अव्यक्तमधुरशब्दाः । मदनार्त्ताभिः मदनेन = कामेन आर्त्ताभिः आकुलाभिः । प्रियाभिः = भ्रमरीभिः । उपगूढा = आश्लिष्टाः मधुकराः = भ्रमराः पादन्यासविषण्णाः पादयोर्न्यासः तेन विषण्णाः = अस्मच्चरणविन्यासखिन्नाः वयम् इव कान्ताविमुक्ताः = प्रियाविरहिताः । स्युः = भवेयुः । भ्रमरैरिदानीं तावत् प्रियाभिः सह मकरन्दास्वादमग्नैरमन्दानन्दसन्दोह अनुभूयते मञ्जुगुञ्जद्भिः । कुञ्जे च करिष्यमाणेनास्मदीयप्रवेशेन सम्भ्रमात्ते । अस्मानिव प्रियाभिर्वियुक्ता भविष्यन्तीति भावः । आर्यावृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या' ॥ ३ ॥

राजा—तस्मात् = मधुकरत्रासपरिहाररूपकारणात् । इहैव = लतामण्डपाद्बहिः शिलातले एव । आसिष्यावहे = उपनिवेक्ष्यामः । इह स्थित्वै पद्मावत्यागमनं प्रतीक्षणीयमिति भावः ।

मकरन्द पान से उन्मत्त कामार्त्त अपनी प्रियाओं से आलिङ्गित हुये ये भौरे पैर की आहट मात्र से दुःखी हो हम लोगों की भाँति ही अपनी प्रियाओं से वियुक्त हो जायेंगे ॥ ३ ॥

इस कारण हम दोनों यहीं बैठें ।

विदूषक—अच्छा यही सही । (दोनों बैठ जाते हैं)

चेटी—भट्टिदारिए! रुद्धा खु ह्म वयं। [भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् ।]

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो। [दिष्टयोपविष्ट आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो। [दिष्टया प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिदारिए! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी। [भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः ।]

चेटी—रुद्धा = बहिर्निर्गमनासमर्था। एतयो राजविदूषकयोरत्र शिलातले। उपवेशेन सर्वा वयमस्मिन्निकुञ्जे प्रतिरुद्धा संजाताः। तद्दृष्टिपरिहारेण नेतो निर्गन्तुं शक्यते इति भावः।

पद्मावती—दिष्टयेति—दिष्टया = दैवेन। आर्यपुत्रः = श्रीमान्। उपविष्टः शिलातले। न किल कुञ्जान्तःप्रविष्ट इति भावः।

प्रियदर्शनजमानन्दं सहसा लब्ध्वा वासवदत्ता ब्रवीति—दिष्टयेति प्रकृतिस्थशरीरः प्रकृतिस्थं = नीरोगं शरीरं वपुर्यस्य सः। भर्त्तुः स्वास्थ्यं निरीक्ष्य भार्यान्तरगतचेतस; तस्य स्वविषये प्रेमन्यूनतां चाभिवीक्ष्य हर्षशोकाभ्यामश्रूणि मुञ्चन्तीं वासवदत्तां विलोक्य चेटी कथयति भर्तृदारिकेति—आर्यायाः = अवन्तिकायाः। दृष्टिः = नेत्रम्। साश्रुपाता = सवाष्पा।

दासी—राजकुमारी जी ! हम लोग तो यहीं रोक ली गई। अब उनकी दृष्टि बचा कर निकलना सम्भव नहीं।

पद्मावती—भाग्यवश आर्यपुत्र बैठ गये।

वासवदत्ता—(मन ही मन) भाग्य से आर्यपुत्र का शरीर स्वस्थ है।

दासी—राजकुमारी जी ! आर्या की आँखों से आँसू गिर रहे हैं।

वासवदत्ता—एषा महुअराणं खु अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी। [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुम-पतितेन सोदका मे दृष्टिः।]

पद्मावती—जुज्जइ। [युज्यते]

विदूषकः—भो! सुण्णं खु इदं पमदवनं। पुच्छिदव्वं किंचिअत्थि। पुच्छामि भवन्तं। [भोः! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम्! प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति। पृच्छामि भवन्तम्।]

रहस्यभेदभीतेरवहित्थां विदधाना वासवदत्ताह—एषेति--खलु = निश्च-यार्थे। अविनयात् = विनयाभावात्। काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धापुष्पप-रागेण। दृष्टिः = नेत्रम्। सोदका = अश्रुयुक्ता। अत्र हि भ्रमराः स्वैरं भ्रमन्ति तेषां सञ्चालनेन काशपुष्परागं मच्चक्षुषोरन्तर्गतं तेन हेतुना नेत्राभ्यामश्रूण्युद्गतानीति भावः।

एतत्कारणं युक्तं मन्यमाना पद्मावती प्राह—युज्यते इति सम्भाव्यते इत्यर्थः। भ्रमरपरिभ्रमणवशात् काशपुष्पपरागपतनेन युक्तं नेत्राभ्यामश्रू-द्गिरणमित्यर्थः। रहस्यार्थप्रकाशनयोग्यमवसरमन्विष्यन् राजानं प्रति 'प्रीति-पात्रं ते पद्मावती वासवदत्ता वेत्येवं प्रश्नमुपक्षेप्तुकामः विदूषकः प्राह—भो इति–शून्यम् = आवयोः व्यतिरिक्ततृतीयजनरहितम्। प्रष्टव्यम् = प्रष्टुं योग्यम्। हे राजन् अत्र तृतीयः कोऽपि नास्ति। अतोऽहं यत्पृच्छामि तस्योत्तरं समुचितरूपेण निःशङ्कं दातुमर्हति भवान्। अत्र संगोपनं तव नोचितमित्यर्थः।

वासवदत्ता—भौरों की गड़बड़ी से कास के फूलों की धूलि उड़ कर पड़ जाने के कारण मेरी आँखों में पानी आ गया हैं।

पद्मावती—ऐसा सम्भव है।

विदूषक—महाराज! यह प्रमदवन (अन्तःपुर की वाटिका) इस

राजा—छन्दतः ।

विदूषकः—का भवदो पिआ। तदाणि तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणि पदुमावदी वा । [का भवतः प्रिया । तदानीं तत्रभवतो वासवदत्ता इदानीं पद्मावती वा ।]

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

राजा—छन्दत इति छन्दोऽभिप्रायः । अभिप्रायानुसारेण निःशङ्कं पदभीष्टं ते तत्पृच्छेत्यर्थः ।

एवं प्रश्नं राज्ञः सन्निधावुपस्थापयति विदूषकः—का इति–प्रिया= प्रीतिपात्रम् । तदानीम् =अतीतसमये स्थिता वासवदत्ता इदानीं अस्मिन्समये वर्त्तमाना पद्मावती वा वर्त्तते तत्रैतत्पृच्छामि भवतः स्नेहाधिको वासवदत्तायां पद्मावत्यां वा उभयोः कतरत्तेऽधिकं प्रीतिपात्रमिति प्रश्नमेतदाकर्ण्य तदुत्तरं दुष्करं मन्यमान आह राजा—किमिदानीमिति–किम् = किमर्थम् बहुमानसंकटे =अधिकसम्मानविपत्तौ । न्यस्यति निपातयति । तदानीं वासवदत्ता मया बह्वमन्यत । साम्प्रतं पद्मावती वा बहु मन्यते उभयोः कस्यां ममाधिकं प्रेम ? इत्येतत् कथनं मे दुष्करमिति विदूषकप्रश्नान्तरं स्वपति-

---

समय सर्वथा शुन्य है, मुझे कुछ आप से पूछना है अतः आप से पूछ रहा हूं ।

राजा—इच्छानुसार (संकोचरहित हो) पूछो ।

विदूषक—उस समय की महारानी वासवदत्ता और इस समय में विद्यमान महारानी पद्मावती इन दोनों में आपको कौन सबसे अधिक प्यारी है ।

राजा—आप मुझे इस प्रकार बहुसम्मानरूप विपत्ति में क्यों डाल रहे हैं ?

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कटे निक्खित्तो अय्यउत्तो । [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अहं अ मन्दभाआ । [अहं च मन्दभागा ।]

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भव । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा [स्वैरं स्वैरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।]

राजा—वयस्य न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः !

देवोक्तमित्थं वचनामाकर्ण्य पद्मावती चेटीं प्रत्याह—हलेति–निक्षिप्तः = स्थापितः । उभयत्र प्रेयस्योः का नाम ते प्रियतरे त्येतादृशं पृच्छता विदूषकेण तदुत्तरप्रदानरूपे यादृशेऽतिदुष्करे कर्मणि नियुक्तोऽधुना मे प्रियतम इति भावः । आर्यपुत्रकर्तृकमेकस्यां बहुमानसूचनं त्वपरस्याश्चेतसि बहुलमीर्ष्याभावं जनयेदिति तदुत्तरं नूनं दुष्करमिति भावः । पद्मावत्याभाषितं श्रुतवती वासवदत्ता स्वमनसा वितर्कमाह—अहं चेति । मन्दभागा = अल्पभाग्या । नूतनपरिणीतपद्मावतीसमागमेन विस्मृतातीतमत्प्रणयो राजा यदि वदिष्यति 'पद्मावतीं प्रियतरे'तितदेत तच्छ्रुत्वा मया महान् कष्टोऽनुभूयत इत्यर्थः । स्वकीयप्रश्नस्योत्तरं दातुमनिच्छन्तं राजानं विलोक्य विदूषकः प्राह--स्वैरमिति स्वैरं स्वैरं = स्वच्छन्दतानुसारम् । एका = वासवदत्ता । उपरता = दिवंगता । अपरा = पद्मावती असन्निहिता = दूरे स्थिता । अतो

पद्मावती—सखी ! जैसे आर्यपुत्र सङ्कट में डाल दिये गये हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) मैं अभागिनी भी जैसे संकट में डाली गई ।

विदूषक—आप निःसङ्कोच कहिये, एक तो मर गई । दूसरी इस समय पास में नहीं है ।

राजा—मित्र ! मैं नहीं बताऊँगा । क्योंकि तुम मूर्ख (बकवादी) हो ।

पद्मावती—एतएण भणिदं अय्यउत्तेण। [एतावता भणितमार्यपुत्रेण ।]

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं। एसा सन्दट्ठा मे जीहा। [भोः सत्येन शपे कस्मा अपि नाखास्ये । एषा सन्दष्टा मे जिह्वा ।]

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम् ।

यथार्थकथने भीतिर्न कर्त्तव्या ।विदूषकप्रश्नस्योत्तरं प्रदातुमनिच्छन्नाह राजा—वयस्येति—वयस्य = मित्र ! न ब्रूयाम् = न वदेयम् । खलु = निश्चयेन । भवान् मुखरः = वाचालः रहस्यं गोपयितुमसमर्थो भवान् प्रकृत्या अवश्यं यत्र तत्र रहस्यं प्रकाशयिष्यति ! अतस्तव प्रश्नस्योत्तरं मया दातुं न शक्यते इति भावः । पद्मावती कुञ्जान्तःस्था राज्ञो भावमवबुध्याह—एतावतेति = अनेन । आर्यपुत्रेण = भर्त्रा, भणितम् = प्रतिपादितम् । निषेधवचनेन वासवदत्तायामेव प्रणयविशेषं गूढतयाविष्कृतम् राज्ञेति पद्मावत्या सूच्यते ।

विदूषकः—रहस्यार्थं प्रकाशनरूपाशङ्कां शपथेन निराकुर्वन्नाह—भो इति सत्येन = धर्मेण । सत्यस्य धर्मस्य च शपथं कृत्वा ब्रवीमि यद् भवदुक्तं न कुत्रापि प्रकाशयिष्ये इति । अतो भवता मयि न शङ्कनीयम् । सन्दष्टा दृढम् निरुद्धा मया । शपथे कृतेऽपि विदूषके तदुत्तरे स्वकीयमनुत्साहं दर्शयन् राजा प्राह—नोत्सहे । सखे = मित्र नोत्सहे--शपथे कृतेऽपि त्वयि विश्वासाभावात् तादृशं सूचयितुं न मे मनसि उत्साहो जायते इति भावः । राज्ञो

पद्मावती—आर्यपुत्र ने इतने से तो कह दिया ।

विदूषक—राजन् ! सत्य की सौगन्ध ! मैं किसी से भी नहीं कहूँगा । यह मेरी जीभ काट लीजिये ।

राजा—मित्र ! कहने का उत्साह जी में नहीं होता ।

पद्मावती—अहो! इमस्स पुरोभाइदा। इत्ताएण हिअअं ण जाणादि। [अहो! अस्य पुरोभागिता। एतावता हृदयं न जानाति।]

विदूषकः—किं ण भणादि मम? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं! एसो रुद्धो अत्तभवं। [किं न भणति मम? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम्। एष रुद्धोऽत्र भवान्।]

राजा—किं बलात्कारेण?

हृद्गतमभिप्रायमज्ञातवतो विदूषकस्य मौर्ख्यमाविष्कुर्वाणा पद्मावत्याह—अहो इति—अस्य = विदूषकस्य। पुरोभागिता = मूर्खता। एतावता अनेन ध्वनिना पुनः सूचनेनापीत्यर्थः हृदयं हृद्गतमभिप्रायं न जानाति राज्ञा हि मुहुर्वासवदत्तायाः प्रीतिविशेषास्पदत्वं गूढमाविष्कृतम् तथापि विदूषकस्य बुद्धेः पन्थानं नारोहतीति अस्य मूर्खतायाः पराकाष्ठेति भावः। अत्रार्थे सौहार्दभावसुलभं सनिर्बन्धं वचः पुनः प्रयुङ्क्ते विदूषकः किन्नेति ·मम = मदग्रे शिलापट्टकात् शिलापट्टकं विहाय ततोऽन्यत्रेत्यर्थः। अनाख्याय अकथयित्वा। वासवदत्ता प्रिया पद्मावती वेत्यप्रतिपाद्य। मत्प्रश्नविषयीभूतं तारतम्यं मदग्रे न प्रकाश्यते किम्? अप्रकाशिते चेदस्मादस्थानादेकपदमपि गन्तुं न शक्यते इति भावः। एष रुद्धोऽत्र भवानिति एषोऽहम् भवन्तं रुणध्मि। पश्यामि कथं नोच्यते इति। विदूषकमित्थं बलात्कर्त्तुमुद्यतं दृष्ट्वा राजा

पद्मावती—अहो! इनकी मूर्खता (हठ)। जो इतना कह देने पर भी हृदय की बात नहीं समझ सके।

विदूषक—आप मुझ से क्यों नहीं कहते। बिना कहे इस पत्थर की चौकी से एक पग भी आगे नहीं जा सकते। लीजिये आप यही रोक लिये गये।

राजा—क्या जबर्दस्ती (जानना चाहते हो?)

विदूषकः—आम, बलक्कारेण। [आम् बलात्कारेण ।]

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत् ।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं । वअस्सभावेण साविदो सि जइ सच्चं ण भणासि । [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान् । वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि ।।]

राजा—का गतिः श्रूयताम्—

पृच्छति··किं बलात्कारेण = हठेन शुश्रूषसे किमिति भावः । प्रसह्य प्रतिश्रवणं जानानो विदूषक आह आमेति। आमिति स्वीकारसूचकमव्ययपदम् । बलात्कारेण = हठेन नूनमिदं भवता श्रोष्यामीत्यर्थः । तेन हीति··पश्याम = इत्यादरे बहुत्वम् । बलात्कारेण इत्थमिदं श्रोतुमिष्यते। चेत्त्वया तदा मयापि दृश्यते कथमेतच्छ्रूयते इति। पश्यामि बलपूर्वकं श्रवणप्रतिज्ञा ते सफला भवति मम वा तद्विषयाकथनप्रतिज्ञेति राजाशयः। दृढप्रतिज्ञं राजानं दृष्ट्वा आत्मनो बलात्कारं चाकिञ्चित्करं मत्वोपायान्तरं प्रस्तुवन् विदूषक आह— प्रसीदतु इति। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । वयस्येति ·मित्रभावेन । शापितः = शापं दापितः । अहं भवन्तं प्रसादयामि क्षम्यतां मद्दोषोऽयमपराधः । किन्तु यदि सत्यं न भणसि तदावयोर्मैत्री विहन्येदिति शेषः । विदूषकस्य चाग्रहं दृष्ट्वा राजाह—का गतिः··कः उपायः मित्रतासम्बन्धरक्षणाय विवशः सन् प्रीतितारतम्यं निवेदनीयमेवाह—पद्मावतीति—

विदूषक—जी हाँ जबर्दस्ती !

राजा—तब तो देखते हैं ।

विदूषक—आप मान जाइये, मान जाइये । मित्रता की शपथ आपको यदि सत्य न कहें ।

राजा—क्या उपाय है, अब तो लाचार हो गया अच्छा तो सुनो ।

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो ! अञ्जादवासं वि एत्थं बहुगुणं सम्पज्जइ । [भवतु

अन्वयः—रूपशीलमाधुर्यैः यद्यपि पद्मावती मम बहुमता तु वासवदत्ताबद्धं मे मनो न हरति तावद् ॥ ४ ॥

व्याख्या—रूपशीलमाधुर्यैः रूपं च शीलं च माधुर्यं च तैः सौन्दर्यसच्चरित्रप्रीतिविशेषैः । यद्यपि पद्मावती = मगधराजकुमारी मम = उदयनस्य । बहुमता अधिकाधिकप्रीतिसम्मता । तु = परन्तु वासवदत्ताबद्धं = वासवदत्तासलग्नम् मे = मम मनः चित्तं न हरति = ततो नाकर्षति । पद्मावत्याः सौन्दर्यादिगुणेषु लुब्धोऽहं तत्र बहुमानं वहामि तथापि वासवदत्ताप्रीतिपाशविवशं मे मनस्तया हर्त्तुं न शक्यते कथमपीत्यर्थः । पद्मावत्यां बहुमानं वासवत्तायां चात्मनो मनोबन्धं निरूपयता राज्ञाऽपूर्वा चातुरी प्रदर्शिता । आर्या वृत्तम् ॥ ४ ॥

इत्थं पत्याविष्कृतं प्रीतिविशेषमवगत्य वासवदत्तात्मगतं सप्रसादं वचः वक्ति—भवतु इति-भृशार्थे द्वित्वभावः । परिखेदस्य = वियोगदुःखस्य वेतनं = भृतिः पारितोषिकं वा । अज्ञातवासोऽपि = अविदितस्थितिरपि । बहुगुणः

यद्यपि पद्मावती रूप शील और प्रीति विशेष से मुझे बहुत अच्छी लगती है किन्तु तब भी वह वासवदत्ता में आकृष्ट हुये मेरे मन को नहीं हरती है ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) बस बस । इस विरह रूप दुःख का पुरस्कार मुझे दे दिया । हाँ यहाँ छिप कर पद्मावती के पास मेरा रहना भी अत्यन्त गुणकारी हुआ ।

भवतु। दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य। अहो! अज्ञातवासोऽप्यत्र वहुगुणः सम्पद्यते।]

चेटी—भट्टिदारिए! अदक्खिण्णो खु भट्टा। [भर्तृदारिके! अदाक्षिणः खलु भर्त्ता।]

पद्मावती—हला! मा मा एव्वं सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि। [हला! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति।]

=अधिकगुणसम्पन्नः। भर्त्तुरात्मनि प्रीतिविशेषमनुनिशम्य वियोगस्य पुरस्कारं प्राप्तवत्यस्मि। श्रीमत्याः पद्मावत्याः सन्निधौ प्रच्छन्नरूपेण क्लेशकारिणी मदीया स्थितिः वहुगुणशालिनी सञ्जातेति भावः। वासवदत्तायां राज्ञः पद्मावत्यपेक्षया प्रीतिविशेषमनुनिशम्य तदयुक्तं मन्वाना चेटी ब्रवीति—भर्त्तृदारिकेति–अदाक्षिण्यः=दाक्षिण्यरहितः। दाक्षिण्यं च सर्वासु नायिकासु समानप्रीतिमत्त्वमिति। राजकुमारि! वासवदत्तायां प्रणयविशेषं प्रकटयन्नूनं भवत्याः प्रियः दाक्षिण्यशून्यो वर्त्तते इति भावः। चेट्युक्तं निषेधयन्ती भर्त्तारं च वासवदत्तागतचित्तं प्रशंसन्ती पद्मावत्याह—हलेति–एवम्=पूर्वोक्तम्। मा मा निषेधदार्ढ्याय द्विरुक्तिः। वादीरिति शेषः सदाक्षिण्यः= दाक्षिण्यसहितः। यो हि वासवदत्तायाः अभावेऽपि तस्याः श्लाघनीयगुणान् संस्मरति तत्र प्रीतिभावं च भूयांसम् विभर्त्ति तदा कृतं दाक्षिण्यस्य निर्बहणम्। एतेन सापत्न्यसुलभं द्वेषभावमनावहन्त्याः पद्मावत्याः कुलीनत्वं प्रतिपादितं कविना भर्त्तुरुदारभावमात्मनि वहन्ती वासवदत्ता

दासी—राजकुमारी जी! राजा उदार नहीं है। क्योंकि वे सबको समान रूप से प्यार नहीं करते।

पद्मावती—नहीं नहीं। ऐसा नहीं। आर्यपुत्र समानानुरागी ही हैं कि अब भी वासवदत्ता के गुणों को याद करते हैं।

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं । [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।]

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो । [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः ।]

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण । उभओ वि तत्तहोंदीओ मे बहुमदाओ । [किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते ।]

पद्मावतीवचनमनुनिशम्य तां प्रशंसन्त्याह—भद्रे इति–अभिजनस्य=सत्कुलस्य । सदृशं = योग्यम् । मन्त्रितं = कथितम् अयि भद्रे सुन्दरि वासवदत्तागुणानुरक्तं स्वप्रियं प्रशंसन्ती त्वं सत्कुलोचितमेवोक्तवती यतः श्लाघनीयगुणासीति भावः । मुखरे विदूषके तद्रहस्योद्घाटनं सम्भाव्य तन्मुखादपि तत्प्रश्नस्योत्तरं जिज्ञासया राजा प्रश्नमुपन्यस्यति–उक्तं मयेति = कथितम् प्रिया = बहुमता । मित्र ! भवतामनुरोधेन तथ्यं कथितवानहम् उभयोर्मध्ये का नाम भवतः प्रियेति त्वमपि ब्रूहीत्यर्थः । प्रीतितारतम्यरूपं प्रश्नमेनमनुनिशम्य पद्मावती ब्रूते—आर्यपुत्रोऽपीति–विदूषक इवार्यपुत्रोऽपि प्रीतिभेदजिज्ञासुः संवृत्त इति भावः । विदूषको यथा प्रीतितारतम्यं पृष्टवान् तथैवार्यपुत्रोऽपि । एवमुभयोः नास्ति किमप्यन्तरमिति भावः । राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दातुमनिच्छन् विदूषक आह—कि मे इति–विप्रलपितेन = निरर्थकेन वचसा । तत्र भवत्यौ = पूज्ये ।

वासवदत्ता—भद्रे ! महान् अपने कुल के अनुरूप कहा—

राजा—मैंने तो कह दिया । अब तुम कहो कि उस समय वासवदत्ता या इस समय पद्मावती में कौन तुम्हें अच्छी मालूम पड़ती है ।

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसन्तक हो गये ।

विदूषक—मेरे निरर्थक कहने से क्या लाभ ? मेरे लिये तो दोनों ही भली हैं ।

राजा—वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण ? [किं मामपि बलात्कारेण ?]

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण।

विदूषक—तेण हि ण सक्कं सोदुं। [तेन हि न शक्यं श्रोतुम्।]

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम्।

मम तु बहुमानास्पदं वासवदत्ता पद्मावती चेत्युभयं उभयोरपि मे समानैव दृष्टिरिति भावः। विदूषकस्योक्तिचातुर्यमाकलय्य पुनः राजा प्रतिवक्ति—वैधेयेति--वैधेयो = मूर्खः। एवम् = प्रीतितारतम्यं बलाच्छ्रुत्वा। तदानीं बलात्कारपूर्वकं मन्मुखादुभयोः प्रीतितारतम्यं निष्कास्य त्वया स्वयमस्य प्रश्नस्योत्तरं न दीयते तत्तावज्जानीहि मयाऽपि बलात्कारः प्रयोक्ष्यते इति। अतो हि मित्र त्वयापि प्रीतितारतम्यं वक्तव्यमेवेत्यर्थः।

राज्ञा बलात्कारमाशङ्कमानः विदूषकः पृच्छति--किमिति। आत्मनः प्रश्नस्य मन्मुखादुत्तरमाकर्णयितुं भवता हठप्रयोगः करिष्यते किम्? तदेव कर्त्तव्यं भविष्यतीति राजा सूचयति अथेति--अथ किम् = किमन्यत्। अत्र कः सन्देह इत्यर्थः। नूनं बलात्कारं करिष्यामि। तद्वैफल्यं प्रदर्शयन्नाह विदूषकः—तेन हीति--हि = निश्चये बलात्कारेण नाभिधास्ये। अतो हठयोगं प्रयोक्ष्यमाणोपि भवान् तदुत्तरं मन्मुखान्न श्रोतुं शक्नोति। स्वबलात्कारं निरर्थकं मन्यमानो राजा कुपितं विदूषकं प्रति सामोपायं प्रस्तुवन्नाह—

राजा—मूर्ख ! मुझ से जबर्दस्ती सुन कर अब स्वयं क्यों नहीं मुझ से बतलाते।

विदूषक—क्या मुझ से भी जबर्दस्ती सुनना चाहते हैं ?

राजा—और क्या ? जबर्दस्ती ही।

विदूषक—तब तो नही सुन सकते।

राजा—कृपा कीजिये। महाब्राह्मण ! कृपा कीजिये। आप अपनी इच्छानुसार ही कहिये—

विदूषकः—इदाणिं सुणादु भवं। तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा। वत्तहोदी पदुमावदी तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ सदक्खिणा। अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोणेअण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता-कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति। [इदानीं श्रृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे अनुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता-कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

प्रसीदत्विति- महाब्राह्मण इति परिहासवचनम्। भोजनप्रियत्वाद्यभिप्रायेण। विशिष्ट उदारो वा ब्राह्मण इति तदर्थः। स्वैरं=स्वच्छन्दं निःशङ्कं च। स्वच्छन्दतायाः निःशङ्कतायाश्च सातिशयं द्योतनाय द्विरुक्तिः। बलात्करणभीतिमसम्भाव्य शीघ्रं प्रसन्नो भूत्वा स्वेच्छया निःशङ्कं वक्तव्यमुत्तरमिति भावः। पूर्वोक्तसामवचनेन प्रसीदन् राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुराह विदूषकः—इदानीमिति—अहं बहुमानदृष्टया वासवदत्तां पश्यामि। इत्थं वासवदत्तां प्रति आत्मनो बहुमानं संसूच्य स्वस्मिन् पद्मावतीकृतकोपवारणाय तद्गुणानपि वर्णयति भोजनभट्टो विदूषकः-तत्र भवतीति बहुमता=अधिकसम्मता। तरुणी=युवतिः। दर्शनीया-दर्शनयोग्या। अकोपना=कोपरहिता। सदाक्षिण्या=उदारा। स्निग्धेन=घृतादिप्रचुरस्नेहसंवद्धेन। भोजनेन=खाद्यपदार्थेन। प्रत्युद्गच्छति=प्रत्युद्व्रजति अन्विष्येति शेषः। श्रीमान् विदूषकः क्वास्ते इति मामितस्ततोऽन्विष्य सरसं भोजनं मम पुरतः समुपस्थापयन्ती मह्यं

विदूषक—तो आप सुनें। पूजनीया वासवदत्ता मुझे अधिक सम्मत हैं। यद्यपि कि माननीया पद्मावती युवती, सुन्दर, क्रोधहीन, अभिमान-रहित, मिष्टभाषिणी एवम् सभी लोगों पर समान कृपा करने वाली है तथापि वासवदत्ता में एक महान् गुण यह भी था कि आर्य वसन्तक कहाँ गये' ऐसा कह कर मुझे खोजती हुई स्वादिष्ट भोजन से मेरा सत्कार करती थीं।

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ! सुमरेहि दाणिं एदं। [भवतु भवतु, वसन्तक! स्मरेदिदानीमेतत्।]

राजा—भवतु भवतु वसन्तक! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता! कहिं वासवदत्ता? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता। [अविहा वासवदत्ता? कुत्र वासवदत्ता? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।]

राजा—(सविषादम्) एवम्! उपरता।

समादरं सम्पादयन्तीति संस्मृत्य वासवत्तायां महान् मे आदर इति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। विदूषकमुखेन स्वां बहुमतां पद्मावतीं च गुणवतीमनुनिशम्य वासवदत्ता ब्रवीति—भवत्विति-पर्याप्तमिति। स्मर = ध्यानं कुरु। सरसेन भोजनेन मत्कर्तृकं तवानुगमनं त्वया स्मरणीयमेव। श्रीमती वासवदत्ता मम बहुमते'ति विदूषकवचनमाकर्ण्य तं प्रशंसन्नाह राजा—भवत्विति देव्यै = महाराज्ञ्यै। प्रेममग्नं राजानं तथा प्रलापिनं वीक्ष्य विदूषकः तं वासवदत्ताया उपरमं संस्मारयन्नाह—अविहेति-अविहा इति खेदे। वासवदत्ता काक्वा कथयिष्यते भवता इति शेषः। चिरात् = बहोः कालात्। सखे इदानीं भवता वासवदत्तेति कथयिष्यते। क्वेदानीं सा। सा तु बहोः कालाद् विनष्टेति विदूषकाभिप्रायः। राजा विषण्णो ब्रूते—एवमिति-सखे सत्यमुच्यते भवता। सा तु परलोकं गता। नेदानीमुपलब्धा।

वासवदत्ता—अच्छा! अच्छा वसन्तक! आप इस समय इसी को याद करें।

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक! यह सब मैं देवी वासवदत्ता से कहूँगा।

विदूषक—हाय वासवदत्ता! महाराज अब वासवदत्ता कहाँ? वह तो बहुत समय हुआ स्वर्गवासिनी हो गई।

राजा—(खेद के साथ) हाँ ऐसा! वासवदत्ता मर गई।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥ ५ ॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसवादिओ।
[रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि। अदो ! पिअं

अन्वयः—अनेन परिहासेन मे मनः त्वया व्याक्षिप्तम्। ततः इयं वाणी पूर्वाभ्यासेन तथा एव निःसृता ॥ ५ ॥

व्याख्या—अनेन = पूर्वोक्तेन। परिहासेन = केलिवाक्येन। मे = मम मनः = चित्तम् त्वया = भवता, व्याक्षिप्तम् = दूरं प्रेरितम्। ततः = कारणात्। इयम् = एषा वाणी वाक् पूर्वाभ्यासेन = पुरातनसंस्कारेण। तथा एव। निःसृता = निर्गता। वासवदत्तायामुपरतायामपि त्वदीयपरिहासेन साधुनापि वर्त्तते इति मनसः मुग्धतया परवशस्य मम मुखाद्वाणी निर्गतेति भावः ॥ ५ ॥

पद्मावती सविषादं वदति रमणीय इति। खल्विति—वाक्यसौन्दर्ये। नृशंसेन = क्रूरेण। विसंवादितः = विनाशितः। प्रियाविषयकः प्रियतमप्रणयप्रकाशकः हृदयङ्गमः वार्त्तालापप्रसङ्गः दुर्जनेनानेन विदूषकेण वासवदत्तां स्मारयता सम्प्रति विघटित इत्यर्थः। पूर्वप्रपञ्चितं वचः आकलयन्ती वासवदत्ता ससन्तोषं कथयति—भवत्विति—भृशार्थे द्विर्भावः। विश्वस्ता = जातविश्वासा। अप्रत्यक्षम् = परोक्षरूपम् मया हि तादृशप्रणयसूचकमार्यपुत्रप्रयुक्तं वचनं परोक्षेणापि श्रवणाभ्यां पीयते इति धन्यास्मीति भावः।

इस परिहास से तो तुमने मेरा मन बहुत दूर खींच लिया। इस इस कारण पूर्व के अभ्यास वश मेरी वाणी उसी प्रकार निकल गई ॥ ५ ॥

पद्मावती—इस दुष्ट विदूषक ने सुन्दर कथा-प्रसङ्ग बिगाड़ दिया।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अच्छा ! अच्छा ! मुझे विश्वास हो गया

णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि। [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि। अहो! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते।]

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिसं दाणिं एवं। [धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः ईदृशमिदानीमेतत्।]

राजा-- वयस्य! जानाति भवानवस्थाम्! कुतः—

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।

सुहृदं राजानं विषादभावापन्नं दृष्ट्वा विदूषकस्तं समाश्वासयन्नाह—धारयत्विति–प्रकृतिस्थमात्मानं कारयत्वित्यर्थः। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। विधिः = भाग्यम्। अनतिक्रमणीयः अनुल्लङ्घनीयः। इदानीम् = अधुना। ईदृशम् भाग्यमिति शेषः।

मित्रवर! एतद्वियोगवैक्लव्यम् धैर्यं सन्धार्य सह्यताम् भवता। यतो विधिगतिः न केनापि उल्लङ्घयितुं शक्यते। यद्भावितं तद्भवत्येव। अत्र न कस्यापि स्वातन्त्र्यमिति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। विदूषकोक्तिंनिशम्य सविषादं राजा ब्रवीति---वयस्येति–अवस्थां दुखदां दशां जानाति कष्टकरी विरहावस्था जानात्येव येनैतादृशमुपदिश्यते।

अन्वयः—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्। स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं

जो इस प्रकार परोक्ष में भी ऐसे वचन मेरे कानों को सुनने के लिये मिल रहे हैं। यह तो परम प्रसन्नता का विषय है।

विदूषक—आप अपने को सम्भालिये, सम्भाल लीजिये। भाग्य का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता। इस समय तो यह वियोग दुःख चुपचाप सहना ही पड़ेगा।

राजा—मित्र! तुम मेरी अवस्था को जानते हो क्योंकि प्रियजनों में

यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोंदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। (निष्क्रान्तः।)[अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्रभवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

याति। तु एषा यात्रा यत् इह वाष्पं विमुच्य बुद्धिः प्राप्तानृण्या सती प्रसादं याति ॥ ६ ॥

व्याख्या—बद्धमूलः बद्धं मूलं येन सः = दृढमूलः। अनुरागः = प्रणयः। त्यक्तुं = हातुम्। दुःखम् = कष्टम् यथा भवति तथा। स्मृत्वा स्मृत्वा = भूयोभूयः स्मरणं कृत्वा। दुःखम् = कष्टं। नवत्वं = नूतनत्वं। याति = प्राप्नोति। तु परन्तु। एषा = इयं यात्रा = लोकस्थितिः। यत् इह अस्मिन्। वाष्पं = अश्रु विमुच्य = परित्यज्य बुद्धिः = निश्चयात्मिका धिषणा प्राप्तानृण्या = आसादितानृण्या। प्रसादं = नैर्मल्यम्। याति = प्राप्नोति। शालिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

महान् हि वासवदत्ता प्रणयमहिमा यः विरहे तत्स्मरणं महद्दुःखमुद्बोधयति। तेन व्याकुलं मनः रोदनाल्लघूभवति। ध्रुवं मनोऽघमर्णं भवति अश्रुपात एव तदृणनिर्यातनं नाम। येन कथमपि पर्याकुलं मनः प्रसन्नतां गच्छतीति भावः। दुःखाद्रुदन्तं राजानं दृष्ट्वा विदूषकः प्राह—अश्रुपातेति—अश्रुपातक्लिन्नम् वाष्पपतनार्द्रम्। मुखोदकम् = मुखप्रक्षालनजलम्। रोदनेन

दृढ़ हुये अनुराग का त्याग बड़ा कठिन होता है और बार-बार उसका स्मरण करने से दुःख नवनवायमान हो जाता है। ऐसी दशा में मात्र आँसू बहाना ही उपाय है। क्योंकि ऐसा करने से मन प्रियजनों के प्रेम से उऋण होकर प्रसन्न हो जाता है ॥ ६ ॥

विदूषक—आपका मुख आँसूओं के गिरने से मलिन हो गया है इसलिये मुख धोने के लिये पानी लाता हूँ।

पद्मावती—अय्ये ! बप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं। जाव णिक्कमह्य। [आर्ये ! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम् । यावन्निष्क्रमामः ।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। अहव चिट्ठ तुवं। उक्कण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं। अहं एव्व गमिस्सं। [एवं भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि।]

हि राज्ञो मुखं भृशं मलिनं सञ्जातम् अतो तत्प्रक्षालनार्थं जलमानेतुं गम्यते मयेत्यर्थः। अश्रुपूर्णेक्षणः प्रियतमः न किलास्मान् द्रष्टुं शक्नुयादिति कुञ्जान्निर्गमनावसरः समुचित इति विचार्यमाणा पद्मावती अवन्तिकां ब्रूते—आर्ये इति-वाष्पाकुलपटान्तरितं = अश्रुव्याप्तवस्त्राच्छादितम्। निष्क्रमामः = निर्गच्छामः। कुञ्जान्निर्गमनस्यायमेवावसर इति। अवन्तिकायास्तत्रानुमितिं प्रार्थयति पद्मावती। पद्मावतीं दृष्ट्वाऽवन्तिका ब्रूते—एवमिति-समीचीनोऽयं ते विचारो यदधुनास्माभिर्गन्तव्यमिति पुनः किञ्चित्समयोचितं विचार्य पद्मावतीनिर्गमनं निवारयितुं सा पक्षान्तरमुपन्यस्यति—अथवेति। उत्कण्ठितम् = समुत्सुकं पतिम् उज्झित्वा = त्यक्त्वा अयुक्तमनुचितम्। पद्मावति ! सर्वासां नो निर्गमन मनुचितम् त्वयात्रैव स्थातव्यम् त्वां द्रष्टुं भृशमुत्कण्ठते ते पतिः अतस्तदनादृत्य तवेतो निर्गमनमनुचितमिति अहमेव गमिष्यामीति भावः।

(चला गया)

पद्मावती—आर्ये ! आर्यपुत्र का मुख अश्रुप्रवाहपूर्ण होने से मानो कपड़े से ढका है। इस समय हम लोग निकल चलें।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही। अथवा तुम यहीं ठहरो। उत्कण्ठित हुये स्वामी को छोड़ कर तुम्हारा यहाँ से जाना उचित नहीं। मैं ही जाऊँगी।

चेटी - सुट्ठु अय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ । [सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला प्रविश ।]

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा) एसा एत्तहोदी पदुमावदी ! [एषा अत्रभवती पद्मावती !]

अवन्तिकोपस्थापितमिमं प्रस्तावमनुमोदमाना चेटी ब्रूते—सुष्ठ्वति—सुष्ठु = उचितम् । आर्या = अवन्तिका । उपसर्पतु = गच्छतु । भर्त्तारमिति शेषः । राजकुमार्या हि भर्त्तुः समीपं गन्तव्यमिदानीमेतया इतो गम्यतामिति भावः । पद्मावत्यस्मिन्नर्थे अवन्तिकाया अभ्यनुज्ञां याचमाना प्राह—किं नु खलु इति—मया किं भर्त्तुः समीपमधुना गन्तव्यम् । अत्राभ्यनुज्ञायते किं भवत्येति—तच्छ्रुत्वा स्वकीयामभ्यनुज्ञां ददमानाऽवन्तिका ब्रूते—हला प्रविशेति—सखि ! त्वयावश्यमेवप्रियसन्निधौ गन्तव्यमित्येवं पद्मावतीं निगद्य वासवदत्ता ततो निर्गच्छतीत्याह ।

राज्ञो मुखप्रक्षालनार्थं जलमानेतुं गतस्य विदूषकस्य राजसन्निधौ प्रवेशमाह—प्रविश्येति—कमलिनीपत्रपुटे जलमादाय राज्ञः समीपमागतः विदूषकस्तत्रागतां पद्मावतीं पश्यन्नाह—एषेति—अहो ! अत्र श्रीमती पद्मावती

चेटी—आर्या उचित कहती है । अतः आप स्वामी के पास जावें ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या मैं जाऊँ ?

वासवदत्ता—हाँ सखि जाओ । (ऐसा कह कर चली गई ।)

(विदूषक प्रवेश कर)

विदूषक—(कमल के पत्ते में पानी लिये हुये) अहा ! ये माननीया पद्मावती यहाँ आई हुई हैं ।

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ। किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक ! किमेतत् ?]

विदूषकः—एदं इद । इद एदं । [एतदिदम् । इदमेतद् ।]

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्य भणतु ।]

विदूषक—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेणो सस्सुपाद खु तत्तहोदो मुहं । ता गृह्णादु होदी इदं मुहोदअं । [भवति !

विराजते। जलमानयन्तं विदूषकं दृष्ट्वा तत्कारणं जिज्ञासमाना पद्मावती पृच्छति—आर्येति-आर्यपुत्रकर्तृकरोदने भवत्कर्तृक जलानयने चेत्युभयत्र किं कारणमित्यर्थः। अत्र यथार्थं कारणं कथ्यतामिति भावः। यथार्थं कारणं संगोपयन् यथा कथञ्चित् पद्मावत्याः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्विदूषक आह—एतदिदमिति-एतत् = मत्करस्थम्। इदं = जलम्। मत्करे किमिदमिति भवती पृच्छति चेदिदं जलम्। पुनः पदप्रातिलोम्येन तदर्थकं वाक्यान्तरमाह—इदमिति--जलमेवेदं भावः। प्रियतमस्य रोदनकारणं सुस्पष्टं जिज्ञासितुं पुनः पद्मावती त्रिवारं पृच्छति—भणत्विति--सुस्पष्टं कारणमुच्यतां तत्र भवतः अश्रुपातस्य जलानयनस्य च। मदीयं मनः एतत्समाकर्णयितुं भृशमुत्कण्ठितमिति भावः। वासवदत्तावियोगजेन दुःखेन राजा रोदित्युक्ते सति सहजसपत्नीभावः जन्येर्ष्यावशात् पद्मावती स्वप्रियतमे प्रणयकोपमाविष्कुर्यादिति विदूषकः सत्यं कारणमनुक्त्वा कारणान्तरं समयोचितमसत्यं च निर्दिशन्नाह-भवति। इति वातनीतेन = पवना-

---

पद्मावती--आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—यह वह। वह यह।

पद्मावती—कहें कहें आर्य ! कहें।

विदूषक—श्रीमति ! हवा के झोंके से उड़े हुये काश पुष्प के पराग के

वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम्। तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम्।]

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जण्णस्स परिजणो वि सदक्खिणो एव्व होदि। (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो। इदं मुहोदअं। [अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। जयत्वार्यपुत्रः। इदं मुखोदकम्।]

धूतेन। काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धारजसा। साश्रुपातम् = अश्रुजलपूर्णम्। श्रीमतः स्वामिनः वातावधूतकाशकुसुमस्य रजः नयनयोरभ्यन्तरं गतम्। तेन हेतुना राज्ञो मुखमश्रुपूरितं जातमिति भावः। अतो राजकीयमुखप्रक्षालनार्थं मयानीतमेतज्जलं गृह्यतां भवत्या प्रक्षाल्यतां चाश्रुकलिलं राज्ञो मुखम्।

विदूषकस्य तदुदारवचनमाकर्ण्य स्वान्ते पद्मावती तं प्रशंसति—अहो इति-अहो प्रशंसावाचकमव्ययपदम्। परिजनः = भृत्यवर्गः। उदारो जनः उदारजनमेव परिजनं लभते। यो यादृशः स तादृशमेव सहचरमवाप्नोति। अयम् परिजनः स्वस्वामिविषये कीदृशीं चिन्तामुद्वहति इति स्वगतमभिधाय भर्त्तुः समीपं गत्वा ब्रवीति—जयत्विति-सर्वोत्कर्षेण वर्त्ताताम् स्वामी। स्वामिन् मुखप्रक्षालनार्थमेतज्जलम्। एतेन स्वमुखं प्रक्षालनीयमित्यर्थः। पद्मावतीमागतां विलोक्य सानन्दं राजा ब्रूते-अये इति। अये इति सम्भ्रमं व्यनक्ति। अहो अस्मत्प्रिया पद्मावती समागता। अपवार्य पद्मावत्याः सकाशान्मुखं परावर्त्य विदूषकसम्मुखं कृत्वा अन्याश्राव्यत्वं यथा भवेत्तथा। इदम् = एतत्

आँख में पड़ने से राजा का मुख अश्रुपूर्ण हो गया है, इसलिये इनका मुख धोने के लिए इस जल को आप लें।

पद्मावती—(मन ही मन) अहो ! उदार पुरुष के परिजन भी उदार ही होते हैं (पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह मुख धोने के लिए जल है।

राजा—अये ! पद्मावती ! (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषक।—(कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

राजा—साधु वसन्तक ! साधु । (आचम्य) पद्मावती आस्यताम् ।

पद्मावती—ज अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्यपु आज्ञापयति ।]

किं = किं प्राप्तम् । अयि मित्र ! सहसोपलब्धया पद्मावत्या किमिदमानीतम् । मया च स्वरोदनकारणं किमस्यै निवेदनीयम् इति राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं कर्णे कथ'ति विदूषकः—एवमिवेति–पद्मावती यथा न श्रृणुमादिति कर्णे कथयति वास्तवं रोदनकारणं वक्तुमनुचितमिति 'काशकुसुमपरागेणाक्षि-पतितेन राजा रोदिति–तदर्थं च मुखप्रक्षालनीयं जलं मयानीतं भवत्या गृह्यतां प्रक्षाल्यतां च राज्ञो मलिनं मुखमित्येवं निवेदितम् । तथैव भवताऽपि आत्मनो रोदनकारणं निवेदनीयमित्यर्थः ।

विदूषकनिवेदितं रहस्यार्थमवधार्य तं प्रशंसन्नाह राजा–साध्विति ब्रवीति । मित्रवर ! समीचीनमुत्तरं प्रदत्तं त्वया–मयापि तदेव निवेदयिष्यते । पद्मावत्यानीतजलेन राज्ञो मुखप्रक्षालनं दर्शयति कविः–आचम्येति । मुखं प्रक्षाल्येत्यर्थः । पद्मावतीमुपदेशयितुमिच्छन् राजा आह–पद्मावतीति प्रिये ! समुपविश्यतामित्यर्थः । भर्त्तुराज्ञायाः सादरं स्वीकरणं नाटयति पद्मावती

राजा—ऐं ! पद्मावती (केवल विदूषक की ओर अपना मुख कर) वसन्तक ! यह क्या हैं ?

विदूषक—(कान में) यह ऐसा है ।

राजा—वाह वसन्तक ! वाह (मुख धोकर) पद्मावती बैठो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा (बैठ जाती है)

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि !
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ ७ ॥

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ ८ ॥

यदिति । राजा पद्मावतीं स्वसमीमुपपवेश्य--विदूषकवचनानुसारं वस्तुस्थितिं संगोपयन् स्वरोदने अनृतं कारणान्तरमुपनिवेदयन्नाह—पद्मावतीति--

अन्वयः—हे भामिनि ! शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साश्रुपातम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—भामिनि=कोपनशीले ! शरच्छशांकगौरेण शरत्कालीनशशाङ्क इव गौरस्तेन शरच्चन्द्रशुक्लेन । वाताविद्धेन=समीरसम्प्रेरितेन । काशपुष्पलवेन इक्षुगन्धापुष्परजःकणेन । इदम् = एतत् । मम = मे । मुखं = वदनम् । साश्रुपातम् = अश्रुपातक्लिन्नम् । अस्तीति शेषः । अयि प्रिये ! अत्र प्रमदवने वायुनाक्षिप्यमाणाः काशपुष्परेणवः समन्ततः पतन्ति ते एव मन्नयनयोरन्तर्गताः अश्रूण्युद्भावयन्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

पुनरस्यानृतवचनस्यौचित्यं समर्थयन् स्वमनसि राजा आह -इयमिति ।

अन्वयः—नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् । इयं कामं धीरस्वभावा तु स्त्रीस्वभावः कातरः ॥ ८ ॥

राजा—प्रिये पद्मावती ! वायु के द्वारा उड़ाये गये शरत्कालीन चन्द्रमा के समान सफेद इन काश पुष्पों के पराग के पड़ जाने से मेरे मुख पर अश्रुपात हो गया ॥ ७ ॥

(मन में)

नयी ब्याही हुई यह बाला (वासवदत्ता के वियोगजन्य दुःख से होने

विदूषक—:—उइदं तत्तहोदो मअधराअस्स अवरह्णकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं। सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उपादेदि। ता उट्ठदु दाव भवं। [उचितं तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्णकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जदर्शनम्। सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति। तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान्।]

व्याख्या—नवोद्वाहा नव उद्वाहो यस्याः सा=नूतनपरिणया। इयं=एषा। बाला=युवतिः। सत्यम् कारणं। श्रुत्वा=आकर्ण्य। व्यथां=दुःखम्। व्रजेत्=प्राप्नुयात्। यद्यपि इयं=पद्मावती, कामम्=पर्याप्तं यथा स्यात्तथा धीरस्वभावा=धीरप्रकृतिः। तु=परन्तु। स्त्रीस्वभावः=नारीप्रकृतिः। कातरः=अधीरः। नूतनपरिणीतेयमश्रुपातस्य तथ्यं कारणं ज्ञात्वा भृशमुद्विग्ना भवेद्यद्यपि प्रकृत्येयं धीरा नोद्विजेत तथापि स्वभावतः स्त्रियः अधीरा भवन्तींति मया युक्तमेवोचरितमिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

तत्कालं समुचितं मगधराजोपसर्पणरूपं कार्यं राज्ञाऽनुष्ठेयमावश्यकं स्मारयन् विदूषको ब्रूते—उचितमिति--मगधराजस्य=मगधाधिपस्य अपराह्णकाले=दिनस्य चतुर्थभागे। प्रतीष्टः=स्वीकृतः प्रीतिमुत्पादयति=सन्तोषं जनयति। अपराह्णकाले श्रीमान् मगधराजः भवन्तं पुरस्कृत्य मार्गे परिचितानां दर्शनार्थं गन्तुमर्हति। हि=निश्चये। सम्मानः प्रतीष्टः=स्वीकृतः सन् सम्मानकर्त्तुरान्तरं तोषविशेषमुद्भावयितुं प्रभवति। तमेतं तेन करिष्यमाणमादरं स्वीकर्त्तुमर्हति भवानिति। अतस्तदर्थम् अनुतिष्ठतु तावद्भवान्। उत्थातव्यं

वाले इस अश्रुपात रूप) सत्य बात को सुन कर दु:खी हो जायगी। यद्यपि इसकी प्रकृति गम्भीर है किन्तु स्त्रियों का स्वभाव तो कातर होता ही है ॥ ८ ॥

विदूषक—महाराज मगधेश्वर को आपको आगे कर अपराह्ण काल के समय अपने मित्रों का साक्षात्कार करना उचित है सत्कार की स्वीकृति प्रीति उत्पन्न करती है इसलिये आप अब उठें।

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे:)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

—:❈:—

भवतेति । विदूषकोक्ति समर्थयति राजा—वाढमिति । वाढम् वरम् । प्रथमः कल्पः = मुख्यो विधिः । उत्थाय = उत्तिष्ठन् ब्रवीतीति शेषः ।

अन्वयः—लोके विशालानां गुणानां सत्काराणां च कर्त्तारः नित्यशः सुलभाः । तु विज्ञातारः दुर्लभाः ॥ ९ ॥

व्याख्या—लोके=जगति । वि ालानां=महतां । गुणानां=दयादाक्षिदीनाम् सत्काराणां=आदराणां च कर्त्तारः=सम्पादयितारः । नित्यशः=प्रायः सुलभाः = सुप्राप्याः । तु = परन्तु । विज्ञातारः = वेत्तारः कृतज्ञा इत्यर्थः । दुर्लभाः = दुष्प्राप्याः, नित्यमुपकर्त्तारः सत्कर्त्तारश्च लोकाः वहुधा वहुतमा दृश्यन्ते किन्तु कृतज्ञा सत्कारज्ञाश्च लोके स्वल्पतमा एव । अतो मगधराज कृत-सत्कारस्य तद्गुणविशेषस्य च कृतज्ञताऽस्माभिः प्रकाशनीया इत्यर्थः ॥ ९ ॥

निष्क्रान्ताः = निर्गताः ।

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

—:❈:—

राजा—अच्छी बात है यह तो मुख्य कार्य है ।

(उठ कर)

महान् गुण एवं महान् सत्कारों को करने वाले बहुधा सुलभ हुआ करते हैं । किन्तु उनसे सत्कृत होकर कृतज्ञता का ज्ञापन करने वाले लोग स्वल्प ही होते हैं ।

(सब लोग चल देते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं । [मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

विदूषकमुखाद्वासवदत्तां प्रियतमामाकलय्य प्रसङ्गाद्वासवदत्ताविवियोगविकलस्य राज्ञो रोदनम् । पद्मावतीसमागमो मगधराजसमीपोगमनं चेति चतुर्थाऽङ्के संसूचितम् । इदानीं किल पञ्चमेऽङ्के शिरोवेदनावशात्पद्मावत्या अस्वस्थतामाकलय्य, तत्रोपस्थाय तत्प्रतीक्षया तस्याः शय्यायां शयनसुखमनुभवतः तान् तान् वासवदत्ताविषयकान् स्वप्ने विलापप्रलापानुपवर्ण्य जाग्रदवस्थायां विदूषकेण समं तद्विषयमालपतो राज्ञो महाराजदर्शकादेशात् स्वपरिपन्थिनमारुणिं प्रति सेनयाभिगमनोत्साहो दर्शयिष्यते । तदनुगुणमेव प्रवेशकमुखेन चेटीद्वयस्य करणीयं दर्शयन् पद्मिनिकां नाम्नीं चेटीं दर्शयति कविः—ततः प्रविशतीत्यादिः पद्मिनिका चेयं भर्तृदारिकायाः पद्मावत्याः शिरोवेदनां मधुरिकामुखेन वासवदत्तां निवेदयितुं विदूषकमुखेन च स्वयं राजानं निवेदयितुं समुत्सुका मधुरिकामन्विष्यन्ती तदुचितं वचः प्रस्तौति—मधुरिकेति । अयि मधुरिके सत्वरमागच्छ । कार्यविशेषः समुपस्थित इति तदामन्त्रणानुसारं मधुरिकाप्रवेशं दर्शयति कविः—प्रविश्येति सख्या पद्मिनिकयामन्त्रिता कृतप्रवेशा च मधुरिका ब्रवीति—हलेति··सखि एषाहमुपागता । किमर्थमाहूयते ।

(तदनन्तर पद्मिनिका नाम की दासी का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुरिके ! मधुरिके ! जल्द आ ।

(मधुरिका प्रवेश कर)

मधुकरिका—हला ! इअह्मि। किं करीअदु ? [हलां ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीषंवेदणाए दुक्खाविदेत्ति। [हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—हद्धि । [हा धिक् ।]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्य अवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्वणिवेदेहि। तदो सअं एव्वआगमिस्सदि।

प्रस्तुतं निवेदयति पद्मनिका—हलेति··सखि ! साम्प्रतं श्रीमत्याः राजकुमार्याः शिरसि वेदना सञ्जाता। तत्कारणेन सा नितरामस्वस्थतां वहन्ती दुःखिता वर्त्तते । तस्येयं कष्टकरी अवस्था त्वरा न ज्ञायते किम्। तच्छ्रुत्वा मधुकरिका ब्रूते—हा धिगिति–सखि नूनं कष्टकरं वृत्तान्तं श्रावितवत्यसि । तर्हि कथय किं मया विधेयमिति–तत्कालोचितं कर्त्तव्यं निर्दिशन्ती पद्मिनिका ब्रूते—हलेति । शब्दायस्व = कथय । सत्वरमितो गत्वा त्वं भवतीमवन्तिकामिमं वृत्तान्तं निवेदयेति । तदाह्वानं नावश्यकम् सा स्वयमेवागता भविष्यतीत्याह—केवलमिति । कार्यमधुना चिकित्सकस्य । अवन्तिकोपस्थाय किं विधास्यत इत्याशयेनाह मधुकरिका—हलेति–मधुराभिः=मनोहराभिः वचोभिः । विनोदयिष्यति=दुःखम् अपनेष्यति। दुःखसमये मनोहरवचनयुक्ताभिः कथाभिः सा

मधुकरिका—सखि ! यह मैं आ गई । क्या कार्य करना है । कहो ।

पद्मिनिका—सखि ! क्या तुम नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती शिरोवेदना से व्यथित हैं ।

मधुकरिका—हाय ! तब तो बड़े दुःख की बात है ।

पद्मिनिका—सखि ! तू शीघ्र जा और आर्या अवन्तिका को

[हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामवन्तिकां शब्दायस्व। केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय। ततः स्वयमेवागमिष्यति।]

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि। [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति।]

मधुकरिका-जुज्जइ। कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ?[युज्यते। कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहिके किल सेज्जा त्थिण्णा। गच्छ दाणिं तुवं

भर्तृदारिकायाः शिरोवेदनं लघु करिष्यत्यतः सत्वरं सूचनीयमिति भावः। पद्मिनिकाचिन्तितमुपायमभिनन्दन्ती मधुकरिका पृच्छति—कुत्रेति—शयनीयं =शय्या। कुत्र = कस्मिन्स्थाने। रचितम् = परिकल्पितम्। सखि त्वयोक्तं साधूपपद्यते। किन्तु प्रथमं तावदिदं वक्तव्यम्—सा राजकुमारी वेदनाक्रान्ता यत्र वर्त्तते तत्स्थानं कुत्रास्ति ? यत्रावन्तिकया गन्तव्यमिति मधुकरिका जिज्ञासते। पद्मिनिका तदुचितं वचनं प्रस्तुवन्त्याह—समुद्रगृहके = तन्नामके

बुला ला। केवलं राजकुमारी की शिरोवेदना बतलाना। वे स्वयं आ जायँगी।

मधुकरिका—सखि ! वे इस विषय में क्या कर सकती है ?

पद्मिनिका—इस समय वे मनोहर कहानियों से राजकुमारी का मनोरञ्जन कर उनकी शिरोवेदना दूर करेंगी।

मधुकरिका—तब तो ठीक है अच्छा बताओ राजकुमारी जी की शय्या कहाँ लगाई गई है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृहनामक स्थान में उनकी शय्या लगाई गई है।

अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअ अण्णेसामि। [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा। गच्छेदानीं त्वम्। अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्वि-ष्यामि।]

मधुकरिका—एव्व होदु। (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु।]

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्य-वसन्तकं पश्यामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छरा-

स्थाने। आस्तीर्णा=परिकल्पिता। अन्विष्यामि=गवेषयामि। सखि समुद्र-गृहे तत्र भवत्याः पद्मावत्या शयनं कल्पितम्। तत्रोपस्थापयितुमवन्तिकां सम्प्रति गन्तव्यं त्वया तत्समीपम्। अहं च भर्तुर्निवेदनार्थं=स्वामिनं संसूचयितुम् आर्यम्=पूज्यं वसन्तकमन्वेष्टुं गच्छामीति भावः। सख्या वचनमनुमोदमाना मधुरिका ततः प्रस्थातुमिच्छन्ती ब्रूते—एवं भवत्विति। आर्यामवन्तिकां सूचयितुं गच्छाम्यहम् तावत्त्वमपि पूज्यं वसन्तकमन्वेष्टुं प्रयाहीति। मधुकरिकाप्रस्थानं दर्शयति निष्क्रान्तेति। विदूषकान्वेषणे चिन्तां नाटयति पद्मिनिका कुत्रेति। समयेऽस्मिन् श्रीमान् विदूषकः क्वोपलभ्यते येनाहं तद्दर्शनं प्राप्नुयामिति।

पद्मिनिकाचिन्तासमकालमेव विदूषकं प्रवेशयति कविः—ततः प्रवि-शतीति। मदनसन्तापसन्तप्तस्य राज्ञश्चिन्तयेतस्ततो सञ्चरतो विदूषकस्य

अच्छा तुम जाओ। मैं भी राजा से निवेदन करने के लिए आर्य वसन्तक को ढूंढने जा रही हूँ।

मधुकरिका—ऐसा ही करो। (निकल जाती है)

पद्मिनिका—तो इस समय आर्य वसन्तक का कहाँ पता लगाऊँ ?

(उसी समय विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—आज महारानी वासवदत्ता के वियोग से विकल चित्त वाले

अस्स पदुमावदोपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुह्मवहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वड्ढइ। (पद्मिनिकां बिलोक्य) अयि ! पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते। अयि ! पद्मिनिका ? पद्मनिके ! किमिह वर्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं–भट्टिदारिआ

चिन्तनीयमाह–अद्य खल्विति। खलु इति निश्चये देवीवियोगविधुरहृदयस्य देव्याः = वासवदत्तायाः = वियोगेन विरहेण विधुरं = विक्कलं हृदयम् = चित्तं यस्य तादृशस्य। पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य–पद्मावत्याः = तन्नामिकाया राजकुमार्याः = पाणिग्रहणेन विवाहेन, समीरितस्य = प्रवर्त्तितस्य। अत्यन्तसुखावहे = अत्यन्तानन्ददायके। मङ्गलोत्सवे = मङ्गलमये उत्सवे। काले = समये। मदनाग्निदाहः = कामानलसन्तापः। अधिको वर्धते = नितरामेधते। प्रियतमायाः वासवदत्तायाः विरहेण विषयं प्रतिनैरपेक्ष्यं प्राप्तोऽपि गुणवतीं पद्मावतीं परिणीय तत्रभवानुदयनो विषयेषु भृशं प्रवृत्तिमाधत्तेऽधुनेत्यर्थः। एवं राज्ञः स्थितिविषये। चिन्तयन् विदूषयकस्तत्र पद्मिनिकामागतां वीक्ष्य विस्मयं प्रकटयति अयीति। अहो इयं पद्मिनिका समुपस्थिता। पुनस्तस्याः अकस्मादागमनकारणं जिज्ञासमानो ब्रवीति–पद्मिनिके इति–अयि पद्मिनिके त्वमिह किमर्थमागताऽसि ? किं तेऽत्र कार्यम्। तदनन्तरं तस्यैवान्वेषणे परायणा

तथा पद्मावती के साथ विवाह करने से विषय सुख से प्रेरित हुये माननीय वत्सराज के कामाग्नि का सन्ताप अत्यन्त सुखप्रद इस मङ्गल के उत्सव में अधिक बढ़ रहा है। (पद्मिनिका की ओर देखकर) पद्मिनिके ! यहाँ क्या हों रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक ! राजकुमारी पद्मावती सिरदर्द भे दुःखित हैं। क्या आप यह नहीं जानते ?

पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति। [आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि। [भवति ! सत्यं ? न जानामि।]

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

पद्मिनिका तद्द्वारेण राज्ञो निवेदनीयं पद्मावतीवृत्तं कथयति आर्येति। आर्य= मान्य विदूषक ! तत्र भवती पद्मावतीदानीं शिरोवेदनामनुभवतीति वार्त्ता नोपलब्धा किं भवतेति। तद्विषयकं स्वकीयकमज्ञानं प्रदर्शयन्विदूषको ब्रवीति—भवतीति। अहं सत्यं वदामि पद्मावत्याः अस्वस्थताविषये नाहं किमपि जानामि ! इदानीं त्वयैव सूच्यते इत्यर्थः। पद्मावत्यस्वस्थताविषये उचितं कर्त्तव्यं निर्देशयन्ती पद्मनिका ब्रवीति—तेन हीति। शीर्षानुलेपनम्= शिरस्युलेपनीयं पीडापनोदनमोषधम्। सम्पादयितुमिति शेषः। त्वरयामि=शीघ्रतां करोमि। भवता हि वृत्तमिदं स्वामिने निवेदनीयम्। मयापि साम्प्रतं तच्छिरोवेदनोपचारार्थं किञ्चिदोषधं त्वरया सम्पादनीयमिति भावः। शिरोवेदनां वहन्ती क्वापि शयानावश्यमेव वर्तते इति विदूषकः पृच्छति—

विदूषक—श्रीमती ! मैं सचमुच नहीं जानता।

पद्मिनिका—तब आप यह बात राजा से निवेदन कर दें। मैं भी तब तक उनके सिरदर्द को दूर करने के लिए लेप लगाने की औषधि लेकर शीघ्र आती हूँ।

विदूषक—पद्मावती की सेज कहाँ पर लगाई गई है।

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा ? [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं [गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।]

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।

कुत्रेति । पद्मिनिकोत्तरयति—समुद्रगृहके इति—समुद्रगृहे हि तस्याः शयनं परिकल्पितमिति हेतोः तत्र भवान् भर्त्रा सह गच्छत्विति पद्मिनिकोऽभिप्रायः ।

कविः द्वयोरपि मच्चान्निष्क्रमणं सूचयति—निष्क्रान्ताविति सम्प्रति समयोचितं प्रवेशं राज्ञो दर्शयति कविः—श्लाघ्यामिति इदानीं श्रीमानुदयनो वासवदत्तायाः स्मरणानुभावं नाटयन् ब्रवीति—

अन्वयः—कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहम्) लावणके हुतवहेन

पद्मिनिका—समुद्रगृह नाम के महल में उनकी शय्या बिछाई गई है ।

विदूषक—अच्छा तुम जाओ । मैं महाराज से निवेदन कर रहा हूँ ।

(दोनों वहाँ से निकल जाते हैं)

(तदनन्तर राजा का प्रवेश)

राजा—समय के माहात्म्य से पुनः जिस पर स्त्री परिग्रह रूप भार आ

लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥ १ ॥

विदूषक—तुवरदु तुवरदु दाव भवं। [त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

हृताङ्गयष्टिं श्लाघ्यां अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां तां हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ॥ १ ॥

व्याख्या—कालक्रमेण = समग्रमहिम्ना कालपर्यायेण कालातिक्रमणानन्तरं वा। पुनरागतदारभारः पुनः=भूयः। आगतः=उपस्थितः दारभारः=पद्मावती-परिग्रहणरूपा धूर्यस्मिन् सोहम् लावणके = तन्नाम्नि ग्रामे हुतवहेन अग्निना। हृताङ्गयष्टिं हृता = दग्धा अङ्गयष्टिस्तनुलता यस्या सा तादृशीम् श्लाघ्याम् = गुणगौरवेणादरणीयाम्। अवन्तिनृपतेः = अवन्तिदेशाधिपस्य सदृशीम् = अनुरूपां। तनूजां = कुमारीं। हिमहतां = हिमेन हताम् तुषारनाशितां पद्मि-नीम् = कमलिनीम् इव। चिन्तयामि = ध्यायामि। कथञ्चित्पद्मावतीं परिणीतवतोऽपि वह्नौ दग्धां प्रशंसास्पदां अनुरूपामवन्तिराजकुमारीं वासवदत्तामुद्दिश्य मे मनस्यारूढो शोकभारो न तावल्लघु भवतीत्यर्थः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

पद्मावतीवृत्तं निवेदयितुं विदूषकस्य प्रवेशमाह—प्रविश्येति-राजानं त्वरयन् विदूषको ब्रूते—त्वरतामिति। राजन्! भवता त्वरा कर्त्तव्येत्यर्थः।

पड़ा है ऐसा मैं सर्वथा प्रशंसा के योग्य अपने अनुरूप लावणक गांव में आग से जलाई गई अतएव तुषार से अभिहत कमलिनी की तरह अवन्तिराज महासेन की कन्या वासवदत्ता को याद कर रहा हूँ।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—आप बहुत शीघ्रता करें।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः—पद्मिणिआए कहिदं । [पद्मिनिकया कथितम् ।]

राजा—भोः ! कष्टम्,

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।

ईदृश्यास्त्वरायाः किं कारणमिति—प्रष्टुं राजा ब्रवीति—किमर्थमिति । राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्विदूषको ब्रवीति—तत्र भवतीमिति—पद्मावती अस्वस्था वर्त्तते इति तत्र शीघ्रतया भवतीपस्थातव्यमिति विदूषकोक्तेरभिप्रायः । राजा 'पद्मावती शिरोवेदनामनुभवतीति केनोक्तम्' इत्येवं विदूषकं पृच्छति—कैवमाहेति । 'वृत्तमिदं पद्मिनिका कथितवती'ति विदूषकः प्राह—पद्मिनिकयेति पद्मावत्या अस्वस्थतायाः श्रवणात् सकष्टमाह राजा—भोः कष्टमिति—कष्टकरीयं वार्त्ता—किं तत्कष्टमिति अग्रिमे पद्ये वर्णयति कविः ।

अन्वयः—रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां प्रियां लब्ध्वा अद्य मम

राजा—किसलिये ?

विदूषक—महारानी पद्मावती शिरोवेदना से व्यथित हैं ।

राजा—तुमसे ऐसा किसने कहा ?

विदूषक—पद्मिनिका ने ।

राजा—हाय ! महान् कष्ट की बात हैं ।

रूप सम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्रियतमा पद्मावती को पाकर यद्यपि

पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।]

शोको मन्द इव। पूर्वाभिघातसरुजः अनुभूतदुःखः पद्मावतीम् अपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

व्याख्या—रूपश्रिया = सौन्दर्यशोभया। समुदिताम् = संयुक्ताम्। गुणतः = दयादाक्षिण्यादिगुणैः। युक्तां = सहितां। प्रियाम् = पद्मावतीम्। लब्ध्वा = सम्प्राप्य। समाश्वस्तस्येति शेषः। मे शोकः = तद्विनाशजन्मा विषादः। मन्द इव = किञ्चित्स्वल्प इव सञ्जात इति शेषः। पूर्वाभिघातसरुजः पूर्वः प्राथमिकः स चासावभिघातश्च पूर्वाभिघातस्तेन सरुजः वेदनायुक्तः। अपि पुनः अनुभूतदुःखः = अनुभूतं भुक्तं दुःखं कष्टं येन तादृशोऽहम्। पद्मावतीं = नवोढामिमाम्। तथैव = विनाशं गतां वासवदत्तामिव विनाशं गमिष्यन्तीम्। समर्थयामि = सम्भावयामि। पूर्वं वासवदत्ता यथाभूद्विनष्टा तथैवेयमपि शिरोवेदनार्त्ता विनष्टा भविष्यतीति सम्भावये। विपन्नो जनः सर्वतो विपत्त्यैवाभिभूयते इत्यर्थः। वसन्ततिलकावृत्तम ॥ २ ॥

ईदृशं दुःखोद्गारं समुद्गिरन् पद्मावतीसमीपं जिगमिषू राजा विदूषकं—अथेति। कुत्र न खलु स्थीयते पद्मावत्या। कुत्र वा मया

मेरा शोक कुछ मन्द हो रहा था किन्तु प्राथमिक आघात से पीड़ित होकर दुःख का अनुभव कर पद्मावती को भी उसी (वासवदत्ता की) तरह होने वाली जैसी सम्भावना कर रहा हूँ ॥ २ ॥

अच्छा पद्मावती किस स्थान पर हैं।

विदूषक—समुद्र गृह नामक स्थान में उनकी सेज बिछाई गई हैं।

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय ।

विदूषकः—एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान् ।]

(उभौ परिक्रामतः ।)

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु भवं । [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशतु भवान् ।]

राजा—पूर्वं प्रविश ।

विदूषकः—भो ! तहा । (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [भोः ! तथा । अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

गन्तव्यमिति । राज्ञः प्रश्नमुत्तरयति विदूषकः समुद्रगृहके इति । समुद्र-गृहके = तस्याः शयनं परिकल्पितमित्यर्थः । राजा समुद्रगृहस्य मार्गनिर्देशनाय विदूषकमादिशति—तेन हीति । सखे ! त्वया तत्प्रदेशस्य मार्गो निर्देष्टव्य इत्यर्थः । मार्गं प्रदर्शयन्नाह विदूषकः—एत्विति । अत्र द्वित्वं त्वराभिप्रायेण । तन्मार्गानुसरणं कुर्वतो राजविदूषकयोस्तत्र गमनं सूच्यते उभाविति । गन्तव्यस्थानं प्राप्य तत्र राजानं प्रवेशयितुमिच्छन् विदूषक आह—इदमिति-मित्रैतद्वर्त्तते समुद्रगृहम् । अस्यान्तः प्रविश्यतां भवता । 'अग्रे सेवकेन गन्तव्यं स्वामिना च पश्चादिति लौकिकं व्यवहारमपेक्ष्य विदूषकप्रवेशं प्रथममिच्छन् राजा प्राह—पूर्वमिति । विदूषकः प्रथमं प्रवेशोपक्रमं कृत्वा राजानं निषेधयति—अविहेति । तिष्ठत्विति सम्भ्रमे द्विर्भावः । अहह । कष्टं

राजा—तब उसका मार्ग दिखाइये ।

विदूषक—आइये । आप आइये ।

(दोनों घूमते हैं)

विदूषक—यह समुद्रगृह है । आप प्रवेश करें ।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो ।

विदूषक—जो । अच्छी बात है । (प्रवेश कर) ओः ठहर जाइये । ठहर जाइये ।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एसो खु दोपप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अज्जं काओअरो। [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः अयं काकोदरः।]

राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य।

सखे स्थीयतामत्र भवता। एवं प्रवेशद्वारे-अवलम्बिनीं पुष्पस्रजमवलोक्य तस्यां सर्पबुद्धया पश्यन् विदूषको राजानमग्रे गन्तुं निषेधितवान्। निरुद्धगती राजात्मनो निषेधकारणं पृच्छति विदूषकम्—किमर्थमिति—विदूषको राज्ञः प्रवेशनिषेधे कारणमाह-एष इति। एषः जन्तुसामान्यः। दीपप्रभावसूचितरूपः दीपप्रभावेण = प्रदीपमहिम्ना सूचितं = व्यञ्जितं रूपम् = आकृतिविशेषो यस्य सः। वसुधातले = पृथिव्याम्। परिवर्त्तमानः विचेष्टमानः। भित्रात्र प्रवेशद्वारे कोऽपि जन्तुर्वर्त्तते यस्य रूपं दीपप्रभावे प्रकाशितं भवति। अयं हि लम्बमानः सन् भूतले चेष्टितं करोतीत्थं जन्तु-सामान्यं निर्दिश्य तद्विशेषतां प्रतिपादयति—अयमिति-अयम् = पूर्वोक्तः। काकोदरः = सर्पः। यः लम्बमानः सन् भूतले विचेष्टते स सर्पोऽस्तीत्यर्थः। रुग्णायाः पद्मायत्याः दृशोरुपघातो मा भूदितिपूर्णः दीपप्रकाशो नोक्तः। दीपस्य मन्दप्रभावे च विदूषकेण सम्यङ् न निरूपयितुं शक्यतेऽतो स्रजि तस्य सर्पभ्रमः। विदूषकोक्तिमाकर्ण्य किञ्चित्प्रविश्य राजा विदूषकसर्पप्रतिभासविषयं तद् स्रजमवलोक्य विदूषकमूर्खतायां हसन् स्वान्ते विस्मयमाविष्करोति—अहो इति। वैधेयस्य = मूर्खस्यास्य विदूषकस्य सर्पव्यक्तिः = सर्पज्ञानम्। मूर्खो विदूषकः। दृश्यमानममुं वस्तुविशेषं सर्परूपतया गृह्णातीत्याश्चर्यम्। तदनन्तरम-ग्रिमेण पद्येन तस्य सन्देहं दूरीकरोति—ऋज्वायतामिति—

राजा—क्यों ?

विदूषक—इस दीपक के प्रकाश में जो रूप दिखाई पड़ रहा है—वह रेंगता हुआ सर्प है।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥ ३ ॥

विदूषकः—(निरूप्य) सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो । (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पद्मावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे ।

अन्वयः—हे मूर्ख ! त्वम् ऋज्वायतां क्षितौ भ्रष्टां मुखतोरणलोलमालां सर्पं इति अवगच्छसि । या निशि मन्दानिलेन किञ्चित्परिवर्त्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि करोति ॥ ३ ॥

व्याख्या—हे मूर्ख = हे मूढ । त्वं = विदूषकः । ऋज्वायताम् = ऋज्वी चासौ आयता ताम् = सरलदीर्घाम् । क्षितौ = भुवि । भ्रष्टाम् = पतिताम् । मुखतोरणलोलमालाम् मुखं = प्रधानं यत्तोरणं = गृहस्य वहिर्द्वारम् तत्र या लोला = पवनकम्पनवशाच्चञ्चला माला अवलम्बमाना पुष्पस्रक् ताम् सर्पं इति अवगच्छसि = सर्पोऽयमिति मन्यसे । या = माला । निशि = रात्रौ मन्दानिलेन = मन्दं वहता समीरणेन किञ्चित्परिवर्त्तमाना परितः संस्पन्दमाना । भुजगस्य = सर्पस्य । विचेष्टितानि = व्यापारान् करोति = वितनोति ॥ ३ ॥

अयि सखे ! प्रधानभूते समुद्रगृहस्य वहिर्द्वारेऽवलम्बिनी सरला लम्बमाना च मालेयमिदानीं भूमौ पतिता या मन्दं वहता समीरणेन किञ्चिच्चाञ्चल्यं

(राजा प्रविष्ट होकर और देख कर मुस्कराहट के साथ)

ओह ! इस मूर्ख को सर्प की प्रतीति हो रही हैं । अरे मूर्ख ! तू इस सीधी और लम्बी माला को जो रात में मुख्य द्वार से पृथ्वी पर गिर कर वायु के झकोरे से हिलती हुई चेष्टा करती है सर्प समझ रहे हो ॥ ३ ॥

विदूषक—(देख कर) आप ठीक कहते हैं ।

[सुष्ठु भवान् भणति। न खल्वयं काकोदरः। तत्र भवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम्।

विदूषक—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

नीयते त्वयैषा निशासमये सर्पं इति सम्भाव्यते तस्मान्मूर्खोऽसि त्वम्। वस्तुतस्तु इयं बहिर्द्वारावलम्बिनी स्रगेव या पवनान्दोलनेन विचेष्टते इति भावः।

राज्ञोऽवधारणं सत्यं मन्यमानो विदूषको ब्रवीति—सुष्ट्वेति–खलु = निश्चये। राजन् ! भवदीयं वचः सत्यम् मिथ्यैवास्ति मम भ्रमः। बहिर्द्वारे लम्बमानो वायुवशेन कम्पमानोऽयं पदार्थः न सर्प–इति निःसन्देहमवगतम्मयेत्यर्थः। तदनन्तरं तद्गृहान्तः प्रविश्य तत्र शयने पद्मावत्याः अनुपस्थितिं दृष्ट्वा आह—तत्र भवतीति–स्थानेऽस्मिन्नुपस्थाय पद्मावत्याः पुनरितः प्रस्थानं सम्भावये। यतो हि पद्मिनिकयात्रैव तस्याः शयनीयं सूचितं किन्त्वत्र तद्दर्शनं न जायते इत्यतः कल्प्यते मया यत्सागत्य निर्गतेति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। लक्षणैस्तस्या अनागमनं सम्भाव्य राजा विदूपकोक्तिं निराकुरुते—वयस्येति–मित्र ! मन्ये सेयमत्र नागता। केन लक्षणेन। इति विदूषकः पृच्छति–कथं भवानिति। राजोत्तरं ददाति। किमत्रेति–अत्र विषये किं मया वक्तव्यम् ? किं वा त्वया विज्ञेयम्। तस्या अनागमनलक्षणं किमपि कथनं नावश्यकम्। ननु प्रत्यक्षमेवैतत्। तथापि तव सन्तोषार्थं विशदीकरोमि। ज्ञायताम् = अवधार्यताम्।

यह सर्प नहीं है। (प्रविष्ट होकर और देख कर) मालूम होता है आर्या पद्मावती यहाँ आकर चली गई हैं।

राजा—मित्र ! वे (पद्मावती) नहीं आई होंगी।

विदूषक—यह आप कैसे समझ रहे हैं।

राजा—इसमें क्या जानना है। (देखो)

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥ ४ ॥

अन्वयः—हि शय्या अवनता न । तथा आस्तृतसमा व्याकुलप्रच्छदा न । अमलं शिरोपधानं शीर्षाभिघातौषधैः क्लिष्टं न । रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता । प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः शीघ्रं स्वयं न मुञ्चति ॥ ४ ॥

व्याख्या—हि=यतः । शय्या=तल्पम् । अवनता = देहभारेण निम्नीभूता न । तथा=तेनैव प्रकारेण । आस्तृतसमा आस्तृता=कुथाद्यास्तरणोपेता च सा समा=समानरूपा । मनागपि विषमतां निम्नोन्नतत्वं नाधिगता । अथ न च व्याकुल-प्रच्छदा व्याकुलः गात्रपरिवर्त्तनेन सङ्कुचितः प्रच्छदो आस्तरणं=वस्त्रम् यस्यां सा । अमलं = स्वच्छं । शिरोपधानम् शिरः उपधीयते आधियते यत्रेति शिरोपधानम्=उपबर्हः । अत्र शिरशब्दस्यादन्तत्वम् चिन्त्यम् । शीर्षाभिघातौषधैः= शिरोवेदनापनोदकैरनुलेपनैरौषधिविशेषैः क्लिष्टं = मलिनीकृतं न = नास्ति । श्रीमत्याः पद्मावत्याः अनागमनसाधनानि लक्षणानि प्रतिपाद्य शय्यान्तरगतं लक्षणान्तरमप्याह–रोगे इति । रोगे = आमये व्याधौ वा । दृष्टिविलोभनं = जनयितुं = विधातुं । काचिच्छोभा चित्रविलेखनादिसम्भवा कापि सुन्दरता । न कृता = नापादिता । एभिर्हेतुभिस्तत्र पद्मावत्या अनागमनं संसूच्य 'अत्रा-गत्य गता भवेदि'ति विदूषकोक्तिं निराकुरुते—प्राणीति–प्राणी = शरीरी

शय्या झुकी नहीं है । चादर पहले के समान ही है शरीर के पार्श्व परिवर्त्तन से कहीं सिकुड़ी नहीं है । शिरः स्थान पर लगाई गई तकिया लेपादि औषधि से मलीन नहीं हुई है । अभी तक रोगी के नेत्र के विश्रामार्थ कोई सजावट नहीं दिखाई पड़ती है । रोग पीड़ित मनुष्य जब बिछोने पर पड़ जाता है; तो अपने आप उसे शीघ्र नहीं छोड़ता ॥ ४ ॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदिं षडिवालेदुं भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान् ।]

राजा—बाढम् । (उपविश्य) वयस्य ! निद्रां मां बाधते । कथ्यतां काचित् कथा ।

विदूषकः—अहं कहइस्सं। हो त्ति करेदु अत्तभवं। [अहं कथयिष्यामि । होम् इति करोत्वत्रभवान् ।]

रुजा = रोगेण । शयनं प्राप्य = तल्पमधिगत्य, पुनः शीघ्रं भूयस्तदानीमेव । स्वयं स्वतो । न मुञ्चति ततों गन्तुं न वांञ्छतीत्यर्थः । अनुमानालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४ ॥

अनुकूलतर्कयुक्तमिदं वचनमाकर्ण्य राज्ञः पद्मावतीप्रतीक्षायां तत्र क्षणकालिकोपवेशनं प्राप्तकालं संसूचयन् विदूषको ब्रवीति—तेन हीति। यद्येवं नून मत्र शयनीये क्षणकालमवस्थाय तदागमनं भवता प्रतीक्षितव्यम् । अचिरात्सागमिष्यति ततस्तस्याः प्रवृत्तिर्लप्स्यते इत्यर्थः। राजा विदूषकोक्ति समर्थयन्नाह—बाढमिति—समयोचितमिदानीं सूचितं त्वयात्रोपविश्य तदागमनं प्रतीक्षे इति भावः। राज्ञस्तस्यां शय्यायामुपवेशनमाह—उपविश्येति । शयनीयमुपविष्टो निद्रोपगमस्य लक्षणं पश्यन् राजा विदूषकं प्रत्याह—वयस्येति। मित्र ! निद्रा मां बाधते तन्निवारणार्थं कथय काञ्चित्कथामिति विदूषकं प्रेरितवान् । राज्ञः कथनानुसारं विदूषकः कथां कथयितुं प्रवृत्तः अहमिति। हमित्यनुकरणम् । अयं शब्दः लोकैः श्रवणसावधनतासूचनार्थं

विदूषक—तो आप इस शय्या पर बैठ कर कुछ समय तक पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छी बात है (बैठ कर) मित्र ! मुझे निद्रा आ रही है, कोई कहानी कहो ।

विदूषक—मैं कहानी कह रहा हूँ आप बीच-बीच में हुँकारी भरते जाइये ।

राजा—बाढम् ।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम । तहिं अहिअरमणीआणि उदअह्वणाणि वत्तन्ति किल । [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम । तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल ।]

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा, कहा, अण्णं कहइस्सं । [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि ।]

व्यवह्रियते । विदूषकः कथयति भवदीयं मनोविनोदयितुं मया कथ्यते कथा । 'अहं सावधानतया शृणोमि कथ्यतां विषयोऽग्रिमः' इत्येतत्सूचनार्थं होमिति शब्दस्योच्चारणं मध्ये मध्ये भवता क्रियतां, येन पुनरग्रिमकथावर्णने ममोत्साहो वर्धेत इति भावः । विदूषकोक्तिमङ्गीकृत्य राजा आह—बाढमिति—स्वीक्रियते ते वचः । एवं करिष्यामीत्यर्थः । ततः काञ्चित्कथां प्रस्तौति विदूषकः-अस्तीति । उदकस्थानानि = जलावगाहनस्थानि । काचिदुज्जयिनी नाम नगरी, तस्यामनेके जलाशया अत्यन्तसुन्दराः सन्तीति श्रूयते । उज्जयिन्यां किमपि कमनीयं वर्णनमकृत्वा जलाशयानां प्रदर्शनमिदं विदूषकस्य प्राज्ञतातिशयं द्योतयति । विदूषकेण प्रस्तुतमुज्जयिनीनाभधेयं श्रुत्वा तत्र किमप्यतीतं प्रियाविषयकं वृत्तं मनसि कृत्वा तत्सम्बद्धा कथेयं प्रस्तुतेत्याशयं सूचयदन् अस्फुटमाह राजा—कथमिति । कदाचिदुज्जयिनीविषयिणी कथा नास्मै रोचेत इत्याशयमवबुध्य विदूषकः प्राह—यदीति—मदुक्तोज्जयिनीविषयिणी कथा यदि भवते न रोचते—तर्हि ततोऽन्या काचित्कथा प्रस्तोष्यते मयेति

राजा—ठीक हैं ।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है वहाँ बहुत ही मनोहर स्नान के योग्य जलाशय है ।

राजा—क्या कहा उज्जयिनी नाम की नगरी ?

विदूषक—यह कहानी पसन्द न हो तो दूसरी कहूँगा ।

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा । किन्तु ।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्या ॥ ५ ॥

विदूषकाभिप्रायः तत्कथाविषये आत्मनोऽप्रियत्वं निषेधन् राजा स्वाभिप्रायं व्यनक्ति—वयस्येति मित्र ! त्वया प्रस्तुतेयं कथा मम तावदप्रियेति न मन्तव्यम् 'नूनं प्रियैवेत्यर्थः । न खलु नाभिप्रेता इति निषेधद्वयं विधिमेव गमयति ।

अन्वयः—प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्या स्नेहात् प्रवृत्तं नयनान्तलग्नम् वाष्पं मम एव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि ॥ ५ ॥

व्याख्या—प्रस्थानकाले = प्रयाणसमये । उज्जयिनीतो वत्सराजं प्रतीति शेषः । स्वजनम् आत्मीयजनम् । मातृपित्रादिकमिति भावः । स्मरन्त्याः = ध्यायन्त्याः अतएव स्नेहात् = प्रणयात् प्रवृत्तं = जनितम् । नयनान्तलग्नम् = नेत्रान्तःसम्बद्धम् वाष्पम् = अश्रु । मम एव = उदयनस्य एव । उरसि = वक्षःस्थले । पातयन्त्याः मुञ्चन्त्याः अवन्त्याधिपतेः = प्रद्योतस्य । अस्मिन् पदे समासे अवन्त्यधिपतेः व्यासे च अवन्त्या अधिपतेरिति भाव्यम् । किन्तु

राजा—मित्र ! यह कथा मुझे अच्छी नहीं लगती ऐसी बात नहीं ।

परन्तु उज्जयिनी से मेरे साथ प्रस्थान करने के कारण उस समय अपने स्वजन (माता पिता) आदि का स्मरण करने वाली दोनों नेत्रों के छोरों से स्नेहपूर्वक आँसूओं को मेरे छाती पर गिराने वाली उज्जयिनी के स्वामी की पुत्री वासवदत्ता का मैं स्मरण करने लग जाता हूँ ॥ ५ ॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥ ६ ॥

वृत्तानुरोधेन इदं द्वयमनुसर्तुमपारयता कविना 'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं कदापि नेति' तथा प्रतिकूलमाचरितम्। अस्य श्लोकस्य प्रथमे चरणे उपेन्द्रवज्रा द्वितीयादिचरणत्रये इन्द्रवज्रेत्युभयोर्योगादुपजातिनामकं वृत्तम् ज्ञेयम्। तल्लक्षणं तु। स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। किञ्च उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौः'। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्तदा इति।

अन्यदपि वासवदत्तागतमतीतं वक्तुं प्रतिजानीते—अपि चेति—

अन्वयः—उपदेशेषु अपि बहुशो माम् ईक्षमाणया यया स्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितं कृतम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—उपदेशेषु = मत्कर्तृकवीणावादनशिक्षणेषु। अपि। बहुशः वारम्बारम्। माम् ईक्षमाणया = शिक्षकं मां पश्यन्त्या यया स्रस्तकोणेन = भ्रष्टवीणावादनसाधनेन। हस्तेन = करेण। आकाशवादितं = व्योमवादनम् लयतालशून्यम् वादनम्। कृतम् = विहितम्। अस्य श्लोकस्येदं तात्पर्यम् यद् वासवदत्तायाः वीणाप्रशिक्षणकाले मया बहव उपदेशा दीयन्ते स्म सा तु तानुपदेशान् सावधानतया शृण्वती स्नेहान्ममुखार्पितदृष्टिरासीत्तत्र क्षणे च तदानीं स्वीयहस्ताच्च्युतः कोणो न विदितस्तयातो कोणाभावेऽपि प्रेममुग्धतया वीणारागस्वरव्यक्तिरहितं सा कथञ्चिद् वादितवती इदं सर्वमुज्जयिनीनामधेयश्रवणादेकसम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारकं भवतीति मन्मनोरङ्गमञ्चेऽधुनापि नृत्यतीति तात्पर्यम् अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ६ ॥

बीन बजाने के समय शिक्षा देते हुये मुझे बारम्बार देखने में तल्लीन होने के कारण उस वासवदत्ता के हाथ से कोण (बीन बजाने का मेजराव) गिर जाया करता था और वह केवल हाथों के सहारे स्वर लयताल रहित बीन बजाने लगती थी।

विदूषकः—मोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि णअरं ब्रह्मदत्तं णाम। तहिं किल राजा कम्पिल्लो णाम। [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।]

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

विदूषकः—किं राआ ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ?]

अनेनोज्जयिनीवर्णनेन राज्ञो विमनायमानं मानसमाकलयन् विदूषको विषयान्तरवर्णनं प्रस्तौति—भवत्विति। राजन्नास्तां तावदुज्जयिनी विषयिणीयं कथा सा च भवन्तमनुभूतमतीतं स्मारयन्ती नूनं विमनीकरोतीति अधुनान्या कथा वर्णयिष्यते मयेति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। तदनन्तरमेवान्यकथास्वरूपमवतारयति—अस्तीति। ब्रह्मदत्तनामके नगरे काम्पिल्यनामको राजा प्रसिद्धोऽस्तीत्यर्थः। नामधेयव्यत्यासास्पदमिदं वचनं विदूषकस्य मूर्खतानिदानभूतमाकर्ण्यानवधानवशादेतदित्थं निर्गतं भवेद् भ्रमाद्वेति वस्तुतत्त्वपरीक्षाचिकीर्षया 'किमुक्तं त्वयेति पृच्छति राजा—किमिति—उक्तमिति शेषः। अत्र द्विरुक्तिः तदर्थश्रवणे राज्ञः औत्सुक्यप्रदर्शनार्थम्। विदूषकेण हास्यं जनयितुं मौर्ख्यात्तथैव पूर्वोक्तं पठ्यते पुनस्तदेवेति। राजा तच्छ्रुत्वा वस्तुतत्त्वं दर्शयन्नाह—मूर्खेति। काम्पिल्यनगरे राजासीद् ब्रह्मदत्त इत्येवं वदेति राज्ञोऽभिप्रायः। अज्ञो विदूषको राज्ञः वचनं निशम्य 'भवदुक्तमेव सत्यमिति स्वीकुर्वन् पृच्छति

विदूषक—अच्छा दूसरी कथा कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नाम का एक नगर है वहाँ काम्पिल्य नाम का एक राजा है।

राजा—क्या कहा ! क्या कहा !

विदूषक—पुनः वही बात कहता है।

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ऐसा कहो।

विदूषक—क्या कहे। राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य।

राजा— एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओठ्ठगअं करिस्सं । राजा ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं बेला । अत्तणो पावारअं गह्लिअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

किमिति । राजा विदूषकं प्राह–इत्थमेवैतद्वर्त्तते त्वं तु विपरीतमुक्तवानसीत्याह–एवमेतदिति । राज्ञो वचनमनुनिशम्य विदूषक आह—तेन हीति । तेन = कारणेन । ओष्ठगतम् = कण्ठगतमभ्यस्यमिति यावत् । यद्येवं तर्हि क्षणकालपर्यन्तं भवता प्रतीक्षितव्यम् । यावन्मया कण्ठस्थीक्रियते इति भावः । तदेव पठयमान आह–राजा ब्रह्मदत्त इत्यादि पौनःपुन्येन पठति । अभ्यस्तं कृत्वा कथयति–इदानीमिति । ननु मित्रः कण्ठस्थीकृतं भवदुक्तमितः परं न कदापि विस्मरिष्यामि–सम्प्रति श्रूयतां भवता । इत्थं निगद्य यावद्राजानं श्रावयति तावत्तं निद्रालुमवलोक्य किञ्चिच्चिकीर्षुरभिधत्ते— अयीति–अयीति प्रश्नार्थकमव्ययपदम् । श्रीमान् राजा सुप्तः किम् । एवं चेज्जागारित्वा एकाकिना मया किं कर्त्तव्यमतः शैत्यबाधानिवारणार्थं प्रावरणं गृहीत्वागमिष्यामीति । अस्मिन् खलु शीतकाले शीतता मामाकुलीं करोति–अतः स्वकीयप्रावरकवस्त्रं गृहीत्वा मयागन्तव्यमित्यर्थः । ततः प्रस्थानं सूचयति–निष्क्रान्त इति । पूर्वं पद्मिनिका नाम चेटी पद्मावत्याः शिरोवेदनां

राजा—हाँ वह ऐसा ही है ।

विदूषक—तो आप कुछ समय तक प्रतीक्षा करें । तब तक मै अभ्यास करता हूं (राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य इस प्रकार से बारम्बार अभ्यस्त कर) अच्छा अब आप सुनिये । अरे ! यह तो सो गये । इस

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए। [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।]।

निवेदयितुं मधुरिकानाम्नीं स्वीयां वयस्यां वासवदत्ता समीपं प्राहिणोत् । साम्प्रतं मधुरिकावासवदत्तयोर्द्वयोरप्येकत्र सम्मेलनं दर्शयति कविः-ततः प्रविशतीत्यादि । अवन्तिकामागच्छन्तीमवलोक्य प्रकृतमाह चेटी—एतु एत्विति-अत्र वीप्सागमने त्वरा द्योतनार्थम् । दृढम् = भृशम् । श्रीमत्या सत्वरमागम्यतां । राजकुमारीं पद्मावतीं शिरोव्यथा व्याकुलीकरोत्यधनेति । चेट्युक्तं वृत्तमिदमाकर्ण्य दुःखमनुभवन्ती वासवदत्ता पद्मावतीशयनस्थानं पृच्छति—हा धिगिति । इदं श्रुत्वा कष्टाय कल्पते मे हृदयम्—तद्ब्रूहि तस्या शयनं कुत्र कल्पितमिति। चेटी उत्तरयति समुद्रगृहके इति—अवन्तिकाब्रवीति—

समय बहुत ठण्ढ़ पड़ रही है तो अपना ओढ़न लेकर आता हूँ। (ऐसा कह कर निकल जाता है ।

(तदनन्तर अवन्तिका का वेष धारण किये हुये
वासवदत्ता और दासी का प्रवेश)

दासी—आर्या आइये आइये । राजकुमारी शिरोवेदना से बहुत आकुल हैं ।

वासवदत्ता—तब तो बड़े दुःख की बात है । अच्छा राजकुमारी की शय्या कहाँ लगाई गई है ।

दासी—समुद्रगृह नामक स्थान में उनकी शय्या बिछाई गई है ।

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि। [तेन ह्यग्रतो याहि।]

(उभे परिक्रामतः।)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं पविसदु अय्या। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। (निष्क्रान्ता) [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशत्वार्या। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

वासवदत्ता—अहो! अकरुणा खु इस्सरा मे। विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्य विस्समत्थाणभुदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सथा जादा।

तेनेति समुद्रगृहस्य पन्थानं दर्शयितुमग्रे त्वयागन्तव्यमहं त्वामनुगच्छामीति भावः। उभे। परिक्रामत इत्यनेन वासवदत्ताचेटयोः समुद्रगृहं प्रति प्रस्थानं सूचयति। गन्तव्यदेशान्तिकं गत्वा चेटी ब्रवीति—इदमिति। एतद्वर्त्तते समुद्रगृहम् प्रविश्यतां श्रीमत्या। मया च भर्त्तृदारिकायाः शिरोवेदनानिग्रहार्थमनुलेपनमौषधं सम्पादयितुं गम्यते इति भावः। अथ कविस्तस्या प्रस्थानमाह—निष्क्रान्तेति।

अन्तः प्रविश्य वासवदत्ता तत्र पद्मावत्याः शय्यायामेव शयितं प्रियतमं पद्मावतीबुद्धया पश्यती तदीयस्वास्थ्यं विचिन्त्य दूयमाना ब्रूते—अहो इति। अहो विषादसूचकमव्ययपदम्। खल्विति निश्चये। ईश्वराः = देवाः। मे = मम विषये इति शेषः। अकरुणाः = निर्दयाः विरहपर्युत्सुकस्य = मद्वियोगो-

---

वासवदत्ता—तो आगे चलो।

(दोनों चलती हैं)

दासी—यह समुद्रगृह है। आर्या इसी में प्रवेश करें। तब तक मैं भी शिर में लगाने वाले लेप के लिये शीघ्रता करती हूँ। (चली जाती है)

वासवदत्ता—अहो! मुझ पर देवता लोग भी निर्दय हो गये हैं। मेरे विरह से उत्कण्ठित आर्यपुत्र के विश्रामस्थान भूत यह पद्मावती भी अस्वस्थ

जाव पविसामि (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजणस्स पमादो अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि। इअं पदुमावदी ओसुत्ता जाव उववसामि ! अहव अञ्ञासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उववसामि । (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उववसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं। दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरोआए होदव्वं ! अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूए दि मे आलिङ्गेहि त्ति। जाव सइस्सं। (शयनं

त्कण्ठितस्य । विश्रामस्थानभूता = विनोदपात्रभूता । अस्वस्था = रुग्णा । परिजनस्य = सेवकजनस्य । प्रमादः = कर्त्तव्यविस्मृतिः । दीपसहायाम् = प्रदीपसहचराम् । अवसुप्ता = निद्राणा । अन्यासनपरिग्रहेण = आसनान्तरस्वीकारेण । प्रतिभाति = प्रतीतो भवति । उपविशन्त्या = उपवेशनं कुर्वंत्या । प्रह्लादितम् इव = आनन्दितमिव । दिष्टया = भाग्येन । अविच्छिन्नमुखनिःश्वासा अविच्छिन्नः मुखनिःश्वासो यस्याः सा = निरन्तरगृहीतवदननिःश्वासा । निवृत्तरोगया = स्वस्थया । एकदेश संविभागतया = एकभागविभागत्वेन । आलिङ्गय = आश्लिष्य । शयिष्ये शयनं करिष्यामि । नाटयति = अभिनयति । वासवदत्तोक्त गद्यस्येदं तात्पर्यम्—हा हन्त ! सर्वथा दैवैर्निदयत्वमवलम्बितं मयि ! या पद्मावती मद्वियोगवशाद्गाढमुत्कण्ठाभावं बिभ्रतः प्रियस्य सन्तापजातं प्रशमय्य तस्य मनो विनोदयति स्म सापि साम्प्रतं शिरोवेदनया दुःखिता सुतरामस्वास्थ्यं भजते । कविरित्येवं वदन्त्या वासवदत्तायास्तद्गृहान्तः प्रवेशं परितो वीक्षणं चाभिधाय चिन्तापुरःसरं तद्

हो गई ! तो इस समुद्रगृह में प्रवेश करती हूँ। (पुनः प्रवेश कर और देख कर) अहो इन परिचारक वर्गों की कितनी असावधानी है जो बीमार इस पद्मावती को दीपक के सहारे छोड़ दिया है। यह पद्मावती सो रही है। तब तक बैठती हूँ अथवा दूसरे आसन पर बैठने से स्नेहाल्पता व्यक्त होती है इस कारण इसी को शय्या पर बैठती हूँ। (बैठ कर) क्या कारण है कि इसके साथ बैठने से मेरा हृदय आज आह्लादित हो रहा है। भाग्य से

नाटयति) [अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रामस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत् प्रविशामि। अहो! परिजनस्य प्रमादः। अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यज्यति। इयं पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्यायामुपविशामि। किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। दिष्टयाऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासाः। निवृत्तरोगया भवितव्यम्। अथवैकदेशसंविभागतया। शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति। यावच्छयिष्ये।]

वचनोद्गारमाह—[प्रविश्यावलोक्य] अहो इति—अहो भृशं विस्मयकरी असावधानता परिचारकवर्गस्य योऽधुना वेदनावशादस्वस्थतामनुभवन्तीं पद्मावतीं दीपं प्रज्वाल्यैकाकिनीं परित्यक्तवान्। अत्रोपचारार्थं कोऽपि न तिष्ठति। शेते किलैषा पद्मावती। रोगिणो दूरेऽवस्थानं तन्मनसि जुगुप्सा भावं जनयेदिति अस्या एव शयने मया उपवेष्टव्यमिति। अथेदानीं पद्मावतीशयनमुपविष्टायास्तस्या मनोगतान्वितर्कान् कविराह—किं न्विति। न जानामि कारणेन केन पद्मावत्या सहोपवेशनान्मम मनः प्रसीदति। यद्यपि रोगिणां निःश्वासपवनाः मन्दं मन्दं चरन्ति किन्त्वस्यास्तु अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा वर्तन्ते तेन सम्भावयामीयं स्वस्था लब्धारोग्या भवेदिति। अहमेवेति—पूर्वोक्तं विचार्य वासवदत्ता स्वस्नेहानुरूपं सहशयनं तत्कालोचितं कर्त्तव्यं मन्यमाना पक्षान्तरमुपक्षिपति इयं पद्मावती शय्याया एकदेशे शयाना वर्तते। अतः स्वानधिष्ठितं प्रदेशं प्रियजनशयनोचितं ध्यायन्ती सविधे इह शयित्वाहमाश्लेषणीया। इति व्यक्तमाकूतमात्मनो निवेदयति। अतः कारणात्स्नेहप्रदर्शनार्थं मयैतया सह शयिष्यते। इति शयनीयं नाटयति एवं कविना तत्र शयनीये वासवदत्ताया अवस्थानं प्रदर्शितमिति भावः।

इसका निःश्वास अबाधित सुख से अविच्छिन्न चल रहा है। अतः इन्हें अब रोगमुक्त हो जाना चाहिये। अथवा शय्या के एक देश में सोने से मानों यह मुझ से कह रही है कि मुझसे आलिङ्गन करो। तो शय्या के शेष स्थान में सो जाऊँ। (सोने का अभिनय करती है)

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठिह्मि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो। [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोच्चि

दृढ़सङ्कल्पबलात् सुलभस्मरणां स्वप्रियतमां वासवदत्तां स्वप्ने सुप्तो राजा विचिन्तयन् ब्रूते—राजा–हा ! वासवत्तेति । स्वकीयनामग्रहणं प्रियतमेन गृहीतं श्रुत्वा वासवदत्ताऽकस्मात्ससम्भ्रममुत्थिता सविस्मयं शङ्कावितर्कवचनमाह—हमिति–सहसा = अतर्कितः । निष्फलः = फलशून्यः । यद्यहमिदानीं प्रबुद्धस्यार्यपुत्रस्य दृग्गोचरता गता तदा शङ्के श्रीमतो यौगन्धरायणस्य मत्स्वरूपप्रच्छादनमूला स्वामिराज्यप्रत्याहरणरूपा कृतपूर्वा महती प्रतीज्ञा मत्स्वरूप प्रदर्शनादद्य नैष्फल्यं गतेति भावः। पुनः राजा स्वप्ने नामान्तरेण सम्बोधयति - हेति–अवन्तिराजपुत्रि = प्रद्योतनृपतेः पुत्रि ! क्वासि त्वं देहि मे दर्शनमहं त्वां विना विषीदामीति वाक्यशेषः। स्वप्नावस्थावस्थितं स्वप्रियतमं विलोक्य वासवदत्ता ब्रवीति–दिष्टयेति । सौभाग्य-

---

राजा—(स्वप्न देखते हैं) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(चौंक कर) हैं ! आर्यपुत्र ! पद्मावती नहीं । तो क्या मैं देख ली गई। आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा भार मेरे दिखाई पड़ जाने से व्यर्थ हो गया क्या ?

राजा—हा अवन्तिराजकुमारी !

वासवदत्ता—मेरे भाग्य से आर्यपुत्र यह स्वप्न देख रहे हैं। यहाँ कोई

जणो। जाव मुहूतअं चिट्ठिअ दिट्ठिं हिअअं च तोसेमि। [दिष्टया स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः। यावन्मूहूर्तकं स्थित्वा दृष्टि हृदयं च तोषयामि ।]

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

वासवदत्ता—आलवामि भत्त ! आलवामि। [आलपामि भर्तः ! आलपामि ।]

राजा—किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—ण हि, ण हि, दुक्खिदाह्मि। [नहि नहि, दुखितास्मि ।]

मेतन्मे यदयं प्रियतमः स्वप्नविचेष्टितान्यातनुते । अत्र स्थले आर्यपुत्रे विहाय नास्त्यन्यो जनः यो हि–मां पश्येदिति । तस्मादहं क्षणकालमिहावस्थाय स्वनेत्रहृदययोस्तृप्तिं सम्पादये इति भावः। राजा पुनः प्रलपति–हा प्रियेति। प्रियशिष्ये = प्रीतिपात्रच्छात्रे। प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्। 'क्वासि' सप्रेम त्वामाह्वयन्तं मां 'इयमत्रास्मी'ति प्रत्युत्तरेण कथं न सम्भावयसी'ति प्रत्युत्तरेण कथं न सम्भावयसीति भावः। प्रणयानुरोधात्तदुचितं वाचं रोद्धुमपारयन्ती वासवदत्ता ब्रवीति–आलपामीति। प्राणप्रिय ! इदमिदानीं प्रत्युत्तर ददामीति भावः। राजा पुनरपि विलपति–किमिति। राज्ञो वचनमनुनिशम्य वासवदत्तोत्तरयति–नहीति। नैवास्मि कुपिता। न चास्ति मे कोपस्यावकाशः स्वप्रियतमे। किन्तु हतभाग्याहं दुःखमयीं दशा-

---

मनुष्य तो नहीं है जो मुझे इस अवस्था में देख ले। तो कुछ समय तक बैठ कर अपने नेत्र और हृदय को सन्तुष्ट करती हूँ।

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! मुझे उत्तर दो।

वासवदत्ता—भद्र ! मैं बोलती हूं। बोलती हूँ।

राजा—क्या तुम क्रुद्ध हो।

वासवदत्ता—नहीं क्रुद्ध तो नहीं पर दुःखी अवश्य हूँ।

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वरं किं ? [इतः परं किम् ?]

राजा --किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि विरचिआ ? [आ अपेहि इहापि विरचिका ?]

मनुभवामीति भावः। पुनः स्वप्ने तां कुपितां निश्चित्य राजा स्वचित्तेऽभिधत्ते—यद्यकुपितेति–यदीति सम्भावनायाम्। अथ सम्भाव्यते–त्वं कुपिता नासीति तर्हि कथं न धत्से–अलङ्कारान् स्वशरीरे। राज्ञः स्वप्ने तादृशविरहावस्थोचितालङ्काररहिता वियोगिन्येव प्रादुरासीदिति तथैवोच्यते। वासवदत्ता ब्रवीति—इतः परं किमिति–विरहयोगादहं दुःखितास्मीत्यलङ्कारधारणं न मे रोचते नान्यत् किमपि तत्परित्यागे कारणं यतो हि दुःखितानामलङ्कारा भारभूता भवन्तीत्याशयः। सापत्न्यभावं कोपे कारणं सम्भावयन् राजा ब्रवीति–किमिति सपत्न्या विरचिकायाः स्मरणमिदानीं ते सञ्जातं किम्। येन रुष्टासि त्वमति भावः। (विरचिका नाम्नी च स्त्री काचिदासीदुदयनस्य राज्ञः प्रिया (तत्सम्बद्धा कथा सरित्सागरे द्रष्टव्या) सपत्नीनामस्मरणात्कोपकलुषिता सती सरोषं वचनं ब्रवीति वासवदत्ता–आ इति। इत्यव्ययपदं कोपे स्मरणे च। इहापि पद्मावतीगृहेऽपि विरचिका नाम्नी सपत्नी स्मर्यते स्मार्यते चेति शेषः। अपेहि = दूरमपसर। सपत्नीनामगृह्णन् त्वं दूरमपेहि–न रोचते ते वचनं मह्यमिति भावः। विरचिका–

राजा—यदि क्रुद्ध नहीं तो अलङ्कार क्यों नहीं पहनी हो।

वासवदत्ता—विरह दुःख के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है।

राजा—क्या विरचिका का स्मरण कर दुःखी हो।

वासवदत्ता—(क्रोध के साथ) ओह हटिये। यहाँ भी विरचिका ?

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि। [हस्तौ प्रसा-रयति।]

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि। को वि म पेक्खे। ता गमिस्सं। अहव सय्यासपलाम्बअं अय्यउत्तस्य हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं। (तथा

सम्बन्धस्मरणमूलकं वासवदत्ताकृतं कोपं सम्भावयन् राजा प्रसादयितुमुद्यतः सन् ब्रवीति—तेन हीति। विरचिकार्थं = विरचिकानामग्रहणजन्यापराधक्षमापनार्थम्—यदि नाम विरचिकास्मृतिस्त्वां कोपयति तर्हि त्वं प्रसन्ना भव। अहं त्वामनुनयामि। एषममापराधः क्षन्तव्यस्त्वयेत्युक्त्वा प्रसादनोपायमभिनयति (हस्तौ प्रसारयति) अञ्जलिबद्धं हस्तयोः प्रसारणं प्रसादनोपायभूतं लोकाचारानुमतमिति। एतावदवधि विरहिणो राज्ञः स्वप्नावस्थोचितालापा उपवर्णिताः। स्वप्ने वासवदत्तादर्शनरूपं तमेनं विषमधिकृत्य कृतं स्वप्नवासवदत्तमिति नामकरणं चास्य नाटकस्यानुगतार्थतां यातीति रहस्यं पाठकैराकलनीयम्। इदानीं हस्तप्रसारणाद्राज्ञो निद्राभङ्गं तत्रान्यजनोपगमनं चाभिशङ्क्य स्वस्वरूपगोपनार्थं ततः प्रस्थातुकामाया वासवदत्तायाः वचनमाह कविः—चिरमिति। चिरं स्थितास्मि। अत्र स्थिताया मे भूयान्समयोऽतीतः दैवादेतावत्कालपर्यन्तं न केनापि दृष्टाहम्। अतो यावन्न कोऽपि मां पश्येत्तावदितः प्रस्थातव्यं मया। पुनः किञ्चिद्विचार्य स्नेहोचितं कर्त्तव्यान्तरं पक्षान्तरेणोपस्थापयति—अथवेति—शय्यालम्बितम् शय्यायाः प्रलम्बितम् = शयनाधस्तले लम्बमानम्। आर्यपुत्रस्य = स्वप्रियस्य। लम्बमानम् हस्तं = करम् पुनः शयनस्थलेऽवस्थाप्य गन्तव्यमिति भावः। तथा कृत्वा निष्क्रान्ता = लम्बमानस्य प्रियकरस्य शयनेऽवस्थापनं ततः प्रदेशान्निर्गमनं च वासवदत्ताया इति सूच्यते। प्रेयसीकरसंपर्शात्तदा-

---

राजा—इसलिये विरचिका के लिये तुम्हें मानता हूँ।

(दोनों हाथ फैलाते हैं)

वासवदत्ता—मैं बहुत समय तक यहाँ ठहरी कोई मुझे देख न ले

कृत्वा निष्क्रान्ता ।) [चिरं स्थितास्मि। कोऽपि मां पश्येत् । यद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि ।]

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ ! हा ! धिक् ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥ ७ ॥

नीमकस्मात्प्रबुद्धो राजा समीपतो गच्छन्तीमिव वासवदत्तां पश्यन् सहसा शयनादुत्थाय जिघृक्षुर्जिज्ञासमानश्चाह–वासवदत्तेति । अत्र तिष्ठ तिष्ठेति द्विरुक्ती वासवदत्ताग्रहणविषयिणीं त्वरामाविष्करणार्थम् । वासवदत्ते स्थीयताम् किञ्चित्त्वया स्थीयताम् कुत्र गम्यते इत्येवं वदंस्तद्ग्रहणार्थं पृच्छन् द्वारपार्श्वाभिहतः सन्नग्रे गन्तुमशक्नुवन् तत्प्राप्तौ निराशो भूत्वा शोचति–तदेव वर्णयति कविः हा धिग् = कष्टं गतैवं सा ।

अन्वयः—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः । ततः अयं मनोरथो भूतार्थः (वा) इति व्यक्तं न जानामि ॥ ७ ॥

व्याख्या—सम्भ्रमेण = त्वरया । निष्क्रामन् = निःसरन् । समुद्रगृह-प्रकोष्ठादिति शेषः । अहम् द्वारपक्षेण = द्वारपार्श्वभागेन । ताडितः = आहतः । अस्मीति शेषः । ततः = तस्मात् कारणात् । अयं मनोरथः = अभिलाषः ।

इसलिये जाती हूँ । अथवा शय्या से नीचे लटके आर्यपुत्र के हाथ को शय्या पर स्थापित कर तब जाऊँगी ।

राजा—(एकाएक उठ कर) वासवदत्ते ठहरो ठहरो । हाय धिक्कार है ।

मैं सहसा वासवदत्ता का स्वरूप जानने के लिये जल्दी से निकलता हुआ द्वार के दिवाल में टकरा गया । इससे उसके स्वरूप को स्पष्ट रूप से नहीं जानता कि वह यही है या नहीं ? अतः मेरा वासवदत्ता के परिचय में जानने का मनोरथ व्यर्थ हो गया ॥ ७ ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, ध्ररते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ! चिरा खु

भूतार्थः = सत्यम् इति व्यक्तं स्पष्टम् न जानामि = न वेद्मि । गतेरुपरोधाद्वासवदत्तादर्शनमिदं वास्तवम् सङ्कल्पमयं वेति किमप्यहं निर्धारयितुं न प्रभवामीत्यर्थः ॥ ७ ॥

राजनि शयाने सति स्वशैत्यापनोदार्थं प्रावरकवस्त्रमानेतुं गतस्य विदूषकस्य प्रवेशो सूचयति कविः–प्रविश्येति । तत्रोपगतो राजानं जाग्रतं विलोक्य सप्रसादं विदूषको ब्रूते—अयीति–अयं मे महान् प्रमोदस्य विषयो यन्महामान्यो महीपतिः प्रबुद्धवानिति भावः । वासवदत्ताविषयकं प्रियं वृत्तं स्वसुहृदं विदूषकं निवेदयितुकामो राजा तदुचितं वचः प्रस्तौति—वयस्येति–वयस्य = मित्र । प्रियं = प्रीतिकरम् । वृत्तमिति शेषः । आवेदये = कथयामि । ध्ररते प्राणानिति शेषः । मित्र प्रसन्नतापूर्वकं वृत्तमिदं सूचयामि त्वाम्–जीवति वासवदत्तेति निश्चयमवगच्छेति भावः । राज्ञो वचनमनुनिशम्य विदूषकस्तन्निषेधन्नाह—अविहेति । अविहा = विषादद्योतकमव्ययपदम् । उपरता = मृता । परलोकं प्रस्थितायास्तस्या भूयान् समयोऽतिक्रान्तः दुर्लभं तद्दर्शनम् तत्प्राप्तिरप्यासम्भवेत्यर्थकेन वचनेन विदूषकः राजोक्तं निवारयामास

विदूषक—(प्रवेश कर) अरे ! आप जाग गये ।

राजा—प्रिय मित्र ! मैं तुम्हें प्रसन्नता की बात बताता हूँ कि वासवदत्ता जी रही है ।

विदूषक—हाय वासवदत्ता ! वासवदत्ता अब कहाँ है ? बहुत दिन हुये वासवदत्ता तो मर गई ।

उवरदा वासवदत्ता। [अविहा ! वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥ ८ ॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण। आ उदअण्हाण-सङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे। [अविहा !

इति भावः। विदूषकोक्तिं खण्डयन् राजा ब्रवीसि—वयस्येति मा मा=नैव नैव। वासवदत्ता नास्तीदानीं दुर्लभं च तद्दर्शनमिति भवता न वक्तव्यमित्यर्थः।

अन्वय—हे सखे ! (वासवदत्ता) शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता। (सा) 'दग्धा' इति ब्रुवता रुमण्वता पूर्वं वञ्चितः अस्मि ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे सखे=हे मित्र ! शय्यायां=शयनीये अवसुप्तं=निद्राणं, मां बोधयित्वा जागरयित्वा गता=याता। वासवदत्तेति शेषः। दग्धा=भस्मीकृता। इति इत्थं ब्रुवता=वदता। रुमण्वता=तदाख्यमन्त्रिणा, पूर्वं =प्रथमं वञ्चितः प्रतारितः अस्मि=अभवम्। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

वासवदत्ताविषयकं राज्ञः शोकानुभावं वीक्ष्य विदूषको ब्रूते—अविहेति। अविहा=शोकसूचकमव्ययपदम्। एतत्=वासवदत्तादर्शनम्। असम्भाव्यं

राजा—मित्र ! ऐसा नहीं कदापि नहीं। वासवदत्ता शय्या पर सोये हुये मुझे जगा कर चली गई। 'वासवदत्ता जल गई' ऐसा कहने वाले रुमण्वान् नाम के अपने ही महामन्त्री द्वारा ठगा गया हूँ ॥ ८ ॥

विदूषक—हाय ! यह अनहोनी बात तो नहीं जल स्नान की चर्चा

असम्भावनीयमेतन्न। आ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत्।]

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्।
अथायं विभ्रमो वा स्यात्, विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम्॥ ९॥

विदूषकः—भो! वअस्स! एदस्सिं णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम

न किन्तु सम्भाव्यमेव। उदकस्नानसंकीर्त्तनेन = जलकीर्त्तनख्यापनेन। तत्र भवतीम् = माननीयां। वासवदत्ता स्वप्ने दृष्टा भवेत्। विदूषकोक्तौ सवितर्कमाह राजा-एवम्। किमहं स्वप्नं दृष्टवान्। स्वप्नवलेन च मे तद्दर्शनम्। काकूक्तिरियम् राज्ञः। पुनस्तत्र वितर्कयति राजा—यदीति॥ ८॥

अन्वयः—तावदयं स्वप्नः यदि? अप्रतिबोधनं धन्यम्। अथवा अयं विभ्रमः स्यात्। चिरं मे विभ्रमः अस्तु हि॥ ९॥

व्याख्या—तावद् = वाक्यालङ्कारे। अयं = वासवदत्तादर्शनव्यापारः। स्वप्नो यदि = स्वापो भवेच्चेत्। तर्हि अप्रतिबोधनम् = जागरणाभावः स्वप्नो वा। धन्यम् = सफलम्। अथवा = पक्षान्तरे अयम् = वासवदत्ता-दर्शनव्यापारः विभ्रमः = भ्रान्तिः स्यात् = भवेत् तर्हि चिरम् = बहुकालम्। मे = मम। विभ्रमः = भ्रान्ति। अस्तु = भवेत्। स्वप्नाद् भ्रान्तेर्वा यथा-कथञ्चिद्वासवदत्तादर्शनम् भवेच्चेद्धन्यो भवेयमिति वासवदत्तासमानवस्त्वन्तर-दर्शनं सम्भाव्यमानो विदूषको ब्रवीति—भो वयस्येति। भो मित्र!

करने से और उस सम्बन्ध से वासवदत्ता की याद आ जाने से आपने उन्हें स्वप्न में देखा होगा।

राजा—ऐसा! मैंने स्वप्न देखा।

यदि यह स्वप्न है तो न जागना भी धन्य है अथवा यदि यह भ्रान्ति है तो चिरकाल तक मुझे ऐसी भ्रान्ति होती ही रहे॥ ९॥

विदूषक—प्रिय मित्र! इस नगर में अवन्ति सुन्दरीं नाम की एक यक्षी निवास करती है उसी को आपने देखा होगा।

जक्खिणी पडिवसदि। सा तुए दिट्ठा भवे। [भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति सा त्वया दृष्टा भवेत्।]

राजा—न, न

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम्॥ १०॥

नाम्नावन्तिसुन्दरी कापि यक्षी गन्धर्वी पुरमेतदलङ्करोति सा चापूर्वं सौन्दर्यं वहन्ती वासवदत्तामनुकरोति तस्या एव दर्शनमिदानीं भवता लब्धं स्यादित्यहं सम्भावये। तन्निषेधन्नाह राजा—न नेति। द्वौ नञौ प्रकृतार्थं दृढयतस्तेन नहि भो अवन्तिसुन्दरी मया न दृष्टा किन्तु वासवदत्तैव सासीदिति निश्चयं विश्वसिमितथा हि—

अन्वयः—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकं मुखं दृष्टम्॥ १०॥

व्याख्या—स्वप्नस्य = स्वापस्य। अन्ते = अवसाने। विबुद्धेन = जागरूकेन। मयेति शेषः। चरित्रम् = सत्वृत्तम्। अपि जीवितमित्याक्षिप्यते तेन जीवितेन सह पातिव्रतानुरूपशीलम् रक्षन्त्याः = पालयन्त्याः वासवदत्ताया इति शेषः। नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् नेत्रयोः = नेत्राभ्याम् विप्रोषितम् = दूरीभूतम्। अञ्जनं = कज्जलं यस्मिन् तत्। दीर्घालकम् दीर्घा = लम्बमाना अलका चूर्णकुन्तला यत्र तादृशम् वदनं = मुखम्। दृष्टं = साक्षात्कृतम्। अत्र नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकमिति मुखविशेषणद्वयेन प्रोषितभर्तृकाभिर्नेत्रयोरञ्जनसम्बन्धो वेणीबन्धश्च सर्वथा परिहरणीय इति वासवदत्तायाश्चरित्रं भृशं व्यक्ततां नीतम् कविना॥ १०॥

राजा—नहीं नहीं।

स्वप्न के अन्त जागता हुआ मैंने सच्चरित्र से परिपूर्ण वासवदत्ता के अञ्जन रहित नेत्रों से युक्त तथा लम्बे-लम्बे अलकों से युक्त मुख को देखा॥ १०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

विदूषकः -- मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु भवं चउस्सालं

वासवदत्तायाः प्रत्यक्षदर्शनहेतुभूतं स्वशरीरसमुद्भूतं किञ्चिच्चिह्नमपि दर्शयति राजा । अपि चेति । मित्र पश्य पश्य वासवदत्तासाक्षात्कारकलक्षणं मया वक्ष्यमाणमिदमन्यमपि चिह्नम्—योऽयमित्यादि ।

अन्वयः—सन्त्रस्तया तया देव्या यः बाहुः निपीडितः स्वप्ने उत्पन्नः संस्पर्शः सन् अपि रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

व्याख्या—सन्त्रस्तया = अतिशयभीतया । तया = देव्या वासवदत्तया । यः अयम् = एषः बाहुः = भुजः निपीडितः = स्वकरेण गृहीत्वा शयनीये आरोपितः तेन कारणेन स्वप्ने निद्रायाम् उत्पन्नसंस्पर्शः = सञ्जातदयिताकर-सम्पर्कः बाहुरिति शेषः । रोमहर्षम् रोमाञ्चं न मुञ्चति न त्यजति । वासवदत्ता प्रणयेन मदीयं भुजं गृहीतवती स्वप्नेऽपि तत्पाणिस्पर्शेन मदीयोऽयं भुजो रोमाञ्चितोऽभवदित्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ११ ॥

इदानीं राजानं तदनुचिन्तनाद्विषयान्निवर्तयितुकामो विदूषक आह--मेति । अनर्थकम् = असम्भाव्यविषयम् । चिन्तयित्वा = संस्मृत्य । मा विषण्णो

और भी मित्र देखो देखो ।

अत्यन्त भयभीत हुई उस देवी ने जो मेरा यह हाथ पकड़ा स्वप्न म स्पर्श होने पर भी अभी तक (जागरितावस्था) में भी वह रोमाञ्चित हो रहा है ॥ ११ ॥

विदूषक—इस समय आप असम्भाव्य विषय की चिन्ता कर विषण्ण मत हों । आप आइये आइये । बैठके वाले घर में चलें ।

पविसामो । [मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा । एत्वेतु भवान् । चतुःशालं प्रविशामः ।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदयेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान् ।

भवान् भवत्विति । चतुःशालम् = शालाचतुष्टयोपेतं गृहविशेषं । प्रविशामः =प्रवेशं कुर्मः । काञ्चुकीय इति—आर्यपुत्रः = सम्मान्यः । जयतु । उत्कर्षातिशयेन वर्त्तताम् । अमात्यः = महामन्त्री बलसमुदायेन = सैन्यसमूहेन । आरुणिम् = तन्नामकं भवच्छत्रुम् । अभिघातयितुम् = विनाशयितुम् । उपयातः = प्रस्थितः । मामकानि = मदीयानि । हस्त्यश्वरथपदातीनि = चतुरङ्गसैन्यानि । विजयसाधनानि = विजये हेतुभूतानि । सन्नद्धानि = उद्यतानि सन्तीति शेषः । अयमर्थः-अस्मन्महाराजा दर्शकमहोदया श्रीमतं निवेदयन्ति—यत्किल श्रीमता रुमण्वता परिपन्थिनमारुणिं भवता प्रनाथयितुमिच्छता महान्तं सैन्यसमूहमात्मना सहादाय सम्प्रत्यत्रोपस्थितमिति भावः । आक्रमणकार्योचितानि संविधानानि यथोचितमारचितानि—इति सूचयन्नाह—अपि चेति ।

(प्रवेश कर)

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र महाराज की जय हो । हम लोगों के महाराज दर्शन ने आपको कहा है कि आपके महामन्त्री रुमण्वान् बहुत बड़ी सेना के साथ आरुणि को मारने के लिए चल दिये हैं । उसी प्रकार विजय के अङ्गभूत हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाएँ भी तैयार है इस कारण आप उठिये ॥ ११ ॥

अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

अन्वयः—(हे राजन्)! ते रिपवः भिन्नाः । भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः या पार्ष्णी तस्या अपि भवत्प्रयाणसमये विधानं कृतम् । अरिप्रमाथजननं यत् यत् साध्यं तत तत् मया अनुष्ठितम् । बलैः त्रिपथगा नदी अपि तीर्णा च । वत्साश्च तव हस्ते सन्ति ॥ १२ ॥

व्याख्या—(हे राजन्) ते = तव । रिपवः = शत्रवः । भिन्नाः = भेदं सम्प्राप्ताः । नानाविधैरुपायैरिति शेषः । भवद्गुणरताः = भवद्दयादाक्षिण्यादिगुणानुरक्ताः । पौराः = नागरिकाः । समाश्वासिताः = आश्वासनं सम्प्रापिताः । या पार्ष्णी = सैन्यपृष्ठम् । तस्या अपि भवत्प्रयाणसमये = त्वद्विजययात्राकाले । विधानम् = अवश्यं करणीयसंरक्षणम् । कृतं = विहितम् । अरिप्रमाथजननम् = शत्रुनाशोत्पादकं यत् यत् साध्यम् = साधनीयम् । तत् तत् मया = दर्शकेन । अनुष्ठितम् = सम्पादितम् । बलैः = सैन्यैः त्रिपथगा = भागीरथी गङ्गा । नदी = सरित् । अपि तीर्णा = पारे गताः । वत्साश्च वत्सदेशवासिनो जनाः । तव हस्ते सन्ति । शत्रूणां परस्परं भेदः । शत्रोरधीनतां गतानां

और भी—

आपके शत्रुओं में परस्पर भेद उत्पन्न कर दिया गया हैं । आपके दया, दाक्षिण्यादि गुणों में अनुरक्त नागरिकों को धैर्य प्रदान कर दिया गया है । आपके आक्रमण काल में सेना के पृष्ठभाग की रक्षा की विधि भी सोच ली गई है । इस प्रकार शत्रुओं के नाश के जितने भी साधन (उपाय) है वह सब मैंने तैयार कर लिया है । इतना ही नहीं हमारी सेनाओं ने गङ्गा

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ १३ ॥

पुरवासिजनानामाश्वासनम् सैन्यपृष्ठरक्षोपायः सेनापि गङ्गायाः परं पारं प्राप्य सन्नद्धावस्थापिता एवं शत्रुघ्नं समरोचितं सकलमपि विधानं संरचितम् । एवं पुनर्वत्सदेशवासिनो जनाः भवदीयवशेऽचिरादेव स्थास्यन्ति । भवताऽपि प्रयाणोद्यमः शीघ्रमालम्बनीय इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं नाम च्छन्दः ॥ १२ ॥

काञ्चुकीयवचनं श्रुत्वा राजा सोत्साहम् उत्थाय ब्रवीति—बाढमिति बाढम् = साधु समीचीनेयं व्यवस्था कृता । संग्रामे स्वकर्त्तव्यं सम्पादयितुमप्युद्यतोऽस्मीत्यर्थः ।

अन्वय.—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि उपेत्य दारुणकर्मदक्षं तम् आमारुणिं नाशयामि ॥ १३ ॥

व्याख्या—नागेन्द्रैः महागजैः तुरङ्गैः अश्वैः तीर्णे पारं गते । विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे विकीर्णाः विक्षिप्ताः बाणाः शराः ते एव उग्रतरङ्गाः भयङ्करोर्मयः तैः भङ्गः यस्मिन् तस्मिन् । महार्णवाभे महार्णव आवर्तः महासमुद्र इव आभा यस्य तस्मिन् युधि = युद्धे उपेत्य = गत्वा दारुणकर्मदक्षम् दारुणं भीषणं यत्कर्म तस्मिन् दक्षः निपुणः तम् । आरुणिं = तन्नामकं स्वशत्रुं । नाशयामि = निहन्मि । उपेन्द्रवज्रानामकं छन्दः । रूपकमुपमा च तेन संसृष्टिरलङ्कारः ॥ १३ ॥

के उस पार जाकर डेरा डाल दिया है । अब आपका वत्सदेश आपके हाथ है ।

राजा—(उठकर) अच्छी बात है । मैं अभी इस प्रकार के युद्ध में जाकर भयंकर कर्म में निपुण उस आरुणि नाम के शत्रु को युद्ध में मारता हूँ जो (युद्ध)

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

—:✤:—

युद्धोपक्रमं नाम भविष्यत्कार्यं संसूच्य प्रसङ्गान्तरमवतारयितुं मञ्चात्सर्वेषां निष्क्रमणं दर्शयति निष्क्रान्ताः सर्वे इति ।

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

—:✤:—

हाथी और घोड़ों से पार करने योग्य तथा निक्षिप्त बाणरूपी उग्रतरङ्गों से व्याप्त महासमुद्र के समान है ।

(सब निकल जाते हैं)

॥ पञ्चम अंक की भाषा टीका समाप्त ॥

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

इह षष्ठेऽङ्के घोषवतीं नाम्नीं वीणां केनचिद्वादितां श्रुतवतो वत्सराजस्य तत्प्राप्तिस्तयैव समं प्रियानवाप्तिमूलको मानसशोकज्वराविर्भावः। तत्काले एव महासेनभूपतिना देव्या महाराज्ञ्या च प्रेषितयोर्नूतनराज्यलाभाभिनन्दनाय कुशलवृत्तान्तावगतये च दूतयोरुपस्थितिः। वत्सराजस्य सन्निधौ पद्मावत्युपस्थानं च। महाराज्ञीप्रेषितदूतीकर्तृकं वत्सराजाय वासवदत्ताचित्रपटसमर्पणम्। चित्रदर्शनेन तदाकारसाम्यात् पद्मावत्याः स्वसमीपे न्यस्तायामवन्तिकायां वासवदत्तात्वशङ्का। एतस्मिन्नेव काले वासवदत्तां न्यासरूपेण स्थापितां ग्रहीतुं यौगन्धरायणस्य पद्मावतीसन्निधावागमनम्। स्वरसाम्येन राज्ञोऽपि तत्र महासेनपुत्रीत्वसम्भावना। तदनन्तरम् अपनीतकपटवेषेण यौगन्धरायणेन स्वपरिचयपुरःसरं रहस्योद्भेदनं तावत्कालपर्यन्तं वासवदत्तानियोजनरूपापक्षमाप्रार्थनम् च। सर्वेषां महासेनमहाराजसमीपे प्रस्थानप्रस्तावश्चेति विषया उपन्यस्ताः।

अथ कविः काञ्चुकीयप्रतीहाराभ्यां मध्यमनीचपात्राभ्यां मिश्रविष्कम्भकरूपेणाग्रिमं वृत्तं सूचयितुं काञ्चुकीयस्य प्रवेशं दर्शयति ततः प्रविशतीत्यादिना।

महाराजमहासेननृपतेः सकाशादागतोऽयं काञ्चुकीयस्तत्सन्देशवाचं निवेदयितुमिच्छन् वत्सराजद्वारान्तिकमागत्य द्वारपालत्वेन क इहोपस्थितोऽस्ति येन मे सन्देशस्तं प्रति प्राप्येते'ति तत्समयोचितं ब्रूते—क इति। काञ्च-

---

(तदनन्तर काञ्चुकीय का प्रवेश)

काञ्चुकीय—अरे भाई ! यहाँ कौन है ? इस सुवर्ण-निर्मित बाहर के द्वार को कौन सनाथ कर रहा है ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ। किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया। किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय— एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति।

नद्वारतोरणम् = सुवर्णरचितबहिर्द्वारम्। अशून्यम् = अनतिरिक्तम्। सनाथमिति यावत् 'कः पुनरत्र राजभवनस्य द्वारभूमौ स्थितः सन् स्वीयं कार्यमनवरतं विदधानो जाग्रतीति प्रश्नाशयः।

प्रश्नसमकालमेव प्रतोहारीमुपस्थापयति कविः प्रविश्येति। प्रतीहारी प्रविश्य ब्रूते—अयीति-अयि सम्मान्य ! किं करणीयमस्ति। मह्यमादिश्यताः मिति भावः। स्वीयमागमनं संसूचयितुमाह काञ्चुकीयः भवतीति। निवेद्यतामिति त्वरार्थं द्विरुक्तिः। वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय वत्सराज्यलाभेन वत्सराज्यप्राप्त्या प्रवृद्ध समृद्धः उदयो=उत्कर्षः यस्य तस्मै। महासेनस्य= उज्जयिनीपतेः सकाशात् समीपात्। प्रेषिता=प्रहिता वासवदत्तोपधात्री= वासवदत्तापालिका प्रतीहारभूमिम् =द्वारभुवम्। उपस्थितौ = सम्प्राप्तौ। श्रीन्महासेनमहीपतेराज्ञया समागतो रैभ्यनामा काञ्चुकीयोऽहम् श्रीमत्याः प्रद्योतनृपतेः पत्न्याः सम्प्रेषिता वसुन्धराख्या वासवत्ताया उपमाता चेत्येता-

---

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य ! यह मैं विजया उपस्थित हूँ। कहिये मुझे क्या करना है ?

काञ्चुकीय—श्रीमति ! वत्सराज्य की पुनः प्राप्ति से उदीयमान महाराज उदयन से जाकर कहिये कि महासेन महाराज प्रद्योत के पास से रैभ्य सगोत्रीय एक काञ्चुकीय और माननीया महारानीं अङ्गारवती के द्वारा

प्रतीहारी—अय्य ! अदेशकालो पडिहारस्स । [आर्य ! अदेशकालः प्रतीहारस्य ।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिता । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीएसद्दो विअ सुणीअदि त्ति । [शृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।]

वुभौ वत्सराजस्य विजयावसरे कमपि स्वामिनो सन्देशं कथयितुमुपस्थितौ इत्येव तावन्निवेदनीयमित्यर्थः ।

काञ्चुकीयोक्तं राज्ञे निवेदनीयं सन्देशमाकर्ण्य तन्निवेदनेऽनवसरं सूचयति प्रतीहारी–आर्य अदेशकाल इति । देशश्च कालश्च देशकालौ अविद्यमानौ देशकालौ यस्य सः देशकालरहितः इत्यर्थः । राज्ञो निवेदनार्थमयं द्वारपालोपस्थितियोग्यौ देशः कालश्च नास्ति । इदानीं यत्र राजा तिष्ठति तत्र द्वारपालगमननिषेधो वर्त्तते ! प्रतीहारीवचनमाकर्ण्य कथमयवसरो देशश्चास्मत्सन्देशप्रापणाय नानुकूल इति पृच्छति काञ्चुकीयः-कथमित्यादितदुत्तरं सोपपत्तिकं ब्रवीति प्रतीहारी-शृणोत्विति । सूर्यामुखप्रासादगतेन =सूर्यामुखभवनप्राप्तेन । केनापि = अज्ञातजनेन । वीणा = वल्लकी । वादिता = शब्दिता । राजभवनान्निर्गतेन राज्ञा केनापि वाद्यमानं वीणाध्वनिमश्रावि । तच्छ्रुत्वा कथितं घोषवत्या शब्द इव श्रूयते इति ।

भेजी गई वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाई ये दोनों द्वार पर उपस्थित हैं ।

प्रतीहारी—आर्य प्रतीहारी द्वारा राजा से निवेदन करने का इस समय उचित देश और काल नहीं है ।

काञ्चुकीय—उचित देश और अवसर नहीं ऐसा कैसे ?

प्रतीहारी—आर्य ! सुनें । आज महारानी के सूर्यामुख नामक महल

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो-कुदो इमाए वीणाए आगमो त्ति। तेण भणिअं—अह्मेहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा। जइ प्पओअण इमाए, उवणीअदु भट्टिणी त्ति। तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा। तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं—दिट्ठासि घोसवदि! सा हु ण दिस्सदि त्ति। अय्य! ईदिसो अणवसरो। कहं णिवेदेमि ? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति। तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो

तदुत्तरं किं संवृत्तमिति काञ्चुकीये पृष्टे सति प्रतीहारी उत्तरयति—तत इति—ततः = तदनन्तरं। आगमः = प्राप्तिः। ततो घोषवती सदृशं स्वरमनुनिशम्य वीणावादकस्योपसमीपं गत्वा 'कस्मात् पुरुषात्, कस्मात्स्थानाद्वा घोषवती मिमां लब्धवान् भवानिति? राज्ञा पृष्टः—सन् घोषवतीवादकः पुरुषः उत्तरयति—भणितम् = उक्तम्। नर्मदातीरे = रेवातटे। कूर्चगुल्मलग्ना = दर्भस्तम्बसम्बद्धा लब्धा वीणेति शेषः। अनया = वीणया। प्रयोजनं = कार्यम्। भर्त्रे = स्वामिने। उपनीयतां = समर्प्यताम्। अङ्के = उत्सङ्गे। मोहम् = मूर्च्छाम्। ततः = अनन्तरं मोहप्रत्यागतेन = मूर्च्छानिवृत्तेन। वाष्पपर्याकुलेन = रोदनव्याकुलितेन। मुखेन = वदनेन। भर्त्रा = स्वामिना। सा = वासवदत्ता। ईदृशः = एतादृशः। अनवसरः गमनानुकूलकालः न। कथं = केन प्रकारेण। निवेदयामि = संसूचयामि। अहं नर्मदातटङ्गत्वा-

---

में पहुँच कर किसी ने वीणा बजाई। उसे सुन कर महाराज ने कहा यह तो घोषवती का सा शब्द सुनाई पड़ता है।

काञ्चुकीय—तब उसके बाद क्या हुआ ?

प्रतीहारी—तदनन्तर उस व्यक्ति के पास जाकर पूछा तुम्हें यह वीणा कहाँ मिली ? उसने कहा—हमने नर्मदा नदी के किनारे

भर्ता। ततो मोहप्रत्यागतेन वाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्—दृष्टासि घोषवति! सा खलु न दृश्यत इति। आर्य! ईदृशोऽनवसरः। कथं निवेदयामि?]

काञ्चुकीयः- भवति! निवेद्यताम्। इदमपि तदाश्रयमेव।

प्रतीहारी—अय्य! इअं णिवेदेमि। एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादा

नस्मि। तत्र च दर्भस्तम्बेषु पतितेयं वीणा मया लब्धा यद्यपेक्ष्यते श्रीमता तर्हीमां श्रीमते समर्पयामि। ततस्तेन राज्ञे सा वीणा समर्पितेतियोजनीयम्। राजा च तां गृहीत्वा निजोत्सङ्गे निधाय वासवदत्तां संस्मरन् मूर्च्छितोऽभवत्। मोहोपगमनान्तरं वाष्पपर्याकुलेन मुखेन रोदितुमारेभे–अयि घोषवति त्वदीयं दर्शनं जातम्। किन्तु वासवदत्ता न दृश्यते–इति तदनन्तरं प्रतीहारी वदति–आर्य! ईदृशोऽनवसर इत्यादि। अतः कथमिदानीं राज्ञः समीपं प्रापणीयं भवदीयं सन्देशभाषितमिति।

प्रतीहारीवचनमाकर्ण्य–काञ्चुकीयो ब्रवीति 'भवतीति। निवेद्यताम् = संसूच्यताम्। इदम् = निवेदनम्। तदाश्रयम् = वासवदत्ताविषयम्—देवि! अस्मदीयागमनमिदं वासवदत्तामेव विषयीकरोति। तदिदं भवत्या राज्ञे निवेदनीयमेवेत्यभिप्रायः। श्रुत्वैतत्तदागमनं निवेदयितुं प्रतीहारी प्रतिजानीत–

कुशों की झाड़ी में पड़ी हुई इसे देखी। यदि महाराज को इसकी आवश्यकता हो तो इसे समर्पित कर दूँ। तब उसे गोद में रख कर महाराज मूर्च्छित हो गये। फिर जब चेतना में आये तो मुख पर अश्रुधारा वहाते हुये बोले—घोषवती! तू दिखाई पड़ी किन्तु वह नहीं। आर्य! इस कारण राजा के पास जाने का अवसर नहीं है जो आपके आने का सन्देश कहूँ।

काञ्चुकीय—श्रीमती जी! निवेदन कर दीजिये। क्योंकि यह सन्देश भी तद्विषयक ही है।

प्रतीहारी—आर्य! यह मैं निवेदन करती हूँ। अच्छा ये महाराज सूर्यामुख प्रासाद से उतर रहे हैं। तो यहीं पर निवेदन करती हूँ।

ओदरइ। ता इह एव्व णिवेदइस्सं ! [आर्ये ! इयं निवेदयामि। एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति। तदिहैव निवेदयिष्यामि।]

काञ्चुकीयः—भवति। तथा।

(उभौ निष्क्रान्तौ।)

(मिश्रविष्कम्भकः)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्या
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।

आर्ये इति। एषः = पुरोदृश्यमानः। अवतरति = अवरोहति। निवेदयिष्यामि = विज्ञापयिष्यामि। स्पष्टोऽर्थः।

प्रतीहार्युक्तं समर्थयति काञ्चुकीयः—भवतीति। अयि श्रीमति ! एवमेव कर्त्तव्यम् समीचीनोऽयमवसरो राज्ञे निवेदयितुमित्यर्थः।

उभौ निष्क्रान्तावित्यनेन—प्रतीहार्याः काञ्चुकीयस्य च राज्ञः समीपे गमनं सूच्यते।

ततः प्रविशतीति—कविरिदानीं श्रीमतो वत्सराजस्य रङ्गमञ्चे विदूषकेण समं प्रवेशं प्रदर्शयति। घोषवतीं वीणामुद्दिश्य राजा स्वकीयं शोकमुद्गिरति—

अन्वयः—हे श्रुतिसुखनिनदे देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले सुप्ता

काञ्चुकीय—श्रीमती ! ऐसा ही करो।

(दोनों का प्रस्थान)

(मिश्र विष्कम्भक)

(तदनन्तर राजा और विदूषक रङ्गमञ्च पर आते हैं)

राजा—अरी मधुर शब्द करने वाली वीणा ! तू तो कभी वासवदत्ता के

विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ १ ॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

(सती) कथं नु विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयम् अरण्यवासम् अध्युषिता ॥ १ ॥

व्याख्या—हे श्रुतिसुखनिनदे श्रुत्योः = कर्णयोः सुखः = हर्षकारकः निनदः ध्वनिः यस्या सा। वीणे इति शेषः। देव्याः = वासवदत्तायाः। स्तनयुगले = पयोधरयुग्मे। जघनस्थले = कटिपुरोभागस्थाने च सुप्ता = शयिता सती। सम्प्रति कथं नु = केन प्रकारेण। विहगगणरजोविकीर्णदण्डा विहगगणस्य = पक्षिसमूहस्य रजोभिः – धूलिभिः विकीर्णः – व्याप्तः दण्डो यस्याः सा। प्रतिभयम् भयङ्करम्। अरण्यवासम् = वनवासम्। अध्युषिता = संस्थिता असीति शेष.। अस्य श्लोकस्येदं तात्पर्यम्–अयि घोषवति ! या त्वं पुरा वासवदत्तया सस्नेहं कोमलाङ्गे लालिता सती शयनसुखमन्वभूः सैव त्वं दुर्दैवशात्पक्षिगणमलदूषितं वीणादण्डं दधाना भयानकवनवासं प्राप्तवत्यसीति भावः। पुष्पिताग्रावृत्तम्। अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा इति तल्लक्षणम् ॥ १ ॥

अपि चेति–अस्निग्धा = स्नेहरहिता। इदमपि निश्चितं तवाधुना वासवदत्तां प्रति स्नेहो नास्ति—तदेव सूचयति–इत्यादि। एतत्पदमग्रिम-श्लोकान्वयि।

स्तनों पर कभी कटयग्रभाग में सोती रहती थी। वही तू आज इस समय चिड़ियों के मल से दूषित दण्ड वाली होकर यह भयानक अरण्यवास कैसे करती है ॥ १ ॥

और भी। अरी घोषवती ! तू सर्वथा स्नेहरहित है।

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥ २ ॥

अन्वयः—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि। विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि च (न स्मरसि) ॥ २ ॥

व्याख्या—(या त्वं तपस्विन्या.) श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि श्रोण्याकटिभागे न समुद्वहनानि पार्श्वेन निपीडितानि पार्श्वनिपीडितानि श्रोणीसमुद्वहनानि च तानि पार्श्वनिपीडितानि = कटिधारणभुजाधोभागसम्पीडनानि । खेदस्तनान्तरसुखानि=खेदे सति स्तनयोरन्तरं तत्र यानि सुखानि = वादनप्रयासे सत्यपि कुचमध्यानानन्दकराणि । विरहे माम् उद्दिश्य = उपलक्ष्य परिदेवितानि=विलपितानि । वाद्यान्तरेषु वाद्यस्य=वीणा या यानि अन्तराणि मध्यानि तेषु = वीणावादनावसरमध्येषु । उपगूहितानि = आलिङ्गितानि च न स्मरसि = न चिन्तयसि । अतएव अस्निग्धासीति भावः । वादनावसरे यत्किल वाद्यभाण्डमङ्केन वासवदत्ता धृतवती । यच्च तस्यास्तदानीं पार्श्वभागेन वीणादण्डस्य संघर्षणं जायते । यच्च वादनपरिश्रमान्मध्ये विश्रमार्थं सा वक्षोजमध्यभागेन वीणादण्डमालिङ्ग्य तूष्णीमवस्थिता, मद्वियोगकाले च यद् बहून्विलापान् कृतवती लोकोत्तरेषु मत्कृतेषु तत्तद्वादनकलाकौशलेषु यच्च

जो कि उस बेचारी के इन बातों का स्मरण भी नहीं करती जो तुम्हें कभी अपने गोद में एवं कभी पार्श्वभाग में रखती थी। थक जाने पर कूचों पर रख कर तुम्हारा आलिङ्गन करती थी। विरह की दशा में मुझे उपलक्षित कर विलाप करती थी। इतना ही नहीं मेरे द्वारा नाना प्रकार की वीणा बजाये जाने पर जो मेरी प्रशंसा में हास्ययुक्त प्रशंसासूचक वचन कहा करती थी ॥ २ ॥

विदूषकः—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ । [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम् ।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ३ ॥

मत्प्रशंसायाम् सहासं वचनमुक्तवती—यदेतदखिलं चेष्टिमिदानीं मृतां दशां वहन्त्यास्तस्या वासवदत्ताया किमपि न स्मर्यंते त्वयेति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २ ॥

प्रियावियोगपरितप्तचित्तमित्थं विलपन्तं राजानं दृष्ट्वा ततो निवारयन् विदूषको ब्रवीति—अलमिति–अयि मित्र ! भृशं व्याकुलो मा भूस्त्वम् । तस्या उपलब्धेरभावात्तत्कृते शोको निरर्थक इति भावः । विदूषकवचनं श्रुत्वा स्वकीयसन्तापस्यानिवार्यत्वं सूचयति राजा—वयस्य मा मैवमिति ।

अन्वयः—चिरप्रसुप्तो मे कामः वीणया प्रतिबोधितः । यस्याः घोषवती प्रिया तां देवीं तु न पश्यामि ॥ ३ ॥

व्याख्या—चिरप्रसुप्तः चिरेण प्रसुप्तः = बहुकालं यावच्छयितः । मे = मम । कामः=अभिलाषः । वीणया = वल्लक्या घोषवत्या । प्रतिबोधितः = उद्बोधितः

विदूषक—महाराज इस समय अधिक सन्ताप कर खिन्न न हो ?

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो । ऐसा मत कहो ।

बहुत काल से सोई हुई मेरी अभिलाषा को इस वीणा ने जगा दिया है । हाय ! जिसे यह घोषवती प्रिय थी उन महारानी को नहीं देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः) [यद् भवानाज्ञापयति।]

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो खु महासेणस्स सआसादो रंभसगोत्तो

यस्याः = वासवदत्तायाः। घोषवती प्रिया = अभीष्टा। तां देवीम् = वासवदत्तां तु न पश्यामि = न विलोकयामि। अनुष्टुप् छन्द ॥ ३ ॥

प्रियतमाविषयिणीयं ममोत्कण्ठा साधनाभावाद्हृदये निलीनप्रायाऽभवत्। किन्त्वद्योपलब्धेयं घोषवती वासवदत्तां स्मारयन्ती नितान्तमुत्कण्ठामुद्बोधयति। एषा घोषवती यस्यै भृशमरोचत् सा मे प्रिया वासवदत्ता न तावल्लोचनगोचरतां गच्छतीति भावः इत्येवं भृशं विलप्य राजा वीणासंस्कारसम्पादनविधौ विदूषकमाज्ञापयति—वसन्तकेति। शिल्पिजनसकाशात् = वीणासंस्करणकलाकुशलसमीपात्। नवयोगातम् = नूतनतन्त्र्यादियोजनयुक्ताम्। कृत्वा = विधाय। मित्र विदूषक! चिरादनुपयोगान्नष्टभ्रष्टावयवामिमां घोषवतीं कुशलकारूणां समीपं नीत्वा नूतनावयवयोजनेन समीचीनां कारयित्वा ममान्तिकं सत्वरमानेतव्येति भावः।

राजाज्ञां परिपालयितुं विदूषकः प्रतिजानीते—यद् भवानिति—एषोऽहं

अच्छा वसन्तक! इस घोषवती को कुशल शिल्पियों के पास ले जाकर मरम्मत करा कर अभी लाओ।

विदूषक—महाराज की जैसी आज्ञा!

(बीन लेकर निकल जाता है)

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो। महाराज महासेन के यहाँ से

कंकुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ता-धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा । [जयतु भर्ता । एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

राजा—तेन हि पद्मावतीं तावदाहूयताम् ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद्भर्ताज्ञापयति ।]

भवदादेशमनुसृत्य तदुचितं कर्त्तुमुद्यतोऽस्मीति भावः । विदूषको वीणां संस्कारयितुं वीणां नीत्वा ततः प्रस्थित इत्याह–वीणां गृहीत्वेति इदानीं राज्ञः सन्निधौ पूर्वनिर्दिष्टं प्रतीहारीप्रवेशं दर्शयति—प्रविश्येति–विजयाशंसनपूर्वकं पूर्वोक्तकाञ्चुकीयसन्देशं राजानं निवेदयन्ती प्रतीहारी ब्रूते जयत्विति । जयतु = सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । महासेनस्य = उज्जयिनीभूपतेः देव्याः = राज्ञ्याः । प्रतीहारम् = द्वारम् । श्रीमान् महामान्यो महासेनः रैभ्यसगोत्रं कञ्चुकीयम् श्रीमती प्रद्योतराजपत्नी अङ्गारवती च । तच्छ्रुत्वा राजा ब्रवीति तेन हीति ।

तेन = कारणेन । तावद् आहूयताम् = आकार्यताम् । पूर्वं पद्मावत्याह्वयितव्या तदनन्तरं दूताविमावुपस्थापयितव्याविति राज्ञोऽभिप्रायः । भर्त्तुराज्ञा सादरं स्वीकुर्वन् प्रतीहारी ब्रूते–यदिति । यत्किलादिश्यत आर्येण तत्तावन्मया साध्यते इत्यर्थः । ततस्तस्या निर्गमनं सूचयति निष्कान्तेति–प्रतीहार्यां गतायां

रैभ्य गोत्रीय कञ्चुकी तथा महारानी अङ्गारवती के द्वारा भेजी गई वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाई द्वार पर उपस्थित हैं ।

राजा—तो पद्मावती को बुलाओ ।

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा । (कह कर चली जाती है)

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च ।)

प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं ? महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

राजा स्वगतं भाषते किन्नु खल्विति—पद्मावतीपरिणयरूपो विजितराज्य-प्राप्तिरूपो वा वृत्तान्तः महासेनेन श्रुतः यदुद्दिश्य त्वरया दूतप्रेषणं कृतं भवेत् । पद्मावत्याः सह पुनः प्रतीहारी प्रविशति अत्र भर्त्ता विराजते अतो श्रीमत्या राजकुमार्या तत्र गन्तव्यमिति प्रतीहारी पद्मावतीं प्रत्याह—एत्वेतु इति—गमने त्वराद्योतनार्थं द्वित्वं भर्त्तुः समीपं प्राप्ता पद्मावती भर्त्तुर्विजया-भिनन्दनं करोति—जयत्विति—दूतोपस्थितिवार्त्तामुद्दिस्य राजा पद्मावतीं पृच्छति—पद्मावतीति । पूर्वोक्तं प्रियस्य वचनमनुनिशम्य वासवदत्ताबन्धु-

---

राजा—क्या महासेन ने मेरा विवाह करना एवं राज्य की पुनः प्राप्ति की बात इतनी शीघ्रता से जान लीं ।

(तदनन्तर पद्मावती और प्रतीहारी दोनों का प्रवेश)

प्रतीहारी—राजकुमारी जी ! पधारें पधारें ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—राजकुमारी ! क्या तुमने सुना कि महासेन के पास से रैभ्य गोत्रीय कञ्चुकी एवं माननीय महारानी अङ्गारवती के द्वारा भेजी गई वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाय द्वार पर उपस्थित हैं ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे जादिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं। [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एवं जणं पेक्खिस्सदि ? [आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यसि ?]

राजा—कोऽत्र दोषः ?

जनेषु स्वीयत्वाभिमानं वहन्ती पद्मावती उत्तरयति—आर्यपुत्रेति प्रियम् = अभीष्टम् । ज्ञातिकुलस्य = सम्बन्धिबन्धुजनस्य । अत्र मे इति पदं मध्यमणिन्यायेन प्रियं ज्ञातिकुलस्येत्युभयत्रान्वयि । तेन मे प्रियम् । मे ज्ञातिकुलस्येत्यर्थो करणीयः । पद्मावत्युक्तं प्रशंसन्नाह राजा—अनुरूपमिति । अनुरूपं = योग्यम् स्वकुलसदृशमिति भावः । अभिहितम् = उक्तम् । आस्यताम् = उपविश्यताम् । निःशङ्कमत्र भवत्या उपवेष्टव्यमित्यर्थः । तदानीं सहोपवेशनमनुचितं मन्यमाना पद्मावती कथयति—आर्यपुत्रेति एवं जनं समुपागतं = वासवदत्तायाः स्वजनम् । स्वामिन् ! नूतनपरिणीतया मया सार्धमुपविश्य किं भवता वासवदत्तायाः स्वजनः साक्षात्करिष्यते अनुचितमेतन्मन्येऽहमिति भावः । तत्र सहोपवेशनं निषेधन्तीं पद्मावतीं तत्कारणं जिज्ञासमानो राजा ब्रवीति—कोऽत्रः दोष इति । दोष = अनौचित्यम् । तदेवा-

---

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मुझे अपने वंश के बन्धु बान्धवों का समाचार सुनना प्रिय लगता है ।

राजा—तुमने यह उचित कहा कि वासवदत्ता के बन्धुजन भी मेरे स्वजन ही है । अच्छा पद्मावती बैठो, तुम क्यों नहीं बैठ रही हो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! क्या मेरे साथ बैठ कर आप उन लोगों से बातचीत करेंगे ?

राजा—इसमें क्या दोष है ?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि। [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति ।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीतिबहुदोषमुत्पादयति । तस्मादास्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविश्य) अय्यउत्त ! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति अविग्गा विअ संवुत्ता । [यदार्य-

---

नौचित्यं दर्शयति पद्मावती--आर्यपुत्रस्येति । अपरः परिग्रहः = द्वितीया पत्नी । उदासीनम् = अनभीष्टम् । स्वामिन् भवता सहोपविष्टायाः भवदीय-द्वितीयपत्नीभूतायाः मे कदाचिद्दर्शनं नाभिरोचेत वासवदत्तास्वजनायेति भावः सहोपवेशनं समर्थयन् पद्मावत्याः शङ्कां निराकुरुते राजा--कलत्रेति । कलत्र-दर्शनार्हम् = भार्यादर्शयोग्यम् । परिहरति = निवारयति । यस्मै सम्बन्धिजनाय भार्या दर्शनीया तस्मै तां वत्सराजो न दर्शयति नूनमयं सम्बन्धिजनाद्विमुखः कुरूपा वास्य भार्येस्येवं बहून्दोषानारोपयेदेषः सम्बन्धिजनः । अतोऽत्रैव भवत्या मत्समीपे उपवेष्टव्यमित्यर्थः । पत्युराज्ञां शिरोधार्यां मत्वा तथा कर्त्तुं प्रतिजानाति पद्मावती—यदार्यपुत्रेति--तातः = पिता वासवदत्ताया इति शेषः । वा = अथवा अम्बा = माता, वासवदत्ताजननीत्यर्थः । भणिष्यति = कथयिष्यति । आविग्ना इव = भीता इव । संवृत्ता = सञ्जाता । वासवदत्तापितरौ कञ्चुकीधात्रीभ्यां किं नु सन्देशं प्रेषयिष्यते इति। विचारयन्त्या मे मनः व्याकुलं भूयते इत्यर्थः । एवं विचार्य समुद्विग्नां

पद्मावती—यह आर्यपुत्र की दूसरी पत्नी हैं ऐसा समझ कर उन्हें कदाचित् कुछ उदासीनता जैसी मालूम पड़े ।

राजा—पत्नी दर्शन के योग्य जनों को अपनी पत्नी के दर्शन से रोकना—ऐसी बात दोष (निन्दा) पैदा करती हैं इसलिये बैठो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा । (बैठ कर) आर्यपुत्र ! पिताजी तथा माताजी क्या कहेंगी ऐसा विचार कर मैं भयभीत सी हो रही हूँ ।

पुत्र आज्ञापयति । आर्यपुत्र ! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्ना इव संवृत्ता ।]

राजा—पद्मावति ! एवमेतत् ।

> किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
> कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा ।
> भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
> पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥ ४ ॥

पद्मावतीमवलोक्य भूपतिरात्मनोऽपि तादृशं शङ्काव्याकुलत्वं प्रतिपादयति—पद्मावति एव मेतत्–भवत्या इवाहमपि शङ्काकुलोस्मीति भावः । तदेव स्पष्टयति—किमिति–

अन्वयः—किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम् । मया कन्या अपहृता अपि सा च न रक्षिता । चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्र इव भीतः अस्मि ॥ ४ ॥

व्याख्या—किं वक्ष्यति = किं कथयिष्यति । तातो महासेनः अम्बा अङ्गारवती चेति शेषः । इति = अत्र विषये । मे = मम उदयनस्य । हृदयम् = चित्तम् । परिशङ्कितम् । मया = उदयेन । कन्या = कुमारी एव वासवदत्ता अपहृता = बलात् स्ववशीकृता । सा च = वासवदत्ता च । न रक्षिता अत्र कन्यैव वासवदत्ता परिहृता रक्षिता च नेति अपराधद्वयं सञ्जातम् इति व्यज्यते । चलैः = चञ्चलैः । भाग्यैः = अदृष्टैः । महदवाप्त-गुणोपघातः महत्सु = गुरुजनेषु, अवाप्तः = प्राप्तः कृतः वा गुणानां = सदाचारा-

---

राजा—पद्मावति ! ऐसा तो मुझे भी हो रहा है ।

पिताजी एवं माताजी ने सन्देश में क्या कहेंगे यह सोच कर मेरा भी हृदय शङ्काकुल हो रहा है । मैंने उनकी कन्या का अपहरण किया किन्तु उसकी रक्षा नहीं की । चञ्चल भाग्यों से बड़ों के गुणों का विनाश

पद्मावती- ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले ? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ?]

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

दीनां, उपघात: = विनाशो येन तादृश: = मान्यजनप्राप्तगुणविनाश:। पितु: = तातस्य। जनितरोष: = उत्पादितकोप:। पुत्र इव तनय इव भीतः = सन्त्रस्त: अस्मि = भवामि। वसन्ततिलकावृत्तम्। उपमालङ्कार: ॥ ४ ॥

वासवदत्तां कन्यावस्थायामेवापहृत्य तद्रक्षणेऽक्षमतां प्रदर्शयन्नहं ताभ्यां किं वक्ष्यामि इति मे मनः नितरां पर्याकुलमस्ति। दैवदोषात्सदाचार-विरुद्धमाचरितं मया पूर्वं तदुत्तरं मया सा अग्निदाहान्न रक्षिता। अतो ध्रुवं पितरं कोपयन् पुत्र इवाहं भीतोऽस्मीति भाव:।

'वासवदत्ता संरक्षणेऽक्षमोऽभूवमि'त्येवं निवारयन्ती पद्मावती वक्तीति—न किमिति—प्राप्तकाले = अनुकूले समये। किं वस्तु रक्षितुं = त्रातुं न शक्यम् अपितु शक्यमेव। परमुचितावसराभावात् तन्न रक्षितं शक्यमिति भाव:। यदाकिल समयोऽनुकूलो भवति तदा कस्यापि वस्तुनः संरक्षणं कर्तुं शक्येत। श्रीमता यदः वासवदत्ता रक्षितुं न पारिता तत्र प्रतिकूल: समय:। श्रीमतो न दोष इति पद्मावत्यभिप्राय:। प्रतीहारी पद्मावतीमुपस्थितां सम्भाव्य पुनर्निवेदन-मुचितं मन्यमाना ब्रवीति-एष इति। प्रतीहार्युक्तमाकर्ण्य राजा तयोः प्रवेशानुमतिं ददौ—शीघ्रमिति। यथा बिलम्बो न भवेत्तथैवात्र प्रवेशयितव्य-

---

करने का कलङ्क प्राप्त कर मैं पिता को क्रुद्ध करने वाले पुत्र के समान डर गया हूँ ॥ ४ ॥

पद्मावती—समय प्राप्त होने पर कोई वस्तु नहीं बचायी जा सकती।

प्रतीहारी—ये कञ्चुकीय और धाय द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—उन्हें शीघ्र उपस्थित करो।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता)। [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च।)

काञ्चुकीयः—

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः।

मिति भावः। स्वामिनो निदेशं पालयामीत्याशयेनाह प्रतीहारी—यदिति। कञ्चुकिनं धात्रीं च तत्रोपस्थापयितुं प्रतीहारी प्रस्थितेत्याशयेनाह—निष्क्रान्तेति। तदनन्तरं प्रतीहार्या सह उभयोः राज्ञः सन्निधौ प्रवेशं सूचयति कविः तत इत्यादि तत्रादौ काञ्चुकीयस्य मानसोद्गारं दर्शयति—भो इति।

अन्वयः—इदम् सम्बन्धि राज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः। पुनः नृपसुतानिधन स्मृत्वा महान् विषादः। हे दैव ! परैः अपहृतं राज्यं देव्या कुशलं च स्यात् यदि ? तर्हि भवता किं नाम न कृतम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—इदम् = एतत्। सम्बन्धिराज्यम् = भर्तृजामातृराज्यम्। एत्य = आगत्य। मम = काञ्चुकीयस्य। महान् = अधिकः। हर्षः = प्रमोदः। पुनः = भूयः नृपसुतानिधनम् = राजकुमारीवासवदत्तामरणं। स्मृत्वा = विचिन्त्य महान् विषादः = खेदः। हे दैव = हे विधे! परैः = शत्रुभिः अपहृतम् = स्वायत्तीकृतम् राज्यम्। देव्याः = वासवदत्तायाः कुशल = क्षेमं च स्यात् = भवेद्यदि तर्हि भवता किं नाम क्षेमं न कृतम् = न विहितम्। अत्र राज्यं

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा। (कह कर चली जाती है)

(तदनन्तर काञ्चुकीय, धाय और प्रतीहारी का प्रवेश)

कञ्चुकी—इस सम्बन्धी (उदयन) के राज्य में आने पर अपार हर्ष हो रहा है। किन्तु राजकुमारी वासवदत्ता के मरने की बात याद कर अपार खेद भी हो रहा है। हा दैव! शत्रुओं के द्वारा छीने गये राज्य की

किं नाम देव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥ ५ ॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः।]

कञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः।

धात्री—जेदु भट्टा। [जयतु भर्ता।]

राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

समुपागतस्य मे प्रसीदति नितरामात्मा दैवेन अस्मद्भर्तृ जामात्रा परैरपहृतं राज्यं पुनः प्राप्तम् एवमेव वासवदत्तायाः क्षेमं चापि भवेच्चेत्तद् अस्माकं सर्वमभीष्टं सम्पन्नं कृतं भवेदिति भावः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ५ ॥

राज्ञः समीपमुपगच्छन्ती प्रतीहारी काञ्चुकीयमाह—एष भर्त्तेति। एष इत्यङ्गुल्या निर्देशः। भर्त्ता = स्वामी विराजते सिंहासनमिति शेषः। राज्ञः समीपं गत्वा जयाशंसनम् करोति काञ्चुकीयः—जयतु भर्त्तेति। वत्सराजमुदयनं साक्षात्कुर्वती धात्र्यपि तथैव विजयाशंसनम् करोति—जयत्विति महासेनभूपतेः कुशलं जिज्ञासमानो राजा ब्रवीति—सबहुमानम् = सविशेषादरं। आर्येति सम्बोधनमिदम्।

प्राप्ति के साथ यदि देवी वासवदत्ता भी सकुशल हो तो फिर तुमने क्या नहीं किया होता ॥ ५ ॥

प्रतीहारी—यह महाराज विराज रहे है। उनके पास जाइये।

कञ्चुकी—(सन्निकट जाकर) आर्यपुत्र की जय हो।

धाय—स्वामी विजयी रहें।

राजा—(बहुत आदर के साथ) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ॥ ६ ॥

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुशली महासेनः । इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

अन्वयः—पृथिव्यां राज्यवंशानाम् उदयास्तमयप्रभुः (एवं च) मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा कुशली अपि ? ॥ ६ ॥

व्याख्या—पृथिव्यां = भूलोके । राजवंश्यानाम् = क्षत्रियकुलोत्पन्नानां नृपाणाम् उदयास्तमयः उदयश्च अस्तमयश्च तयोः प्रभुः = उत्कर्षापकर्ष-समर्थः । एवं च मया = उदयनेन सह काङ्क्षितबान्धवः = अभीष्टबन्धुभावः । स = लोकप्रसिद्धः । राजा = उज्जयिनीपतिः महासेनः । कुशली = सक्षेमः । अपीति प्रश्ने किमित्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

प्रसादकोपयोः राज्ञां निग्रहानुग्रहौ कर्त्तुं समर्थो यो हि मत्सम्बन्धं सातिशयं कामयते । अहं वा यदीयं सम्बन्धमभिलषामि अपि नाम तत्र भवतो महामान्यस्य महासेननृपतेः सर्वतः कुशलं वर्त्तते किमिति तन्निवेदयितव्यं भवतेति राज्ञोऽभिप्रायः । स्वस्वामिनो विषये वत्सराजकृतं प्रश्नमाकर्ण्य काञ्चुकीयो ब्रवीति अथेति । अथ किमन्यदिति शेषः । एवमेव वर्त्तते—अस्त्येव श्रीमतो महासेनस्य कुशलम् । पुनः महासेनकृतं वत्सराजकुशलं सूचयति—इहापीति । इहापि = वत्सराज्येऽपि । सर्वगतं = सर्वविषयकं कुशलं अस्मत्स्वामिना पृष्टमिति भावः । प्रियाविरहेण स्वकीयं सन्देशमकथयन्

इस समस्त पृथ्वी में राजकुल में उत्पन्न क्षत्रियों के उत्कर्ष एवं अपकर्ष करने में समर्थ तथा मुझसे सम्बन्ध की इच्छा करने वाले उज्जयिनी पति सकुशल तो है ? ॥ ६ ॥

कञ्चुकी—और क्या ? महासेन सकुशल हैं उन्होंने यहाँ भी सब लोगों का सब प्रकार कुशल पूछा है ।

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः। (उपविशति)

काञ्चुकीयः—दिष्टया परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति। कुतः—

राजा महासेनसन्देशं श्रोतुमिच्छन् कञ्चुकिनं ब्रवीति—आसनादुत्थाय किमाज्ञापयतीति—आसनादुत्थानं महासेनविषये आदरसूचनार्थम्। कस्तावदादेशोऽस्ति श्रीमतो महासेनस्येति भावः। तादृशमाचारं प्रदर्शितवतो राज्ञो विनयभावं प्रशंसन्नाह काञ्चुकीयः सदृशमिति—एतद् = आसनत्यागरूपादरविशेषाविष्करणम्। वैदेहीपुत्रस्य वैदेही उदयनस्य जननी तस्याः पुत्रस्य तनयस्य। एतद्विनयप्रदर्शनम् मातृपरम्परागतम् स्थाने भवन्तमलङ्करोति किन्तु समयेऽस्मिन्नासनासीन एव श्रीमान् महासेनभूपतेः सन्देशं श्रोतुमर्हतीति भावः। महासेनभूपतिना यथादिष्टं तं ब्रवीतु भवानित्याह राजा—यदाज्ञापयतीति। तदनन्तरं कविः काञ्चुकीयवचनेन राज्ञ उपवेशनं दर्शयति उपविशतीति।

अथावसरोचितम् महासेनसन्देशं निवेदयति काञ्चुकीयः दिष्टयेति।

राजा—(आसन से उठ कर) महासेन क्या आज्ञा करते हैं ?

काञ्चुकीय—वैदेही के पुत्र ! आपका यह विनय-प्रदर्शन आपके सदृश ही हैं। आसन पर बैठे-बैठे ही आपको महासेन का सन्देश सुनना चाहिये।

राजा—महासेन की जैसी आज्ञा (आसन पर बैठते हैं)

काञ्चुकीय—यह प्रसन्नता की बात है कि शत्रुओं द्वारा छीना गया राज्य फिर आपके द्वारा लौटा लिया गया। क्योंकि—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ ७ ॥

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनप्रभावः । कुतः—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।

दिष्टया = भाग्येन परैः = शत्रुभिः । अपहृतं = स्वायत्तीकृतम् । प्रत्यानीतम् = प्रत्यावर्तितम् । कुत इति—कुतः = यतः ।

अन्वयः—ये कातरा अपि अशक्ताः तेषु उत्साहो न जायते । हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते ॥ ७ ॥

व्याख्या—ये = जनाः । कातराः = भीरवः । अपि वा = अथवा । अशक्ताः = असमर्थाः, तेषु = तादृशेषु कातरेषु अशक्तेषु च । उत्साहः = अध्यवसायः । न जायते = नोपपद्यते । हि = यत । प्रायेण = बहुधा । नरेन्द्रश्रीः = राजलक्ष्मीः । सोत्साहैः = उत्साहसम्पन्नैर्जनैः एव भुज्यते = वशमानीयते । अलसानामनुद्यमिनां च राज्यश्रीः सर्वथा दुर्लभे भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

श्रीमतो महासेनस्य सन्देशमतं निशम्य—श्रीमन्महासेनप्रभावेणैव सर्वमिदं सम्पन्नं मम का शक्तिरित्याह राजा—आर्येति । आर्य इति सम्बोधनपदं काञ्चुकीयं प्रति आदरं द्योतयति । सर्वमेतद् = विजयश्रियो लाभः परापहृतराज्यस्य पुनः सम्प्राप्तिश्च । प्रभावः = प्रतापः ।

अन्वयः—पूर्वं तावत् अहम् अवजितः । सुतैः सह लालितः । मया

जो अधीर एवं असमर्थ हैं उनमें उत्साह नहीं होता । प्रायः उत्साही पुरुष ही राज्यश्री का उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥

राजा—यह सब महासेन का प्रभाव है । क्योंकि—

सर्वप्रथम मैं उनके द्वारा जीत लिया गया । फिर भी उन्होंने अपने

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता

ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र किं कारणम् ॥८॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः। देव्याः सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति।

कन्या दृढम् अपहृता। भूयो न रक्षिता च। तस्या निधनम् अपि श्रुत्वा मयि तथा एव स्वता। ननु उचितान् वत्सान् प्राप्तुं अत्र नृपः कारणं हि ॥ ८ ॥

व्याख्या—पूर्वम् = प्रथमम्। अहम् = उदयनः तावद् अवजितः = तेन पराजितः तथापि सुतैः = आत्मपुत्रैः सह = समम्। लालितः = वत्स इव पालितः। मया उदयनेन, कन्या = राजकुमारी (अपरिणीता वासवदत्ता) दृढम्=बलात्। अपहृता =चौर्येण स्वायत्तीकृता। भूयः = पुनः। न रक्षिता = न गोपिता। हन्त! तस्याः=वासवदत्तायाः निधनम्=मरणं संजातम्। तथापि। मयि= उदयनविषये तथा एव=तादृश्येव स्वता=आत्मीयता महासेनेन स्थापिता। ननु= आमन्त्रणे (हे आर्य) उचितान् स्वकीयान्। वत्सान्=वत्सदेशान्। प्राप्तुम्= पुनरासादितुम्। अत्र = विषये वत्सराज्याधिपत्यस्थाने। नृपः = महासेनः। कारणम् = हेतुः। हि = निश्चयेन तस्यैव पराक्रमप्रभावेणेदानीं ममायमभ्युदय इति भावः ॥ ८ ॥

राज्ञो वचनं श्रुत्वा काञ्चुकीय आह एष इति। एषः = पूर्वोक्ता।

लड़कों के साथ पाला पोसा। उनकी कन्या को मैं भगा कर बल पूर्वक ले आया। फिर भी उस कन्या की रक्षा न कर सका। अब कन्या की मृत्यु का समाचार पाकर भी उनका स्नेह मेरे ऊपर पूर्ववत् बना हुआ है। निश्चय ही मेरे शासन के योग्य वत्सराज्य की पुनः प्राप्ति में वे महाराज ही कारण हैं ॥ ८ ॥

काञ्चुकीय—यही महासेन का सन्देश है। अब महारानी का सन्देश आर्या वसुन्धरा कहेगी।

राजा—हा ! अम्ब !

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ॥ ९ ॥

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि । [अरोगा भट्टिनी भर्त्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

महासेनस्य सन्देशो मया निवेदितः । इदानीं महाराज्ञयाङ्गारवत्या सन्देशस्तावन्मान्यया वासवदत्ताधात्र्या निवेदयिष्यते इति भावः । श्वश्रूसन्देशात्पूर्वं राजा तां मातृपदेन सम्बोध्य तदीयं कुशलं जिज्ञासुराह—हा अम्बेति ।

अन्वयः—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्त्ता माता कुशलिनी ननु ॥ ९ ॥

व्याख्या—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा षोडशसु अन्तःपुरेषु ज्येष्ठा = श्रेष्ठा षोडशान्तःपुरस्थ राज्ञी । पुण्या = प्रातः स्मरणीया । नगरदेवता = नगराधिष्ठात्री देवी । एवं च मम जामातुरुदयनस्य । प्रवासदुखार्त्ता = विदेशनिवासेनशोकाकुला माता = जननी । कुशलिनी ननु = अनामया वीतशोका वर्तते किमु ? ॥ ९ ॥

पूजनीया राजमहिषी या लोकैः नगरदेवतेव मन्यते या च मद्वियोगेन दुःखिनी वर्त्तते सा मातृकल्पा मम श्वश्रूरङ्गारवती कच्चित् कुशलिनी इति राज्ञोऽभिप्रायः । अनुष्टुब्वृत्तम् ।

तदनन्तरं धात्री स्वामिन्याः कुशलं वत्सराजमुद्दिश्य तत्कृतं कुशलप्रश्नं

राजा—हाय् मातः ।

सोलह पटरानियों में प्रधान महिषी, सर्वथा पवित्र, नगर के देवता तथा मेरे प्रवास दुःख से दुःखी वे माता जी कुशलपूर्वक तो है ? ॥ ९ ॥

धात्री—सकुशल तथा नीरोग रह कर सपरिवार आपका कुशल मङ्गल पूछती हैं ।

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुसलम् ।

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं । [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः । उपरताऽप्यनुपरता 'महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

च निवेदयति–अरोगेति । अरोगा = आरोग्यसम्पन्ना । स्वयमरोगास्मदीया स्वामिनी श्रीमतः सपरिवारस्य कुशलं जिज्ञासते इत्यर्थः । राजा सशोकं ब्रवीति–अम्बेति । ईदृशं कुशलं वर्त्तते यन्मया वासवदत्ता वियोगेनानुभूयते इत्यर्थः । एवं सर्वकुशलमेव ममेति भावः । एवं पूर्वोक्तेन वचसा राज्ञः शोकाकुलत्वमाकलयन्ती राजानं समाश्वासयन्ती च धात्री वदति—मेदानीमिति–अर्हतीति शेषः । अतिमात्रम् = सातिशयम् अनुकम्प्यमाना = अनुगृह्यमाणा ।

स्वकीयामवस्थां संस्मृत्य शोकं कर्त्तुं नार्हति भवानिति भावः । काञ्चुकीयोऽपि राज्ञः शोके समुचितं समाश्वासवचनं प्रस्तौति–धारयत्विति । धारयतु = निगृह्णातु शोकावेगमिति शेषः । उपरता = मृतापि अनुपरता = जीविता श्रीमती वासवदत्ताऽदर्शनं गतापि श्रीमता एवं स्मरणविषयं नीयमाना ध्रुवं जीवत्येवेति तदर्थः । अतः विषादो न विधेय इत्याशयेनाह–अथवेति ।

राजा —सबका कुशल पूछती हैं माँ यहाँ तो ऐसा ही कुशल है ।

धाई—महाराज ! अब आप अधिक शोक न करें ।

काञ्चुकीय—श्रीमान् आपने शोकावेग को रोकें । श्रीमान् के द्वारा इस प्रकार स्मरण की जाने वाली वासवदत्ता मरने पर भी जीवित है । मैं वासवदत्ता की रक्षा नहीं कर सका यह बात भी आपको नहीं सोचना चाहिये । अथवा—

क: कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

राजा—आर्य ! मा मैवम्,

अन्वय:—मृत्युकाले क: कं रक्षितुं शक्त: । रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति । एवं लोको वनानां तुल्यधर्मः । काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

व्याख्या—मृत्युकाले = मरणावस्थायाम् । क: = जन: । कं = जनम् । रक्षितुं=त्रातुम् शक्त: = समर्थो भवति । रज्जुच्छेदे = प्रग्रहत्रुटिते । घटं=कलशं के = जना धारयन्ति = गृहीतुं समर्था: । मरणोपस्थितौ केऽपि जनाः कमपिजीवितुं न प्रभवन्ति यथा रज्जु भङ्गवेलायां घटं कूपे केऽपि न धारयन्तीत्यर्थः । लोक: = जना: वनानाम् = वृक्षाणाम् । तुल्यधर्मः = समानस्वभावः । काले काले = समये समये । छिद्यते = भिद्यते । रुह्यते = वर्धते च । समये समये वृक्षाणामुच्छेदे जाते यथा ते पुनः पुनः जायन्ते तथैव कालवशतो जना मरणं सम्प्राप्य अपि प्रारब्धवशतोजन्म गृह्णन्तीति भावः । शालिनी छन्द: ॥ १० ॥

राजा—एवम् = इत्थम् । मा मा वादीरिति । नैवेदं वक्तव्यं भवता

मृत्यु का समय आ जाने पर कौन किसे बचा सकता है । रस्सी के टूट जाने पर भला कौन घड़े को पकड़ सकता है । यह मनुष्य भी इसी प्रकार वृक्ष के समानधर्मा है । जैसे वृक्ष समय से काटे जाते हैं फिर उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी समय समय पर मरते हैं फिर उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

राजा—आर्य ! ऐसा मत कहिये मत कहिये ।

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥ ११ ॥

धात्री—आह भट्टिणी—उदरदा वासवदत्ता। मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति। एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो। अणग्गिसक्खिअं वीणा ववदेसेण दिण्णा। अत्तणो चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो।

यत् 'वासवदत्तानुचिन्तनम् न कर्त्तव्यमि'ति। सा तु जन्मान्तरेषु अपि स्मृति-पथादपनेतुं न शक्या यतो हि मम प्राणप्रियेति भावः।

अन्वयः—महासेनस्य दुहिता मे शिष्या प्रिया देवी च। सा मया देहान्तरेष्वपि कथं स्मर्त्तुं शक्या न ॥ ११ ॥

व्याख्या—महासेनस्य = प्रद्योतस्य। दुहिता = पुत्री। मे = मम। प्रिया = इष्टा। शिष्या = छात्रा। वीणावादनशिक्षणादिति भावः। देवी = पट्टमहिषी च। सा वासवदत्ता मया = पत्या उदयनेन। देहान्तरेषु = शरीरान्तरेषु। कथं केन प्रकारेण स्मर्त्तुम् = चिन्तितुम्। शक्या न। न इत्यत्र काकुः अन्यजन्मस्वपि सा अवश्यमेव स्मर्तव्या। उक्तं च—पूर्वजन्मनि या विद्या ह्यन्यजन्मनि यद्धनं। अन्यजन्मनि या नारी ह्यग्रे धावति धावति ॥११॥

तमेतमुपस्थितं राज्ञः प्रियतमातीतविषयानुचिन्तनप्रसङ्गमाक्षिप्य धात्री धीमत्या महाराज्ञया अवशिष्टं सन्देशं वक्तुमारभते—आहेति। भट्टिनी

वह महासेन की पुत्री मेरी प्रिय शिष्या एवं प्रिय रानी थीं। फिर मैं जन्म जन्मान्तर में भी उनका स्मरण कैसे न करूँ। अर्थात् इस शरीर से तो क्या? जन्मान्तर में भी मैं उन्हें नहीं भूल सकता ॥ ११ ॥

धाई—महारानी ने कहा है कि वासवदत्ता तो मर गई। मेरे अथवा महासेन के लिये जैसे गोपालक और पालक दोनों पुत्र प्रिय हैं वैसे ही तुम भी हो। और पहले से जामाता मान लिये गये हो। जामाता बनाने

अहअ अह्मेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वृत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा। एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि। [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता। मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति। एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।]

=स्वामिनी। गोपालकपालकौ=तन्नामधेयौ पुत्रौ। तादृश एव। प्रथमम्=पूर्वम्। अभिप्रेतः=अभीष्टः। जामाता=दुहितुः पतिः। एतन्निमित्तम्=जामातृकरणार्थम्। उज्जयिनीं=विशालापुरीम्। आनीतः=प्रापितः। अनग्निसाक्षिकम्=अग्निसाक्ष्यरहितं। वीणाव्यपदेशेन=वल्लकीवादनशिक्षणव्याजेन। दत्ता=समर्पिता। आत्मनः=स्वस्य। चपलतया=चाञ्चल्येन। अनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव=अनिष्पन्नपरिणयोत्सव एव। चित्रफलकायाम्=आलेख्यपीठिकायाम्। प्रतिकृतिं=आकृतिं। निर्वृत्तः=निष्पन्नः। एतां=चित्रफलकाम्। निर्वृतः=सुखी।

वासवदत्ताविरहदग्धेन भवता खलु चित्रदर्शनेनैव कथञ्चिच्छान्तिं नेयोऽन्तरात्मा अयमेवोपायोऽस्ति मनसस्तेऽनुरञ्जनस्येति भावः।

के लिए तुम उज्जयिनी ले आये गये। इतना ही नहीं अग्नि को साक्षी किये बिना हीं वीणा सिखाने के बहाने वह तुम्हारे अधीन भी कर दी गई। किन्तु अपनी चञ्चलता के कारण विवाह मङ्गल हुये बिना उसे लेकर तुम चले गये। तब हम दोनों ने तुम्हारी और वासवदत्ता की प्रतिकृति चित्र में खिचवा कर विवाह-संस्कार सम्पन्न किया। वही चित्रफलक आपके पास भेजा जा रहा हैं। उसे देख कर अपना मनोरञ्जन कीजिये।

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या ।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥ १२ ॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि । [आर्यपुत्र ! चित्रगतं गुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

श्रीमत्या अङ्गारवत्याः सन्देशभाषितं श्रुत्वा राजा सानन्दं प्रशंसति—अहो इति। अहो इत्यानन्दसूचकमव्ययपदम् । अतिस्निग्धम् = स्नेहातिशयसम्वन्वितम् । अनुरूपम् = स्वकीययोग्यम् ।

अन्वयः—एतद् वाक्यम् राज्यलाभशताद् अपि प्रियतरम् । यद् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहो न विस्मृतः ॥ १२ ॥

व्याख्या—एतत् = इदम् । वाक्यम् = वचनम् । राज्यलाभशतात् अपि = अनेकराज्यप्राप्तेरपि । प्रियतरम् = अतिशयप्रीतियुक्तम् ! यत् अपराद्धेषु अस्मासु = कन्यापहरणादिगुरुतरापराधभाजनेऽपि मयि जनन्या अङ्गारवत्येति शेषः । स्नेहः = वात्सल्यम् । न विस्मृतः = विस्मृतिं न प्रापितः ॥ १२ ॥

अयं भावः विपुलराज्यप्राप्तिरपि मां तथा प्रीणयितुं न प्रभवति यथेदं श्वश्रूवचनं प्रीणयति । यद्यप्यहं तस्याः कन्यापहाराद्यक्षमापराद्धं कृतवान् तथापि तदपराधमिमं विस्मृत्योदारचित्तया तया मयि वात्सल्यमेव दर्शितमिति

राजा—पूजनीय महारानी ने अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण और समुचित वचन कहा है । उनके ये वाक्य सैकड़ों राज्य प्राप्ति से भी अधिक सुखकारी हैं जों कि उन्होंने अपराध करने वाले मेरे ऊपर भी अपना वात्सल्य नहीं भुलाया ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) का दर्शन कर प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। (चित्रफलकं दर्शयति।)
[पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं! अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए। (प्रकाशम्) अय्यउत्त! सदिसी खु इअं अय्याए? [हम्! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः। आर्यपुत्र! सदृशो खल्वियमार्यायाः?]

चित्रविन्यस्तां वासवदत्तां द्रष्टुं पद्मावती तत्रोचितं स्वीयमादर प्रकटयति आर्यपुत्रेति–चित्रगतम् = आलेख्ये स्थितम्। गुरुजनम् = मान्यजनम् अभिवादयितुं = अभिवन्दितुं। स्वामिन् चित्रस्थमिमं जनं दृष्ट्वा प्रणामं कर्त्तु मीहते मे मनः। तच्चित्रं पद्मावतीं दर्शयितुं धात्री ससम्भ्रमं ब्रवीति—पश्यतु पश्यत्विति–त्वरायां द्विरुक्तिः। भर्तृदारिका = राजकुमारी। चित्रेऽभिलिखितां वासवदत्तां स्वान्तिकन्यस्तां विलोक्य पद्मावती आत्मगतं सशङ्कमानसं ब्रवीति–हमिति। एषा तु पूर्वं केनचिद्ब्राह्मणेन स्थापिताया अवन्तिकानाम्न्याः सर्वतः संवादं भजत्याकारेण। यथार्थं वासवदत्तास्वरूपं प्रियः पतिरेव परिचिनोतीति राजानमुद्दिश्य प्रकाशं काकूक्तिमुपन्यस्यति–आर्यपुत्रेति। इतिकृतावस्थां वासवदत्तासादृश्यमस्ति न वा इति पद्मावत्याः प्रश्ने राजा उत्तरयति–नेति। अत्र तस्या सादृश्यं न घटते अपितु साक्षात्सैवेति कल्पना ममेति राज्ञोऽभिप्रायः। तदनन्तर विषादभावोदयं राज्ञः दर्शयति कविः–भो इति। अहह महत्कष्टम्। कथमिदानीं सोढव्यमित्याहाग्रिमेण पद्येन।

धाई—राजकुमारी जी! देखिये! देखिये। (इतना कह कर चित्रपट दिखलाती है)

पद्मावती—(चित्र देख कर अपने मन में) यह चित्र तो आर्या अवन्तिका के स्वरूप से अधिक मिल-जुल रहा है। (पुनः प्रकट) आर्यपुत्र! यह आर्या वासवदत्ता आर्या अवन्तिका के सदृश (रूप वाली) है।

राजा—न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ।
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिर्दि पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृर्ति दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति ।]

अन्वयः—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् । इदं मुखमाधुर्यं अग्निना कथं दूषितम् ॥ १३ ॥

व्याख्या —अस्य = चित्रलिखितस्य । स्निग्धस्य = प्रीत्यर्हस्य । वर्णस्य—रूपस्य । दारुणा = कठोरा । विपत्तिः = अग्निविनाशरूपा कथं केन प्रकारेण । आगतेति शेषः । इदं = पुरो दृश्यमानम् । मुखमाधुर्यम् = आननसौन्दर्यम् । अग्निना = अनलेन । कथं = केन प्रकारेण । दूषितम् = भस्मसात्कृत्वा विकृतम् ॥ १३ ॥

लावण्यपूर्णस्य वासवदत्तारूपस्य कथमभूद्विनाशः । किञ्चाकर्षकं सौन्दर्यपूर्णं चास्याः मुखम् कथमभूदग्निना दाहविषयीभूतमिति तात्पर्यम् । वासवदत्ताप्रतिकृर्ति विदित्वाऽपि याथार्थ्यं जिज्ञासमाना पद्मावती वदति—आर्यपुत्रस्येति । प्रतिकृतावत्र वासवदत्तायाः सादृश्यं विद्यते न वेति निर्णेतुमार्यपुत्रस्य प्रतिकृर्ति दिदृक्षामि । तदनन्तरं सादृश्यमसादृश्यं वा किमपि

राजा—समान नहीं हो सकता । यही वासवदत्ता है मैं तो ऐसा मानता हूँ । हाय ! बड़ा कष्ट है । ऐसे मनोहर रूप पर ऐसी भयानक विपत्ति कहाँ से आ पड़ी और मुख के सौन्दर्य को अग्नि ने दूषित कैसे कर दिया ॥ १३ ॥

पद्मावती—आर्यपुत्र का चित्र देखकर यह आर्या (वासवदत्ता) के समान हैं कि नहीं इसका निर्णय करूँगी ।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। [पश्यतु पश्यतु भर्तृ-दारिका।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अय्य उत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इयं अय्याए सदिसीत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीय-मार्यायाः सदृशीति।]

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि। किमिदम् ?

यथोचितं निर्धारयामीति पद्मावत्यभिप्रायः। तच्छ्रुत्वा धात्री वदति-पश्यतु इति। राजकुमार्या अवश्यं द्रष्टव्यं तच्चित्रम्। परीक्षणीयं याथार्थ्येन तत्स्वरूपमित्यर्थः। पद्मावती तत्र सादृश्यमुपलभमानाऽभिधत्ते-आर्यपुत्रस्येति। चित्रमिदं तत्र भवतः पत्युराकारेण साकल्येन संवदति तेन निर्णयामि यदिदमपि चित्रं वासवदत्ताकारसंवादि स्यादिति भावः। राजा तु चित्रदर्शनादुद्भूतां हर्षोद्वेगवशीकृतां पद्मावत्यवस्थां संलक्ष्य तस्याः पुरस्तात्प्रश्नं समुपस्थापयति--देवीति। प्रहृष्टा = प्रसन्ना उद्विग्ना = व्याकुला चेति ताम्। प्रिये ! चित्रदर्शनादारभ्य तत्र भवती। प्रसन्ना व्याकुला च दृश्यते अत्र किं कारणमिति। एतद्विषयकं रहस्यं प्रकाशतां नयन्ती पद्मावती

धाई—राजकुमारी जी ! देखिये देखिये।

पद्मावती—(चित्र देख कर) आर्यपुत्र के चित्र की आकृति का मिलान करने से अर्थात् यदि यह चित्र आप से मिलता जुलता है तो यह वासवदत्ता का भी चित्र आर्या अवन्तिका के समान ही है। ऐसा मैं भी समझती हूं।

राजा—महारानी ! चित्र देखने के बाद से मैं तुम्हें प्रसन्न और उद्विग्न सा देख रहा हूं।

पद्मावती—अय्यउत्त ! इसाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि । [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम् । [आम्]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि ब्रह्मणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खितो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदसणं परिहरदि । ता अय्यां मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो । [आर्यपुत्र !

प्राह–आर्यपुत्रेति । नाथ ! एतस्याश्चित्रेण समानाकारा काचित्कान्ता मदन्तिक एव साम्प्रतं निवसन्ती वर्त्तते इति भावः । तच्छ्रुत्वा राजा सकुतूहलमाचष्टे किमिति । किं वासवदत्तासमानाकारं वहन्तीं विद्यते काचिदत्र । तदनन्तरं पद्मावती ब्रवीति–आमिति । सत्यमेतदिति भावः । वासवदत्तोपलब्धि-सम्भावनया सकुतूहलं राजा वदति तेन हीति । एवं चेद्विद्यते तदसौ सत्वरं मत्समीपमानेतव्येति भावः । राज्ञः सन्निधौ तदुपस्थितिप्रकारं प्रदर्शयन्ती पद्मावती वदति–आर्यपुत्रेति । कन्याभावे = अनूढावस्थायाम् । भगिनिका = अनुकम्पार्हा स्वसा । भगिनिका अनुकम्पनीया भगिनी तत् = तस्मात्कारणात् । जानातु = निश्चयं करोतु । अयं भावः–स्वामिन् ! नासीत्पाणि-ग्रहणं मम यदा तदा किल कश्चिद् ब्राह्मणः समागत्य 'दयापात्रं ममेयं भगिनी

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस (वासवदत्ता के) चित्र के समान आकृति वाली एक स्त्री यहाँ रहती है ।

राजा—क्या वासवदत्ता के समान ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो उसे शीघ्र ले आओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मेरी कन्यावस्था में किसी ब्राह्मण ने 'यह मेरी

मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः। प्रोषित-भर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति। तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्य-पुत्रः।]

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥ १४ ॥

अस्याः पतिः परदेशं गतो वर्त्तते इत्युक्त्वा न्यासरूपेण मत्सविधे स्थापितवान् इयं चापि परपुरुषो मया न द्रष्टव्य इति व्रतं धत्ते। अतस्तामात्मना सार्धमहमानये साहचार्येण समागतां तां विलोक्य निश्चयं कर्त्तुमर्हति भवा-निदानीमिति पद्मावत्यभिप्रायः। ब्राह्मणभगिनीत्वात्सा वासवदत्ता न भवितु-मर्हतीति मन्यमानो राजा वदति—यदीति।

अन्वयः—विप्रस्य भगिनी यदि व्यक्तम् अन्या भविष्यति। परस्परगता तुल्यरूपता लोके दृश्यते ॥ १४ ॥

व्याख्या—विप्रस्य भगिनी = ब्राह्मणस्य कस्यचित्स्वसा वर्त्तते। यदि = चेत्। व्यक्तम् = स्पष्टम् सा इति शेषः। अन्या = वासवदत्ताया इतरा काचित्। भविष्यति = स्यादिति। लोके = जगति। परस्परगता = पारस्परिकी एकस्य व्यक्तेरन्यया सह इति यावत् रूपतुल्यता = रूपसादृश्यं दृश्यते = प्रत्यक्षमनुभूयते इत्यर्थः ॥ १४ ॥

बहन है' ऐसा कह कर किसी स्त्री को न्यास रूप में मेरे पास रखा था। और यह कहा था कि यह प्रोषित भर्त्तृका (जिसका पति परदेश गया हो) है इस कारण पर पुरुष का दर्शन नहीं करती। इस कारण उस आर्या को मेरे साथ आने पर आप देख कर पहचानिये।

राजा—'यदि वह' ब्राह्मण की भगिनी है तो निश्चय ही कोई दूसरी होगी। संसार में प्रायः परस्पर रूप की समानता भी देखी जाती है ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो उज्जइणीओ बह्मणो भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदु पडिहारं उवट्ठिदो । [जयतु भर्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः ।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

पद्मावती होदव्वं । [भवितव्यम् ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

इदानीं कविः प्रसङ्गानुसारं यौगन्धरायणोपस्थितिं सूचयितुं प्रतीहारीप्रवेशं दर्शयति । प्रविश्येति । तद्वाचं प्रकाशयन्ती प्रतीहार्याह–जयत्विति 'विजयोऽस्तु स्वामिनः । एषः उज्जयिनीयः = उज्जयिनीनिवासी । ब्राह्मणः प्रतीहारमुपस्थितो द्वारि वर्तते । भट्टिन्या = पद्मावत्या प्रतिग्रहीतुं = पुनरादातुं । उज्जयिनीनिवासी विप्रः येन तत्र भवत्याः सन्निधौ न्यासरूपेण स्वभगिनी स्थापितासीत्पुरा तामादातुं द्वारदेशं समागतो वर्तते इत्यर्थः । पूर्वोक्तमेतस्य ब्राह्मणत्वं द्रढयितुमात्मनः सन्देहं निराकर्त्तुं च राजा पद्मावतीं पृच्छति–पद्मावतीति । प्रिये न्यासनिक्षेप्ता पुरुषो ब्राह्मणजातीयः किमु । पद्मावती उत्तरयति भवितव्यमिति । पद्मावतीवचनात् ब्राह्मणमन्वगच्छन्–सत्वरं सत्कारपुरःसरमुपस्थापयितुमादिशति प्रतीहारीं राजा–शीघ्रमिति

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—स्वामी की जय हो । ये उज्जयिनी के ब्राह्मण महारानी के पास मैंने अपनी बहन को न्यास के रूप से रखा है ऐसा कह कर उसे लेने के लिये द्वार के पास उपस्थित हैं ।

राजा - पद्मावती ! क्या वही ब्राह्मण हैं ।

पद्मावती—होना तो चाहिये ।

राजा—तब तो राजान्तःपुरोचित आचार (अर्घ्य पाद्यादि) से सत्कृत कर उसे लिया आओ ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

राजा—पद्मावति ! त्वमपि तामानय।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायणः—भोः। (आत्मगतम्)

अभ्यन्तरसमुदाचारेण = राजभवनोचितसदाचारेण पाद्यार्घ्यादिसमर्पणरूपेणेति यावत्। राजभवनमानीय गृहागतोचितं सत्कारं प्रदर्श्य विप्रममुं सत्वरमुपस्थापयेति भावः। राजाज्ञामङ्गीकृत्य तथा कर्त्तुं प्रतिजानीते प्रतीहारी—यतीति। तथा कर्त्तुं तस्या, प्रस्थानं सूचयति—निष्क्रान्तेति। इदानीं ज्ञापयद्भर्तुर्न्यासभूतां वासवदत्तां समानेतुं राजा पद्मावतीं कथयति—पद्मावतीति। प्रिये भवत्यापि गन्तव्यम्। न्यासभूतां तां समानेतु श्रीमदाज्ञानुसारं तथा विधीयते इति पद्मावती वदति यदिति। तद्गमनं दर्शयति कविः—निष्क्रान्तेति। तदनन्तरं पुनः प्रतिहार्या सह यौगन्धरायणप्रवेशं दर्शयति—तत इति। राजानमुपगच्छन् स्वीयानि कार्याणि

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा।

(कह कर चला जाता है)

राजा—पद्मावती ! तुम भी उस स्त्री को ले आओ।

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा।

(ऐसा कह कर चली जाती है)

(तदनन्तर यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(मन ही मन) ओह !

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ १५ ॥

कृतपूर्वाणि स्मरणगोचरीकुर्वन् यौगन्धरायणः स्वमनसि वितर्कयति—प्रच्छाद्येति ।

अन्वयः—नृपतेः हितार्थं राजमहिषीं प्रच्छाद्य मया हितम् अवेक्ष्य इदं कामं कृतम् । मम कर्मणि सिद्धे अपि असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितं नाम ॥ १५ ॥

व्याख्या—नृपतेः = राज्ञः उदयनस्य । हितार्थम् = कल्याणाय । राजमहिषीम् = महाराज्ञीं वासवदत्तामिति यावत् । प्रच्छाद्य = संगोप्य । मया = यौगन्धरायणेन हितम् = कल्याणकारकम् । अवेक्ष्य = विचार्य । इदम् = एतत् । कामं = स्वैरं यथा स्यात्तथा कृतं = विहितम् । मम कर्मणि = कार्ये । सिद्धेऽपि = सफले जातेऽपि । असौ पार्थिवः = राजा । किं वक्ष्यति किं कथयिष्यति । इत्थं विचार्य मे = मम । हृदयं = चित्तम् । परिशङ्कितम् = परितः शङ्काकुलम् नाम । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

पद्मावतीसमीपे वासवदत्ताया न्यासरूपेण स्थापनं पद्मावत्या सह राज्ञः परिणयश्चेति कार्यद्वयं मया साधु सम्पादितम् तथापि वासवदत्तो·

पद्मावती के साथ विवाह होने से महाराज का हित होगा ऐसा सोच कर उसे पूरा करने के लिये 'वासवदत्ता आग में जल गई' इस प्रकार का झूठा प्रवाद फैला कर उसे राज्य प्राप्ति का साधन एवं हितकर सोचते हुये मैंने वासवदत्ता को छिपा कर पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रख दिया । फिर पद्मावती के साथ राजा का विवाह कार्य कराया । यह कार्य मैंने अपनी इच्छा से किया । अब इस प्रकार का कार्य सिद्ध होने पर भी ये

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उपसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः। भो ब्राह्मणः! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

परतेत्यलीकवार्त्ताख्यापनपुरःसरमात्मनो भगिनीत्वेन निर्दिश्य सा परहस्ते न्यासीकृता तमेतं विषयमनुचिन्त्य श्रीमान् वत्सराजः कार्यमिदं मदीयमुचितमनुचितं साध्वसाधु वा किमभिधास्यतीति मे दृढा शङ्का वर्त्तते इति भावः ॥ १५ ॥

यौगन्धरायणं प्रवेशयन्प्रतीहारी तं निर्दिशति-एष भर्त्तेति। अयमत्र स्वामी विराजते-सन्निधावुपस्थीयतां। राज्ञः जयाशंसनं प्रस्तौति यौगन्धरायणः जयत्विति। उपसृत्य = उपगम्य। आदरातिशयं द्योतयितुं द्विरुक्तिः। राजा ब्रवीति श्रुतपूर्व इति। पूर्वं श्रुतः श्रुतपूर्वः। स्वरः = ध्वनिविशेषः। स्वसा = भगिनी। निक्षिप्ता = निहिता। त्वर्यताम् = त्वरा क्रियताम्।

राजा यौगन्धरायणकृतं विजयाशंसनमनुनिशम्य बहुशः श्रुतं तदीयं स्वरं परिचितवान् किन्तु तत्प्रयोक्तुः प्रच्छादितरूपमाकलय्य 'सोऽयमित्येवं न प्रत्यभिज्ञातवान्। पुनः न्यासरूपेण स्थापितं विषयं ज्ञातुं प्रकाशं पृच्छति। भो

महाराज उदयन इस विषय में अच्छा या बुरा मुझे क्या कहेंगे ऐसा सोच कर मेरा मन शङ्का से व्याकुल हो रहा हैं।

प्रतीहारी—यही महाराज हैं। आप चले जावें।

यौगन्धरायण—(समीप जाकर) जय हो। आपकी जय हो।

राजा—यह स्वर तो परिचित जैसा प्रतीत होता है। हे ब्राह्मण क्या आपकी बहन पद्मावती के पास न्यास रूप में रखी हुई है ?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका ।

प्रतीहारी- जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती अवन्तिका प्रतीहारी च ।)

पद्मावती—एदु एदु अय्या । पिअं दे णिवेदेमि । [एत्वेत्वार्या । प्रियं ते निवेदयामि ।]

इति । हे विप्र ! किं भवान् स्वकीयां भगिनीं पद्मावत्याः सन्निधौ स्थापितवानिति । राज्ञा पृष्टस्य विषयस्य सत्यतां दर्शयन् यौगन्धरायणो ब्रवीति–अथ किम् किमन्यत् । यथार्थमेवास्तीदम् । अहमेवात्मभगिनीं न्यासरूपेण स्थापितवानित्यर्थः तेन हीति–तेन हि=ततः कारणात् । ब्राह्मणोऽयं न्यासमात्मनो गृहीतुमागतः अत एतस्य भगिनीं त्वरय त्वम् । यथा चेयमतिशीघ्रमत्रोपस्थिता भवेत्तथा विधेहीत्यर्थः । श्रीमदादेशमनुष्ठीयते मयेत्याह प्रतीहारी–यदिति । वासवदत्तया सह राज्ञः समीपमुपयान्ती पद्मावती तद्भ्रातुरुपस्थितेर्वार्तां निवेदयितुमुद्यता ब्रूते–एतु एत्विति । सत्वरमागच्छतु भवती । अभीष्टं वृत्तं किमपि श्रावये । तच्छ्रुत्वा प्रसन्ना त्वं भविष्यसि । अभीष्ट-

---

यौगन्धरायण—और क्या ?

राजा—(प्रतीहारी से) तो इनकी बहन को यहाँ ले आने की जल्दी करो ।

प्रतीहारी—जैसी महाराज की आज्ञा । (चली गई)

(पद्मावती, अवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आर्या ! आवें आवें । आपको प्रियवचन सुनाती हूँ ।

आवन्तिका—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—भादा दे आअदो । [भ्राता ते आगतः ।]

आवन्तिका—दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि । [दिष्टयेदानीमपि स्मरति ।]

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । एसो ण्णासो । [जयत्वार्यपुत्रः । एष न्यासः ।]

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्नचासो निर्यातयितव्यः । इहात्रभवान् रैभ्यः अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः ।

वृत्तान्तश्रवणे स्वकीयं कौतूहलं दर्शयन्त्यवन्तिका ब्रूते—किं किमिति—कीदृशं तत् ? स्पष्टं निरूपयतु भवतीति वासवदत्ताभिप्रायः । पद्मावती प्रियं निवेदयति—समुपस्थितोऽद्य भवदीयो भ्राता येन भवती निक्षिप्ता । अवन्तिका ब्रूते—दिष्टयेति—दिष्टया = हर्षे भाग्येन । ममायं सौभाग्यो यत्साम्प्रतं मामनुस्मरन्नागतोऽयमिति भावः । पद्मावती भर्तुः समीपं गत्वाऽवन्तिकां दर्शयन्ती ब्रवीति—जयत्विति । विजयः स्यादत्र भवतः स्वामिनः । राजा समागताय तस्मै न्यासप्रत्यर्पणार्थं पद्मावतीं प्राह—निर्यातयेति ।

निर्यातय = न्यासं समर्पय । साक्षिमत् = साक्षात् द्रष्टृयुक्तो यथा स्यात्तथा । निर्यातयितव्यः = प्रत्यर्पणीयः । अधिकरणम् = आधारः साक्षीति यावत् ।

अवन्तिका—क्या ! क्या ?

पद्मावती—आपके भाई आये हुये हैं ।

अवन्तिका—भाग्य से इतने दिनों पर याद कर रहे हैं ।

पद्मावती—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो । यही न्यास है ।

राजा—पद्मावती ! न्यास लौटा दो । किन्तु साक्षी के सामने न्यास लौटाना चाहिये । इसलिये यहाँ माननीय रैभ्य और माननीया धात्री प्रत्यक्ष रूप में गवाह होंगे ।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दाणिं अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानी-मार्या ।]

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ? [अम्मो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ?]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

अयि पद्मावति न्यासोऽयं प्रत्यर्पणीय एतस्मै स च साक्षिणं पुरस्कृत्यैवार्प-यितव्यः । अत एतस्मिन् विषये रैभ्यः धात्री चेत्युभौ साक्षिस्थानतां नेतव्यौ । एतावेव साक्षिणौ कृत्वा न्यासप्रत्यर्पणमिदं कार्यमिति भावः । राजवचना-दुभयोः साक्षित्वे निक्षेप्त्रे न्यासं समर्पयन्ती पद्मावती प्राह—आर्येति । अत्र भवता मदन्तिकं न्यासरूपेण समर्पितेयमवन्तिका मया भवने समर्प्यते नीयताम् इति भावः । तस्मिन्नेवावसरे वासवदत्तां दृष्ट्वा इयं वासवदत्तैवेति आकलयन्ती तत्समुपलब्धौ विस्मयं प्रकटयन्ती धात्री ब्रूते—अम्भो इति । अम्भो इत्याश्चर्यसूचकम् । अहो । राजकुमारीयं वासवदत्ता । कथङ्कार-मेतस्या इदानीमत्रोपलब्धिरिति राजा धात्रीवचनं निशम्य तामवन्तिकां निरूप्य साश्चर्यं प्राह—कथमिति । कथम् किम् । महासेनस्य दुहिता = वासवदत्ता ? मत्प्रियेयं साम्प्रतं दृश्यते इति निगद्यतां गृहान्तर्गन्तुमादिशति-देवीति । प्रिये ! त्वया पद्मावत्या सह गृहान्तः प्रवेष्टव्यमिति भावः । गृहान्तः प्रवेशान्निवारयन् यौगन्धरायणः अवन्तिकां प्राह—न खल्विति । निःसंशयमियं

पद्मावती—आर्य ! अब आप आर्या को ले जाइये ।

धाई—(अवन्तिका को देख कर) अरे ! यह तो राजकुमारी वास-वदत्ता हैं ।

राजा—क्या महासेन की पुत्री ! महारानी ! तुम पद्मावती के साथ अन्तःपुर में जाओ ।

यौगन्धरायण—नहीं महाराज ! इन्हें अन्तःपुर में नहीं जाना चाहिये यह मेरी बहन हैं ।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥ १६ ॥

मे स्वसा वर्त्तते । भवता महासेनपुत्रीत्वशङ्कया कथमभ्यन्तरं प्रवेष्टुमाज्ञाप्यते । यौगन्धरायणवचनं निशम्य राजा ब्रवीति-किं भवानिति । भवतासर्वथासत्यमुच्यते । ममैषा प्रेयसी । बलादपहर्त्तुमुद्यतस्य भवतः खलु दुःसाहसमिदमिति भावः । राज्ञो वचनमनुनिशम्य तं सम्बोधयन् यौगन्धरायणः ब्रवीति-भो इति ।

अन्वयः—भारतानां कुले जातः विनीतः ज्ञानवान् शुचिः राजधर्मस्य देशिकः (त्वमसि) तत् बलात् हर्त्तुं न अर्हसि ? (परकीयन्यासमिति शेषः) ॥ १६ ॥

व्याख्या—भारतानां = भरतवंशोत्पन्नानाम् । राज्ञामिति शेषः । कुले = वंशे । जातः उत्पन्नः । विनीतः = विनयगुणयुक्तः । ज्ञानवान् = प्राज्ञः । शुचिः = पवित्रः । एवं च राजधर्मस्य = नृपोचिताचारस्य । देशिकः = उपदेष्टा । तादृशस्त्वमसीति शेषः । तत् = तस्मात्कारणात् । बलात् = बलमाश्रित्य । इमां मे भगिनीम् । हर्त्तुं = ग्रहीतुं । न अर्हसि = न युक्तोऽसि । परिकरालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १६ ॥

राजा—आप यह क्या कह रहे हैं । ये महासेन की पुत्री हैं ।

यौगन्धरायण—राजन् !

आप भरतवंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न, नम्र, ज्ञानी, पवित्र तथा राजधर्म के आचार्य है । इसलिये मेरी बहन का बलपूर्वक इस प्रकार का हरण आपको उचित नहीं ॥ १६ ॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम्। सङ्क्षिप्यतां जवनिका।

यौगन्धरायण—जयतु स्वामी।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो। [जयत्वार्यपुत्रः।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः इयं महासेनपुत्री।

भारतकुलस्य विनयज्ञानशालिनः शुचेः राजधर्माचार्यस्य तव नेदं शोभते यदिदं प्रसह्य परकीयापहारचेष्टितमिति। अर्जुनपुत्रस्याभिमन्योः पञ्चविंशोऽयं पुरुषः इति विष्णुपुराणे प्रतिपादितम्। तेनास्य भारतानां कुले जातः इत्युपपन्नमेव। राजा तदाकृतिसादृश्यपरीक्षणाय पक्षान्तरमुपक्षिपति-भवत्विति। जवनिका = तिरस्करिणी। सा चात्र पुरुषान्तरदर्शनपरिहाराय कृतं मुखावगुण्ठनम्। संक्षिप्यताम् = अपनीयताम्। इदानीं ममैषा पत्नी भवतो स्वसा वेति नैवं निर्णेष्यते। देव्या वासवदत्तायाः स्वरूपे एवं प्रकारेण प्रकाशतां गते तेनैव सममेतद्विषयकरहस्योद्घाटनं समयोचितं मन्वानः स्वामिनो जयाशंसनं करोति यौगन्धरायणः—जयत्विति। सम्प्रति राजानमुद्दिश्य 'स्वामी'ति पदं प्रयुज्य यौगन्धरायणेन स्वीयः सेवकभावो व्यक्तीकृत। अनेन सहैव स्वीयपरिव्राजकवेषापनयनमपि ध्वनितम्। प्रकटितस्वरूपा वासवदत्ताऽपि स्वभर्तुर्जयाशंसनं कुर्वती ब्रूते—जयत्विति। एवं विजयाशंसनेन स्वात्मानं प्रकाशयन्तौ वासवदत्तायौगन्धरायणाविति प्रत्यभिजानन् सविस्मयं सहर्षं च राजा आह—अये इति। अहो अयं मे महामन्त्री यौगन्धरायणः इयं च महासेनराजकुमारी वासवदत्ता किमत्र तत्त्वम्?

राजा—अच्छा रूप का सादृश्य देखें। इनका घूंघट हटाओ।

यौगन्धरायण—स्वामी की जय हो।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—अरे ये यौगन्धरायण ! और यह महासेन-पुत्री !

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्ट्या वञ्चितस्तदा ॥ १७ ॥

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तद् क्षन्तुमर्हति स्वामी । (इति पादयोः पतति ।)

अन्वयः—इदं किं सत्यम् । स्वप्नो नु ? सा मया भूयो दृश्यते । अहम् तदा अपि एवमेव दृष्टया अनया वञ्चितः ॥ १७ ॥

व्याख्या—इदम् = एतद् । निकटस्थं वासवदत्तादर्शनमिति शेषः । सत्यम् = यथार्थं । स्वप्नः = स्वप्नदर्शनं । नु वितर्के । सा = समुद्रगृहे दृष्टा या वासवदत्ता । सा मया = उदयनेन । भूयः = पुनरपि । दृश्यते = प्रत्यक्षमवलोक्यते । अहम् = उदयनः । तदा = तस्मिन् समुद्रगृहे अपि एवमेव = इत्थमेव । दृष्टया = अवलोकितया अनया = वासवदत्तया वञ्चितः = स्वरूपान्तर्धानेन प्रतारितः । अतो मया किञ्चिन्निश्चेतुं न शक्यते इति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

साम्प्रतिकं वासवदत्तादर्शनं तात्त्विकमतात्त्विकं वेति मया निश्चेतुं न शक्यते इति भावः । राज्ञः आज्ञां विनैव राज्ञीं स्थानान्तरं नीतवतः स्वस्यापराधस्य क्षमापनं राजानं याचते यौगन्धरायणः—स्वामिन्निति । श्रीमन्तमनावेद्य भवतः प्रिया वासवदत्तात्र निक्षिप्ता तन्नूनमेषोऽपराधः मम सेवकस्य । तदर्थं क्षमां याचे इति उक्त्वा स्वामिचरणयोः पतति यौगन्धरायण इत्येवं

यह सत्य है या स्वप्न है जो उन वासवदत्ता को फिर से देख रहा हूँ । यह उस समय भी मुझ से देखी गई थी, इससे मैं उस समय भी इसी तरह ठगा गया था ।

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! मैंने महारानी को छिपा कर अवश्य अपराध किया । अतः स्वामी क्षमा करें । (ऐसा कह कर पैरों पर गिर जाता है)

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥ १८ ॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

सूचयति इति। पादयोरिति—पादयोः पतितं तं स्नेहादुत्थापयन् प्रशंसन्नाह राजा। यौगन्धरायण इति। ननु इति वाक्यालङ्कारे। अत्र नामग्रहणं तद्गुणविशेषदर्शनार्थम् स एवं यौगन्धरायणो भवान्—यः सर्वदा स्वामिनः हितमेव स्वार्थं मन्यते। तत्कथमात्मा सङ्कोचमानीयते। न चैषोऽपराधः किंतु मदारावनमेवेति राज्ञस्तात्पर्यम् पुन. तं प्रशंसत्यभिधया वृत्त्या।

अन्वयः—मज्जमानाः वयम् मिथ्योन्मादैः युद्धैः शास्त्रदृष्टैः मन्त्रितैः च भवद्यत्नैः समुद्धृताः खलु ॥ १८ ॥

व्याख्या—मज्जमानाः = विपत्समुद्रे निमग्नाः वयम् मिथ्योन्मादैः = मृषा कल्पितैश्चित्तविभ्रमैः। युद्धैः = संग्रामैः। शास्त्रदृष्टैः = राजनीतिप्रोक्तैः। मन्त्रितैः गुप्तमन्त्रणैः। एतादृशैः भवद्यत्नैः = भवत्प्रयासैः। समुद्धृताः=पारं गमिताः। उन्मादयुद्धराजनीत्यनुकूलविचारसाधनप्रभृतिभिः भवतः प्रयत्नैः खलु निःसंशयं विपत्सागराद्बहिर्निष्कासिता वयमिति भावः। अनुष्टुप् छन्द ॥ १८ ॥

वत्सराजस्य प्रद्योतराज्ञावरोधनं योगन्धरायणकृतं तन्मोचनं च प्रतिज्ञायौगन्धरायणे द्रष्टव्यम्। राज्ञः कृतेन प्रशंसनेन आत्मनि लज्जमानो यौगन्धरायणः सविनयं वचनमाह—वयम् = मादृशाः सेवकाः।

राजा—(उठा कर) आप यौगन्धरायण हैं।

विपत्ति के समुद्र में हम लोग डूब रहे थे किन्तु मिथ्या कल्पित उन्मादों से, युद्धों से और शास्त्र दृष्ट उपायों से—इस प्रकार के आपके प्रयत्नों के द्वारा हम उससे पार उतर गये हैं।

यौगन्धरायण—हम लोग महाराज के भाग्य का अनुसरण करने वाले हैं।

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ।

स्वामिभाग्यानाम् श्रीमतां स्वामिनां यदा यादृशानि भाग्यानि विलसन्ति तेषाम् । अनुगन्तारः = अनुसरणकर्त्तारः । भवतो भाग्यान्येव फलं निष्पादयन्ति । वयं सेवका अस्वतन्त्रा अकिञ्चित्कराश्चेति भावः । अद्य यावदवन्तिकां पद्मावती सखीनिर्विशेषं मन्यते स्म साम्प्रतं तामार्यपुत्रप्रियां वासवदत्तां महाराज्ञीं विदित्वा भूतपूर्वसखीभावोचिताचारप्रदर्शनरूपस्वीयापराधक्षमापनचिन्तया प्रसादनौपयिकवचनं प्रस्तौति—अहो इति । आर्या = पूज्या । अजानन्त्या मयेति शेषः । सखीजनसमुदाचारेण = वयस्याव्यवहारेण । समुदाचारः = शिष्टाचारः । अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः । शीर्षेण = शिरसा । प्रसादयामि = अनुनयामि । यथोचिताचारमुल्लङ्घितवती क्षमां प्रार्थमानैषाहं प्रसादनार्थं शिरसा प्रणमामीत्यर्थः । एवं प्रणमन्तीं पादपतितां पद्मावतीमुत्थापयन्ती वासवदत्ताह—उत्तिष्ठेति—अविधवे = अखण्डसौभाग्यवति । अर्थिस्वं = याचकधनं । शरीरं = देहः यौगन्धरायणन्याससाधनभूतं मे शरीरमिति भावः । अपराध्यति = अपराधं करोति न्यासरूपेण निक्षेप्तुकामेन यौगन्धरायणेन यदहमत्र ते सन्निधौ निक्षिप्ता तेनैव मे स्वातन्त्र्य-

---

पद्मावती—अहो ! यह तो आर्या (वासवदत्ता) हैं । अरी न जानने के कारण मैंने आपके साथ सखी जैसा व्यवहार कर सदाचार का उल्लंघन किया है । इस कारण शिर से प्रणाम कर आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाती हुई) उठो उठो । अखण्ड सौभाग्यशीले ! उठो । यौगन्धरायण रूप याचक का धन रूप मेरा शरीर ही अपराध का हेतु है ।

उटठेहि। अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ। [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे उत्तिष्ठ। अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति।]

पद्मावती—अणुग्गहिदिह्मि। [अनुगृहीताऽस्मि]

राजा—वयस्य ! यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

मपगतम्। आचारविरुद्धकारिता प्रायशः पराधीने जने भवति अतश्च नूनमहमेवापराधिनीति भावः। वासवदत्तायाः स्नेहानुग्रहं दृष्ट्वा पद्मावती सादरमभिनन्दति—अनुगृहीतास्मीति। अनुगृहीता = अनुकम्पिता। तदनन्तरं वत्सराजो वासवदत्तापनयनविषये यौगन्धरायणस्य मानसमाशयं स्फुटं जिज्ञासमानस्तद्विधाने कारणं पृच्छति—वयस्येति—वयस्य = मित्र। देव्यपनये = वासवदत्ता दूरीकरणे ते=तव का = कीदृशी बुद्धिः = मतिः। वयस्य मित्र मन्त्रिवर। यद् देवी वासवदत्ता त्वया मत्सकाशादपनीता तन्मनसा किं भाविफलमुद्दिश्यापनीतेति भावः।

राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्योगन्धरायणः ब्रवीति—कौशाम्बीति। अत्र मात्रशब्दोवधारणे कौशाम्बीमेवेत्यर्थः। परिपालयामि। केवले कौशाम्बीरक्षिते परैरपहृतं समस्तं वत्सराज्यमुपायेन पुनः स्वायत्तीकरिष्यामिति विचिन्त्य मया वासवदत्ता न्यासरूपेण पद्मावतीहस्ते समर्पिता। अस्य गद्यस्येदं

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हुई।

राजा—मित्र यौगन्धरायण ! देवी वासवदत्ता को मुझ से दूर करने में तुमने क्या सोचा था।

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा कर सकूं। (जिससे शत्रु अधिकृत राज्य प्रदेश को पुनः वापस ला सकूं)

राजा—तो इसे पद्मावती के हाथ में न्यास रखने का क्या तात्पर्य था।

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

तात्पर्यम् 'सत्यां वासवदत्तायां न कदापि तत्रभवता विवाहान्तरं स्वीकरिष्यते । समुचितसहायेन विना च परैरधिकृतवत्सराजप्राप्तिः न सुलभा अतो मया 'वासवदत्ता दग्धेति प्रवादः प्रख्यापितः । एवं अनुपलब्धायां वासवदत्तायां भवता मन्त्रिणामनुरोधान्तरं कथञ्चित् स्वीकरिष्यते । तदनन्तरं द्वितीय-भार्याबन्धुसाहाय्येन वत्सराज्यं पुनः करतलमायास्यतीति विचार्य मया देव्यापनयनं चिकीर्षितमिति यौगन्धरायणाभिप्रायः । श्रुत्वेदं वचनं 'पद्मावत्याः समीपे न्यासरूपेण वासवदत्तास्थापने किं कारणमिति राजा पुनः पृच्छति देवीं मत्तोऽपनीय पद्मावतीसन्निधौ स्थापयतस्तव कोऽभिप्राय इत्यर्थः । यौगन्धरायणस्तस्याभिप्रायं प्रतिपादयन्नाह पुष्पकभद्रादिभिरिति । आदेशिकैः = सिद्धपुरुषैः दैवज्ञैर्वा । आदिष्टा = भाव्यर्थसूचनं विषयी-कृता । पुष्पकभद्रप्रभृतिभिः सिद्धैः एषा पद्मावती महीपतेरुदयनस्य महिषी-पदमलङ्करिष्यति तत्र न्यासेन वासवदत्ताचरित्रशुद्धिः श्रीमतः विश्वासास्पदं भविष्यति इति भविष्यत्फलं सूचितमित्यर्थः । राजा पुनः पृच्छमि—इदमपीति । इदं वासवदत्तापनयनं पद्मावत्यन्तिके न्यसनं च किमर्थं त्वत्तो विज्ञातवान् रुमण्वान् ? अत्रोत्तरं ददाति यौगन्धरायणः—स्वामिन्निति—

यौगन्धरायण—पुष्पक, भद्र आदि सिद्धों (ज्योतिषियों अथवा महा-त्माओं) ने 'पद्मावती महाराज की रानी होंगी' ऐसी भविष्यवाणी की थी (जिससे पद्मावती के बन्धुगण अपने बल का समुचित प्रयोग कर शत्रु से अधिकृत राज्य पुनः वापस दिला सकें यही मूल उद्देश्य था)

राजा—क्या रुमण्वान् यह बात जानता था ?

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! यह बात सब जानते हैं । (सबकी सम्मति से ही पद्मावती के यहाँ वासवदत्ता को न्यास रूप में रखा गया)

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

राजा—न, न, सर्वे एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

नाथ ! न केवलं रुमण्वान् किन्तु अत्र भवतः श्रेयसि कृतावधानाः सर्वेऽपि आप्ततमाः अर्थमेनं जानन्ति । सर्वसम्मत्यैव प्रवृत्तोहमस्मिन् कर्मणि इति भावः । सर्वेऽपीमं विषयं जानन्तीति यौगन्धरायणोक्तमनुनिशम्य जानन्तमपि तमर्थम् अप्रकाशितवन्तं रुमण्वन्तं सप्रणयोपलम्भनं प्रस्तौति अहो इति । शठो = वञ्चकः । तस्मिन् वञ्चकत्वारोपः वासवदत्ताकुशलवृत्तान्ताप्रकाशनमूलकः । कुशलवृत्तमिदं वासवदत्तायाः जानन् रुमण्वान्नपि न सूचितवान् एतदेवास्ति वञ्चकत्वमिति भावः । इदानीं यत्कर्त्तव्यं तदर्थं राजानं प्रेरयति यौगन्धरायणः स्वामिन्निति नाथ ! देव्याः मातापितरौ चिरादवृत्तान्तं कमप्यनधिगच्छन्तौ कुशलं श्रोतुमुत्कण्ठितौ भवेतामतस्तन्निवेदनाय श्रीमता रैभ्येण श्रीमत्या वसुन्धरया च सत्वरं तत्र गन्तव्यम् । स्वात्मप्रदर्शनपुरःसरं स्वयमेव तन्निवेदनीयमन्यथौद्धत्यशङ्का प्रतिभायाद् गुरुजनस्येत्याह राजा न नेति । द्वौ नञौ तयोस्तत्रैकाकिनो गमनं सर्वथा निषेधतः । मन्त्रिवर ! नैवम् । नवोढया पद्मावत्या समं सकलैरस्माभिस्तत्रोपस्थातव्यम् । येन प्रेमभावमवलोक्य श्वशुरौ मे तुष्येतामित्यभिप्रायः ।

राजा—अहो ! तब तो रुमण्वान् वञ्चक हैं ।

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! महारानी (वासवदत्ता) का कुशल निवेदन करने के लिये माननीय रैभ्य और मान्या वसुन्धरा को आज ही भेज देना चाहिये ।

राजा—नहीं । नहीं । हम सभी लोग महारानी वासवदत्ता और पद्मावती के साथ-साथ जायेंगे ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

(भरतवाक्यम्—)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

तत्र भवतः स्वामिनः आदेशं प्रमाणयन् यौगन्धरायणो ब्रूते—यदाज्ञापयतीति । श्रीमतः स्वामिनः वयन्तु किङ्कराः स्मः अतः यदाज्ञापयति स्वामी तदेव वयं कुर्मः इति । नाटकीयसंविधानसमाप्तौ मङ्गलार्थं भरतवाक्यं यौगन्धरायणमुखेन प्रदर्शयति । इमामिति—

अन्वयः—सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्कां इमां महीं नः राजसिंहः प्रशास्तु ॥ १९ ॥

व्याख्या—सागरपर्यन्ताम् = सागरसीमायुक्ताम् । हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् = हिमालयबिन्ध्याचलकर्णालङ्कारभूताम् । एकातपत्राम् = एकच्छत्रस्वरूपाम् । इमाम् = एताम् । महीम् = पृथ्वीम् । नः = अस्माकं । राजसिंहः = नृपवरः । प्रशास्तु = प्रशासनं करोतु । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

अस्यायं भावः या किल चरमसीमाभूतान् सप्तसमुद्रान् व्याप्य संस्थिता यस्याश्च विन्ध्येन हिमवता च कर्णालङ्कारतुल्यसुषमाविशेषाः समन्ततः प्रकाशन्ते । यत्र चैकाधिपत्यसूचकं श्वेतच्छत्रमुद्योतते एतादृशीं समस्तां पृथ्वीं निष्कण्टकमस्माकं राजाधिराजः श्रीमानुदयनः चिरं परिपालयतामित्यर्थः । सार्वभौमो भवान् राजास्माकं विराजताम् इत्यर्थः । तदनन्तरं रङ्गभूमितः सर्वेषां प्रस्थानं प्रदर्श्यते ।

यौगन्धरायण—स्वामी की जैसी आज्ञा ।

(भरत वाक्य)

जिस पृथ्वी के दो भागों में हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत दो कुण्डलों

इति स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

—:❀:—

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

रसवेदाभ्रयुग्माब्दे सिते भाद्रे गुरौ दिने,
चतुर्दश्यां शुभतिथावनन्तव्रतवासरे ।
समाप्तिमगमट्टीका छात्रोपकृतये कृता ।
प्रीयतां भगवानीशो मङ्गलं नस्तनोतु च ॥

इति भासकविकृतायाः स्वप्नासवदत्तायाः डॉ० गङ्गासागररायशर्मणा कृता गङ्गा नाम्नी व्याख्या समाप्ता

—:❀:—

की भाँति सुशोभित हैं हमारे राज सिंह उस सागर सीमा वाली वसुन्धरा का एकच्छत्र (अखण्ड) राज्य करें ।

(सभी लोगों का प्रस्थान)

षष्ठ अङ्क समाप्त

स्वप्नवासवदत्तम् समाप्त

परिशिष्टम्—१

नाटकीयपारिभाषिकशब्दविमर्शः

(१) नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देवद्विजनृपादि की स्तुति होती है । यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है ।

(२) प्रस्तावना-आमुख—

नटो विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है । उसी को प्रस्तावना भी कहते हैं ।

(३) सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण वस्तु—नेता तथा रस—ये सूत्र कहे जाते हैं सूत्रधार

इनका उल्लेख करता है। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित करने पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

(४) प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

(५) नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

(६) विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। यह कथांश को संक्षिप्त करने लिये प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर सङ्कीर्ण होता है।

(७) प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृतभाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अङ्कों के बीच म होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती हैं।

(८) स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं ।

(९) प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बातें सभी सूनें उसे प्रकाश कहा जाता है ।

(१०) विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने, कर्म, वेष, भाषादि से हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है । उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं ।

(११) नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा कला-मान-युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र दृष्टि वाला एवं धार्मिक होता है ।

(१२) नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार की होती है । यथासम्भव वह नायक के गुणों से युक्त होती है ।

(१३) अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नाना विधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

(१४) नाटक—

नाटक की परिभाषा देते हुये बताया गया है कि जिसमें वीर अथवा शृङ्गार में से किसी एक रस की प्रधानता हो, अन्य रस गौण रूप में वर्णित हो तथा जिसका नायक प्रख्यात चरित्रवान् हो, नाटक कहा जाता है।

वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

राजा उदयन 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक है। उदयन तथा वासवदत्ता की प्रणय-कथा लोक प्रसिद्ध है। यह छः अङ्कों में लिखा गया है। अतः साहित्यदर्पण के निम्नलिखित लक्षण के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक है—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥"

—सा० द०, ६।६-१०

भरतमुनि के नाटचशास्त्र में नाटक का निम्नलिखित लक्षण है—

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम् ।
पूर्ववृत्ताऽनुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥
यस्मात्स्वभावं सन्त्यज्य साङ्गोपाङ्गव्यतिक्रमैः ।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥"

—ना० शा०, १९।१४७

(१५) काञ्चुकीय—

काञ्चुकीय के लक्षण में कहा गया है—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीयेत्यभिधीयते ॥"

अर्थात् काञ्चुकीय अन्तःपुर का सेवक होता। वह वृद्ध, ब्राह्मण तथा विविधगुणों से युक्त होता है, कामादि दोषों से वर्जित तथा सभी कार्यों के विषयों में कुशल होना भी उसके लिए आवश्यक है। मातृगुप्ताचार्य ने कहा है—

"ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृता ॥"

परिशिष्टम्—२

स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त छन्द

(१) अनुष्टुप्—"श्लोके षष्टं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥"

उदाहरण—प्रथम अंक–२, ७, १०, १५ । चतुर्थ अंक–५, ७, ८, ९ । पञ्चम अंक–६, ७, ८, ९, १०, ११ । षष्ठ अंक–७, ९, १३, १४, १६, १७, १९ ।

(२) उपजाति—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उदाहरण—पञ्चम अंक–५ ।

(३) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

उदाहरण—पञ्चम अंक–१३ ।

(४) शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।

उदाहरण—प्रथम अंक–१२ । चतुर्थ अंक–६ । षष्ठ अंक–१० ।

(५) वैश्वदेवी—बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ।

उदाहरण—प्रथम अंक–९ ।

(६) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

उदाहरण—प्रथम अंक–४, ६, ११ । चतुर्थ अंक–२ । पञ्चम अंक–१, २, ३ । षष्ठ अंक–२, ४, ५, १५ ।

(७) शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला: गः शिखरिणी ।

उदाहरण—प्रथम अंक–१४, १६ ।

(८) हरिणी—नसमरसलाः गः षड्वेदैर्हरिणी मता ।

उदाहरण—षष्ठ अंक–८ ।

(९) शार्दूलविक्रीडितम्—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।
उदाहरण—प्रथम अंक–३, ७, १२। चतुर्थ अंक–१। पञ्चम अंक–४, १२।

(१०) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो।
युजि तु न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।
उदाहरण—प्रथम अंक–५। षष्ठ अंक।

(११) आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥
उदाहरण—प्रथम अंक–१। चतुर्थ अंक–३, ५।

परिशिष्टम्—३

स्वप्नवासवदत्तम् की सूक्तियां

(१) "कालक्रमेण जगतः परिवर्त्तमाना,
चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्तिः ।" १।२

(२) "प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।" १।७

(३) "सुखमर्थो भवेद्दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ।।"

(४) "...नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ।।" १।११

(५) "तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ।" १।१५

(६) "दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः,
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ।।"

(७) "....स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ।।" १।८

(८) "गुणानां वा विशालानां सत्कराणाञ्च नित्यशः ।
कर्त्तारः सुलभाः लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ।।" ४।९

(९) "प्राणी प्राप्तरुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ।" ५।४

(१०) "कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।।" ६।७

(११) "कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले,
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां,
काले काले छिद्यते रुह्यते च ।।" ६।१०

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला २८९

महाकविभासविरचितम्

चारुदत्तम्

'गङ्गा'संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च

डॉ० गङ्गासागर रायः

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्बा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक

पोस्ट बाक्स नं० ११३९

के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : चारू प्रिन्टर्स, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०६१
मूल्य : रु० ४०-००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ का परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल-पाठ एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन है।

फोन नं० : २३३३४४५
Fax No. : 0542 - 2333445
E-mail: cssansthan@yahoo.com

शाखाये :

चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (बैंक ऑफ बडौदा बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : २४२०४१४

चौखम्भा पब्लिकेशन्स
४२६२/३ अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली- ११०००२
फोन : २३२६८६३९, २३२५९०५०
फैक्स नं० : ०११-२३२६८६३९
E-mail: chaukhambha@mantraonline.com

THE KASHI SANSKRIT SERIES--289

CĀRUDATTAM

of

BHĀSA

[With 'Gangā' Sanskrit & Hindi Commentaries]

Edited and Commented by
Dr. Ganga Sagar Rai
M. A. Ph. D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

Published by:
CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar near Maidagin)
VARANASI–221001 (INDIA)

© Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi
Phone : 2333445
Fax No. : 0542 - 2333445
E-mail: cssansthan@yahoo.com

Second Edition : 2005

Branches–

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
CHOWK (Bank of Baroda Bldg.)
VARANASI-221001
Phone : 2420414

CHAUKHAMBHA PUBLICATIONS
4262/3, Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi-110002
Phone : 23268639, 23259050
Fax No. : 011 - 23268639
E-mail: chaukhambha@mantraonline.com

निवेदन

भास नाटक चक्र के नाटकों की व्याख्या और संपादन की श्रृंखला में चारुदत्त का यह संस्करण काव्यरसिकों के सामने उपस्थित करते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। भास के नाटक बहुत प्राचीन काल से अपनी महत्ता और लोकप्रियता को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। महाकवि कालिदास जैसे सर्वोच्च कवि और नाटककार ने भास के नाटकों के महत्त्व को स्वीकार किया है और अभिनवगुप्त-सदृश शिखर समीक्षक ने उसे उल्लिखित किया है। अन्य आचार्यों ने भी भास की कृतियों को उदाहृत किया है। अतः इन नाटकों का पुनः प्रकाशन, संपादन और व्याख्यान सुतरां सम्मत है।

चारुदत्त का चरित्र कवियों और साहित्य-रसिकों के लिये सदैव ही आकर्षक और हृदयावर्जक रहा है। शिष्ट नागर जन में उदात्त मानव के जितने भी गुण संभावित हैं उनका एकत्र समाहार चारुदत्त के चरित्र में कवियों और विदग्धजनों ने किया है। चारुदत्त शिष्टजनों में चारित्रिक अभ्युत्थान की पराकाष्ठा है। नाना प्रकार की विपत्तियों से अभिभूत चारुदत्त अपने चारित्रिक चारुता के कारण भारतीय वाङ्मय में एक आदर्श पुरुष रहे हैं। चारुदत्त महात्मा नहीं हैं किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से अभ्युन्नत मनुष्य के सभी गुण उनमें विद्यमान है तथा आज भी साहित्य का मर्मज्ञ अपने पुत्र का नामकरण चारुदत्त रखने में संतोष का अनुभव करते हैं। ऐसे महनीय चरित्र को महाकवि भास ने इस नाट्क में उपनिबद्ध किया। 'गुणमत्सरी' सभी समयों में हुआ करते हैं। शकार ऐसे ही प्रकृत्या दुष्ट और मूर्ख व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

इस नाटक की व्याख्या में हमें पं. हीरामणि मिश्र की सहायता प्राप्त हुई है और प्रूफ संशोधन में पंडित कृपा सिन्धु शर्मा ने सहायता की है। इन सज्जनों के प्रति मैं कृतज्ञ हूं। मेरे मित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय की प्रेरणा और सदाशयता संवल का कार्य करती है। चौखम्भा संस्कृत संस्थान के उदीयमान संचालक चि० राजेन्द्रगुप्त परिश्रम और साहस के साथ इस कार्य को परिणाम तक पहुंचाये हैं। अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं। अंत में मैं इस कार्य में हुई न्यूनता और त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

गंगासागर राय

काशी
रक्षाबन्धन २०५३ विक्रमी
३१-८-९६

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक लहराई है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व का चरम परिपाक होता है–'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलता पूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी कारण से संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपनां विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियाँ–अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्य-मणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा हुआ एवं विवास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं सुनने को ही मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित रूप में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य में तञ्जौर पुस्तकालय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाश में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों ने इसका उल्लेख किया था एवं इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाट्य साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्न लिखित है —

(१) कालिदास ने मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है–
"प्रथितयशसां भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः"।

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभा पण्डित बाण भट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्ठता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले, तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

–हर्षचरित।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारंम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जबकि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटककारों से पृथक पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है–

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

–काव्यमीमांसा

(४) वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'–(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैलाकर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धुम्भि हारि अन्दे अ आणन्दे ॥

-गउडवहो।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता अभिव्यञ्जित की है–

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

-प्रसन्न राघव १.२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है–

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृतिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

-दण्डी-अवन्तिसुन्दरी ।

(७) नाट्य दर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र,१२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासदत्ता का उल्लेख किया है ।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिका-
शिलातलमवलोक्य वत्सराज–।"

(८) शारदातनय (१२ वीं सदी) ने 'भाव प्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है ।

(९) भोजदेव ने 'श्रृंगार प्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है–

'वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः ।"

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनव भारती में किया है । 'क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।"-नाद्यशास्त्र पर अभिनवगुप्तकी टीका ।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है ।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है । परन्तु भास का 'विष्णु धर्म' नाटक अभी अनुपलब्ध है ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के गाल में समाविष्ट हुई । केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये थे ।

भास का जीवनवृत्त–अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवनवृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है । अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी । भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं । भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए उन्होंने गृह को ही उचित स्थान बताया है । महाकवि भास वर्णाश्रम धर्म

को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पति चरणानुगामिनी पत्नी के पति एवं सन्तान प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था–

'धर्मो रक्षति रक्षितः।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है–

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे–

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः'।

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे–

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्ययसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है–

हमारे राजा ससागरा उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्ण कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे है। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक शीर्षस्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज–संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्राचीन समय में इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे शीर्षस्थानीय कवि भी उल्लेख किये बिना नहीं रहे। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जब वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुलपरम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरंजक इन नाटकों का क्या ? सुमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त हैं। विद्वानों ने नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त कियें हैं, वे निम्नलिखित हैं–

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्यस्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के

साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था, फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने देवनागरी लिपि में उद्धृत सरल पाठ को विनष्ट करने में विदेशी आक्रमणकारियों को पर्याप्त सहयोग दिया। जिसके परिणाम स्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ नष्ट हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो भास के नाटकों के हस्तलेखों की खोज की है वे देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ-सुगम नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं. गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले, इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पर लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ अभिषेक तथा प्रतिमानाटक की हस्त प्रतियां प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियां प्राप्त हुई। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति नहीं प्राप्त हो सकी। यह भी संभव हो सकता है कि यह कर्णभारम् का अग्रिम अंश हो।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदतम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों 'को प्रकाशित किया वे निम्नलिखित हैं–

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण	(२) अविमारक	(३) स्वप्नवासवदत्त
(४) प्रतिमा नाटक	(५) मध्यम व्यायोग	(६) पञ्चरात्र
(७) अभिषेक	(८) दूत वाक्य	(९) दूतघटोत्कच
(१०) कर्णभार	(११) ऊरु भङ्ग	(१२) बाल चरित
(१३) चारुदत्त		

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४९ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन कर के भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है।

परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया। बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्वः–महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा उद्घाटित भास के तेरह नाटकों की प्रमाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है–

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगलपाठ से इनका प्रारम्भ करता है–

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः-उदयनवेन्दुसवर्णा—।

–स्वप्नवासवदत्त।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः–पातु वासवदत्तायो—-इत्यादि। प्रतिज्ञायौ.।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है ।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पर्ण नाटकों के भरत वाक्य में राजसिंह राजा के एकच्छत्र राज्य को कामना व्यक्त की गयी है जिसका शासन हिमालय से विन्ध्य एवं पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक है ।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

-स्वप्न० ६-१८ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य ।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा के नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है । उदाहरणार्थ– रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है ।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता है ।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभाषित वाक्यों (पाठों) का प्रयोग किया है ।

(९) भास ने भरत के नाट्य में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है । जैसे– आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है ।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है ।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है ।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है ।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं । जैसे– निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है ।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताकास्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है ।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है ।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है । जैसे–

महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त होगा । उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है । इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' वन्दी बना लिया गया ।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों के समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे-'उस्सरह उस्सरह अय्याः उस्सरह'। (हटिये, हटिये-श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर है।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों को खण्डित किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्रनामोल्लेख एवं कथानक संकेतिक है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे– अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए निवेद्यतां-निवेद्यतां महाराजाय, इत्यादि वाक्य की उद्‌भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे– नारद को कलहप्रिय तथा स्वरतंत्री का साधक बताया गया है–

(क) "तन्त्रींषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके।" –अविमारक ४/२

(ख) 'तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि'। -१/३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्‌भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते"। -पञ्चरात्र १/२५

'हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते' –(कर्ण०१७)

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

इन नाटकों का प्रणेता कौन था ?–भास के नाटकों की प्रमाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। भास के नाटक के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग– ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० वी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे, ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग– पिशरोटी, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज, डा० वार्नेट ये सभी विद्वान् इन नाटकों को 'भास' कृत नहीं मानते हैं।

तृतीय वर्ग– डा० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भास कृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना .?—कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल के रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है, इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार हैं कि–

(क) नाटकों की हस्त प्रतियों का केवल केरल में प्राप्त होना।

(ख) यदि नाटक चक्र भास कृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(ग) रीति ग्रन्थों में जो 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं हैं।

(घ) महामहोपाध्याय, कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्नवासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इस आधार पर चाक्यारों से प्रभावित सिद्ध होते है।

चाक्यारों के रचना की अप्रामणिकता–नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजन शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजन शक्ति समाप्त हो गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य ध्यान देने योग्य हैं–

(क) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रमाणिकता असिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल भी उसके अभाव का कारण हो सकता है। इसके साथ ही यह भी सम्भव् हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश-विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ख) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रमाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(ग) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गया हों एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई–पल्लव द्वितीय नरसिंह बर्मन् या तेन मारन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियाँ ने अपनी उपाधि राजसिंह रखा था, अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रमाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राजसभाओं में रहता तो अपनी कृतियों में अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे–कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन् आदि दक्षिण के नाटक कारों के नाम इसके प्रमाण है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई। भास के नाटकों की प्रमाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटकों की प्रमाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासदत्ता' के विषय में साक्ष्य लिया जा सकता है–

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

अग्नि परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्न वासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भास कृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक चाक्यार, पल्लव नरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं. रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भासरचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भास कृत नहीं है।

विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय–संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय-निर्धारण में विद्वानों में मतभेद हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शती में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास का नाटक न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तः साक्ष्य एवं बहिः साक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ईस्वी सन् चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश–दक्षिण के विद्वान महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि–

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हुए हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ

पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मतों की अप्रामाणिकता–किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हो तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमानाटक में अभिषेक संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी ।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख हैं– अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, ऊत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला, (विदेह) अंग, बंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का। दक्षिणापथ तथा सिंहल का जो वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है, भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र मलय, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन किया है।

भास का धर्म–महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक-कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे?–भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे। परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

१-ए. एस. पी. अय्यरकृत 'भास' पृ० ६, यही मत डा० पुसालकर का भी है।

नाटक का संक्षिप्त कथानक

महाकवि भास के द्वारा विरचित 'चारुदत्तम्' नाटक चार अङ्कों में विभक्त है। इसमें चारुदत्त (नायक) के गुण एवं आर्थिक स्थिति तथा वसन्तसेना (नायिका) से प्रेम का वर्णन है।

प्रथम अङ्क–'नान्दी' पाठ के बाद सूत्रधार मञ्च पर उपस्थित होता है। वह कहता है कि आज प्रातःकाल ही घर से बाहर निकलने पर भूख मुझे सताने लगी। वह घर में लौटकर नटी से खाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूछता है। नटी बताती है कि मेरे घर में घी, गुड़, दही और चावल सब कुछ हैं परन्तु थोड़ी देर आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी क्योंकि मैंने 'अभिरूप-पति' नामक व्रत का अनुष्ठान किया है। इसलिए आप पहले किसी योग्य ब्राह्मण को भोजन के लिए निमन्त्रित करें। सूत्रधार कहता है कि यह अत्यन्त धर्मसंगत कार्य एवं संकल्प है। इस तरह से मेरा प्रातः काल का भोजन भी मिल जायेगा। वह नटी को घर में अन्दर जाने को कह कर स्वयं ब्राह्मण की खोज में निकलता है। घर से बाहर निकलने पर देखता है कि चारुदत्त का मित्र मैत्रेय (विदूषक) नाम का ब्राह्मण इधर ही आ रहा है। वह मैत्रेय से कहता है कि मैं आप को निमन्त्रण देता हूँ, मुझे गरीब समझकर मेरे निमन्त्रण को अस्वीकार मत करना।आप को खाने के लिए सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ घी, गुड़, दही और चावल उपलब्ध हैं तथा दक्षिणा के लिए सोने के सिक्के भी हैं। विंदूषक निमंत्रण को अस्वीकार करते हुए कहता है कि मैं अभावग्रस्त या दरिद्र नहीं हूँ इसलिए किसी दूसरे को निमंत्रित करें। सूत्रधार विदूषक को पुनः लालच देते हुए कहा है कि घी, गुड़, दही तथा विभिन्न प्रकार के व्यंजनों और कन्द-मूलादि पदार्थों से मिश्रित सुन्दर भोजन को आप ग्रहण करें। इसी के साथ स्थापना समाप्त होती है।

विदूषक मञ्च पर उपस्थित होता है। वह सूत्रधार की बातों को दुहराता हुआ कहता है कि किसी अन्य को निमंत्रित करो। मैं सर्वसम्पन्न हूँ। इसी प्रसंग में वह चारुदत्त के वैभव एवं पराभव काल का वर्णन करते हुए कहता है कि एक समय था जब मैं चारुदत्त के घर पर विविध रंगों से चित्रित अनेक पात्रों में नाना प्रकार के व्यंजन खाकर तथा पीने के लिए विशिष्ट पेय पदार्थों को पीकर सम्पूर्ण दिन आराम से व्यतीत करता था। वही चारुदत्त के विपन्न

होने पर साधारण वृत्ति को धारण करते हुए कबूतर के समान इधर-उधर भ्रमण कर पुनः उन्हीं के निवास-स्थान को लौट जाता हूँ। वह चारुदत्त के पास षष्ठी तिथि को देवकार्य के सम्पादन के निमित्त पुष्प एवं परिधेय लेकर जाता है। तब तक चारुदत्त गृह देवताओं की अर्चना करते हुए इधर ही आते हुए दिखाई देते हैं। वह चारुदत्त के पास चला जाता है।

इसके बाद चारुदत्त, विदूषक और फूल की डालियाँ लेकर चेटी उपस्थित होती है। नायक (चारुदत्त) अपनी दरिद्रता पर शोक प्रकट करते हुए कहता है कि आज गरीबी के कारण ही हमारे घर की देहलियों पर यव के अङ्कुर निकल आये हैं। विदूषक उसे सान्त्वना देते हुए कहता है कि पुरुष युवावस्था के समान गृह भी यौवन दशा विशेष को प्राप्त करता है। और दान देने के कारण निर्धन होने पर आपकी यह दरिद्रावस्था कृष्णपक्ष में क्षय हुई चन्द्रमा की कला के समान सुन्दर ही लगती है। नायक कहता है कि दुःख के बाद सुख अच्छा लगता है जैसे अन्धकार के बाद प्रकाश। परन्तु सुख के बाद दुःख का होना जीते हुए भी मरने के समान रहना है। वह विदूषक से कहता है कि मुझे धन के समाप्त होने की चिन्ता नहीं क्योंकि भाग्य से धन पुनः हो जाते हैं। मुझे कष्ट इस बात का है कि निर्धन होने पर इष्ट-मित्र भी निरादर करने लगते हैं। विदूषक कहता है कि वसन्त ऋतु में सरकण्डे के समान अंकुर में से भी जिस प्रकार अंकुर निकलते हैं उसी प्रकार धन के विनष्ट होने पर चिन्ता के नाना प्रकार के अङ्कुर निकलते हैं इसलिए आप को चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

चारुदत्त विदूषक से कहता है कि सुख-दुख में सर्वदा साथ रहने वाली पत्नी, तुम्हारे जैसा मित्र (बन्धु) साथ हैं और सत्वशाली मेरा मन भी पथ-भ्रष्ट नहीं हुआ है जब कि ये तीनों दरिद्रावस्था में दुर्लभ हैं तो संताप क्यों करूँ।

विट तथा शकार के द्वारा पीछा की गयी गणिका वसन्तसेना का प्रवेश होता है। विट तथा शकार दोनों उसे रुक जाने के लिए कहते हैं। विट कहता है कि तुम भय के कारण अपनी चाल में परिवर्तन करती हुई, नृत्यकला में दक्ष होने के कारण अपने पैरों को रखती हुई तथा अपने चञ्चल कटाक्षों से हमारे ऊपर आघात करती हुई व्याघ्र के द्वारा पीछा की गयी हरिणी के समान क्यों

भागी जा रही हो। शकार कहता है कि यह वसन्तसेना कुत्तों के द्वारा पीछा की गयी श्रृगाली के समान भाग रही है और इसके नूपुरों की आवाज मेरे हृदय का हरण कर रही है। गणिका वसन्तसेना भयभीत होकर अपने परिचर पल्लवक, परभृतिका, मधुकरक, शारिका का नाम लेकर बुलाती है। शकार इन नामों को सुनकर कहता है कि उन्हें क्यों बुला रही हो बल्कि एक साथ वसन्तमास को ही बुला लो। शकार कहता है कि क्या वासुदेव, यमराज, कुन्तीपुत्र अर्जुन तुम्हारी रक्षा करेगें अर्थात् कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर पायेगा और मैं तुम्हारे केशों को उसी प्रकार पकड़कर खींचकर लाता हूँ जिस प्रकार दुःशासन ने द्रौपदी का केश पकड़कर खींच कर सभा में लाया था । शकार की ही बातों से गणिका वसन्तसेना को ज्ञात हो जाता है कि बगल में ही चारुदत्त का घर है। वसन्तसेना अन्धकार का लाभ उठाकर भाग जाती है और चारुदत्त के दरवाजे पर जाकर खड़ी हो जाती है। नायक चारुदत्त मैत्रेय को वलि अपर्ण हेतु चतुष्पथ पर भेजना चाहता है। वह अकेले जाने से इन्कार करता है। नायक विदूषक के साथ रदनिका को भी भेजता है। विदूषक साथ में दीपक लेने के लिए कहता है। रदनिका हाथ में दीपक लेकर दरवाजा खोलती है। दरवाजे पर खड़ी गणिका वसन्तसेना आँचल से दीपक को बुझा देती है। विदूषक रदनिका से कहता है कि तुम चलकर चौराहे पर मेरी प्रतीक्षा करो और स्वयं दीपक जलाने अन्दर चला है। गणिका वसन्तसेना चारुदत्त के घर में प्रवेश कर जाती है। विट तथा शकार रदनिका को ही वसन्तसेना समझकर पकड़ लेते हैं और उसे अपमानित करते हैं। चेटी (रदनिका) चिल्लाती है और गिर पड़ती है। उसी समय विदूषक हाथ में दीपक लेकर वहां आता है।

विट तथा शकार दोनों विदूषक से कहते हैं कि अनजाने में इसे वसन्त सेना समझकर पकड़ा था। विट विदूषक से क्षमा मांगता है। शकार विट से कहता है कि चारुदत्त से क्यों डरते हो। विट चारुदत्त के गुणों का वर्णन करते हुए कहता है कि ग्रीष्म काल में सभी की प्यास बुझाने में ही स्वयं सूखे हुए एक महान् सरोवर की भांति वह याचकों की तृष्णा को शान्त करके निर्धन हो गया है। विट चला जाता है। शकार विदूषक से कहता है चारुदत्त से कह देना

कि वह अपने घर में से कल प्रातः ही वसन्तसेना को निकाल देना, जिससे हमारे-और तुम्हारे बीच में कोई मन-मुटाव न हो जाय। इसके बाद शकार चला जाता है।

नायक (चारुदत्त) वसन्तसेना को रदनिका समझकर पूछता है कि देव-कार्य पूरा हो गया और संध्या के समय शीतल हवा चलने के कारण अपना दुपट्टा उसे देता है। गणिका दुपट्टा को ग्रहण कर लेती है। नायक उससे कहता है कि इस वस्त्र को अन्तःपुर में रख दो। परन्तु गणिका वहीं खड़ी रहती है। नायक अपनी आज्ञा का पालन न होता देखकर आश्चर्य व्यक्त करता है। चेटी कहती है कि भर्तृदारक मैं यहां हूँ । नायक उस महिला के सम्बन्ध में कहता है कि यह कौन है ?

विदूषक राजश्याल संस्थानक का संदेश चारुदत्त से कहता हैं कि उसने कहा है कि कल प्रातःकाल तक वसन्तसेना को अपने घर से निकाल देना। उसी समय गणिका वसन्तसेना कहती है कि मैं शरणागत हूँ। चारुदत्त उसे अभय प्रदान करता है, विदूषक से पूछता है कि क्या यह वसन्तसेना है। विदूषक कहता है कि हाँ। वसन्तसेना बिना अनुमति के गृह में प्रवेश के कारण चारुदत्त से क्षमा मांगती है। चारुदत्त भी अनजान में भृत्यवत् व्यवहार करने के कारण क्षमा मांगता है। गणिका अपने आभूषणों को नायक के पास धरोहर के रूप रखती है। नायक विदूषक से उस आभूषण को लेने के लिए कहता है। विदूषक उन आभूषणों को लेकर रदनिका को सौंपते हुए कहता है कि तुम इसे षष्ठी और सप्तमी तिथि को धारण करना तथा अष्टमी तिथि को अनध्याय होने के कारण मुझे दे देना। नायक गणिका के साथ घर पहुँचने के लिए विदूषक को आदेश देता है। इसके बाद सभी का प्रस्थान होता है।

द्वितीय अङ्क—गणिका वसन्तसेना चेटी के साथ रंगमञ्च पर उपस्थित होती है। गणिका चेटी से चारुदत्त के प्रति अपने अनुराग की बात बताती है। चेटी जब उसे चारुदत्त के निर्धनता की ओर संकेत करती है तब वह कहती है कि मैं उस पर आसक्त हूँ और सच्चे हृदय से उसे चाहती हूँ। उसी समय एकाएक संवाहक वहाँ उपस्थित होता है और कहता है कि मैं शरणागत हूँ। वसन्तसेना उसे अभय प्रदान करते हुए उसके भय का कारण पूछती है।

संवाहक अपना परिचय देते हुए बताता है कि मेरी जन्मभूमि पाटलिपुत्र है एवं जाति का वणिक् (बनिया) हूँ। भाग्य के परिवर्तन से मैंने संवाहक वृत्ति को अपनाया। उज्जयिनी की ख्याति सुनकर मैं यहां आया और यहां आने पर मेरी भेंट वणिक् पुत्र चारुदत्त से हुई। और उसी की सेवा में हम इतने लग गये कि अपनी पत्नी को भी भुला दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश वह महान् चरित्रवान् चारुदत्त अपनी सम्पत्ति दान देने के कारण निर्धन हो गया। उसने मुझसे कहा कि तुम किसी दूसरे की सेवा करो परन्तु मैं ऐसे महान् पुरुष की सेवा कर अब सामान्य जन की सेवा करना उचित नहीं समझा और शरीर की रक्षा के लिए जुआरी बन गया। जिसको मैंने बहुत दिनों तक पराजित किया उसी ने एक दिन मुझसे जुए में दश स्वर्ण मुद्रा से पराजित कर दिया, दुर्भाग्यवश आज वही विजयी जुआड़ी इस वेश्यालय की गली में मुझे मिल गया। उसी के भय से भाग कर मैं यहां आया हूँ। वसन्तसेना चेटी को आदेश देती है कि विजयी जुआड़ी को कुछ धन देकर यहां से विदा करो, चेटी उसे धन देती है और वह चला जाता है। संवाहक भी गणिका से जाने की अनुमति मांगता है और कहता है कि आज मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा। गणिका वसन्तसेना कहती है कि फिर दर्शन दीजियेगा। इसके बाद संवाहक चला जाता है।

वसन्तसेना का सेवक चेट उसी समय वहां पर उपस्थित होता है और कहता है कि आज मैंने वीरकर्म किया है। गणिका उसके गर्व का कारण पूछती है तो वह बताता है कि भद्रक नामक हाथी का बच्चा राजमार्ग पर उत्पात मचाता हुआ उत्तरीय वस्त्र से युक्त एक संन्यासी को पकड़ लिया और उसे अपने सूँड़ के सहारे चरणों से दबाना ही चाहता था कि मैंने अपने हाथों के प्रहार से उस स्थिति में परिवर्तन लाकर उस संन्यासी को बचा लिया। हमारे इस पराक्रम को देखकर जन समुदाय एकत्रित हो गया परन्तु किसी ने कुछ दिया नहीं परन्तु एक भद्र पुरुष अपने अंगों को आभूषण से शून्य देखकर देव को उपालम्भ देकर लम्बी साँस लेते हुए 'मेरा वैभव इतना ही है' ऐसा कहकर परिजन के हाथ में संकोचपूर्वक यह उत्तरीय वस्त्र दिया। इस घटना से गणिका एवं चेटी के मन में उस व्यक्ति को देखने का कुतूहल पैंदा होता है और उसे देखने के लिए गणिका, चेटी और चेट तीनों महल के छत पर चले जाते हैं।

गणिका छत पर जाकर चारुदत्त को देखती हुई कहती है कि जब तक ये दिखायी पड़ें तब तक इन्हें देखा जाय।

तृतीय अङ्क—नायक चारुदत्त और विदूषक मञ्च पर उपस्थित होते हैं। नायक वीणा बजाने की प्रशंसा करता है परन्तु विदूषक यह कहता है कि मुझे अच्छा नहीं लगा। नायक वीणा वादक की प्रशंसा करते हुए कहता है कि राग-युक्त उच्च एवं मधुर तथा भाव एवं अभिनय से युक्त ऐसा वादन था मानों दीवाल की आड़ से कोई युवती ही गा रही हो। विदूषक कहता है कि गाते हुए पुरुष या पाठ करती हुई स्त्री दोनों ही मेरे अनुराग को नहीं बढ़ा सकते। गाता हुआ पुरुष लाल माला को धारण करने वाले पुरोहित के समान अच्छा नहीं लगता और पाठ करती हुई स्त्री भी कटी नासिका वाली गाय के समान रूपहीन लगती है। अर्द्ध रात्रि का समय है। दोनों इस प्रकार आपस में बात करते हुए अपने घर के समीप पहुँच जाते हैं एवं वर्द्धमानक को दरवाजे खोलने के लिए बोलते हैं। दोनों अन्दर प्रवेश करते हैं। चेट नायक और विदूषक के पैरों को धोता है। नायक निद्रा का अभिनय करता है। उसी समय चेटी उपस्थित होती है। वह विदूषक को जगाते हुए कहती है कि षष्ठी और सप्तमी तिथि को इस अलंकार की रक्षा मैंने की। आज अष्टमी तिथि है इसे तुम लो। नायक विदूषक से अलङ्कार लेने को कहता है, विदूषक अलङ्कार ले लेता है। चेटी चली जाती है। दोनों सो जाते हैं।

चोर वेश सज्जलक प्रवेश करता है। वह अपनी चौर्य कला की विशेषता प्रकट करता है और कहता है कि दूसरे लोग चौर्यकर्म को निकृष्ट समझते हैं परन्तु मेरी दृष्टि से चौर्यकर्म अच्छा ही है क्योंकि इससे तो किसी के आगे हाथ फैलाकर मांगना तो नहीं पड़ता है और यह कार्य तो द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने भी द्रौपदी के पुत्रों का वध करते समय किया था। वह सेंध खोदने के लिए दीवाल के नमी युक्त स्थान को खोजता है तथा उसी समय विभिन्न प्रकार की सुरंगों के नामों का वर्णन करता है और निश्चित करता है 'सिंहाक्रान्त' नामक सुरंग का निर्माण करूँगा। और सुरङ्ग को मापने के लिए यज्ञोपवती का प्रयोग करता है। विदूषक सोते हुए ही नायक से कहता है कि मेरी बायीं आँख फड़क रही है और मुझे ऐसा लग रहा है कि चोर दीवाल में सुरङ्ग बना रहा हो। यदि

धन की यही हालत है तब तो मैं दरिद्र ही होना चाहूँगा। नायक उसे डाँटते हुए कहता है कि दरिद्रता पसन्द करते हो। सज्जलक घर में प्रवेश कर जाता है और अन्दर जाकर उस गृहस्वामी (चारुदत्त) की दरिद्रता के सम्बन्ध सोचता है। उसी समय विदूषक स्वप्न में बड़बड़ाते हुए कहता है कि इस प्रकार स्वर्णभाण्ड को ले लो। सज्जलक विदूषक को हाथ से उसे ले लेता है। विदूषक कहता है कि अब मैं सुखपूर्वक सोऊँगा। उसी समय नगाड़े की आवाज होती है और सबेरा का समय जानकर सज्जलक वहां से भाग जाता है। चेटी उसी समय उपस्थित होती है और जोर से चिल्लाकर कहती है कि मैत्रेय! मेरी वृक्ष वाटिका के पक्ष द्वार में चोर सुरङ्ग बना कर घुस गया है। विदूषक जाग जाता है। विदूषक तथा चेटी दोनों चारुदत्त के पास जाकर इसकी सूचना देते हैं और विदूषक चारुदत्त से कहता है कि अच्छा हुआ कि उस सुवर्ण भाण्ड को मैंने तुझे आधी रात को ही दे दिया। इस चोरी की घटना से चारुदत्त दुःखी होता है। वह कहता है कि सब लोग मेरे ऊपर विश्वास न करके मुझे ही चोर समझेंगे क्योंकि मैं निर्धन हूँ। उसी समय नायक चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी वहां पर उपस्थित होती हैं और वह सम्पूर्ण घटनाक्रम को जानकार तथा अपने पति को लांछन से बचाने हेतु वह अपनी सहस्र मूल्य वाली मुक्तावली को विदूषक को देती हैं। विदूषक उस मुक्तवाली को लाकर चारुदत्त को देता है। चारुदत्त जब यह जानता है कि उसके स्त्री ने उसके ऊपर दया कर यह मुक्तावली दी है तो उसे बहुत आत्मग्लानि होती है। चारुदत्त विदूषक से कहता है कि इस मुक्तावली को ले जाकर वसन्तसेना को दे दो। विदूषक जब कहता है कि उस सुवर्णभाण्ड के बदले शत सहस्र मूल्य वाली मुक्तावली क्यों दी ज़ाय। तब चारुदत्त कहता है कि जिस विश्वास के आधार पर तुम्हारे यहां उसने अपने आभूषण धरोहर के रूप में रखा था, उसी महान् विश्वास के मूल्य स्वरूप यह मुक्तावली तुम ले जाकर उसे दे दो।

चतुर्थ अङ्क—उत्कण्ठित वसन्तसेना चित्रफलक, ब्रश एवं रंगों की पेटी हाथ में लेकर उपस्थित होती हैं। वह उस चित्रफलक को चेटी को दिखाते हुए कहती है कि यह चारुदत्त के समान प्रतीत हो रहा है। चेटी गणिका वसन्तसेना की बातों का समर्थन करती है और उस चित्र फलक की प्रशंसा करते हुए कहती है कि इसका रूप कामदेव के समान ही है। उसी समय हाथ में आभरण लिए हुए दूसरी दासी प्रवेश करती है। वह गणिका वसन्तसेना से

कहती है कि माताजी ने कहा कि द्वार पर कमलध्वज से अंकित बैलगाड़ी खड़ी है। अतः शीघ्र ही अलंकृत होकर घूँघट करके इस गाड़ी पर सवार होकर चला जाना चाहिए। ये अलंकार हैं आप इन्हें धारण कर लें।गणिका चेटी से पूछती है कि क्या चारुदत्त मुझे अलंकृत करेगें। चेटी कहती है कि यह अलंकार राजा का साला संस्थानक ने भेजा है। यह सुनकर गणिका क्रोधित होती है और चेटी कहती है कि मैं तो केवल सन्देश दे रही हूँ। गणिका चेटी को सान्त्वना देते हुए कहती कि मैं तुम्हारे ऊपर नाराज न होकर सन्देश पर ही नाराज थी।

चेटी गणिका (वसन्त सेना) से पूछती है कि मैं माता से क्या कहूँगी तो गणिका कहती है कि माता से कह देना कि जब मैं चारुदत्त के पास जाऊँगी उस समय अपने आप को अलंकृत करूँगी। चेटी चली जाती है। इसके पश्चात् सज्जलक प्रवेश करता है और वह कहता है कि रात्रि में मैंने निद्रा, अन्धकार और भय का परित्याग करके चौर्यकार्य किया। वही मैं सूर्योदय के कारण मन्दकान्ति वाले दिन के चन्द्रमा की भाँति भयभीत हो रहा हूँ। वह कहता है कि मदनिका वसन्तसेना की परिचारिका है और उसी मदनिका से मैं प्रेम करता हूँ उसी के उद्धार के लिए मैंने यह चौर्यकर्म किया। इस प्रकार अपने आप में बड़बड़ाता हुआ वह वसन्तसेना के घर के पास पहुँच जाता है। उसके घर में प्रवेश कर मदनिका-मदनिका बुलाता है। चेटी उसकी आवाज सुनकर गणिका को छोड़कर उसके पास आ जाती है और उसे देखकर कहती है कि तुम सशंकित दिख रहे हो। सज्जलक कहता है कि ऐसी बात नहीं है मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। गणिका कहती है कि इस चित्रफलक को शय्या पर रख दो। चेटी को वहां पर न देखकर वह वह उसे ढूँढ़ने के लिए चलती है। और वह आगे देखती है कि चेटी किसी से प्रेम भरी दृष्टि से बात कर रही है वह कहती है कि दूसरे की बात को छुपकर सुनना असङ्गत है। उसी समय सज्जलक उसका नाम (वसन्तसेना) लेता है। तब वह कहती है कि इन दोनों की बात से मैं भी सम्बन्धित हूँ इसलिए इनकी बातों को छुपकर सुनूँगी। सज्जलक चेटी (मदानिका) से पूछता है कि क्या वसन्तसेना को रूपया देने पर तुम्हें मुक्त कर देगीं।

चेटी कहती है कि वे तो पहले ही कह चुकी हैं। तब सज्जलक कहता है कि यह अलङ्कार उन्हें दे दो और उनसे कह दो कि यह अलङ्कार तुम्हारे शरीर के प्रमाण से ही मानों निर्मित हुआ है। चेटी उस अलङ्कार को देखना चाहती है।सज्जलक उसे दिखाता है। चेटी उससे पूछती है कि यह तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुआ है। वह बताता है कि यह मैं तुम्हारे लिए साहस किया है और इसे चुराया है और प्रातःकाल मैंने सुना कि वह घर सेठों के मुहल्ले में रहने वाले सार्थवाह पुत्र चारुदत्त का है। यह सुनकर चेटी की दशा भयभीत मृग के समान हो जाती है और वह सज्जलक से कहती है कि तुम सही-सही बताओ कि साहस करते समय तुमने अपने शस्त्र के प्रहार से किसी कुलपुत्र को घायल तो नहीं किया। चेटी के प्रश्न को सुनकर वह कहता है प्रिये ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए इतना पर्याप्त नहीं है क्या दूसरा अकार्य (मारने का कार्य) भी करना पड़ेगा। वैसे मेरे चौर्यकर्म में शस्त्र-अस्त्र से कोई भी घायल नहीं हुआ है। चेटी को यह जानकर कि चारुदत्त के यहां कोई घायल नहीं हुआ प्रसन्नता होती है परन्तु चेटी के चारुदत्त के प्रति इस प्रकार का प्रेम देखकर सज्जलक कुछ सशंकित होता है और चेटी से कहता है कि मैंने तुम्हारे प्रेम के लिए अपने शरीर की रक्षा करता हुआ चौर्यकर्म किया और तुम सामने मुझे मित्र कहती हो परन्तु मन में किसी दूसरे (चारुदत्त) से प्रेम करती हो। चेटी सज्जलक से कहती है कि यह अलङ्कार वसन्तसेना का है और उसके कान में पूर्व घटित बातों को बताती है। सज्जलक को जब यह ज्ञात होता है कि यह आभूषण वसन्तसेना का है तो वह पश्चात्ताप करता है। चेटी उसे यह सुझाव देती है कि इस आभूषण को चारुदत्त के पास ले जाकर लौटा दो। सज्जलक भयवश चारुदत्त के पास जाने से अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। चेटी उसे आभूषण लौटाने का दूसरा उपाय बताते हुए कहती है कि चारुदत्त के यहां का आदमी बनकर इसे वसन्तसेना को लौटा दो। ऐसा न करने से स्वामिनी के प्रति धोखा होगा और अगले जन्म में भी मुझे दासी होना पड़ेगा। गणिका (वसन्तसेना) इन सारी बातों को सुनकर अन्दर जाकर बैठ जाती है। सज्जलक

भी चेटी के इस सुझाव को स्वीकार कर लेता है। चेटी सज्जलक को कामदेव के मन्दिर में प्रतीक्षा करने को कहती है।

इसके पश्चात् दूसरी दासी का प्रवेश होता है और वह गणिका (वसन्तसेना) को सूचित करती है कि सार्थवाह पुत्र चारुदत्त के यहां से एक ब्राह्मण आया है जो आप से मिलना चाहता है और उसके सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित होकर कहता है कि यहां पर विभिन्न नगरों से आए हुए पंडित लोग शास्त्रों का पाठ कर रहे हैं। अनेकों प्रकार के भोजनों का प्रबन्ध किया जा रहा है। सुनार लोग नाना प्रकार के अलङ्कारों का निर्माण कर रहे हैं। वीणा बजाई जा रही है। विदूषक गणिका के पास पहुँचता है। गणिका के यथोचित सत्कार के पश्चात् विदूषक के आसनको ग्रहण करते हैं।विदूषक नायिका से कहता है कि आप के आभूषणों को चारुदत्त जुआ में हार गये और उसके बदले में यह मुक्तावली भेजा है इसे आप ग्रहण करें। गणिका यह सोचते हुए कि इसे लूँगी तो लोग मुझे लालची और न लूँगी तो अपराध लगेगा। उस रत्नावली को ग्रहण कर लेती है। और विदूषक से कहती है कि चारुदत्त से कहियेगा कि वह मैंने इच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया। विदूषक गणिका के इस प्रकार के व्यवहार से मन में सोचता है कि इसने कुछ उपचार के रूपों में नहीं कहा और वह चला जाता है।

इसके पश्चात् मदनिका आती है और वह गणिका से निवेदन करती है कि सार्थवाह पुत्र चारुदत्त के यहां से कोई आया है जो आप से मिलना चाहता है। गणिका पूछती है कि जो पहले आया था वही है कि दूसरा। मदनिका कहती है कि ऐसा मालूम पड़ रहा है कि वह उसका निजी आदमी नहीं है। गणिका उसे बुलाने को कहती है। मदनिका सज्जलक को साथ लेकर आती है। सज्जलक गणिका के पास जाकर कहता है कि आर्य-चारुदत्त ने मुझे भेजा है और उन्होंने यह संदेश दिया है कि जो अलङ्कार धरोहर के रूप में आप ने मेरे पास रखा है उसकी रक्षा करना कठिन है क्योंकि घर जीर्ण हो गया है और कुटुम्ब के लोग भी पास में नहीं रहते। गणिका सज्जलक से कहती है कि इसे आर्य चारुदत्त को दे दें परन्तु वह वहाँ जाने से इन्कार कर देता है। गणिका सज्जलक से कहती है कि मैं जानती हूँ कि तुमने चारुदत्त के घर से चुराकर

इस अलङ्कार को लाये हो परन्तु आपको उनके गुणों के साथ सहानुभूति तो दिखानी ही चाहिए। गणिका उसी समय गाड़ी मंगा कर मदनिका को उस पर चढ़ने लिए कहती है। जब मदनिका कहती है कि यह क्या तो गणिका (वसन्तसेना) कहती है कि ऐसी बात मत कहो। तुम इस समय श्रीमती हो गयी हो। और स्वयं मदनिका को लेकर (पकड़कर) सज्जलक के हाथ सौंपती है। गणिका के इस कार्य से सज्जलक कहता है कि इनके उपकार का बदला मैं कहां चुकाऊँगा। और यह कामना करता है कि चारुदत्त एवं वसन्तसेना का विपत्तिकाल उनके शत्रु को ही हो। मदनिका के साथ सज्जलक चला जाता है। गणिका चतुरिका नामक दासी को बुलाती है और उससे कहती है कि अलंकारों को पहन कर आर्य-चारुदत्त के घर के लिए प्रस्थान करेंगे। चेटी कहती है कि अभिसारिकाओं का सहायक यह दुर्दिन (काला बादल) उमड़ आया है। गणिका कहती है कि मेरे काम को अधिक उत्तेजित मत करो। इसके बाद दोनों चली जाती हैं। नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण–इस नाटक का नायक सार्थवाह पुत्र वणिक् आर्य चारुदत्त है। उसी के नाम के आधार पर इस नाटक का नामकरण हुआ है। नाटक की सम्पूर्ण घटनायें उसी के कार्यों एवं गुणों पर अवलम्बित हैं। इसमें चारुदत्त की दरिद्रता का वर्णन होने से इसे 'दरिद्र-चारुदत्त' भी कहा जाता है।

नाटक के कथानक का आधार–महाकवि भास के इस नाटक के कथानक का आधार सम्भवत: लोक-कथा रहा हो। चारुदत्त के कथा के समान कुछ कथा-'किसी ब्राह्मण और गणिका की प्रेम कथाएं' गुणाढ्य की वृहत्कथा में थी। इसका संकेत सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में मिलता है। सम्भवत: भास के 'चारुदत्तम्' को ही आधार बनाकर शूद्रक ने 'मृच्छकटिकम्' का सृजन किया हो। मृच्छकटिकम् के ऊपर इस नाटक की छाया स्पष्टत: परिलक्षित होती है।

———

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

महाकवि भास पात्रों के चरित्राङ्कन में सिद्धहस्त हैं। इनके नाटक के पात्र नाटक में भार स्वरूप न होकर नाटकीय कथासूत्र को जीवंतता और गति प्रदान करते हैं।

चारुदत्त–इस नाटक का नायक चारुदत्त है। इसके चरित्र में नाना प्रकार के मंजुल गुणों का समन्वय है। वह सौन्दर्यशाली, प्रतिभासम्पन्न, दयालु, परोपकारी, सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, क्षमाशील, दानशील, आदर्श चरित्र, मित्रवत्सल आदि गुणों से युक्त एक आदर्श नायक है। अर्थात् एक नायक में जो गुण होने चाहिए वे सभी गुण उसके चरित्र में विद्यमान हैं।

व्यक्तित्व (सौन्दर्यशाली) –चारुदत्त उज्जयिनी में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न है परन्तु इनका कार्य वैश्य का है और स्वंय व्यापारियों का नेता है। यह सार्थवाह का पुत्र है। चारुदत्त अत्यन्त सौन्दर्यशाली है। वसन्तसेना उसके सौन्दर्य और गुण पर ही मोहित थी। द्वितीय अङ्क में संवाहक आर्य चारुदत्त का परिचय देते हुए वसन्तसेना से कहता है कि-'आकृतिमन् अविभ्रमन् अनुत्सिक्तो ललितो....' (द्वितीय अङ्क) ।

सत्यनिष्ठ–चारुदत्त सत्यवादी है। विषम परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर भी वह झूठ नहीं बोलता है। वसन्तसेना के आभूषण जब उसके घर से चोरी हो जाते हैं उस समय वह चाहता तो झूठ बोल सकता था कि वसन्तसेना मेरे पास कोई आभूषण धरोहर के रूप में नहीं रखी है परन्तु वह उसके बदले अधिक मूल्य वाली रत्नावली उसे भेजवाता है। जब विदूषक कहता है कि अधिक मूल्य की रत्नावली उसे क्यों दी जाय तब वह कहता है कि जिस विश्वास के ऊपर उसने (वसन्तसेना) मेरे पास आभूषण को धरोहर के रूप में रखा उसी विश्वास के मूल्य स्वरूप इस मुक्तावली को तुम उसे दे दो।

दानशील–चारुदत्त महान् दानी है। चारुदत्त के पास विपुल धन सम्पत्ति थी। परन्तु सम्पूर्ण सम्पत्ति को उसने दान में दे दिया और निर्धनता को प्राप्त हो गया। वह इतना अधिक निर्धन हो जाता है कि धन के अभाव में वह अपने महल की सफाई नहीं करवा पाता है और उसके घर के दीवालों पर यव के

अङ्कुर निकल आये हैं। विदूषक जब उससे पूछता है कि मित्र आप का धन क्या हो गया। तब वह कहता है कि-

क्षीणा ममार्था: प्रणयिक्रियासु
विमानितं नैव परं स्मरामि ।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं
सत्वं मनः सखे! क्षयमभ्युपैति ॥१।४

अर्थात् मेरी सम्पत्ति प्रेमी जनों के कार्यों की पूर्ती करने में ही नष्ट हुई है। परन्तु मैंने किसी याचक को असन्तुष्ट नहीं किया। हे मित्र 'दान देना उत्तम कार्य है' इसी विश्वास से सम्पूर्ण सम्पत्ति को लुटा देने वाला सत्वशाली मेरा मन कभी भी क्षयभाव को नहीं प्राप्त होता है।

जब चेट (कर्णपूरक) मदमत्त हाथी को मार कर उसके मुख से संन्यासी को बचा लेता है तब चारुदत्त उसके पराक्रम पर प्रसन्न हो उसे अपना आभूषण देना चाहता है परन्तु अपने शरीर को आभूषण शून्य पाकर एक दीर्घ निःश्वास लेकर अपना दुपट्टा ही उसे प्रदान करता है।

'कुलपुत्रेणोचितान्याभरणस्थानानि विलोक्याङ्गुष्ठेनानीयापि पुनरलब्धं' प्रेक्ष्य दैवमुपालभ्य दीर्घनिःश्वस्यैतावान् मे विभव इति कृत्वा परिजनहस्तेऽयं प्रावारकः प्रेषितः।' (द्वितीय अङ्क)

चारुदत्त को दरिद्र होने का जरा भी कष्ट नहीं है। वह विदूषक से कहता दरिद्रता में जो दुर्लभ है वह मेरे पास है-

विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान् ।
सत्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥१।७

अर्थात् विपुल वैभव के कारण सर्वदा पास रहने वाली भार्या तथा सुख-दुःख में साथ रहने वाला तुम्हारे जैसा मित्र साथ है और मेरा मन भी पथभ्रष्ट नहीं हुआ है जब कि ये तीनों दरिद्रावस्था में दुर्लभ हैं।

भाग्यवादी—चारुदत्त भाग्यवाद में विश्वास करता है। वह अपने मित्र विदूषक से कहता है कि धन के नाश की मुझे कोई चिन्ता नहीं है क्योंकि भाग्य के क्रम से धन पुनः हो जाते हैं-

सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता,
भाग्यक्रमेणं हि धनानि पुनर्भवन्ति। १ ।५ ।

मित्रवत्सल–चारुदत्त मित्र वत्सल है। जब चारुदत्त के घर में सज्जलक सेंध लगाकर वसन्तसेना का आभूषण चुरा ले जाता है। और जब विदूषक चारुदत्त से कहता है कि मैंने आभूषणों को तुम्हें सौंप दिया था। तब वह उसका प्रतिवाद नहीं करता है और अपने मित्र के ऊपर क्रोधित भी नहीं होता है कि तुम्हारे हाथ से आभूषणों की चोरी हुई है।

कला प्रेमी–चारुदत्त कला प्रेमी है। चारुदत्त विदूषक से वीणा वादन की कला की प्रशंसा करते हुए कहता है कि-

रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुट च
भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम् ।
किं वा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्वा
भित्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विद्याम् ॥ ३ ।२ ।

अर्थात् वीणा का गान ऐसा था कि राग युक्त उच्च एवं मधुर वैषम्यरहित, परिस्फुट, भावपूर्ण एवं अभिनय प्रयोग से युक्त आदि नाना प्रकार के स्वरों को कह कहकर कहां तक प्रशंसा की जाय। ऐसा मालूम पड़ता है कि दीवार की आड़ से कोई युवती ही गा रही है।

धर्मनिष्ठ–चारुदत्त गृहास्थाश्रम में रहते हुए भी पूजा-पाठ एवं धर्म में विश्वास करता है। वह विदूषक के चतुष्पथ (चौराहे) पर मातेश्वरी आदि शक्तियों के लिए बलि अर्पण हेतु भेजता है। और जब विदूषक इसके प्रति अपनी अश्रद्धा व्यक्त करता है तब वह विदूषक को समझातें हुए कहता है कि अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप पूजा करनी चाहिए। भक्ति से देवता सन्तुष्ट होते हैं-

'यथाविभवेनार्च्यताम् भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि'।

विलास प्रेमी–चारुदत्त विलास प्रेमी है। वह ब्राह्मणी जैसी साध्वी पत्नी को पाकर भी गणिका वसन्तसेना से प्रेम करता है। परन्तु वसन्तसेना के प्रेम में वह इतना निमग्न नहीं हो जाता है कि ब्राह्मणी को भूल जाता है। बल्कि

ब्राह्मणी का भी पूरा ध्यान रखता है। चारुदत्त को यह ज्ञात है कि किस प्रकार अपनी प्रेमिका को मनोनुकूल बनाया जा सकता है। जब उसे ज्ञात होता हैं कि जिसे वह रदनिका समझ रहा था वह वसन्तसेना है तब वह कहता है कि-

'यद्येवमहमपि तावदविज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि'।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि चारुदत्त का चरित्र अनेक वैयक्तिक एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण है। संवाहक उसके गुणों का वर्णन करते हुए कहता है-

'आकृतिमान् अविभ्रमन् अनुत्सिक्तो ललितो ललिततया विस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत याचितस्तुष्टो भवति। दत्वा न विकत्थते। अल्पमपि स्मरति, बहुलमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके! किं बहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेन वर्णयितुं न शक्यम्। किं बहुना, दक्षिणतया परकीयमिवात्मनः शरीरं धारयति।

अर्थात् वह रूपवान्, विद्वान्, मदरहित, ललित और अपने सौन्दर्य पर अभिमान न करने वाला चतुर,मधुर,दक्ष,सहृदय,प्रतिष्ठित और याचकों को सन्तुष्ट करने वाला है। दान देकर किसी से कहता नहीं और अल्प उपकार को भी ध्यान रखता है, बहुत अपकार को विस्मृत कर देता। अधिक क्या कहूँ उस गुणवान् कुलपुत्र के गुणों का वर्णन करने के लिए ग्रीष्मकाल का बड़ा दिन भी अपर्याप्त है। दया-दाक्षिण्यादि गुणों से वह ऐसा जान पड़ता है कि मानों वह अपना शरीर दूसरों के लिए ही धारण करता है।

वसन्तसेना–वसन्तसेना इस रूपक की नीयिका है। यह उज्जयिनी की अत्यन्त धन समृद्धशाली है तथा अत्यन्त सौन्दर्य शाली गणिका है। इसके चरित्र में दया, करुणा,ममता की भावना कूट-कूट कर भरी है। गणिका होते हुए भी यह धन लिप्सा को महत्व न देकर प्रेम को महत्व देती है और चारुदत्त के प्रति अपना प्रेम एकनिष्ठ रखती है। वसन्तसेना चारुदत्त के सौन्दर्य और गुण पर ही मुग्ध होकर चारुदत्त से प्रेम करती है। इसके चारुदत्त के प्रति प्रेम के सम्बन्ध में शकार कहता है कि यह कामदेव के उत्सव में गयी थी और उसी दिन वणिक् पुत्र चारुदत्त के सौन्दर्य को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो गयी।

'आकामदेवानुयानात् प्रभृति नयनमात्रसंस्थुलं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तबटुकं कामयत एषा।' (प्रथम अङ्क)

वसन्तसेना पैसा पर बिकने वाली गणिका नहीं है। चेटी आकर जब उसे यह सूचना देती है कि माता ने कहा है कि आप इस अलङ्कार को ग्रहण कर लें और गाड़ी पर सवार होकर चली जाँय। परन्तु जब उसे यह ज्ञात होता है कि यह अलंकार राजा के साला संस्थान ने भेजा है तो वह क्रोधित हो जाती है। चेटी से वह कहती है कि माता से जाकर कहो कि जब मैं चारुदत्त के पास जाऊँगी उस समय अपने को अलंकृत करूँगी।

वसन्तसेना स्त्री होते हुए भी परिस्थितियों से घबड़ाती नहीं है। शकार और विट जब उसका पीछा करते हैं उस समय वह भयभीत होकर आत्मसमर्पण नहीं करती है और कहती भी है कि मैं अपनी सुरक्षा स्वयं करूँगी- अत्र स्वयमेवात्मा रक्षितव्यः (प्रथम अङ्क)।

वसन्तसेना शरणागत वत्सल भी है। संवाहक जब उसके घर में जाकर शरण लेता है तब वह उसे शरण देते हुए अभय प्रदान करती है। जुआड़ियों को धन देकर संवाहक को उन जुआड़ियों के भय से मुक्त करती है।

और संवाहक को समझाते हुए कहती हैं कि धन के सम्बन्ध में आप चिन्ता न करें। ऐसा समझियेगा कि यह धन आर्य-चारुदत्त ही दे रहे हैं- 'न खल्वार्येणार्थनिमित्ता चिन्ता कर्तव्या। आर्यचारुदत्त एव ददातीत्यार्यो जानातु' (द्वितीय अङ्क) ।

वसन्तसेना जिसका कोई उपकार करती है उससे प्रत्युपकार नहीं लेना चाहती है। संवाहक जब उससे कहता है कि मैं अपने सम्मर्दन कला को आपके परिजनों को सिखा दूँ। संवाहक के इस निवेदन को वसन्तसेना अस्वीकार करते हुए कहती है कि जिसके लिए आप ने इस कला का अभ्यास किया उसी की आप सेवा करें-

'यस्य कृते इयं कला शिक्षिता, स एवार्येणोपस्थातव्यो भविष्यति।' (द्वितीय अङ्क)।

वसन्तसेना अत्यन्त उदारमना है। वह अपने दासियों के प्रति कठोर व्यवहार न करके सखी के समान व्यवहार करती है। उसकी उदारता की पराकाष्ठा देखने को तब मिलती है जब वह अपनी दासी मदनिका को उसके प्रेमी सज्जलक के हाथ में सौंपती है- 'स्वैराभरणैर्मदनिकामंकृत्य'। और उसे गाड़ी पर चढ़ा कर सज्जलक के साथ विदा कर देती है।

वसन्तसेना एक आदर्श प्रेमी है। जिससे प्रेम करती है उससे सच्चे हृदय से करती है। चारुदत्त निर्धन है परन्तु वह उससे प्रेम करती है। चेटी (मदनिका) जब कहती है कि चारुदत्त निर्धन है, तो वसन्तसेना कहती है-

"अत: खलु काम्यते। अति दरिद्रपुरुषसक्ता गणिका अवचनीया भवति।" (द्वितीय अङ्क)।

वसन्तसेना व्यवहार कला में पूर्ण दक्ष है। अपने प्रेमी चारुदत्त के घर में प्रवेश करने पर उससे क्षमा याचना मांगते हुए कहती है कि-"अदत्तभूमि प्रवेशप्रधर्षणेनापराद्धाहमार्यं शीर्षेण प्रसादयामि।" (प्रथम अङ्क)।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि वसन्तसेना के चरित्र में आदर्श प्रेमित्व, उदारता, एवं दानशीलता भरा पड़ा है।

शकार–शकार चारुदत्तम् रूपक का प्रतिनायक है। यह राजा का शाला है। इसके पिता के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं है।साहित्यदर्पणकारने प्रतिनायक के जिन गुणों का निर्धारण किया है वे गुण शकार के चरित्र में देखने को मिलते हैं।

शकार के चरित्र में क्रूरता, विलासिता, निर्दयता, स्त्री-लम्पटत्व, कायरपन, मूर्खता, अभिमान, हठधर्मिता आदि दुर्गुणों का मंजुल समन्वय देखने को मिलता है।

शकार स्त्री- लम्पट है। वह वसन्तसेना को प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास करता है परन्तु वसन्तसेना उसे जरा भी नहीं चाहती है। वह वसन्तसेना के घर आभूषण भेजता है परन्तु वह अस्वीकार कर देती है। बसन्तसेना उसे हेय दृष्टि से देखती है। शकार अत्यन्त अभिमानी है उसे इस बात का गर्व है कि वह राजा का शाला है।

शकार अत्यन्त मूर्ख है। उसकी इतिहास विरुद्ध बातों से ऐसा लगता है कि वह इतिहास की पूर्ण जानकारी नहीं रखता है। वसन्तसेना का पीछा करते समय वह कहता है कि मैं तुम्हारे केशों को पकड़ कर उस प्रकार लाऊँगा जिस प्रकार दुःशासन ने सीता को - सीतामिवाहरामि ।श्लो. १ ।१२ ।

शकार जब वसन्तसेना के कहे वाक्य का अर्थ न समझकर विट से यह कहता है कि यह गणिका मुझे 'थका हुआ (श्रान्त) कहती है। उस समय विट इसकी मूर्खता पर कहता है कि यह पुरुष रूपी पशु है जिसका व्यवहार निन्दित एवं प्रतिभाशून्य है-

"अनुचितगतिरप्रगल्भवाक्यः
पुरुषमयस्य पशोर्नवावतारः ॥१ ॥१६ ।

शकार इतना मूर्ख है कि वह क्या कह रहा है इसका उसे कुछ ज्ञान नहीं है। यह कहता है कि मैं कानों के द्वारा गन्ध सुनता हूँ एवं अन्धकार से पूर्ण नासिका से कुछ नहीं देख रहा हूँ—"श्रृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम्।" अन्धकार पूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि।" (प्रथम अङ्क) ।

निष्कर्षतः शकार महामूर्ख तथा दुष्ट व्यक्ति है।

सज्जलक–सज्जलक मदानिका का प्रेमी है। यह उच्च कुल में उत्पन्न है परन्तु गरीब है। यह शरीर से हृष्ट-पुष्ट, बलवान् तथा चौर्य कला में निपुण है। वह अपने सम्बन्ध में कहता है कि-

मार्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने
निद्रासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने संसर्पणे पन्नगः ।
माया वर्णशरीरभेदकरणे वाग् देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु सङ्कटे च तिमिरं वायुः स्थले नौर्जले ॥३ ।११

अर्थात् मैं कूदकर भागने में मार्जार, चलने में वृक, घर के अवलोकन में बाज, सोये मनुष्य के बल का पता लगाने निद्रा देवी, चलने में सर्प, शरीर के विश्लेषण में माया, देश-देशान्तर की भाषा जानने में सरस्वती, रात्रि में दीप, विपत्ति में अन्धकार, पृथ्वी पर वायु और जल में नौका के समान हूँ।

मदनिका के प्रेमपाश में आबद्ध होकर उसे वसन्तसेना के यहां से मुक्ति दिलाने हेतु वह चौर्यकर्म करता है। परन्तु चौर्यकर्म को वह निन्दित नहीं समझता है। वह कहता है कि-

कामं नीचमिदं वदन्तु विबुधाः सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभवः शौर्यं न कार्कश्यता ।
स्वाधीना वचनीयताऽपि तु वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः
मार्गश्चैष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥३।६

अर्थात् लोगों के सो जाने पर चौर्यकर्म करने से विद्वान् लोग इसे निकृष्ट कहते हैं क्योंकि छलपूर्वक जो कार्य किया जा सकता है उसे वीर कार्य न कह कर क्रूर कार्य कहते हैं। परन्तु किसी के सामने हाथ फैलाकर मांगना अच्छा नहीं है एवं इस कार्य को अतीत काल में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों का वध करने में किया था।

सज्जलक चोर होते हुए भी इस बात का ध्यान रखता है किसके किसके घर चोरी करना चाहिए और किसके घर चोरी नहीं करना चाहिए। कामदेव के वशीभूत होकर ही वह चोरी करता है। वह कहता है "किं वा न कारयति मन्मथः ।" (तृतीय अङ्क)।

सज्जलक चौर्यकर्म का पूर्ण जानकार है कि किस स्थान पर एवं किस प्रकार की सेंध (सुरङ्ग) लगानी चाहिए। वह विभिन्न प्रकार के सुरङ्गों का नाम लेकर कहता है कि किस प्रकार का सुरङ्ग बनाना उचित होगा-

सिंहाक्रान्तं पूर्णचन्द्रं झषास्यं
चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्रं त्रिकोणम् ।
सन्धिच्छेदः पीठिका वा गजास्य-
मस्मत्पक्ष्या विस्मितास्ते कथं स्युः ॥३।९

अर्थात् सिंह की उछाल के समान वक्र वा पूर्ण चन्द्राकार, मकर के मुख के समान अथवा अर्द्ध चन्द्राकार, व्याघ्र के मुख के समान, तिकोनी, चौकोनी या गज के मुख की आकृति वाली सुरङ्ग हो जिससे चौर्यकार्य में दक्ष लोग भी आश्चर्यचकित हो जाये।

सज्जलक गलत कार्यों को करने के बाद पश्चात् भी करता है। चारुदत्त के घर अलंकारों को चुराने के पश्चात् वह अपने यौवन एवं दरिद्रता को धिक्कारता हुआ कहता है-

धिगस्तु खलु दारिद्र्यामनिर्वेदं च यौवनम् ।
यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च ॥३।१४

वह गलत कार्यों को समझाने पर तुरन्त मानने को तैयार हो जाता है।

मदनिका जब उससे कहती है कि चोरी के आभूषणों को लौटा देना चाहिए इस पर वह सहर्ष तैयार हो जाता है। सज्जलक किसी के उपकार को भुलाता नहीं है बल्कि उसका प्रत्युपकार करने के लिए सोचता है। गणिका वसन्तसेना जब उसे मदनिका को सौंपती है तब वह कहता है कि मैं इनके (वसन्तसेना) के उपकारों का बदला कैसे चुकाऊँगा और अन्त में यह कामना करता है कि चारुदत्त और वसन्तसेना की जो विपत्तिकाल हो वह उनके शत्रु को मिले।

निष्कर्षतः कहा जाता जा सकता है कि सज्जलक चौर्यकर्म में दक्ष, बुद्धिमान् और सफल प्रेमी था।

संवाहक–संवाहक चारुदत्त का भृत्य है। द्वितीय अङ्क में जुआड़ियों के भय से भागकर यह वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। वहां पर अपना परिचय देते हुए बताता है कि मेरा जन्मस्थान पटना है और मैं जाति का वणिक् (बनिया) हूँ। भाग्य के परिवर्तन होने के कारण उसने संवाहक वृत्ति को ग्रहण कर लिया। आगन्तुकों के मुख से उसने यह सुन लिया था कि संवाहक वृत्ति के योग्य उज्जयिनी में बड़े लोग हैं। वह कला समझकर संवाहक का कार्य सीखा था परन्तु बाद में वही उसके भरण-पोषण का साधन बन गयी ।

"कलेति शिक्षिता। आजीविकेदानी सँवृत्ता।"(द्वितीय अङ्क) ।

उज्जयिनी आने पर संवाहक की भेंट चारुदत्त से हुई।वह चारुदत्त के गुणों से इतना प्रभावित हुआ कि अपने परिवारजनों को भी भूल गया-

"ततस्तस्य गुणविक्रीतशरीरो विस्मृतकलत्र उपजीवी संवृतः।"

चारुदत्त जब निर्धनता को प्राप्त होता है एवं संवाहक से कहता है कि तुम दूसरे की सेवा करो उस समय संवाहक किसी दूसरे की सेवा करना उचित न समझकर शरीर की रक्षा के लिए जुआड़ी हो गया। वह जूए में प्रतिदिन जीतता था परन्तु एक दिन दश स्वर्ण मुद्रा से पराजित हो गया। विजयी जुआड़ियों के भय से यह वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। वसन्तसेना के द्वारा भयमुक्त बना दिये जाने पर वह संन्यास ग्रहण कर लेता है।

संवाहक किसी के उपकार का बदला किसी प्रकार चुकाना चाहता है। वसन्तसेना से वह कहता है कि यदि आप की अनुमति हो तो मैं इस सम्मर्दन कला को आपके परिजनों को सिखा दूँ। चारुदत्त के यहां से हट जाने पर भी हमेशा उसके गुणों की प्रशंसा करता रहता है।

विदूषक–चारुदत्त रूपक के विदूषक का नाम मैत्रेय है। यह जाति का ब्राह्मण है। यह सुख-दुःख में हमेशा साथ रहने वाला चारुदत्त का मित्र है। प्रथम अङ्क में यह आता है। इसकी बातों से यह ज्ञात होता है कि यह खाने-पीने पर विशेष जोर देता है। जब चारुदत्त सम्पन्न था उस समय नाना प्रकार के व्यञ्जनों को खाता था। परन्तु इस समय चारुदत्त के निर्धन हो जाने पर अन्यत्र भोजन करने पर भी उसके पास चला आता है।

ब्राह्मण होते हुए भी विदूषक को पूजा में विशेष रुचि नहीं है। चारुदत्त जब उसे बलि अर्पण के लिए चौराहे पर भेजता है उस समय वह कहता है कि इसमें मेरी श्रद्धा नहीं है "न मे श्रद्धा" (प्रथम अङ्क)।

विदूषक संगीत कला का प्रेमी नहीं है। तृतीय अङ्क में जब चारुदत्त उससे वीणा वादन की प्रशंसा करने लगता है तो यह बात उसे अच्छी नहीं लगती है और वह कहता है कि आप भले प्रशंसा करें परन्तु गाता हुआ पुरुष या गाती हुई स्त्री कोई मेरे अनुराग को नहीं बढ़ा सकता है। लाल माला धारण किये हुए पुरोहित के समान मनुष्य अच्छा नहीं लगता और पाठ करती स्त्री कटी नासिका वाली गाय के समान रूपहीन मालूम पड़ती है-

"कामं प्रशंसतु भवान्। मम खलु तावद् गायन् मनुष्यः स्त्र्यपि पठन्त्युभयमादरं न ददाति। गायंस्तावन्मनुष्यो रक्तसुमनोवेष्टित इव पुरोहितो

दृढ़ं न शोभते। स्त्र्यपि पठन्ती छिन्ननासिकेव धेनुरतिविरूपा भवति।" (तृतीय अङ्क)।

विदूषक चारुदत्त की निर्धनता पर दुःखी है। परन्तु चारुदत्त को ढाँढस बधाते हुए कहता है कि-"अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्तुम्। पुरुषयौवनानीव गृहयौवनानि खलु दशाविशेषमनुभवन्ति। आसमुद्रदानविपन्नविभवस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य ज्योत्स्नापरिक्षय इव भवत एव रमणीयोऽयं दरिद्रभावः।" (प्रथम अङ्क)।

अर्थात् इस समय आपको शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि पुरुष की युवावस्था के समान घर की अवस्था भी बदलती रहती है। समुद्र के समान विपुल सम्पत्ति को दान में देकर विनष्ट करने वाले आप की यह दरिद्रावस्था कृष्णपक्ष के क्षय हुई चन्द्रमा की कला के समान सुन्दर लगती है।

विदूषक किसी प्रकार का मानसिक कष्ट भी चारुदत्त को नहीं होने देना चाहता है। इसलिए शकार के द्वारा रदनिका के अपमानित होने की घटना वह चारुदत्त से नहीं बताता है।

विदूषक भीरु स्वभाव का है। वह अकेले अन्धेरे में चौराहे पर बलिकर्म निमित्त जाने से इनकार कर देता है। परन्तु रदनिका के साथ दीपक लेकर जाने के लिए तैयार हो जाता है।

विदूषक अपने मित्र चारुदत्त का हमेशा लाभ सोचता है। जब चारुदत्त वसन्तसेना के अलङ्कारों के बदले में बहुमूल्य रत्नावली देना चाहता है तो वह चारुदत्त से कहता है कि अल्पमूल्य वाले सुवर्ण भाण्ड के बदले शत सहस्र मूल्य वाली यह मुक्तावली क्यों देनी चाहिए ?

"अहो अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डकस्य कृते शतसहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातयितव्या।" (तृतीय अङ्क)।

विदूषक हास्य प्रिय है एवं वह मजाक भी करता है। जब चारुदत्त के पास वसन्तसेना जाती है और जब परस्पर दोनों प्रेमी क्षमा-याचना आपस में मांगने लगते हैं उस समय वह कहता है कि गाड़ी खींचने में लगे दो बैलों के समान ये दोनों परस्पर अनुनय-विनय के द्वारा एक दूसरे को कष्ट पहुँचा रहे

हैं-"भोः ! विवदन्ताविव शकटिकां दुर्विनीतबलीवर्दावन्योन्यं संक्लेशयतः।" (प्रथम अङ्क)।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वह सुख-दुःख में मित्र के साथ रहने वाला हास्यप्रिय व्यक्ति है।

मदनिका–मदनिका वसन्तसेना की क्रीत दासी है। परन्तु अपने कुशल व्यवहार एवं वाक् पटुता के आधार पर वसन्तसेना के हृदय को जीत कर उसकी अन्तरंग सखी बन जाती है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अपना अनुराग सबसे पहले मदनिका से ही बतलाती है। मदनिका सज्जलक की प्रेमिका है। इसी को दासीपन से मुक्त दिलाने हेतु सज्जलक चारुदत्त के घर चोरी करता है। मदनिका सद्विवेक और सद् बुद्धि वाली स्त्री है। जब सज्जलक सुवर्ण भाण्ड को चुराकर उससे मिलता है तो वह उसे यह परामर्श देती है कि इसे चारुदत्त के पास लौटा दे। जब वह चारुदत्त के पास जाने में असमर्थता व्यक्त करता है तब वह उसे दूसरा उपाय बतलाती है कि इसे वसन्तसेना के पास ही लौटा दे।

मदनिका उच्च विचार वाली स्त्री है। उसके लिए सज्जलक ने चोरी किया इसका उसे बहुत दुःख है। वह कहती है कि मेरे लिए तुम्हारे शरीर और चरित्र दोनों सन्देह युक्त हो गये। "हा धिग् मम कृते उभयं संशयितं संवृतं-तव शरीरं चरित्रं च।" (चतुर्थ अङ्क)

मदनिका गणिका जीवन की अपेक्षा गृहस्थाश्रम को श्रेयस्कर समझती है। इसीलिए वसन्तसेना के द्वारा सज्जलक को एक गृहणी के रूप में सौंपने पर कोई प्रतिकार न कर मन ही मन अनुमोदन ही करती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मदनिका एक गणिका होते हुए भी अपनी स्वामिकी, अच्छी सखी तथा अपने प्रेमी को सत् परामर्श देने वाली नारी है।

ब्राह्मणी—चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है। नाटककार ने ब्राह्मणी का चरित्र एक आदर्श भारतीय ललना के रूप में उपस्थापित किया है। पति के सुख-दुःख में ही इसका सुख-दुःख निहित है। ब्राह्मणी को जब यह ज्ञात होता

है कि उसका पति गणिका वसन्तसेना से प्रेम करता, है इससे वह जरा भी विचलित नहीं होती और न ही चारुदत्त से इसके सम्बन्ध में कुछ कहती है।

वह अपने पति की प्रतिष्ठा को अपनी प्रतिष्ठा मानती है। जब चारुदत्त के संरक्षण में से सुवर्ण भाण्ड को सज्जलक चुरा लेता है तब वह पति को कलंक से बचाने के लिए सहस्र मूल्य वाली अपनी रत्नावली सहर्ष स्वयं विदूषक के माध्यम से अपने पति के पास वसन्तसेना को देने के लिए भिजवाती है। वह जानती है इस तरह पतिदेव मेरे रत्नावली को स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए वह विदूषक को बुलाकर षष्ठी व्रत के उपवास एवं ब्राह्मण को दान देने की बात बताकर विदूषक को रत्नावली सौंपती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणी को चरित्र में पति परायणता तथा पति के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने की भावना कूट-कूट कर भरी है। वह एक आदर्श भारतीय ललना है।

समीक्षण–संस्कृत के नाट्य साहित्य में महाकवि भास का अन्यतम स्थान है। भास के नाटकों की कड़ी में चारुदत्तम् अन्तिम नाटक है। महाकवि भास ने इस नाटक का सृजन उस समय किया जब उनकी लेखनकला पूर्ण प्रौढ़ि पर थी। यह नाटक चार अङ्कों में समाप्त होता है। परन्तु इस नाटक का कथानक एकाएक समाप्त हो जाता है इससे यह सम्भावना व्यक्त की जाती है कि नाटक के सृजन काल में ही नाटककार काल के गाल में समा गया हो। और यह नाटक अधूरा ही रह गया हो। क्यों कि वर्तमान में शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' को देखने से लगता है कि यह नाटक पूर्ण नहीं है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक बेजोड़ है। इसमें नाना प्रकार के चरित्रों को धारण करने वाले पात्रों का मञ्जुल समन्वय किया गया है। एक तरफ चारुदत्त अत्यन्त ही दानी और गुणवान् है तो दूसरी ओर शकार दुष्टता की मूर्ति है जिसके रग-रग मे खलपन एवं क्रूरता भरा हुआ है। नाटक की नायिकायें भी अपना विशेष महत्व रखती हैं। पति परायणा साध्वी ब्राह्मणी, गणिका वसन्तसेना, मदनिका अपना विशेष महत्त्व रखती है।

नाटककार ने नाटक के नायक चारुदत्त का चरित्राङ्कन ऐसा किया है जो कि एक सरोवर के समान सबकी प्यास बुझाता है और स्वयं सूख जाता है-

स मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतो
न तस्य कश्चिद् विभवैरमण्डितः ।
निदाघसंशुष्क इव ह्रदो महान्
नृणां तु तृष्णामपनीय शुष्यति ॥ १ ।२६

अर्थात् वह याचकों की याचना के कारण क्षीणकाय हो गया है। उसके वैभव से कोई भी व्यक्ति असत्कृत नहीं हुआ, वह एक सरोवर के समान सबकी प्यास बुझा कर स्वयं निर्धन हो गया।

भास ने नाना प्रकार के पात्रों का चित्रण किया है। कोई आदर्श गुणों से युक्त है तो कोई प्रेम की वलिवेदी पर सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। कोई पति परायणा पत्नी है। इसी प्रकार सुख-दुःख में साथ रहने वाला अच्छा मित्र, चौर्यकला में निपुण चोर, दासी, सेवक, आदि इस नाटक के पात्र हैं।

चारुदत्त सरल एवं बोधगम्य है। अभिनय कला की दृष्टि से भी यह सफल है। नाटकीय पात्रों की भाषा एवं कथनोपकथन प्रभावोत्पादक एवं सूक्ति युक्त है।

महाकवि भास एक क्रान्तदर्शी कवि हैं। इसीलिए उन्होंने नाना प्रकार की भावदशाओं का वर्णन किया है। चारुदत्त के माध्यम से गरीब व्यक्ति की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं-

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति ॥ १ ।३ ।

अर्थात् दुःख के बाद सुख अच्छा लगता है जैसे अन्धकार के बाद प्रकाश रुचिकर होता है। परन्तु सुख के बाद दुःख प्राप्त होना शरीर रहते हुए भी मरण के समान जीना है।

तथा-

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
निर्वैरा विमुखी भवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥१ ।६ ।

अर्थात् दरिद्रता के कारण कुटुम्बी जन आज्ञा में नहीं रहते। बल या तेज हास्य का विषय बन जाता है, कान्ति मलिन हो जाती है। बिना शत्रुता के मित्र लोग विमुख हो जाते हैं। विपत्तियां बढ़ जाती हैं। दूसरे के द्वारा किया गया पाप कर्म उसी के द्वारा किया गया लोग सोचने लगते हैं।

गरीब होने पर स्त्री का धन लेने पर पुरुष की मनःस्थिति का वर्णन कितना सुन्दर है-

मयि द्रव्यक्षयक्षीणे स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः
अर्थतः षुरुषो नारी या नारी साऽर्थतः पुमान् ॥३ ॥९६

अर्थात् धन के नाश होने पर स्त्री से धन लिया हूँ इसलिए इस समय सचमुच पुरुष नारी के समान और नारी पुरुष के समान हो गयी है। व्यक्ति के सोने पर उसकी स्थिति कैसी हो जाती है इसका सुन्दर वर्णन देखा जा सकता है-

निःश्वासोऽस्य न सङ्कितो न विषमस्तुल्यान्तरं जायते
गात्रं सन्धिषु दीर्घतामुपगतं शय्या प्रमाणाधिकम् ।
दृष्टिर्गाढनिमीलता न चपलं पक्ष्मान्तरं जायते
दीपं चैव न मर्षयेदभिमुखः स्याल्लक्षसुप्तो यदि ॥३ ॥१३

अर्थात् श्वास निःसङ्क होकर चल रही है, शरीर के सन्धियों में फैलाव के कारण उनमें दीर्घता आगयी है जिससे शैया से लम्बी हो गयी हैं। आंखें बन्द तथा पलकें निश्छल है। यदि यह सोने का बहाना करता है तो सामने के प्रकाश को सहन नहीं कर सकता।

नाटक में प्रकृति का भी सुन्दर वर्णन हुआ है। अन्धकार का वर्णन देखिये-

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥१ ।१९ ।

तथा

सुलभ शरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव ।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः ॥१ ।२०

तथा-

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशसञ्छन्ना ।
उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण ॥१ ।२९

अर्थात्—देखने में पटु मेरी दृष्टि अन्धकार के कारण आच्छन्न हो जाती हैं। आखें खुली हैं परन्तु अन्धकार से मानों बन्द कर दी गयी हैं।

अस्त होते हुए अष्टमी के चन्द्रमा का वर्णन कितना सुन्दर है देखिए-

असौ हि दत्वा तिमिरावकाशमस्तंगतो ह्यष्टमपक्षचन्द्रः ।
तोयावगाढस्य वनद्विपस्य विषाणकोटीव निमज्जमाना ॥३ ।३ ।

अर्थात् वह अष्टमी का चन्द्रमा अन्धकार को अवकाश देकर अस्त हो रहा है। उससे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो जल के भीतर डुबकी खाये हुए बनैले हाथी के दातों की कोटियां भी डूब गयी हों।

चन्द्रोदय का वर्णन देखिये-

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥१ ।२९

अर्थात् आर्द्र खजूर के समान पाण्डुवर्ण वाला, युवतियों का सहायक तथा राजमार्ग का प्रदीप यह चन्द्रमा उदय हो रहा है। अन्धकार समूह में इसकी शुभ्ररश्मियां जलहीन पंक में दुग्ध धारा के समान प्रतीत हो रही हैं। यह उपमा का सुन्दर उदाहरण है।

भास ने विभिन्न रसों का नाटक में प्रयोग किया है। श्रृंगार रस सर्वत्र झलकता है और बीच-बीच में अन्या रसों का प्रयोग भी समयानुसार प्रदर्शित किया गया है।

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती ।
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि-
र्व्याघ्रनुस्वारचकिता हरिणीव यासि ॥१ ।९

भय से भाग रही नायिका का सुन्दर वर्णन देखिये—

अर्थात्-तुम भय के कारण अपनी सुकुमार गति को परिवर्तित करती हुई एवं नृत्य कला में दक्ष चरणों को रखती हुई, उद्विग्न एवं चञ्चल कटाक्षों से आघात करती हुई, व्याघ्र द्वारा पीछा की गयी अतएव डरी हुई हरिणी के समान क्यों भागी जा रही हो।

नाटक में देश-काल का चित्रण भी विस्तृत रूप से हुआ है। सज्जलक के द्वारा वसन्तसेना के घर से चेटी (मदनिका) का मुक्त कराया जाना दास प्रथा का संकेत देता है। वेश्यावृत्ति का भी प्रचलन था। क्योंकि विट वसन्तसेना को कहता है कि "वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरम्"। (१ ।१७)

उस समय द्यूतक्रीड़ा का भी प्रचलन था। क्योंकि संवाहक जूए में ही दस स्वर्णमुद्रा हार चुका है और उसी को चुकाने के भय से वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। चारुदत्त भी विदूषक से वसन्तसेना के पास उसके आभूषणों को जूए में हारने का मिथ्या समाचार भेजवाता है।

चारुदत्त एवं मृच्छकटिक–भास के नाटक 'दरिद्र चारुदत्त' तथा शूद्रक के नाटक 'मृच्छकटिकम्' के कथानकों में समानता है। चारुदत्त का कथानक अपूर्ण है और शूद्रक का मृच्छकटिकम् अपने में पूर्ण है। भास के नाटकों के प्रकाश में आ जाने पर अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि शूद्रक ने अपने 'मृच्छकटिकम्' का आधार 'दरिद्रचारुदत्तम्' को बनाया है और अपनी क्षमता तथा योग्यता के आधार पर 'मृच्छकटिकम्' को वृहद् कलेवर प्रदान किया है।

चारुदत्तगतानि सुभाषतानि

(१) सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति ॥१ ।३ ।

(२) दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते,
सत्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
निर्वैरा विमुखी भवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥ १ ।६ ।

(३) जनयति खलु रोषं प्रश्रयो भिद्यमानः ॥ १ ।१४ ।

(४) स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥ ४ ।६ ।

चारुदत्तम् नाटक के पात्र–

पुरुष पात्र

नायक–दरिद्र सार्थवाहपुत्र चारुदत्त।

विदूषक–(मैत्रेय) चारुदत्त का मित्र।

शकार–(संस्थानक) राजा का श्यालक : प्रतिनायक।

विट–शकार का सहचर।

संवाहक–चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य (मालिश करने वाला) जुआड़ी।

चेट–(कर्णपूर) वसन्तसेना का दास।

सज्जलक–मदानिका का प्रेमी (चोर)।

स्त्री-पात्र

गणिका–नायिका : वसन्तसेना

ब्राह्मणी–चारुदत्त की भार्या

रदनिका–चारुदत्त की दासी (चेटी)

मदनिका–वसन्तसेना की विश्वस्त दासी : सज्जलक की प्रेमिका

विच्छित्तिका–वसन्तसेना की परिचारिका

चतुरिका-वसन्तसेना की परिचारिका।

नटी–सूत्रधार की स्त्री।

॥श्रीः॥

चारुदत्तम्

महाकविभासविरचितं

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

[नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

सूत्रधार-किण्णु खु अज्ज पच्चूस एव्व गेहादो णिक्खन्तस्स बुभुक्खाए पुक्खर पत्तयपडिदजलविन्दू विअ चञ्चलाअति विअ में अक्खीणि (परिक्रम्य) जाव गेहं गच्छिअ जाणामि किण्णु खु संविधा

॥श्रीगणपतिर्जयतु॥

नत्वा साम्बं शिवं विष्णुं भानुं चैव गणाधिपम्।
चारुदत्तस्य गङ्गाख्या मया टीका विधीयते॥

अथ महाकविर्भासः लोकानुरञ्जनाय चारुदत्तामिधं नाटकं प्रारिप्सुर्भूमिकामारचयति 'नान्द्यन्ते तत' इत्यादिना। तत्र तावन्नाटकं नाम 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्च सन्धिसमन्वितम्' इत्यादि लक्षणसमन्वितम्। ग्रन्थस्य प्रारम्भे विघ्नविनाशाय मङ्गलविधानं नितरामावश्यकं नाटकरचनानियमप्राप्तं च कर्तव्यमुद्दिशन् नाटककारः नान्द्यन्ते' पदेन मङ्गलाचरणं सूचयति। तत्र नान्दीलक्षणम्-

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नादीति संज्ञिता॥

तस्या अन्ते समाप्तौ नान्दीविधानानन्तरम्।

नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है।

सूत्रधार-क्यों आज उषः काल में ही घर से बाहर निकलते मेरी आँखें भूख के कारण कमल पत्र पर पड़े जल विन्दुओं के समान चञ्चल ही रही हैं।

विहिदा ण वेत्ति। (परिक्रम्य) एदं अम्हाण गेहं। जाव पविसामि। (प्रविश्यावलोक्य)जह लोहीपरिवट्टणकाल-सारा भूमी, णेउब्भामणसुगन्धो विअ गन्धो, सुणिमित्तं विअ परिब्भमन्तो वडिवस्सअजणो, किण्णु खु संविधा विहिदा। आदु बुभुक्खाए ओदणमअं विअ जीवलोअं पेक्खामि। जाद अय्यां सद्दावेमि। अय्ये!इदो दाव। [किन्तु खल्वद्य प्रत्यूष एव गेहान्निष्क्रान्तस्य बुभुक्षया पुष्करपत्रपतितजलबिन्दू इव चञ्चलायेते इव मेऽक्षिणी। यावद् गेहं गत्वा जानागि किन्तु खलु संविधा विहिता न वेति। एतदस्माकं गेहम्। यावत् प्रविशामि। यथा लौहीपरिवर्तनकालसारा भूमिः, स्नेहोद्भावनसुगन्ध इव गन्धः, सुनिमित्तमिव परिभ्रमन् वरिवस्यकजनः, किन्तु खलु संविधा विहिता। अथवा बुभुक्षयौदनमयमिव जीवलोकं पश्यामि। यावदार्यां शब्दापयामि। आर्ये! इतस्तावत्।]

प्रविशति रंगमञ्चं समागच्छति। कस्यायं प्रवेश इत्याकांक्षायामाह सूत्रधार इति। सूत्रधारस्तु।नाट कीयपदार्थानुष्ठानसंविधानकादिकार्यकुशलः नाटकपात्रविशेषः। सूत्रं नाटकवीजं तद्धारयति वहति उपन्यस्यतीति तात्पर्याः। तल्लक्षणं यथा-नाटयस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सवीजकम्। रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इहोदितः। सूत्रधारः कथयतीति शेषः प्रत्यूष एव = प्रातःकाले एव। अक्षिणी = लोचनयुग्मे। बुभुक्षया = क्षुधाधिक्येन। पुष्करपत्रपतितजलबिन्दू इव पुष्करस्य = कमलस्य। पत्रे दले पतितौ पुष्करपत्रपतितौ जलबिन्दू = सलिलकणौ इव = यथा। गेहम् = भवनम्। गत्वा = प्रविश्य। सवि᠎᠎᠎ा = भोजनोपकरणानि। लौहीपरिवर्त्तनकालसारा लौही = लोहनिर्मितदण्डः तस्या परिवर्त्तनेन = ७.तेशयसंघट्टनेन हेतुना कालसारा = अतिस्शयकृष्णवर्णा। भूमिः = पृथ्वी। स्नेहोद्भावनसुगन्धः सुष्ठुगन्धयुक्तः। सुनिमित्तम् = शोभनोत्सवसूचितम् वरिवस्यकजनः = सेवकजनः व्रतानुष्ठापकः पूजकजनो वा। संविधा = भोजनोपकरणव्यवस्था। विहिता = कृता। जीवलोकम् समग्रं जगत्।

तब तक घर के अन्दर जा कर पता लगाता हूँ कि वहाँ खाने-पीने के योग्य भोजन सामग्री का कोई प्रबन्ध है या नहीं ? यह रहा मेरा घर। तो इसमें प्रवेश करता हूँ।

(प्रवेश कर चारो ओर देख कर)

लोहे के वर्त्तनों को बारम्बार रगड़ने के कारण यहाँ की सारी भूमि काली पड़ गई है। गन्ध तो ऐसी आ रही है जैसे घृतादि चिकने पदार्थों की उद्भावना (छौंक) देने से आ रही हो।

यहाँ किसी विशेष उद्देश्य के कारण ही धार्मिक एवं सुसेवक जन इधर उधर घूमते हुये दिखायी पड़ रहे हैं। क्या भोजन की व्यवस्था है ? अथवा भूख के कारण मैं समस्त जगत् को अन्नमय देख रहा हूँ। तब तक आर्या को बुलाता हूँ। आर्ये! यहाँ आओ।

(प्रविश्य)

नटी – अय्य ! इअं म्हि। अय्य ! दिट्ठआ खु सि आअदो [आर्य! इयमस्मि! आर्य! दिष्ट्या खल्वस्यागतः]।

सूत्रधारः – अय्ये ! किं अत्थि अम्हाणं गेहे को वि पादरासो। [आर्ये ! किमस्त्यस्माकं गेहे कोऽपि प्रातराशः।]

नटी – अत्थि। [अस्ति]

सूत्रधारः – चिरं जीव। एवं सोभणाणि भोअणाणि दत्तिआ होहि। [चिरं जीव। एवं शोभनानि भोजनानि दात्री भव।]

नटी – अय्य ! तुवं एव्व पडिवालन्ती चिट्ठामि। [आर्य ! त्वामेव प्रतिपालयन्ती तिष्ठामि।]

सूत्रधारः – अय्ये ! किं अत्थि अब्भत्थिदं। [आर्ये ! किमस्त्यभ्यर्थितम् ।]

नटी – अत्थि। [अस्ति।]

ओदनमयमिव = सिद्धान्नमयम् इव। शब्दापयामि = आह्वयामि। प्रातराशः प्रातः प्रभाते अश्यते भोज्यते प्रातराशः प्रातःकालिकस्वल्पभोज्यपदार्थः। जलपान इतिभाषयाम् अभ्यर्थितम् = याचनीयम् वस्तु। आश्वासयन्तु = आशिषा संवर्धयन्तु। अन्तरापणे = आपणकाभ्यन्तरे। एवम् अनेन प्रकारेण। ते = तव। आशा = मानसोऽभिलाषः। छिद्यताम् = विनश्यताम्। अभावं च गमिष्यसि = दरिद्रतां प्राप्स्यसि। चण्डप्रवातलण्डितः चण्डः = अत्युग्रः प्रवातः = वायुः तेन लण्डितः = उत्क्षिप्तः। वरण्डः = तृणसमूहः इव = यथा। पर्वतात् = महतो मनोरथात् अत्युच्चस्थानाच्च। पातितः = विभ्रंशितः। यथा प्रचण्डवायुना पर्वताग्रात् तृणसमूहमाक्षिप्तम् अधःप्रदेशे पात्यते

(नटी प्रवेश कर)

नटी – मै यहाँ हूँ। हमारे भाग्य से आप भी आ गये।

सूत्र० – आर्ये ! क्या हमारे घर में स्वल्पाहार की कोई व्यवस्था है ?

नटी – हाँ है।

सूत्र० – तुम बहुत काल तक जीती रहो। इसी प्रकार से उत्तमोत्तम भोजन देती रहो।

नटी – आर्य ! मै तो आप के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी हूँ।

सूत्र० – आर्ये ! तब तुम क्या चाहती है ?

नटी – एक प्रार्थना है।

सूत्रधारः – एवं देवा तुमं अस्सासअन्तु। अय्ये! किं किं। [एवं देवास्त्वामाश्वासयन्तु। आर्ये! किं किम् ?]

नटी – घिदं गुलं दहिं तण्डुला ज सव्वं अत्थि। [घृतं गुडो दधि तण्डुलाश्च सर्वमस्ति।]

सूत्रधारः – एवं सव्वं अम्हाणं गेहे अत्थि। [एतत् सर्वमस्माकं गेहेऽस्ति।]

नटी – णहि णहि। अन्तलावणे। [नहि नहि। अन्तरापणे।]

सूत्रधारः – (सरोषम्) आः अणय्ये ! एवं दे आसा छिन्दीअदु। अभावं च गमिस्ससि। अहं चण्डप्पवादलण्डिओ विअ वरण्डी पव्वदादो दूरं आरोविअ पाडिदो म्हि। [आः अनार्ये ! एवं ते आशा छिद्यताम्। अभावं च गमिष्यसि। अहं चण्डप्रवातलण्डित इव वरण्डः पर्वताद् दूरमारोप्य पातितोऽस्मि।]

नटी – मा भाआहि मा भाआहि। मुहुत्तअं पडिवालेदु अय्यो। सवं सज्जं भविस्सदि। लद्धं णाम एवं। अज्ज मम उववासस्स अय्यो सहायो होदु। [मा बिभीहि मा विभीहि। मुहूर्तकं

तथा त्वयापि भोजनरूपामाशां प्रतिज्ञायेदानीं निराशः संपाद्यते। मा विभीहि = शीघ्रतया भयनिरसनार्थं द्विर्वचनम्। मुहूर्तकं = क्षणमात्रम्। प्रतिपालयतु = तिष्ठतु, प्रतीक्षां करोतु। सज्जम् = समुद्यतम्। लब्धम् = प्राप्तम्। अभिरूपपतिः अभिरूपः = सुन्दरः पतिः = भर्त्ता येन प्राप्यते तन्नामकमुपवासात्मकं व्रतम्। अनेन व्रतानुष्ठानेन पतिः सौन्दर्यं लभते इति भावः। अन्यजात्याम् = अन्यजन्मनि। आम् = बाढम्। उपदेशिकः =उपदेष्टा। वरिवयस्केन = देवभक्तेन व्रतानुष्ठापकेन वा चूर्णगोष्ठाभिधेन देवभक्तेनेत्यर्थः।साधु = वाढम् अनुग्रहः = अनुकम्पा। इच्छेयम् = अभिलषेयम्। अस्मादृशजनयोग्यम् = अस्मादृशजनानुरूपम्। धर्मिष्ठः = धर्मयुक्तः।

सूत्र० – देवता तुम्हें आश्वस्त रखें। आर्ये क्या (भोजन सामग्री) है?

नटी – घी, गुड, दही और चावल सभी पदार्थ हैं।

सूत्र० – क्या ये सभी पदार्थ हमारे घर में ही हैं?

नटी – नहीं। घर में नहीं किन्तु बाजार में हैं।

सूत्र० – (क्रुद्ध होकर) अरी दुष्टे ! तुम्हारी आशा भंग हो जावे। और तुम भी अभावग्रस्त रहो। क्योंकि तुमने प्रचण्ड वायु के द्वारा उड़ाये गये तृणसमूह की भाँति मुझे पर्वत पर चढा कर नीचे गिरा दिया है। जिससे मेरी सारी भोजन की आशा पर पानी फिर गया।

नटी – आप इतने संत्रस्त एवं भयभीत न हो। क्षण भर प्रतीक्षा करें। सब कुछ आप को प्रस्तुत मिलेगा। सब कुछ मौजूद है। आज ! आर्य मेरे उपवास के सहायक बनें।

प्रतिपालयत्वार्यः सर्वं सज्जं भविष्यति। लब्धं नामैतत्। अद्य ममोपवासस्यार्यः सहायो भवतु।]

सूत्रधारः – किण्णामहेओ अय्याए उपवासो। [किन्नामधेय आर्याया उपवासः।]

नटी – अभिरूववदी णाम। [अभिरूपपतिर्नाम।]

सूत्रधारः – किं अण्णजादीए। [किमन्यजात्याम्।]

नटी – आम।[आम्।]

सूत्रधारः – सब्वं दाव चट्ठदु। को णु दाणिं अय्याए उववासस्स उवदेसियो। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। कोन्विदानीमार्याया उपवासस्योपदेशिकः।]

नटी – इमिणा वडिवस्सएण चुण्णगोट्ठेण। [अनेन वरिवस्यकेन चूर्णगोष्ठेन।]

सूत्रधारः – साहु चुण्णगोट्ठ ! साहु। [साधु चूर्णगोष्ठ ! साधु।]

नटी – जइ अय्यस्स अणुग्गहो, तदो इच्छेअं अम्हारिसजणजोग्गं कंचि बम्हणं निमन्तेदुं। [यद्यार्यस्यानुग्रहः, तत इच्छेयमस्मादृशजनयोग्यं कंचिद् ब्राह्मणं निमन्त्रयितुम्।]

सूत्रधारः – धम्मिट्ठो खु णिओओ। तेण पादरासो वि मे भविस्सदि। जइ एव्वं, पविसदु

नियोगः = आदेशः। वयस्यः =मित्रम्। अवमन्यस्व = तिरस्कुरु। सम्पन्नम् = प्राचुर्येण संलब्धम् अशितव्यम् = सुपक्वम् भोजनोपकरणम्। भविष्यति = प्राप्स्यति। दक्षिणा = भोजनोपरान्तं ब्राह्मणार्थे देयं द्रव्यम्। माषकाः = मुद्राः कार्षापणविशेषाः भविष्यन्ति। न केवलं प्राचुर्येण सुपक्कं भोजनं लप्स्यसे किन्तु भोजनान्तरं दक्षिणारूपेण माषपरिमाणकानि : सुवर्णद्रव्याण्यपि लप्स्यसे इत्यर्थः।

सूत्र० – आर्या के उपवास वाले व्रत का नाम क्या है?

नटी – उसका नाम अभिरूप पति है।

सूत्र० – क्या दूसरे जन्म में ?

नटी – हाँ।

सूत्र० – अच्छा ! इन बातों को जाने दो। आर्या के इस उपवास का उपदेशक कौन हैं?

नटी – इन्हीं धार्मिक चूर्णगोष्ठ ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है।

सूत्र० – साधु चूर्णगोष्ठक ! साधु।

नटी – यदि आर्य की अनुकम्पा हो तो अपने लोगों के योग्य किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करें, यही मैं चाहती हूँ।

सूत्र० – यह तो बहुत धर्मसंगत कार्य है। ऐसा करने से मेरा प्रातराश भी हो जायेगा।

अय्या। अहं वि अम्हारिसजणजोग्गं कंचि बह्मणं अण्णेसामि। [धर्मिष्ठः खलु नियोगः। तेन प्रातराशोऽपि मे भविष्यति। यद्येवं प्रविशत्वार्या। अहमप्यस्मादृशजनयोग्यं कंचिद् ब्राह्मणमन्वेषे।]

नटी – जं अय्यो आणवेदी। (निष्क्रान्ता) [यदार्य आज्ञापयति।]

सूत्रधारः – कहि ण्णु खु दरिद्दबम्हणं लभेअं। (विलोक्य) एसो अय्य चेरुदत्तस्स वअस्सो अय्यमेत्तेओ णाम बम्हणो इदो एव्व आअच्छदि। जाव उवणिमन्तेमि। (परिक्रम्य) अय्य! णिमन्तिदो सि। आमन्तणस्स मा दरिद्द त्ति मं अवमण्णेहि। सम्पणं अह्निदव्वं भविस्सदि। घिदं गुलं दहिं तण्डुला अ सव्वं अत्थि। अवि अ दक्खिणामासआणि भविस्सन्ति। [कुत्र नु खलु दरिद्रब्राह्मणं लभेय। एष आर्यचारुदत्तस्य वयस्य आर्यमैत्रेयो नाम ब्राह्मण इत एवागच्छति। यावदुपनिमन्त्रयामि। आर्य! निमन्त्रितोऽसि। आमन्त्रणस्य मा दरिद्र इति मामवमन्यस्व। सम्पन्नमशितव्यं भविष्यति। घृतं गुडो दधि तण्डुलाश्च सर्वमस्ति अपि च दक्षिणामाषका भविष्यन्ति।]

(नेपथ्ये)

अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भवं। अरित्तओ दाव अहं [अन्यमन्यं निमन्त्रयतु तावद् भवान्। अरिक्तकस्तावदहम्।]

नेपथ्ये = नाटकीयपात्राणां तत्तद्वेषभूमिकाग्रहणसाधनम् स्थानम् नेपथ्यम् तस्मिन्। यथाहुः – अन्तर्जवनिकामाहुर्नेपथ्यम्। अरिक्तकः = रिक्तता अभावस्तेन रहितः आढ्येतर इत्यर्थः आर्यचारुदत्तस्य वयस्यं विज्ञाय मां दरिद्रं मा मन्यस्वेत्यर्थः। आर्यमैत्रेयस्य वचनं श्रुत्वा पुनरपि ब्राह्मणमनुरुध्य सुत्रधार आह - घृतगुडेति।

अच्छा यदि ऐसी बात है तो तुम घर के भीतर जाओ। मैं भी अपने लोगों के सरीखे किसी योग्य ब्राह्मण की खोज में जाता हूँ।

नटी – जैसी आर्य की आज्ञा (निकल जाती है)।

सूत्र० – कहाँ मैं दरिद्र ब्राह्मण पाऊँगाँ ? (चारो ओर देखकर) यह चारुदत्त का वयस्य मैत्रेय नामक ब्राह्मण इधर ही आ रहा है, तब तक इसी को निमन्त्रित करता हूँ (घूम कर) आर्य! आपको निमन्त्रित करता हूँ। निमन्त्रण का परित्याग न करें। सारी भोज्य वस्तु की सुविधा होगी। घी, गुड़ दही, चावल सब कुछ मेरे घर पर विद्यमान है, इतना ही नहीं दक्षिणा में एक मासे सोने का सिक्का भी प्राप्त होगा।

(नेपथ्य में)

तब तक आप किसी दूसरे को निमन्त्रित करें मैं अभावग्रस्त अथवा दरिद्र नहीं हूँ।

सूत्रधारः

घिदगुलदहिसुसमिद्धं धूविअसूवोवदंससम्मिण्णं ।
सक्कादत्तमिट्टं भुञ्जीअदु भक्तमय्येण ॥१ ॥
[घृतगुडदधिसुसमृद्धं धूपितसूपोपदंशसंभिन्नम् ।
सत्कारदत्तमिष्टं भुज्यतां भक्तमार्येण ॥१ ॥]

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

ततः प्रविशति विदूषकः

अन्वयः-घृतगुडदधिसुसमृद्धं धूपितसूपोपदंशसंभिन्नं सत्कारदत्तम् इष्टं भक्तम् आर्येण भुज्यताम् ॥१

व्याख्या-घृतगुडदधिसुसमृद्धं घृतं च गुडश्च दधि च घृतगुडदधीनि तैः सुसमृद्धं सुष्ठु संस्कृतम्। धूपित-सूपोपदंशसंभिन्नम्। धूपितेन = सुगन्धहिङ्ग्वादिद्रव्यवासितेन सूपेन द्विदलेन उपदंशेन उपदश्य भक्ष्येण कन्दमूलाद्युपदश्यभक्ष्यभूतेन संभिन्न = संमिश्रितम्। सत्कारदत्तं = सत्कारेण प्रदत्तम्। इष्टं = सुस्वादु, यथेष्टं देवतार्पितत्वाद् यज्ञशेषं प्रसादरूपं वा। भक्तम् = पक्वान्नं। आर्येण; भुज्यताम् = आस्वाद्यताम् ॥१ ॥

निष्क्रान्त इति। एवं भाविनं पात्रप्रवेशं संसूच्य कृतकार्यः सूत्रधारः रङ्गान्निर्गतोऽभूदित्यर्थः।

स्थापनेति = सूत्रधारकृतः प्रस्तावोऽयम्। प्रारप्स्यमाणस्य कथावस्तुनः स्थापनात् प्रस्तावनापरपर्याया स्थापनेत्यभिधीयते काव्यशास्त्रकारैः। आमुखमप्येतस्या नामान्तरम्। तदुक्तं साहित्यदर्पणे-

---

सूत्रधार-घी, गुड एवं दधि से सुसंस्कृत, सुगन्धित द्रव्य से सुवासित, कन्दमूलादि पदार्थ से मिश्रित सत्कारपूर्वक दिया हुआ अभीष्ट पक्वान्न का आर्य उपयोग करें। ।१ ॥

(निकल जाता है) स्थापना

(इसके बाद विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषकः – अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भवं। अरित्तओ दाव अहं। णं भणामि। अहं अरित्तओ त्ति। किं भणासि-सम्पण्णं असणं अह्विदव्वं भविस्सदि।त्ति। अहं पुण जाणामि। अहिअमहुरस्स अम्बस्स अजोग्गदाए अट्ठि ण भक्खीअदि त्ति। किं दाणि मं उल्लालिअ उल्लालिअ भणासि। भणामि वावुदो त्ति। किं भणासि—दक्खिणामासआणि भविस्सदि त्ति। एसो वाआ पच्चाचक्खिदो हिअएण अणुबन्धीअमाणो गच्छीअदि। अहो अच्चाहिदं। अहं वि णाम परस्स क्षामन्तराणि त्ति तक्केमि। जो अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स गेहे अहोरत्तपय्यत्त-सिद्धेहि णाणाविधेहि हिङ्गुविद्धेहि ओग्गारणसुगन्धेहि भूक्खेवमत्तपडिच्छिदेहि अन्तरपाणीएहि असणप्पआरेहि चित्तअरो विअ बहुमल्लएहि परिवुदो आअण्ठमत्तं अण्हिअ चचरखुसहो विअ मोदअखज्जएहि रोमन्थाअमाणे दिवसं खेवेमि, सो एव्व दाणिं अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्य दरिद्दाए सम पारावदेहि साहारणवुत्ति

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रकार्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा इति।

सांप्रतं सूत्रधारसूचनानुसारं विदूषकस्य प्रवेशमाह कविः। ततः प्रविशतीति विदूषकलक्षणम्-विदूषको हि विचित्रवाग् वसन्तादिपदव्यपदेश्यो हास्यरसप्रधानः। अयं च भोजनप्रियो नायकस्य सुहृत्वेनैव नाटकेषूपवर्ण्यते। तल्लक्षणं दर्पणे

कुसुमवसन्तद्यभिधः कर्मवपुवेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥

विदूषक – तब तक आप किसी दूसरे को निमन्त्रित करें। मैं दरिद्र अथवा अभावग्रस्त नहीं हूँ। हाँ हाँ मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि सर्वसम्पन्न हूँ। क्या कहते हो? स्वादिष्ट और सुस्वादु भोजन मिलेगा। यह तो मैं जानता हूँ। किन्तु आम के अतिमधुर होने पर भी उसकी गुठली नहीं खाई जाती। तुम मुझे बारम्बार भोजन का लोभ दिखाकर ऐसा क्यों कहते हो ? मैं तो कह रहा हूँ कि दूसरे कार्य में लगा हूँ। क्या कहते हो ? एक माषा सुवर्ण भी दक्षिणा में प्राप्त होगा ? हाँ वाणी से तो इसका प्रत्याख्यान करता हूँ किन्तु हृदय से इसे चाहता भी हूँ। अहो यह अनर्थ है जो मैं भी दूसरे के आमन्त्रण की कल्पना करने लगा। कोई ऐसा समय था जब कि मैं बहुविध वर्णों (रंगो) से घिरे हुये

उवजीवन्तो अण्णहिं चरिअ चरिअ तस्स आवासं एव गच्छामि। अण्णं च अच्छरिअं। मम उदरं उवत्थाविसेसं जाणादि। अप्पेणावितुस्सादि। बहुअं वि ओदणभरं भरिस्सदि दीअमाणं। ण आएदि अदीअमाणं, पच्चाचिक्खदि। ण खु अह एरिसेण ण सन्तुट्ठो। ता सट्ठीकिददेवकय्यस्स तत्तहोदो चारुदत्तस्स कारणादो गहीदो सुमणो अन्तलिच्छवासो अ। जाव से पस्सपरिवत्ती होमि। (परिक्रम्यावलोक्य) एसो तत्तभवं चारुदत्तो पभादचन्दो विअ सकरुणप्पिअदंसणो जहाविभवेण गिहदेवदाणि अच्चअन्तो इदो एव्व आअच्छदि। जाव णं उवसप्पामि। (निष्क्रान्तः।) [अन्यमन्यं निमन्त्रयतु तावत् भवान्। अरिक्तकस्तावदहम्। ननु भणाम्यहमरिक्तक इति। किं भणसि -- सम्पन्नमशनमशितव्यं भविष्यतीति। अहं पुनर्जानामि। अधिकमधुरस्य आम्रस्य अयोग्यतया अस्थि न भक्ष्यत इति। किंमिदानीं मामुल्लाल्योल्लाल्य भणसि। भणामि व्यापृत इति। किं भणसि -- दक्षिणा माषका भविष्यन्तीति। एष वाचा प्रत्याख्यातो हृदयेनानुबध्यमानो गम्यते। अहो अत्याहितम्। अहमपि नाम परस्यामन्त्रणानीति तर्कयामि। योऽहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य

अरिक्तकः = अभावरहितः सर्वसंपन्न इत्यर्थः नेपथ्ये पुनराह्वानं श्रुत्वा विदूषकः पुनर्ब्रवीति किं भणसीति संपन्नम् = सुपक्वं, अशनम् = भोज्यपदार्थम्। अशनीयम् = भक्षणीयं। तवार्थे इति शेषः भविष्यति। आम्रफलस्य। अस्थि = बीजकोषः (गुठलीति भाषा)। अयोग्यतया = भक्षणानर्हतया। उल्लाल्योल्लाल्य = लोभयित्वा वचनेनाकृष्य व्याहृतः =कार्यान्तरसंलग्नः। वाचा = वाण्या। प्रत्याख्यातः = अस्वीकृतः। अनुबध्यमानः = अनुमोदमानः। गम्यते = इष्यते। अहो अत्याहितम् = अनर्थमापतितम्। तत्रभवतः = मान्यस्य।

चित्रकार की भाँति आर्य चारुदत्त के घर में दिन रात पर्याप्त रूप से पके हुये अनेक प्रकार के हिंग्वादि पदार्थों से छौंकि गये होने कारण सुगन्धित डकार लाने वाले 'आँखो के इशारे पर ही प्रस्तुत हो जाने वाले' बीच-बीच पें पीने योग्य तथा नाना प्रकार के विशिष्ट भोज्य पदार्थों से युक्त पात्रों से घिरा रह कर मोदकादि पदार्थ अत्यन्त भोंजन खा कर आँगन में बैठे हुये बैल की तरह पगुरी करता हुआ सारा दिन बिता देता था वहीं मैं इस समय चारुदत्त की दरिद्रता के कारण कबूतरों के साथ साधारण वृत्ति से (कण कण बीन कर) जीवन निर्वाह करता हुआ अन्य जगह से चर कर पुनः उन्हीं के निवास स्थान पर लौट आता हूँ। इतना ही नहीं एक आश्चर्य की बात यह भी है कि मेरे पेट को अवस्थाविशेष की जानकारी रहती है। वह थोड़े से भी संतुष्ट हो जाता है। और यदि देने वाले हों तो वह किसी से याचना भी नहीं करता और न निन्दा ही करता है। इतना

गेहेऽहोरात्रपर्याप्तसिद्धैर्नानाविधैर्हिङ्गुविद्धैरुद्गारसुगन्धिभिर्भ्रूक्षेपमात्रप्रतीष्टैरान्तरापानीयैरशनप्रकारैश्चित्रकर इव बहुमल्लकैः परिवृत आकण्ठमात्रमशित्वा चत्वरवृषभ इव मोदकखाद्यै रोमन्थायमानो दिवसं क्षिपामि, स एवेदानीमहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य दरिद्रतया समं पारावतैः साधारणवृत्तिमुपजीवन् अन्यत्र चरित्वा चरित्वा तस्यवासमेव गच्छामि। अन्यच्चाश्चर्यम्। ममोदरमवस्थाविशेषं जानाति। अल्पेनापि तुष्यति। बहुकमप्योदनभरं भरिष्यति दीयमानम्। न याचते अदीयमानं, न प्रत्याचष्टे। न खल्वहमीदृशेन न सन्तुष्टः। तत् षष्ठीकृतदेवकार्यस्य तत्रभवतश्चारुदत्तस्य कारणाद् गृहीतानि सुमनसोऽन्तरीयवासश्च। यावदस्य पार्श्वपरिवर्ती भवामि। एष तत्रभवांश्चारुदत्तः प्रभातचन्द्र इव सकरुणप्रियदर्शनो यथाविभवेन गृहदैवतान्यर्चयन् इत एवागच्छति। यावदेनमुपसर्पामि।]

अहोरात्रपर्याप्तसिद्धैः अहोरात्रम् = दिवानिशम्। पर्याप्तसिद्धैः अतिमात्रसुपक्वैः। हिंगुविद्धैः = हिंगुवासितैः। उद्गारगन्धिभिः = उद्गारकाले सुगन्धयुक्तैः। भ्रूक्षेपमात्रप्रतिष्ठैः = भ्रूचालनमात्रेणोपस्थितैः। अन्तरान्तरापानीयैः = भोजनमध्ये पानीययुक्तैः। अशनप्रकारैः = नानाविधभोजनैः। बहुमल्लकैः = बहुवर्णपात्रैः। आकण्ठम् = गलविलपर्यन्तम् चत्वरवृषभ इव = प्रांगणपालितवृषभ इव। रोमन्थायमानः = चर्वितस्य चर्वणं कुर्वन्। दिवसं = कालम्। क्षिपामि = अंतिवाहयामि। अवस्थाविशेषम् = दशान्तरे विद्यमानं दारिद्र्यम्। षष्ठीकृतदेवकार्यस्य = षष्ठीशान्तिनिमित्तं विहितदेवपूजनम्। अन्तरीयवासः = परिधानीयवस्त्रम्। सकरुणप्रियदर्शनः = दयावान् सौन्दर्ययुक्तश्च। उपसर्पामि = समीपं गच्छामि। इदानीं प्रसंगानुसारं नायकविदूषकचेटीनां प्रवेशं सूचयति कविः तत इति। ततः = तदनन्तरम्। बलिम् = पूजाद्रव्यम्। उपहरन् = संगृह्णन्। नायकः = चारुदत्तः चंगेरिकाहस्ता = पुष्पयुतपात्रकरा। चेटी = दासी (रदनिकेति शेषः) विदूषकः = मैत्रेयनामा चारुदत्तवयस्यः। नायकस्य दारिद्र्योपहतां मानसिकीमवस्थां वर्णयति।

होने पर भी मैं संतुष्ट नहीं हूँ। ऐसी बात नहीं है किन्तु संतुष्ट ही हूँ। तो आज षष्ठी के निमित्त देय कार्य सम्पादन करने वाले मान्य चारुदत्त के लिये यह पुष्प और परिधान वस्त्र लाया हूँ तो इन्हें ले कर अब उनके पास चलता हूँ। (घूम कर और चारो ओर देख कर) अरे ! यह मान्य चारुदत्त प्रभातकालिक चन्द्रमा के समान करुणा के योग्य किन्तु लावण्य संयुक्त अपने विभवानुसार गृह-देवता का अर्चन करते हुये इधर ही आ रहे हैं। तो इनके पास चलना चाहिये।

(निकल जाता है)

(ततः प्रविशति बलिमुपहरन्नायको विदूषकश्चङ्गेरिकाहस्ता चेटी च)

नायकः- (दीर्घं निःश्वस्य) भोः दारिद्रयं खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छ्वासं मरणम्। कुतः,

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विभक्तपुष्पः।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥२

अन्वयः- यासां मद्गृहदेहलीनां बलिः हंसैः च सारसगणैश्च विभक्तपुष्पः भवति। पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु तासु गृहदेहलीषु कीटमुखावलीढः बीजाञ्जलिः पतति ॥२ ॥

व्याख्या–यासामिति। यासां मद्गृहदेहलीनां मम गृहाणि मद्गृहाणि तेषां या गृहदेहल्यः बहिर्द्वारस्थः काष्ठखण्डविशेषः 'चौखट' इति भाषायां तासां बलिः अक्षतादिपूजोपहारः हंसैः मरालैः, सारसगणैः तन्नामपक्षिविशेषसंघैः च विभक्तपुष्पः=विभक्तानि पृथक्कृतानि पुष्पाणि कुसुमानि यस्मिन् तादृशः भवति अभूदित्यर्थः। पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु पूर्वकाले दत्ताद्वलेः रूढानि समुद्गतानि यवाङ्कुराणि यासु तासुं एवं गृहदेहलीषु कीटमुखावलीढः कीटानां मुखैः अवलीढः विखण्डितः अर्धभुक्तत्यक्तः बीजाञ्जलिः बीजानां समूहः पतति। अत्र कविना चारुदत्तस्य दारिद्र्यं सूचितम् तथाच पुराणादिषु वर्णितं देहलीपूजनस्यापि आवश्यकत्वं सूचितं। यथोक्तं मार्कण्डेये पुराणे-दद्याद् धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य च'। स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥२ ॥

संतप्तुं दुःखं कर्तुं। आसमुद्रदानविपन्नविभवस्य=आसमुद्रं यथा स्यात् तथा दानेन विपन्नः परिक्षीणः विभवः यस्य तस्य। बहुलपक्षचन्द्रस्य=कृष्णपक्षचन्द्रस्य। ज्योत्स्ना परिक्षयः=

(तदनन्तर बलि प्रदान करता हुआ नायक, विदूषण तथा डलिया हाथ में लिये चेटी प्रवेश करते हैं।)

नायक (दीर्ध निःश्वास लेकर) ! हायः ! दरिद्रता निश्चित रूप से श्वास लेते हुए मरण है। क्योंकि-

जिस हमारे गृह की देहलियों पर पड़ी बलि को हंस तथा सारस समूह फोड़-फोड़ कर खाया करते थे आज उन्हीं देहलियों पर पूर्व में दी गई बलि के यवों में अंकुर निकल आये है तथा कीटों द्वारा खण्डित बीज पड़े हैं।२

विदूषकः — अलं दाणि भवं अदिमत्तं सन्तप्पिदुं पुरुसजोव्वणाणि विअ गिहजोव्वणाणि खु दसाविसेसं अणुहोन्ति। आसमुद्दआणविपण्णविभवस्स वहुलपक्खचन्दस्स जोण्हापरिक्खओ विअ भवदो एव्व रमणीओ अअं दरिद्दभावो। [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्तुम्। पुरुषयौवनानीव गृहयौवनानि खलु दशाविशेषमनुभवन्ति। आसमुद्रदानविपन्नविभवस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य ज्योत्स्नापरिक्षय इव भवत एव रमणीयोऽयं दरिद्रभावः।]

नायकः — न खल्वहं नष्टां श्रियमनुशोचामि। गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसनं दारुणतरं मां प्रतिभाति। कुतः,

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति॥३॥

ज्योत्सना चन्द्रिका = तस्या विनाशः दरिद्रभावः = दारिद्र्यम् गुणरसज्ञस्य, गुणाः = शौर्यादयः रसाः = सुखानि तान् जानातीति गुणरसज्ञस्तस्य = अनुभूतशौर्यैश्वर्यादिसुखस्य। व्यसनम् =दारिद्र्यादिजन्या दारुणा विपत्तिः।

३.अन्वयः — हि सुखम् दुःखानि अनुभूय अन्धकारात् दीपदर्शनम् यथा शोभते। तु यः सुखात् दरिद्रतां दशां याति स शरीरेण स्थितः मृतः सन् जीवति।

व्या० — सुखमिति हि = निश्चयेन सुखम् दुःखानि = क्लेशान् अनुभूय = भुक्त्वा। अन्धकारात् = अन्धकारं प्राप्य तदनन्तरम्। दीपदर्शनम् दीपप्रकाशम् यथा = इव शोभते = प्रहर्षमुत्पादयति। तु = किन्तु। यः = पुरुषविशेषः सुखात् = सुखभोगानन्तरम्। दरिद्रतां दशाम् = दैन्यावस्थां याति = गच्छति। स शरीरेण स्थितः = विद्यमानोऽपि मृतः = प्राणशून्यः सन् जीवति

विदूषक — आप को इस समय इतना संतप्त होना उचित नहीं है। पुरुष की युवावस्था की भाँति गृह भी अपने यौवन दशा विशेष का अनुभव करते रहते हैं। समुद्र पर्यन्त समस्त विभव का दान करने वाले आप की यह दरिद्रावस्था भी क्षीणता को प्राप्त होने वाली चन्द्रकला की तरह रमणीय ही लगती है।

नायक — मैं विनष्ट हुई संपत्ति की चिन्ता नहीं करता किन्तु शौर्यादिगुण तथा ऐश्वर्यादि का उपभोग करने वाले पुरुष को दारिद्र्य जन्य विपत्ति मुझे अत्यन्त कष्टदायक होती है। दुःख की अनुभूति के बाद सुखोपभोग अच्छा लगता है। जिस प्रकार अन्धकार के

विदूषकः — भो वअस्स ! समुद्दपट्टणसारभूदो तादिसो अत्थसंचओ कहिं गओ। [भो वयस्य! समुद्रपत्तनसारभूतस्तादृशोऽर्थसञ्चयः क्व गतः।]

नायकः — (निःश्वस्य) वयस्य ! यत्र गतानि मे भागधेयानि। पश्य --

क्षीणा ममार्थाः प्रणयिक्रियासु
विमानितं नैव परं स्मरामि।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं
सत्त्वं सखे ! न क्षयमभ्युपैति॥४॥

= उच्छ्वसिति। अतोहमपि सुसम्पन्नावस्थातः परं दारिद्र्यभावापन्नो जीवन्नपि मृत एवास्मीति विचार एव मदीयचिन्ताहेतुः।

समुद्रपत्तनसारभूतः समुद्रं च पत्तनं च तयोः सारभूतः उत्तमोत्तमः अर्थसञ्चयः = धनराशिः। भाग्यधेयानि = भाग्यानि।

४. अन्वयः — मम अर्थाः प्रणयिक्रियासु क्षीणाः। परं विमानितं नैव स्मरामि। हे सखे! एतत्तु प्रत्ययदत्तमूल्यम् सत्त्वं क्षयं न अभ्युपैति।

व्या० — क्षीणेति मम = चारुदत्तस्य। अर्थाः = वैभवाः। प्रणयक्रियासु प्रणयिनां = मयि स्नेहं कुर्वतां जनानामिति शेषः क्रियासु = प्रयोजने, पूर्त्तिकार्येषु। क्षीणाः = विनष्टाः। परं विमानितम् = अपमानितं नैव स्मरामि = नैव चिन्तयामि। हे सखे = हे वयस्य। एतत्तु प्रत्ययदत्तमूल्यम् प्रत्ययेन दानं श्रेयस्करमिति विश्वासेन दत्तं = समर्पितं मूल्यम् धनम् येन एतादृशं दृढं सत्त्वम् = अन्तःकरणम् क्षयम् = विनाशम्। न अभ्युपैति = न प्राप्नोति।

अनन्तर दीप का प्रकाश रुचिकर प्रतीत होता है। किन्तु जो सुखावस्था से दुःख प्राप्त करता है वह तो मात्र शरीर को धारण किये हुये जीवित रहता है।

विदूषक —. नगर और समुद्र के उत्तमोत्तम वस्तुओं से खचित आप का वह सञ्चय कहाँ चला गया ?

नायक — (दीर्घ श्वास लेकर) मित्र ! वह तो वहीं चला गया जहाँ मेरे भाग्य गये हैं। देखो मेरी संपत्ति प्रेमी जनों के कार्यों को पूर्ण करने में ही विनष्ट हुई है। मैंने आज तक किसी का धन से अपमान नहीं किया। हे मित्र! 'दान उत्तम वस्तु है' इसी विश्वास से धन का दान करने वाला मेरा सत्त्व (अन्तःकरण) क्षीण भाव को नहीं प्राप्त होता।

(चिन्तां नाटयति)

विदूषक:- किं भवं अत्थविभवं चिन्तेति (किं भवानर्थविभवं चिन्तयति)

नायक:-

सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति ।
एतत् तु मां दहति नष्टधनश्रियो मे
यत् सौहृदानि सुजनें शिथिली भवन्ति ॥५॥

अर्थविभवं = धनैश्वर्यम् ।

अन्वय:-- धनविनाशगता विचिन्ता में नास्ति। इति सत्यम्। हि धनानि भाग्यक्रमेण पुनर्भवन्ति। एतत् तु मां दहति यत् नष्टधनश्रियः मे सौहृदानि सुजने (सत्यपि) शिथिलीभवन्ति ॥५॥

व्याख्या-धनविनाशगता = धनस्य विनाशेन = ध्वंसेन, गता = प्राप्ता धनविनाशगता = धननाशोत्पन्ना। विचिन्ता = शोकः, मे नास्ति इति सत्यम्। हि = यतः। भाग्यक्रमेण = भाग्यस्य = अदृष्टस्य, क्रमेण = पर्यायेण, धनानि = ऐश्वर्याणि, पुनः = भूयो, भवन्ति = जायन्ते। किन्तु। एतत्तु = एतदेव। मां, दहति = भृशं सन्तापयति, दुःखीकरोति यत् नष्टधनश्रियः = नष्टा धनस्य श्रीर्यस्य तस्य वैभवश्रीहीनस्य। मे = मम। सौहृदानि = मित्रादयः कुटुम्बवर्गाश्च। सुजने = अविकृतौ अपि मयि शिथिली भवन्ति = परित्यक्तसुहृद्भावा भवन्ति। मम मित्रादयोऽपि मयि शिथिलस्नेहा इति दुःखकारणम् ॥५॥

विदूषक-क्या आप अर्थ के ऐश्वर्य को सोच रहे है ?

नायकः-मुझे धन के नष्ट होने की सचमुच चिन्ता नहीं है क्यों कि भाग्य के क्रम से धन पुनः हो जाते हैं। किन्तु मुझे यह सन्ताप देता है नष्ट धन-समृद्धि वाले मेरे प्रति मुझ में सज्जनता रहने पर भी मेरे मित्र स्नेह विहीन हो जाते हैं ॥५॥

अपि च-

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते
सत्यं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत् तस्य संभाव्यते ॥६ ॥

अन्वयः-दारिद्रयात् पुरुषस्य वाक्ये वान्धवजनः न संतिष्ठते। सत्वं हास्यम् उपैति। शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते। निर्वैरा सुहृदः विमुखीभवन्ति। आपदः स्फीता भवन्ति। यत् पापं कर्म परैरपि कृतं तत् तस्य संभाव्यते ॥६ ॥

व्याख्या- दारिद्रयादिति। दारिद्र्यात् = अर्थविहीनत्वात् वैभवराहित्यात्। पुरुषस्य = दरिद्रस्य जनस्य। वाक्ये = निदेशे। बान्धवजनः = सुहृज्जनः कुटुम्बवर्गो वा। न संतिष्ठते = न स्थिरीभवति। आज्ञापालनं न करोतीत्यर्थः। सत्वं = ओजः, बलं, मनस्विता पौरुषं वा। हास्यं = उपहास्यतां। उपैति = प्राप्नोति, गच्छति। शीलशशिनः = शीलस्य = स्वभावरूपस्य सदाचाररूपस्य वा शशिनः = चन्द्रस्य। कान्तिः = दीप्तिः, शोभा। परिम्लायते = मलिनीभवति। निर्वैराः = वैरभावरहिताः। सुहृदः = मित्राणि। विमुखीभवन्ति = प्रतिकूलतां भजन्ते। मित्राणि अपि धनहीनपुरुषं वैरायन्ते इत्यर्थः। आपदः = विपत्तयः। स्फीताः = विस्तृताः। भवन्ति। परैः = अन्यैः सामान्य-जनैः अपि यत् पापकर्म = निन्दिताचरणं चौर्यादिकं कृतं = आचरितमनुष्ठितं भवेत् तत् परानुष्ठितं पापकर्म। अर्थाभावात् तस्य दरिद्रस्यैव जनस्य कृतमितिं संभाव्यते = अनुमीयते। अन्यकृतपापमपि दरिद्रकृतमिति मन्यते ॥६ ॥

और भी--

दरिद्रता के कारण दरिद्रं मनुष्य के बन्धुजनभी उसकी आज्ञा में नहीं रहते, उसका सत्य भी उपहास का पात्र बन जाता है, उसके स्वभाव या सदाचाररुपी चन्द्रमा की कान्ति मलिन पड़ जाती है, मित्र बिना वैर के भी शिथिल हो जाते है, विपत्तियाँ बढ़ जाती है, तथा दूसरे के द्वारा किया गया पाप कर्म भी दरिद्र के द्वारा किया गया संभावित होनें लगता है ॥६ ॥

विदूषकः-एणेदापि दासीएपुत्ता अत्थवावारा गोवदारआ विअ मसअ भीदा गिहादो णिग्गच्छन्ति। धणविणाश दुक्खस्स पुणचिन्तिअमाणस्स वसन्ते वुड्ढस्स सरत्थम्बस्स विअ अङ्कुरङ्कुरा उब्भमन्ति। ता अलं भवदो सन्तावेण। [एत इदानीं दास्याः पुत्रा अर्थव्यापारा गोपदारका इव मशकभीता गृहान्निर्गच्छन्ति। धनविनाशदुःखस्य पुनश्चिन्त्यमानस्य वसन्ते वृद्धस्य शरस्तम्बस्येवाङ्कुराङ्कुरा उद्भ्रमन्ति। तदलं भवतः सन्तापेन]

नायकः- वयस्य ! किमर्थं सन्तापं करिष्ये। किं चाहं दरिद्रः यस्य मम

विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान्।
सत्त्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥६॥

(ततः प्रविशति संभ्रान्ता गणिका विटेन शकारेण चानुगम्यमाना)

दास्याः पुत्राः = नीचस्वभावाः। अर्थव्यापाराः = द्रव्याणि। गोपदारकाः = गोपालकपुत्राः। मशकभीताः = मशकत्रस्ताः। निर्गच्छन्ति = बहिर्यान्ति। = वसन्ते = वसन्तर्तौ। वृद्धस्य = परिपक्वस्य। शरस्तम्बस्य = शरगुच्छस्य। अङ्कुराङ्कुराः = अङ्कुराज्जायमानाङ्कुराः। उद्भ्रमन्ति = निर्गच्छन्ति।

विदूषकवचनात्किंचित्क्षुब्धो नायको ब्रतीति-

अन्वयः-यस्य मे विभवानुवशा भार्या, समदुःखसुखः भवान् (मित्रम्) अस्ति। मे सत्त्वं च न परिभ्रष्टम् यद्दरिद्रेषु दुर्लभम् अस्ति।

व्याख्या-विभवेति। यस्य मम = चारुदत्तस्य नायकस्य विभवानुवशा = विभवानुसारेण संपत्तौ-च विपत्तौ चाज्ञाकारिणी। भार्या = धर्मपत्नी। तथा समदुःखसुखः = दुःखे सुखे च समानव्यवहारशीलः, भवान् = मैत्रेयः वयस्योऽस्ति। सत्त्वं = अन्तःकरणं स्वभावो वा। न परिभ्रष्टम् = न विच्युतं। यत् = धर्माव्युच्यितिः। दरिद्रेषु = धनविरहितेषु। दुर्लभं तत् मयि सुरक्षितम्।

(संभ्रान्ता = समुद्विग्ना। अनुगम्यमाना = अनुस्त्रियमाणा)

विदूषक = जिस समय अधम रुपये-पैसे के ये व्यापार मशक से भयभीत अहीर बालकों के समान घर से बाहर चले जाते है उस समय घन के नाश से दुःखी हुये एवं उससे चिन्तित व्यक्ति के हृदय में जैसे पके हुये (प्ररूढ़) सरकण्डे से अङ्कुर से अङ्कुर निकलते हैं वैसे ही चिन्ता से चिन्ता उत्पन्न होती है। इसलिये आप संताप छोड़ दें।

नायक-मित्र मैं धन के लिये क्यों संताप करूं? क्या मैं दरिद्र हूँ जिस मेरे-विभव के अनुसार (संपत्ति और दरिद्रता में) समान रूप से वश में रहने वाली भार्या है। सुख और

शकारः- चिट्ठ चिट्ठ वशन्तशेणिए ! चिट्ठ [तिष्ठ तिष्ठ वसन्तसेने !तिष्ठ]

किं याशि धावशि पधावशि पक्खलन्ती
शाहु प्पशीद ण मलीअसि चिट्ठ दाव।
कामेण शम्पदि हि उज्झइ मे शलीलं
अङ्गालमज्झपडिदे विअ चम्मखण्डे ॥८

[किं यासि धावसि प्रधावसि प्रस्खलन्ती
साधु प्रसीद न मार्यसे तिष्ठ तावत् ।
कामेन संप्रति हि दह्यते मे शरीर-
मङ्गारमध्यपतितमिव चर्मखण्डम् ॥८]

अन्वयः-त्वम् प्रस्खलन्ती किं यासि, धावसि, प्रधावसि। साधु प्रसीद तिष्ठ, न मार्यसे। हि अङ्गारमध्यपतितं चर्मखण्डम् इव संप्रति में शरीरं कामेन दह्यते ॥८ ॥

व्याख्या-किमिति। त्वं वसन्तेसेना, प्रस्खलन्ती = प्रस्खलितचरणा, किं यासि = गच्छसि, धावसि = पलायसे, प्रधावसि = वेगेन गच्छसि, साधु प्रसीद = सम्यग्रूपेण प्रसन्ना भव ममोपरि। न मार्यसे = नाहं तव वधं करिष्यामि। तिष्ठ = स्थिरा भव। तावदिति वाक्यालङ्कारे। अङ्गारमध्यपतितं = प्रज्वलिताग्निमध्यनिपतितं। चर्मखण्डं = चर्मभाग इव = यथा। मे = मम। शरीरं। कामेन = कामाग्निना। दह्यते = भस्मीक्रियते ।८ ।

दुःख में एक समान रहने वाले आप जैसे मित्र है और मेरा सत्व (अन्तःकरण की शुद्धता) भ्रष्ट नहीं हुआ है। दरिद्र पुरुष में यह दुर्लभ है ॥७ ॥

(तदनन्तर विट और शकार से पीछा की जाती व्याकुल वसन्तसेना का प्रवेश)

शकार-वसन्तसेने ! रुको, रुको, रुको ।

क्यों जा रही हो, भाग रही हो, फिसलती हुई तेजी से दौड़ रही हो। सम्यक् प्रसन्न हो जाओ, मारी नहीं जाओगी। रुको तो। जैसे जलते अङ्गार में गिरा चर्म का टुकड़ा जलता है वैसे ही कामाग्नि से मेरा शरीर जल रहा है ॥८ ॥

विटः - वसन्तसेने !

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती ।
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि-
र्व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव यासि ॥९॥

शकारः- भावे ! एशा गच्छइ बसञ्चशेणिआ [भाव ! एषा गच्छति वसन्तसेना ।]

दुवेहि अमेह्मणुबन्धअन्ती जहा शिगाली विअ कुक्कुलेहि ।
शणूपुला मेहलाणादहाशा शवेट्टणं में हलअं हलन्ती ॥१०॥
[द्वाभ्यामावाभ्यामनुबध्यमाना यथा शृगाली व कुक्कुराभ्याम् ।
सनूपुरा मेखलानादहासा सवेष्टनं मे हृदयं हरन्ती ॥१०]

अन्वयः-त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टिः व्याघ्रानुसारचकिता हरिणी इव यासि ॥९

व्याख्या-त्वं वसन्तसेने ! भयेन = संत्रासेन, परिवर्तितसौकुमार्या = द्रुतगमनाय परिवर्तितं = त्यक्तं सौकुमार्यं = सुकुमारभावतया अलसगमनं यया सा एवंभूता किं च नृत्तोपदेशविशदौ = नृत्तं = भावाश्रयं नर्तनं ' भवेद् भावाश्रयं नृत्तं नृत्यंताललयाश्रयं' इति वचनात्। भावविशेषप्रदर्शनार्थं गात्रविक्षेपविशेषः तस्य उपदेशः= प्रशिक्षणं तेन विशदौ = कुशलौ, निर्दोषनर्तनादिकलाभिज्ञौ । चरणौ = पादौ, विक्षिपन्ती = विक्षिप्य धारयन्ती। उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टिः= उद्विग्नः= भयेनातीवव्यग्रः चञ्चलश्च यः कटाक्षः तेन निविष्टा = आविष्टा दृष्टिः अवलोकनं यस्या सा तादृशी। मुखं परावृत्य स्वानुगतौ पापिष्ठौ विटशकारौ सभयं तिर्यङ्नयनाभ्यां विलोकयन्तीत्यर्थः। चकिता। व्याघ्रानुसारचकिता व्याघ्रस्य यदनुसरणं पश्चाद्धावनं तेन चकिता = भयभीता एवंभूता हरिणी = मृगी इव किं= कथं केन हेतुना यासि = गच्छसि, पलायसे। अस्माद् भयात्त्वया पलायनं न कर्तव्यं यतो हि आवां त्वत्स्नेहनिबद्धौ एव त्वदानुसरणं कुर्वः ॥९॥

विट - हे वसन्त सेने !

तुम भय के कारण सुकुमारता को त्यागकर नृत्तकला मे दक्ष अपने चरणों को जहाँ तहाँ

विटः - वसन्तसेने !

किं त्वं पदात् पदशतानि निवेशयन्ती
नागीव यासि पतगेन्द्रभयामिभूता ।
वेगादहं प्रचलितः पवनोपमेयः
किं त्वां ग्रहीतुमथवा न हि मेऽस्ति शक्तिः ॥११ ॥

अन्वयः–द्वाम्याम् आवाभ्याम् अनुबध्यमाना (एषा वसन्तसेना) कुक्कराभ्याम् अनुगम्यमाना श्रृंगाली यथा सनूपुरा समेखलानादहासा में सवेष्टनं हृदयं हरन्ती गच्छति ॥१० ॥

व्याख्या-द्वाभ्यामावाभ्याम् = विटशकाराम्याम्। अनुबध्यमाना = निरोद्धु मनुम्यमाना। एषा वसन्तसेना। कुक्कुराम्यां = श्वाभ्यामनुगम्यमाना श्रृगाली यथा = इव। सनूपूरा = नूपुरसहिता, मेखलानादहासा = मेखला = काञ्ची तस्याः नादः = शब्दः एव हासो यस्याः सा। मे = मम। सवेष्टनं = सावरणं। हृदयं = चित्तं, हरन्ती = कर्षन्ती। गच्छति = पलायते ॥१०

अन्वयः-त्वं पदात् पदशतानि निवेशयन्ती पतगेन्द्रभयाभिभूता नागी इव कथं यासि। पवनोपमेयः अहं वेगात् प्रचलितः अपि किं त्वां ग्रहीतुं (समर्थः) अथवा त्वां ग्रहीतुं मे शक्तिः नास्ति ॥११

व्याख्या-त्वं वसन्तसेना। पदात् = एकपदात् पदशतानि पदशतम् अत्यन्तदूरं यथा स्यात् तथा द्वितीयपदं निक्षिपन्ती = धारयन्ती, पतगेन्द्रभयामिभूता = पतगेन्द्रः = गरुडः, तस्माद् भयं तेन अभिभूता = समाक्रान्ता। नागी = सर्पिणी इव = यथा, किं = कथं केन हेतुना वा, यासि = पलायसे। पवनोपमेयः = वायुतुल्यगतिः, अहम् विटः, वेगात् = जवेन, प्रचलितः = धावमानः अपि किं त्वां ग्रहीतुं, समर्थः = शक्तः। अथवा त्वां ग्रहीतुं = स्वायत्तीकर्तुं,

---

रखती हुई तथा उद्विग्न एवं चञ्चल कटाक्ष वाले नेत्रों से व्याघ्र के द्वारा पीछा की जाती भयभीत हरिणी के समान विस्मय पूर्वक देखती हुई क्यों भागी जा रही हो ॥९ ।।

शंकार-भाव ! यह वसन्तसेना जा रही है।

हम दोनों के द्वारा पीछा की जाती हुई यह वसन्तसेना दो कुक्कुरों द्वारा पीछा की जा रही श्रृगाली के समान भाग रही है। इसके नुपुर एवं मेखला के शब्दहास मेरे हृदय को आवरण सहित हर रहे हैं ॥१० ॥

गणिका — (समन्तादवलोक्य) पल्लवअ ! पल्लवअ ! परहुदिए ! परहुदिए ! महुअरअ ! महुअरअ ! सारिए ! सारिए ! हद्धि णट्ठो मे परिजणो। एत्थ सअं एव अप्पा रक्खिदव्वो। [पल्लवक ! पल्लवक ! परभृतिके ! परभृतिके ! मधुकरक ! मधुकरक! शारिके ! शारिके !। हा धिक् , नष्टो मे परिजनः। अत्र स्वयमेवात्मा रक्षितव्यः।]

शकारः - विलव विलव णाए ! विलव पल्लवं वा। परहुदिअं वा, महुअरं वा, शालिअं वा, शव्वं वशन्चमाशं वा। के के तुमं परित्तअशि। [विलप विलप ज्ञाते ! विलप पल्लवं वा, परभृतिकां वा, मधुकरं वा, शारिकां वा, सर्वं वसन्तमासं वा। कः कस्त्वां परित्रास्यते।]

किं वाशुदेवे शवपट्टणेशे कुन्तीशुदे वा जणमजए वा।
अहं तुमं गहिअ केशहत्थे दुःशाशले शीदमिवाहलामि॥१२॥

मे = मम शक्तिः = सामर्थ्यम्। न अस्त्येव।
इदानीं गणिका स्वरक्षार्थम् स्वपरिकरान् संबोधयति, अत्र सर्वत्र द्विवचनं रक्षणे त्वराप्रदर्शनार्थम्। तत्र पल्लवको वसन्तसेनाभृत्यः। परभृतिका नाम्नी तस्या दासी। मधुकरकः शारिका चेत्युभयेऽपि विवेचनीये। मे मम परिजनः सेवकगणः विनष्टः अतः अत्र = अस्यां परिस्थितौ स्वयमेव आत्मा रक्षितव्यः इति। एवं स्वरक्षणार्थं बहुशो विलपमानां वसन्तसेनामवलोक्य शकारः सोपालम्भं ब्रवीति विलपेति। किञ्चेदानीं मत्तस्त्वामभिरक्षणे वासुदेवादयोऽप्यसमर्था इति दर्शयत्यग्रिमेण पद्येन। किमिति अत्र पद्ये सर्वत्र किमित्यस्यानन्तरं परित्रास्यते इति पदमध्याहार्यम्।
१२. अन्वयः — वासुदेवः शवपत्तनेशः कुन्तीपुत्रः जनमेजयः वा किम्।(अहं त्वा) केशहस्तं गृहीत्वा दुःशासनः सीताम् इव आहरामि।
व्या० — वासुदेवः = श्रीकृष्णः किं त्वां परित्रास्यते। शवपत्तनेशः = शवानाम् मृतकानां पत्रनम् = नगरं यमराजपुरी श्मशानं वा तस्य ईसःनिग्रहानुग्रहकर्ता यमराजः किं त्वां परित्रास्यते।कुन्ती सुतः=अर्जुनः किं त्वां परित्रास्यते । जनमेजयः=परीक्षितपुत्रःकिंत्वा परित्रास्यते । न कोपीत्यर्थः। अहं त्वां केशहस्तं= केशकलापं गृहीत्वा । दुःशासनः सीतामिव आहराभि = आकृष्य नयामि। अमशकारस्य मौर्ख्यं व्याञ्जितम् ।

गणिका- (चारो ओर देख कर) पल्लवक ! पल्लवक! परभृतिके! परभृतिके! मधुकरक! मधुकरक! शारिके! शारिके! हाय धिक्कार है मेरे सारे परिजन नष्ट हो गये । तो इस अवस्था में मुझे अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी।
शकार — अरी औरत! चाहे विलाप करो । चाहे पल्लव को चाहे परभृतिका (कोयल) को, चाहे मधुकर (भौंरे) को, चाहे शारिका (मैंना) को, किं बहुना इकट्ठे वसन्त मास को भी क्यों न बुलाओ । देखता हूँ कौन तुम्हारी रक्षा एवं सहायता करता है ?
क्या वासुदेव । क्या श्मशानेश्वर यमराज, क्या अर्जुन, क्या जनमेजय इस समय तुम्हारी

[किं वासुदेवः शवपत्तनेशः कुन्तीसुतो वा जनमेजयो वा।
अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासनः सीतामिवाहरामि ॥१२॥]

विटः – वसन्तसेने! सर्वत्र भयानभिज्ञहृदयं मां कुरु। पश्य,

परिचिततिमिरा मे शीलदोषेण रात्रि-
र्बहुलतिमिरकालास्तीर्णपूर्वा विघट्टाः।
युवतिजनसमक्षं काममेतन्न वाच्यं
विपणिषु हतशेषा रक्षिणः साक्षिणो मे ॥१३॥

---

१३. अन्वयः– शीलदोषेण रात्रिः परिचिततिमिरा (मया हि) बहुलतिमिरकालाः विघट्टाः तीर्णपूर्वाः। एतत् युवतिजनसमक्षम् कामं न वाच्यम्। विपणिषु हतशेषा रक्षिणः मे साक्षिणः।
व्या०– शीलेति मे शीलदोषेण = शीलं स्वभावं तस्य दोषः अवगुणस्तेन। रात्रिः = निशा। परिचिततिमिरा परिचितं अभ्यस्तं तिमिरं = घनान्धकारं यस्यां सा। आसीदिति शेषः। बहुलतिमिर कालाः बहुलं कृष्णपक्षः तत्र यानि तिमिराणि तद्वत् कालाः कृष्णवर्णाः। विघट्टाः = वीथ्यः। तीर्णपूर्वाः = पूर्वं पारन्नीताः। एतत् = दुष्कर्म। युवतिजनसमक्षम् युवतिसमूहसंमुखं न वाच्यम् = न कथनीयम्। हतशेषाः हतेभ्यः शेषाः = मृतावशिष्टाः। विपणिषु = आपणेषु। रक्षिणः = प्रहरिणः। मे = मम। साक्षिणः = वधादिकर्मणः साक्षाद् द्रष्टारः। सन्तीति शेषः। आपणे प्रहरिणां विद्यमानेऽपि मया रात्रौ कियन्तः पुरुषा हताः इत्यत्र प्रत्यक्षद्रष्टारः ते प्रहरिणः एव सन्ति। राजश्यालादिबन्धुसत्त्वान्मदीयं वधादिसाहसं क्रूरकर्म अवर्णनीयमस्तीति त्वं जानीहीति भावः ॥१३॥
संशयिता = प्राणधारणे संदेहयुक्ता। संवृत्ता = जाता। अनेनेति शेषः। आत्मगुणान् = स्वात्मनि विद्यमानक्रूरकर्माणि। मन्त्रयते = प्रख्यापयति। अकार्यम् = पापम्। अनुनयप्रग्रहः = याञ्चासाफल्यम्।

रक्षा कर सकेंगे। अर्थात् सभी तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ हैं। मैं तुम्हारे केश समूहों को पकड़ कर जिस प्रकार दुःशासन द्रौपदी को खींच कर लाया था उसी प्रकार खींच कर लाता हूँ।

विट – आर्य वसन्तसेने ! मुझे सभी प्रकार की परिस्थितियों में भय रहित जानो।
मेरे स्वभावगत दोष से यह गाढान्धकार वाली रात्रि अधिक परिचित है। मैंने पूर्व में कृष्णपक्ष में कितने समय तक अन्धकारपूर्ण इन गलियों का भ्रमण किया है। यद्यपि इन सब बातों की चर्चा युवतीजनों के समक्ष नहीं करना चाहता। किन्तु मेरे वध से बचे हुये ये बाजार के पहरेदार ही मेरे उस क्रूर कर्म के साक्षी हैं।

गणिका – (आत्मगतम्) हं इदाणि संसइवा संवुत्ता, जो अप्पगुणाणि सअं एव मन्तेदि। कहं एवे अकम्य ण करिस्सन्ति। [अहम् इदानीं संशयिता संवृत्ता, य आत्मगुणान् स्वयमेव मन्त्रयते। कथमेतेऽकार्यं न करिष्यन्ति।]

विटः – भवति, क्रियतामस्माकमनुनयप्रग्रहः । पश्य,

जनयति, खलु रोषं प्रश्रयो भिद्यमानः
किमिव च रुषितानां दुष्करं मद्विधानाम्।
अनुनयति समर्थः खड्गदीर्घः करोऽयं
युवतिवधघृणाया मां शरीरं च रक्ष॥१४॥

---

१४. अन्वयः – प्रश्रयः भिद्यमानः रोषं जनयति खलु। मद्विधानाम् रुषितानां दुष्करं किमिव। खड्गदीर्घः समर्थः अयं करः मां शरीरं च युवतिवधघृणायाः रक्ष इत्यनुनयति।

व्या० – प्रश्रयः = प्रणयः। भिद्यमानः = प्रत्याख्यायमानः। सन् रोषं = क्रोधम् जनयति = उत्पादयति। खलु = निश्चयेन। मद्विधानाम् = अस्मत् सदृशानां रुषितानां = क्रूरकर्मणि व्यापृतानां। किमिव = किमपि दुष्करम् = अकार्यकरणीयम् भवतीति शेषः। खड्गदीर्घः खड्गेन दीर्घः = खड्गधारणेन विशालः समर्थः = सशक्तः। अयं करः माम् शरीरं च युवतिवधघृणायाः युवत्या वधस्तत्र या घृणा तस्याः रक्ष परिपालय इति अनुनयति प्रार्थयति। यथा युवतिवधेन पापं न भवेत्तथा कुर्वित्यर्थः ॥१४॥

भाययति = भयमुत्पादयति। बलवज्जनदुर्लभः बलवज्जनात् = शक्तिशालिजनात् दुर्लभः यदा कदा लभ्यः अनुनयः प्रणयः विनयो वा लोके बहु मान्यते अत्यन्तमाद्रियते। तस्मादस्माकं याञ्चासाफल्यं विधेहीति फलितोऽर्थः। वासु = हे बाले। पश्य = विचारय। शकार इदानीं

गणिका – (अपने मन में) मैं इस समय अपने जीवन के विषय में संदेह में पड़ गई हूँ कि जो अपने इन गुणों को स्वयम् प्रकाशित कर रहा है वह क्या इस प्रकार के निन्दित कर्म को नहीं करेगा । अपितु करेगा ही ।

विट – माननीये! हम लोगों के अनुनय को स्वीकार कर लीजिए। देखिये– भंग किया जाने वाला प्रणय रोष उत्पन्न करता है। और फिर मेरे जैसे मनुष्यों के क्रोधित हो जाने पर कोई दुष्कर नहीं है। वध कार्य में सर्वथा सशक्त और खड्ग धारण करने से विशालता को प्राप्त हुआ यह मेरा हाथ सर्वथा अनुनय करता है कि मेरे अनुनय को स्वीकार कर मुझे और अपने शरीर को युवती जनों के वध की घृणा से बचाओ ।

गणिका – (आत्मगतम्) अणुणओ वि खु से भाएदि । [अनुनयोऽपि खल्वस्य भाययति।]

शकारः – वशन्तशेणिए । शुट्ठु भावे भणादि। बहुण्णिअदि खु दाव बलिअजणदुल्लहे अणुणए! पेक्ख वाशु! [वसन्तसेने! सुष्ठे भवो भणति। बहु मान्यते खलु तावद् बलवज्जनदुर्लभोऽनुनयः। पश्य वासु!]

अशि क्खु तिक्खे शिहिग्गीवमेअए खिवेमि शीशं तव मालए हवा।
अलं तु अम्पालिशकाणि लोशिअ मडे खु जो होई ण णाम जीवइ॥१५॥

[असिः खलु तीक्ष्णः शिखिग्रीवामेचकः
क्षिपामि शीर्षं तव मारयेऽथवा।
अलं त्वस्मादृशकान् रोषयित्वा
मृतः खलु यो भवति न नाम जीवति॥१५॥]

वसन्तसेनां धर्षयति।

१५. अन्वयः – शिखिग्रीवामेचकः तीक्ष्णः असिः मे (अस्ति) तं च तव शीर्षम् क्षिपामि अथवा त्वां मारये तु अस्मादृशकान् रोषयित्वा अलम्। यतः खलु यः मृतः भवति स नाम न जीवति।

व्या० – असिरिति - शिखिग्रीवामेचकः शिखिनः मयूरस्य ग्रीवा कण्ठः तद्वन्मे चकः मे,चकं श्यामः। तीक्ष्णः = निशितः। असिः = खड्गः मे अस्ति। तं च तव शीर्षं = मस्तकं मस्तकं क्षिपामि = भिद्मि। अथवा त्वां मारयामि = निहन्मि। अस्मादृशकान् = अस्मद्विधान् जनान् रोषयित्वा अलम् = कोपोत्पादेन तव कल्याणं नास्ति। कुत इत्याह मृतइति यो जनः मृतः भवति स जनः खलुः निश्चयेन न जीवति नाम न पुनः प्राणान् धारयति। तव पलायनं निरर्थकमिति भावः कुलपुत्रजनस्य = कुलीनयुवकजनस्य। शीलपरितोषोपजीवनी शीलेन परितोषः शीलपरितोषस्तेन

गणिका – (स्वगत) इसका अनुनय भी मुझे भय उत्पन्न करता है।

शकार – वसन्तसेने! माननीय विट उचित कहते हैं। क्योंकि लोग बलवानों के द्वारा किया जाने वाला अनुनय दुर्लभ होने के कारण उसका अधिक सम्मान करते हैं।

१५ – मेरी तलवार जो मोर की ग्रीवा के समान श्याम वर्ण से युक्त है उससे शिर काट डालूँगा अथवा तुम्हें मार डालूँगा। मेरे जैसे जन को क्रुद्ध करना उचित नहीं और जो मर जाता है वह पुनः जीवित नहीं होता।

गणिका – अय्य! कुलउत्तजणस्स सीलपरितोसोवजीविणी गणिआ खु अहं। [आर्य! कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम्।]

विटः – अतः खलु प्रार्थ्यसे।

गणिका -- अय्य! इमाचो जणदो इच्छीअदि सरीरं वा आदु अलंकारो वा। [आर्य! अस्माज्जनात् किमिष्यते शरीरं वाथवालंकारो वा।]

विटः – न पुष्पमोक्षणमर्हति लता। कृतमलंकारेण।

गणिकाः – अहं खु दाणिं अत्ताणं ण सन्दावेअं। [अहं खल्विदानीमात्मानं सन्तापयेयम्।]

शकारः – वशन्तशेणिए! अहं भट्टिपुत्ते कामइदवे। [वसन्तसेने अहं भर्तृपुत्रः कामयितव्यः।]

गणिकाः – सन्तो सि। [शन्तोऽसि।]

जीवितुं शीलं यस्या सा = स्वभावपरितोषजीवनशीला। गणिका = वारांगना पुष्पमोक्षणम् पुष्पाणां = कुसुमानां मोक्षणं = परित्यागः। लता = वल्ली। कृतम् = अलम् व्यर्थं वा। अलंकारेण = अलंकारत्यागेन। अस्यायमाशयः यथा पुष्पितलता स्वकीयपुष्पापहरणेन गतश्रीका भवति तथैव तव शरीरमप्यलंकारत्यागेनारमणीयतामुपेष्यति। अनेन च यत्नवर्धितलावण्यमंगविलासपाटवं च सूचितं भवति वसन्तसेनायाः। कामयितव्यः = त्वया मयि साभिलाषा भवितव्यः। आक्रुष्टम् = निन्दितम्। तया ध्वंस इत्युक्तम् अयं च श्रान्त इति बुद्धवानिति भावः।

गणिका – आर्य! मैं कुलीन जनों के शील के परितोष से जीविका निर्वाह करने वाली वेश्या हूँ।

विट – इसीलिए तो मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ।

गणिका – आर्य! मेरे जैसे जन से आप क्या चाहते हैं शरीर अथवा अलंकार।

विट – लता अपने पुष्प और पत्तों को अलग देखना नहीं चाहती वैसे तुम्हें भी मैं अलंकार से रहित नहीं देखना चाहता अतः मुझे तुम्हारे अलंकार की आवश्यकता नहीं देखना चाहता अतः मुझे तुम्हारे अलंकार की आवश्यकता नहीं है।

गणिका – मैं अपने आप को (आप की बात काट कर) दुःखी करना नहीं चाहती।

शकार – वसन्तसेने! मैं स्वामी का पुत्र हूँ। अतः तुम मेरी काम-वासना की पूर्ति करो।

गणिका – शान्त होओ।

शकारः- शुणाहि भावे ! शुणाहि । एशा वशन्तशेणिआ मं शन्तो सिन्ति भणादि । [श्रृणु भाव ! श्रृणु । एषा वसन्तसेना मां श्रान्तोऽसीति भणति ।]

विटः- (आत्मगतं) आक्रुष्टमात्मानं न जानति मूर्खः । ध्वंस इत्युक्ते श्रान्त इत्यवगच्छति । अपि च-

अभिनयति वचांसि सर्वगात्रैः
किमपि किमप्यनवेक्षितार्थमाह ।
अनुचितगतिरप्रगल्भवाक्यः
पुरुषमयस्य पशोर्नवावतारः ॥१६

आक्रुष्टम् = निन्दितम् । तया ध्वंस इति उक्तम् अयं च श्रान्त इति ज्ञातवानिति भावः ।

अन्वयः- अयम् सर्वगात्रैः वचांसि अभिनयति । किमपि किमपि अनवेक्षितार्थम् आह । अनुचितगतिः अप्रगल्भवाक्यः पुरुषमयस्य पशोः नवावतारः (प्रतिभाति) ॥१६

व्याख्या-एष शकारः, सर्वगात्रैः संपूर्णशरीरवयवैः, वचांसि, वचनानि, अभिनयति = भावानुसारेण गात्रविक्षेपं करोति । किमपि किमपि = स्वल्पं स्वल्पं । अनवेक्षितार्थम् = अपर्यालोचितप्रयोजनं । आह = ब्रवीति । अनुचितगतिः = अकार्यकारी, अप्रगल्भवाक्यः = प्रतिभाशून्यवाक्यः । अयम् शकारः पुरुषमयस्य = पुरुषरूपस्य, पशोः नवावतारः = नवीनः आविर्भावः ॥१६ ॥

शकार- श्रीमन् ! सुनिये, सुनिये । यह वसन्तसेना मुझे 'थक गये हैं' ऐसा कह रही है ।

विट-(मन में) यह मूर्ख अपनी निन्दा को भी नहीं समझ रहा है । नष्ट हो जाओ कहने पर 'थक गये हो' समझ रहा है । और

यह शकार अपने संपूर्ण शरीरावयों से अपने मनोगत भावों को अभिव्यक्त कर रहा है । कुछ-कुछ अंविचारित भावों को भी बोलता है । अकार्यकारी और प्रतिभाशून्य यह पुरुष रूप में पशु का नया अवतार है ॥१६ ॥

(प्रकाशम्) वसन्तसेने ! किमिदं मत्सन्निधौ वेशवासविरुद्धमिभिहितम् । पश्य-

तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो
विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव ।
बहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं
सममुपचर भद्रे ! सुप्रियं चाप्रियं च ॥१९॥

वेशवासविरुद्धं = वेशे गणिकावने 'वेशोवेश्याजनाश्रयः' इति कोषः, तत्र यो वासो निवासः तेन विरुद्धं विपरीतं । किम् = किमर्थम्, अमिहितम् = उत्तम् ।

अन्वयः-तरुणजनसहायः वेशवासः चिन्त्यताम् । त्वं मार्गजाता लता इव गणिका (आत्मानं) विगणय । हि पण्यभूतं धनहार्यं शरीरं वहसि । अतः सुप्रियं च अप्रियं च समम् उपचर ॥१९ ॥

व्याख्या-तरुणजनसहायः = तरुणजनः = युवकसमूहः,सहायः आश्रयो यस्य तादृशः । वेशवासः = वेशे गणिकाभवने यः वासः = अवस्थितिः । वेश्यालयनिवासः इति त्वया चिन्त्यताम् स्मर्यताम् । त्वं त्व सन्तसेना मार्गजाता = मार्गे समुत्पन्ना लता = वल्ली इव गणिका = वेश्या, अनेन सामान्यजनोपभोग्या इति सूच्यते । आत्मानं विगणय = जानीहि । हि = यतः । पण्यभूतं = विक्रेयवस्तुस्वरूपं, धनहार्यम् = धनेन क्रेयं, शरीरं वहसि = धारयसि । अतः हे भद्रेः ! सुप्रियं = नितरामभीष्टं, अप्रियं = अरुचिकरं, अनभिमतं सर्वजनं, समं = समानभावेन, उपचर = सेवय । वेश्यास्वभावः-निर्गुणानपि न द्वेष्टि न रज्यति गुणानपि । वित्तमात्रं समालोक्य सा रागं दर्शयेद् बहिः ॥१९ ॥

(प्रकट) वसन्तसेने ! मेरी उपस्थिति में वेश्यालय निवास के विरुद्ध यह क्या कहा । देखो-

युवकजनों का आश्रयभूत वेश्यालय में निवास का ध्यान करो । तुम अपने को मार्ग में उत्पन्न लता के समान (सर्वजनोपभोग्या) गणिका समझो । तुम धन से खरीदे जाने योग्य विक्रेय वस्तु के समान शरीर को धारण करती हो । अतः हे भद्रेः ! प्रिय और अप्रिय को समान भाव से सेवन करो ॥१९ ॥

गणिका-एसो मे अभिणिवेसो अमिजणेण तुलोअदि [एष मेऽभिनिवेशोऽभिजनेन तोल्यते ।]

शकारः- भावे ! एशा अन्धआलपूलितगम्भीला लच्छा दीशइ। मा क्खु णाए एत्थ अंशइदब्बा। आ कामदेवाणुआणप्पहुदि णअणमत्तशत्थुलं दलिद्दशत्थवाहपुत्रं चालुदत्तबडुअं कमेदि एशा। इदं तश्श गेहश्श पक्खदुआलं [भाव ! एषान्धकारपूरित-गम्भीरा रथ्या दृश्यते। मा खलु ज्ञाता अत्र भ्रंशयितव्या। आ कामदेवानुयानात् प्रभृति नयनमात्र-संस्थुलं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तबटुकं कामयत एषा। इदं तस्य गृहस्य पक्षद्वारम् ।]

गणिका-(सहर्षमात्मगतं) एवं तस्स गेहं। दिट्ठिआ दाणि अमित्तजणणिसेहेणपिअजण-समीदं उवणीदम्हि। भोदु, एवं दाव करिस्सं (अपसरति) [एतत् तस्य गेहम्। दिष्ट्येदानी-ममित्रजननिरोधेन प्रियजनसमीपमुपनीतास्मि। भवतु, एवं तावत् करिष्यामि ।]

शकारः- (विलोक्य) भावे ! णट्ठा णाए णट्ठा [भाव ! नष्टा ज्ञाता नष्टा]

अभिनिवेशः = चारुदत्तं प्रति दृढानुरागः। अभिजनेन = आभिजात्येन। तोल्यते = उपमीयते। अन्धकारपूरितगम्भीरा = अन्धकारेण पूरिता = समाच्छन्ना इति अन्धकारपूरिता सा चेयं गम्भीरा = घना च तथोक्ता। आ कामदेवानुयात् = कामदेवस्य अनुयानम् उत्सवे अनुगमनं तस्मात् प्रभृति = आरभ्य। नयनमात्रसंस्थुलं = नेत्रमात्रेण, दर्शनमात्रेणेत्यर्थः संस्थुलं = सुरम्यं। कामयते = अभिलषति, दिष्ट्या = सौभाग्येन। अत्रिजननिरोधः = अशुभजननिरोधः।

विटः गाढ़ान्धकारतिरोहितां वसन्तसेनामुद्दिश्यादर्शनेऽपि जाते तस्या मालागन्धादनुमेयतां प्रस्तुवन् ब्रवीति-

---

गणिकार-मेरे निवास को कुलीनता से तुलना कर रहा है।

शंकार- श्रीमन् ! यह अन्धकार से पूर्ण संकरी गली दिखायी पड़ रही है। कही पहचानी जाने के बाद भी इसी गली में न छिप जाय। यह कामदेव के उत्सव से ही दृष्टिमात्र से ही रमणीय दरिद्र वणिक् पुत्र चारुदत्त की अभिलाषा करती है। यह उसके घर का पक्षद्वार है।

गणिका-यह उसका घर है। भाग्यवश शत्रु के रोकने के कारण मित्र के घर पहुंच गयी। ठीक है। ऐसा ही करती हूँ ।] (ओझल हो जाती है)।

ACC NO.......... 15142
DATE..........

विटः-कथं नष्टा । अन्विष्यतामन्विष्यताम्
शकारः-भावे ! ण दिश्शदि । [भाव ! न दृश्यते]
विटः- हन्त ! विञ्चिताः स्मः । वसन्तसेने । उपलब्धेदानीमसि ।

कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं
सौदामिनीव जलदोदरसन्निरुद्धा ।
त्वां सूचयिष्यति हि वायुवशोपनीतो
गन्धश्च शब्दमुखराणि च भूषणानि ॥१८ ॥

(गणिका मालामपनीय भूषणानि चोत्सारयति)
विटः-बलवांश्चायमन्धकारः

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥१९ ॥

वञ्चिताः = प्रतारिताः

अन्वयः-जलदोदरसन्निरुद्धा सौदामिनी इव प्रदोषतिमिरेण कामं न दृश्यसे किन्तु वायुवशोपनीतः गन्धः शब्दमुखराणि भूषणानि च त्वां सूचयिष्यति ॥१८ ॥

व्याख्या-जलदोदरसंनिरुद्धा = जलदस्य मेघस्य उदरे सन्निरुद्धा = तिरोहिता, मेघान्तःतिरोहिता, सौदामिनी = विद्युत्, इव = यथा, प्रदोषतिमिरेण = रात्र्यन्धकारेण, कामं = यथेच्छं, न दृश्यसे किन्तु वायुवशोपनीतः = वायुद्वाराप्रेरितः, गन्धः = त्वद्धृतमाल्यसुगन्धिः, शब्दुमुखराणि = शब्देन वाचालानि शब्दायमानानीत्यर्थः । भूषणानि हे वसन्तसेने ! त्वां सुचयिष्यति = ज्ञापयिष्यति ॥१८ ॥

अपनीय = प्रक्षिप्य; उत्सारयति = अङ्गादवतारयति ।

अन्यवः—तमः अङ्गानि लिम्पति इव । नभः अञ्जनं वर्षति इव । असत्पुरुषसेवा इव दृष्टिः निष्फलतां गता ॥१९ ॥

व्याख्याः—तमः = गाढान्धकारः अङ्गानि = शरीरावयानि लिम्पति = विलेपयति इव । नभः = आकाशः, अञ्जनं = कज्जलं, वर्षति = पातयति इव मम दृष्टिः असत्पुरुषसेवा = दुर्जनसेवा इव, निष्फलतां = अकिंचित्करतां, गता = प्राप्ता । किञ्चिदपि दर्शने असमर्था सती निष्फला जातेत्यर्थः । उत्प्रेक्षालंकारः ॥१९ ॥

शकार- (देखकर) श्री मन् ! ओझल हो गयी, मालूम पड़ी, ओझल हो गयी ।

विट-कैसे नष्ट हो गयी, ढूढ़ो

शकार- श्रीमन् ! नहीं दिखाई पड़ती ।

विट-हाय ! ठगे गये । वसन्तसेने ! संप्रति तुम प्राप्त हो गयी ।

भले हि रात्रि के अन्धकार में तुम बादल में छिपी बिजली की तरह दिखाई नहीं पड़ती

अपि चं

शुलभशरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव ।

उभयमपि हि रक्षते अन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः ॥२० ॥

तथा हि

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशसंछन्ना ।

उन्मीलिताऽपि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण ॥२१ ॥

अन्वयः- सुलभशरणं तिमिरं वन गहनं च तुल्यमेव भयानाम् आश्रयः। अन्धकारः उभयम्अपि रक्षते यः च भयं जनयति यः च भीतः (अस्ति) ॥२० ॥

व्याख्या-सुलभंसुखेन लभ्यं, शरणाम् आश्रयो यत्र। तिमिरंगाढान्धकारः, वनगहनं सघनवनंच तुल्ययेवृसमानरूपेणैव, भदानांभीतीनां भयार्तानां वा आश्रयः = निवासभूमिः। अन्धकारः = तिमिरं, उभयमपि-द्वावपि रक्षते यश्च भयान्ति जन्ययति = उत्पादयति यश्च भीतः = भयात्पऽपि ॥२० ॥

अन्वयः-आलोकविशाला मे दृष्टिः सहसा तिमिरप्रवेशसंछन्ना (अतएव) उन्मीलिता अपि निमीलिता इव भवति ॥२१ ॥

व्याख्या–आलोके = दर्शनविषये, विशाला= विपुला अर्थात् दुरस्थवस्तुदर्शनेऽपि समर्था मे = मम विटस्य, दृष्टिः= नेत्र ज्योतिः, सहसा = झरिति, तिमिरप्रवेशसंछन्ना = तिमिरस्य = गाढान्धकारस्य प्रवेशेन = आगमनेन, संच्छन्ना = संवृता, अतएव उन्मीलिता अपि

परन्तु वायु द्वारा लाये गये। (तुम्हारे) माले की गन्ध और शब्द कर रहे तुम्हारे आभूषण तुम्हे सूचित करेंगे।

(गणिका माला फेंककर आभूषणों को उतारती है)

विट-घोर अन्धकार है-

अन्धेरा अङ्गों को लीप रहा है, आकाश कज्जल की वर्षा कर रहा है और दुष्ट पुरुष की सेवा की भाति दृष्टि निष्फल हो रही है ॥१९ ॥

और भी–

गहन वन तथा अन्धकार दोनो ही समान रूप से भय के सुगमता से प्राप्त होने वाले आश्रय है। अन्धकार दोनों की समान रुप से रक्षा करता है-जो भयदाता है तथा जो भयभीत है अर्थात् दोनों ही अन्धकार में छिप जाते हैं ॥२० ॥

क्योंकि-

(वस्तु) दर्शन ने अत्यन्त पटु भी मेरी दृष्टि इस समय सहसा अन्धकार के उत्पन्न हो जाने के कारण प्रच्छन्न हो गयी है। यद्यपि मेरी दृष्टि पूर्ण रूप से खुली हुई है तथापि अन्धकार

गणिका – अम्महे भित्तिपरिणामसूइदं पक्खदुआलं। असम्भोअमलिणदाए इह अहिअं अन्धआरो। ता इह एव चिट्ठस्सं। (स्थिता।) [अहो भित्तिपरिणामसूचितं पक्षद्वारम्। असम्भोगमलिनतयेहाधिकमन्धकार। तद् इहैव स्थास्यामि।]

नायकः – मैत्रेय! गच्छ, चतुष्पथे बलिमुपहर मातृभ्यः।

विदूषकः – ण मे सद्धा, अण्णो गच्छदु। [न मे श्रद्धा, अन्यो गच्छतु।]

नायकः – किमर्थम्।

विदूषकः – मम बुद्धी आदंसमण्डलगआ विअ छाआ वामेसु दक्खिणा दक्खिणेसु वामा होइ।

[मम बुद्धिरादर्शमण्डलगतेव च्छाया वामेषु दक्षिणा दक्षिणेषु वामा भवति।]

नायकः – मूर्ख! यथाविभवेनार्च्यताम्। भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि। तद् गम्यताम्।

विदूषकः – एआई अहं कहं गमिस्सं। [एकाक्यहं कथं गमिष्यामि।]

वसन्तसेनां द्रष्टुं विकसिता अपि गाढान्धकारेण हेतुना निमीलिता = मुद्रिता इव भवति। भित्तिपरिणामसूचितम् भित्तेः परिणामः परिवर्त्तनम् तेन सूचितम् ज्ञापितं चिह्नितम् वा पक्षद्वारम् = पार्श्वद्वारम्। असंभोगमलिनतया असंभोगेन = असंस्कारेण या मलिनता मलीमसता तया आदर्शमण्डलगता आदर्शस्य = दर्पणस्य यन्मण्डलं तत्र गता = संप्राप्ता छाया = प्रतिबिम्बमिव।

से बन्द-सी जान पड़ती है।

गणिका – हाय! चारुदत्त के भवन का पक्षद्वार देख रही हूँ। इसकी दीवाल में भी परिवर्तन आ गया है जो सफेदी तथा मरम्मत के अभाव में विशेष मलिन हो गया है जिससे यहाँ अन्धकार का विशेष साम्राज्य परिलक्षित हो रहा है। अतएव मैं यहीं ठहरूंगी (ठहर जाती है)

नायक – मैत्रेय! जाओ चतुष्पथ पर मातृगणों को बलि चढ़ा आओ।

विदूषक – इन सब में मेरी श्रद्धा नहीं है अत: किसी दूसरे को भेज दीजिए।

नायक – क्यों?

विदूषक – मेरी बुद्धि दर्पण में प्रतिबिम्बित छाया की भाँति अनुकूल में अनुकूल हो जाती है।

नायक – मूर्ख !अपने विभव के अनुसार देवताओं की पूजा करो। क्योंकि भक्ति से ही देवगण संतुष्ट रहते हैं इसलिए जाओ।

विदूषक – तो मैं अकेला नहीं जाऊँगा।

नायकः – रदनिके ! अनुगच्छात्रभवन्तम्।
रदनिका – जं भट्टा आणवेदि। [यद् भर्ताज्ञापयति।]
विदूषकः- भोदि ! दीवं अहं णइस्सं। [भवति ! दीपमहं नेष्यामि।]
नायकः – यथा भवान् मन्यते तथास्तु ।
विदूषकः – (दीपं गृहीत्वा) भो रदणिए! अवावृद पक्खदुवालं। [भो रदनिके ! अपावृणु पक्षद्वारम्।]
रदनिका – तह ! (नाट्येन द्वारमपावृणोति) [तथा।]

(गणिका वस्त्रान्तेन दीपं निर्वापयति।)

विदूषकः – अविहा! अविहा!। [अविहा! अविहा!।]
नायकः – वयस्य! किमेतत्।
विदूषकः – अवावुदपक्खदुवारपिण्डीकिदप्पविट्ठेण राअमग्गसांकण्णेण वादेण सहसा णिग्गच्छन्तस्स मम हत्थे णिवावुदो दीवो। [अपावृतपक्षद्वारपिण्डीकृतप्रविष्टेन राजमार्गसंकीर्णेन

विभवमनतिक्रम्येति यथाविभवं तेन = यथोपलब्धेनोपकरणेन। एकाकी असहायः अनुगच्छ = पृष्ठतो गच्छ। अपावृणु = उद्घाटय। अविहा इति खेदार्थकमव्ययपदम्। अपावृतपक्षद्वारपिण्डीकृतप्रविष्टेन = अपावृतम् उद्घाटितं यत् पक्षद्वारं तस्मिन् पिण्डीकृतं = सङ्कोचेन राशीभूतं यथा स्यात्तथा।

नायक – रदनिके ! इनके साथ जाओ ।
रदनिक – जैसी महाराज की आज्ञा ।
विदूषक – माननीये ! मैं केवल दीप लेकर चलूँगा ।
नायक – जैसी आप की इच्छा हो वही कीजिये।
विदूषक – (दीप हाथ में लेकर) आर्य रदनिके ! पार्श्वद्वार खोलो।
रदनिका – अच्छी बात है। पार्श्वद्वार खोलने का अभिनय करती है (इसी बीच में द्वार के खुलते ही वहाँ बैठी हुई वसन्तसेना बस्त्राञ्चल के द्वारा दीप को बुझा देती है)
विदूषक – हाय हाय!
नायक – मित्र ! क्या हुआ।
विदूषक – मैं ज्यों ही दीपक लेकर आ रहा था उसी समय पक्षद्वार से झोंको की वायु जो सँकरे राजमार्ग से जुट एक हो कर आ रही थी उसी ने मेरे हाथ में स्थित

वातेन सहसा निर्गच्छतो मम हस्ते निर्वापितो दीपः।]

नायकः – मूर्ख ! धिक् त्वाम्।

विदूषकः – अप्पं खु अवरद्धं। रदणिए ! गच्छ, चउप्पहे म पडिवालेहि जावं अहं वि अब्भन्तरचउस्सालादो दीवं गह्निअ आअच्छामि। (निष्क्रान्तः।) [अल्पं खलु मेऽवराद्धम्। रदनिके! गच्छ, चतुष्पथे मां प्रतिपालय। यावदहमप्यभ्यन्तरचतुश्शालाद् दीपं गृहीत्वाऽऽगच्छामि।]

चेटी – अय्य ! तह। (परिक्रामति।) [आर्य! तथा।]

गणिका – दिट्ठिआ मम पवेसणिमित्तं अवावुदं पक्खदुवालं। अलं चारित्तभएण। जाव पविसामि। (अभ्यन्तरं प्रविश्य तिष्ठति।) [दिष्ट्या मम प्रवेशनिमित्तमपावृतं पक्षद्वारम्। अलं चारित्रभयेन। यावत् प्रविशामि।]

विटः – (विलोक्यात्मगतम्) भवनान्निर्गत्य काचिदियमागच्छति। भवतु, अनया वराकं वञ्चयामि। (प्रकाशम्) सुरभिस्नानधूपानुविद्ध इव गन्धः॥

प्रविष्टेन। राजमार्गसंकीर्णेन = संकुचितराजमार्गेण। निर्वापितः = निर्वाणं प्रापितः अभ्यन्तरचतुःशालात् चतसृणां शालानां समाहारः चतुःशालम् अभ्यन्तरं यत् चतुःशालं तस्मात्। प्रवेशनिमित्तम् प्रवेशस्य निमित्तम् अथवा प्रवेशः निमित्तं कारणं यस्मिन् स्यात्तथा। अपावृतम् = उद्घाटितम् चरित्रभयेन = चरित्रविनाशशंकया। वराकम् = हतभाग्यम्। वञ्चयामि = वञ्चनां करोमि। सुरभिस्नानधूपानुविद्धः = गात्रानुलेपनद्रव्यविशेषमिश्रितः। गन्धः = सुगन्धः। इदानीं लोकविरुद्धं शकारस्य वचनं प्रख्यापयति कविः – आमिति – शृणोमि गन्धं श्रवणाभ्यामित्यत्र जिघ्रामि गन्धं

दीपक को बुझा दिया।

नायक- मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है।

विदूषक – सचमुच इसमें मेरा थोड़ा अपराध है। रदनिके ! आगे चलो । उसी चौराहे पर प्रतीक्षा करना । तब तक मैं भी दीपक लेकर आ रहा हूँ (निकल जाता है)

चेटी – आर्य ! ऐसा हो करती हूँ । (घूमती है)

गणिका – सौभाग्य से मेरे प्रवेश के लिये चारुदत्त के घर का पार्श्वद्वार खुल गया। अब चरित्र का भय नहीं रहा तब इसी में प्रवेश करती हूँ। (भीतर प्रविष्ट हो कर बैठ जाती है)

विट – (इधर-उधर देख कर) (स्वगत) भवन से निकल कर यह कोई स्त्री आ रही है। अच्छा मैं इसी के द्वारा शकार को छलूँगा (प्रकट रूप में) सुगन्धित स्नान

शकारः-आम् भावे ! शुणामि गन्धे शवणेहि। अन्धआलपूलिदेहिं णाशापुडेहिं शुट्टु ण पेक्खामि। [आम् भाव ! श्रृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम् अन्धकारपूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि।]

विटः-तिष्ठ तिष्ठ क्व यास्यसि (चेटीं गृह्णाति)

(चेटी सभयं भूमौ पतिता)

शकारः-गण्ह भावे। गण्ह [गृहाण भाव ! गृहाण।]

विटः-

एषा हि वयसो दर्पात् कुलपुत्रावमानिनी ।
केशेषु कुसुमन्यासैः सेवितव्येषु धर्षिता ॥२२

शकारः-भावे किं गदीहा। [भाव ! किं गृहीता।]

नासापुटाभ्यामिति वक्तव्यं स्यादित्थमग्रेऽपि नेत्राभ्यां पश्यामीति वक्तव्ये नासापुटाभ्यामन्धकारदर्शनं लोकविरुद्धम्। अन्धकारपूरिताभ्यां = अन्धकारपरिपूर्णाभ्यां।

अन्वयः-हि वयसः दर्पात् कुलपुत्रावमानिनी एषा कुसुमन्यासैः सेवितव्येषु केशेषु धर्षिता ॥२२

व्याख्या-एषेति। हि पादपूर्त्यर्थं। वयसः = यौवनावस्थायाः दर्पात् = गर्वात्, कुलपुत्रावमानिनी = कुलपुत्राणां कुलीनवंशे जातानां समुत्पन्नानां यूनां अवमानिनी = तिरस्कर्त्री। एषा वसन्तसेना, कुसुमन्यासैः = कुसुमानां = पुष्पाणां, न्यासैः = विन्यासैः रचनाविशेषैः, सेवितव्येषु = अलंकर्तव्येषु, केशेषु = कचेषु, धर्षिता = बलाद् गृहीता

शकार-हाँ श्रीमन् ! कानों से गन्ध सुन रहा हुँ। अन्धकार से भरे नाक के रन्ध्रो से ठीक-ठीक नहीं देख रहा हूँ।

विट- रुको, रुको ! कहाँ जाओगी ?

(चेटी को पकड़ लेता है)

(चेटी भयभीत होकर भूमि पर गिर पड़ी)

शकार-पकड़िये श्रीमान् पकड़िये।

विट-आयु (यौवन) के दर्प से कुल पुत्रों (संभ्रान्त युवकों) का अपमान करने वाली यह वसन्तसेना फूलों से सजाये जाने वाले बालों द्वारा बल पूर्वक पकड़ ली गई ॥२२

शकार-श्रीमन् ! क्या पकड़ ली गई ?

विटः – अथ किम्। एषा गन्धानुसारेण गृहीता।

शकारः – दाशीए पुत्तीए शीशं दाव छिन्दिअ पच्चा मालइश्शं। [दास्या पुत्र्याः शीर्षं तावच्छित्त्वा पश्चान्मारयिष्यामि।]

विटः – गृह्यतां तावत्।

शकारः – (चेटीं गृहीत्वा)

एसा हि वाशू शिलशि ग्गहीदा केशेषु बालेसु शिलोलुहेशु।
कूजादि कन्दाहि लवाहि वात्तं महेश्शलं शङ्कुलमिश्शलं वा॥२३॥
[एषा हि वासूः शिरसि गृहीता केशेषु बालेषु शिरोरुहेषु।
कूज क्रन्द लप वार्तं महेश्वरं शङ्करमीश्वरं वा॥२३॥]

(चेटीं बलादाकर्षति।)

चेटी – किं अय्यमिस्सेह ववसिदं। [किमार्यमिश्रैर्व्यवसितम्।]

---

२३. अन्वयः – एषा वासूः शिरसि केशेषु बालेषु शिरोरुहेषु गृहीता। साम्प्रतम् शङ्करं ईश्वरं महेश्वरं वा आर्त्तं सत् लप = कन्द कूज वा।

व्या० – एषेति – एषा वासूः = वाला शिरसि = मूर्ध्नि, केशेषु कचेषु, वालेषु शिरोरुहेषु (अत्रैकस्यैव पदस्य नानापर्यायग्रहणेनाधिकत्वदोषाः तथाहि चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः इत्यमरः (एवमेवाग्रेऽपि महेश्वरं कूजेत्यादि पदेषु अधिकपदत्वदोषं विज्ञेयम्) गृहीता अस्ति।

विट – और क्या ! यह केश प्रसाधनों में लगाये गये द्रव्यों की सुगन्धि के प्रभाव से पकड़ी गई है।

शकार – इस दासीपुत्री का शिर काट कर पश्चात् इसे मारूगाँ।

विट – तब इसे पकड़िये।

शकार – (चेटी को पकड़ कर) यह बाला शिर पर, शिर के केशों, बालों तथा शिरोरुहों पर पकड़ ली गई है। (चेटी को लक्षित कर) अब तुम चाहे विलाप करो चाहे चिल्लाओ। अथवा कातर भाव से शंकर, ईश्वर वा महेश्वर को बुलाओ। किन्तु मैं तुम्हारे केशों को पकड़े रहूँगा।

(चेटी को बल पूर्वक खीचता है)

चेटी – आर्य ! लोगों के द्वारा यह क्या किया जा रहा है।

शकारः-भावे ! जाणामि शलयोगेण ण होइ वशन्तशेणिआ [भाव ! जानामि स्वरयोगेन न भवति वसन्तसेना ।]

विटः- न मोक्तव्या । वसन्तसेनैषा

एषा रङ्गप्रवेशेन कलानां चैव शिक्षया ।
स्वरान्तरेण दक्षा हि व्याहर्तुं तन्न मुच्यताम् ॥२४॥

विदूषकः-(प्रविश्य) राअमग्गसंकिण्णेन सीअसुडमारेण वादेण पदे पदे विक्खोहिअमाणजणिअतरङ्गतेल्लपुण्णभाअणं दीवं कहं विरक्खिअ गण्हि अ आअदोम्हि । [राजमार्गसंकीर्णेन शीतसुकुमारेण वातेन पदे पदे विक्षोम्यमाण-जनिततरङ्गतेलपूर्णभाजनं दीपं कथमपि रक्षित्वा गृहीत्वाऽऽगतोऽस्मि ।]

चेटी-(शकारं पादेन ताडयन्ती रुदित्वा) अय्य ! मेत्तेअ ! अअं परिभवो आदु अवलेवो । [आर्य ! मैत्रेय ! अयं परिभवोऽथवाऽवलेपः ।]

विदूषकः-मा दाव । मा दाव (सखड्गं विटं शकारं च दृष्टवा शङ्कितस्तिष्ठति) [मा तावद् मा तावत्]

अन्वयः-एषा रङ्गप्रवेशेन कलानां शिक्षया स्वरान्तरेण व्यार्हतुं च दक्षा। हि तन्न मुच्यताम् ॥२४ ॥

व्याख्या-एषेति । एषा वसन्तसेना । रङ्गप्रवेशेन = नाट्यागार-प्रवेशेन बहुविधभाषाप्रयोगेन । कलानां = विविधगानाङ्गप्रदर्शनादीनां, शिक्षया = अभ्यसनेन । स्वरान्तरेण = विविधस्वरेण, व्याहुर्तं = वक्तुं, दक्षा = निपुणा । अतः भिन्नस्वरोच्चारेणानापीयं वसन्तेनैव अतो न मुच्यताम् ॥२४ ॥

राजमार्गसंकीर्णेन = राजमार्गस्य संकोचकारणात् । शीत-सुकुमारेण = शैत्याधिक्य-युक्तेन वातेन = वायुना । विक्षोभ्यमाण-जनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनं = विक्षोभ्यमाणं = मुहुर्महुरान्दोलितं तरङ्गं यस्मिन् तथाभूतं तैलपूर्णं यद्भाजनं = तैलपूर्णं दीपं । रक्षित्वा = यत्नेन परिरक्ष्य, गृहीत्वा = आदाय । परिभवः = तिरस्कारः । अवलेपः = दर्पः ।

शकार- श्रीमन् ! स्वर से समझता हूँ कि वसन्तसेना नहीं है ।

विट-छोड़ो मत । वसन्तसेना ही है ।

यह नाट्यशाला में प्रवेश और कलाओं की शिक्षा से दूसरे स्वर में बोलने भी चतुर है अतः मत छोड़ो ॥२४ ॥

विदूषक-(प्रवेशकर) राजमार्ग की भीड़ में शीतवायु से बार-बार चञ्चल हो रहे तेलपूर्णदीपको रक्षा कर लेकर आया हूँ ।

चेटी-(शकार को पैर से पीटती हुई रोकर) आर्य मैत्रेय ! यह तिरस्कार है या दर्प ?

विटः–अये ! आर्य चारुदत्तस्य वयस्यो मैत्रेयः। नेयमपि वसन्तसेना। महाब्राह्मण ! अन्यशङ्कया खल्विदमस्माभिरनुष्ठितं न दर्पात्।

पश्यतु भवान् =

अकामा ह्रियतेऽस्माभिः काचित् स्वाधीनयौवना ।
सा भ्रष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेयं शीलवञ्चना ॥२५॥

शकारः-अविहा दलिद्दशत्थवाहपुत्तश्श चालुदत्तवडुवश्श चेडी खु इअं , ण होइ वशन्नशेणिआ। शाहु वशन्नशेणिए ! शाहु ! अन्धआलं कलिअ अन्तला वञ्चिदे भावे, अहके दावे

महाब्राह्मण = ब्राह्मणाधम। अत्र विदूषकस्य गर्हितकर्मानुष्ठानत्वान्महाब्राह्मणत्वेन संबोधनम्। परोपसेवया ब्राह्मणस्य गर्हितत्वम्। ब्राह्मणशब्देन सह महच्छब्दस्य प्रयोगः निषिद्धः। तद्यथा–

शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषिके द्विजे ।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥
कथंचित् प्रयुक्ते तु नीचार्थप्रत्यायकत्वम् ।

अन्वयः- अस्माभिः अकामा स्वाधीनयौवना काचित् ह्रियते। सा भ्रष्टा। तस्याः शङ्कया इयं शीलवञ्चना प्राप्ता ॥२५॥

व्याख्या-अस्माभिः शकारविटैः, अकामा = अस्मासु अनासक्ता, स्वाधीनयौवना = स्वाधीनं स्वच्छन्दं यौवनं यस्याः सा, पुरुषसंसर्गविषये सर्वथा स्वतन्त्रा न तु पराधीना। काचित् वसन्तसेना नाम्नी वराङ्गना। ह्रियते = हर्तुं यत्नं क्रियते। किन्तु गान्धान्धकारे सा भ्रष्टा = लुप्ता। पलायितेत्यर्थः। तस्याः एवं शङ्कया = भ्रमेण। इयं = रदनिकाग्रहणविषयिका, शीलवञ्चना = शीलस्य सदाचारस्य स्वभावस्य वा वञ्चना = छलनं प्राप्तम् अस्माभिरिति शेषः। वसन्तसेनान्वेषणाप्रसङ्गेन तस्या एव भ्रान्त्या इयं ग्रहीतेत्यर्थः ॥२५॥

विदूषक (हाथ में तलवार लिये विट तथा शकार को देखकर शंकित खड़ा होता है) नहीं, नहीं।

विट - अरे चारुदत्त का मित्र मैत्रेय है ! और यह भी वसन्तसेना नहीं है। महाब्राह्मण ! दूसरे के भ्रम से हम लोगों ने यह (रदनिका को पकड़ने का) कार्य कर दिया। दर्प से नहीं।

आप देखें-

हम लोग किसी अननुरक्त स्वाधीनयौवना (वेश्या) का हरण कर रहे हैं। वह कहीं लुप्त हो गयी और उसी के भ्रम से यह सदाचार की वञ्चना (उल्लंघन) हुआ। २५

वञ्चिदे कूडकवडशीलए। शौवहा दुक्खडे कडे। [अविहा ! दरिद्रसार्थवाहपुत्रस्य चारुदत्तवदुकस्य चेटी खल्वियं न भवति वसन्तसेना। साधु वसन्तसेने ! साधु ! अन्धकारं कृत्वाऽन्तरा वञ्चितो भावः। अहं तावद् वञ्चितः कूटकपटशीलया। सर्वथा दुष्करं कृतम्।]

विदूषकः - मा दाव ण जुत्तमिदम्। [मा तावत् न युक्तमिदम्]

विटः - भो महाब्राह्मण ! अयमनुनयसर्वस्वमञ्जलिः।

विदूषकः - भोदु। भोदु। अणवरद्धो भवं। अणुणीदो अहं एव्व एत्थ अवरद्धो। [भवतु, भवतु ! अनपराद्धो भवान्। अनुनीतोऽहमेवात्रापराद्धः।]

अविहा = खेदार्थकमव्ययपदं। अन्तरा = मध्ये। कूटकपटशीलया = कूटः = माया तया यः कपटः छद्म तच्छीलं यस्या सा तया। अनुनयसर्वस्वम् = अनुनयस्य = आदरातिशयस्य, विनयस्येत्यर्थः सर्वस्वं = सर्वभूतम्। अञ्जलिः = प्रणामाञ्जलिः।

शकार - हाय ! दरिद्र व्यापारी चारुदत्त की यह नौकरानी है। वसन्तसेना नहीं है। धन्य है वसन्तसेना ! धन्य। अन्धकार का बहाना लेकर वसन्तसेना भाग गयी श्रीमन् !

विदूषक - यह उचित नहीं है।

विट - हे महाब्राह्मण ! यह विनय का सर्वस्व प्रणामाञ्जलि है।

विदूषक - ठीक है ठीक है । आपने अपराध नहीं किया। जिस मेरी आप अनुनय कर रहे हैं वह मै ही अपराधी हूँ।

शकारः – भावे! दिढं खु भाआशि तं दलिद्दशत्थवाहपुत्तं चालुदत्तवडुअं। [भाव! दृढं खलु बिभेषि तं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तबटुकम्।]

विटः – सत्यं भीतोऽस्मि।

शकारः – किश्श भावे! किश्श। [कस्मात् भाव! कस्मात्।]

विटः – तस्य गुणेभ्यः! पश्यतु भवान्,

स मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतो
न तस्य कश्चिद् विभवैरमण्डितः।
निदाघसंशुष्क इव ह्रदो महान्
नृणां तु तृष्णामपनीय शुष्यति॥२६॥

महाब्राह्मण! अयमर्थः सार्थवाहपुत्रस्य न कथयितव्यः।

(निष्क्रान्तो विटः।)

---

२६. अन्वयः – स मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतः। तस्य विभवैः कश्चित् अमण्डितः न। तु निदाघसंशुष्कः महान् ह्रद इव नृणां तृष्णां अपनीय शुष्यति।

व्या० – स इति। स = चारुदत्तः। मद्विधानां = मत्सदृशानाम्। याचकानामिति शेषः प्रणयैः प्रार्थनादिभिः धनाद्यपहरणेनेति शेषः। कृशीकृतः = दरिद्रभावमापादितः। कोषस्य क्षीण-कारणात्। तस्य = चारुदत्तस्य। विभवैः = धनैः कश्चित् = सामान्योऽपि जनः। अमण्डितः

शकार – आर्य! आप उस दरिद्र वणिक् पुत्र चारुदत्त से निश्चय ही डर रहे हैं।

विट – आर्य! सचमुच मैं उनसे डरता हूँ।

शकार – क्यों महाशय! क्यों आप उनसे इतना डरते हैं?

विट – उसके गुणों से। आप देखें-

वह हमारे जैसे लोगों की याचना के कारण ही दरिद्रता को प्राप्त हुआ है। कोई ऐसा नहीं है जो उसके ऐश्वर्य से पूजित न हुआ हो। वह एक महान् ह्रद के समान सब की प्यास बुझा कर स्वयं ग्रीष्म में सूखे हुये तालाब की भाँति सूख गया है।

हे महाब्राह्मण! यह घटना सार्थवाहपुत्र चारुदत्त से नहीं कहना चाहिये।

(इतना कह कर विट चला जाता है)

शकारः — मालिश! वडुअ! मालिश! भणेहि तं दलिद्दशत्थवाहपुत्तं चालुदत्तवडुअं मम वअणेण— लाअशाले शण्ठाणे शवट्टेण शीशेण अणुवन्दिअ भणादिणाडअइत्थिआ वशन्वशेणिआ णाम गणिआदारिआ शुवण्णवण्णा दुवेहि अम्मेहि वलक्कारेण णीअमाणा महन्तेण शुवण्णलंकारेण तव गेहं पविट्ठा। शा शुवे णिय्याअइदव्वा। मा दाव तव अ मम अ दालुणो कोहो होदि त्ति। वडुअ! मालिश! इंद च भणाहि—या दाशीएपुत्त! पारावदगलप्पविट्ठं विअ मूलकन्दं शीशकवालं मडमडाइश्शं। मा खु कवाडशम्पुडप्पुडप्पविट्ठं विअ पक्ककवित्थं शीशं दे चुण्णचुण्णं मडमडाइश्शं ति। [मारिष! बटुक! मारिष! भण तं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तबटुकं मम वचनेन-राजश्यालः संस्थानकः सपट्टन शीर्षेणानुवन्ध भणति-नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम गणिकादारिका सुवर्णवर्णा द्वाभ्यामावाभ्यां वलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालंकारेण तव गेहं प्रविष्टा। सा श्वो निर्यातयितव्या। मा तावत् तव च मम च दारुणः क्षोभो भवतीति। बटुक! मारिष! इदं भण—मा दास्याःपुत्र। पारावतगलप्रविष्टमिव मूलकन्दं शीर्षकपालं मडमडायिष्यामि। मा खलु कपाटसम्पुटप्रविष्टमिव पक्वकपित्थं शीर्षं ते चूर्णचूर्णं मडमडायिष्यामि इति।]

= सत्कारपूर्वकदानेन अवमानितः न। दानेन सामान्यजनोऽपि तेन सत्कृतः। किमुत मादृशा इति भावः। तु = किन्तु साम्प्रतम्। निदाघसंशुष्कः = ग्रीष्मेण शुष्कतां नीतः। महान् ह्रद इव स = चारुदत्तः नृणाम् = याचकवर्गाणाम् अन्यत्र पिपासूनां जनानाम्। तृष्णां = धनाभिलाषामन्यत्र जलाभिलाषितां च। अपनीय = दूरीकृत्य। शुष्यति = दरिद्रति अन्यत्र क्षीणो भवति।

मारिष = श्रेष्ठमहापुरुष। संस्थानकः = तन्नामा। सपट्टन शीर्षेणः = कौशेयोष्णीषशिरसा। नाटकस्त्री

शकार — आर्य! बटुक! आर्य! उस दरिद्र सार्थवाह पुत्र चारुदत्त बटुक से मेरे कहने के अनुसार निवेदन करना कि राजश्याल संस्थानक पगड़ी बाँधे हुये अपने सिर से तुम्हें प्रणामपूर्वक कहता है कि सुवर्ण की कान्ति के समान गौरवर्ण वाली नाचने वाली उस वेश्यापुत्री वसन्तसेना जो दोनों द्वारा बलात्कारपूर्वक इधर लाई जा रही थी सहसा बहुमूल्य अलंकारों के साथ आप के घर में प्रविष्ट हो गई है, कल प्रातः ही उसे अपने घर से निकाल देवें। जिससे मेरे और उनके (बीच) असह्य क्षोभ न होवे। बटुक! मारिष! और यह भी जाकर कहना कि अधम! ऐसा करने से मैं कपोत के गले में पड़े हुये मूलकन्द की भाँति तुम्हारे कपाल को न फोड़ूँगा अथवा दरवाजा के मध्य में गिरे हुये पके कपित्थ की भाँति तुम्हारे शिर को चूर-चूर नहीं करूँगा।

विदूषकः – भो ! तह। (शकारं दीपनोद्वेजयति।) [भो तथा।]

शकारः – (सर्वतो विलोक्य) कहं भावे। गदे भावे। अविह्य भावे ! [क्व भावः। गतो भावः। अविहा भाव !।]

(निष्क्रान्तः शकारः।)

विदूषकः – किदं देवकय्यं ति तत्तहोदो णिवेदइस्सामो। भोदि ! अवणीअदु दे हिअअमण्णू। अअं वुत्तन्तो अब्भन्तरं ण पेसिदव्वो। [कृतं देवकार्यमिति तत्रभवतो निवेदयिष्यावः। भवति ! अपनीयतां ते हृदयमन्युः। अयं वृत्तन्तोऽभ्यन्तरं न प्रेषयितव्यः।]

चेटी – अय्य ! रदणिआ खु अहं। [आर्य ! रदनिका खल्वहम्।]

विदूषकः – एहि गच्छामो ! [एहि गच्छावः।]

(उभौ परिक्रामतः।)

= अभिनयशीला नर्त्तकीति यावत्। गणिकादारिका = गणिकापुत्री। सुवर्णवर्णा - सुवर्णस्य वर्ण इव वर्णो यस्याः सा = सुवर्णकान्तिः। निर्यातयितव्या = बहिः करणीया। दारुणः = असह्यः क्षोभो = चित्तचाञ्चल्यकरं मनोमालिन्यम्। दास्याः पुत्र = अधम ! मडमडायिष्यामि = चूर्णयिष्यामि। कपाटसंपुटप्रविष्टम् = कपाटयोः संपुटम् = मध्यभागं तत्र प्रविष्टम् = कपाटमध्यगतम्। मडमडायिष्यामि

विदूषक – ऐसा ही हो। (शकार को दीप दिखा कर व्याकुल करता है)

शकार – (चारो ओर देखते हुये) महाशय ! आप कहाँ है। अरे ! कहाँ चले गये। हाय महाशय।

(शकार निकल जाता है)

विदूषक – हमने देवकार्य संपादित कर दिया तब तक यह संवाद तत्रभवान् चारुदत्त से निवेदन करूँ।

मान्नीये ! अपने हृदय के क्षोभ के शान्त कीजिये। यह घटना अन्तःपुर में प्रकाशित न होने पावे।

चेटी – आर्य ! मैं रदनिका हूँ।

(आओ हम दोनों चलें) (दोनों घूमते हैं)

नायकः – भद्रे! कृतं देवकार्यम्।

गणिका – (आत्मगतम्) परिजणत्ति मं सद्दावेदि। भोदु, रक्खिदम्हि।
[परिजन इति मां शब्दापयति। भवतु, रक्षितास्मि।]

नायकः – मारुताभिलाषी प्रदोषः। तद् गृह्यतां प्रावारकम्।

गणिका – (प्रावारकम् गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम्) अणुदासीणं जोव्वणं मे पडवासगन्धी सूएदि।
[अनुदासीनं यौवनमस्य पटवासगन्धः सूचयति।]

नायकः – रदनिके! प्रवेश्यतामभ्यन्तरचतुःशालम्।

गणिका – (आत्मगतम्) अभाइणी अहं अब्भन्तरप्पवेसस्स। [अभागिन्यहमभ्यन्तरप्रवेशस्य।]

नायकः – किमिदानीं न प्रविशसि।

गणिका – (आत्मगतम्) इदाणिं आहं किं भणिस्सं। [इदानीमहं किं भणिष्यामि।]

नायकः – रदनिके! किं विलम्बसे।

= चूर्णीकरिष्यामि। परिजन = आत्मीयपरिवार इव। शब्दापयति = आह्वयति। मारुताभिलाषी = प्रचण्डवायुशीलः। प्रदोषः = सन्ध्याकालः। प्रावारकम् आवरणवस्त्रम् उत्तरीयम् वा। अनुदासीनम् = प्रगाढतरम्। यौवनम् = प्रकृष्टावस्थासंपादकत्वम्। पटवासगन्धः = वस्त्रे विद्यमानसुगन्धिः। अभागिनी = अयोग्या। अभ्यन्तरप्रवेशस्य = अन्तःपुरगमनस्य।

नायक – भद्रे! क्या आप ने देवकार्य पूरा कर लिया?

गणिका – (अपने मन में) मुझे अपनी नौकरानी समझ कर बुला रहे हैं। अच्छा जो भी हो मैं यहाँ सुरक्षित हूँ।

नायक – इस सन्ध्याकाल में हवा चल रही है। तो प्रावारक (ओढ़ने वाला चदरा) लो।

गणिका – (प्रावारक लेकर अपने मन में) इस वस्त्र का गन्ध सूचित करता है कि इसका यौवनकाल अभी उदासीन नहीं हुआ है। (अर्थात् यह सर्वथा नवीन है)

नायक – रदनिके! इस वस्त्र को अन्तःपुर के बैठक में रख दो।

गणिका – (स्वगत) मेरा अन्तःपुर में जाने का कोई अधिकार नहीं है।

नायक – क्यों! इतने पर भी अन्तःपुर में नहीं जा रही हो।

गणिका – इस समय मैं इनसे क्या कहूँगी।

नायक – रदनिके! क्यों विलम्ब कर रही हो।

(रदनिकाविदूषकावुपसृत्य)

चेटी-भट्टिदारअ ! इअं म्हि। [भर्तृदारक ! इयमस्मि।]

नायकः - इयमिदानीं का।

अविज्ञातप्रयुक्तेन धर्षिता मम वाससा ।
संवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते ॥२९॥

गणिका-(आत्मगतम्) दीवालोअसूइदरुवो सो एव्व दाणि एसो जस्स किदे अहं णिस्सासक्तलक्खिदं सरीरं उव्वहमि। [दीपालोकसूचितरूपः स एवेदानीमेषः, यस्य कृतेऽहं निःश्वासमात्ररक्षितं शरीरमुद्वहामि।]

विदूषकः- भो चारुदत्त ! राअसालो सण्ठाणो सवट्टेण सीसेण अणुवन्दिअ विण्णवेदि पाडअइत्थिआ वसन्तसेणिआ णाम गणिआदारिआ अम्हेदि बलक्कारेण णीअमाणा महन्तेण

अन्वयः - अविज्ञातप्रयुक्तेन मम वाससा धर्षिता इयं शरदभ्रेण संवृता चन्द्रलेखा इव शोभते ॥२९॥

व्याख्या-अविज्ञातेति। अविज्ञातप्रयुक्तेन = न विज्ञातम् अविज्ञातमपरिचितं तद् यथा स्यांत् तथा प्रयुक्तं = प्रदत्तं तेन मम = चारुदत्तस्य वाससा = वस्त्रेण, धर्षिता = संस्पृष्टा, निपीडिता वा इयं वसन्तसेना, शरदभ्रेण = शरत्कालीनमेघेन संवृता = संच्छन्ना, चन्द्रलेखा = चन्द्रज्योत्स्ना, इव, राजते = शोभते ॥ उपमालंकारः ॥२९

दीपालोकसूचितरूपः = दीपस्य आलोकः = प्रकाशः तेन सूचितं = परिज्ञातं, रूपं = आकृतिर्यस्य सः। निःश्वासमात्ररक्षितं = श्वासमात्रेण वर्तमानं यथाकथंचित् जीवितं। उद्वहामि = धारयामि।

(रदनिका तथा विदूषक पास जाकर)

चेटी-स्वामी ! यह मैं हूँ।

नायकः-यह दूसरी स्त्री इस समय कौन है

जो बिना जाने दिये गये वस्त्र से धर्षित (संस्पृष्ट) हो गयी वह यह इस वस्त्र से आवृत शरत्कालीन मेघ से ढकी चन्द्रज्योत्स्ना के समान शोभित हो रही है।२९

गणिका - (स्वगत) दीप के प्रकाश से स्वरूपतः दिखाई पड़ने वाले ये वही चारुदत्त हैं जिनके लिये मैं श्वासमात्र से जीवित हूँ।

विदूषक - मित्र चारुदत्त ! राजश्यालक संस्थानक ने पगड़ी बंधे

सुवण्णालंकारेण तुम्हाणं गेहं पविट्ठा। सा सुवे णिय्यात्रदव्वत्ति। [भोः चारुदत्त! राजश्यालः संस्थानः सपट्टेन शीर्षेणानुबन्ध विज्ञापयति—नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम गणिकादारिकास्माभिर्बला-त्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालंकारेण युष्माकं गेहं प्रविष्टा। सा श्वो निर्यातयितव्येति।]

गणिका – (आत्मगतम्) इं बलक्कारेण णीअमाणत्ति णं भणादि। भोदु, अअं पत्तकालो। (प्रकाशम्) अय्य! सरणागदम्हि। [अहं बलात्कारेण नीयमानेति ननु भणति। भवतु, अयं प्राप्तकालः। आर्य! शरणागतास्मि।]

नायकः – न भेतव्यम्, न भेतव्यम्। किं वसन्तसेनैषा।

विदूषकः – अविहा वसन्तसेणा। (अपवार्य) भे चारुदत्त! वसन्तसेणा खु इअं, जा भवदा कामदेवाणुआणप्पहुदि णअणमत्तसंत्थुदा सण्णिहिदमणोभवेण हिअएण उव्वहीअदि! ता पेक्खदु इअं। [अविहा वसन्तसेना। भो चारुदत्त खल्वियं, या भवता कामदेवानुयानप्रभृति नयनमात्रसंस्तुता सन्निहितमनोभवेन हृदयेनोदुह्यते। तत् पश्यत्विमाम्।]

सपट्टेन = सशीर्षण्येन। शीर्षेण = शिरसा। अनुवन्ध = प्रणम्य विज्ञापयति = विनिवेदयति। निर्यापितव्या = निष्कासयितव्या। प्राप्तकालः = प्राप्तावसरः। शरणागताऽस्मि = शरणसंप्राप्तास्मि। अपवार्य = पृथक्कृत्य। नयनमात्रसंस्तुता = नेत्रमात्रकृत संकेता। न तु आलपनादिसंभावितेत्यर्थः। उदुह्यते = संध्रियते।

हुये अपने शिर से आप की वन्दना करके निवेदन करते हैं कि नटी युवती वेश्यापुत्री वसन्तसेना हम लोगों के द्वारा बलात्कार से लाई जा रही थी जो प्रचुर अलंकारों के साथ आप के घर में प्रविष्ट हो गई उसे कल प्रातःकाल अपने घर से निकाल दीजिये।

गणिका – (स्वगत) वह स्वयम् इस बात को कहता है कि मैं उसके द्वारा बलात्कार पूर्वक लाई जा रही थी। तो ठीक है अब समय आ गया है (प्रकट) आर्य! मैं शरणागत हूँ।

नायक – डरो मत, डरो मत। क्या यह वसन्तसेना है।

विदूषक – अरी वसन्तसेना! (एकान्त में गुप्त रूप से) आर्य! चारुदत्त! यह वसन्तसेना ही है जो काम महोत्सव में आपके द्वारा नेत्र मात्र से देखे जाने पर अपने को कृतकृत्य मानती हुई सकाम हृदय से आपको चाहती है तो इस समय आप पूर्ण नेत्रों से इसे देखें।

नायकः - वयस्य ! पश्याम्येनां,

यत्र मे पतितः कामः क्षीणे विभवसञ्चये ।
रोषः कुपुरुषस्येव स्वाङ्गेष्वेवासीदति ॥२८॥

गणिका - अदिण्णभूमिप्पवेसपरिधसणेण अवरद्धा अहं अय्यं सीसेण पसादेमि। [अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षणेनापराद्धाहमार्यं शीर्षेण प्रसादयामि ।]

नायकः - यद्येवमहमपि तावदविज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि ।

विदूषकः - भो ! विवदन्ता इव सअडिअं दुव्विणीदवलीवद्दा

अन्वयः - विभवसंचये क्षीणे यत्र में कामः कुपुरुपस्य रोष इव स्वाङ्गेषु एव अवसीदति ॥२८॥

व्याख्या-यत्रेति । विभवसंचये = विपुलधनराशौ । क्षीणें = विनष्टे सति । यत्र = यस्यां वसन्तसेनायां, मे = मम, कामः = दृढानुरागः , सुरतेच्छा वा । पतितः = संजातः । कुपुरुषस्य = अधमस्य दरिद्रस्य वा नरस्य । रोषः = क्रोधः, इव = यथा । स्वाङ्गेषु = स्वशरीरावयेषु, एव, अवसीदति = किञ्चित्फलमुत्पादयितुमशक्तत्वाद् दुःखमुत्पादयति । अयं भावः - यथा अकिंचित्करस्य दरिद्रस्य क्रोधः शक्त्यभावेन शत्रूणां हानिं न कृत्वा तस्यैव शरीरं नाशयति तथैव क्षीणविभवत्वात् मे वसन्तसेनाप्राप्तिविषयकः कामोऽपि मय्येव जीर्णतां यास्यति ॥२८॥

अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षेणेन = अदत्तः = अनर्पितः अनाज्ञप्तः तादृशः यः भूमिप्रवेशः = गृहप्रवेशः, तस्य प्रधर्षणं = आज्ञामुल्लङ्घ्य बलादागमनं तेन अपराध्दा = विहितापराधा । अविज्ञातप्रयुक्तेन = अविज्ञातं = अज्ञानतया कृतं यथा स्यात् तथा प्रयुक्तेन = प्रयोगेण । प्रेष्यसमुदाचारेण = प्रेष्यस्य = भृत्यस्य

नायक-मित्र ! इसे देख रहा हूँ ।

इसी में ऐश्वर्य के नष्ट होने पर मेरी लगी वासना उसी प्रकार नष्ट हो रही है जैसे कुत्सित (दरिद्र) पुरुष का क्रोध उसके अङ्गों में ही नष्ट हो जाता है ।२८ ।

गणिका-बिनाप्रदान की गयी भूमि में प्रवेश रूपी धर्षणा के कारण अपराधिनी मैं शिर से (प्रणाम कर) आर्य को प्रसन्न कर रही हूँ ।

नायक-यदि ऐसी बात है तो मैं भी अज्ञानतावशभृत्य जैसा व्यवहार करने के कारण अपराधी हूँ । मै आपको प्रसन्न कर रहा हूँ ।

अण्णोण्णं सङ्किलेसन्ति। अहं दाणि कं पसादेमि। भोदु। दाणिं रदणिअं पसादेमि। रदणिए। पसीददु पसीददु होदी। [भोः ! विवदन्ताविव शकटिकां दुर्विनीतबलीवर्दावन्योन्यं संक्लेशयतः। अहमिदानीं कं प्रसादयामि। भवतु इदानीं रदनिकां प्रसादयामि। रदनिके ! प्रसीदतु, प्रसीदतु भवती।]

नायकः - भवति ! परवानस्मि। किमनुतिष्ठति स्नेहः।

गणिका-(आत्मगतं) महुरं खु इच्छिदव्वं। अदक्खिणं खु पढमदंसणे जइच्छागदाए, इह वसिदुं। ता एव्वं करिस्सं (प्रकाशं) जइ मे अय्यो पसण्णो, अअं मे अलंकारो इह एव्व चिहदु। अलंकारणिमित्तं पावा मं अणुसरन्ति। अहंपि अय्येणः रक्खिदा गेहं गन्तुमिच्छामि। [मधुरं खल्वेष्टव्यम्। अदक्षिणं खलु प्रथमदर्शने यदृच्छागतस्येह वस्तुम्। तदेवं करिष्यामि। यदि में आर्यः प्रसन्नः अयं मेऽलंकार इहैव तिष्ठतु। अलंकारनिमित्तं पापा मामनुसन्ति। अहमप्यार्येण रक्षिता गेहं गन्तुमिच्छामि।]

इव यः समुदाचारः = व्यवहारस्तेन हेतुना इति शेषः। विवदन्तौ = कलह्यन्तौ। दुर्विनीतबलीवर्दौ = दुर्विनीतौ = निरङ्कुशौ, यौ बलीवर्दौ = वृषभौ तौ इव। अन्योन्यं = परस्परं, संक्लेशयतः = पीडयतः। भवति = आर्ये। परवानस्मि = त्वत्स्नेहवशगोऽस्मि। अतोऽयं मदीयः स्नेहः किं कार्यं अनुतिष्ठति = विदधाति त्वमेव कामनापूर्तिरूपं। वदेति शेषः। मधुरं = कार्कश्यरहितं। एष्टव्यं = प्रार्थनीयम्। किंतु प्रथमदर्शने तत्काले अकस्मादागतया मया इह चारुदत्तगृहे वस्तुं = स्थातुं। अदक्षिणं = अयोग्यं। पापाः = दुष्टाः। अनुसरन्ति = अनुगच्छन्ति, पृष्ठतः आयान्ति।

विदूषक-गाड़ी को खींचने वाले परस्पर विवाद कर रहे बैलों के समान ये एक-दूसरे को कष्ट दे रहे हैं। अब इस समय मै किसको प्रसन्न करूं। ठीक है। इस समय रदनिका को प्रसन्न करूं। रदनिके ! आप प्रसन्न हो जाओ। प्रसन्न हो जाओ।

नायक - श्रीमति ! मै आपके (प्रेम के) अधीन हूँ। स्नेह क्या करे (तुम्हीं बताओ।)

गणिका-(आत्मगत) रमणीय (कामनापूर्ति) की इच्छा करनी चाहिये। अकस्मात् यहां आ गयी हूँ मेरा प्रथम भेंट में ही यहाँ रहना ठीक नहीं है। तो इस प्रकार करती हूँ। (प्रकट) यदि श्रीमान् मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा यह आभूषण यहीं रहे। आभूषण के लिए दुष्ट मेरा पीछा कर रहें है। मैं भी आर्य के द्वारा रक्षित होकर घर जाना चाहती हूँ।

नायकः - अन्वर्थमुपदिशति। मैत्रेय ! गृह्यताम्

विदूषकः - ण मे सद्धा ।[न मे श्रद्धा।]

नायकः - मूर्ख ! गृह्यताम्।

विदूषकः - जं भवं आणवेदि। आणेदु भोदी। [यद्भवानाज्ञापयति, आनयतु भवती।]

(गणिका विमुच्यालंकारं प्रयच्छति।]

विदूषकः - (गृहीत्वा) रदणिए। गण्ह एदं सुवण्णालंकारं तुमं। सट्ठीए सत्तमीए अ धारेहि। अहं अट्ठमीए अणद्धाए धारइस्सं। [रदनिके ! गृहाणैतं सुवर्णालंकारं त्वम्। षष्ठ्यां सप्तम्यां च धारय। अहमप्यष्टम्यामनध्याये धारयिष्यामि।]

चेटी - (विहस्य) सत्थं वक्खाणअन्तस्स भट्टिपुक्तस्स तदाणिं अवसरो होदि। आणेदुं अय्यो। (गृहीत्वा निष्क्रान्ता) [शास्त्रं व्याचक्षाणस्य भर्तृपुत्रस्य तदानीमवसरो भवति। आनयत्वार्यः।]

नायकः - कोऽत्रं भोः। दीपिका तावत्।

विदूषकः - भोः। दीविआ गणिका विअ णिस्सिणेहा संवुत्ता। [भोः दीपिका गणिकेव निः

अन्वर्थम् = स्वप्रयोजनानुरूपं। धारय = स्थापय। धारमिष्यामि = स्थापयिष्यामि। व्याचक्षाणस्य = व्याख्यायमानस्य। तदानीं = अनध्याये। अवसरः = अवकाशः। दीपिका गणिकेव निःस्नेहा संवृत्ता। यथा गणिका निःस्नेहा अनुरागशून्या भवति तथैवेयं दीपिकाऽपि निःस्नेहा = तैलरहिता संवृत्ता जाता कृतं = अलम्। दीपिकया = दीपप्रज्वालनेन। चारुदत्तः तैलाभावकृतं दीपप्रज्वालनायोग्यत्वं वसन्तसेनां विवक्षुः अधुना चन्द्रोदयं विलोक्य प्रकाशमयचन्द्रकिरणैरेव कार्यनिष्पन्तिर्भविष्यतीत्यभि-प्रायेणाह'

नायक - अपने प्रयोजन के अनुरूप कहती है। मैत्रेय ! लेलो।

विदूषक - मेरी श्रद्धा नहीं है।

नायक - मूर्ख ! ले लो

विदूषक - जैसी आपकी आज्ञा। श्रीमती ले आवें।

(गणिका उतार कर आभूषण देती है।)

विदूषक-(लेकर)-रदनिके ! इस सुवर्णाभूषण को तुम लो। षष्ठी और सप्तमी को अपने पास रखो। मै भी अष्टमी को अनध्याय के दिन रखूंगा।

चेटी-शास्त्र की व्याख्या करने वाले स्वामी को उसी दिन अवकाश रहेगा। ले आवें श्रीमान् (लेकर निकल जाती है।)

नायक - कौन है। दीपक लावें

विदूषक - हाय ! दीपक भी वेश्या के समान निःस्नेह (प्रेम-तेल) रहित हो गया।

स्नेहा संवृत्ता।]

नायकः – कृतं दीपकया। (विलोक्य) उदितो भगवान् सर्वजनसामान्यप्रदीपश्चन्द्रः। अतः खलु,

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति॥२९॥

भवति! राजमार्गे निष्क्रमणः क्रियताम्। सखे! अनुगच्छात्रभवतीम्।

वक्ति उदितो भगवानिति। सर्वसामन्य दीपः सर्वसामान्यानां = साधारणानां जनानम् दीपं प्रकाशकरः

२९. अन्वयः – हि क्लिन्नखर्जूरपाण्डुः युवतिजनसहायः राजमार्गप्रदीपः शशाङ्कः उदयति। तिमिरनिचयमध्ये यस्य गौरा रश्मयः हृतजले पङ्के क्षीरधारा इव पतन्ति।

व्या० – हि = यतः। क्लिन्नखर्जूरपाण्डुः क्लिन्नः = आर्द्रं यः खर्जूरः ताडफलविशेषः तद्वत् पाण्डुः = श्वेतवर्णः युवतिजनसहायः युवति जनानां = कामिनीकुलानां सहायः = सहायकः कामोद्दीपकतयेति शेषः। राजमार्गप्रदीपः राजमार्गस्य = सर्वसामान्यमार्गस्य प्रदीपः = आलोकदाने प्रकाशकरः। शशाङ्कः = चन्द्रः। उदयति आकाशे आविर्भवति। तिमिरनिचयमध्ये तिमिराणां =

नायकः – अथवा दीप की कोई आवश्यकता नहीं है (देखकर) सबके लिए सामान्य प्रदीप स्वरूप भगवान् चन्द्रमा का उदय हो गया है इसलिये है।

आर्द्र खजूर के समान शुभ्रवर्ण, युवति जनों का सहायक, राजमार्ग का प्रदीप यह चन्द्रमा उदय हो रहा है जिसकी स्वच्छ किरणें घनान्धकार में जलशून्य पङ्क में दुग्धधारा जैसी गिर रही है। आप राजमार्ग से चलिए मित्र तुम इन्हें पीछे-पीछे जाकर पहुँचाओ।

विदूषकः – जं भव आणवेदि। एदु एदु भोदी। [यद् भवानाज्ञापयति। एत्वेतु भवती।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति प्रथमोऽङ्कः।

अन्धकाराणां निचयः = समूहः तस्य मध्ये = अभ्यन्तरे यस्य गौराः = शुभ्रवर्णाः रश्मयः = किरणाः। हृतजले = हृतं = निर्गतं जलं यस्मात् तादृशे पङ्के = कर्दमे क्षीरधारा = दुग्धधारा इव पतन्ति = गच्छन्ति। निष्क्रान्ताः = रङ्गमञ्चात् निर्गताः।

प्रथमोऽङ्कः समाप्तः

विदूषक – जैसी आपकी आज्ञा। आप मान्या आवें।

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति प्रथमोऽङ्कः।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति गणिका चेटी च)

गणिका – तदो तदो। [ततस्ततः।]

चेटी – अम्महे ण किञ्चि मए भणिदं। किं तदो तदो त्ति। [अम्महे न किञ्चिन्मया भणितम्। किं ततस्तत इति।]

गणिका – हञ्जे ! किं मए मन्तिदं। [हञ्जे! किं मया मन्त्रितम्।]

चेटी – अज्जुए ! सिणेहो पुच्छदि, ण पुराभाइदा किं चिन्तीअदि। [अज्जुके! स्नेहः पृच्छति, न पुरोभागिता। किं चिन्त्यते।]

गणिका – हञ्जे। तुमं दाव किं ति तक्केसि। [हञ्जे। त्वं तावत् किमिति तर्कयसि।]

चेटी – अप्पओअणदाए गणिआभावस्स अज्जुआ कं पि कामेदि त्ति तक्केमि। [अप्रयोजनतया

इदानीं द्वितीयांकस्य प्रारम्भे प्रसंगानुकूलं वृत्तं दर्शयितुं कविः गणिकाचेट्योः प्रवेशं दर्शयति ततः इत्यादिना। वसन्तसेनया किमप्यनुक्तवर्ती चेटीं प्रति किं ततस्तत इति पृष्ठे उत्तरयति किं ततस्तत इति। यदा मया किञ्चिन्नोक्ता तथापि भवती ततः किं भूतमिति केन हेतुना जिज्ञासत इति भावः।

हञ्जे इति दासीकृते सम्बोधनपदम्। मन्त्रितम् = भणितम्। अञ्जुके इति सम्बोधनपदम् गणिके इत्यर्थः। स्नेहः पृच्छति त्वद्विषयकः स्नेहः मां प्रष्टुं प्रेरयति। पुरोभागिता = दोषैकदर्शनशीलता। औद्धत्यं वा।

(तदन्तर गणिका और चेटी का प्रवेश)

गणिका – तब फिर क्या हुआ?

चेटी – आर्ये ! जब मैंने कुछ कहा ही नहीं। तब इस तरह क्यों पूछ रही हो।

गणिका – दासी ! तो मैंने भी क्या कहा।

चेटी – माननीये ! आपके प्रति जैसा मेरा स्नेह है, वही पूछने को बाध्य कर रहा है न कि उद्दण्डता। आप सोच क्या रही हैं।

गणिका – प्रिय दासी ! मेरे सोचने के विषय में तुम्हारा क्या अनुमान है?

चेटी – अब आपकी गणिकावृत्ति की आवश्यकता नहीं, तो निश्चय ही किसी को

गणिकाभावस्याज्जुका किमपि कामयत इति तर्कयामि।]

गणिका – सुट्ठु तुए किदं। अविञ्चिदा दे दिट्ठी। ईदिसवण्णय्येव। [सुष्ठु त्वया कृतम् अवञ्चिता ते दृष्टिः ईदृशवर्णैव!]

चेटी – अणलंकिदं पि अज्जुअं मण्डिदं विअ पेक्खामि। कामो हि भअवं अणवगीदो ऊसुवो तरुणजणस्स। [अनलंकृतामप्यज्जुकां मण्डितामिव पश्यामि। कामो हि भगवाननवगीत उत्सवस्तरुणजनस्य।]

गणिका – हदासे! उक्कण्ठिदव्वे का दे रदी। [हताशे ! उत्कण्ठितव्ये का ते रतिः।]

चेटी – अज्जुए ! इच्छामि पुच्छिदुं बहुमाणो विअ रमणीओ कोच्चि राअकुमारो। [अज्जुके!

गणिकाभावस्य = गणिकायाः = वेश्यायाः भावस्य = धनार्जनरूपवृत्तेः। त्वद्विषये इति शेषः। अप्रयोजनतया = निरर्थकतया यतः वारांगनावृत्तौ धनार्जनमेव मुख्यं प्रयोजनम् तच्च त्वयि पर्याप्तं वर्त्तते एव अतस्तस्य वृत्तेर्निरर्थकतया तथापि त्वया यच्चिन्त्यते तेनानुमिनोमि यत् श्रीमती किमपि प्रियजनं कामयत इति चेट्यभिप्रायः।

कृतम् = विचारितम्। आलोचितं वा। अवञ्चिता = अप्रतिहता। ते दृष्टिः = अनुमानविषयकं ज्ञानम्। दृशेः ज्ञानार्थकत्वात्। ईदृशवर्णैव = ईदृग्विधैवाहमस्मीति भावः। अनलंकृताम् = अलंकाररहिताम्। अज्जुकाम् = गणिकाम्। मण्डिताम् = भूषिताम्। अननवगीतः न अवगीतः = न निन्दितः = अननवगीतः = अनिन्दितः सर्वशोभासंपन्नः। कामः = कामदेवः। उत्सवः = क्षणमाह्लादजनकव्यापारः तरुणजनस्य = तारुण्यं प्राप्तस्य लोकस्य हताशे = अपरिपूर्णाभिलाषे। उत्कण्ठितव्ये = बाहुल्केन प्रियस्मर्त्तीयितव्ये। रतिः = संतोषः।

चाह रही हैं। मैं ऐसा सोचती हूँ।

गणिका – तुमने यह अनुमान ठीक ही किया। तुम्हारा ज्ञान अप्रतिहत है। सचमुच मैं कुछ इसी प्रकार की हो रही हूँ।

चेटी – मैं अलंकार से रहित होने पर भी आप को मण्डित जैसी देख रहा हूँ। सचमुच भगवान् काम तरुणजनों के लिए सर्वथा शोभादायक उत्सव स्वरूप है।

गणिका – अभागिन ! अभी तो प्रियतम के विषय में मेरी उत्कण्ठा मात्र है वह तो अभी उपलब्ध भी नहीं हुआ। फिर उसकी उपलब्धि के पहले तू इतनी आनन्दित क्यों है।

चेटी – मैं तुमसे जानना चाहती हूँ कि क्या तुम्हें सम्मानित परम रमणीय राजकुमार

इच्छामि प्रष्टुं बहुमान इव रमणीयः कश्चिद् राजकुमारः।]

गणिका — रमिदुं इच्छामि, ण सेविदुं। [रन्तुमिच्छामि, न सेवितुम्।]

चटी — किण्णु खु विज्जाविसेसरमणीओ कोच्चि ब्रम्हणदारओ। [किन्तु खलु विद्याविशेषरमणीयः कश्चिद् ब्राह्मणदारकः।]

गणिका — अत्थि अदिबहुमदो विस्सम्भो। पूअणीओ खु सो जणो। [अस्त्यतिबहुमतो विश्रम्भः। पूजनीयः खलु स जनः।]

चेटी — किण्णु हु वणिजदारओ कोच्चि आगन्तुओ। [किन्तु खलु वणिग्दारकः कश्चिदागन्तुकः]

गणिका — उन्मत्तिए ! आसाच्छेदं उक्कण्ठन्ता का सहेदि। [उन्मत्तिके ! आशाच्छेदमुत्कण्ठमाना का सहते।]

इष्टवस्तुनः प्राप्तौ सत्यामेव त्वया संतोषः कर्त्तव्यः उत्कण्ठामात्रेण सन्तोषोऽनुचितः इति भावः। बहुमानः = आदरातिशययोग्यः। रमणीयः = लावण्ययुक्तः। राजकुमारः राजपुत्रः तवोत्कण्ठाविषयः। इति चेट्या पृष्ठे गणिका उत्तरयति रन्तुमिति राजकुमारस्तु मत्तः सेवामभिकामयेन्नाहं तम् शुश्रूषामि किन्तु रन्तुम् = प्रेम्णा वशीकर्त्तुमिच्छामीति भावः। पुनः चेटी पृच्छति विद्येति। विद्याविशेषरमणीयः विद्यया सारस्वतवैभवेन रमणीयः = गुणज्ञः कश्चिद्ब्राह्मणदारकः = ब्राह्मण-पुत्रस्ते कामनाविषयः किम्। गणिकोत्तरयति अस्तीति। स अतिबहुमतः = अत्यन्तादरास्पदः। विश्रम्भः = विश्वसार्हः पूजनीयः = अर्चाविषयः। खलु= निश्चयेन। विद्वान् ब्राह्मणपुत्रः भोजनवस्त्रसम्मानादिदानेनाभ्यर्हणीयः अतएव पूजार्हताकारणेन सोऽपि न रमणार्हः। कश्चिदागन्तुकः = वैदेशिकः। वणिग्दारकः वणिक्पुत्रः कामयते किम्। उत्कण्ठमाना = प्रियं बाहुल्येन संस्मरन्ती संभोगाभिलाषिणी आशाच्छेदम् = आशाभङ्गम् वैदेशिके प्रीतिं संस्थाप्य तस्यान्यत्र गमनादिति शेषः। का सहते: कथं मर्षयति।

अभीष्ट है।

गणिका — मैं तो प्रेम करना चाहती हूँ न कि किसी की सेवा।

चेटी — तो क्या विद्या विशेष से सुशोभित कोई ब्राह्मण कुमार को चाहती हो।

गणिका — ब्राह्मण कुमार में मेरा अत्यन्त विश्वास है किन्तु वह पूजनीय है। इसलिए वह भी मेरा अभीष्ट नहीं।

चेटी — तो क्या किसी परदेशी वणिक् कुमार को चाहती हो।

गणिका — तू पागल है। भला किसी को चाहने वाली स्त्री परदेशी से प्रेम कर उसकी अवस्थिति अनित्य जानकर भी बीच में अपनी आशा का विच्छेद क्यों चाहने लगेगी।

चेटी - किं ण सक्कं सोढुं। को अम्हाणां भणारहाउत्तो। [किं न शक्यं श्रोतुम्। कोऽस्माकं मनोरथावुत्तः।]

गणिका--किं तुवं कामदेवाणुयाणे ण आअदा सि। [किं त्वं कामदेवानुयाने नागतासि।]

चेटी-णं आअदम्हि। [नन्वागताऽस्मि।]

गणिका-केण उदासीणं मन्तेसि। [केन उदासीनं मन्त्रयसे।]

चेटी - भणादु, भणादु, अज्जुआ, भणादु [भणतु, भणत्वज्जुका, भणतु।]

गणिका - हञ्जे ! सुणाहि दाव। अत्थि सत्थवाहपुत्तो चालुदत्तो नाम। [हञ्जे ! श्रृणु तावत् । अस्ति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम।]

चेटी-जेण सरणागदा तुवं रक्खिदा। [येन शरणागता त्वं रक्षिता।]

गणिका - सो एव्व। [स एव।]

यतस्ते सर्वमनुमानं मदभीष्टज्ञानविषयेऽलीकमित्युन्मत्तैवासीति भावः। मनोरथावुतः= अभिलाषाविषयः। कामदेवानुयाने =कामोत्सवे। उदासीनं =निरुत्सुकं, मन्त्रयसे= कथयसीति। शरणागता = शरणमापन्ना। अवचनीया = अनिन्दार्हा भवतीति।

चेटी - क्या मैं सुन नहीं सकती कि कौन मेरे मनोरथ के जीजा है ?

गणिका - क्या तुम कामदेव के उत्सव में नहीं आयी थी ?

चेटी - आयी थी।

गणिका - क्यों तटस्थ जैसा कह रही हो ?

चेटी - कहें, कहें स्वामिनी कहें।

गणिका - हञ्जे ! तो सुनो। चारुदत्तनाम का वाणिक्पुत्र है।

चेटी - जिसने शरणागत होने पर आपकी रक्षा की थी।

गणिका - वही।

चेटी-हद्धि, दरिद्दो क्खु सो। [हा धिक् ! दरिद्रः खलु सः।]

गणिका - अदो क्खु कामीअदि। अदिदरिद्दपुरुससत्ता गणिआ अवअणीआ होइ। [अतः खलु काम्यते। अतिदरिद्रपुरुष-सक्ता गणिका अवचनीया भवति।]

चेटी - अज्जुए ! उद्घूदपुप्फं सहआरं महुअरा उवासन्ति। [अज्जुके ! उद्घृतपुष्पं सहकारं मधुकरा उपासते।]

गणिका- हञ्जे ! एवं, उवासन्ति। ते महुअरात्ति पुच्छीअन्ति। [हञ्जे ! एवम्, उपासते। ते मधुकरा इति पृच्छ्यन्ते।]

चेटी-किं, विहवमन्ददाए बेस बासप्पसङ्गकादरो दुक्खंत्ति जदू ण आअच्छे। [किं विभवमन्दतया वेसवासप्रसङ्गकातरो दुःखमिति यदि नागच्छेत्।]

गणिका - ण अहं तं कामेमि। [नन्वहं तं कामये।]

उदघृतपुष्पं = उद्धृतानि समुद्गतानि पुष्पाणि यस्य तम् एवंभूतं सहकारं = आम्रवृक्षं। मधुकराः = मधुहरणशीलाः भ्रमराः। उपासते = समीपं गच्छन्ति। गणिका हि धनप्रिया अतएव तया धनिनः उपास्या न दरिद्रारा इति चेट्यभिप्रायः। तच्छ्रुत्वा गणिका उत्तरयति अत एव ते मधुकरा = मधुहरणशीला इति पृच्छ्यन्ते = उपालभन्ते। विभवमन्दतया = दरिद्रतया। वेशवासप्रसङ्गकातरः = गणिकाभवननिवास-प्रसङ्गे अधीरः। बहुमानः = आदरातिशयः। इदानीमेवाभिस्त्रियमाणे मयि प्रत्युपकारदुर्लभतया

चेटी - हाय ! धिक्कार है। वह तो दरिद्र है।

गणिका - इसीलिये उसकी कामना करती हूँ। अति दरिद्र पुरुष में आसक्त गणिका निन्दित नहीं होती।

चेटी - स्वामिनी ! विकसितपुष्पवाले आम्रवृक्ष का भ्रमर सेवन करते हैं।

गणिका- हञ्जे ! हाँ उपासना करते हैं। इसीलिये वे मधुकर नाम से निन्दित होते है।

चेटी - दरिद्रता के कारण वेश्यालय में निवास के लिये अधीर (दुःख समझकर) यदि नहीं आवें।

गणिका - मैं निश्चय रूप से उसकी कामना करती हूँ।

चेटी – जइ एत्तओ बहुमाणो, किं णाभिसरीआदि। [यद्येतावान् बहुमानः, किं नाभिस्रियते।]

गणिका – ण हु ण गच्छामि। किन्तु सहसा अभिसरिदो पच्चुअआरदुल्लभदाए पुणो मे दुल्लभो भवे त्ति विलम्बेमि। [न खलु न गच्छामि। किन्तु सहसाभिसृतः प्रत्युपकारदुर्लभतया पुनर्मे दुर्लभो भवेदिति विलम्बे।]

चेटी – हं किं एतण्णिमित्तं तहि एव्व सो अलङ्कारो ठाविदो। [हं, किमेतन्निमित्तं तत्रैव सोऽलङ्कारः स्थापितः।]

गणिका – ईदिसं एव्व। [ईदृशमेव।]

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण संवाहकः।)

संवाहकः – अय्ये ! सरणागदो म्हि। [आर्ये ! शरणागतोऽस्मि।]

गणिका – अलं अय्यस्स सम्भमेण। [अलमार्यस्य सम्भ्रमेण।]

प्रत्युपकारे उपकारानृण्ये दुर्लभः = असमर्थः दारिद्र्यभावतयेति हेतोः स चारुदत्तः पुनः मे = मम सम्बन्धे दुर्लभः = दुःखेन लभ्यः भवेत् इति हेतोरहं विलम्बे = विलम्बं करोमीत्यर्थः। हमिति अव्ययपदं किमेतन्निमित्तम् = एतदभिप्रायेण। गणिका स्वीकरोति ईदृशमेवेति एतदर्थमेव मया सोऽलंकारस्तत्समीपे स्थापितः इति भावः। अपटीक्षेपेण पट्या = जवनिकायाः क्षेपः = पातः पटीक्षेपः न पटीक्षेपः अपटीक्षेपस्तेन = जवनिकापसारणं विनैव प्रविशति संवाहकः = अंगमर्दनकलाजीवी। अत्रार्त्तस्य संवाहकस्यापटीक्षेपेण प्रवेशो नासंगतस्तदुक्तम् 'पटीक्षेपो न कर्त्तव्यः

चेटी – यदि उसके प्रति आपका इतना बड़ा आकर्षण एवं आदरभाव है तो आप स्वयं क्यों नहीं चली जाती।

गणिका – मैं जाऊँगी अवश्य। किन्तु मेरे सहसा अभिसरण करने से उसका प्रत्युपकार करने में अपने को अशक्त मानता हुआ वह बाद में मुझे दुर्लभ हो जयेगा इसीलिये वहाँ जाने में विलम्ब कर रही हूँ।

चेटी – तब क्या इसी निमित्त अपना अलंकार उसके पास छोड़ आई है।

गणिका – हाँ बात तो ऐसी ही है।

(तदनन्तर पर्दा को गिराये बिना ही संवाहक का प्रवेश)

संवाहक – आर्ये! मैं शरणागत हूँ।

गणिका – आप को व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं।

चेटी – हं क दाणिं एसो। [हं क इदानीमेषः।]
गणिका – उम्मत्तिए ! किं सरणाअदो पुच्छीअदि। [उन्मत्तिके ! किं शरणागतः पृच्छ्यते।]
चेटी – अवि णाम साहसिओ भवे। [अपि नाम साहसिको भवेत्।]
गणिका – उम्मत्तिए ! गुणवन्तो रक्खिदव्वो होदि। [उन्मत्तिके ! गुणवान् रक्षितव्यो भवति।]
संवाहकः – अय्ये ! णं भएण उवआरो विस्सरिदो, ण परिभवेण। पेक्खदु अय्या, भीदाहवा पधरिसिदाहवा आवण्णाहवा सुलभचारित्तवञ्चणाहवा अवराहेदुं समत्था होन्ति। [आर्ये ! ननु भयेनोपचारो विस्मृतः, न परिभवेन। पश्यत्वार्या, भीता अथवा प्रधर्षिता अथवा आपन्ना अथवा सुलभाचारित्रवञ्चना अपराधयितुं समर्था भवन्ति।]
गणिका – भोदु, भोदु। विस्सत्थो भोदु अय्यो। गणिआ क्खु अहं। [भवतु, भवतु। विश्वस्तो भवत्वार्यः। गणिका खल्वहम्।]
संवाहकः – अभिजणेण, ण सीलेण। [अभिजनेन, न शीलेन।]

आर्त्तराजप्रवेशने' इति। संभ्रमेण = व्यग्रतया। नाम इति प्राकाश्ये। संभावनार्थकमव्ययपदम्। साहसिकः = साहसेन चरतीति = दस्युप्रधानः भयेन = त्रासेनं। उपचारः = शिष्टाचारः। विस्मृतः = विस्मरणं जातः। परिभवेन कर्तुं शक्यं चरित्र्यस्य वञ्चनम् = शीलभ्रंशो येषां ते। अपराधयितुम् = अपराधं कर्तुं शक्यम्।
अभिजनेन = जन्मना। शीलेन = स्वभावेन। धनिकात् = धनिको द्यूतविजयी तत्सकाशान्मम

चेटी – हाँ। यह कौन है?
गणिका – क्या तुम सचमुच पागल हो जो शरणागत के विषय में पूछना चाहती हो।
चेटी – हो सकता है कोई अपराधी हो।
गणिका – पागल कहीं की। गुणवान् की रक्षा करनी चाहिये।
संवाहक – मैं सचमुच ही भय के कारण शिष्टाचार भूल गया था। न कि अपमान के कारण। आर्या स्वयं देखें भयभीत तिरस्कृत विपद्ग्रस्त अथवा चरित्रभ्रष्ट व्यक्ति शिष्टता के व्यवहार के विषय में अपराध कर जाता है।
गणिका – अच्छा! अच्छा! आर्यी आप विश्वस्त हों। मैं वास्तव में गणिका हूँ (अतएव शिष्टाचार की कोई बात नहीं है)
संवाहक – आप जन्म से भले ही गणिका हैं। किन्तु स्वभाव से नहीं।

गणिका – हञ्जे ! एवं विअ। [हञ्जे ! एवमिव।]

चेटी – अज्जुआ अय्यं पुळदि, कुदो अय्यस्स भअं ति। [अज्जुका आर्यं पृच्छति, कुत आर्यस्य भयमिति।]

संवाहकः – अय्ये ! धणिआदो। [आर्ये ! धनिकात्।]

गणिका – जइ एवं, आसणं देदु अय्यस्स। [यद्येवम्, आसनं दीयतामार्यस्य।]

चेटी – तह। (आसनं ददाति।) [तथा।]

गणिका – उववविसदु अय्य। [उपविशत्वार्यः।]

संवाहकः – (स्वगतम्) पूआविसेसेण जाणामि कय्यं त्ति। (उपविशति।) [पूजाविशेषेण जानामि कार्यमिति।]

गणिका – हञ्जे ! एवं विअ। [हञ्जे। एवमिव।]

चेटी – अज्जुए ! तह अय्य ! राअमग्गे विस्सत्थसम्पादं अय्यं कादुं इळदि अज्जुआ। कस्स किं कत्तव्वं। [अज्जुके ! तथा। आर्य ! राजमार्गविश्वस्तसम्पातमार्यं कर्तुमिच्छत्यज्जुका। कस्य किं कर्तव्यम्।]

भयमस्तीति भावः। पूजाविशेषेण = आदरातिशयेन। कार्यमिति कार्यसिद्धचेदिति भावः। अनया विषेशेण = समादृतोऽहम् तेन जानामि यन्मदीयं सकलं कार्यं सेत्स्यतीति। गणपतिमहोदयास्तु धनिकोपद्रवपरिहारलक्षणं मदीयमीप्सितमनया संपादयितुं शक्यते इति कथयन्ति। राजमार्गविश्वस्त सम्पातम् राजमार्गे विश्वस्तं भयेन रहितं संपातम् गमनं यथा स्यात्तथा त्वां कर्तुमिच्छतीति भावः।

गणिका – अरी दासी बात ऐसीं ही है।

चेटी – तत्रभवती अज्जुका आर्य से पूछ रही हैं कि आप को किसका भय है?

संवाहक- आर्ये - मात्र धनिक से।

गणिका – यदि ऐसी बात है तो आर्य को आसन दो।

चेटी – ऐसा ही हो। (आसन देती है)

गणिका – आर्या! आसन पर बैठें।

संवाहक – (बैठ जाता है) (स्वगत) मैं सत्कार विशेष से अनुमान करता हूँ कि कार्य में सिद्धि होगी।

गणिका – हञ्जे! ऐसी ही रहने दो।

चेटी – आर्ये ऐसी ही हो (पुनः संवाहक के प्रति) आर्या! अज्जुका आप को राजमार्ग

संवाहकः – सुणादु अय्या। [शृणोत्वार्या।]

गणिका – अवहिदम्हि। [अवहितास्मि।]

संवाहकः – पाडलिपुत्तं मे जम्मभूमी। पकिदीए वणिजओ अहं। तदो भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए संवाहअवुत्तिं उवजीवामो। [पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः। प्रकृत्या वणिगहम्। ततो भागधेयपरिवृत्ततया दशाया संवहकवृत्तिमुपजीवामि।]

गणिका – संवाहओ अय्यो। सुउमारा कला सिक्खिदा अय्येण। [संवाहक आर्यः सुकुमारा कला शिक्षितार्येण।]

संवाहकः – कलेत्ति सिक्खिदा। आजीविअं दाणिं संवुत्तं। [कलेति शिक्षिता।आजीविकेदानीं संवृत्ता।]

गणिका – णिव्वेदसूअअं विअ वअणं अय्यस्स। तदो तदो। [निर्वेदसूचकमिव वचनमार्यस्य। ततस्ततः।]

अवहिता = सावधानेन संस्थिता। प्रकृत्या = जन्मना। भागेधेयपरिवृततया भागधेयम् = भाग्यम् तस्य परिवृतता प्रतिकूलता यस्यां तया। दशाया अवस्थया। संवाहकवृत्तिम् = संवाहकस्य = अंगमर्दनस्य वृत्तिम् = जीविकाम् उपजीवामि = जीविका निर्वहामि। निर्वेदसूचकम् = ग्लानि परिचायकम्। आगन्तुकानां मुखादिति शेषः। पुरुषविशेषकौतूहलेन पुरुषाणां विशेषः तस्य कौतूहलं तेन = सेव्यपुरुषलिप्सया उज्जयिन्यां सुलभाः खलु अङ्गमर्दनार्थं संसेव्या जना इति आगन्तुकमुखेभ्यः विज्ञायेहागतोऽस्मीतिभावः।आगतमात्रः आगतः समागमनं तदेव मात्रा परिमाणं यस्य तस्मिन्। समासादितः = सम्प्राप्तः। आकृतिमान् = स्वरूपवान् अविभ्रमन् = भ्रान्तिरहितः। अनुत्सिक्तः

से भयरहित करना चाहती है।

संवाहक – अच्छा आर्या सुनें।

गणिका – मैं सावधान हूँ।

संवाहक – पाटलिपुत्र मेरी जन्मभूमि है। मैं स्वाभवतः वणिक् हूँ। इसके बाद भाग्य के उलटफेर अवस्था से मैं संवाहक (पैर दबाने की) वृत्ति को ग्रहण किया हूँ।

गणिका – आप संवाहक हैं तो आप ने सुकुमार कला की शिक्षा प्राप्त की है।

संवाहक – संवाहकता एक कला है ऐसा समझ कर तो मैंने इसकी शिक्षा प्राप्त की। किन्तु अब यह हमारी आजीविका बन गई है।

गणिका – आप का यह वचन तो निर्वेदसूचक है। तब क्या हुआ।

संवाहकः – अज्जुए ? सो दाणि अहं आअन्तुआणं सुणिअ पुरुसविसेसको दूहलेण आअदो म्हि इमं उज्जअणि। [अज्जुके ? स इदानीमहमागन्तुकानां श्रुत्वा पुरुषविशेषकौतूहलेनागतोऽस्मीमा-मुज्जयनीम्।]

गणिका – तदो तदो। [ततस्ततः।]

संवाहकः – तदो इह आअदमत्त एव्व कोच्चि सथवाहपुत्तो समासादिदो। [तत इहागतमात्र एव कश्चित् सार्थवाहपुत्रः समासादितः।]

गणिका – केरिसो। [कीदृशः।]

संवाहकः – आइदिमन्तो अविब्भसमन्तो अणुळि त्तो ललिदो ललिददाए अविम्हओ चउरो महुरो दक्खो सदाक्खिञ्ञो अभिमदो आइदो तुट्ठो होदि। दय्य ण विकत्थेदि। अप्पं वि सुमरदि, बहुअं पि अवइदं विसुमरदि। अज्जुए ! किं बहुणा, तस्स कुलपुत्तस्स गुणाणं चउब्भाअं पि सुदिग्घेण वि गिम्हदिअहेण वण्णिदुं ण सक्कं। किं बहुणा, दक्खिञ्ञदाए परकेरअं विअ अत्तणो सरीरं धारेदि। [आकृतिमान् अविभ्रन् अनुत्सिक्तो ललितो ललिततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षण्योऽभिमत आचितस्तुष्टो भवति। दत्वा न विकत्थते। अल्पमपि स्मरति, बहुकमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके ! किं बहुना,तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेन

= गर्वरहितः। ललितः = प्रियदर्शनः ललिततयाविस्मयः = विलासप्रियः दक्षः = चतुरः। सदाक्षिण्यः = दयावान् आचितः। विकत्थते = श्लाघते। अपकृतम् = अपकारम्। कुलपुत्रस्य = कुलीनस्य परिकीयम् = परोपकारार्थं। अनुकरोति = अनुकरणं कर्त्तुं शक्नोति। मण्डयति = भूषयति। गुणविक्रीतशरीरः गुणैः दयादाक्षिण्यादिभिः विक्रीतः मूल्येनार्पितम् शरीरं येन सः। उपजीवी = सेवकः संवृत्तः = सञ्जातः। अनाख्याते = अनुक्ते सत्येवेति शेषः। गुणविभवे = गुणश्च विभवं

संवाहक – आर्ये! संवाहकवृत्ति के लिये उपयुक्त बड़े लोग उज्जयिनी में सुलभ हैं, यह बात आगन्तुकों के मुख से सुनकर मैं यहाँ (उज्जयिनी) चला आया।

गणिका – तब उसके बाद क्या हुआ ?

संवाहक – तदनन्तर यहाँ आते ही किसी एक वणिक्पुत्र से मेरी भेंट हुई।

गणिका – वह कैसा है ?

संवाहक – वह रूपवान् भ्रान्ति रहित, गर्व रहित, प्रियदर्शन, विलासप्रिय, चतुर, मधुर, दक्ष, दयावान् सब का अभिमत, कोषाध्यक्ष तथा संतुष्ट है। वह देकर भी अपना प्रशंसा नहीं करता। थोड़े से भी उपकार को याद करता है, बहुत बड़े अपकार को भी भूल

वर्णयितुं न शक्यम् ! किं बहुना, दक्षिणतया परकीयमिवात्मनः शरीरं धारयति।]

गणिका – (अपवार्य) हञ्जे ! को णु क्खु सो अय्यचारुदत्तस्स गुणाणं अणुकरेदि। [हञ्जे! को नु खलु स आर्यचारुदत्तस्य गुणानामनुकरोति।]

चेटी – मम वि कोदूहलं सोदुं। को णु खु उज्जअणि अत्तणो गुणेहिं मण्डेदि। [ममापि कौतूहलं श्रोतुम्! को नु खलूज्जयनीयमात्मनो गुणैर्मण्डयति।]

गणिका – तदो तदो। [ततस्ततः]

संवाहकः – तदो तस्स गुणविक्किणिदसरीरो विस्सरिदकलत्तो उवजीविओ संवुत्तो। [ततस्तस्य गुणविक्रीतशरीरो विस्मृतकलत्र उपजीवी संवृतः।]

गणिका – किं सो दरिद्दो। [किं स दरिद्रः।]

चेति गुणविभवे = गुणैश्वर्यै। विभवमन्दतया = ऐश्वर्यविनाशेन। स्वाधीनपरिजनः = स्वाधीनः = स्वतन्त्रः परिजनः भृत्यकुटुम्वादिवर्गः। विसर्जितकुटुम्वभरणः विसर्जितं परित्यक्तं कुटुम्वभरणं परिवारपोषणं येन सः। चारित्रमात्रावशेषः चारित्रम् स्वकीयाव्यक्तित्वाचरणं तदेव मात्रम् अवशेषः = अवशिष्टं यस्य सः। अभ्यनुज्ञातः=आदिष्टः। उपतिष्ठताम् = संसेव्यताम्। अन्यं जनम् इति शेषः। कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थम् यत्कोमलम् च = सुकुमारं ललितम् च = मनोहरम्।

जाता है। अज्जुके! उसके विषय में अधिक क्या कहा जाय, वह उदार होने के कारण परोपकारार्थ ही अपने शरीर को धारण करता है।

गणिका – (बीच में रोक कर) हञ्जे! भला आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुकरण करने वाला कौन पुरुष है?

चेटी – मुझे भी उस पुरुष के विषय में सुनने के लिए कुतूहल हो रहा है ऐसा कौन है जो अपने इन गुणों से उज्जयिनी को भूषित करता है।

गणिका – तब क्या हुआ?

संवाहक – तब उसके गुणों से वशीभूत हो, मैं उसका सेवक बन गया। यहाँ तक कि अपना कलत्र भी भूल गया।

गणिका – तब क्या वह दरिद्र है।

संवाहकः - कहं अणाचक्खिदे अय्या जाणादि। [कथमनाख्यात आर्या जानाति।]

गणिका - एअस्सिं दुल्लहो गुणविभवोत्ति। तदो तदो। [एकस्मिन् दुर्लभो गुणविभव इति। ततस्ततः।]

चेटी- को णाम सो अय्यो। [को नाम स आर्यः।]

संवाहकः - अय्यचारुदत्तो णाम। [आर्यचारुदत्तो नाम।]

गणिका - जुज्जइ। तदो तदो। [युज्यते। ततस्ततः।]

संवाहकः - तदो सो विभवमन्ददाए अस्साहीणपरिजणो विसज्जिअ-कुडुम्बभरणो चारित्तमत्तावसेसो सत्थवाहकुले पडिवसिदि। अहं पि तेण अय्येण अब्मणुज्ञादो अण्णं उवचिट्ठदु त्ति। कहं अण्णं एरिसं मणुस्सरअणं लभेअंत्ति, कहं च तस्स कोमललिदमहुरसरीरप्परिसक्किदत्थं मे हत्थं साहारण-सरीरसम्मद्देण सोअणीअं करिस्सं त्ति जादणिव्वेदो बद्ध-सरीररक्खणत्थं जूदोवजीवी संवुत्तो।

मधुरं = स्निग्धं एवंभूतं यत् शरीरं तस्य स्पर्शेन आमर्दने स्पर्शेण। कृतार्थं = कृतकृत्यम् एवं भूतं हस्तं। शोचनीयं = निन्दितम्। जातनिर्वेदः = उत्पन्नग्लानिः। दग्धशरीररक्षणार्थं = निरुपयोगितया निन्दितं तादृशं यत् शरीरं तस्य रक्षणार्थं = पोषणार्थं। द्यूतोपजीवी = द्यूतकर्मसंलग्नः जीविकार्थम्। वेशमार्गे = गणिका निवासपथि। यदृच्छोपनतः = यदृच्छयाऽऽगतः। समासादितः = संप्राप्तः। तस्य भयेंन = त्रासेन। इह = भवत्याः आवासे। प्रविष्टः =

संवाहक - कैसे बिना बताये आर्या जानती हैं ?

गणिका - एक व्यक्ति में सभी गुण दुर्लभ हैं। तब क्या हुआ ?

चेटी - उन महाशय का नाम क्या है ?

संवाहक - आर्य चारुदत्त।

गणिका - उचित ही है। तब क्या हुआ ?

संवाहक - इसके बाद दरिद्रता के कारण उसके भृत्य आदि परिजन स्वतन्त्र हो गये। वह भी कुटुम्ब भरण के भार को त्याग कर वणिक् कुल में रहने लगा। इतना ही नहीं उसने मुझेभी आज्ञा दी कि अब तुम किसी दूसरे की सेवा करो। अब मैं इस प्रकार के अन्य पुरुष रत्न को कहां प्राप्त करूंगा एवं उसके कोमल,मधुर तथा ललित शरीर के स्पर्श से कृतार्थ

[ततः स विभवमदतया स्वाधीनपरिजनो विसर्जितकुटुम्बभरणश्चरित्रमात्रावशेषः सार्थवाहकुले प्रतिवसति। अहमपि तेनार्येणरभ्यनुज्ञातोऽन्यमुपतिष्ठितामिति। कथमन्यमीदृशं मनुष्यरत्नं लभेयेति, कथं च तस्य कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थं मे हस्तं साधारणशरीरसम्मर्देन शोचनीयं करिष्यामीति जातनिर्वेदो दग्धशरीररक्षणार्थं द्यूतोपजीवी संवृत्तः।]

(गणिका सहर्षबाष्पं चेटीमवलोकयति।)

चेटी – तदो तदो। [ततस्ततः।]

संवाहकः – तदो बहूणि दिणाणि मए पराइद्देण पुरुसेण कदाइ अहं पिदहसु सुवण्णेसु पराइदो म्हि। [ततो बहूनि दिनानि मया पराजितेन पुरुषेण कदाचिदहमपि दशसु सुवर्णेषु पराजितोऽस्मि।]

गणिका – तदो तदो। [ततस्ततः।]

संवाहक – तदो अज्ज वेसमग्गे जइळ वसदो समासादिदो म्हि। तस्स मएण इह पविट्ठो।

प्रपल्लाय समागतः। जानातु मम वृत्तमिति शेषः। अत्याहितम् = अतिशयेन महद्भयम् समुत्पन्नम्। वासपादपविनाशेन = निवासहेतुभूतवृक्षविनाशेन हेतुनेति शेषः। अर्थनिमित्ता = धनार्थम्। तं जनम् = विजयिनमक्षशौण्डम् विसर्जय = प्रेषय। तथा अस्त्विति शेषः। अनुगृहीतः = अनुकम्पितः। सुहृज्जनदर्शनेन = मित्रजनदर्शनदानेन। प्रीतिं = स्नेहम्। निर्वर्त्तयितुम् संपादयितुम्। गच्छत्वार्य इति शेषः। निर्वेदेन = ग्लानिकारणेन। प्रव्रजेयम्। प्रव्रज्यामाश्रेयेयम्। परिजने = स्वकीये आत्मीयवर्गे। सङ्क्रान्ता = समाविष्टा। कला = विमर्दनरूपा। उपस्थातव्यः सेवितव्यः। निपुणं

एवं अभ्यस्त मैं अपने इस हाथ को सर्वसाधारण के शरीर सम्मर्द्दन से भला किस प्रकार शोचनीय बनाऊं। इसी दुःख से दुःखी हो मैंने उस कार्य को छोड़ दिया और इस अभागे शरीर की रक्षा के लिए द्यूत से अपनी जीविका निर्वाह करने लगा।

(गणिका आनन्द के आँसुओं के साथ चेटी की ओर सहर्ष देखती है)

चेटी – तब फिर क्या हुआ?

संवाहक – तदन्तर मैंने जिसे बहुत दिनों तक जूए में पराजित किया था, एक दिन उसी से दश स्वर्णमुद्रा से पराजित हो गया।

गणिका – तव क्या हुआ?

संवाहक – इसके वाद आज वेश्यालय के पास वाले मार्ग में यदृच्छा से आ ही

एवं अय्या जाणादु। [ततोऽद्य वेशमार्गे यदृच्छोपनतः समासादितोऽस्मि। तस्य भयेनेह प्रविष्टः। एवमार्या जानातु।]

गणिका – (आत्मगतम्) अहो अच्चादिदं एवं खु मण्णे वासपादपविणासेण पक्खिणो आहिण्डन्ति त्ति। (प्रकाशम्) एवं गदे अत्तकेरओ अय्यो हला! एहि तं जणं विसज्जेहि। [अहो अत्याहितम्। एवं खुलु मन्ये वासपादपविनाशेन पक्षिण आहिण्डन्त इति। एवं गत आत्मीय आर्यः। हला! एहि तं जनं विसर्जय।]

चेटी – तह। (निष्क्रान्ता।) [तथा।]

गणिका – ण खु अय्येण अत्थणिमित्ता चिन्ता कादव्वा। अय्यचारुदत्तो एव देदि त्ति अय्यो जाणादु। [न खल्वार्येणार्थनिमित्ता चिन्ता कर्तव्या। आर्यचारुदत्त एव ददातीत्यार्यो जानातु।]

(प्रविश्य)

चेटी – अज्जुए ! विसज्जिदो सो जणो, परितुट्ठो गदो अ। [अज्जुके ! विसर्जितः स जनः, परितुष्टो गतश्च।]

= सुस्पष्टम् यथा स्यात्तथा। प्रत्याख्यातः = अस्वीकृतः। प्रखण्डितो वा। आत्मना कृतम् = स्वयं विहितमुपकारं। दर्शनाय = दर्शनार्थम्। विच्छित्तिका = तन्नाम्नी काचित्तत्रस्था परिचारिका। तामेव संवोधयति 'विच्छित्तिके' इति। किमेतत् आपतितमिति शेषः। विप्रलब्धोऽस्मि = वञ्चितोऽस्मि। वातायननिष्क्रामितपूर्वकायया वातायनाद् गवाक्षमार्गात् निष्क्रामितः वहिष्कृतः पूर्वकायः शरीर–

रहा था कि उस विजयी जुआरी से मेरी भेंट हो गई। उसी के भय से भाग कर मैं यहाँ चला आया हूँ ऐसा आर्या जानें।

गणिका – (स्वगत) ओह। यह तो बहुत बड़ी विपत्ति है। जिस प्रकार आवास वृक्ष के विनष्ट होने पर पक्षियाँ इधर-उधर उड़ती हैं उसी प्रकार आश्रय के विनष्ट हो जाने से नौकर चाकर मारे मारे फिरते हैं (प्रगट) इस प्रकार आर्य तो हमारे आत्मीय हैं। (चेटी से) हञ्जे। आओ! उस विजयी जुआरी को विदा करो।

चेटी – ऐसा ही हो (निकल जाती है)

गणिका – आप धन के विषय में चिन्तित न हों। आर्य चारुदत्त धन ही दे रहे हैं ऐसा समझें।

चेटी – (प्रवेश कर) आर्यें! उसे धन दे दिया, जिससे संतुष्ट हो कर वह चला गया।

संवाहकयः - अणुग्गहिदो म्हि। [अनुगृहीतोऽस्मि।]

गणिका - गच्छदु अय्यो सुहिज्जणदंसणेण पीदिं णिव्वत्तेदुं। [गच्छत्वार्यः सुहृज्जनदर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तियितुम्।]

संवाहकः - अज्ज एव्व कदाइ णिव्वेदेव पव्वजेअं। जइ इअं परिअणे संक्रन्ता कला भवे, तदो अय्याए अणुग्गहिदो भवेअं। [अद्यैव कदाचिन्निर्वेदेन प्रव्रजेयम्। यदीयं परिजने संक्रान्ता कला भवेत्, तत आर्ययानुग्रहीतो भवेयम्।]

गणिका-जस्स किंद इअं कला सिक्खिदा सो एव्व अय्येण उवचिट्ठिदव्वो भविस्सदि। [यस्य कृते इयं कला शिक्षिता, स एवार्येणोपस्थातव्यो भविष्यति।]

संवाहकः- (स्वगतम्) णिउणं खु पच्चाचक्खिदो म्हि। को हि णाम अप्पणा किदं पच्चुअआरेण विणासेदि। (प्रकाशं) अय्ये ! गच्छामि दाव अहं। [निपुणं खलु प्रत्याख्यातेऽस्मि। को हि नामात्मना कृतं प्रत्युपकारेण विनाशयति। आर्ये ! गच्छामि तावदहम्।]

गणिका-गच्छदु अय्यो पुणो दंसणाअ। [गच्छत्वार्यः पुनर्दर्शनाय।]

संवाहकः - अय्ये ! तह (निष्क्रान्तः) [आर्ये ! तथा।]

पूर्वभागः यया सा। अवनमितपयोघरया = अवनमितौ = नम्रीभूतौ पयोधरौ स्तनप्रदेशौ यस्याः तया। कर्णपूरस्य = कर्णपूरो नाम वसन्तसेनाभृत्यस्तस्य।

संवाहक - अनुगृहीत हूँ।

गणिका - आर्य ! जावें और सुहृदज्जन को दर्शन देकर कृतार्थ हों।

संवाहक - आज ही विराग के कारण प्रव्रज्या (संन्यास) ले लूँगा। यदि यह मेरी (संवाहन) कला किसी आपके भृत्य में चली जाय तो आर्या का अनुग्रह होगा।

गणिका - जिसके लिये आपने यह कला सीखी है उसी की इस कला से सेवा करें।

संवाहक - बहुत चतुरता से मेरी बात इनकार कर दी गई। कौन व्यक्ति अपने उपकार को प्रत्युपकार से नष्ट करेगा। आर्ये ! मै जा रहा हूँ।

गणिका - फिर दर्शन देने के लिये आर्य जावें।

संवाहक - आर्ये ! ठीक है (निकल जाता है।)

गणिका - हं सद्दो विअ । [हं शब्द इव ।]

(प्रविश्य)

चेटः - विच्छित्तिये ! विच्छित्तिये ! कहिं कहिं अज्जुआ। [विच्छित्तिके ! विच्छित्तिके ! कुत्र कुत्राज्जुका ।]

गणिका - हञ्जे ! किं एदं। [हञ्जे ! किमेतत्]

चेटः - हं विप्पलद्धो मिह, वादाअणणिक्खामिद पुव्वकाआए ओणमिअपओहराए कण्णअरस्स परिप्फन्दो अज्जुआए जेण ण दिट्ठो। [हम्, विप्रलब्धोऽस्मि, वातायननिष्क्रामित-पूर्वकाययाऽवनमितपयोधरया कर्णपूरस्य परिस्पन्दोऽज्जुकया येन न दृष्टः ।]

गणिका - लहुजणस्स सुलहो विम्हओ। किं दे उस्सेअस्स कारणम्। [लघुजनस्य सुलभो विस्मयः किं ते उत्सेकस्य कारणम् ।]

चेटः-सुणादु अज्जुआ, एसो उग्गवेगेण ओगाहणणिव्वत्ति देण पस्सुदमदगन्धं राअमग्गं करन्तेण

परिस्पन्दः = साहपूर्णकर्म। उग्रवेगेन = प्रचण्डवेगेन। अवगाहननिवर्तितेन = जलावगाहनं कृत्वा परावृत्तेन। प्रस्तुतमदगन्धं = प्रच्युतमदगन्धयुक्तं। अधिकलक्षणीयः = सुलक्षणयुक्ततयामनोहरः। प्रव्रजितः = प्रव्रज्यां गतः। समासादितः = प्राप्तः ।हस्तिहस्तामर्दताड्यमानः = हस्तिनः = गजस्य। हस्तेन = शुण्डादण्डेन यः आमर्दः = आघातः

गणिका-हम् ! कोलाहल की तरह लग रहा है।

चेट-(प्रवेश कर) विच्छित्तिके ! आर्या कहाँ है ?

गणिका-हञ्जे ! यह क्या है ?

चेट - हाय ! धोखा हो गया। गवाक्ष के बाहर अपने शरीर का ऊपरी भाग बाहर निकाल कर नीचे लटकते हुये पयोधर वाली - आप ने मुझ कर्णपूर का वीर कर्म नहीं देखा।

गणिका-छोटे प्रकृति वालों को गर्व बड़ा सुलभ है। अच्छा बतावों तुम्हारे इतने गर्व का क्या कारण है।

चेट-आर्या सुनें। स्नान के अनन्तर उग्र वेग से लौटते हुये तथा अपने चूते हुये मद गन्ध से राजमार्ग को सुगन्धित करते हुये मंगलकार्य के उपयुक्त भद्रकपोल नामक हाथी ने

अहिलक्खणीओ लोचि प्पफ्इदो समासादिदो। [शृणोत्वज्जुका एष उग्रवेगेनावगाहनतिवर्तितेन प्रस्रुतमदगन्धंराजमार्गं कुर्वता मंगलहस्तिना भद्रकपोतकेनानेकपुरुषसंकुलेषु राजमार्गेषूत्तरीयपटविरागत-याऽधिकलक्षणीयः कश्चित् प्रव्रजितः समासादितः।]

गणिका – हं, तदो तदो। [हं, ततस्ततः।]

चेटः – तदो मए हत्थिहत्थामद्दताडिअमाणो दन्तन्तरपरिवत्तमाणो हत्थिहत्थपडिदचरणो तदो हा हा विपाडिदो हा हा हदो त्ति जणवादे संवुत्ते तदो दिण्णकरप्पहारेण परवत्तिदं हत्थिं करिअ मोइदो सो परिव्वाजो। [ततो मया हस्तिहस्तामर्दताड्यमानो दन्तान्तरपरिवर्तमानो हस्तिहस्तपतितचरणः ततो हा हा विपाटितो, हा हा हत इति जनवादे संवृत्ते ततो दत्तकरप्रहारेण परिवर्तितं हस्तिनं कृत्वा मोचितः स परिव्राट्।]

गणिका – पिअं मे। तदो। [प्रियं मे! ततस्ततः।]

चेटः – तदो सप्पे जणो भणादि--अहो चेडस्स कम्म त्ति। ण उण कोचि किं पि इळ दाउं। तदो अज्जुए! केण वि कुलपुत्तेण उइदाणि आभरणट्ठाणाणि विलोइअ अंगुट्ठेणाणिअ

=तेन ताड्यमानः = निहन्यमानः। दन्तान्तरपरिवर्त्तमानः दन्तयोः अन्तरं = मध्यम् तत्र परिवर्त्तमानः = परिभ्रम्यमाणः।

हस्तिहस्तपतितचरणः हस्तिनः हस्ते शुण्डादण्डमध्ये पतितौ चरणौ यस्य सः = करिकरगृहीत-पाद इत्यर्थः। विपाटितः = विदलितः जनवादे = जनकोलाहले संवृत्ते = उत्थिते दत्तकरप्रहारेण

अनेक पुरुषों के गतागत से व्याप्त राजमार्ग पर एक सुलक्षण संन्यासी को उसके उत्तरीय वस्त्र से क्रुद्ध हो पकड़ लिया।

गणिका – तब क्या हुआ ?

चेट – तब हाथी ने अपने शुण्डादण्ड से आघात कर उसी से संन्यासी के चरणों को दोनों दाँतों के मध्य में फेंक कर दबा लिया। फिर तो हाय-हाय यह संन्यासी मार डाला गया, इस प्रकार का शब्द चारो ओर होने लगा। तब मैंने अपने दोनों हाथों के प्रहार से हाथी को घुमा दिया जिससे वह संन्यासी बच गया।

गणिका – तब तो हमारे लिये यह अच्छी बात हुई। तब क्या हुआ ?

चेट – तदनन्तर सब लोग कहने लगे कि चेट के वीरतापूर्ण कार्य को धन्य है। किन्तु कोई कुछ देना नहीं चाहता था। इसके बाद हे आर्ये! किसी कुलीन महानुभाव ने अन्याभरणों

वि उण अलद्धं पेक्खिअ देव्वं उवालमिअ दिग्धं णिस्ससिअ एत्तओ मे विभवो त्ति करिअ परिजणहत्थे अअं पावरओ पेसिदो ।

[ततः सर्वो जनो भणति - अहो चेटस्य कर्मेति । न पुनः कश्चित् किमपीच्छति दातुम् । ततोऽज्जुके ! केनापि कुलपुत्रेणोचितान्याभरणस्थानानि विलोक्याङ्गुष्ठेनानीयापि पुनरलब्धं प्रेक्ष्य देवमुपालम्य दीर्धं निःश्वस्यैतावान् मे विभव इति कृत्वा परिजनहस्तेऽयं प्रावारकः प्रेषितः ।]

गणिका - (चेटीमवलोक्य) को णु खु अय्य चारुदत्तस्स गुणाणं अणुकरेदि । [को नु खल्वार्यचारुदत्तस्यगुणाननुकरोति ।]

चेटी - अज्जुए ! मम वि कोतूहलं अत्थि को णु खु एसो । [अज्जुके ! ममापि कौतूहल- मस्ति । को नु खल्वेषः]

गणिका - केण वि साहुणा पुरुषेण होदब्बं । [केनापि साधुना पुरुषेण भवितव्यम् ।]

चेटी-साहु पुच्छीअदु दाव । [साधु पृच्छ्यतां तावत् ।]

= प्रदत्तचपेटिकाप्रहरणेन । परिवर्तितं = प्रतिकूलावर्तनं कृतम् । मोचितः = परित्रातः । भणति = कथयति । चेटस्य = वसन्तसेनाभृत्यस्य । कर्म = पौरुषकर्म । ततः = तदनन्तरं । कुलपुत्रेण = सत्कुलोत्पन्नेन । उचितानि = उपयुक्तानि । आभरण-स्थानानि = अलङ्कारधारणाङ्गानि । आनीय = सयत्नमन्विष्य । दैवम् = अदृष्टम् । उपालम्य = उपालम्भं दत्त्वा । विभवः = ऐश्वर्यम् । कृत्वा = मत्वा । परिजनहस्ते = साधारणवस्तुदानसंकोचमनभूय भृत्यहस्तेन ।

के सुपरिचित स्थानों को शून्य देखकर अपने अंगूठे के द्वारा कर्णादि स्थानों में न दिखाई पड़ने वाले कोई आभूषण हैं या नहीं इसका पता लगाया पर जब नहीं मिला तो अपने भाग्य को कोसते हुये लम्बी सांस लेकर 'मेरा वैभव मात्र इतना ही हैं' कहकर भृत्य के हाथ से यह उत्तरीय (चादर) भेंज दी ।

गणिका - (चेटी को देखकर) कौन आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुकरण कर रहा है ।

चेटी -मान्ये ! मेरा भी कौतूहल है । यह कौन व्यक्ति है ?

गणिका - कोई सज्जन पुरुष होगा ।

चेटी - ठीक है । फिर उससे पूछिए ।

गणिका – हञ्जे ! एकपुरसपक्खवादिदा सव्वगुणाणं हन्ति। [हञ्जे ! एकपुरुषपक्षपातिता सर्वगुणान् हन्ति]

चेटी – (चेटं प्रति) भद्द ! से णाम तुवं जाणसि। [भद्र! अस्य नाम त्वं जानासि।]

चेटः – ण हु जाणामि। [न खलु जानामि।]

गणिका – अदिलहु तुए किदं । [अतिलघु त्वया कृतम्।]

चेटी – जइ एवं इह तुए को त्ति मन्तिदं। [यद्येवम्, इह त्वया क इति मन्त्रितम्।]

चेटः – अहं एत्तअं तु जाणामि – भद्दओ अविम्हओ त्ति। [अहमेतावत् तु जानामि – भद्रकोऽविस्मय इति।]

गणिका – एहि दाव तं पेक्खामो। [एहि तावत् तं पश्यामः।]

चेटः – पेक्खदु पेक्खदु अज्जुआ। एसो गळ इ। [पश्यतु पश्यत्वज्जुका। एष गच्छति।]

गणिका – (प्रासादाद् विलोक्य) हञ्जे! एसो हि सो अय्यचारुदत्तो एफ जण्णोववी–

हस्ते अत्र तृतीयार्थे सप्तमी प्रावारकः = उत्तरीयवस्त्रम् प्रेषितः = वीरकर्म पुरस्काररूपेण स्वकीयमुपवस्त्रं प्रदत्तवानित्यर्थः। अनुकरोति = अभिनयति। एकपुरुषपक्षपातिता एकस्मिन् पुरुषे = चारुदत्तरूपे स्वविषये तादृशे पुरुषे पक्षपातिता पक्षपातभावः। सर्वगुणान् हन्ति = विनाशयति। अयं भावः कोऽनु आर्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति इति कथनेन गुणपक्षपातिता सिद्धयति अत एव स एव सर्वगुणाश्रयः नान्यः कश्चिदिति एकांगिदृष्टिदोषता सर्वगुणान् न सहते इह = तन्नामविषये। मन्त्रितम्

गणिका – एक पुरुष के प्रति पक्षपात की बुद्धि सारे गुणों पर पानी फेर देती है।

चेटी – महाशय ! क्या आप उस पुरुष को जानते हैं ?

चेट – मैं तो उसका नाम नहीं जानता।

गणिका – तब तो तुमने बुरा किया।

चेटी – यदि ऐसी वात है तो वह कौन हो सकता है इस पर आप ने विचार किया।

चेटी – मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वह एक निरभिमानी एवं भद्र पुरुष है।

गणिका – तव आओ उसे देखा जाय।

चेट – अज्जुका देखिये वहीं पुरुष यह जा रहा है।

गणिका – (प्रसाद के ऊपर से देख कर) यह तो वही आर्य चारुदत्त जा रहे

दमत्तपावरओ गच्छइ। ता जाव दूरं गओ ण भविस्सदि एसो; पेक्खम्ह दाव णं। [हञ्जे! एष हि स आर्यचारुदत्त एव यज्ञोपवीतमात्रप्रावारको गच्छति। तद् यावद् दूरं गतो न भविष्यत्येष, पश्यामस्तावदेनम्।

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति द्वितीयोऽङ्कः !

= विचारितम् भद्रकोऽविस्मयः भद्र एव भद्रकः प्रकृत्या व्यवहारेण च साधुजनः। गर्वरहितः स पुरुष इति शेषः। प्रासादात्= प्रासादमारुह्य। यज्ञोपवीतमात्रप्रावारकः यज्ञोपवीतमेवेति यज्ञोपवीतमात्रं तदेव प्रावारकः= उत्तरीयः यस्य सः। निष्क्रान्ताः सर्वे = अभिनेतारो जनाः रंगमञ्चान्निर्गता इत्यर्थः।

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

हैं। जिनका यज्ञोपवीत ही उत्तरीय वस्त्र हो रहा है। जब तक वे दूर नहीं जातें तब तक हम लोग देखती रहें (सब का प्रस्थान।)

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नायको विदूषकश्च)

नायकः -वयस्य ! वीणा नामासमुद्रोत्थितं रत्नम् । कुतः -

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
संकीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी ।
क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी ॥१॥

विदूषकः-भो वयस्य ! को कालो किदपारिघोषणदा णिसम्पादास राअमग्गा । कुक्कुरा वि ओसुत्ता । वअं णिद्दं ण लभामो । अण्णं च दाणि अच्छरीअं । इमं हदवीणं

असमुद्रोत्थितं = समुद्रादुत्थितं न भवतीति असमुद्रोत्थितं = रत्नाकरादनुत्पन्नं । अयं भावः - सर्वाणि रत्नानि समुद्रादुत्पन्नानि किन्तु वीणा-नामकं रत्नं समुद्रादनुत्पन्नम् । कुतः = कस्माद्धेतोः ।

अन्वयः- (इयं वीणा) तु उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखी इव, विषयेषु संकीर्णदोषरहिता गोष्ठी, मदनव्यसनेषु क्रीडारसेषु कान्ता, स्त्रीणां कान्तरतिविघ्नकारी सपत्नी (इवास्ति) ॥१ ॥

व्याख्या-उत्कण्ठितस्येति । इयं वीणा उत्कण्ठितस्य = प्रियस्मणसंसक्तस्य पुरुषस्येति शेषः । हृदयानुगता = मनोऽनुकूला, सखी = सहचरी, मित्रम् इव । मनोविनोदकारिणी इति शेषः । विषयेषु = स्थानेषु, आश्रयेषु संकीर्णदोषरहिता = शुद्ध्यादिदोषरहिता, गोष्ठी = सभा इव । मदनव्यसनेषु = कामासक्तिविषयेषु, क्रीडारसेषु = कामोद्दीपक-क्रीडादिषु, कान्ता = प्रिया, भार्या इव । तथा च स्त्रीणां = नारीणां । कान्तरतिविघ्नकरी = पतिप्रेमावरोधिका । सपत्नी = समानपतिका इव भवतीति शेषः ॥१ ॥

कः कालः = कियत्कालपर्यन्तमभिव्याप्य । कृतपरिघोषणतया = कृता परिघोषणा येषु तेषां भावस्तया = नगररक्षककृतघोषणाकारणेन ।

(तदनन्तर नायक और विदूषक प्रवेश करते हैं ।)

नायक - मित्र ! यह वीणा बिना समुद्र से उत्पन्न रत्न है । क्योंकि यह उत्कण्ठित व्यक्ति के लिये मनोनुकूल सहचरी की भाँति है, आश्रयस्थानों में संकीर्णता (अशुद्ध्यादि) दोषरहित गोष्ठी है, क्रीडापूर्ण कामोत्सव में गोष्ठी के समान है तथा स्त्रियों के लिये प्रिय के प्रेम में विघ्नकारिणी सपत्नी की भाँति है ।१ ।

विदूषक- हे मित्र ! बहुत विलम्ब हो गया । नगरपाल की घोषणा से राजमार्ग गमनागमन से शून्य हो गये है ।

ण रमामि। अहिअविढत्थाणे विच्छिण्णतन्तिआ होदु।

[भो वयस्य ! कः कालः कृतपरिघोषणातया निःसम्पाता राजमार्गाः। कुक्कुरा अप्यवसुप्ताः। वयं निद्रां न लभामहे। अन्यच्चेदानीमाश्चर्यम्। इमां हतवीणां न रमे। अधिकदृढस्थाने विच्छिन्नतन्त्रीका भवतु।]

नायकः-वयस्य ! भावशाबलेन बहुशः खल्वद्य मधुरं गीतम्। न च भवान् रमते।

विदूषकः - अदो एव्व एदं अहं ण रमामि। महुरं पि बहु खादिअं अजिण्णं होदि। [अतः एवेतामहं न रमे। मधुरमपि बहु खादितमजीर्णं भवति।]

नायकः - सर्वथा सुव्यक्तं गीतम्। कुतः -

रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च
भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम्।

निःसम्पाताः = निर्गताः संपाताः गमनागमनानि येभ्यः = गमनागमनशून्याः। राजमार्गाः = मुख्यमार्गाः। हतवीणां = दुर्भगां वीणां। अधिकदृढस्थाने = अत्यधिककठिनभूमौ, प्रस्तरकण्टकादियुक्तायामित्यर्थः। विच्छिन्नतन्त्रीका = विच्छिन्ना = त्रुटिता शिथिला वा तन्त्री यस्याः सा। श्लथतन्त्रीयुता। भवतु तिष्ठतु। भावशाबलेन = भावयुक्तेन। सुव्यक्तम् = सुस्पष्टम्।

अन्वयः- (तया वीणया) रक्तं च तारमधुरं च समं च स्फुटं च भावार्पितं च न

कुक्कुर भी सो रहे हैं। किन्तु हम लोग अभी तक जग रहे हैं। और इस समय एक आश्चर्य यह भी है कि मुझे इस अभागी वीणा से प्रेम नहीं है। अधिक कठोर स्थान पर इसकी तन्त्री टूट जाय।

नायक-भावयुक्त ने आज बहुत ही मधुर गाया। किन्तु आपका मन नहीं लगता।

विदूषक-इसी लिये तो मेरा मन नहीं लगा। मीठा भी बहुत खाने पर अजीर्ण होता है।

नायक-सब प्रकार सुस्पष्ट गायन किया। क्योंकि-

किं वा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्वा
भित्त्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विद्याम्॥२॥

विदूषकः — कामं पसंसेदु भवं। मम खु दाव गाअन्तो मणुस्सो इत्थिआ वि पठन्ती उभअं आदर ण देदि। गाअन्तो दाव मणुस्सो रत्तसुमणावेठ्ठिदो विअ पुरोहिदो दिढ ण सोहइ। इत्थिआ वि पठन्ती छिण्णणासिआ विअ धेणुआ अदिविरूवा ह्मेइ। [कामं प्रशंसतु भवान्। मम खलु तावद् गायन् मनुष्यः स्त्र्यपि पठन्त्युभयमादरं न ददाति। गायंस्तावन्मनुष्यो रक्तसुमनोवेष्टित इव पुरोहितो दृढं न शोभते। स्त्र्यपि पठन्ती छिन्ननासिकेव धेनुरतिविरूपा भवति।]

च साभिनयप्रयोगं च (गीतम्) तत्तद् विविधैः बहुप्रशस्य उक्त्वा किं भवेत् यदि सा भित्त्यन्तरं भवेत् तर्हि अहं तां युवती इति विद्याम्।

व्या० — रक्तं चेति - अनया वीणया रक्तम् = अनुरागयुतम्। तारमधुरम् = तारम् = उच्चैः च मधुरं = श्रुतिसुखं चेति आरोहणावरोहणक्रमेणेत्यर्थः। समम् = वैषम्यरहितम्। स्वरतालसामञ्जस्यमिश्रितम्। स्फुटं = सुव्यक्तम्। भावार्पितं च भावेन अर्पितम्। न साभिनयप्रयोगम् = अभिनयप्रयोगं विनैव गीतमिति शेषः तत्तद् बहुविधैः = नानाप्रकारैः प्रशस्य उक्त्वा किं भवेत्। यदि सा भित्त्यन्तरं = कुड्यन्तरितं यथा स्यात्तथा भवेत्तर्हि अहं ताम् युवती = यौवनसंपन्ना योषिद् इति विद्याम् = जानीयाम्। अनया वीणया सर्वगुणसम्पन्नतायुक्तं गीतं किं बहुविधप्रशंसनैरित्यर्थः। कामम् = यथेष्टम्। प्रशंसतु = गुणगानं करोतु आदरम् = प्रीतिम् दृढम् = अत्यन्तम् निश्चितं वा। छिन्ननासिका = कर्त्तितनासा। अर्धरात्रः रात्रेरर्द्धमर्द्धरात्रम् = मध्यनिशा उपारूढः = सञ्जात उपस्थितो वा।

स्थिरतिमिरास्थिरं = सघनं तिमिरं अन्धकारः येषु एवंभूता राजमार्गाः = राजपथाः। निस्संपात

रागयुक्तऽउच्चऽमधुर वैषम्य रहित, स्फुट, भावयुक्त किन्तु अभिनय के प्रयोग से रहित गान किया है।

इसके अनेक प्रकार के गाये गये स्वरों की प्रशंसा कहाँ तक की जाय यदि वह दिवाल के अन्दर किसी कोठरी में होती तो हम उसे युवती स्त्री ही समझते॥२॥

विदूषक — आप भले ही प्रशंसा करें। किन्तु मुझे तो गाने वाला मनुष्य और पढ़ने वाली स्त्री दोनों ही आनन्द नहीं देते। गाने वाला मनुष्य तो रक्त पुष्प धारण करने वाले पुरोहित के समान शोभा नहीं देता और पढ़ने वाली स्त्री भी कटी हुई नासिका वाली गाय की तरह विरूप प्रतिभासित होती है।

नायकः – सखे ! उपारूढोऽर्धरात्रः। स्थिरतिमिरा राजमार्गाः। निस्सम्पातपुरुषत्वात् प्रसुप्तेवोज्ज-यिनी प्रतिभाति। कुतः,

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं गतो ह्यष्टमपक्षचन्द्रः।
तोयावगाढस्य वनद्विपस्य विषाणकोटीव निमज्जमाना॥३॥

विदूषकः – सुट्ठु भवं भणादि। अन्तद्धिअमाणचन्दलद्धावआसो ओदरवी विअ पासादादो अन्धआरो। [सुष्ठु भवान् भणति। अन्तर्दधानचन्द्रलब्धावकाशोऽवतरतीव प्रासादादन्धकारः।]

नायकः – (परिक्रम्य) इदमस्मदीयं गृहम्। वर्धमानक! वर्धमानक!

विदूषकः – वद्धमाणअ! वद्धमाणअ! दुआरं अवावुद। [वर्धमानक! वर्धमानक! द्वारमपावृणु।]

पुरुषत्वात् निस्सम्पातः निरस्तम् गमनागमनं यस्मात् स चासौ पुरुषस्तस्य भावस्तस्मात् = पुरुषाणां गमनागमनराहित्यात्। प्रसुप्ता = निद्रिता इव। प्रतिभाति = परिज्ञायते।

३.अन्वयः – तोयावगाढस्य वनद्विपस्य निमज्जमाना विषाणकोटी इव असौ अष्टमपक्षचन्द्रः तिमिरावकाशं दत्त्वा हि अस्तंगतः।

व्या० – असाविति तोयावगाढस्य तोये जले अवगाढस्य स्नातस्य वनद्विपस्य = अरण्यगजस्य विषाणकोटी = दन्ताग्रभाग इव अष्टमपक्षचन्द्रः = शुक्लपक्षाष्टमीचन्द्रः तिमिरावकाशं = अन्धकारप्रसरणार्थमवसरं दत्त्वा = विधाय अस्तम् = तिरोहितं यथा स्यात्तथा गतः संप्राप्तः।

नायक – मित्र! अब अर्धरात्रि का समय उपस्थित हो गया है। समस्त राजमार्ग अन्धकार से परिपूर्ण हो रहे हैं, पुरुषों के आवागमन से रहित होने के कारण सारी उज्जयिनी सोई जैसी जान पड़ती है।

क्योंकि -

इस पक्ष में आज अष्टमी का चन्द्रमा अन्धकार को अवसर दे कर अस्त हो रहा है, अस्तायमान उस अष्टमी के चन्द्र की दोनों कोटियाँ जल में स्नान करने वाले वनैले हाथी के डूबे हुये दाँत के कोटियों के समान मालूम पड़ती है।

विदूषक – आप ठीक कह रहे हैं। इस समय तिरोहित होने वाले चन्द्रमा के द्वारा अवकाश प्राप्त कर लेने से यह अन्धकार मानों प्रासाद से उतर रहा हो।

नायक – (घूम कर) यही हमारा घर है। वर्द्धमानक! वर्द्धमानक।

विदूषक – वर्द्धमानक! वर्द्धमान! दरवाजा तो खोलो।

(प्रविश्य)

चेटः – अम्मो अय्यमेत्तेओ। [अम्मो आर्यमैत्रेयः।]

नायकः – वर्धमानक!

चेटः – अम्मो भट्टिदारओ। भट्टिदारअ! वन्दामि। [अम्मो भर्तृदारकः। भर्तृदारक! वन्दे।]

नायकः – पादोदकमानय।

चेटः – (परिक्रम्य) इदं पादोदअं। (नायकस्य पादौ प्रक्षाल्यति।) [इदं पादोदकम्।]

विदूषकः – वड्ढमाणअ! मम वि पादं पक्खालेहि। [वर्धमानक! ममापि पादं प्रक्षालय।]

चेटः – सुहोदेसु पादेसु भूमीए पलोट्ठिदव्वं। उदअं विणासेहि। अहव आणेहि। पक्खालइस्सं। (नाट्येन विदूषकस्य पादौ प्रक्षालयति।) [सुधौतयोः पादयोर्भूम्यां प्रलोठितव्यम्। उदकं विनाशय। अथवा नय। प्रक्षालयिष्यामि।]

विदूषकः – ण केवलं दासीएपुत्तेण पादा धोदा, मुहं वि धौदं। [न केवलं दास्याः पुत्रेण पादौ धौतौ, मुखमपि धौतम्।]

अन्तर्दधानचन्द्रलब्धावकाशः अन्तर्दधानः अस्तंभवन् यः चन्द्रः तस्मात् लब्धः प्राप्तः अवकाशः अवसरो येन सः। पादोदकम् पादार्थमुदकम् पादोदकम् = चरणप्रक्षालनार्थं जलम्। सुधौतयोः = प्रक्षालितयोः। पादयोः = चरणयोः। प्रलोठितव्यम् = आलिंगितव्यम्। दास्याः पुत्रेण =

(घर में प्रवेश कर)

चेट – अरे यह तो आर्य मैत्रेय है।

नायक – वर्द्धमानक!

चेट – भर्तृदारक भी यही है। भर्तृदारक मैं प्रणाम करता हूँ।

नायक – पाद प्रक्षालन के लिये जल लाओ।

चेट – (इधर–उधर घूम कर) यह पैर पखारने के लिये जल है, (नायक का पैर धोता है)।

विदूषक – वर्धमानक मेरा भी पैर धोओ।

चेट – अच्छी तरह पैरों को धो देने पर भी उन्हें पृथ्वी पर ही चलना है, तो पानी खराब ही करोगे। अथवा लाओ तुम्हारा भी पैर धो दूँ। (नाटकीय ढंग से विदूषक के पैरों को धोता है)

विदूषक – इस नीच नौकर ने केवल पैर ही नहीं धोया, मेरा मुख भी धो दिया।

नायकः – वयस्य।

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।
अदृश्यमाना चपला जरेव या मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते॥४॥

मैत्रे! सुप्यताम्!

(निष्क्रान्तश्चेटः।)

(प्रविश्याभरणसमुद्गहस्ता)

चेटी – अय्यमेत्तेअ! उट्ठेहि। उट्ठेहि। [आर्यमैत्रेय! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।]

विदूषकः – भोदि! किं एदं। [भवति! किमेतत्।]

अधमेन चेटेन।

अन्वयः – हि नयनावलम्बिनी निद्रा ललाटदेशात् माम् उपसर्पति इव या अदृश्यमाना चपला जरा इव मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते।

व्या० – इयमिति हि = यतः। नयनावलम्बिनी नयनयोः अवलम्बते या सा नयनावलम्बिनी नेत्रयोः कृतस्थाना। इयं निद्रा। ललाटदेशात् = मस्तकप्रदेशात्। माम् उपसर्पति इव = हठादागत्य मां बाधत इव। अदृश्यमाना = परोक्षरूपेणोपसर्पिणी चपला = चञ्चला। जरा इव = वार्धक्यमिव। या = जरा। मनुष्यवीर्यम् = पुरुषपुरुषार्थम्। परिभूय = तिरस्कृत्य। वर्द्धते एव = एधत एव सुप्यताम् = शयनं क्रियताम्।

आभरणसमुद्गहस्ता आभरणस्य = अलंकारस्य। समुद्गं पेटिका हस्ते यस्याः सा। परिवर्त्तयामि

नायक – मित्र! आँखों के सहारे निवास करने वाली यह निद्रा ललाट प्रदेश से उतर कर मेरे पास आ रही है और मुझे पराजित कर इस प्रकार बढ़ रही है जिस प्रकार अदृश्यमान और चञ्चल जरावस्था ललाट प्रदेश से उतर कर पुरुष के समस्त अंगों पर छा जाती है और उसकी समस्त शक्ति को परिभूत कर बढ़ने लगती है।

अच्छा मैत्रेय अब सो जाओ। (चेट बाहर चला जाता है)

(अलंकार की पेटी हाथ में लिये चेटी का प्रवेश)

चेटी – आर्य मैत्रेय! उठो। उठो।

विदूषक – आर्ये! यह क्या है?

चेटी-इअं सुवण्णभण्डं सट्ठीए सत्तमीए परिवेट्टामि। अट्ठमीखुअज्ज। [इदं सुवर्णभाण्डं षष्ठ्यां सप्तम्यां परिवर्तयामि। अष्टमी खल्वद्य।]

नायकः-इदं तद् वसन्तसेनायाः स्वकम्।

चेटी- आम्। भणादु भणादु भट्टिदारओ गण्हदु त्ति। [आम भणतु भणतु भर्तृदारकः। गृह्णात्विति।

नायकः - मैत्रेय ! गृह्यताम्।

विदूषकः - किं णिमित्तं अअं अलङ्कारो अब्भन्तरचउस्स लं ण प्पवेसीअदि। [किन्निमित्तमयमलङ्कारोऽभ्यन्तरचतुःशालं न प्रवेश्यते।]

नायकः - मूर्ख। वाह्यजनधारितमलङ्कारं गृहजनो न द्रक्ष्यति।

विदूषकः - का गई। आणेहि गण्हामि चोरोहिं गण्हिअमाणं। [का गतिः। आनय। गृह्णामि। चौरैर्गृह्यमाणम्।]

(चेटी दत्त्वा निष्क्रान्ता)

= धारयामि। अभ्यन्तरचतुःशालं = चतुर्णां शालानां समाहारः चतुःशालं तस्याभ्यन्तरे = अन्तःप्रदेशे। स्वयं = आत्मीयं। न प्रवेश्यते = न निधीयते। बाह्यजनधारितं = बाह्यो जनः गणिकारूपस्तेन धारितम् अङ्गे स्थापितं। गृहजनः = पत्नी। न द्रक्ष्यति = नावलोकयिष्यति। अन्यदीयालङ्कारस्यान्तःपुरे स्थापने मम भार्यायाः सन्देहो भविष्यति अतो न

चेटी - यह सुवर्णभाण्ड षष्ठी और सप्तमी तिथि व्यतीत होने पर लौटाती हूँ। आज अष्टमी तिथि है।

नायक-यह वसन्तसेना का निजी (आभूषण) है

चेटी-हाँ। स्वामी कहें कि इसे (मैत्रेय) ले लेवे।

कात्य- मैत्रेय ! ले लो।

विदूषक-किस लिये यह अलंकार अभ्यन्तर प्रकोष्ठ में नहीं रखा जाता।

नायक-मूर्ख ! बाहरी व्यक्ति के द्वारा धारण किया गया आभूषण गृहपत्नी नहीं देखेगी।

विदूषक- क्या उपाय है। लावो जिसे चोर लेते हैं उसे लेता हूँ।

विदूषकः – भो ! किंणिमित्तं सो पावरओ तस्स गणिआपरिआरअस्स दिण्णो। [भोः ! किन्निमित्तं स प्रावारकस्तस्मै गणिकापरिचारकाय दत्तः।]

नायकः – सानुक्रोशतया।

विदूषकः – इह वि साणुक्कोसदा। [इहापि सानुक्रोशता।]

नायकः – वयस्य ! मा मैवम्।

विदूषकः – अहं भरिदगद्दभो विअ भूमीए पलोट्ठामि। [अहं भरितगर्दभ इव भूम्यां प्रलुठामि।]

नायकः – निद्रा मां बाधते। तूष्णीं भव।

विदूषकः – असदु भवं सुहप्पबोहाअ। जाव अहं पि सुविस्सं। [शेतां भवान् सुखप्रबोधाय। यावदहमपि स्वप्स्यामि।]

(द्वावपि स्वपतः।)

(ततः प्रविशति सज्जलकः।)

सज्जलकः – एष भोः !

न अवेक्ष्यते इति भावः। प्रावारकः = उत्तरीयवस्त्रम्। सानुक्रोशतया अनुक्रोशेन अनुकम्पया सहितः सानुक्रोशस्तस्य भावस्तया। भरितगर्दभः भरः सञ्जातः अस्येति भरितः = भारयुतः गर्दभः = रासभ इव । सुखप्रबोधाय = शयनान्तरं सानन्दजागरणार्थम्। भो इति विस्मयसूचकमव्ययपदम्।

विदूषक – आर्य! उस दिन वह उत्तरीय गणिका भृत्य कर्णपूरक को क्यों दिया गया?

नायक – दयाभाव से।

विदूषक – क्या उस पर भी दयाभाव।

नायक – मित्र! ऐसा मत कहो।

विदूषक – तो मैं भार लिये हुये गदहे के समान जमीन पर लोटता हूँ।

नायक – मुझे नींद सता रही है। चुप रहो।

विदूषक – आप सुखपूर्वक जागने के लिये इस समय सो जाइये तब तक मैं भी सोता हूँ।

(दोनों सो जाते हैं)

सज्जलक – मैं शिक्षा बल से और शारीरिक बल से अपनी शरीर की विशालता

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं
शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम्।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥५॥

भोः ! वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्वा प्रविष्टोऽस्मि। यावदिदानीं चतुःशालमुपसर्पामि। (सनिर्वेदं विचिन्त्य) भोः !

कामं नीचमिदं वदन्तु विबुधाः सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभवः शौर्यं न कार्कश्यता।

---

५. अन्वयः — शिक्षाबलेन बलेन च शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं कर्ममार्गं कृत्वा भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वः निर्मुच्यमानः जीर्णतनुः भुजंग इव गच्छामि।

व्या० — कृत्वेति शिक्षाबलेन शिक्षायाः = अभ्यासस्य बलं = सामर्थ्यं तेन। बलेन = शरीरशक्त्या च। शरीरपरीणाहसुखप्रवेशं शरीरस्य यः परीणाहः = विशालता तस्य सुखेन प्रवेशः यस्मात् तम् (अनायासेन शरीरनिर्गमप्रवेशार्हमित्यर्थः) तादृशम् कर्ममार्गम् = कर्म = चौर्यकर्म तस्य मार्गम् = सन्धिविच्छेदम् सुरंगं विलं वा कृत्वा = विधाय। भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वः भूमौ सुरंगभूतायामिति शेषः परिसर्पणेन = रिङ्गणेन घृष्टौ पार्श्वौ यस्य सः। निर्मुच्यमानः कञ्चुकेन हीयमानः सन् जीर्णतनुः जीर्णा = जर्जरा तनुः = शरीरं यस्य सः। भुजंग इव = सर्प इव गच्छामि = शनैः शनैः उपसर्पामि। वृक्षवाटिकापक्षद्वारे = वृक्षवाटिकापार्श्वद्वारे। सन्धिं छित्त्वा = सुरंगं संपाद्य। सनिर्वेदम् = निर्वेदेन = दुःखेन सह वर्त्तमानं यथा स्यात्तथा विचिन्त्य = विचार्य।

६. अन्वयः — यत् सुप्तेषु वर्त्तते इदं तत्कर्म विबुधाः नीचं कामं वदन्तु (नाम)। हि विश्वस्तेषु वञ्चनापरिभवः शौर्यं न (किन्तु) कार्कश्यता। तु स्वाधीनता वचनीयता अपि वरम्

के अनुरूप चोरी करने के लिये सुरंग बनाकर भूमि पर सरकने के कारण दोनों पार्श्व (बगल) को रगड़ते हुये सरकने से केचुल को छोड़ देने वाले जरा जीर्ण शरीर वाले साँप की भाँति इस गृह में प्रवेश करता हूँ।

अच्छा तो वृक्षवाटिका वाले पक्षद्वार में सुरंग बनाकर इस भवन में प्रवेश किया हूँ। अब इसके बाद चतुःशाला (बैठका) में प्रवेश करता हूँ।

(दुःख के साथ सोचते हुये) अरे भाई!

स्वाधीना वचनीयताऽपि तु वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः
मार्गश्चैष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥६ ॥

(विचिन्त्य)

लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी
वणिक् स्ववृत्तावतिकर्कशश्च ।
यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये
भवामि दुःखोपहतो न चित्ते ॥७ ॥

वद्धः सेवाञ्जलिः न वरम् । पूर्वं नरेन्द्रसौप्तिकवधे द्रौणिना च एष मार्गः कृतः वर्तते ॥६ ॥

व्याख्या-काममिति । यत् = चौर्यादि क्रूरकर्म सुप्तेषु = निद्रितेषु जनेष्विति शेषः । इदं = तत् क्रूरकर्म । विवुधाः = बुद्धिमन्तो जनाः, नीचमिति कामं = यथेष्टं, वदन्तु = कथयन्तु । हि = यतः, विश्वासं गतेषु । वञ्चनापरिभवः = वञ्चनया = प्रतारणेन, परिभवः = तिरस्कृतिः, शौर्यं = वीरकर्म । न = नास्ति । किन्तु कार्कश्यता = नृशंसता । तथापि स्वाधीना = स्वतन्त्रा, वचनीयता = निन्दा अपि, वरम् = मनाक् प्रियम् । किन्तु बृद्धः सेवाञ्जलिः = सेवायै कृता अञ्जलिः, न वरम् = श्रेष्ठं । पारतन्त्र्येण सदैन्यजीवनापेक्षया स्वातन्त्र्येण चौर्यादिनिन्दितकर्मजीविकाऽपि वरेत्यर्थः । पूर्वं = महाभारतयुद्धे । नरेन्द्रसौप्तिकवधे = नरेन्द्राणां रात्रौ शयनकाले एव वधे । द्रौणिना = द्रोणपुत्रेण अश्वत्थाम्ना । एष मार्गः = क्रूरकर्मजीवनरूपो मार्गः । कृतः = निर्मितः ॥६ ॥

अन्वयः-लुब्धः अर्थवान् साधुजनावमानी, स्ववृत्तौ अतिकर्कशः यः वणिक् च तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये तदा चित्ते दुःखोपहतः न भवामि ॥७ ॥

व्याख्या-लुब्ध इति । यः लुब्धः = परद्रव्यलोभी । अर्थवान् = धनी, अथ च साधुजनावमानी = सज्जनपुरुषतिरस्कर्ता, सतामपकारकः । किं च स्ववृत्तौ = वणिक्कर्मणि, अतिकर्कशः = सर्वथा क्रूरः यः वणिक् । तस्य द्वयोर्मध्ये एकतरस्य, गेहं = गृहं, यदि नाम । लप्स्ये = प्राप्स्ये चौरकर्मार्थं । तदा चित्ते = स्वमनसि, दुःखोपहतः = दुःखपूर्णः, न भवामि । अत्र धनिकस्य लुब्धत्वं तथा साधुजनावमानित्वं एवं च वणिक्कर्मकरस्य कर्कशत्वं च विनिन्दितम् ॥७ ॥

विश्वास पूर्वक लोगों के सो जाने पर जो चौर्यादि क्रूरकर्म किया जाता है उसे पण्डित लोग भले ही नीचे कर्म कहें क्योंकि धोखा दे कर जो अनादर किया जाता है वह वीर कर्म नहीं है अपितु कर्कशता है । (किन्तु मेरे विचार से) स्वाधीन रहकर निन्दित कर्म भी पर-तन्त्र होकर सेवा के लिये हाथ जोड़ने की अपेक्षा अच्छा है । पूर्व काल सोये हुये राजाओं के वध के द्वारा अश्वत्थामा ने यह मार्ग निर्मित किया ॥६ ॥

यद्वा तद्वा भवतु । किं वा न कारयति मन्मथः। यावदारभे कर्म। भोः

देशः को नु जलावसेकशिथिलश्छेदादशब्दो भवेत्
भित्तीनां क्व नु दर्शितान्तरसुखः सन्धिः करालो भवेत्।
क्षारक्षीणतया चलेष्टककृशं हर्म्यं क्व जीर्णं भवेत्
कुत्र स्त्रीजनदर्शनं च न भवेत् स्वन्तश्च यत्नो भवेत् ॥८॥

अन्वयः-भित्तीनां कः नु देशः यः जलावसेकशिथिलः सन् छेदात् अशब्दः भवेत्। क्व नु सन्धिः दर्शितान्तरसुखः करालः भवेत्। क्षारक्षीणतया चलेष्टककृशं हर्म्यं क्व न जीर्णं भवेत् कुत्र च स्त्रीजनदर्शनं न भवेत्। यत्नः च स्वन्तः भवेत् ॥८॥

व्याख्या-देश इति। भित्तीनां = गृहप्राकाराणां, कः नु देशः स्थानं, यः जलावसेकशिथिलः = जलस्य अवसेकेन शिथिलः= श्लक्ष्णं सन्, छेदात्=भेदात्, सुरङ्गादिनिर्माण-काले, अशब्दः= सर्वथा खटखटादिशब्दरहितः भवेत्। क्व नु=कुत्र सन्धिः = रन्ध्रः (सेंध इति भाषायां), दर्शितान्तरसुखः= दर्शितं अन्तरं= अभ्यन्तरभागो येन तादृशश्चासौ सुखकरश्च सन् करालः= भयंकरो विशालो वा भवेत्। क्षारक्षीणतया=क्षारेण=लवणयुक्तेन मृदा क्षीणतया=शिथिलतया। चलेष्टककृशं=चलं=स्थानभ्रष्टं यदिष्टकं तेन कृशं=ह्रासतां गतं, हर्म्यं= भवनं, क्व नु=कस्मिन् स्थाने, जीर्णं=भग्नप्रायम् अत एव सुखपूर्वकसुरङ्गयोग्यं भवेत्। कुत्र=कस्मिन् स्थाने अनभीष्टं स्त्रीजनदर्शनं=स्त्रीजनानां प्रत्यक्षता न भवेत् तथा मम प्रयत्नः= चौर्यकर्मोद्यमः। स्वन्तः= सुखान्तकरः फलप्रद इत्यर्थः भवेत् ॥८॥

वास्तुविभागक्रिया= वास्तुपदेन वास्तुगृहं लक्ष्यते। वास्तु-गृहस्य विभागक्रिया

(सोचकर)

जो धनी होकर भी लोभी तथा साधुपुरुषों का तिरस्कार करने वाला है तथा जो बनिया अपने व्यवसाय में अत्यन्त कर्कश है यदि इन दोनों में से किसी का घर (चौर्य कार्य के लिये) पा जाऊं तो दुःखी नहीं होऊंगा ॥७॥

जो कुछ भी हो। अथवा कामदेव क्या नहीं करवाता । तो काम प्रारम्भ करूं। अरे-

भित्ति (दीवार) का वह प्रदेश कहां है जो निरन्तर जलप्रवाह से नितान्त कमजोर हो गया है और जहाँ सुरङ्ग बनाने में किसी प्रकार का शब्द न हो। भित्ति के किस भाग में भयंकर

(परिक्रम्य) इयं वास्तुविभागक्रिया। सोपस्नेहतया गृहविशिष्ट इवायं भवनविन्यासः। इह तावत् प्रवेशावकाशं करिष्ये। भोः! कीदृश इदानीं सन्धिच्छेदः कर्तव्यः स्यात्।

सिंहाक्रान्तं पूर्णचन्द्रं झषास्यं
चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्रं त्रिकोणम्।
सन्धिच्छेदः पीठिका वा गजास्य-
मस्मत्पक्ष्या विस्मितास्ते कथं स्युः ॥९॥

भवतु। सिंहाक्रान्तमेव च्छेदयिष्ये।

= भेदकं कर्म इयमत्र दृश्यते। सोपस्नेहतया = कोमलतया भवनविन्यासः = भवनस्य विन्यासः = सन्निवेशः। गृहविशिष्टः गृहे = भवने विशिष्टः = अपूर्वो छेदनयोग्यः। प्रवेशावकाशम् प्रवेशार्थम् अवकाशः छिद्रं तम्।

९. अन्वयः – सिंहाक्रान्तम् पूर्णचन्द्रम्, झाषास्यम्, चन्द्रार्द्धम्, व्याघ्रवक्त्रं, त्रिकोणम्, पीठिका, गजास्यम् इति वा सन्धिच्छेदः स्यात् कथं वा अस्मत्पक्ष्याः (जनाः) विस्मिताश्च स्युः।

व्याः- हिंसाक्रान्तम् =सिंहेन आक्रान्तं यथा भवति तथा नीचैरुपरि गमनम् पूर्णचन्द्रम् पूर्णचन्द्रमिव गोलाकारम् झषास्यम् = मकरमुखमिव आयताकारम् चन्द्रार्द्धम् उभयकोट्यां सूक्ष्मम् मध्ये च विशालम् व्याघ्रवक्त्रम् व्याघ्रमुखमिव विस्तृतम्। त्रिकोणमिव पीठिका आयताकारम् गजास्यम् वर्गाकारम् इति वा सन्धिविच्छेदः भित्तौ विलम् स्यात् कथं वा अस्मत्पक्ष्याः = चौराः विस्मिता आश्चर्यचकिता वा स्युः भवेयुः।

सुरंग बनाया जाय जहाँ से घर की सारी वस्तु सुलभता से दिखाई पड़ सके। भवन की भीत का कौन–सा भाग नोना लगने के कारण ईंटों के गिर जाने से जीर्ण हो गया है जहाँ से सुरंग बनाने पर स्त्री–जन देख न सकें और अपना प्रयत्न भी व्यर्थ न हो।

(इधर-उधर घूम कर) यही तो है इस मकान की नींव जो निरन्तर जल गिरने से नमी के कारण और स्थान की अपेक्षा कुछ विशेष महत्व रखती है। तो वैसी जगह प्रवेश करने के योग्य सुरंग का निर्माण करूँगा। यहाँ किसी प्रकार का सेंध बनाना उचित होगा। सिंहाक्रान्त (जो नीचे से ऊपर तक बनाया जाय), पूर्णचन्द्र (गोलाकार) मकर के मुख के समान (आयताकार) चन्द्रार्ध (अर्धचन्द्राकार) व्याघ्रमुख (अत्यन्त विस्तृत) त्रिकोण, पीठिका अथवा हाथी के मुख के समान यही तो सेंध लगाने के भेद हैं। तो किस प्रकार का सेंध लगाया जावे जिससे चौर्य कर्म में दक्ष लोग भी आश्चर्यचकित हो जावें।

अच्छा तो सिंहाक्रान्त नामक सुरंग का निर्माण करूंगा।

विदूषकः – भो! जागत्ति खु भवं, णहि। [भोः! जागर्ति खलु भवान् न हि।]

नायकः – किमर्थम्।

विदूषकः – अहं खु दाव कत्तव्वकिरत्थीकदसंकेदो विअ सक्किअसमणओ णिद्दं ण लभामि। वामं खु मे अक्खि फन्देदि। चोरो सन्धिं छिन्ददी विअ पेक्खामि। जइ ईदिसी अवत्था अत्थाणं, जादीए दरिद्दो एव्व होमि। [अहं खलु तावत् कर्तव्यकरस्त्रीकृतसंकेत इव शाक्यश्रमणको निद्रां न लभे वामं खलु मेऽक्षिस्पन्दते। चोरः सन्धिं छिनत्तीव पश्यामि। यदीदृश्यवस्थाऽर्थानां, जात्या दरिद्र एव भवामि।]

नायकः – मूर्ख! धिक् त्वाम्! दारिद्र्यमभिलषसि।

सज्जलकः – अथ केनेदानीं सन्धिच्छेदमार्गः सूचियितव्यः स्यात्। नन्विदं दिवा ब्रह्मसूत्रं रात्रौ कर्मसूत्रं भविष्यति।

अद्यास्य भित्तिषु मया निशि पातितासु
छेदात् समासु सकृदर्पितकाकलीषु।

उपर्युक्तसन्धिविच्छेदप्रकारेषु सज्जलकः निश्चिनोति भवत्विति।
कर्त्तव्यकरस्त्रीसंकेतः कर्त्तव्यं = कार्यं करोतीति कर्त्तव्यकरभृत्यः सेवको वा तस्य स्त्री = भार्या तया कृतः संकेतः यस्य यस्मै वा शाक्य श्रमणः = बौद्धभिक्षुः इव। सूचयितव्यः = परिमातव्यः। ब्रह्मसूत्रम् = उपवीतम्। कर्मसूत्रम् = कर्मकरणार्थं सूत्रम् = परिमातुं सूत्रम्।
१०. अन्वयः – अद्य अस्य भित्तिषु निशि मया पातितासु छेदात् सकृदर्पितकाकलीषु समासु काल्यम् विषाद विमुखः प्रति वेशवर्गः कर्मसु मे कौशलं दोषान् च वदतु।

विदूषक – भो! क्या आप जाग रहे हैं अथवा नहीं।
नायक – क्यों?
विदूषक – मैं तो पहरा देने वाले पुरुष की स्त्री के द्वारा संकेत स्थल पर बौद्ध संन्यासी के समान जाग रहा हूँ। इधर मेरी बाईं आँख भी फड़क रही है। मुझे ऐसा मालूम हो रहा कि कोई सेंध लगा रहा है यदि धन के जाने की इसी प्रकार की संभावना रही तो फिर मैं जन्मना दरिद्र रहना ही पसन्द करूँगा।
नायक – मूर्ख! तुम्हें धिक्कार है जों दरिद्रता को पसन्द करते हो।
सज्जलक – तो किस के द्वारा नाप कर सेंध का निर्माणे करूँ। अथवा दिन का यह ब्रह्मसूत्र ही रात्रि में कर्मसूत्र बनेगा।
१०. आज मैंने इस भीत में खनती के द्वारा एक धक्के से छेद बनाकर सुरम्य खात का

काल्यं विषादविमुखः प्रतिवेशवर्गो
दोषांश्च च मे वदतु कर्मसु कौशलं च ॥१० ॥

नमः खरपटाय। नमो रात्रिगोचरेभ्यो देवेभ्यः। (तथा करोति) हन्त अवसितं कर्म। प्रविशामस्तावत्। (प्रविश्य) अये ! ज्वलति दीपः। अपसरामि तावत्। धिक् ! सज्जलकः खल्वहम्।

मार्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने
निद्रा सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने संसर्पणे पन्नगः।
माया वर्णशरीरभेदकरणे वाग् देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु सङ्कटे च तिमिरं वायुः स्थले नौर्जले ॥११ ॥

व्याख्या-अद्यास्येति। अद्य = इदानीम्, अस्य = गृहस्य, भित्तिषु = कुड्येषु, निशि = रात्रौ, मया, पाटितासु = उत्खातितासु, छेदात् = रन्ध्रात्, सकृदर्पितकाकलीषु = सकृदर्पिता काकली = खनित्रं यत्र तासु समासु = सुरम्यासु, काल्यं = प्रभातसमये, विषादविमुखः = प्रसन्नमुखः, प्रतिवेशवर्गः = समीपी जनः, मम दोषान् = पापान्, वदतु, मम कर्मकौशलं = कार्यनैपुण्यं च वदतु ॥१० ॥

हन्त हर्षसूचकमव्ययपदम्। अवसितं = समाप्तं। कर्म = सन्धिनिर्माणकर्म। अपसरामि = दूरं गच्छामि।

अन्वयः-अहं प्लवने मार्जारः, अपसरणे वृकः, गृहालोकने श्येनः, सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने निद्रा, संसर्पणे पन्नगः वर्णशरीरभेदकरणे माया, देशभाषान्तरे वाक्, रात्रिषु दीपः, सङ्कटे च तिमिरं, स्थले वायुः, जले नौः ॥११ ॥

व्याख्या-मार्जार इति। अहम् सज्जलकः प्लवने = उत्प्लुत्य गमने, मार्जरः = विडालः अपसरणे = द्रुततर

निर्माण कर दिया है। प्रातःकाल पड़ोसी लोग प्रसन्नता से मेरे दोषों का वर्णन तो करेंगे ही साथ-साथ में ही कार्य में निपुणता का भी वर्णन करेंगे ॥१० ॥

खरपट को नमस्कार। रात्रि के देवता को नमस्कार। (वैसा करता है) अहा ! कार्यसमाप्त हो गया। तो प्रवेश करूं (प्रवेश कर) अरे ! दीप जल रहा है। तो पीछे हट जाऊं। धिक्कार है। मै सज्जलिक हूँ मैं तो-

कूदकर चलने में विडाल हूँ, भागने में भेडिया हूँ, घर की वस्तुओं के अवलोकन में बाज पक्षी हूँ, सोये हुए व्यक्ति के पराक्रम को लघु करने में निद्रा,

(सर्वतो विलोक्य) आगन्तुकत्वादविदितसमृद्धिविस्तरः केवलं भवनप्रत्ययादिह प्रविष्टोऽस्मि। न चेदानीं कञ्चित् परिच्छदविशेषं पश्यामि। किन्तु खलु दरिद्र एवायम्। उताहो अयं संयमननिरर्थकं द्रष्टव्यं धारियति। अथवा, अभिजातोऽयं भवनविन्यासः। उपभुक्तप्रनष्टविभवेनानेन भवितव्यम्।

तथा विभवमन्दोऽपि जन्मभूमिव्यपेक्षया।
गृहं विक्रयकालेऽपि नीलस्नेहेन रक्षति॥१२॥

पलायने वृकः। गृहालोकने = गृहाभ्यन्तरवस्तुदर्शन विषये श्येनः वाजपक्षीति भाषा। सुप्तमनुष्य वीर्यतुलने परिमापणे निद्रा अयं कियान् वलवानिति निद्रा एव जानाति। संसर्पणे संसर्प्य गमने पन्नगः = सर्पः। वर्णशरीरभेदकरणे वर्णेन यः शरीरभेदः शरीरपरिवर्त्तनं विभिन्नरूपेण शरीर- धारणं तस्य करणे रचनायां माया = कपटः। देशदेशभाषान्तरं तस्मिन् वाग् = सरस्वती। रात्रिषु = निशासु दीप इव सर्वदर्शी। सङ्कटे = विपत्तौ। तिमिरम् = अन्धकार इव अदृश्यः। अन्यत् शेषं स्पष्टम्।

आगन्तुकत्वात् = वैदेशिकत्वाद्। अविदितसमृद्धिविस्तरः अविदितम् = अपरिज्ञातं समृद्धेः विभवस्य विस्तरः = प्रसरो येन सः। भवनप्रत्ययात् = भवनभव्यतादर्शनजातविश्वासात् परिच्छदविशेषम् = सामग्रीविशेषम्। संयमननिरर्थकं संयमनेन = भूमौ निखन्यस्थापनेन निरर्थकम् = निष्प्रयोजनम् यतोऽनेन भूमौ निखन्य स्वसर्वाणि वस्तुजातानि स्थापितानि अत इतस्ततो वस्तुतत्वान्वेषणम् व्यर्थमिति भावः। अभिजातः सर्वप्रकारेण सुसंपन्नः। भवनविन्यासः = भवननिर्माणकला। उपभुक्तप्रनष्टविभवेन आदावुपभुक्तं पश्चाद्विनष्टो विभवो यस्य तेन।

१२. अन्वयः – तथा विभवमन्दः अपि विक्रयकाले अपि जन्मभूमिव्यपेक्षया नीलस्नेहेन

हूँ, सरक्कर चलने में साँप, शरीर के वर्ण को बदलने में माया, देश-देश की भाषा बोलने में साक्षात् वाणी देवी, रात में दीप, संकट पड़ने पर घनान्धकार, स्थल में वायु तथा जल में नौका के समान हूँ।

(चारों ओर देख कर) आगन्तुक होने के कारण मुझे यहाँ की विशेष संपत्ति का ज्ञान नहीं है। केवल मकान की भव्यता देख कर इसमें प्रविष्ट हुआ हूँ। किन्तु विशेष मूल्यवान् संपत्ति नहीं दिखाई पड़ रही है। क्या यह सचमुच दरिद्र ही है अथवा इसने मूल्यवान् संपत्ति को कहीं गाड़ रखा है, दिखावे के लिये निरर्थक वस्तुओं को बाहर रख छोड़ा है। अथवा इस मकान की बनावट बहुत कीमती है वह इस बात का साक्षी है कि इसका मालिक पहले किसी समय बहुत बड़ा धनवान् रह कर धन का उपभोग किया बाद में ऐश्वर्यहीन हो गया।

१२. इस प्रकार विभवहीन हो कर भी यह गृहस्वामी मात्र जन्मभूमि होने की अपेक्षा से

भवतु पश्यामस्तावत्। अथवा, न खलु मे तुल्यावस्थः कुलपुत्रः पीडयितव्यः गच्छामि तावत्।
विदूषकः – भो! गण्ह एदं सुवण्णभण्डअं। [भोः! गृहाणैतत् सुवर्णभाण्डम्।]
सज्जलकः – कथं सुवर्णभाण्डमित्याह। किं मां दृष्ट्वाऽभिभाषते। आहोस्वित् सत्त्वलाघवाद् स्वप्नायते। भवतु पश्यामस्तावत्। (दृष्ट्वा) भूतार्थं सुप्त एवायम्। तथाहि,

निःश्वासोऽस्य न शङ्कितो न विषमस्तुल्यान्तरं जायते
गात्रं सन्धिषु दीर्घतामुपगतं शय्याप्रमाणाधिकम्।
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न चपलं पक्ष्मान्तरं जायते
दीपं चैव न मर्षयेदभिमुखः स्याल्लक्षसुप्तो यदि॥१३॥

इदं गृहं रक्षति।
व्या० – तथेति तथा = तेन प्रकारेण नष्टविभवः। प्रणष्टैश्वर्यः अपि अयं गृहस्वामी विक्रयकोऽपि = दारिद्र्यतिशयेन गृहे विक्रेयतव्येऽपि। जन्मभूमिव्यपेक्षया इयं मदीया जन्मभूमिरिति व्यपेक्षां संपाद्य नीलस्नेहेन = प्रगाढानुरागेण रक्षति = पालयति। सत्त्वलाघवात् = सत्त्वस्य = मनसः लाघवात् = दौर्बल्यात्।
१३. अन्वयः – अस्य निःश्वासः न शङ्कितः। तुल्यान्तरं जायते इति विषमः अपि न। गात्रं सन्धिषु दीर्घताम् उपगतम्। शय्याप्रमाणाधिकम् च दृष्टिः गाढनिमीलिता जाता। पक्ष्मान्तरं च चपलं न जायते। यदि अयं लक्षसुप्तः स्यात्तदा अभिमुखः दीपं च न मर्षयेत्।

प्रगाढ़ स्नेहवश इस घर की रक्षा करता है अन्यथा इस हालत में तो उसे यह मकान बेच देना चाहिये था।
अच्छा तब तक देखता हूँ। अथवा यह कुलीन व्यक्ति हमारी अवस्था के तुल्य है इसे पीड़ित नहीं करना चाहिये। तब यहाँ से चल देना ही उचित है।
विदूषक – अरे भाई! इस सुवर्ण भाण्ड को ग्रहण करो।
सज्जलक – अरे यह कैसे सुवर्ण भाण्ड की बात करता है। क्या मुझे देख कर ऐसा कह रहा है। अथवा अन्तःकरण की दुर्बलता से ऐसा कह रहा है, अच्छा! इसका पता लगाता हूँ (देख कर) सचमुच यह सो गया है। क्योंकि —
इसका श्वास सर्वथा निःशंक एवं एक-सा चल रहा है। शरीर सन्धि स्थलों में फैलाव के कारण बड़ा दिखाई पड़ रहा है और शय्या के प्रमाण से भी अधिक बाहर की ओर

क्व नु खलु तत्। अये जर्जरप्रावरणैकदेशे दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपं दृश्यते। सुपरिगृहीतमनेन। अयमत्र प्राप्तकालः। इमे मया गृहीताः शलभाः। दीपनिर्वापणार्थमेकं मुञ्चामि। (भ्रमरकरण्डकादेकं मुञ्चति।) अये! एष दीपं निर्वाप्य पतति।

विदूषकः — अविहा णिव्वाविदा दीवो दाणिं। मुसिदो म्हि। भो चारुदत्त! गण्ह एवं सुवण्णालंकारं। अहं खु भीदीए उप्पहप्पवृत्तो विअ वणिजो णिद्दं ण लभामि। मम ब्रम्हत्त्णेण साविदो सि, जइ ण गण्हसि। [अविहा निर्वापितो दीप इदानीम्। मुषितोऽस्मि। भोश्चारुदत्त! गृहाणेमं सुवर्णालंकारम्। अहं खलु भीत्योत्पथप्रवृत्त इव वणिग् निद्रां न लभे। मय ब्रह्मत्वेन शापितोऽसि, यदि न गृह्णासि।]

सज्जलकः — किमत्र शपथपरिग्रहेण। एष प्रतिगृह्णामि। (गृह्णाति)।

व्या० — निःश्वास इति अस्य निःश्वासः न शङ्कितः = न शङ्काव्यञ्जकः। यदि नामायं जागृयात्तदैतादृशं विश्वस्य न स्वपेदित्यर्थः। तुल्यान्तरं तुल्यान्तरं = तुल्यरूपं यथा स्यात्तथा श्वासक्रमः जायते इति न विषमः। येन जागरणे तु श्वासक्रमस्य विषमता दृश्यते इति भावः। गात्रं = शरीरम्। सन्धिषु = दीर्घतामुपगतम् = सुप्रसारणतया विस्तृतं जातम् न तु सङ्कुचितमित्यर्थः। किञ्च शय्याप्रभाणाधिकं च शय्यातो बहिर्भूतम्। प्रतीयते। जागरणे तु शय्या सीमान्तरमेव भवेदित्यर्थः। दृष्टिः = नेत्रम्। गाढनिमीलिता गाढं यथा स्यात्तथा निमीलिता

निकला हुआ है। आँखें बन्द है, पलकें भी निश्चल हैं। यदि यह किसी प्रकार सोने का बहाना किया होता तो सामने रखे हुये दीपक की रोशनी को बर्दास्त न कर सकता। अर्थात् दीपक की ओर मुख कर न सोता॥१३॥

अच्छा वह सुवर्ण भाण्ड कहाँ है? अरे! दीपक के प्रकाश में पुराने वस्त्र के भीतर इसका रूप दिखाई पड़ रहा है। अब यही चोरी का उपयुक्त समय है। तो मैंने इन शलभों को पकड़ लिया है। दीपक बुझाने के लिये एक को छोड़ता हूँ (फिर भ्रमर पेटिका से एक शलभ निकाल कर छोड़ देता है जिससे दीपक बुझ जाता है) अरे यह तो दीया बुझा कर स्वयं भी गिर गया।

विदूषक — ओह! यह बड़ा खेद का विषय है कि इस समय दीपक बुझा दिया गया। मैं तो सर्वथा ठगा गया। अरे भाई चारुदत्त तुम अपना सुवर्णालंकार ग्रहण करो। इस समय मुझे उसी प्रकार भय से नींद आ रही है जैसे रास्ता भूल जाने वाले व्यापारी को। यदि तुम इसे नहीं लेते तो ब्राह्मण होने के नाते मैं तुम्हें शाप दूँगा।

सज्जलक — इसमें शाप देने की क्या बात है? मैं इसे ग्रहण करता हूँ। लो

विदूषकः – (दत्त्वा) अहं विक्किणिदभण्डओ विअ वणिजओ सुहं सइस्सं। [अहं विक्रीतभाण्डक इव वणिक् सुखं शयिष्ये।]

सज्जलकः – सुखं स्वपिहि महाब्राह्मण! (विचिन्त्य) भोः! ब्राह्मणेन विश्वासाद् दीयमानं मया हर्तव्यमासीत्।

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदं च यौवनम्।
यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च॥१४॥

(नेपथ्ये पटहशब्दः क्रियते।)

संपुटिता। पक्ष्मान्तरम् = चपलं = चञ्चलं न जायते। यदि एष लक्षसुप्तः = व्याजसुप्तः भवेत्तदा अभिमुखः स्वसंमुखेः = दीपं न मर्षयेत् = न सहेत। अत एतैः कारणैरनुमिनोमि यदयं विस्रब्धं प्रसुप्त इति भावः।

जर्जरप्रावरणैकदेशे = जर्जरम् = जीर्णतां गतम् यत प्रावरणं = आच्छादनवस्त्रम् तस्य एकदेशे = एकभागे। दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपम् दीपस्य = प्रभया = प्रकाशेन व्यक्तीकृतम् = सुस्पष्टी भूतं रूपं यस्य तत्। प्राप्तकालः = समुचितावसरः। निर्वादितः = निर्वाणं प्रापितः। मुषितः = हृतसुवर्णभाण्डः। भीत्या = भयेन। उत्पथप्रवृत्तः = विमार्गे गमनशीलः। वाणिज्यमार्गं परित्यज्येति शेषः। शापितः असि। यदि त्वं सुवर्णभाण्डं न गृह्णासि तदा त्वां ब्राह्मणोहम् शपामीत्यर्थः। किं शपथपरिग्रहेण। शपथपरिग्रहो सर्वथा निष्फलः यतो हि मयैव सुवर्णभाण्डं गृह्यते इत्यर्थः

१४. अन्वयः – दारिद्र्यम् धिक् । अनिर्वेदं च यौवनम् धिक् यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि

यह ले लिया (ऐसा कह कर ले लेता है)।

विदूषक – (देकर) अब मैं समस्त भाण्ड का विक्रय कर देने वाले व्यापारी की तरह सुखपूर्वक सो रहा हूँ।

सज्जलक – महाब्राह्मण सुखपूर्वक सोओ। (कुछ सोचते हुये) भाई! यह तो विश्वासपूर्वक इस ब्राह्मण के द्वारा (चारुदत्त) को दिया जा रहा था जिसका अपहरण मैंने बीच में कर लिया।

१४. इस दरिद्रता को धिक्कार है और विषयभोग से अतृप्त इस युवावस्था को धिक्कार है। जो मैं दरिद्रता के कारण एवं विषय से अतृप्त जवानी के कारण इस कर्म की निन्दा करता हूँ। तथा उसे कर भी रहा हूँ।

(नेपथ्य में नगाड़े का शब्द होता है)

सज्जलकः – (कर्णं दत्वा) अये प्रभातसमयः संवृत्तः। अपसरामि तावत्।

(निष्क्रान्तः सज्जलकः।)

(प्रविश्य)

चेटी – (साक्रन्दम्) अय्यमेत्तेअ! अम्हाणं रुक्खवाडिआपक्खदुपवाले सन्धिं छिन्दिअ चोरो पविट्ठो। [आर्यमैत्रेय! अस्माकं वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्वा चोरः प्रविष्टः।]

विदूषकः – (सहसोत्थाय) किं भणादि भोदी। [किं भणति भवति।]

(चेटी 'रुक्खवाडिआ' इति पठति।)

विदूषकः – चोरं छिन्दिअ सन्धी पविट्ठो। [चोरं छित्वा सन्धिः प्रविष्टः।]

चेटी – हदास! सन्धिं छिन्दिअ चोरो पविट्ठो! [हताश! सन्धिं छित्वा चोरः प्रविष्टः।]

विदूषकः – आअळ णं दंसेहि। [आगच्छ ननु दर्शय।]

च करोमि च।

व्या० – धिगिति - दारिद्र्यम् = अकिञ्चनता। धिक् = धिक्कारयोग्यः। अनिर्वेदम् अविद्यमानः निर्वेदः भोगोपशान्तिः यस्मिन् तत् = भोगतृप्तिरहितम्। यौवनम् = यूनः भावम् = तारुण्यं च धिक्। यत् = यस्मात्कारणात् अहम् इदं दारुणं कर्म = चौर्यरूपनिन्दिताचरणम्।

सज्जलक – (ध्यान देकर) अरे सबेरा हो गया। तब तो हमें भाग जाना चाहिये।

(सज्जलक भागता है)

(चेटी प्रवेश कर)

चेटी – (जोर से चिल्लाती हुई) आर्य मैत्रेय। मेरी वृक्षवाटिका के पक्षद्वार से चोर सुरंग लगा कर घर में घुस गया है।

विदूषक – (सहसा उठकर) आप क्या कह रही हैं?

(चेटी पुनः दोबारा उसी शब्द को कहती है)

विदूषक – क्या कहती हो चोर को छेद कर सुरंग प्रविष्ट हो गया।

चेटी – अभागे! सुरंग बनाकर चोर घुस गया। ऐसा क्यों नहीं कहते।

विदूषक – आइये और मुझे दिखाइये।

चेटी – (परिक्रम्य) एदं। [एतत्]

विदूषकः – अविहा दासीएवुत्तेण कुक्कुरेण पवेसो किदो। भोदि! आअच्छ, चारुदत्तस्स पिअं णिवेदेमि। [अविहा दास्याः पुत्रेण कुक्कुरेण प्रवेशः कृतः। भवति! आगच्छ चारुदत्तस्य प्रियं निवेदयामि।]

नायकः – (बुद्ध्वा) किं मे प्रियम्। ननु वसन्तसेना प्राप्ता।

विदूषकः – ण खु वसन्तसेणा वसन्तसेणो पत्तो। [न खलु वसन्तसेना, वसन्तसेनः प्राप्तः।]

नायकः – रदनिके! किमेतत्।

चेटी – भट्टिदारअ! अम्हाणं रुक्खवाडिआपक्खदुवारे सन्धिं छिन्दिअ चोरो पविट्ठो। [भर्तृदारक! अस्माकं वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्वा चोरः प्रविष्टः]

नायकः – किं चोरः प्रविष्टः।

विदूषकः – भो वअस्स। सव्वदा तुवं भणासि, मुक्खो मेत्तेओ अपण्डिदो मेत्तेओ त्ति। णं मए सोभण किदं तं सुवण्णभण्डअं तव हत्थे समप्पअन्तेण। [भो वयस्य! सर्वथा त्वं भणसि,

---

निन्दामि = विगर्हे, किन्तु करोमि = संपादये। अहं युवावस्थायां भोगासक्ततया दारिद्र्यभावापन्नतया च चौर्यरूपं निन्दितमपि आचरणमाचरिष्ये अतो मां धिगित्यर्थः।

वृक्षवाटिकापक्षद्वारे = वाटिकापार्श्वभागस्थिते द्वारे। दास्याः पुत्रेण = नीचेन। हन्त = इति खेदे। हृतम् = चोरितम्।

चेटी – (घूम कर) वह यह है।

विदूषक – ओह! दासीपुत्र कुक्कुर ने प्रवेश दिया होगा? चलो यह प्रिय संदेश आर्य चारुदत्त से निवेदन करें।

(दोनों समीप जा कर) भाई चारुदत्त मैं आप से कुछ प्रिय संदेश निवेदन करना चाहता हूँ।

नायक – (उठ कर) मेरे लिये क्या प्रिय संदेश है, क्या वसन्तसेना आई हुई है?

विदूषक – वसन्तसेना तो नहीं। किन्तु वसन्तसेन आया है।

नायक – रदनिके! यह क्या है?

चेटी – महानुभाव! हमारी वृक्षवाटिका के पक्षद्वार से चोर सुरंग बना कर घुस आया।

नायक – क्या चोर घुस गया?

विदूषक – भो! मित्र! तुम हमेशा कहा करते थे कि मैत्रेय बड़ा मूर्ख है, बुद्धिहीन

मूर्खो मैत्रेयोऽपण्डितो मैत्रेय इति। ननु मया शोभनं कृतं तत् सुवर्णभाण्डकं तव हस्ते समर्पयता।]

नायकः – किं भवता दत्तम्।

विदूषकः – अहइं। [अथ किम्]

नायकः – कस्यां वेलायाम्।

विदूषकः – अद्धरत्ते। [अर्द्धरात्रे।]

नायकः – किमर्धरात्रे। बाढं दत्तम्।

विदूषकः – भो चारुदत्त! जं वेलं पुरिबुद्धो आसि, तस्सिं वेलाअं ख दिण्णं। [भोश्चारुदत्त! यस्या वेलायां प्रतिबुद्ध आसिः, तस्यां वेलायां खलु दत्तम्।]

नायकः – हस्तं हृतं सुवर्णभाण्डकम्।

विदूषकः – दाणिं मे हत्थे पडिच्छिदु अत्तभावं। [इदानीं मम हस्ते प्रयच्छत्वत्रभवान्।]

नायकः – (आत्मगतम्)

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति।
शङ्कनीया हि दोषेषु निष्प्रभावा दरिद्रता॥१५॥

---

१५. अन्वयः – कः भूतार्थं श्रद्धास्यति। सर्वः मां तूलयिष्यति। यतः दरिद्रता निष्प्रभावा अतः दोषेषु शङ्कनीया भवति।

व्या० – क इति = कः जनः भूतार्थम् = सत्यम् सुवर्णभाण्डापहाररूपं वृत्तं श्रद्धास्यति = विश्वसिष्यति। सर्वः लोकः मां तूलयिष्यति तूल इव लघुकरिष्यति। यथार्थ–

है। परन्तु मैंने यह अच्छा किया कि सुवर्ण भाण्ड आप को समर्पित कर दिया।

नायक – क्या आप ने मुझे दिया?

विदूषक – और क्या?

नायक – किस समय?

विदूषक – वही आधी रात को।

नायक – क्या कहते हो आधी रात में। क्या सचमुच आप ने मुझे दिया।

विदूषक – मित्र चारुदत्त ! जिस समय आप जगे थे उसी समय तो दिया।

नायक – ओह ! तब तो सुवर्ण भाण्ड की निश्चित चोरी हो गयी।

विदूषक – इस समय आप उसे मेरे हाथ में दें।

नायक – (मन में) भला ! इस सत्य बात का कौन विश्वास करेगा, लोग मुझे

(प्रविश्य)

ब्राह्मणी – रदणिए! रदणिए! आअळ ! णहि सुआदि। कवाडसद्दं दाव करिस्सं। (तथा करोति।) [रदनिके! रदनिके! आगच्छ। न हि शृणोति। कवाटशब्दं तावत् करिष्यामि।]

चेटी – हं कवाडसद्दो विअ। भट्टिदारिआ मं सद्दावेदि। (परिक्रम्य) भट्टिदारिए! इअ ह्मि। [हं, कवाटशब्द इव। भर्तृदारिका मां शब्दापयति। भर्तृदारिके! इयमस्मि।]

ब्राह्मणी – ण परिक्खदो ण वावादिदो अय्यउत्तो अय्यमेत्तेओ वा। [न परिक्षितो न व्यापादित आर्यपुत्र आर्यमैत्रेयो वा।]

चेटी – कुसली भट्टदारिओ अय्यमेत्तेओ अ। जो तस्स जणस्स अलंकारो चोरेण गहीदो। [कुशली भर्तृदारक आर्यमैत्रेयश्च। यस्तस्य जनस्यालंकारश्चोरेण गृहीतः।]

ब्राह्मणी – किं भणसि चोरेण गहीद त्ति! [किं भणसि चोरेण गृहीत इति।]

चेटी – अह इं। [अथ किम्]

वृत्तमविश्वसित्वानेनैवाय हृतं भवेदिति मामेव कलङ्कयिष्यति। कुत इति तत्कारणमाह - यतः दरिद्रता = दारिद्र्यम्। निष्प्रभावा = अकिञ्चित्कारिणी अतः दोषेषु = अपराधेषु शङ्कनीया शङ्कायाः स्थानम्।

कवाट शब्दम् = कवाटवादनम्। शब्दापयति = आह्वयति। आभिजात्येन हेतुना वा। प्रतीच्छति

ही चोर कहेंगे। दरिद्रता प्रमाव को नष्ट करने वाली है, अतः अपराध होने पर लोग मुझ पर ही संदेह करेंगें।

(ब्राह्मणी का प्रवेश)

ब्राह्मणी – रदनिके! रदनिके ! यहाँ आ। नहीं सुनती है। तब मैं दरवाजा खट खटा रही हूँ (ऐसा कह कर दरवाजा खटखटाती है)

चेटी – अरे ! यह तो किवाड़ी खटखटाने जैसा शब्द है।

ब्राह्मणी – आर्य पुत्र अथवा आर्य मैत्रेय को कहीं चोट तो नहीं लगी अथवा वे मारे तो नहीं गये।

चेटी – आर्य पुत्र और मैत्रेय दोनों सकुशल है। केवल उस जन का अलंकार ही चोर ने चोरी किया।

ब्राह्मणी – क्या कहती है चोर ले गया।

चेटी – हाँ।

ब्राह्मणी – किंणु तस्स जणस्स दादव्वं भविस्सदि। अहव एदं दइस्सं। (कर्णौ स्पृष्ट्वा)। हद्धि तालीपत्तं खु एवं। सो दाणिं परिअओ मं विलम्बेदि। किं दाणिं करिस्सं। (विचिन्त्य) भेदु, दिट्ठं। मम ञ्जादिकुलादो लद्धा सदसहस्समुल्ला मुत्तावली। तं पि अय्यउत्ते सोंडीरदाए वडिच्छदि। भेदु, एवं दाव करिस्सं। (निष्क्रान्ता) [किन्तु खलु तस्मै जनाय दातव्यं भविष्यति। अथवैतद् दास्यामि। हा धिक् तालीपत्रं खल्वेतत्। स इदानीं परिचयो मां विडम्बयति। किमिदानीं करिष्यामि। भवतु दृष्टम्। मम ज्ञातिकुलाद् लब्धा शतसहस्रमूल्या मुक्तावली। तामप्यार्यपुत्रः शौटीरतया प्रतीच्छति। भवतु एवं तावत् करिष्यामि।]

विदूषकः – इमस्स अन्धआरुप्पादिदस्स अवराहस्स किडे सीसेण पसादेम्हि। दाणिं मे हत्थे पडिच्छतु अत्तभवं। [अस्यान्धकारोपादितस्यापराधस्य कृते भवन्तं शीर्षेण प्रसादयामि। इदानीं मे हस्ते प्रयच्छत्वत्रभवान्।

नायकः – किं भवानिदानीं मां बाधते?

भवांस्तावदविश्वासो शीलज्ञो मम नित्यशः।
किं पुनः स कलाजीवी वञ्चनापण्डितो जनः ॥१६॥

= प्रत्यभिलषति। यतः वसन्तसेनायाः न्यासभूतोऽलङ्कारश्चौरेण चोरितोऽतः आर्यपुत्रेण कौलीन्यरक्षणार्थं तस्यै प्रतिदानार्थमियं मुक्तावल्यभिलषिता भवेदित्यर्थः। अन्धकारोत्पादितस्य अन्धकारे संपादितस्य।

१६. अन्वयः – यदि तावद् नित्यशः मम शीलज्ञः भवान् अविश्वासी मन्यते तदा कलाजीवी वञ्चना पण्डितः स जनः पुनः किम्।

ब्राह्मणी – अब उस बसन्तसेना को क्या देना चाहिये (कानों का स्पर्श कर) अथवा यह दूँगी। ओह ! धिक्कार है, यह तो तालपत्र रचित कर्णभूषण है। इस समय इस स्थान में रहने वाले पुराने गहने की याद ने मुझे धोखा दिया। तब इस समय क्या करना चाहिये। (कुछ सोच कर) अच्छा! मैंने उपाय सोच लिया। मुझे अपने भाइयों से एक लाख की मोती की माला प्राप्त है, आर्य पुत्र ! उसी को देकर अपनी कुलीनता सुरक्षित रखेंगे। अच्छा तो यही करूँगी।

विदूषक – अरे ! यह मैंने अन्धकार के कारण जो अपराध किया है उसके लिये सिर झुका कर क्षमा माँगता हूँ। आप इस समय उसे मुझे दें।

नायक – आप मुझे इतना कष्ट क्यों दे रहे हैं?

विदूषकः - मण्णे मय मन्दभग्गेण कुम्भीलस्स हस्ते दिण्णं। (विषण्णस्तिष्ठति)। [मन्ये मया मन्दभाग्येन कुम्भीलस्य हस्ते दत्तम्।]

(प्रविश्य)

ब्राह्मणी-रदणिए। अय्यमेत्तेअं सद्दावेहि। [रदनिके ! आर्यमैत्रेयं शब्दापय।]

चेटी-अय्यमेत्तेअ ! भट्टदारिआ तुमं सद्दावेदि। [आर्य मैत्रेय ! भट्टारिका त्वां शब्दापयति।]

विदूषकः भोदि। किं मं। [भवति ! किं माम्।]

चेटी - आम्। [आम्।]

विदूषकः - एस आअच्छामि। (उपसर्पति) [एष आगच्छामि।]

व्याख्या-भवानिति। यदि तावद् नित्यशः = प्रतिदिनं, मम, शीलज्ञः = स्वभावस्य सदाचारस्य वा साक्षात्कर्ता अपि भवान् अविश्वासी = विश्वासानर्हः माम् चारुदत्तं मृषावादीति मन्यते तदा कलाजीवी अभिनयनृत्यादिकलोपजीवी, वञ्चनापण्डितः = प्रतारणे प्रवीणः, स जनः = गणिकाजनः पुनः किं = पुनः कथं विश्वासार्हं मन्यत इत्यर्थः। अयं भावः-मम निकटस्थः भवान् मच्छीलं पूर्णतः वेत्त्येव किन्तु यदि नृत्यादिविद्यानिपुणा सा वसन्तसेना मम विश्वासं कथं कुर्यात्। सा तु मां नितान्तमनृतभाषिणं मत्वा मयि स्वकीयालंकारहरणशङ्कां कुर्यादेवेत्यर्थः ॥१६॥

प्रतिग्रहं = दानं। अवस्थाविरुद्धः = दशाविरुद्धः, निमित्तरहितः। विभवः = प्रदानरूपमैश्वर्यं। अयं भावः-दारिद्र्यावस्थायां तव सन्निधौ

आप तो सदैव हमारे स्वभाव से परिचितं हैं। यदि इस प्रकार आप ही अविश्वास करेंगे तो नृत्यादि कला से जीवन निर्वाह करने वाला, वञ्चना में निपुण वह जन (गणिका) किस प्रकार मेरा विश्वास करेंगा ।१६।

विदूषक- मैं समझता हुँ कि मुझ अभागे ने वह आभूषण चोर के हाथ में दे दिया।

(प्रवेश कर)

ब्राह्मणी-रदनिके ! आर्य मैत्रेय को बुलावो।

चेटी-आर्य मैत्रेय ! स्वामिनी आपको बुला रही हैं।

विदूषक-श्रीमति ! क्या मुझे ?

चेटी-हाँ

विदूषक–यह आ रहा है।

ब्राह्मणी – अय्यमेत्तेय! इमं पडिग्गाहं पडिग्गण्ह। [आर्यमैत्रेय! इमं प्रतिग्रहं प्रतिगृहाण।]

विदूषकः – अवत्थाविरुद्धो खु अअं पदाणविभवो। कुदो एदस्स आगमो। [अवस्थाविरुद्धः खल्वयं प्रदानविभवः कुत एतस्यागमः।]

ब्राह्मणी – णं सट्टिं उववसामि। सव्वसार विभवेण ब्रम्हणेण सोत्थि वाअइदव्वं त्ति एसो इमस्स आगमो! [ननु षष्ठीमुपवसामि। सर्वसारविभवेन ब्राह्मणेन स्वस्ति वाचयितव्यमित्येषोऽस्यागमः।]

विदूषकः – अट्ठमी खु अज्ज। [अष्टमी खल्वद्य।]

ब्राह्मणी – पमदादो अदिक्कमो किदो। अज्ज पूआ णिव्वत्तीअदि। [प्रमदाद् अतिक्रमः कृत्। अद्य पूजा निर्वर्त्यते]

विदूषकः – अणणुरूवदाए पदाणस्स अणुक्कोसो विअ पडिभाद। (जनान्तिकम्) रदणिए! किं करिस्सं। [अननुरूपतया प्रदानस्यानुक्रोश इव प्रतिभति। रदनिके! किं करिष्यामि।]

द्रव्यं नासीदिदानीं। महद्यम् प्रदानार्थं द्रव्यं कस्मादानीतमिति भावः। किन्त्व दानार्थं किञ्चिन्निमित्तमपेक्ष्यते तच्चापीदानीं न वर्त्तते इति विदूषकाभिप्रायः। ब्राह्मणी उत्तरयति नन्विति - सर्वसारविभवेन सर्वेषां सारः स चासौ विभवस्तेनं = सर्वत्र निमित्तभूतेन अर्थस्य पुरुषो दासः। मया हि षष्ठ्यागुपवासो विहितस्तदनन्तरं स्वकल्याणार्थं ब्राह्मणाय किञ्चिद्देयमिति निमित्तभूतमिदं दानमित्ति ब्राह्मण्याः अभिप्रायः। विदूषकः कथयति अष्टमीति। त्वं मृषा वदसि षष्ठी तिथिस्तु व्यतीता अद्य तु अष्टमी वर्त्तते। ब्राह्मणी पुनः वदति प्रमादादिति प्रमादात् = विस्मृत्या। निर्वर्त्यते = संपाद्यते।

ब्राह्मणी – आर्य मैत्रेय! यह दान ग्रहण करें।

विदूषक – यह दान की संपत्ति आप की अवस्था के अनुकूल नहं है। किस लिये आप यंह उपहार दे रही हैं?

ब्राह्मणी – मैं षष्ठी के दिन उपवास करती हूँ। अतः धन ही सभी कार्यों में निमित्त होने से सर्वश्रेष्ठ है। अतः इस उत्तमोत्तम ऐशवर्य से ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति पाठ कराने के लिये यह उपहार दे रही हूँ।

विदूषक – आज तो अष्टमी है।

ब्राह्मणी – भूल के कारण यह अतिकम हो गया। पूजा तो आज करनी है।

विदूषक – यह प्रदान तो अवस्था विरुद्ध होने से दया जैसा मालूम हो रहा है। (जनान्तिक में) तो रदनिके! मुझे क्या करना चाहिये।

चेटी-(अपवार्य) किण्णु खु तस्स जणस्स दादव्वं भविस्सदि त्ति। एदण्णिमित्तं भट्टिदारओ सन्तप्पदित्ति। भट्टिदारिआ तव हत्थे दइअ अच्चउत्तं अणिरिणं करिस्सामि त्ति एवं करेदि। ता गण्ह एदं। [किन्नु खलु तस्मै जनाय दातव्यं भविष्यतीत्येतन्निमित्तं भर्तृदारकः सन्तप्यते। इति भर्तृदारिका तव हस्ते दत्त्वाऽऽर्यपुत्रमनृणं करिष्यामीत्येवमेवं करोति। तद् गृहाणैतत्।]

ब्राह्मणी-उदअसम्भवदाए मुक्तावलीए तव अ दुल्लहदाए उवआरो विस्सरिदो। गण्ह एदं। (ददाति) [उदकसंभव-तया मुक्तावल्यास्तव च दुर्लभतयोपचारो विस्मृतः। गृहाणैतत्।]

विदूषकः - (गृहीत्वा) सव्वं दाव चिट्ठदु। रोदियो विअ भोदीए दिट्ठी। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। रोदितीव भवत्या दृष्टिः।]

ब्राह्मणी-देवउलधूमेण रोविदा। [देवकुलधूमेन रोदिता।]

अनेकपात्रमध्ये यदि अन्यान् निषिध्य यदन्योन्यालापं भवति तदेव जनान्तिकं कथ्यते। यथा-अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्'। अननुरूपतया = असादृश्यतया। अयं भावः - मात्रषष्ठ्युपवासेनैतन्महार्घमालारत्नदानमनुचितम्। किंच दारिद्र्योपहतयापि इदं दानमवस्थाविरुद्धमतो नानुरूपम्। किं च यादृशं निमित्तं भवति दानमपि तादृशमेव भवति। अतोऽवस्थानिमित्तविरुद्धं ते दानमस्ति। अनुक्रोशः = दया। त्वं यद्दानं करोषि तत् कस्मिंश्चिदुपरि कृपाप्रदर्शनार्थमिति भावः। चेटी तदेव समर्थयति-किन्विति। अनृणं = ऋणरहितम्। उदकसंभवतया = जलादुत्पत्तिकारणेन। अस्थिरो हि भवान् न च ते दर्शनं सदा सुलभम्। तव दर्शनस्य दुर्लभतया तदानीं तव पूजनं न कृतम्। दानकाले संकल्पार्थं जलमपेक्ष्यते तच्च नास्तीत्याह-मुक्तावल्या उदकसंभवतया तदेव जलक्रिया संपन्ना।

चेटी-(सबको न सुनाकर)-उस जन (वसन्तसेना) को क्या दूंगा-इसलिये स्वामी दुःखी हो रहे हैं। इसलिये स्वामिनी आपको यह मुक्तावली देकर स्वामी को ऋण मुक्त करना चाहती है। अतः आप इसे ले लें।

ब्राह्मणी-मुक्तावली जल से उत्पन्न हुई है और आपका दर्शन दुर्लभ है (अतः समय से आपको यह नहीं दी गई) अतः आप इसे ले लें। (देती है)

विदूषक-यह सब रहने दें। आपकी दृष्टि रोती हुई सी लग रही है।

ब्राह्मणी-देवमन्दिर के धुआँ से आंसू आ गया हैं।

विदूषक-आर्यचारुदत्त की शपथ यदि आप असत्य कहें।

ब्राह्मणी-हाय धिक्कार है ! (निकल जाती है।)

विदूषक-यह वचन से दुःख छिपाकर आसुओं से व्यक्त करते हुये गयी (पास जाकर) श्रीमन् ! यह है।

नायक-यह क्या है ?

विदूषकः- शाविदासि तत्तहोदा चारुदत्तेण जदू अलिअं भणासि। [शापितासि तत्र भवता चारुदत्तेन यद्यलीकं भणसि।]

ब्राह्मणी - हद्धि। (निष्क्रान्ता) (हा धिक्।)

विदूषकः-एषा वाआए दुक्खं रक्खि अ अस्सहि सूइअ गआ। (उपगम्य) भो ! इदं। [एषा वाचा दुःखं रक्षित्वाऽश्रुभिः सूचयित्वा गता] [भोः। इदम्।]

नायकः-किमेतत्।

विदूषकः-सदिसकुलदारसङ्गहस्स फलं। [सदृशकुलदारसंग्रहस्य फलम्।]

नायकः - किं ब्राह्मणी मामनुकम्पते।

विदूषकः-एवं विअ। [एवमिव।]

नायकः- धिगात्मानम्। अद्य हतोऽस्मि।

मयि द्रव्यक्षयक्षीणे स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः।
अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान् ॥१९॥

विदूषकः शापितासीति। चारुदत्तस्य ते शपथं यदि अलीकं=असत्यं वदसि। वाचा=वाण्या। दुःखं रक्षित्वा=स्वकीयां वेदनां गोपयित्वा। सूचयित्वा=निर्दिश्य। सदृशकुलदारसंग्रहस्य=सदृशात्=समानात्, कुलात्=वंशात्, दाराणां स्त्रीणां, यः संग्रहः= आनयनं तस्य फलम्।

अन्वयः- द्रव्यक्षयक्षीणे मयि स्त्रीद्रव्येण अनुकम्पितः। अर्थतः पुरुषः नारी या नारी सा अर्थतः पुमान् ॥१९॥

व्याख्या- मयीति। द्रव्यक्षयक्षीणे=द्रव्याणां=धनानां क्षयेण=नाशेन, क्षीणः=कृशः दुर्बलस्तस्मिन् मयि जाते स्त्रीद्रव्येण=योषिदर्थेन अहम् अनुकम्पितः=अनुगृहीतः। अर्थतः अर्थकारणादेव धनाभावेनेत्यर्थः पुरुषः नारी=स्त्री, भवति। या नारी सा अर्थतः=धनबलेन एव पुमान्=पुरुषः भवति ॥१९॥

विदूषक-समान (उचित) कुल की स्त्री लाने का फल है।

नायक-क्या ब्राह्मणी मेरे ऊपर अनुकम्पा कर रही है।

विदूषक-हाँ ऐसा ही है।

नायक-मुझे धिक्कार है। आज मैं मर गया।

मेरे धनहीन होने पर आज मैं स्त्रीधन से अनुकम्पित हुआ। धन के (न होने) के कारण ही पुरुष स्त्री है और वह स्त्री भी धन के कारण (धन होने पर) पुरुष है ॥१९॥

विदूषकः -तत्तहोदी हिअएण तुमं याचेदि। अहं सीसेण याचेमि। गण्ह एदं। [तत्रभवती हृदयेन त्वां याचते। अहं शीर्षेण याचे। गृहाणैतत्।]

नायकः - तथा। (गृहीत्वा) वयस्य! इमां मुक्तावलीं गृहीत्वा वसन्तसेनायाः सकाशं गच्छ।

अर्थेषु काममुपलभ्य मनोरथो मे
स्त्रीणां धनेष्वनुचितं प्रणयं करोति।
माने च कार्यकरणे च विलम्बमानो
धिग् भोः कुलं च पुरुषस्य दरिद्रतां च ॥१८॥

तमभवती = सम्मानार्हा। त्वां हृदयेन याचते = अनुमन्यते। सकाशं = समीपम्

अन्वयः-मे मनोरथः अर्थेषु कामम् उपलभ्य माने च कार्यकरणे च विलम्बमानः सन् स्त्रीणां धनेषु अनुचितं प्रणयं करोति। अतः मत्सदृशस्य पुरुषस्य दरिद्रतां कुलं च धिक् ॥१८॥

व्याख्या-अर्थेष्विति। मे = मम, मनोरथः = अभिलाषः, इच्छा। अर्थेषु = धनेषु। कामं = यथेष्टं संतुष्टमिति शेषः। उपलभ्य = संप्राप्य, अधुना माने = स्वकीय-सम्मानविषये। कार्यकरणे = न्यासप्रत्यर्पणरूपकार्यसंपादने। विलम्बमानः = कालक्षेपं कुर्वन्। स्त्रीद्रव्यग्रहणे मे मानहानिः। अगृहीते च न्यासार्पणरूपकार्यविप्रतिपत्तिः एवं किंकर्त्तव्यविमूढः उभयत्र संदिहानः सन्नित्यर्थः। स्त्रीणां धनेषु = अर्थेषु, अनुचितं, प्रणयं = प्रेमासक्तिम्, करोति = विदधाति। अतः मादृशपुरुषस्य, कुलं = वंशं, दरिद्रतां च धिक्। न्यक्कारयोग्यम् ॥१८॥

विदूषकः-श्रीमती (आपकी पत्नी) हृदय से आपकी प्रार्थना कर रही हैं। मैं शिर से प्रार्थना कर रहा हूँ। इसे लीजिये।

नायक-ठीक है। (लेकर) मित्र !इस मुक्तावली को लेकर वसन्तसेना के पास जाओ।

मेरा मन अर्थ के विषय में संतुष्ट होकर स्त्री द्वारा दिये इस धन में संतुष्टि का अनुभव कर रहा है फिर भी (स्त्री द्वारा दिये इस धन के कारण) आत्मसम्मान में और न्यासार्पण में (किंकर्तव्यविमूढता के कारण) विलम्बकर रहा है। अतः हे मित्र ! इस कुल को धिक्कार है और दरिद्रता को भी धिक्कार है। (इस प्रशस्त कुल को इसलिये धिक्कार है कि इतनी प्रतिष्ठा के बाद भी स्त्रीधन से उसकी प्रतिष्ठा बचा रहा हूँ और दरिद्रता को इसलिये कि उसके कारण न्यासार्पण में असमर्थ हूँ।)

विदूषकः — अह्नो अप्पमुल्लस्स सुवण्णभण्डअस्स किदे सदसहस्सगुल्ला मुक्तावली णीआदइव्वा। [अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डकस्य कृते शतसहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातयितव्या।]

नायकः — वयस्य! मा मैवम्।

यं समालक्ष्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु कृतस्तया।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्य प्रदीयताम्॥१९॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥इति तृतीयोऽङ्कः॥

---

१९. अन्वयः — तया यं विश्वासं समालक्ष्य अस्मासु न्यासः कृतः तस्य महतः प्रत्ययस्य एतत् मूल्यं प्रदीयताम्।

व्या० — यमिति - तया = वसन्तसेनया। यम् = यादृशम् सत्यम् विश्वासम् = प्रत्ययम्। समालक्ष्य = मानसि विचिन्त्य। उद्दिश्य वा। अस्मासु = धनहीनेष्वपि। न्यासः = निक्षेपः। कृतः = धारितः। तस्य = पूर्वोक्तस्य। महतः = बृहतः। प्रत्ययस्य विश्वासस्य। मूल्यम् = एतत् = मुक्तावलीरूपम् द्रव्यम्। प्रदीयताम् = समर्प्यताम्।

सर्वे रङ्गमचाञ्चानिष्क्रान्ताः = निर्गताः।

॥इति तृतीयोऽङ्कः॥

रूप कार्य में विलम्ब कर रहा है। अतः हे मित्र इस कुल को धिक्कार है और दरिद्रता को भी ॥१८॥

विदूषक — अहो अल्पमूल्य वाले सुवर्ण भाण्ड के लिये एक लाख मूल्य वाली यह मुक्तावली क्यों दी जानी चाहिये।

नायक — मित्र ! ऐसा मत कहो।

जिस विश्वास से उस वसन्त सेना ने मेरे पास यह धरोहर रक्खा उसी महान् विश्वास के मूल्य स्वरूप यह मुक्तावली तुम उसे दो।

(सब के सब चले जाते है)

॥ तीसरा अङ्क समाप्त ॥

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सोत्कण्ठा वसन्तसेना, चित्रफलकमादाय वर्तिकाकरण्डहस्ता चेटी च।)

गणिका – हञ्जे। पेक्खसि सरिसो तस्स जणस्स। [हञ्जे! पश्यसि सदृशस्तस्य जनस्य।]

चेटी – अज्जुए! तस्सिं हत्थिविमद्दकोलाहले बहुमाणपय्यत्थाए दिट्ठीए दूर दो दिट्ठो सो भट्टिदारओ ईदिसो एव्व। [अज्जुके! तस्मिन् हस्तिविमर्दकोलाहले बहुमानपर्यस्तया दृष्ट्या दूरतो दृष्टः स भर्तृदारक ईदृश एव।]

गणिका – तुमं दाव दक्खो वेसवासजणो त्ति जणवादं पूरअन्ती अलिअं भणसि। [त्वं तावद् दक्षो वेशवासजन इति जनवादं पूरयन्त्यलीकं भणसि।]

चेटी – किं एदं वेशवासजणो सफो दक्खिणो होइ त्ति। पेक्खदु अज्जुआ, चम्पआरामे विचुमन्दा जाअन्ति। अदिसरिसं त्ति मम हिअअं अहिरमदि। परमत्थदो एव्व पसंतीअदि, णं

सोत्कण्ठा = उत्कण्ठया अतिशयप्रियस्मरणरूपव्यापारेण सहिता = संयुक्ता। वर्त्तिकाकरण्डहस्ता वर्त्तिका = तूलिका तस्या यः करण्डः = समुद्रकः स हस्ते यस्याः सा। तस्य जनस्य = चारुदत्ताभिधस्य। सदृशः = अनुरूपः। हस्तिविमर्दकोलाहले = हस्तिनः = गजस्य यः विमर्दः = आक्रमणं तेन कोलाहलः = कलकलस्तस्मिन् बहुमानपर्यस्तया बहुमानेन = आदरातिशयेन पर्यस्तया विक्षिप्तया। दृष्ट्या = नेत्रेण। भर्त्तृदारकः = आर्यपुत्रः। वेशवासजनः वेशे = गणिकाभवने तत्र वसतीति तादृशोजनः दक्षः = प्रवीणः। जनवादम् = किंवदन्तीम् पूरयन्ती = सार्थकं कुर्वती। अलीकम् = अमृतम्। भणसि = कथयसि। चम्पकारामे = चम्पकोद्याने पिचुमन्दाः = निम्बवृक्षाः। परमार्थतः

(इसके अनन्तर उत्कण्ठित वसन्तसेना, चित्रफलक तथा वर्त्तिका (ब्रूश) और रङ्ग की पेटी लिये चेटी का प्रवेश)

गणिका – अरी! इसे देख रही हो यह तो उस पुरुष के सदृश्य ही तो है।

चेटी – अज्जुके! उस दिन हाथी के आक्रमण जनित कोलाहल के समय दूर से अत्यन्त आदरपूर्ण आँखों से देखे गये आर्यपुत्र भी ऐसी ही थे।

गणिका – तुम वेश्याओं के संसर्ग में रहने वाले जन बड़े दक्ष होते हैं, इस लोकापवाद को चरितार्थ करते हुये झूठ बोल रही हो।

चेटी – क्या वेश्याओं के संसर्ग में रहने वाले सभी जन दक्ष होते हैं। आर्ये देखिए

कामदेवो। [किमेतद् वेशवासजनः सर्वो दक्षिणो भवतीति। पश्यत्वज्जुका, चम्पकारामे पिचुमन्दा जायन्ते। अतिसदृश इति मम हृदयमभिरमते। परमार्थत एव प्रशस्यते, ननु कामदेवः।

गणिका – हञ्जे ! सहीजणेण अवहसणीअत्तणं अत्तणो परिहरामि। [हञ्जे ! सखीजनेनापहसनीयत्वमात्मनः परिहरामि।]

चेटी – एदं जुज्जइ। सहीजणसपत्तिओ गणिआजणो णाम। [एतद् युज्यते। सखीजनसपत्नीको गणिकाजनो नाम।]

(ततः प्रविशत्याभरणहस्ताऽपरा चेटी।)

चेटी– सुहं अज्जुआए। [सुखमज्जुकायाः]

गणिका – हञ्जे ! साअदं दे ।[हञ्जे ! स्वाजतं ते]

चेटी- अज्जुए! अत्ता आणवेदि–इदं दुवारं पविट्ठं पोक्खरं उवावत्तिदं पहवणं। ता तुवरमाणमण्डणा गहीदावउण्ठणा आअच्छदु त्ति। इह अलङ्कारं अलङ्करेदु अज्जुआ। [अज्जुके! अम्बाऽऽज्ञापयति--इदं द्वारं प्रविष्टं पौष्करमुपावर्तितं प्रवहणम्। तत् त्वरमाणमण्डना गृहीतावगुण्ठनाऽ-ऽगच्छत्विति। इहालङ्कारमलङ्करोत्वज्जुका।]

= वस्तुतः प्रशस्यते = श्लाघ्यते। उपहसनीयत्वम् = उपहास्यत्वम् सखीजनसपत्नीकः समानः पतिर्यस्याः सा पत्नी सखीजन एव सपत्नी यस्य सः। परिहरामि = संत्यजामि।
द्वारं प्रविष्टम् = द्वारदेशे समागतम्। पौष्करम् = पद्माकरसन्निवेशयुतम्। उपावर्त्तितं = सुसज्जितम्। प्रवहणम् = गोशकटम्। तदानीं स्त्रीणां गमनं गोशकटेन भवतीति परिज्ञायते। त्वरमाणमण्डना = त्वरमाणं = सत्वरं धार्यमाणं मण्डनमाभूषणं अलङ्कारो यस्याः सा। गृहीतावगुण्ठना गृहीतम्

यदि ऐसा है तो चम्पा के बगीचे में निम्ब कैसे उत्पन्न हो जाते हैं यह चित्रगत व्यक्ति उस नायक के अत्यन्त सदृश है इसीलिये मेरा मन इसमें मोहित हो रहा है। वास्तव में यह प्रशंसा के योग्य है जैसे कामदेव ही हो।

गणिका – अरी! मैं सखीजनों के द्वारा अपनी हँसी नहीं चाहती।

चेटी – यह तो ठीक है। क्योंकि गणिका लोगों की सखियाँ उनकी सौतें हो जाती हैं।

(इसके बाद आभरण हाथ में लिये दूसरी दासी का प्रवेश)

चेटी – अज्जुके! आप सानन्द तो हैं।

गणिका – हञ्जे! तुम्हारा स्वागत है।

चेटी – माननीये! अम्बा नें आज्ञा दी है कि तुम्हारे द्वार पर कमल समूह से सुसज्जित

गणिका – किं अय्यचारुदत्तो मण्डइस्सिदि। [किमार्यचारुदत्तो मण्डयिष्यति।]

चेटी – णहि, जेण अलङ्कारो पेसिदो सो राअसालो सण्ठाणो। [नहि, येनालङ्कारः प्रेषितः स राजश्यालः संस्थानः।]

गणिका – अवेहि अविणीदे! [अपेह्यविनीते।]

चेटी – पसीदद्दु पसीदद्दु अज्जुआ। सन्देसं खु अहं मन्तेमि। (पादयोः पतति)। [प्रसीदतु प्रसीदत्वज्जुका। सन्देशं खल्वहं मन्त्रये।]

गणिका – उट्ठेहि उट्ठेहि। कुसन्देसं असूआमि, ण तुवं। [उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। कुसन्देशमसूयामि, न त्वाम्।]

चेटी – किं अहं अत्तं भणामि। [किमहमम्बां भणामि।]

गणिका – भणेहि अत्तं–जदा अय्यचारुदत्तो अभिसारइदव्वो तदा मण्डेमि त्ति। [भणाम्वां-- यदाऽऽर्यचारुदत्तोऽभिसारयितव्यस्तदा मण्डयामीति।]

चेटी – तह। (निष्क्रान्ता।) [तथा।]

= विहितम् अवगुण्ठनं = मुखावरणं मया सा। मण्डयिष्यति = भूषयिष्यति। संस्थानः = तन्नामकः राजश्यालः। अपेहि = दूरमपसर। अविनीते = दुष्टे। मन्त्रये = निवेदये। कुसंस्थानम् = कुत्सितकर्माणं तं राजश्यालकं संस्थाननामकं। अभिसारयितव्यः = भर्त्तुश्चारुदत्तस्य

बैलगाड़ी जा रही है, इसलिये शीघ्रता से अलङ्कृत हो कर घूँघट निकाल कर यहाँ चली आओ तो अज्जुका इस अलङ्कार को अलङ्कृत करो।

गणिका – क्या आर्य चारुदत्त! मुझे अलङ्कृत करेंगे?

चेटी – नहीं जिसने ये अलंकार भेजे हैं। वह राजा का शाला है संस्थान उसका नाम है।

गणिका – अविनीते! दूर हट।

चेटी – आर्ये प्रसन्न हों। प्रसन्न हों। मैं तो केवल संदेश कहती हूँ। (पैरों पर गिर जाती है)।

गणिका – उठो। उठो। मैं संदेश को ही बुरा भला कहती हूँ। न कि तुमको।

चेटी – तो मैं अम्बा से जा कर क्या कहूँ।

गणिका – माता जी से कहो कि जब मैं आर्य चारुदत्त के पास अभिसरण करूँगी तब अपने को अलङ्कृत करूँगी।

चेटी – ऐसा ही हो (वहाँ से चली जाती है)।

(ततः प्रविशति सज्जलकः।)

सज्जलकः –

कृत्वा निशायां वचनीयदोषं निद्रां च हित्वा तिमिरं भयं च।
स एव सूर्योदयमन्दवीर्यः शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः ॥१॥

दिष्ट्या कर्मान्ते प्रभातम्। यावदिदानीं वसन्तसेनायाः परिचारिकाया मदनिकाया निष्क्रयार्थं मयेदं कृतम्। (परिक्रम्य) इदं वसन्तसेनाया गृहम्। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) किन्नु खल्वभ्यन्तरस्था मदनिका। अथवा पूर्वाह्णे गणिकानामभ्यन्तरे सान्निध्यम्। अतस्तत्रैव तथा भवितव्यम्। यावळ ब्दापयामि। मदनिके! मदनिके!।

चेटी – (आकर्ण्य) सज्जलअस्स विअ सरो। वावुदा अज्जुआ। ता उवसप्पिस्सं। (उपगम्य)

संकेतस्थानेऽभिसरणार्थमाज्ञापितव्यश्चेत्तदा।

१.अन्वयः – निशायां निद्रां तिमिरं भयं च हित्वा वचनीय दोषं कृत्वा स एवाहम् सूर्योदयमन्दवीर्यः दिवाचन्द्रः इव शनैः भीतः अस्मि।

व्या० – कृत्वेति - निशायां = रात्रौ। निद्रां = स्वापं, तिमिरम् घनान्धकारम्। भयं = भीतिं च। हित्वा = अविगणय्य। वचनीयदोषं = निन्दनार्हमाचरणं। कृत्वा = विधाय। स एवाहम् = सज्जलकनामा। सूर्योदयमन्दवीर्यः सूर्योदयेन = प्रभातकारणेन मन्दम् = नष्टप्रायम् वीर्यं = तेजः यस्य सः। दिवाचन्द्रः दिवसे वर्त्तमानः चन्द्र = शशाङ्क इव। शनैः = स्वाल्पं। भीतः

(तब सज्जलक का प्रवेश)

सज्जलक – जिस मैंने रात्रि में निद्रा, अन्धकार तथा भय की परवाह न कर चौर्यकर्म जैसा निन्दित कार्य किया वही मैं इस समय सूर्योदय काल में फीके प्रकाश वाले चन्द्रमा की तरह शनैः शनैः भयभीत हो रहा हूँ॥१॥

यह तो सौभाग्य की बात हुई कि चौर्यकर्म के समाप्त होते ही प्रातःकाल हो गया। जो भी हो मैंने वसन्तसेना की परिचारिका मदनिका के उद्धार करने के लिये यह कार्य किया है। (घूम कर) यह है वसन्तसेना का गृह। तब प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश कर) क्या मदनिका इसके अभ्यन्तर है? अथवा पूर्वाह्न में गणिकायें मकान के भीतर रहती है तो वह भी नहीं होगी। तब तक बुलाता हूँ। मदनिके! मदनिके!

चेटी – (सुनकर) यह आवाज तो सज्जलक जैसी मालूम पड़ती है। अज्जुका अभी

इअम्हि। [सज्जलकस्येव स्वरः व्यापृताऽज्जुका। तदुपसर्पिष्यामि। इयमस्मि।]

सज्जलकः – इतस्तावत्।

चेटी – किं तुवं सङ्किदवण्णो विअ। [किं त्वं शङ्कितवर्ण इव।]

सज्जलकः – न खलु, किञ्चित् कथयितुकामः।

गणिका – हञ्जे! इमं चित्तफलअं सअणिए ठावेहि (विलोक्य) कहिं गआ हदासा। अहव अदूरगआए होदव्वं। जाव णं पेक्खिस्सं (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो इअं सां अदिसिणिद्धाए दिट्ठीए केण वि मणुस्सेण पिवन्ती विअ सह मन्तअन्ती चिट्ठइ। तक्केमि एत्तो जो कोवि कएण मं याचेदि। [हञ्जे! इदं चित्रफलकं शयनीये स्थापय। कुत्र गता हताशा। अथवा अदूरगतया भवितव्यम्। यावदेनां प्रक्षिष्ये। अम्मो इयं साऽतिस्निग्धया दृष्ट्या केनापि मनुष्येण पिबन्तीव सह मन्त्रयमाणा तिष्ठति। तर्कयाम्येष यः कोऽपि क्रयेण मां याचते।]

सज्जलकः – श्रूयतां रहस्यम्।

अस्मि त्रस्तः अस्मि।

दिष्ट्या = भाग्येन। कर्मान्ते = चौर्यरूपकर्मसमाप्तिं गते। प्रभातम् = सूर्योदयः जातमिति शेषः। निष्क्रयार्थम् = मूल्यदानेनोद्धारार्थम्। दासीत्वबन्धनादुन्मोचयितुमित्यर्थः। अभ्यन्तीरस्था = अन्तराल स्थिता। पूर्वाह्ने अह्नः पूर्वं पूर्वाह्नस्तस्मिन् = अह्नः पूर्वभागे। सान्निध्यम् = सन्निधावस्थानम्। शब्दापयामि = आह्वयामि। व्यापृता = व्यासक्ता। उपसर्पिष्यामि = समीपं गमिष्यामि। शङ्कितवर्णः शङ्कितः = भयसंत्रस्तः वर्णः आकृतिः अक्षरो वा यस्य सः = न खलु = निश्चयेन नास्मि भीतः किन्तु कथयितु कामः = वक्तुमभिलाषी। हताशा = दुर्भगा। अदूरगतया = सन्निकटे

काम में लगी हुई है तो इसके पास चलती हूँ। मैं यही हूँ।

सज्जलक – तुम यहाँ आओ।

चेटी – क्यों तुम भयभीत जैसे लग रहे हो।

सज्जलक – ऐसी बात नहीं है। मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

गणिका – अरी! इस चित्रफलक को शय्या पर रख दो। (इधर-उधर देख कर) वह अभागिन कहाँ चली गयी अथवा यहीं कहीं पास में होगी। तब तक इसे देखती हूँ। (घूम कर देख कर) अरे! यह तो स्नेहभरी दृष्टि से किसी पुरुष की ओर देखती हुई उससे बात कर रही है। मुझे ऐसा अनुमान हो रहा है कि यह मुझ से कुछ खरीदना चाहता है।

सज्जलक – रहस्य सुनो।

गणिका-अजुत्तं पररहस्सं सोदुं, अहं गमिस्सं। [अयुक्तं पररहस्यं श्रोतुम्, अहं गमिष्यामि।]

संज्जलकः - अपि वसन्तसेना (इत्यर्धोक्ते)।

गणिका-अहं अहिकिदा एदाअं कहाअं। होदु, सुणिस्सं दाव भविस्सदि। (पुनः प्रतिनिवृत्य स्थिता।) [अहमधिकृतैतस्यां कथायाम्। भवतु, श्रोष्यामि तावद् भविष्यति।]

सज्जलकः - किं दास्यति त्वां निष्क्रयेण

गणिका-सो एव्व एसो। होदु, सुणिस्सं। [स एवैषः। भवतु, श्रोष्यामि।]

चेटी - सज्जलअ। मम पदाणं पढमं एवं अज्जुआए उत्तं। [सज्जलक ! मम प्रदानं प्रथममेवाज्जुकयोक्तम्।]

सज्जलकः-तेन हीमं प्रयच्छ, एवं वक्तव्या च।

अयं तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मितः।
अप्रकाश्यो ह्यलंकारो मत्स्नेहाद् धार्यतामिति ॥२॥

स्थितया। प्रेक्षिष्ये = पश्यामि। अतिस्निग्धतया = अतिशयस्नेहेन। क्रयेण = मूल्येन। याचते = प्रार्थयति। रहस्यम् = रहः निर्जनं तत्र भवं रहस्यमेकान्तवृत्तम्। निष्क्रयेण = मूल्यं दत्वा।

अन्वयः-अयम् अप्रकाश्यः अलंकारः तव शरीरपरिमाणात् एव निर्मितः। मत्स्नेहात् धार्यताम् इति ॥२॥

व्याख्या-अयमिति। अयं = पुरो दीयमानः, अप्रकाश्यः = प्रकाशनानर्हः, गोप्यमेव धार्यः। तव शरीरस्य प्रमाणादिव = प्रमाणं कृत्वा तव शरीरसंस्थानसन्निवेशयोग्य इव। निर्मितः = रचितः। अतः मत्स्नेहात् = ममानुरागात्, त्वया, धार्यताम् = स्वशरीरमलंक्रियताम् ॥२॥

गणिका-दूसरे का रहस्य सुनना अनुचित है, मैं जा रही हूँ।

सज्जलक-क्या वसन्तसेना (इतना कह कर रुक जाता है।)

गणिका-यह कथा मेरे ही विषय में है। ठीक है तो सुनूंगी (लौट कर रुक जाती है)

सज्जलक-क्या मूल्य लेकर, तुम्हे दे देगी।

गणिका-वही है यह। ठीक है, सुनूंगी।

चेटी-सज्जलक ! मेरा देना तो पहले ही अज्जुका ने कहा है।

सज्जलक-तो इसे दो। और इस प्रकार कहना-

यह गोपनीय अलंकार तुम्हारे शरीर के नाप के अनुसार ही बना है। इसे मेरे प्रेम से आप धारण करें ॥२॥

चेटी-पेक्खामि दाव। [पश्यामि तावत्।]

सज्जलकः गृह्यताम्। (दर्शयति।)

चेटी-दिट्ठपुरुवो विअ अअं अलङ्कारो। [दृष्टपूर्व इवायमलंकारः।]

गणिका-ममकेरओ विअ अअं अलङ्कारो। [मदीय इवायमलंकारः।]

चेटी-भणाहि भणाहि को इमस्स आअमो। [भण, भण। कोऽस्यागमः।]

उभे-हं, साहसिओ। [हम्, साहसिकः।]

चेटी-(आत्मगतं) आ अज्जुआए खु इमस्स आइदी कम्मदारुणदाए उव्वे अणीआ संवुत्ता। (प्रकाशं) हद्धि मम किदे उभअं संसइदं संवुत्तं तव सरीरं चारित्तं च। [आ, अज्जुकाया खल्वास्याकृतिः कर्मदारुणतयोद्वेजनीया संवृत्ता। हा धिग्। मम कृते उभयं संशयितं संवृतं तव शरीरं चारित्रं च।]

कोऽस्यागमः = अस्यालंकारस्य कः आगमः प्राप्तिः। साहसं = चौर्यरूपकार्यम्। कर्मदारुणतया = दारुणकर्माचरणेन। उद्वेजनीया = संक्षोभनीया। संवृत्ता = संजाता। संशयितम् = संशयभावापन्नम्। अपण्डितः = मूर्खः। जीवितेन = जीवितावस्थायामेव विश्वासवञ्चना =

चेटी-देखूँ तो।

सज्जलक-लो (दिखाता है।)

चेटी-यह अलंकार तो पहले देखा जैसा है।

गणिका- यह तो मेरा ही जैसा आभूषण है।

चेटी-बताओ, बताओ। कहाँ से यह पाये हो।

दोनों-बड़ा साहसी है।

चेटी-(मन में) अरे! अज्जुका के समीप तो इसकी आकृति कठोर कर्म के कारण उद्वेग-कारिणी हो गयी है। (प्रकट) हाय धिक्कार है। मेरे लिये तुमने अपने शरीर और चरित्र दोनों को संकटापन्न कर दिया।

सज्जलक-पागल! साहस में ही लक्ष्मी बसती हैं।

सज्जलकः — उन्मत्तिके! साहसे खलु श्रीर्वसति।

चेटी — अपण्डिदो खु सि। को हि णाम जीविदेण सरीरं विक्कीणिस्सदि। अह कस्स गेहे इअं विस्सासवञ्चणा किदा। [अपण्डितः खल्वसि। को हि नाम जीवितेन शरीरं विक्रेष्यति। अथ कस्य गेहे इयं विश्वासवञ्चना कृता।]

सज्जलकः — यथा प्रभाते मया श्रुतं–श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम।

उभे — हुम्।

सज्जलकः — अयि,

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।
मृगीव शरविद्धाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे॥३॥

चेटी — सच्चं भणाहि। सत्थवाहकुले साहसं करन्तेण तुए कोच्चि कुलवुत्तो सत्थेण अत्थि परिक्खदो वावादिदो वा। [सत्यं भण। सार्थवाहकुले साहसं कुर्वता त्वया कश्चित् कुलपुत्रः शस्त्रेणास्ति

विश्वासपूर्विका वञ्चना। श्रेष्ठिचत्वरे श्रेष्ठिनो चत्वरे = प्राङ्गणे लक्षणया वसतावित्यर्थः। हुम् = स्वीकारबोधकमव्ययपदम्।

३. अन्वयः — विषादस्रस्तसर्वाङ्गी संभ्रमोत्फुल्ललोचना शरविद्धाङ्गी मृगी इव (त्वं) कम्पसे अनुकम्पसे च।

व्या० — विषादेति - विषादस्रस्तसर्वाङ्गी विषादेन = दुःखेन स्रस्तानि = शिथिलीजातानि सर्वाणि अङ्गानि = शरीरावयवाः यस्याः सा संभ्रमोत्फुल्ललोचना संभ्रमेण = चाञ्चल्यकारणेन। उत्फुल्ले = विकसिते लोचने = नयने यस्याः सा। शरविद्धाङ्गी शरेण = बाणेन विद्धम् = आहूतं

चेटी — तुम मूर्ख हो। कौन है जो अपने जीवन से शरीर का विक्रय करेगा। अच्छा बताओ तुमने किसके घर यह विश्वासघात किया है।

सज्जलक — जैसा कि प्रातःकाल में मैंने सुना था कि सेठों के मुहल्ले में सार्थवाह पुत्र चारुदत्त नामक व्यक्ति रहता है।

दोनों — हाँ।

सज्जलक — प्रिये। एक ओर तो विषाद से तुम्हारे सारे अङ्ग संत्रस्त हो रहे हैं, दूसरी ओर आश्चर्य से दोनों नेत्र विकसित हो रहे हैं, इसी प्रकार एक ओर शरविद्धा मृगी की तरह तुम काँप रही हो और दूसरी ओर दया भी कर रही हो।

चेटी — सच, सच बताओ। श्रेष्ठी जनों के कुल में चोरी करते हुये तुमने किसी कुलीन

परिक्षतो व्यापादितो वा ।]

गणिका-सुट्ठु, मए वि पुच्छिदव्वं एवाए पुच्छिदं । [सुष्ठु, मयापि प्रष्टव्यमेतया पृष्टम् ।]

सज्जलकः- मदनिके ! एतावत् किं न पर्याप्तं, द्वितीयमप्यकार्यं करिष्यामि । न खल्वत्र शस्त्रेण कश्चित् परिक्षतो व्यापादितो वा ।

चेटी-सज्जलअ ! सच्चं । [सज्जलक ! सत्यम् ?]

सज्जलकः-सत्यम् ।

चेटी-साहुं सज्जलअ ! पियं मे [साधु सज्जलक ! प्रियं मे ।]

सज्जलकः-किं किं प्रियमित्याह । ईदृशं मदनिके !

त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं
संतुष्टपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः ।
रक्षामि मन्मथगृहीतमिदं शरीरं
मित्रं च मां व्यपदिशस्यपरं च यासि ॥४॥

अङ्गं यस्याः सा एवंभूता मृगी = हरिणी इव त्वं, कम्पसे = वेपसे, मयि च अनुकम्पसे = अनुग्रहशीलऽसि ॥३ ॥

कुलपुत्रः = कुलीनः, परिक्षतः = विद्धः, व्यापादितः = मारितः । एतावत् किं न पर्याप्तं = परधनहरणरूपचौर्यकार्यं कृतं तदेव बहुकृतं तदनन्तरं शस्त्रेण मारणरूपमकार्यं कथं करिष्यामीत्यर्थः ॥

पुरुष को शस्त्र से आहत तो नहीं किया या जान से तो नहीं मार डाला

गणिका - ठीक है । जो मै भी पूछती वह इसने पूछा ।

सज्जलक - क्या इतना (चौर्य रूप पाप) ही पर्याप्त नहीं है कि दूसरा भी पाप करूँगा ? किसी को शस्त्र से घायल या मारा नहीं ।

चेटी-साधु सज्जलक ! मेरा प्रिय किया ।

सज्जलक-क्या प्रिय कहा । देखो मदनिके ! मेरे पूर्वज

चेटी – सज्जलअ! सुणाहि। अज्जुआए अअं अलङ्कारो। (कर्णे।) एवं विअ। [सज्जलक! शृणु। अज्जुकाया अयमलङ्कारः। एवमिव।]

सज्जलकः – एवम्।

अज्ञानाद् या मया पूर्वे शाखा पत्रैर्वियोजिता।
छायार्थी ग्रीष्मसन्तप्तस्तामेव पुनराश्रितः ॥५॥

गणिका – सन्ताप्पदि त्ति तक्केमि एदेण अकय्यं किदं ति। [सन्तप्यत इति तर्कयामि एतेनाकार्यं कृतमिति।]

व्या० – त्वदिति–संतुष्टपूर्वपुरुषेऽपि संतुष्टाः = सर्वविधसंपन्नाः पूर्वपुरुषाः = पूर्वजाः यस्मिन् एवंभूते कुले = वंशे प्रसूतः = जातः अपि त्वत्स्नेहबद्धहृदयः त्वयि स्नेहेन = प्रेम्णा बद्धम् = वशीकृतम् हृदयम् = मनो यस्य सः तादृशोऽहम् हि - निश्चयेन अकार्यम् = चौर्यरूपमनाचरणीयं पापम् करोमि = आचरामि। मन्मथगृहीतम् मन्मथेन = कामदेवेन गृहीतम् = अविष्टं इदं शरीरं रक्षामि = परिपालयामि। परन्तु त्वम् मां मित्रं = स्वप्रियम् व्यपदिशसि = व्याजेन स्वीकरोषि। किन्तु हृदयेन = मनसा अपरं चारुदत्तम् यासि = अङ्गीकरोषि। एवमिव = एतदर्थमेव।

५.अन्वयः – मया पूर्वं अज्ञानात् या शाखा पत्रैः वियोजिता ग्रीष्मसंतप्तः छायार्थी पुनः तामेव आश्रितः।

व्या० – अज्ञानादिति - अज्ञानात् = भ्रमवशात्। मया या शाखा पूर्वं = प्रथमं पत्रैः = पर्णैः वियोजिता = रिक्ततां संपादिता। वसन्तसेनायाः आमरणमिदमित्यज्ञानता कारणेन मया

सर्वथा सम्पन्न थे उस कुल में उत्पन्न होकर भी मैं मात्र तुम्हारे स्नेह से ऐसा अकार्य करता हूँ और काम-वासना से अभिभूत इस शरीर की रक्षा करता हूँ किन्तु मुझे मित्र कहती हो पर हृदय से किसी दूसरे को चाहती हो।

चेटी – सज्जलक! आर्या के ये अलङ्कार हैं (कान में बात ऐसी है)

सज्जलक – ऐसा है।

अज्ञानवश मैंने जिस शाखा को पत्र रहित किया ग्रीष्म से संतप्त होकर छाया की खोज में अब मैंने उसी शाखा का आश्रय लिया है (कामान्ध होकर मदनिका को वसन्तसेना से मुक्ति दिलाने के लिये चोरी किया और दुर्भाग्य से उसी का अलङ्कार चुराया ॥५॥

गणिका – यह पश्चात्ताप कर रहा है इसलिये निश्चय ही इसने पापकर्म किया है ऐसा मेरा अनुमान है।

सज्जलकः — मदनिके! एवं गते किं कर्तव्यम्।

चेटी — तहिं एव्व णिय्यादेहि, णहि मण्डइस्सदि अज्जुआ। [तत्रैव निर्यातय, नहि मण्डयिष्यत्यज्जुका।]

सज्जलकः — अथेदानीं सोऽमर्षान्मां चोर इति रक्षिपुरुषैर्ग्राहयिष्यति चेदत्र किं करिष्यामि।

चेटी — मा भाआहि मा भाआहि। कुलवुत्तो खु सो गुणाणं परितुस्सदि। [मा बिभीहि मा बिभीहि। कुलपुत्रः खलु स गुणानां परितुष्यदि।]

गणिका — साहु भद्दे! अवत्तव्वासि अलङ्किदा विअ एदेण वअणेण। [साधु भद्रे! अवक्तव्यासि, अलङ्कृतेवैतेन वचनेन।]

सज्जलकः — सर्वथा न शक्ष्याम्यहं तत्र गन्तुम्।

चेटी — अअं अण्णो उवाओ। [अयमन्य उपायः।]

गणिकाः — एदे गुणा वेसवासस्स। [एते गुणा वेशवासस्य।]

सज्जलकः — कोऽन्य उपायः।

तस्यालङ्कारः प्रथमपद्धतः सोहम् ग्रीष्मसंतप्तः निदाघपीडितः छायार्थी = दासाभिलाषी तामेव शाखाम् पुनः आश्रितः = आलम्बितः। एवं पूर्वं चौर्यकर्मणा वसन्तसेनाभरणैर्मया वियोजिता पुनः तदाभरणदानेऽपि मह्यं सा मदनिकां नैव समर्पयिष्यति अतो मनोरथपूर्त्यभावेन दुःखमनुभूयमानेन च मया पुनरपि वसन्तसेना आश्रयितव्या भवेदित्यर्थः। संतप्यते = दुःखमनुभूयते। अकार्यम् =

सज्जलक — रदनिके! ऐसी परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिये?

चेटी — इसे वहीं ले जाओ। हमारी अज्जुका इस अलङ्कार को धारण नहीं करेगी।

सज्जलक — यदि उसने क्रोध के वशीभूत हो मुझे पुलिस से पकड़वा दिया तब मैं क्या करूँगा।

चेटी — तुम भयभीत मत हो। चारुदत्त कुलीन हैं। वे तुम्हारे गुणों पर संतुष्ट होंगे।

गणिका — साधु भद्रे! तुम उचित कहती हो तुमने इस वचन से ही हम लोगों को अलङ्कृत कर दिया।

सज्जलक — मैं तो वहाँ जाने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

चेटी — तब एक दूसरा उपाय है।

गणिका — वेश्याओं के पास रहने से इसमें ये गुण आ गये हैं।

सज्जलक — दूसरा उपाय क्या है?

चेटी – णं तव रूपञ्जा अज्जुआ अवि सत्थवाहपुत्तो अ। [ननु तव रूपज्ञाज्जुकाऽपि सार्थवाहपुत्रश्च।]

सज्जलकः – न खलु।

चेटी – तेण हि इमं दाव अलङ्कारं तस्स सत्थवाहपुत्तस्स वअणादो अज्जुआए णिय्यादेहि। एवं च किदे तुवं रक्खिदो, सो अय्यो अ अणिव्विण्णो भविस्सदि। अहं च पीडिदा ण भविस्सं। आदु अज्जुअं च पुणो वञ्चिअ पुणो एव्व दासभावो भवे। [तेन हीमं तावदलङ्कारं तस्य सार्थवाहपुत्रस्य वचनादज्जुकायै निर्यातय। एवं कृते त्वं रक्षितः, स आर्यश्चानिर्विण्णो भविष्यति। अहं च पीडिता न भविष्यामि। अथवा अज्जुकां च पुनर्वञ्चयित्वा पुनरेव दासभावो भवेत्।]

सज्जलकः – मदनिके! प्रीतोऽस्मि।

गणिका – भोदु अब्भन्तरं पविसिअ उवविसामि। (तथा करोति।) [भवत्वभ्यन्तरं प्रविश्योपविश्यामि।]

चेटी – सज्जलअ! आअच्छ, कामदेवउले म पडिवालेहि। अहं ओसरं जाणिअ अज्जुआए णिवेदेमि। [सज्जलक! आगच्छ, कामदेवकुले मां प्रतिपालय। अहमवसरं ज्ञात्वाऽज्जुकायै

असत्कार्यरूपं पापम्। सः = चारुदत्तः। अमर्षात् = क्रोधात् रक्षितपुरुषैः = राजभटैः। ग्राहयिष्यति = ग्रहणं कारयिष्यति अवक्तव्यासि = निर्दोषासि। एते गुणावेशवासस्य = वेश्यावासे निवासेन बहूपायाभिज्ञतयास्यां एते गुणाः समागता इति रूपज्ञा = स्वरूपेण परिचिता। निर्यातय = समर्पय। अनिर्विण्णः = खेदरहितः। पीडिता = क्लेशयुक्ता चिन्तापरा वा।

चेटी – निश्चय ही तुम्हारे स्वरूप को अज्जुका एवं आर्य चारुदत्त जानते हैं ।

सज्जलक – ऐसा नहीं है।

चेटी – इसलिये चारुदत्त ने आप को आभूषण भेजा है, इस प्रकार चारुदत्त के वचनों का आश्रय कर तुम वसन्तसेना के पास ये अलङ्कार ले जाओ। ऐसा करने से तुम भी बच जाओगे और चारुदत्त को भी अलङ्कारों के खो जाने का दुःख न होगा। तुम्हारी रक्षा हो जायगी और मैं भी उत्पीड़न से बच जाऊँगी। अन्यथा अज्जुका स्वामिनी की पुनर्वञ्चना के कारण मैं जन्मान्तर में भी दासी बनी रहूँगी।

सज्जलक – मदनिके! मैं प्रसन्न हूँ।

गणिका – अच्छा! घर के भीतर जा कर बैठती हूँ (वैसा ही करती है)

चेटी – सज्जलक! आओ तब तक इस कामदेव के मन्दिर में मेरी प्रतीक्षा करो

निवेदयामि।]

सज्जलकः – बाढम्। (निष्क्रान्तः।)

(ततः प्रविशत्यपरा चेटी।)

चेटी – सुहं अज्जुआए। एसो सत्थवाहपुत्तस्स, सआसादो कोच्चि बम्हणो आअदो अज्जुअं पेक्खिदुं। [सुखमज्जुकायाः। सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद् ब्राह्मण आगतोऽज्जुकां द्रष्टुम्।]

गणिका – (सादरम्) गच्छ सिग्घं पवेसेहि णं। [गच्छ, शीघ्रं प्रवेशयैनम्।]

चेटी – तह। (उपसृत्य) एदु एदु अय्यो। [तथा। एत्वेत्वार्यः।]

विदूषकः – (प्रविश्य सर्वतो विलोक्य) अहो गणिआवाडस्स सस्सिरीअदा। णाणापट्टणसमागदेहि आअमिएहि पुत्थआ वाईअन्ति। संओजअन्ति अ आहारप्पआराणि वीणा वादीअन्ति। सुवण्णआरा अलङ्कारप्पआराणि आदरेण जोजअन्ति। [अहो गणिकावाटस्य सश्रीकता। नानापट्टणसमागतैराग-मिकैः पुस्तकानि वाच्यन्ते। संयोज्यन्ते चाहारप्रकाराः। वीणा वाद्यन्ते। सुवर्णकारा अलङ्कारप्रकारानाद-रेण योजयन्ति।]

वञ्चयित्वा = वञ्चनां संपाद्य। अभ्यन्तरम् = अन्तरालसुगुप्तं वा कामकुले = कामोत्सवार्थं निर्मिते भवने गणिकावाधस्य = वेश्यावासस्य। सश्रीकता श्रिया = शोभया सह वर्त्तमानमिति सश्रीकं तस्य भावस्तत्ता = रमणीयता।

नानापट्टनसमागतैः = नाना = अनेकविधानि यानि पट्टनानि = नागराणि तेभ्यः समागतास्तैः।

मैं अवसर पा कर अज्जुका से निवेदन करती हूँ।

सज्जलक – ठीक है (निकल जाता है)

(तदनन्तर दूसरी दासी का प्रवेश)

चेटी – अज्जुका का मङ्गल हो। आर्य चारुदत्त के साथ से कोई ब्राह्मण आप से मिलने के लिये आया है।

गणिका – (आदर के साथ) तुम जाओ। उसे शीघ्र यहाँ लाओ।

चेटी – ऐसा ही करती हूँ। (समीप जाकर) आर्य! आइये! आइये।

विदूषक – (प्रवेश कर चारों ओर देखते हुये) अहो! गणिका के घर की यह शोभा तो प्रशंसनीय है। कहीं विभिन्न नगरों से आये हुये शास्त्रज्ञ विद्वान् पुस्तकों को वाँच रहे हैं कहीं नाना प्रकार की भोजन सामग्री एकत्रित की जा रही है। कहीं वीणा बजाई

चेटी – एषा अज्जुआ उवसप्पदु अय्यो। [एषाज्जुका। उपसर्पत्वार्यः।]

विदूषकः – (उपगम्य) सोत्थि होदीए। [स्वस्ति भवत्यै।]

गणिका – साअदं अय्यस्स। हञ्जे! आसणं अय्यस्स, पादोदअं च। [स्वागतमार्यस्य। हञ्जे! आसनमार्यस्य, पादोदकं च।

विदूषकः – (आत्मगतम्) सव्वं आणेदु वज्जिअ भोअणं। [सर्वमानयतु वर्जयित्वा भोजनम्]

चेटी – जं अज्जुआ आणवेदि। (आसनं ददाति, पादोदकं च।) उवविसदु अय्यो। [यदज्जुकाज्ञापयति। उपविशत्वार्यः।]

विदूषकः – (उपविश्य) पडिळ दु आसणं भोदी। अहं किञ्चि भणिदुं आअदो। [प्रतीच्छत्वासनं भवती। अहं किञ्चिद् भणितुमागतः।]

गणिका – (उपविश्य) अवहिदम्हि। [अवहितास्मि।]

विदूषकः – केत्तिअमसं खु तस्स अलङ्कारस्स मुल्लप्पमाणं। [कियन्मात्रं खलु तस्यालङ्कारस्य मूल्यप्रमाणम्।]

गणिका – किंणिमित्तं खु अय्यो पुच्छदि। [किन्निमित्तं खल्वार्यः पृच्छति।]

आगमिकैः = शास्त्रविद्भिः। आहारप्रकाराः = भोजनभेदाः। संयोज्यन्ते = निर्मियन्ते। योजयन्ति निर्मान्ति। प्रतीच्छतु = उपविशतु। अवहितास्मि दत्तावधानास्मि। किं निमित्तम् = किमुद्दिश्य। गुणप्रत्यायननिमित्तम् गुणानां = सत्यतानिक्षेपरक्षणादिकानाम् तदेव निमित्तं यथा

जा रही है। कहीं स्वर्णकार नाना प्रकार के आभूषण सावधानी से निर्माण कर रहे हैं।

चेटी – आर्या यहाँ पर है आर्य स्वयं चले जायें।

विदूषक – आप का कल्याण हो।

गणिका – आर्य का स्वागत। चेटी तत्रभवान् को आसन एवं पादार्घ्य दो।

विदूषक – (स्वगत) भोजन को छोड़कर सब कुछ लाओ।

चेटी – जो आज्ञा। (आसन और पैर धोने का जल देती है) आर्य यहाँ बैठें।

विदूषक – आप भी आसन ग्रहण करें। मैं कुछ कहने के लिये आया हूँ।

गणिका – (बैठकर) मैं सावधान हूँ।

विदूषक – आप के उन अलङ्कारों का मूल्य कितना हो सकता है।

गणिका – यह बात आर्य किसलिये पूछ रहे हैं।

विदूषकः-सुणादु भोदी। तत्तहोदी चारुदत्तस्स गुणप्पच्चाअणणिमित्तं खु तुए अलङ्कारोतहिं णिक्खित्तो। स तेण जूदे हारिदो। [श्रृणोतु भवती तत्र भवतश्चारुदत्तस्य गुणप्रत्यायननिमित्तं खलुं त्वया-लङ्कारस्तस्मिन्निक्षिप्तः। स तेन द्यूते हारितः।]

गणिका-जूदे ? जूज्जइ । तदो तदो। [द्यूते ? युज्यते।ततस्ततः।]

विदूषकः-तदो तस्स अलङ्कारस्स मुल्लभूदं इमं मुत्तावलिं पडिच्छदु भोदी। [ततस्तस्यालंकारस्य मूल्यभूतामिमां मुक्तावलिं प्रतीच्छतु भवती।]

गणिका-(आत्मगतं) धिक् रवु गणिआभावं। लुद्धत्ति मं तुलअदि। जइ ण पडिच्छे, सो एव्व दोसो भविस्सदि। (प्रकाशं) आणेदु अय्यो। [धिक् खलु गणिकाभावम्। लुब्धेति मां तुलयति। यदि न प्रतीच्छामि स एव दोषो भविष्यति। आनयत्वार्यः।]

स्यात्तया। निक्षिप्तः=न्यासरूपेण संस्थापितः। द्यूते=अक्षक्रीडायाम्। गणिकाभावं =गणिकारूपेण लुब्धस्वभावं। तुलयति=गणिकेयं लुब्धा न वेति परीक्षते। न प्रतीच्छामि= न गृह्णामि। स एव दोषः =चारुदत्तप्रेषितां मुक्तावलीं यदि न गृह्णामि तदेयमधिकं वाञ्छति इति तदेव लुब्धतादोषो

विदूषक-श्रीमती सुनें। आर्य चारुदत्त के गुणों पर विश्वास कर आपने अलंकार उनके यहाँ रखा। उस अलंकार को वे जुये में हार गये।

गणिका-जुये में ? ठीक है। तब ?

विदूषक-तब उस अलंकार के मूल्यरूप में इस मुक्तावली को आप ग्रहण करें।

गणिका-(मन में) गणिका भाव को धिक्कार है। मैं लोभिनी हूँ यह तुलनाकर रहे हैं। यदि नहीं लूं तो वही दोष पड़ेगा (कि लोभिनी है अधिक चाहती है) (प्रकट) लाइये श्रीमन्!

विदूषक-इसे श्रीमती लें।

गणिका-(लेकर)-आर्यचारुदत्त से निवेदन करें कि उसने ले लिया।

विदूषकः – (आत्मगतम्) कोवि उवआरो वि ण एदाए भणिदो। (प्रकाशम्) एवं होदु। (दत्त्वा निष्क्रान्तः) [कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणितः। एवं भवतु।]

गणिका – साहु चारुदत्त! साहु। भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए माणावमाणं रक्खिदं। [साधु चारुदत्त! साधु। भागधेयपरिवृत्ततायां दशायां मानावमानं रक्षितम्।]

(प्रविश्य)

मदनिका – अज्जुए! सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोच्चि मणुस्सो आअदो इच्छइ अज्जुअं पेक्खिदुं। [अज्जुके! सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद् मनुष्य आगत इच्छत्यज्जुकां द्रष्टुम्।]

गणिका – किं दिट्ठपुरुवो णवदंसणो वा। [किं दृष्टपूर्वो नवदर्शनो वा।]

मदनिका – अज्जुए! णहि, तस्सकेरओ त्ति मे पडिभादि। [अज्जुके! नहिं, तदीय इति मे प्रतिभाति।]

गणिका- गच्छ, पवेसेहि णं। [गच्छ, प्रवेशयैनम्।]

मदनिका – तह। (निष्क्रान्ता।) [तथा।]

गणिका – अह्वो रमणिज्जदा अज्ज दिवसस्स। [अहो रमणीयताऽद्य दिवसस्य]।

दोष आपतेदिति भावः प्रतीष्टम् = स्वीकृतम्। उपचारः = शिष्टतायुक्तं वचनम्। भागधेयपरिवृत्ततायां = भागधेयस्य = भाग्यस्य या परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्यां सा। आत्मशङ्का = आत्मनि = स्वचित्ते या शङ्का = संदेहः। खलु = निश्चयेन। कष्टा = कष्टकारिणी।

विदूषक – (स्वगत) इसने उपचार रूप में कुछ नहीं कहा (प्रकाश) ऐसा ही हो।

(आभूषण दे कर चला जाता है)

(मदनिका का प्रवेश)

मदनिका – अज्जुके! सार्थवाहपुत्र के यहाँ से कोई व्यक्ति आया है और आप से मिलना चाहता है।

गणिका – क्या वह व्यक्ति पहले से परिचित है अथवा कोई नया है।

मदनिका– अज्जुके! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह उसका अपना आदमी नहीं है।

गणिका – जाओ, उसे भीतर ले आओ।

मदनिका – ऐसा ही करती हूँ (निकल जाती है)

गणिका – अहो! आज के दिन का सौन्दर्य तो बड़ा ही शोभनीय है।

(ततः प्रविशति मदनिका सज्जलकेन सह।)

सज्जलकः – कष्टा खल्वात्मशङ्का नाम,

यः कश्चिच्चकितगतिर्निरीक्षते मां
सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति स्थितो वा।
सर्वास्तांस्तुलयति दोषतो मनो मे
स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥६॥

मदनिका – एसा अज्जुआ। उवसप्पदु अय्यो। [एषाज्जुका। उपसर्पत्वार्यः।]

सज्जलकः – (उपसृत्य) सुखं भवत्ये।

गणिका – साउदं अय्यस्स। हञ्जे! आसणं देदु अय्यस्स। [स्वागतमार्यस्य। हञ्जे! आसनं दीयतामार्याय।]

सज्जलकः – भवतु भवतु। गृहीतमासनम्। त्वरिततरमनुष्ठेयं किञ्चित् कार्यमस्ति।

---

६. अन्वयः – यः कश्चित् चकितगतिः सन् मां निरीक्षते वा संभ्रान्तः द्रुतम् उपसर्पति वा स्थितः (भवति) तान् सर्वान् दोषतः मे मनः तुलयति। हि मनुष्यः स्वैर्दोषैः शङ्कितः भवति।

व्या० – य इति यः कश्चित् चकितगतिः चकिता = यतस्ततो विस्मयावहा गतिः = गमनं यस्य सः। मां = सज्जलकम् निरीक्षते = पश्यति। वा संभ्रान्तः = उद्विग्नः द्रुतम् = शीघ्रम्। उप सर्पति = आगच्छति वा स्थितः भवति। तान् सर्वान् दोषतः चौर्यादि रूपपापकर्मणः मे

(तदनन्तर मदनिका सज्जलक को साथ लिये प्रवेश करती है)

सज्जलक – आत्मशङ्का तो कष्टदायिनी होती है। जो व्यक्ति आश्चर्यपूर्वक मुझे देखता है अथवा शङ्कापूर्वक ठहर कर मेरे समीप आता है मेरा मन चौर्यरूप अपराध के कारण उन सभी को सशङ्क रूप से तोलता है कि कहीं मुझे पकड़ने तो नहीं आ रहा है उचित है कि मनुष्य अपने ही अपराध से सर्वत्र शङ्कित रहता है।

मदनिका – आर्या यहाँ है। अतः आर्य स्वयं समीप चले जाँय।

सज्जलक – (समीप जाकर) आप का कल्याण हो।

गणिका – [आर्य का स्वागत] हञ्जे श्रीमान् को आसन दो।

सज्जलक – अच्छा! अच्छा! आसन ग्रहण कर लिया। आप से शीघ्रतापूर्वक संपादन के योग्य कुछ काम है।

गणिका – एवं, भणादु अय्यो। [एवं, भणत्वार्यः।]

सज्जलकः – आर्यचारुदत्तेनास्मि प्रेषितः–यस्तावदलङ्कारो मम हस्ते निक्षिप्तः, स त्वसंभोगमलिनतया गृहस्यासान्निध्यात् कौटुम्बिकानां दुरारक्षः। तद् गृह्यताम् इति।

गणिका – इमं तस्स चारुदत्तस्स देदु अय्यो। [इमं तस्मै चारुदत्ताय ददात्वार्यः।]

सज्जलकः – भवति! न खल्वहं गच्छामि।

गणिका – अहं जाणामि तस्स गेहे साहसं करिअ आणीदो अअ अलङ्कारो। तस्स गुणाणि अणुकम्पेदु अय्यो। [अहं जानामि तस्य गेहे साहसं कृत्वा नीतोऽयमलङ्कारः। तस्य गुणाननुकम्पतामार्यः।]

सज्जलकः– (आत्मगतम्) कथं विदितोऽस्म्यनया।

गणिका – को एत्थ, पवहणं दाव अय्यस्स। [कोऽत्र, प्रवहणं तावदार्यस्य।] णेमिसद्दो विअ सुणीअदि! आअदेण पवहणेण होदव्वं [नेमिशब्द इव श्रूयते। आगतेन प्रवहणेन भवितव्यम्।]

मनः तुलयति = संदिहानो भवति अयं मां किं ग्रहीष्यतीति शङ्कते। हि = यतः। मनुष्यः स्वैर्दोषैः = स्वकीयापराधैः शङ्कितो भवति = संदिहानो जायत इत्यर्थः।

निक्षिप्तः = न्यस्तः। असंभोगमलिनतया असंभोगेन = संभोगः = समुपयोगस्तन्न भवतीति तेन या मलिनता = धूलिधूसरता तया। कौटुम्बिकानाम् = परिवाराणां गृहस्य असान्निध्यात् = दूरे

गणिका – तो आर्य उसे कहें।

सज्जलक – आर्य चारुदत्त ने मुझे आप के पास भेजा है और कहा है कि जिन अलङ्कारों को आप ने न्यास रूप में मेरे पास रखा है उसका उपयोग न होने से वह मैला हो रहा है मेरे कुटुम्बी लोग घर छोड़ कर दूर चले गये हैं इसलिये उसकी रक्षा भी संभव नहीं तो इसे ले लीजिये।

गणिका – आर्य! इन्हें चारुदत्त को दे देवें।

सज्जलक – आर्ये! मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।

गणिका – मैं जानती हूँ कि आप ने उनके घर चोरी करके इन अलङ्कारों को प्राप्त किया है, तो उनके गुणों के प्रति आदर भाव तो दिखाना ही चाहिये।

सज्जलक – (स्वगत) क्या इन्होंने मुझे जान लिया।

गणिका – अरे यहाँ कोई है आर्य सज्जलक के लिये गाड़ी तो लाओ। रथ की नेमि जैसा शब्द तो हो रहा है। कोई गाड़ी कदाचित् आ रही है।

(स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य) आरुहदु अय्यो अय्याए सह पवहणं! [अरोहत्वार्य आर्यया सह प्रवहणम्।]

मदनिका – अज्जुए! किं एदं। [अज्जुके! किमेतत्।]

गणिका – मा खु मा खु एवं मन्तिअ। अय्या खु सि दाणिं संवुत्ता। गण्हदु अय्यो! (मदनिकां गृहीत्वा सज्जलकाय प्रयच्छति।) [मा खलु मा खल्वेवं मन्त्रयित्वा। आर्या खल्वसीदानीं संवृत्ता। गृह्णात्वार्यः।]

सज्जलकः – (आत्मगतम्।) भोः! कदा खल्वस्याः प्रतिकर्तव्यं भविष्यति। अथवा, शान्तं शान्तं पापम्।

नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम्।
द्विषतामेव कालोऽस्तु योऽस्या भवतु तस्य वा॥७॥

वास हेतोः। दुरारक्षः = दुःखेन रक्षितुं शक्यः। साहसं = चौर्यम्। अनुकम्पताम् = संस्मरतु भवान्। नेमिशब्दः = रथाङ्गः सच चक्राग्रभागः। प्रवहणेन = शकटेन।

७. अन्वयः – प्रत्युपकारार्थी नरः विपत्तौ फलं लभते। यः अस्याः। तस्य वा कालः स द्विषताम् एव भवतु।

व्या० – नर इति - प्रत्युपकारार्थी = उपकारं प्रतीति प्रत्युपकारस्तमर्थयते इति प्रत्युपकाराभिलषुकः। नरः = जनः। विपत्तौ = आपत्तिकाले। फलं = प्रत्युपकारनिर्वहणरूपं फलम् । सुयोगम् वा

(अपने सभी आभरणों से मदनिका को सजा कर। अच्छा आर्य इन आर्या मदनिका के साथ गाड़ी पर सवार हो जाइए)

मदनिका – अज्जुके! यह क्या?

गणिका – अब ऐसी बात मत कहो। ऐसी बात मत कहो। तुम इस समय श्रीमती हो गई। आर्य! इन्हें ग्रहण करें।

(मदनिका को ले कर सज्जलक को प्रदान करती है)

सज्जलक – (स्वगत) भोः! इनके उपकारों का बदला कब चुकाया जायगा। अथवा पाप शान्त हो पाप शान्त हो। उपकार का बदला चुकाने वाला पुरुष अपने उपकारी पर विपत्ति आने पर अपने प्रत्युपकार का फल प्राप्त करता है किन्तु चारुदत्त के ऊपर ऐसी विपत्ति का अथवा वसन्तसेना पर जो विपत्ति आने वाली हो काल तो परमेश्वर करे शत्रु

(तथा सह निष्क्रान्तः सज्जलकः।)

गणिका – चउरिए!। [चतुरिके!]

चेटी – (प्रविश्य) अज्जुए! इअम्हि। [अज्जुके। इयमस्मि।]

गणिका – हञ्जे! पेक्ख जागरन्तीए मएसिविणो दिट्ठे एव्वं। [हञ्जे! पश्य जाग्रत्या मया स्वप्नो दृष्टः एवम्।]

चेटी – पिअं मे, अमुदंकणाडअं संवुत्तं। [प्रियं मे, अमृताङ्कनाटकं संवृत्तम्।]

गणिका – एहि इमं अलङ्कारं गण्हिअ अय्यचारुदत्तं अभिसरिस्सामो। [एहीममलङ्कारं गृहीत्वार्यचारुदत्तमभिसरिष्यावः।]

चेटी – अज्जुए! तह। एदं पुण अभिसारिआसहाअभूदं दुद्दिणं उण्णमिदं। [अज्जुके! तथा। एतत् पुनरभिंसारिकासहायभूत दुर्दिनमुन्नमितम्।]

गणिका – हदासे! मा हु वड्ढावेहि। [हताशे। मा खलु वर्धय।]

लभते = प्राप्नोति। यः अस्याः = वसन्तसेनायाः तस्य = चारुदत्तस्य वा कालः = विपद्ग्रस्ता दशा सः द्विषतां शत्रूणाम् एव भवतु = अस्तु।

अमृताङ्कनाटकम् अमृतं इव सुखकरः अङ्क यस्मिन् तत् अमृताङ्कम् तच्च नाटकञ्चामृताङ्कनाटकम्। संवृत्तम् = अवसितम्। अभिसारिकासहायभूतम् = अभिसारिकायाः = कान्तार्थिनी या भर्तुः

को ही प्राप्त हो। किन्तु उन्हें न प्राप्त हो।

(सज्जलक मदनिका को लेकर चला जाता है)

गणिका – चतुरिके!

चेटी – (प्रवेश कर) अज्जुके मैं यह हूँ।

गणिका – हञ्जे! देखो। जागने के समय मैंने ऐसा स्वप्न देखा है।

चेटी – यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। अमृताङ्क नाटक समाप्त हो गया।

गणिका – तो आओ। अलङ्कार को ले कर अब हम लोग आर्य चारुदत्त के पास अभिसरण करें।

चेटी – अज्जुके! ऐसा ही हो। यह भी देखो कि अभिसारिकाओं का सहायक यह मेघाच्छन्न दिन उमड़ कर आ गया है।

गणिका – अभागिन! मेरी कामाग्नि को अधिक न बढ़ा।

चेटी – एदु एदु अज्जुआ। [एत्वेत्वज्जुका।] (निष्क्रान्ते।)

इति चतुर्थोऽङ्कः।

संकेतस्थानं जिगमिषति साभिसारिका तस्याः सहायभूतम् = सहायकम् यद् दुर्दिनम् = घनान्धकारयुतं वृष्टियुक्तं वा यद्दिनम्। उन्नमितम् = उत् = ऊर्ध्वमाकाशं = नमितम् = आच्छन्नम्।

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

चेटी – माननीये। आइये आइये (दोनों निकल जाती हैं)

॥चतुर्थ अङ्क समाप्त॥

चारुदत्तम्

श्लोकानुक्रमणिका

	अं०	श्लोक सं०
अकामा ह्रियते	१	२५
अज्ञानाद् या	४	५
अद्यास्य भित्तिषु	३	१०
अभिनयति	१	१६
अयं तव शरीर-	४	२
अर्थेषु कामं	३	१८
अविज्ञातप्रयुक्तेन	१	२७
अशिक्खुतिक्खे	१	१५
असौ हि दत्त्वा	३	३
आलोकविशाला	१	२१
इयं हि निद्रा	३	४
उत्कण्ठितस्य	३	१
उदयति हि शशी	१	२९
एशा हि वाशू	१	२३
एषा रङ्गप्रवेशेन	१	२४
एषा हि वयसो	१	२२
कः श्रद्धास्यति	३	१५
कामं नीचमिदं	३	६
कामं प्रदोष	१	१८
किं त्वं पदात्	१	११
किं त्वं भयेन	१	९
किं याशि धावशि	१	८
किं वाशुदेवे	१	१२
कृत्वा निशायां	४	१
कृत्वा शरीर	३	५
क्षीणं ममार्था	१	४

घिदगुलदहि	१	१
जनयति खलु	१	१४
तथा विभव	३	१२
तरुणजनसहायः	१	१७
त्वत्स्नेहबद्धहृदयो	४	४
दारिद्र्यात् पुरुषस्य	१	६
दुवेहि अम्हेहि	१	१०
देशः को नु जला	३	८
धिगस्तु खलु	३	१४
नरः प्रत्युपकारार्थी	४	७
निःश्वासोऽस्य	३	१३
परिचिततिमिरा	१	१३
भवांस्तावत्	३	१६
मयि द्रव्यक्षयक्षीणे	३	१७
मार्जारः प्लवने	३	११
यं समालक्ष्य	३	१४
यः कश्चिच्चकित-	४	६
यत्र मे पतितः	१	२८
यासां बलिर्भवति	१	२
रक्तं च तारमधुरं	३	२
लिम्पतीव तमो-	१	१९
लुब्धोऽर्थवान्	३	७
विभवानुवशा	१	७
विषादस्रस्तसर्वाङ्गी	४	३
सत्यं न मे धनं	१	५
स मद्विधानां	१	२६
सिंहाक्रान्तं	३	९
सुखं हि दुःखा-	१	३
सुलभशरणमाश्रयो	१	२०

- **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**। कालिदास विरचितम् 'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम् डॉ० गङ्गा सागर राय। चतुर्थाङ्क एवम् सम्पूर्ण (चौ.सं.भ. २४)
- **उत्तररामचरितम्**। महाकवि भवभूति प्रणीतम् 'इन्दुमती' संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. कपिलदेव गिरी। षष्ठोडङ्क एवम् सम्पूर्ण (का. २७७)
- **नागानन्दनाटकम्** । हर्षदेव कृत। बलदेव उपाध्याय कृत 'भावार्थदीपिका' संस्कृत-हिन्दी टीका। संशोधित संस्करण (का. ८७)
- **मुद्राराक्षस-नाटकम्** ।विशाखदत्त कृत। 'कला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। डॉ० गंगासागर राय (का. २६२)
- **मृच्छकटिकम्** । महाकविशुद्रक कृत। 'गंगा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्यायुक्त। डॉ० गंगासागर राय (चौ.सं.भ. १४)
- **रत्नावली नाटिका** । श्री हर्षदेव विरचित । 'किरणावली' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम। पं० राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर (का. २९९)
- **वेणीसंहारनाटकम्**। भट्टनारायण कृत। 'गंगा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। डा० गंगासागर राय (का. २४७)
- **संस्कृत के प्रमुख नाटककार तथा उनकी कृतियाँ** । डॉ० गंगा सागर राय (चौ.सं.भ. २६)
- **हिन्दी दशरूपक** । धनन्जय कृत। धनिककृत 'दशरूपावलोक' संस्कृत टीका तथा 'प्रदीप' हिन्दी व्याख्या। डॉ० केशवराव मुसलगाँवकर। (चौ.सं.[illegible])

चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी